(भगवान् बुद्धकी जीवनी और उपदेश)

लेखक

" महापंडित "-" त्रिपिटकाचार्य "-श्री राहुल-सांकृत्यायन

प्रकाशक

शिवप्रसाद गुप्त

सेवा-उपवन

काशी

विक्रमाब्द १९८८

बुद्धाब्द २४७५

मेरे गृह-त्यागसे जिनके अ-वार्धक्य जीवनके अंतिम वर्ष दुःखमय बन गये; उन्हीं सांकृत्य-सगोत्र, मलाँव-पांडेय, स्वर्गीय-पिता

श्री गोवर्धनकी स्मृतिमें ।

नमो तस्स भगवतो अरहतो सम्मा सम्बुद्धस्स ॥

प्राक्-कथन ।

भगवान् बुद्धकी जीवनी और उपदेश दोनोंही इस ग्रन्थमें सन्निविष्ट हैं। बुद्धकी जीवन-घटनायें पाली त्रिपिटकमें जहां-तहां बिखरी हुई हैं, मैंने उन्हें यहां संग्रह किया है। साथही रिक्त स्थानको त्रिपिटककी अट्ठ-कथाओंसे पूरा कर दिया है। पालीका अनुवाद यहां प्रायः शब्दशः हुआ है। बीच बीचमें कुछ अंश छोड़ दिये हैं, जिनमें, पुनरुक्तके लिये (०) चिह्न, और सर्वथा अनावश्यकके स्थानपर (···) चिह्न कर दिये है। शब्दशः अनुवाद करनेके कारण भाषा कहीं कहीं खटकती सी है। कुछ विद्वानोंने कहा भी कि शब्दशः का ख्याल छोड़कर स्वतंत्र-अनुवाद होना चाहिये; किन्तु मैंने यहां, त्रिपिटकमें आईं, भौगोलिक, ऐतिहासिक, सामाजिक, राजनैतिक आदि सामग्रियोंको भी एकत्रित कर दिया है; स्वतन्त्र अनुवाद होनेपर ऐतिहासिकोंके लिये इसका मूल्य कम हो जाता, इसलिये मैंने वैसा नहीं किया। मेरी इस रायसे आचार्य नरेन्द्रदेवभी सहमत रहे। इस तरह भाषा कुछ खटकतीसी जरूर मालूम होगी, किन्तु १००-५० पृष्ठ पढ़ जानेपर साधारणसी बन जायेगी; और पालीके मुहावरे घरकी हिन्दी एवं स्थानीय भाषाओंसे—विशेषकर पूर्वी-अवधी तथा बिहारकी भाषाओंसे बिल्कुल मिलते-जुलते हैं, इसलिये कोई दिक्कत न मालूम होनी चाहिये। बौद्धोंके कुछ अपने दार्शनिक शब्द हैं, मैंने कोष्टक, तथा टिप्पणियोंमें जहां तहां उनको समझानेकी कोशिश की है, किन्तु संक्षेपके कारण होसकता है, कहीं अर्थ स्पष्ट न हो पाया हो; इसके लिये शब्द-सूचीमें देखना चाहिये, आशा है, वहांसे काम चल जायेगा। बौद्ध दार्शनिक भावोंकेलिये पाठकको दर्शनका सामान्य ज्ञान होना तो आवश्यक ही है। बुद्धके जन्म, निर्वाण आदि समयके बारेमें मैंने सिंहलक परम्परामें ६० वर्ष कम कर दिये हैं, जिसको विक्रमसिंह आदिने माना है; और जिसके करनेसे यवनराजाओंके कालसे भी ठीक मेल होजाता है।

त्रिपिटक, कालके क्रमसे एकत्रित नहीं किया गया है। त्रिपिटकका आरम्भ सुत्त-पिटकसे होता है, और सुत्त-पिटकका आरम्भ "ब्रह्मजाल-सुत्त"से; लेकिन यह सुत्त भगवान्‌ने बुद्धत्व-प्राप्तिके बादही नहीं उपदेश किया। उसके बादका "सामञ्ञफल-सुत्त" तो आयुके बहत्तरवें वर्षके बादका है, जब कि श्रोता मगधराज अजात-शत्रु राजगद्दीपर बैठ चुका था। इस प्रकार सभी घटनाओं और उपदेशोंका कालानुसार लगाना बहुत ही कठिन काम था; इस काममें मुझे कोई वैसा अपना पूर्वगामी भी नहीं मिला। यद्यपि यहां बिल्कुल ही सभी बातोंका क्रम ठीक कालानुसार है—यह मैं नहीं कहता; तो भी प्रजापतीका संन्यास—स्त्रियोंको भिक्षुणी बनने का अधिकार-प्रदान, मैंने बुद्धत्व-प्राप्तिसे पांचवें वर्ष दिया है—जरूर ठीक होगा; इसी प्रकार बुद्धत्वके तीसरे वर्ष अनाथ-पिंडकका जेतवन-प्रदान करना, एवं वहीं बुद्धका वर्षावास करना भी सूत्र, और विनयकी सहायतासे निश्चयकर दिया गया है; यद्यपि यहां अट्ठकथाका विरोध पड़ता है; किन्तु मूल त्रिपिटकके सामने अट्ठकथाका विरोध कोई चीज़ नहीं है। इस पुस्तकमें कुछ जगह एकही घटनाको "अट्ठकथा", "विनय", और "सूत्र" तीनोंके शब्दोंमें दिया है, उसके देखनेसे

२· देखो पृष्ठ ८२, ८३।

प्राक्-कथन ।

१९८७में मैं तिब्बतसे लंका लौट गया। वहां अपने ज्येष्ठ सब्रह्मचारी आयुष्मान् आनंदकी प्रेरणाने और मदद दी; फलतः १९८७ की आश्विन पूर्णिमा या महाप्रवारणासे लिखना आरंभकर पौष कृष्ण अष्टमीको कुल ६८ दिनमें समाप्त कर दिया। इसके तीसरे दिन पौष कृष्णा १० को मुझे भारतके लिये प्रस्थान करना था, इस लिये इच्छा रहते भी 'ब्रह्मजाल-सुत्त' और 'सिगालोवाद-सुत्त'को नहीं शामिल कर सका, जिनमें छपते वक्त "सिगालोवाद"को तो ले लिया, लेकिन समयाभावसे इस संस्करणमें "ब्रह्मजाल"के देनेके लोभको संवरण करना पड़ा।

भारतमें चूँकि मुख्यतः मैं देशके आंदोलनमें भाग लेने आया था, इसलिये पुस्तककी ओर ध्यान देनेका विचार न था। किंतु, अशुद्धियोंकी भरमारके डरसे अपने "अभिधर्मकोश" (जो हाल हीमें काशी-विद्यापीठकी ओरसे संस्कृतमें छपा है)के प्रूफ-संशोधनका भार लेना पड़ा। उसी समय मैं इस पुस्तकके नामकरणके लिये सलाह कर रहा था और एकाएक "बुद्धचर्या" नाम सामने आया। तबतक मैंने ग्रंथको दुबारा देखा भी न था, मैंने यह काम भदन्त आनन्दको सौंपा, और उन्होंने कुछ दिनोंमें समाप्त भी कर दिया। जनवरीके अंतमें मैं अपने कार्य-क्षेत्रमें चला गया। फिर वर्षावासके लिये मुझे कहीं एक जगह ठहरना था, मैंने इसके लिये बनारसको चुना। मेरे मित्रोंमें विशेषकर श्रीधूपनाथसिंहने 'बुद्धचर्या'के छपवानेका बहुत आग्रह किया, और पांचसौ रुपये देने भी तै कर लिये, दोसौ रुपये और भी जमा थे। बनारस आनेपर मैंने निश्चय किया कि, इन सातसौ रुपयोंसे पुस्तकका जितना हिस्सा छप जाये, उतना पहिले छपा लेना चाहिये, बाकी पीछे देखा जायेगा। छपाई शुरू होगई। इसी बीच बाबू शिवप्रसादगुप्तसे बात हुई, और उन्होंने इसे अपनी ओरसे छपाना स्वीकार किया। श्रीधूपनाथने इस निश्चयके पूर्वही कहला भेजा था कि, पुस्तक सभी छप जानी चाहिये, और भी जो दाम लगेगा, मैं दूंगा। इस तरह पुस्तकके इतनी जल्दी प्रकाशित होनेमें सबसे बड़े कारण श्रीधूपनाथही हैं। बाबू शिवप्रसादजीकी उदारताके बारेमें कुछ कहना तो व्यर्थही होगा। मेरे मित्र आचार्य नरेन्द्रदेवजी तो मुझसे भी अधिक इस पुस्तकके छपनेके लिये उत्सुक थे; और उन्होंने इसके लिये बहुत कोशिशकी, जिसका फल यह आपके सामने है।

जल्दी, असावधानी, या न जाननेके कारण पुस्तकमें बहुतसी अशुद्धियां रह गई हैं। शुद्धाशुद्ध पत्रको बेकार और समयापेक्ष समझ, छोड़ दिया।

काशी-विद्यापीठ, काशी।
आश्विन कृष्ण १४, १९८८

राहुल-सांकृत्यायन।

भूमिका ।
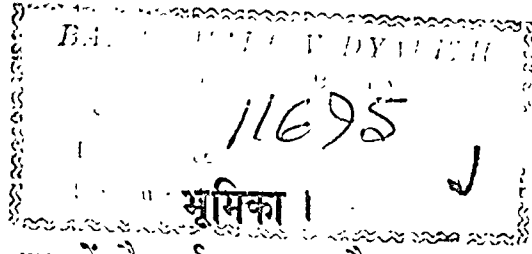
भारतमें बौद्ध-धर्मका उत्थान और पतन ।

बौद्ध-धर्म भारतमें उत्पन्न हुआ । इसके संस्थापक गौतम बुद्धने कोसी-कुरुक्षेत्र और हिमाचल-विन्ध्याचलके भीतरही विचरते हुए ४९ वर्ष तक प्रचार किया । इस धर्मके अनुयायी चिरकाल तक, महान् सम्राटोंसे लेकर साधारण जन तक, सारे भारतमें, बहुत अधिकतासे, फैले हुये थे । इसके भिक्षुओंके मठों और विहारोंसे देशका शायद ही कोई भाग रिक्त रहा हो । इसके विचारक और दार्शनिक हजारों वर्षोंतक अपने विचारोंसे भारतके विचारको प्रभावित करते रहे । इसके कला-विशारदोंने भारतीय कला पर अमिट छाप लगायी । इसके वास्तु-शास्त्री और प्रस्तर-शिल्पी हजारों वर्षोंतक सजीव पर्वतवृक्षोंको मोमकी तरह काटकर, अजंता, एलौरा, कार्ले, नासिक जैसे गुहा-विहारोंको बनाते रहे । इसके गंभीर मंतव्योंको अपनानेके लिये यवन और चीन जैसी समुन्नत जातियाँ लालायित रहती रहीं । इसके दार्शनिक और सदाचारके नियमोंको आरम्भसे आजतक सभी विद्वान्, बड़े आदरकी दृष्टिसे देखते रहे । इसके अनुयायियोंकी संख्याके बराबर आजभी किसी दूसरे धर्मकी संख्या नहीं है ।

ऐसा प्रतापी बौद्ध-धर्म अपनी मातृभूमि भारतसे कैसे लुप्त हो गया ? यह बड़ाही महत्त्वपूर्ण तथा आश्चर्यकर प्रश्न है । इसी प्रश्नपर मैं यहाँ संक्षिप्त रूपसे विचार करूंगा । भारतसे बौद्ध धर्मका लोप तेरहवीं, चौदहवीं शताब्दियोंमें हुआ । उस समयकी स्थिति जाननेके लिये कुछ प्राचीन इतिहास जानना जरूरी है ।

गौतम बुद्धका निर्वाण विक्रम पूर्व ४२६ में हुआ था । उन्होंने अपने सारे उपदेश मौखिक किये थे ; तो भी उनके शिष्य उनके जीवन-कालमें ही उसे कंठस्थ कर लिया करते थे । यह उपदेश दो प्रकारके थे, एक साधारण, धर्म और दर्शनके विषयमें, और दूसरे भिक्षु-भिक्षुणियोंके नियम । पहलेको पालीमें "धम्म" (धर्म) कहा गया है, और दूसरेको "विनय" । बुद्धके निर्वाण (वै[illegible] उनके प्रधान शिष्योंने (आगे मतभेद न होजाय, इसलिये) उसी वर्षमें रा[illegible] [illegible]पर्णी गुहामें एकत्र हो, "धर्म" और [illegible] संगायन किया [illegible] [illegible]जाता है । इसमें मह[illegible] (संघ-स्थविर [illegible] विषयमें बुद्ध-[illegible] पालीमें 'शील [illegible] था तथा उनके [illegible] यवन-राजा [illegible] मथुराके क्ष[illegible] की राजध[illegible] सुसमृद्ध प्र[illegible] वादसे इ[illegible] नामसे प्र[illegible]

मुद्रक—श्रीरामेश्वर पाठक, तारायन्त्रालय, काशी ।
प्रकाशक—शिवप्रसाद गुप्त, सेवा-उपवन, काशी ।

सजिल्द ६)

अजिल्द ५)।

गयी। आर्य-स्थविरवादका आरम्भसे ही यहाँ प्रचार रहा। बीचमें, बारहवीं-तेरहवीं शताब्दियोंमें, जब बर्मा और श्यामका महायान बौद्ध-धर्म, विकृत तथा जर्जरित हो, लुप्त होने लगा; तब आर्यस्थविरवाद वहाँ भी सर्व-व्याप्त होगया। लंकामें ही ईसाकी प्रथम शताब्दीमें, सूत्र, विनय और अभिधर्म—तीनों पिटक (=त्रिपिटक), जो अबतक कंठस्थ चले आते थे—लेखबद्ध किये गये; और, यही आजकलका पाली त्रिपिटक है।

मौर्य-सम्राट् बौद्ध-धर्मपर अधिक अनुरक्त थे; इसलिये उनके समयमें, अनेक पवित्र स्थानोंमें राजाओं और धनिकोंने बड़े-बड़े स्तूप और संघाराम (मठ) बनवाये, जिनमें भिक्षु सुख-पूर्वक रहकर धर्म-प्रचार किया करते थे। ईसाके पूर्व, दूसरी शताब्दीमें, मौर्योंके सेनापति पुष्यमित्रने अन्तिम मौर्य-सम्राट्को मारकर अपने शुङ्गवंशका राज्य स्थापित किया। यह नया राजवंश राजनीतिक उपयोगिताके विचारसे ब्राह्मण-धर्मका पक्का अनुयायी और अब्राह्मणधर्म-द्वेषी हुआ। शताब्दियोंसे परित्यक्त पशु-बलिमय अश्वमेध आदि यज्ञ, महाभाष्यकार पतञ्जलिके पौरोहित्यमें फिरसे होने लगे। ब्राह्मणोंके माहात्म्यसे भरे मनुस्मृति जैसे ग्रन्थोंकी रचनाका सूत्रपात हुआ। इसी समय महाभारतका प्रथम संस्करण हुआ तथा मृत संस्कृत-भाषाके पुनरुद्धारकी चेष्टा की गयी। परिस्थितिके अनुकूल न होनेसे धीरे-धीरे बौद्ध लोग बौद्ध-धर्मके केन्द्रोंको मगध और कोसलसे दूसरे देशोंमें हटाने पर मजबूर होने लगे। आर्य-स्थविर-वाद मगधसे हटकर विदिशाके समीप चैत्य-पर्वत (वर्तमान 'सांची') पर चला गया; सर्वास्तिवाद मथुराके उरुमुण्ड-पर्वत (=गोवर्धन) चला गया। इसी तरह और निकायोंने भी अपने-अपने केन्द्रोंको अन्यत्र हटा दिया।

आर्य-स्थविरवाद सबसे पुराना निकाय है, और इसने सभी पुरानी बातोंको बड़ी कड़ाईसे सुरक्षित रखा। दूसरे निकायोंने देश, काल और व्यक्ति आदिके अनुसार अनेक परिवर्तन किये। अबतक त्रिपिटक मगधकी भाषामें ही था, जो कि, पूर्वी युक्तप्रान्त तथा विहारकी साधारण भाषा थी। सर्वास्तिवादियोंने मथुरा पहुँचकर अपने त्रिपिटकको ब्राह्मणोंकी प्रशंसित संस्कृत-भाषामें कर दिया। इसी तरह महासांघिक, लोकोत्तरवाद आदि कितने ही और निकायोंने भी अपने पिटकोंको संस्कृतमें कर दिया। यह संस्कृत पाणिनीय संस्कृत न थी; आज कल इसे गाथासंस्कृत कहते हैं।

मौर्य-साम्राज्यके विनष्ट हो जानेपर पश्चिमी भारतपर यवन राजा 'मिनान्दर' ने कब्जा कर लिया। मिनान्दरने अपनी राजधानी शाकला (वर्तमान 'स्यालकोट') बनायी। उसके तथा उसके वंशजोंके क्षत्रप (=वायसराय) मथुरा और उज्जैनमें रहकर शासन करने लगे। यवन-राजा अधिकांशमें बौद्ध थे; इसलिये उनके उज्जैनके क्षत्रप सांचीके स्थविरवादियोंपर तथा मथुराके क्षत्रप सर्वास्तिवादियोंपर बहुत स्नेह और श्रद्धा रखते थे। मथुरा उस समय एक क्षत्रप की राजधानी ही न थी, बल्कि पूर्व और दक्षिणसे तक्षशिलाके वणिक्-पथपर व्यापारका एक सुसमृद्ध प्रधान केन्द्र थी; इसलिये सर्वास्तिवादके प्रचारमें बड़ी सहायक हुई। मगधके सर्वास्तिवादसे इसमें कुछ अन्तर हो चुका था; इसीलिये यहांका सर्वास्तिवाद आर्य-सर्वास्तिवादके नामसे प्रसिद्ध हुआ।

आरूढ़, बुद्धत्वके अधिकारी, प्राणीको बोधिसत्त्व कहा जाता है । महायानके सूत्रोंमें हर एकको बोधिसत्त्वके मार्गपरही चलने केलिये जोर दिया गया है; वह यही कि हर एक अपनी मुक्तिकी पर्वाह छोड़कर संसारके सभी प्राणियोंकी मुक्तिके लिये प्रयत्न करे । बोधिसत्त्वोंकी महत्ता दरसानेके लिये जहां अवलोकितेश्वर, मंजुश्री, आकाशगर्भ आदि सैकड़ों बोधिसत्त्वोंकी कल्पना की गयी, वहां सारिपुत्र, मोग्गलान आदि अर्हत् [=मुक्त] शिष्योंको अ-मुक्त और बोधिसत्त्व बना दिया गया । सारांश यह कि, जिस प्राचीन सूत्र आदि परम्पराको अठारहो निकाय मानते आ रहे थे, महायानियोंने उन सभीको बोधिसत्त्व और बुद्ध बननेकी धुनमें एकदम उलट-पलट करनेमें कोई कसर न रखी ।

कनिष्कके समयमें पहले-पहल बुद्धकी प्रतिमा (मूर्ति) बनायी गयी । महायानके प्रचारके साथ जहाँ बुद्ध-प्रतिमाओंकी पूजा-अर्चा बड़े ठाट-बाटसे होने लगी, वहाँ सैकड़ों बोधिसत्त्वोंकी भी प्रतिमाएँ बनने लगीं । इन बोधि-सत्त्वोंको उन्होंने ब्राह्मणोंके देवी-देवताओं का काम सौंपा । उन्होंने तारा, प्रज्ञापारमिता, विजया आदि अनेक देवियोंकी भी कल्पना की । जगह-जगह इन देवियां और बोधिसत्त्वोंके लिये बड़े-बड़े विशाल मंदिर बन गये । उनके बहुतसे स्तोत्र आदि भी बनने लगे । इस बादमें इन लोगोंने यह ख्याल न किया कि, हमारे इस कामसे किसी प्राचीन परंपरा या किसी भिक्षु-नियमका उल्लङ्घन होता है । जब किसीने दलील पेश की, तो कह दिया—विनय-नियम तुच्छ स्वार्थके पीछे मरनेवाले हीनयानियोंके लिये हैं; सारी दुनियाकी मुक्तिके लिये मरने-जीनेवाले बोधिसत्त्वको इसकी वैसी पाबन्दी नहीं हो सकती । उन्होंने हीनयानके सूत्रोंसे अधिक माहात्म्यवाले अपने सूत्र बनाये । सैकड़ों पृष्ठोंके सूत्रोंका पाठ जल्दी नहीं हो सकता था; इसलिये उन्होंने हर एक सूत्रकी दो-तीन पंक्तियोंमें छोटी-छोटी धारणी, वैसे ही बनायी, जैसे भागवतका चतुःश्लोकी भागवत; गीताकी सप्तश्लोकी गीता । इन्हीं धारणियोंको और संक्षिप्त करके मन्त्रोंकी सृष्टि हुई । इस प्रकार धारणियों, बोधिसत्त्वों, उनकी अनेक दिव्य-शक्तियों, तथा प्राचीन परंपरा और पिटककी—निःसंकोच की जाती—उलट पलटसे उत्साहित हो, गुप्त-साम्राज्यके आरंभिक कालसे हर्षवर्द्धनके समयतक मंजुश्री मूलकल्प, गुह्यसमाज और चक्रसंवर आदि कितने ही तंत्रोंकी सृष्टिकी गई । पुराने निकायोंने अपेक्षा-कृत सरलतासे अपनी मुक्तिके लिये अर्हद्‌यान और प्रत्येक-बुद्धयानका रास्ता खुला रखा था । महायानने सबके लिये सुदुश्चर बुद्ध-यानका ही एकमात्र रास्ता रखा । आगे चलकर इस कठिनाईको दूर करनेके लिये ही उन्होंने धारणियों, बोधिसत्त्वोंकी पूजाओंका आविष्कार किया । इस प्रकार जब आसान दिशाओंका मार्ग खुलने लगा, तब उसके आविष्कारकोंकी भी संख्या बढ़ने लगी । मंजुश्री-मूलकल्पने तंत्रोंके लिये रास्ता खोल दिया । गुह्य-समाजने अपने भैरवीचक्रके शराब, स्त्रीसंभोग तथा मंत्रोच्चारणसे उसे और भी आसान कर दिया । यह मत महायानके भीतर ही से उत्पन्न हुआ; किन्तु पहले इसका प्रचार भीतर-ही-भीतर होता रहा । भैरवी-चक्रकी सभी कार्रवाइयाँ गुप्त रखी जाती थीं । प्रवेशाकांक्षीको कितनेही समयतक उमेदवारी करनी पड़ती थी । पीछे अनेक अभिषेकों और परीक्षाओंके बाद वह समाजमें मिलाया जाता था । यह मंत्रयान (=तंत्रयान, वज्रयान) संप्रदाय इस प्रकार सातवीं शताब्दी तक गुप्त

घोर गृह-कलह पैदा कर चुके थे । जिस समय शताब्दियोंसे श्रद्धालु राजाओं और धनिकोंने चढ़ावा चढ़ाकर, मठों और मंदिरोंमें अपार धन-राशि जमा करदी थी, उसी समय पश्चिमसे तुर्कोंने हमला किया । तुर्कोंने मंदिरोंकी अपार-सम्पत्तिको ही नहीं लूटा, बल्कि अगणित दिव्य शक्तियोंके मालिक देव-मूर्तियोंको भी चकनाचूर कर दिया । तांत्रिक लोग मंत्र, बलि और पुरश्चरणका प्रयोग करते ही रह गये; किन्तु उससे तुर्कोंका कुछ नहीं बिगड़ा । तेरहवीं शताब्दीके आरम्भ होते-होते तुर्कोंने समस्त उत्तरी भारतको अपने हाथमें कर लिया । जिस विहारके पालवंशी राजाने राज्य-रक्षाके लिये उड़न्तपुरीका तांत्रिक विहार बनाया था, उसे मुहम्मद-बिन्-बख्तियारने सिर्फ दो सौ घुड़सवारोंसे जीत लिया । नालन्दाकी अद्भुत शक्तिवाली तारा टुकड़े-टुकड़े करके फेंक दी गयी । नालंदा और विक्रमशिलाके सैकड़ों तांत्रिक भिक्षु तलवारके घाट उतार दिये गये । यद्यपि इस युद्धमें अपार जन-धनकी हानि हुई, अपार ग्रन्थ-राशि भस्मसात् हुई, सैकड़ों कला-कौशलके उत्कृष्ट नमूने नष्ट कर दिये गये; तो भी इससे एक फायदा हुआ—वह यह कि, लोगोंका जादूका स्वप्न टूट गया ।

बहुत दिनोंसे यह बात चली आती है कि,—"शंकराचार्यके ही प्रतापसे बौद्ध भारतसे निकाले गये । शंकरने बौद्धोंको शास्त्रार्थसे ही नहीं परास्त किया, बल्कि उनकी आज्ञासे राजा सुधन्वा आदिने हजारों बौद्धोंको समुद्रमें डुबोकर और तलवारके घाट उतारकर उनका संहार किया ।" यह कथायें सिर्फ दन्तकथायें ही नहीं हैं, बल्कि इनका सम्बन्ध आनन्दगिरि और [1]माधवाचार्यकी "शंकर-दिग्विजय" पुस्तकोंसे है ; इसीलिये संस्कृत-विद्वान् तथा दूसरे शिक्षित जन भी इनपर विश्वास करते हैं । वह इन्हें ऐतिहासिक तथ्य समझते हैं । कुछ लोग, इससे शंकरपर धार्मिक-असहिष्णुताका कलंक लगता देखकर, इसे माननेसे आनाकानी करते हैं ; किन्तु, यदि यह सत्य है, तो उसका अपलाप न करना ही उचित है ।

शंकरके कालके विषयमें बड़ा विवाद है । कुछ लोग उन्हें विक्रमका समकालीन मानते हैं । Age of Shankar के कर्त्ता तथा पुराने ढंगके पण्डितोंका यही मत है । लेकिन इतिहासज्ञ इसे नहीं मानते । वह कहते हैं—चूंकि शंकरके शारीरक-भाष्यपर वाचस्पति मिश्रने "भामती" टीका लिखी है ; और वाचस्पति मिश्रका समय ईसाकी नवीं शताब्दी उनके अपने ग्रन्थसे ही निश्चित है ; इसलिये शंकरका समय नवीं शताब्दीसे पूर्व तो हो सकता है ; किन्तु शंकर कुमारिल-भट्टसे पूर्वके नहीं हो सकते हैं । कुमारिल बौद्ध नैयायिक धर्मकीर्तिके समकालीन थे, जो सातवीं शताब्दीमें हुए थे ; इसलिये शंकर सातवीं शताब्दीके पहलेके भी नहीं हो सकते । शंकर कुमारिलके समकालीन थे, और दोनोंने एक दूसरेका साक्षात्कार किया था, यह बात हमें "दिग्विजय"से मालूम होती । इनमें अन्तिम बातमें, जहां तक उनके ग्रंथोंका सम्बन्ध है, कोई पुष्टि नहीं मिलती । ह्वेनसाङ् (सातवीं शताब्दी)के पूर्व, किसी ऐसे प्रबल बौद्ध-विरोधी शास्त्रार्थी और शास्त्रार्थोंका तो पता नहीं मिलता । यदि होता, तो

---

१. "आसेतोरातुषाराद्रेर्बौद्धानावृद्धबालकम् ।
न हंति यः स हन्तव्यो भृत्यानित्यन्वशान्नृपः ॥" माधवीय शं० दि० १:९३ ॥
"(कुमारिल)-भट्टपादानुसारि-राजेन सुधन्वना
धर्मद्विषो बौद्धा विनाशिताः ।" शं० दि० डिंडिमटीका १:९९ ॥

स्थापित होते देखते हैं। इसी समय भारतीय बौद्धोंको हम तिब्बतपर धर्मविजय करते भी देखते हैं। ११ वीं शताब्दीमें जब कि, उक्त दन्तकथाके अनुसार भारतमें कोई भी बौद्ध न रहना चाहिये, तिब्बतसे कितनेही बौद्ध भारतमें आते हैं; और वह सभी जगह बौद्ध गृहस्थों और भिक्षुओंको पाते हैं। इस पाल-कालके, बुद्ध, बोधिसत्व और तांत्रिक देवी-देवताओंकी हजारों खंडित मूर्तियां उत्तरीय-भारतके गांवोंतकमें पाई जाती हैं। मगध विशेषकर गया जिलेमें तो शायदही कोई गांव होगा, जिसमें इस कालकी मूर्तियां न मिलती हों (गया जिलेके जहानाबाद सब्-डिवीजनके कुछ गांवोंमें तो इन मूर्तियोंकी भरमार है। केस्पा, घेंजन आदि गांवोंमें तो अनेक बुद्ध, तारा, अवलोकितेश्वर आदिकी मूर्तियां उस समयके कुटिलाक्षरोंमें "ये धर्मा हेतुप्रभवाः..." श्लोकसे अङ्कित मिलती हैं)। यह बतला रही हैं कि, उस समय बौद्धोंको किसी शंकरने नेस्तनाबूद न कर पाया था। यही बात सारे उत्तर-भारतमें प्राप्त ताम्र-लेखों और शिला-लेखोंसे भी मालूम होती है। गौड़नृपति तो मुसलमानोंके बिहार-बङ्गाल विजय तक बौद्ध धर्म और कलाके महान् संरक्षक थे। अन्तिम काल तक उनके ताम्र-पत्र, बुद्ध भगवान्के प्रथम धर्मोपदेश-स्थान मृगदाव (सारनाथ)के सूचक दो मृगोंके बीच रखे चक्रसे सुशोभित होते थे। गौड़ देशके पश्चिममें कान्यकुब्जका राज्य था, जो कि, यमुनासे गण्डक तक फैला हुआ था। वहांके प्रजा-जन और नृपति-गणमें भी बौद्ध-धर्म खूब संमानित था। यह बात जयचन्दके दादा गोविन्दचन्द्रके जेतवन विहारको दिये पांच गांवोंके दान-पत्र तथा उनकी रानी कुमारदेवीके बनवाये सारनाथके महान् बौद्ध मन्दिरसे मालूम होती है। गोविन्दचन्द्रके पोते जयचन्दकी एक प्रमुख रानी बौद्धधर्मावलंबिनी थी, जिसके लिये लिखी गई प्रज्ञापारमिताकी पुस्तक अब भी नेपाल-दर्बार-पुस्तकालयमें मौजूद है। कन्नौजमें तो आज भी गहड़वारोंके समयकी कितनीही बौद्धमूर्तियां मिलती हैं, जो आज किसी देवी-देवताके रूपमें पूजी जाती हैं।

कालिञ्जरके राजाओंके समयकी बनी महोबा आदिसे प्राप्त सिंहनाद-अवलोकितेश्वर आदिकी सुन्दर बौद्ध मूर्तियां बतला रही हैं कि, तुर्कोंके आनेके समय तक बुन्देलखण्डमें बौद्धोंकी काफी संख्या थी। दक्षिण-भारतमें देवगिरि (दौलताबाद, निजाम)के पासके एलोराके भव्य गुहा-प्रासादोंमें भी कितनी ही बौद्ध गुहायें और मूर्तियां, मलिक-काफूरसे कुछ ही पहले तककी बनी हुई हैं। यही बात नासिकके पाण्डवलेनीकी कुछ गुहाओंके विषयमें भी है। क्या इससे नहीं सिद्ध होता कि, शंकर द्वारा बौद्ध धर्मका देश-निर्वासन कल्पना मात्र है। खुद शंकरकी जन्मभूमि केरलसे बौद्धोंका प्रसिद्ध तंत्र-ग्रन्थ "मंजुश्री-मूलकल्प" संस्कृतमें मिला है, जिसे वहीं त्रिवेन्द्रम्से स्व० महामहोपाध्याय गणपतिशास्त्रीने प्रकाशित कराया है। क्या इस ग्रंथकी प्राप्ति इस बातको नहीं बतलाती कि, सारे भारतसे बौद्धोंका निकालना तो अलग बात है, खुद केरलसे भी वह बहुत पीछे लुप्त हुए। ऐसी ही और भी बहुत-सी घटनाएँ और प्रमाण पेश किये जा सकते हैं, जिनसे इतिहासकी उक्त झूठी धारणा खण्डित हो सकती है।

लेकिन प्रश्न होता है कि, तुर्कोंने तो बौद्धों और ब्राह्मणों, दोनोंके ही मन्दिरोंको तोड़ा, पुरोहितोंको मारा; फिर क्या वजह है, जो ब्राह्मण भारतमें अब भी हैं, और बौद्ध न रहे? बात यह है कि, ब्राह्मणधर्ममें गृहस्थ भी धर्मके अगुआ हो सकते थे; बौद्धोंमें भिक्षुओंपर ही धर्मप्रचार और धार्मिक ग्रन्थोंकी रक्षाका भार था। भिक्षुलोग अपने कपड़ों और मठोंके

विषय-सूची ।

		खंड	परिच्छेद	पृष्ठ
१.	प्राक्-कथन			०।
२.	भूमिका			॥
३.	विषय-सूची			≡॥
४.	जन्म	१	१	१
५.	बाल्य	,,	,,	६
६.	यौवन	,,	,,	७
७.	गृह-त्याग	,,	,,	११
८.	संन्यास	,,	,,	१२
९.	आलारके पास	,,	३	१३
१०.	तप	,,	,,	१४
११.	बुद्धत्व-प्राप्ति	,,	,,	१६
१२.	बोधिवृक्षके नीचे ...	,,	४	१७
१३.	वाराणसीको	,,	,,	२०
१४.	प्रथमधर्मोपदेश	,,	५	२२
१५.	धम्म-चक्क-पवत्तन-सुत्त ...	,,	,,	२३
१६.	यशका संन्यास...	,,	,,	२५
१७.	चारिका-सुत्त ...	,,	६	२९
१८.	उपसंपदा-प्रकार ...	,,	,,	,,
१९.	भद्रवर्गीयोंका संन्यास ...	,,	,,	३०
२०.	काश्यप-बंधुओंका संन्यास ...	,,	,,	३३
२१.	आदित्त-परियाय-सुत्त ...	,,	७	३४
२२.	बिंबसारकी दीक्षा ...	,,	,,	३६
२३.	सारिपुत्त, मौद्गल्यायनका संन्यास	,,	८	३८
२४.	महाकाश्यप-संन्यास	,,	९	४१
२५.	कस्सप-सुत्त ...	,,	,,	४५
२६.	महाकात्यायनका संन्यास ...	,,	१०	४८
२७.	उपाध्याय, आचार्य, शिष्यके कर्तव्य	,,	११	५०
२८.	उपसम्पदा	,,	,,	५३
२९.	कपिलवस्तु-गमन ...	,,	१२	५४
३०.	नन्द और राहुलका संन्यास	,,	,,	५७

पृष्ठ			खंड	परिच्छेद	पृष्ठ
६१	६७.	आपणमें पंच-गोरस-विधाने ...	२	११	१५४
६३	६८.	पोतलिय-सुत्त	,,	१२	१५६
६५	६९.	जंबूद्वीप	,,	,,	,,
६८	७०.	सेल-सुत्त	,,	१३	१६२
७३	७१.	केणिय-जटिलका पान ...	,,	१४	१६७
७४	७२.	रोजमल्ल उपासक ...	,,	,,	,,
७५	७३.	कुसीनारासे आतुमा ...	,,	,,	१६८
७६	७४.	आतुमासे श्रावस्ती	,,	,,	१६९
७६	७५.	चूल हत्थिपदोपम-सुत्त ...	,,	१५	१७०
७८	७६.	महाहत्थिपदोपम-सुत्त ..	,,	१६	१७६
८०	७७.	अस्सलायण-सुत्त ...	,,	१७	१८०
८२	७८.	महाराहुलोवाद-सुत्त ...	२	१८	१८५
८६	७९.	अक्खण-सुत्त ...	,,	,,	१८७
९०	८०.	पोट्ठपाद-सुत्त ...	,,	१९	१८९
९१	८१.	तेविज्ज-सुत्त ...	३	१	२०३
९३	८२.	अंबट्ठ-सुत्त	,,	२	२१०
९७	८३.	चंकि-सुत्त	,,	३	२२२
९८	८४.	चूल-दुक्खक्खंध-सुत्त ...	,,	४	२२८
१०३	८५.	कुटदंत-सुत्त ...	,,	५	२३२
१०४	८६.	सोणदंड-सुत्त ...	,,	६	२४१
१०६	८७.	महालि-सुत्त	,,	,,	२४५
११०	८८.	तेविज्ज-वच्छगोत्त-सुत्त ...	,,	,,	२४८
१११	८९.	भरंडु-सुत्त	,,	७	२५०
११३	९०.	शाक्य-कोलिय-विवाद ...	,,	,,	२५१
११५	९१.	महानाम-सुत्त	,,	,,	२५२
११८	९२.	कीटागिरि-सुत्त ...	,,	,,	२५५
१२८	९३.	हत्थक-सुत्त	,,	८	२५९
१३७	९४.	संदक-सुत्त	,,	,,	२६०
,,	९५.	महासकुलुदायि-सुत्त ...	,,	,,	२६५
१४१	९६.	सिगालोवाद-सुत्त (दी.नि. ३:८)	,,	,,	२७४
१४४	९७.	चूल-सुकुलादायि-सुत्त	,,	९	२८०
१४५	९८.	दिट्ठिवज्ज-सुत्त ...	,,	१०	२८५
१४६	९९.	चूल-अस्सपुर-सुत्त ...	,,	,,	२८६
१४८	१००.	कजंगला-सुत्त ...	,,	,,	२८९
१५१	१०१.	इन्द्रिय-भावना-सुत्त ...	,,	११	२९१
१५२	१०२.	संवहुल-सुत्त	,,	,,	२९३

पृष्ठ				खंड	परिच्छेद	पृष्ठ
,,	१३९.	पुराण-सुत्त ...	...	,,	,,	४०२
२९४	१४०.	मखादेव-सुत्त	...	,,	११	४०४
२९७	१४१.	सारिपुत्त-सुत्त	...	,,	,,	४०५
३०८	१४२.	थपति-सुत्त...	...	,,	,,	४०६
३१२	१४३.	(विसाखा)-सुत्त	....	,,	,,	४०८
,,	१४४.	पधानीय-सुत्त	....	,,	,,	४०९
३१७	१४५.	जरा-सुत्त ...	...	,,	,,	४१०
३१९	१४६.	बोधि-राजकुमार-सुत्त ...		,,	१२	४१२
३२५	१४७.	कण्णत्थलक-सुत्त	...	,,	१३	४२३
,,	१४८.	संघभेदक-खंधक	...	,,	,,	४२७
३३३	१४९.	(देवदत्त)-सुत्त	...	,,	,,	४२८
३३५	१५०.	सकलिक-सुत्त	...	,,	,,	४३१
३३६	१५१.	देवदत्त-विद्रोह....	...	,,	,,	,,
३३८	१५२.	विसाखा-सुत्त	....	,,	,,	४३४
,,	१५३.	जटिल-सुत्त....	....	,,	,,	४३५
३४१	१५४.	संगाम-सुत्त	...	५	१	४३९
३४७	१५५.	कोसल-सुत्त	...	,,	,,	४४०
३४९	१५६.	वाहीतिक-सुत्त	...	,,	,,	४४१
३५८	१५७.	चंकम-सुत्त ..	...	,,	,,	४४४
३५२	१५८	उपालि-सुत्त	...	,,	२	,,
३६१	१५९.	अभयराजकुमार-सुत्त ...		,,	३	४५५
३६३	१६०.	सामञ्ञफल-सुत्त	...	,,	४	४५९
३६४.	१६१.	एतदग्गवग्ग	....	,,	५	४६९
३६७	१६२.	धम्मचेतिय-सुत्त	...	,,	६	४७३
३७३	१६३.	सामगाम-सुत्त	...	,,	७	४८१
३८५	१६४.	संगीतिपरियाय-सुत्त	...	,,	८	४८७
,,	१६५.	चुन्द-सुत्त ...	...	,,	९	५१३
३८८	१६६.	सारिपुत्र-परिनिर्वाण	...	,,	,,	,, टि.
३८९	१६७.	मौद्गल्यायन-परिनिर्वाण	...	,,	,,	५१८
३९१	१६८.	उक्काचेल-सुत्त	....	,,	,,	५१९
,,	१६९.	महापरिनिब्बाण-सुत्त		,,	१०	५२०
३९३	१७०.	प्रथम-संगीति	...	,,	११	५४८
३९४	१७१.	द्वितीय-संगीति	...	,,	१२	५५६
३९६	१७२.	अशोक राजा ...	...	,,	१३	५६७
३९७	१७३.	तृतीय-संगीति	....	,,	,,	५७५
३९८	१७४.	स्थविर-वाद-परंपरा	....	,,	१४	५७६

अ प रा न्त
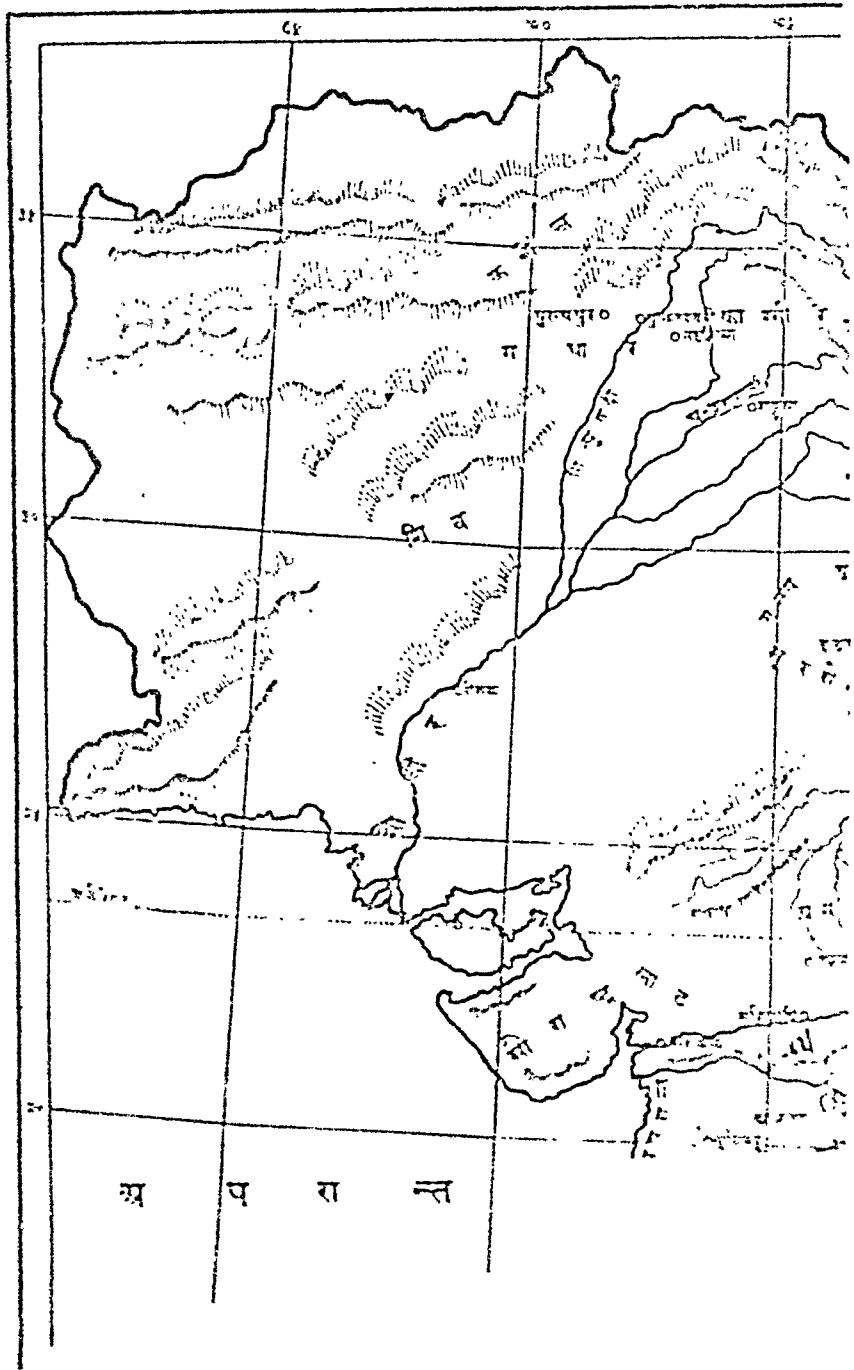
प्रथम-खंड ।

आयुर्वर्ष १-४२ ।

(त्रि. पू. ५०६-४६३) ।

शाल-वन था। उस समय (वह वन) मूलसे लेकर शिखरकी शाखाओं तक पाँतीसे फूला हुआ था। फूलों और डालियोंपर पांच रङ्गोंके भ्रमर-गण, और नाना प्रकारके पक्षि-संघ मधुर-स्वरसे कूजन करते विचर रहे थे। सारा लुम्बिनी-वन चित्र (=विचित्र) लता वन—जैसा, प्रतापी राजाके सुसज्जित बाजार—जैसा (जान पड़ता) था। उसे देख, देवीके मनमें शाल-वनमें सैर करनेकी इच्छा हुई। अफ़सर लोग देवीको ले, शाल-वनमें प्रविष्ट हुये। वह सुन्दर शालके नीचे जा, उस शाल (=साखू)की डाली पकड़ना चाहती थी। शाल-शाखा अच्छी तरह सिद्ध किये बेतकी छड़ीके नोककी भाँति झुककर देवीके हाथके पास आ गई। उसने हाथ फैला शाखा पकड़ ली। उस समय उसे प्रसव-वेदना आरम्भ हुई। लोग (इर्द गिर्द) कनात घेर (स्वयं) अलग हो गये। शाल-शाखा पकड़े खड़ेही खड़े, उसे गर्भ-उत्थान हो गया। उस समय चारों शुद्धचित्त महाब्रह्मा सोनेका जाल (हाथमें) लिये हुये पहुँचे; और जालमें बोधिसत्त्वको लेकर माताके सन्मुख रखकर बोले—'देवी! सन्तुष्ट होओ, तुम्हें महाप्रतापी पुत्र उत्पन्न हुआ है'।

जिस प्रकार दूसरे प्राणी माताकी कोखसे, गन्दे, मल-विलिप्त निकलते हैं, वैसे बोधिसत्त्व नहीं निकलते। बोधिसत्त्व तो धर्मासन (=व्यास-गद्दी)से उतरते धर्मकथिक (=धर्मोपदेशक)के समान, सीढ़ीसे उतरते पुरुषके समान, दोनों हाथ और दोनों पैर पसारे खड़े हुये (मनुष्य)के समान माताकी कोखके मलसे बिलकुल अलिप्त, काशी-देशके शुद्ध, निर्मल वस्त्रमें रक्खे मणि-रत्नके समान, चमकते हुये, माताकी कोखसे निकलते हैं।

तब चारो महाराजाओंने उन्हें सुवर्णजालमें लिये खड़े ब्रह्माओंके हाथसे लेकर,…कोमल मृगचर्म…में ग्रहण किया। उनके हाथसे मनुष्योंने दुकूलके करण्डमें ग्रहण किया। मनुष्योंके हाथसे छूटकर (बोधिसत्त्वने) पृथिवी पर खड़े हो, पूर्व दिशा की ओर देखा। अनेक सहस्र चक्रवाल एक आँगन (से) हो गये। वहाँ देवता और मनुष्य गंध माला आदिसे पूजा करते हुए बोले—"महापुरुष, यहाँ आप जैसा कोई नहीं है, बड़ा तो कहाँसे होगा"। बोधिसत्त्वने चारों दिशायें चारों अनु (=कोण)-दिशायें, नीचे-ऊपर दसों ही दिशाओंका अवलोकन कर, अपने जैसा (किसीको) न देख; उत्तर दिशा (की ओर)…सात पग गमन किया। (उस समय) महाब्रह्माने श्वेतच्छत्र धारण किया; सुयामोंने ताल-व्यजन (=पंखा), और अन्य देवताओंने राजाओंके अन्य [1]ककुध-भाण्ड हाथमें लिये। सातवें पगपर पहुँच—'मैं संसारमें सर्वश्रेष्ठ हूँ' (पुरुष-) पुंगवोंकी इस प्रथम वाणीका उच्चारण करते हुये सिंहनाद किया।

जिस समय बोधिसत्त्व लुम्बिनी वनमें उत्पन्न हुये, उसी समय राहुल-माता, छन्न (=छन्दक)-अमात्य (=अफसर), काल-उदायी अमात्य, [2]आजानीय गजराज, कन्थक अश्वराज, [3] महाबोधि-वृक्ष, और खजाने-भरे चार घड़े उत्पन्न हुये। उनमें (क्रमसे) एक गव्यूति (=$\frac{1}{4}$ योजन) पर, एक आधे योजनपर, एक तीन गव्यूतिपर और एक

---

१. खड्ग, छत्र, पगड़ी, पादुका और व्यजन (=पंखा)। २. उत्तम जातिका। ३. बोध-गया, जि० गया (बिहार) का पीपल-वृक्ष।

मेरी यह प्रव्रज्या है', यह (कहते) बोधिसत्त्वकी ओर अंजली जोड़, पांचों अँगोंसे वन्दना कर, पात्रको झोलीमें रख, और उसे कंधेपर लटका, हिमालयमें प्रवेश कर, श्रमण-धर्म (का पालन) करने लगा। फिर तथागतके परम-बोधि प्राप्त कर लेनेपर पास आ, उनसे 'नाळक-ज्ञान' को सुन कर, फिर हिमालयमें प्रविष्ट हो, वहाँ अर्हत् पदको प्राप्त हुआ।

बोधिसत्त्वको पांचवें दिन शिरसे नहला, नामकरण करनेकेलिये, राजभवनको चारों प्रकारके गंधोंसे लिपवा कर, खीलों सहित चार प्रकारके पुष्पोंको बिखेर, निर्जल खीर पकवा, तीनों वेदके पारंगत एक-सौ-आठ ब्राह्मणोंको निमंत्रित कर, राजभवनमें बैठा, सु-भोजन करा, महान् सत्कार कर, "बोधिसत्व (का) भविष्य क्या है," लक्षण पुछवाया। उनमें लक्षण-जाननेवाले (=दैवज्ञ) ब्राह्मण आठही थे—

राम धजा मंत्री लखन, कोंडनि भोज सुयाम।
द्विज सुदत्त षट्-अंग-युत, आठहुँ मंत्र बखान॥

गर्भधारणके दिन इन्होंने ही सगुन विचारा था। उनमेंसे सातने दो अंगुलियां उठा, दो प्रकारका भविष्य कहा—"ऐसे लक्षणोंवाला यदि गृहस्थ रहे, तो चक्रवर्ती राजा होता है; और प्रव्रजित होने पर बुद्ध।' उनमें सबसे कम-उमर कौण्डिन्य (नामक) तरुण ब्राह्मणने बोधिसत्त्वके सुन्दर लक्षणोंको देखकर, एक अँगुली उठा कर कहा—"इसके घरमें रहनेका कोई कारण नहीं है, अवश्यही यह विवृत-कपाट बुद्ध होगा'।

वह सातों ब्राह्मण आयु पूर्ण होने पर, अपने कर्मानुसार (परलोक) सिधारे; अकेले कौण्डिन्य ही जीवित रहा। वह महासत्त्व (बोधिसत्त्व) की ओर ध्यान रख गृह त्याग, क्रमशः उरुवेल जा, 'यह भूमि-भाग बड़ा रमणीय है, योगार्थी कुल-पुत्रको योगकेलिये यह उपयुक्त स्थान है' (विचार) वहीं रहने लगा। (फिर) "महापुरुष प्रव्रजित हो गये"—सुन, उन (सात) ब्राह्मणोंके लड़कोंके पास जाकर कहा—'सिद्धार्थ-कुमार प्रव्रजित होगये, वह निःसंशय बुद्ध होंगे। यदि तुम्हारे पिता जीवित होते, तो वह आज घर छोड़ प्रव्रजितहुये होते। यदि तुम चाहते हो, तो आओ हम उस पुरुषके पीछे प्रव्रजित हों'। सब (लड़के) एकराय न हो सके। तीनने प्रव्रज्या न ग्रहण की। कौण्डिन्य ब्राह्मणको मुखिया बना शेष चार जनोंने प्रव्रज्या ग्रहण की। वह पांचो जने (आगे चलकर) **पंचवर्गीय स्थविरोंके नामसे प्रसिद्ध हुये।...**

राजाने बोधिसत्त्वकेलिये उत्तम रूपवाली सब दोषोंसे रहित धाइयां नियुक्त कीं। बोधिसत्त्व अनंत परिवार, तथा महती शोभा और श्रीके साथ बढ़ने लगे। एक दिन राजाके यहाँ (खेत) बोनेका उत्सव था। उस (उत्सवके) दिन लोग सारे नगरको देवताओंके विमानकी भांति अलंकृत करते थे। सभी दास (=गुलाम), कर्म-कर आदि नये वस्त्र पहिन, गंध-माला आदिसे विभूषित हो, राजमहलमें इकट्ठे होते थे। राजाकी खेतीमें एक हजार हल चलते थे। उस दिन बैलोंकी रूपहली रस्सीकी जोतके साथ एक-कम-आठसौ हल थे। राजाका हल रत्न-सुवर्ण-जड़ित था। बैलोंकी सींगे, और कोड़े भी सुवर्ण-खचित हुए थे। राजा बड़े दलबलके साथ पुत्रको भी ले वहाँ पहुँचा। खेतोंके पासही बहुत पत्तों तथा

यौवन । संन्यास । (वि. पू.–४७४)

[1]क्रमशः बोधिसत्त्व सोहल-वर्षके हुये। राजाने बोधिसत्त्वको तीनों ऋतुओंके लिये तीन महल बनवा दिये। उनमें एक नौ तल, दूसरा सात तल, तीसरा पांच तलका था। (वहां) ४४ हजार नाटक-करने-वाली स्त्रियोंको नियुक्त किया। बोधिसत्त्व अप्सराओंके समुदायसे घिरे देवताओंकी भांति, अलंकृत नटियोंसे परिवृत, स्त्रियों-द्वारा बजाये-गये वाद्योंसे सेवित, महा-सम्पत्तिको उपभोग करते हुये, ऋतुओंके अनुकूल प्रासादों में विहार करते थे। राहुल-माता देवी इनकी अग्रमहिषी (=पटरानी) थी।

इस प्रकार महा-सम्पत्ति उपभोग करते हुये (बोधिसत्त्वके बारेमें) जाति-बिरादरी में चर्चा छिड़ी—सिद्धार्थ भोगोंमें ही लिप्त हो रहे हैं, किसी कलाको नहीं सीख रहे हैं, युद्ध आने पर क्या करेंगे ? राजाने बोधिसत्त्वको बुलाकर कहा—"तात, तेरी जाति वाले कहते हैं, कि सिद्धार्थ किसी शिल्प कलाको न सीखकर सिर्फ भोगोंमें ही लिप्त हो रहे हैं। तुम इस विषय में क्या उचित समझते हो ?"

"देव ! मुझे शिल्प सीखनेको नहीं है। नगरमें मेरा शिल्प देखनेकेलिये ढँढोरा पिटवा दें, कि आजसे सातवें दिन जातिवालोंको (मैं अपना) शिल्प (कर्त्तब) दिखलाऊँगा।"

राजाने वैसाही किया। बोधिसत्त्वने अ-क्षण वेध, बाल-वेध जानने-वाले धनुर्धारियों को एकत्रित कर, लोगोंके मध्यमें अन्य धनुर्धारियोंमें (भी) विशेष बारह प्रकारके शिल्प (=कला) जाति-बिरादरी वालोंको दिखलाये।……। तब उनके जाति वाले सन्तुष्ट हुये।

एक दिन बोधिसत्त्वने बगीचा देखनेकी इच्छासे सारथीको रथ जोतनेको कहा। उसने 'अच्छा' कह महार्घ उत्तम रथको सब अलङ्कारोंसे अलंकृत कर, श्वेत-कमलपत्र-सदृश चार मङ्गल सिन्धु-देशीय (घोड़ों)को जोत, बोधिसत्त्वको सूचना दी। बोधिसत्त्व देव-विमान-सदृश रथ पर चढ़कर बगीचेकी ओर चले। देवताओंने (सोचा), सिद्धार्थकुमारके बुद्धत्व प्राप्तिका समय समीप है, इसे पूर्व-शकुन दिखलाने चाहियें; और एक देव-पुत्रको जरासे जर्जरित, टूटे-दांत, पके-केश, टेढ़े-झुके-हुए-शरीर, हाथमें लकड़ी लिये, कांपते हुये दिखलाया। उसे सारथी और बोधिसत्त्व ही देखते थे। तब बोधिसत्त्वने सारथीसे पूछा—'सौम्य, यह कौन पुरुष है, इसके केश भी औरोंके समान नहीं हैं ;'…(और) सारथीका उत्तर पा—'अहो ! धिक्कार है जन्मको, जहां जन्म-लेने-वालेको (ऐसा) बुढ़ापा" हो इत्यादि कह, वहांसे लौट महलमें चले गये। राजाने जल्दी लौट आनेका कारण पूछा। 'बूढ़े आदमीका देखना' सुन… (राजाने) "मेरा सर्वनाश मत करो, जल्दी ही पुत्र केलिये नाटक तैयार करो। भोग भोगते हुए गृह-त्याग याद न आयेगा"; यह कह (और) बढ़ाकर चारों दिशाओंमें आधे योजनतक पहरा रख दिया।

---

१ जातकट्ट कथा (निदान कथा)।

हुआ"। राजाने 'पुत्रने क्या कहा' पूछ..., कहा—"अबसे मेरे पोतेका नाम 'राहुल-कुमार' हो"।

बोधिसत्त्व श्रेष्ठ-रथपर आरूढ हो, बड़े भारी यश, अति मनोरम शोभा तथा सौभाग्यके साथ नगरमें प्रविष्ट हुये। उस समय कोठेपर बैठी, कृशा गौतमी नामक क्षत्रिय-कन्याने नगरकी परिक्रमा करते हुये बोधि-सत्त्वकी रूप-शोभाको देखकर, बहुत ही प्रसन्नता और हर्षसे कहा—

परम शांत माता सोई, परम शांत पितु सोय।
परम शांत नारी सोई, जासु पती अस होय॥

बोधिसत्त्वने यह सुना तो सोचा—"यह कह रही है, कि इस प्रकारके स्वरूपको देखते माताका हृदय परम-शांत होता है, पिताका हृदय परम-शांत होता है, पत्नीका हृदय परम शांत होता है। किसके शांत होनेपर हृदय परम-शांत होता है"? तब (रागादि) मलोंसे विरक्त-हृदय बोधिसत्त्वको ख्याल आया। राग-रूपी अग्निके शांत होनेपर द्वेष-अग्नि शांत हो जाती है। द्वेष-अग्निके शांत होनेपर मोह-अग्नि शांत होती है। मोह-अग्निके शांत होनेपर अभिमान आदि उपशांत होते हैं। अभिमान आदि सभी मलोंके उपशमन होनेपर, (मनुष्य) परम शांत होता है। यह मुझे प्रिय-वचन सुना रही है। मैं निर्वाणको ढूँढ़ता फिर रहा हूँ। आज ही मुझे गृह-वास छोड़, निकलकर प्रव्रजित हो, निर्वाणकी खोजमें लगना चाहिये। "यह इसकी गुरु-दक्षिणा होगी"—यह कह एक लाखका मोतीका हार अपने गलेसे उतार कृशागौतमीके पास भेज दिया। वह बड़ी प्रसन्न हुई, कि सिद्धार्थ-कुमारने मेरे प्रेममें फँस कर भेंट भेजी है।

बोधिसत्त्व बड़े ही श्री-सौभाग्यके साथ अपने महलमें जा, सुन्दर पलँगपर लेट रहे। उसी समय सभी अलंकारोंसे विभूषित, नृत्य गीत आदिमें दक्ष, देवकन्या समान अतीव सुन्दर स्त्रियोंने अनेक प्रकारके वाद्योंको लेकर, (कुमारको) खुश करनेके लिये नृत्य, गीत और वाद्य आरम्भ किया। बोधिसत्त्व (रागादि) मलोंसे विरक्त चित्त होनेके कारण, नृत्य आदिमें न रत हो, थोड़ी ही देरमें सो गये। उन स्त्रियोंने भी सोचा—'जिसकेलिये हम नाच आदि करती हैं, वह ही सो गया, अब (हम) काहेको तकलीफ करें" (इसलिये वह भी) बाजोंको (साथ) लिये ही सो गईं। उस समय सुगन्धित-तेल-पूर्ण प्रदीप जल रहा था। बोधिसत्त्वने जागकर पलँगपर आसन मार वाद्योंको लिये सोई, उन स्त्रियोंको देखा। (उनमें) किन्हींके मुँहसे कफ निकल रहा था, किन्हींका शरीर लारसे भींग गया था, कोई दांत कटकटा रही थी, कोई बर्रा रही थी, किन्हींके मुँह खुले हुये थे, किन्हींके वस्त्र हट होनेसे अति घृणोत्पादक गुह्य-स्थान दिखलाई दे रहे थे। उन (स्त्रियों) के इन विकारोंको देखकर (वे) और भी दृढ़ हो कामनाओंसे विरक्त हुये। उन्हें वह सु-अलंकृत इन्द्र-भवन-सदृश महाभवन सड़ती हुई नाना प्रकारकी लाशोंसे पूर्ण कच्चे श्मशानकी भांति मालूम होता था। तीनों ही संसार जलते हुये घरकी तरह दिखाई पड़ रहे थे। 'हा! कष्ट!! हा!! शोक!!!' यह आह निकल रही थी। (उस समय) प्रव्रज्याकेलिये उनका चित्त अत्यन्त आतुर हो गया। 'आज ही मुझे महाभिनिष्क्रमण (=गृह-त्याग) करना है' यह सोच पलँगसे उतर द्वारके पास जा, पूछा—'यहाँ कौन है?'।

छन्दकने भी सोचा—'यदि द्वार न खुला, तो मैं आर्यपुत्रको[1] कंधे पर बैठा कन्थकको दाहिने हाथसे बगलमें दबा प्राकार फाँद जाऊँगा ।' कन्थकने भी सोचा—'यदि द्वार नहीं खुला, तो मैं अपने स्वामीको पीठपर बैसेही बैठे, पूँछ पकड़कर लटकते छन्दकके साथही, प्राकारको लाँघकर पार करूँगा ।' यदि द्वार न खुलता, तो तीनोंमेंसे कोई एक ऊपर-सोचे अनुसार करता । लेकिन द्वारमें रहने वाले देवताने द्वार खोल दिया ।

उसी समय बोधिसत्त्वको (वापिस) लौटानेके विचारसे आकाशमें खड़े मारने कहा—" मार्ष[2] ! मत निकलो । आजसे सातवें दिन तुम्हारेलिये चक्र-रत्न[3] प्रादुर्भूत होगा । दो हजार छोटे द्वीपों सहित चारों महाद्वीपों पर राज्य करोगे । लौटो मार्ष !"

" तुम कौन हो ?"

" मैं वशवर्ती[4] हूं ।"

" मार ! मैं भी अपने चक्र-रत्नके प्रादुर्भावको जानता हूं । लेकिन मुझे राज्यसे कोई काम नहीं । मैं तो साहस्रिक लोक[5]धातुओंको उन्नादित कर बुद्ध बनूँगा ।"

" आजसे जब कभी कामनासंबन्धी वितर्क, द्रोहसंबन्धी वितर्क, या हिंसासंबन्धी वितर्क तुम्हारे चित्तमें पैदा होगा, उस समय मैं तुम्हें समझूँगा " यह कहकर मारने मौका ताकते, छाया की भाँति जरा भी अलग न होते हुये, पीछा करना शुरु किया ।

बोधिसत्त्वभी हाथमें आये चक्रवर्ती-राज्यको, थूक की भाँति फेंककर, कामनारहित (हो) बड़े सन्मान-पूर्वक नगरसे निकले; (लेकिन उस) आषाढ़ की पूर्णिमाको उत्तराषाढ़ नक्षत्रमें फिर नगर देखनेकी इच्छा हुई । चित्तमें ऐसा विचार उत्पन्न होतेही महापृथ्वी कुम्हारके चक्केकी भाँति कंपित हुई । (मानो यह कहते)—" महापुरुष ! तूने लौटकर देखनेका काम कभी नहीं किया है ।" बोधिसत्त्व नगरकी ओर मुँहकर नगरको देखते हुये, उस भूप्रदेशमें "कन्थक-निवर्तन-चैत्य" स्थानको दिखा, गंतव्यमार्गकी ओर कंथकका मुँह फेर...चल दिये । उस समय देवताओंने उनके सम्मुख साठहजार, पीछे साठ हजार, दाहिनी तरफ साठ हजार और बाईं तरफ भी साठ हजार मशाल धारण किये । दूसरे देवता, नाग, सुपर्ण (=गरुड़) आदि दिव्य गंध, माला, चूर्ण, धूपसे पूजा करते चल रहे थे । घने मेघोंकी वृष्टिके समय (बरसती) धाराओंकी भाँति, पारिजात-पुष्प, मन्दार-पुष्प, (की वृष्टिसे) आकाश आच्छादित हो गया । उस समय दिव्य संगीत हो रहे थे । चारों ओर आठ प्रकारके, साठ प्रकारके अडसठ-लाख बाजे बज रहे थे । समुद्रके उदरमें मेघ-गर्जन-कालकी भाँति, युगन्धरका[6] कुक्षिमें सागर-निर्घोषकालकी भाँति (शब्द) होरहा था । इस श्री और सौभाग्यके साथ जाते हुये बोधिसत्त्व एकही रातमें तीन राज्यों[7] को पार कर, तीस योजन पार अनोमा[8] नामक नदीके तट पर जा पहुँचे ।

---

१. चक्रवर्तीको पृथिवीजयके लिये दिव्य चक्र-आयुध उत्पन्न होता है । २. देवता अपने समान वालोंको मार्ष (=मारिस) कहकर पुकारते हैं । ३. चक्रवर्तीके दिग्विजयका आयुध । ४. देवताओंका एक समुदाय । ५. एक ब्रह्माण्डको एक लोक-धातु कहते हैं । ६. चंडौली (?) जि० गोरखपुर । ७. शाक्य, कोलिय और राम-ग्राम (?) ।८. ओमी नदी (?) जि० गोरखपुर ।

तप। बुद्धत्व-प्राप्ति। (वि॰ पू॰ ४७१)

बोधिसत्त्व भी प्रव्रजित हो उसी प्रदेशमें, अनूपिया नामक आमोंके बागमें, एक सप्ताह प्रव्रज्या-सुखमें बिता, एक ही दिनमें तीस योजन मार्ग पैदल चलकर, राजगृहमें प्रविष्ट हुये। वहां प्रविष्ट हो भिक्षाके लिये निकले। सारा नगर बोधिसत्त्वके रूपको देख धनपालसे प्रविष्ट राजगृहकी भांति, असुरेन्द्रसे प्रविष्ट देवनगरकी भांति, संक्षुब्ध हो गया। राजपुरुषोंने जाकर राजासे कहा—"देव! इस रूपका एक पुरुष नगरमें मधूकरी मांग रहा है; वह देव है या मनुष्य, नाग है या गरुड, कौन है हम नहीं जानते।" राजाने महलके ऊपर खड़े हो महापुरुषको देख आश्चर्यान्वित हो, (अपने) पुरुषोंको आज्ञा दी—'जाओ! देखो तो, यदि अ-मनुष्य होगा, तो नगरसे निकलकर अन्तर्ध्यान हो जायगा। यदि देवता होगा, तो आकाशसे चला जायगा, यदि नाग होगा तो पृथिवीमें डुबकी लगाकर चला जायगा। यदि मनुष्य होगा, तो मिली हुई भिक्षाको भोजन करेगा। महापुरुषने मिले हुये भोजनको संग्रहकर, 'इतना मेरे लिये पर्याप्त होगा', यह जान प्रवेशवाले नगरद्वारसे ही (बाहर निकल, [१]पाण्डव-पर्वतकी छायामें पूरब-मुँह बैठ, भोजन करना आरम्भ किया। उस समय उनके आंत उलटकर मुँहसे निकलते जैसे मालूम हुये। तब इस शरीरमें ऐसा भोजन आंखसे भी न देखा होनेसे, उस प्रतिकूल भोजनसे दुखित हुये अपने आपको स्वयं यों समझाया—

"सिद्धार्थ! तू, अन्न-पान-सुलभ कुलमें—तीन वर्षके (पुराने) सुगन्धित चावलका भोजन, नाना प्रकारके अत्युत्तम रसोंके साथ भोजन किये जानेवाले स्थानमें पैदा होकर भी, एक गुदरीधारी (भिक्षु) को देखकर (सोचता था)—कि मैं भी कब इसी तरह (भिक्षु) बनकर भिक्षा मांग भोजन करूँगा? क्या वह भी समय होगा?—और यही सोच घरसे निकला था। अब यह क्या कर रहा है।" इस प्रकार···अपनेको समझा विकार-रहित हो भोजन किया। राजपुरुषोंने उस समाचारको···जाकर राजासे कहा। राजाने दूतकी बात सुन तुरन्त नगरसे निकल, बोधिसत्त्वके पास जा, उनकी सरलचेष्टासे प्रसन्न हो बोधिसत्त्वको (अपने) सभी ऐश्वर्य अर्पण किये। बोधिसत्त्वने कहा—महाराज! मुझे न वस्तु-कामना है, न भोग-कामना। मैं महान् बुद्ध-ज्ञान (=अभिसंबोधी) के लिये निकला हूँ। राजाने, बहुत तरहसे प्रार्थना करनेपर भी, उनकी रुचि न देख कहा—"अच्छा जब तुम बुद्ध होना, तो···प्रथम हमारे राज्यमें आना।" यह यहाँ संक्षेप में है। विस्तार··· प्रव्रज्या-सूत्रकी अट्ठ-कथाके साथ [२]प्रव्रज्या सूत्रमें देखना चाहिये।

बोधिसत्त्वने राजाको वचन दे, क्रमशः विचरण करते हुये, आलार-कालाम तथा उद्दक-रामपुत्रके पास पहुँच समाधि (=समापत्ति) सीखी। (फिर) यह ज्ञान (=बोध) का रास्ता नहीं है, (ऐसा) सोच उस समाधिभावनाको अपर्याप्त समझ, देवताओं सहित

---

१. वर्तमान रत्नगिरि या रत्नकूट। २. सुत्तनिपात, मार वग्ग।

सभी लोकोंको अपना वल वीर्य दिखानेके लिये, परमतत्त्वकी प्राप्तिके लिये, उरुवेलामें पहुँच—"यह प्रदेश रमणीय है" (ऐसा) सोच, वहीं ठहर महान् उद्योग आरम्भ किया।

कौण्डिन्य आदि पाँच परिव्राजक भी गाँव, शहर, राजधानीमें भिक्षाचरण करते, बोधिसत्त्वके पास वहीं पहुँचे। "अब बुद्ध होंगे, अब बुद्ध होंगे" इस आशासे, छः वर्षतक वह आश्रमकी झाड़ू-बहारी आदि सेवाओंको करते, बोधिसत्त्वके पास रहे। बोधिसत्त्व दुष्कर तपस्या करते हुये, (अक्षत) तिलतंडुलसे काल-क्षेप करने लगे; पीछे आहार ग्रहण करना भी छोड़ दिये। देवताने रोमकूपों द्वारा (उनके शरीरमें) ओज डाल दिया। (लेकिन फिर भी) निराहारसे वे बहुत दुबले हो गये। उनका कनक-वर्ण शरीर काला होगया। (उनके शरीरमें विद्यमान), महापुरुषोंके (बत्तीस) लक्षण छिप गये। एक बार श्वास-रहित ध्यान करते समय, बहुतही क्लेशसे पीड़ित (एवं) बेहोश हो, टहलनेके चबूतरेपर गिर पड़े। तब कुछ देवताओंने कहा—"श्रमण गौतम मर गये।"···इसपर उन्होंने सोचा—"यह दुष्कर तपस्या बुद्धत्व-प्राप्तिका मार्ग नहीं है।" इसलिये स्थूल आहार ग्रहण करनेके लिये ग्रामों, और बाजारोंमें भिक्षाटनकर, भोजन ग्रहण करना शुरू कर दिया।···। उनका शरीर फिर सुवर्ण-वर्ण होगया। पंच-वर्गीयोंने सोचा—"६ वर्ष तक दुष्कर तपस्या करनेपर भी यह बुद्ध नहीं होसका, अब ग्रामादिमें भिक्षा माँग, स्थूल आहार ग्रहण करनेपर क्या होगा?। यह लालची है, तपके मार्गसे भ्रष्ट है। शिरसे नहानेकी इच्छावालेके ओस-बूँदकी ओर ताकनेके समान, इसकी ओर हमारी प्रतीक्षा है। इससे हमारा क्या मतलब (सधेगा)? ऐसा सोच महापुरुषको छोड़, अपने अपने पात्रचीवरको ले वह अठारह योजन दूर [1]ऋषिपतनको चले गये।

उस समय उरुवेला (प्रदेश) के सेनानी नामक कस्बेमें, सेनानी [2]कुटुम्बीके घरमें उत्पन्न सुजाता नामकी कन्याने तरुणी होनेपर, एक बरगदसे यह प्रार्थना की थी—"यदि समानजातिके कुल-घरमें जा, पहिले ही गर्भमें (पुत्र) प्राप्त करूंगी, तो प्रतिवर्ष एक लाखके खर्चसे बलिकर्म (=पूजा) करूंगी"। उसकी वह प्रार्थना पूरी हुई। महासत्त्व (=महापुरुष) की दुष्कर तपश्चर्याका छठा वर्ष पूरा होनेपर, वैशाख पूर्णिमाको बलिकर्म करनेकी इच्छासे, उसने पहिले हजार गायों को यष्टि-मधु (=जेठीमधु) के वनमें चरवाकर, उनका दूध दूसरी पाँचसौ गायोंको पिलवाया; (फिर) उनका दूध ढाईसौ गायोंको; इस तरह (एकका दूध दूसरेको पिलाते) १६ गायोंका दूध आठ गायोंको पिलवाया। इस प्रकार दूधके गाढ़ापन मधुरता, और ओजके लिये उसने क्षीर-परिवर्तन किया। उसने वैशाखपूर्णिमाके प्रातः ही बलिकर्म करनेकी इच्छासे भिनसारको उठकर, उन आठ गायोंको दुहवाया। ...दूध लेकर नये वर्तनमें डाल, अपने हाथसे ही आग जलाकर (खीर) पकाना शुरू किया।···

सुजाताने (अपनी) पूर्णा (नामकी) दासीको कहा—"[3]अम्म!...जल्दीसे जाकर देवस्थानको साफ़कर"। "आर्ये! अच्छा" कह उसके वचनको ग्रहण कर, वह जल्दी जल्दी वृक्षके नीचेको गई। बोधिसत्त्व भी उस रातको पाँच महास्वप्नोंको देख,

---

१. सारनाथ (B. & N. W. Ry), जिला बनारस। २. गृहस्थ, बड़ाकिसान। ३. वर्तमान मगहीभाषा में "मैंय्यां"।

"निःसंशय आज मैं बुद्ध हूँगा" निश्चयकर, उस रातके बीत जानेपर, शौच आदिसे निवृत्त हो, भिक्षा-कालकी प्रतीक्षा करते हुये, आकर उसी वृक्षके नीचे, अपनी प्रभासे सारे वृक्षको प्रकाशित करते हुये बैठे। पूर्णाने आकर वृक्षके नीचे पूर्वकी ओर ताकते हुये, बोधिसत्त्वको देखा। ·· देखकर उसने सोचा—"आज हमारे देवता वृक्षसे उतर कर, अपने हाथसे ही बलि ग्रहण करनेको बैठे हैं" और जल्दीसे जाकर यह बात सुजातासे कही। सुजाताने उसकी बातको सुनकर प्रसन्नहो, "आजसे अब तू मेरी ज्येष्ठ पुत्री होकर रह"—कह लड़की के योग्य आभरण आदि उसको दिये। वह खीरको थालमें रख दूसरे सोनेके थालसे ढांक, कपड़ेसे बांध, सब अलंकारोंसे अपनेको अलंकृत कर, थालको अपने शिरपर रख···वृक्षके नीचे जा, बोधिसत्त्वको देख बहुतही सन्तुष्ट हुई। (और उन्हें) वृक्षका देवता समझ, (प्रथम) देखनेको जगह ही से (गौरवार्थ) झुककर जा, शिरसे थालको उतार, खोल, सोनेकी झारीमें सुगंधित पुष्पोंसे सुवासित जलले, बोधिसत्त्वके पास जा खड़ी हुई। घटिकार महाब्रह्मा-द्वारा प्रदत्त मट्टीका पात्र (=भिक्षापात्र) इतने समय तक बराबर बोधिसत्त्वके पास रहा, लेकिन इस समय वह अदृश्य होगया। बोधिसत्त्वने पात्रको न देखकर, दाहिने हाथको फैला जल ग्रहण किया। सुजाताने पात्र-सहित खीरको महापुरुषके हाथमें अर्पण किया। महापुरुषने सुजाताकी ओर देखा। उसने इंगितसे जानकर—"आर्य! मैंने तुम्हें यह प्रदान किया, इसे ग्रहण कर यथारुचि पधारिये" कह वन्दना की, (और फिर)—"जैसे मेरा मनोरथ पूर्ण हुआ, ऐसेहो तुम्हारा भी पूर्ण हो" कह, लाख (मुद्राके) मूल्यकी उस सुवर्ण थालको पुराने पत्तलकी भाँति (छोड़) चल दिया।

बोधिसत्त्व बैठे हुए स्थानसे उठ, वृक्षकी प्रदक्षिणा कर, थालको ले [1]नेरञ्जराके तीरपर जा···थालीको रख, (जल में) उतरकर, स्नानकर···पूर्वकी ओर मुँह कर बैठे; और ·· उंचास ग्रास करके, उस सभी निर्जल मधुर पायसको (उन्होंने) भोजन किया। वही उनके बुद्ध होनेके बाद वाले, [2]बोधि-मण्डमें वास करते सात सप्ताहके उंचास दिनोंके लिये आहार हुआ। इतने काल तक न दूसरा आहार किया, न स्नान, न मुख धोना···। ध्यान-सुख, मार्ग-(लाभसे उत्पन्न)-सुख, फल-(=दुःख-क्षय)-सुखसे ही (इन सात सप्ताहोंको) विताया। उस खीरको खा, सोनेका थाल ले ···(नदीमें) फेंक दिया।····

बोधिसत्त्व नदीतीरके सुपुष्पित शालवनमें दिनको विहार कर सायङ्काल··· [3]बोधिवृक्षके पास गये। ·· । उस समय घास लेकर सामनेसे आते हुये श्रोत्रिय नामक घासकाटनेवालेने महापुरुषको आठ मुट्ठी तृण दिया। बोधिसत्त्व तृण ले बोधि-मण्ड पर चढ़, प्रदक्षिणा कर, पूर्वदिशामें जाकर, पश्चिमकी ओर मुँहकर खड़े हुये।···। (उन्होंने) "यह सभी बुद्धोंसे अपरित्यक्त स्थान है, (यही) दुःख-पञ्जरके विध्वंसनका स्थान है"—जान उन तृणोंके अग्रभागको पकड़ कर हिलाया,···जिससे···आसन बन गया। वह तृण ऐसे आकारमें पड़े, कि वैसा (आकार) सुचतुर चित्रकार या पुस्त-कार भी लिखनेमें समर्थ नहीं हो सकता। बोधिसत्त्व बोधिवृक्षको पीठकी ओर करके, दृढ़-चित्त हो—"चाहे मेरा चमड़ा, नसें, हड्डी ही क्यों न

---

१. निलाजन नदी (जि० गया)। २. बोध-गयाके बुद्ध-मन्दिरका हाता। ३. बोधगयाका प्रसिद्ध पीपल-वृक्ष।

वाकी रह जांय; चाहे शरीर, मांस, रक्त क्यों न सूख जाये; लेकिन तोभी [1]सम्यक्-सम्बोधिको प्राप्त किये विना इस आसनको नहीं छोड़ूंगा"—निश्चय कर, पूर्वाभिमुख हो, सौ बिजलियोंकी कड़कसे भी न छूटने वाला अ-पराजित आसन लगा [2]बैठ गये।

उस समय मार देव-पुत्र—"सिद्धार्थकुमार मेरे अधिकारसे वाहर निकलना चाहता है, इसे नहीं निकलने दूँगा"—यह सोच, अपनी सेनाके पास जा, यह वात कह, मार-घोषणा करवाकर, अपनी सेना ले, निकल पड़ा। मारसेनाके बोधि-मंड तक पहुँचते पहुँचते, (सेना) में (से) एक भी खड़ा न रह सका; (सभी) सामने आतेही भाग निकले।···। महापुरुष अकेलेही बैठे रहे। मारने अपने अनुचरोंसे कहा—"तात! शुद्धोदन-पुत्र सिद्धार्थके समान दूसरा पुरुष नहीं है। हम लोग सामनेसे युद्ध नहीं कर सकते, पीछेसे करेंगे।"··· महापुरुष···मार-सेनाको देख—"यह इतने लोग मेरे अकेलेके लिये बड़ा प्रयत्न कर रहे हैं। इस स्थान पर मेरी माता, पिता, भाई या दूसरा कोई सम्बन्धी नहीं है। यह दस मेरी पारमितायें ही मेरे चिरकालसे पोसे हुये परिजनके समान हैं। इसलिये इन पारमिताओंको ही ढाल बनाकर, (इस) पारमिता-शस्त्रको ही चलाकर, मुझे यह सेना-समूह विध्वंस करना होगा" (यह सोच), दश पारमिताओंका स्मरण करते हुये बैठे रहे।

···मार वायु, वर्षा, पाषाण, हथियार, धधकती राख, वालू, कीचड़ और अन्धकार-वृष्टिसे बोधिसत्त्वको न भगा सका।···(फिर) बोधिसत्त्वके पास आकर बोला—"सिद्धार्थ! इस आसनसे उठ, यह (आसन) तेरे लिये नहीं, मेरे लिये है।" महासत्त्वने उसके वचनको सुनकर कहा—"मार! तूने न दस पारमितायें पूरी कीं, न उप-पारमितायें, न परमार्थकी पारमितायें, न पाँच महान् त्यागही तूने किये, न जातिके हितका काम, न लोकहितका काम, न ज्ञानका आचरण किया। यह आसन तेरे लिये नहीं है, यह मेरेही लिये है।"

मारने महापुरुषसे पूछा—"सिद्धार्थ तूने दान (···) दिया है, इसका कौन साक्षी है?" महापुरुषने···"यह अचेतन ठोस महापृथ्वी है"—कह, चीवरके भीतरसे दाहिने हाथको निकाल, "···" मेरे दान देनेकी तू साक्षिणी है" कहा; (और) पृथिवीकी ओर हाथ लटका दिया।···मार-सेना दिशाओंकी ओर भाग चली।···। इस प्रकार सूर्यके रहते रहते महापुरुषने मारसेनाको परास्त कर, चीवरके ऊपर वरसते बोधिवृक्षके अंकुरोंसे, मानों लाल मूंगोंसे पूजित होते हुये, [3]प्रथम-याममें पूर्वजन्मोंका ज्ञान, मध्यम-याममें दिव्य-चक्षु पा, अन्तिम-याममें [4]प्रतीत्य-समुत्पाद-ज्ञानको उपलब्ध किया।···उस समय···(उन्होंने) यह उदान कहा—

"वहु जन्म जगमें दौड़ता, फिरता वरावर मैं रहा।
नित ढूँढता गृहकारको, दुख जन्मके सहता रहा॥
गृह-कार अव देखा गया, है फिर न घर करना तुझे।
कड़ियाँ सभी टूटीं तेरी, गृह-शिखर भी विखरा पड़ा।
संस्कार-विरहित चित्त अव, तृष्णा सभीके नाश से।"

---

४. परम-ज्ञान, मोक्ष-ज्ञान। ५. जातक-निदान। १. चार घण्टे का एक 'याम' होता है। प्रथम-याम, रात्रिका प्रथम तृतीयांश। २. "पटिच्च-समुप्पाद सुत्त" में विस्तार देखो। ३. जातक निदान १३।

बोधि-वृक्षके नीचे । वाराणसीको । (वि. पू.-४७१)

उस [1]समय बुद्ध भगवान् [2]उरुवेलामें नेरंजरा नदीके तीर बोधिवृक्षके नीचे, प्रथम अभिसंबोधिको प्राप्त हुये थे। भगवान् बोधिवृक्षके नीचे सप्ताहभर एक आसनसे विमुक्ति (=मोक्ष) का आनंद लेते हुये बैठे रहे। रातको प्रथम याममें प्रतीत्य-समुत्पादका अनुलोम (आदिसे अन्तकी ओर) और, प्रतिलोम (अन्तसे आदिकी ओर) मनन किया।—"अविद्याके कारण संस्कार होता है, संस्कारके कारण विज्ञान होता है, विज्ञानके कारण नाम-रूप, नाम-रूपके कारण छः आयतन, छः आयतनोंके कारण स्पर्श, स्पर्शके कारण वेदना, वेदनाके कारण तृष्णा, तृष्णाके कारण उपादान, उपादानके कारण भव, भवके कारण जाति, जाति (=जन्म) के कारण जरा (=बुढ़ापा), मरण, शोक, रोना पीटना, दुःख, चित्त-विकार और चित्त-खेद उत्पन्न होते हैं। इस तरह यह (संसार) जो केवल दुःखों का पुँज है, उसकी उत्पत्ति होती है। अविद्याके अ-शेष (=बिल्कुल) विरागसे, (अविद्याका) नाश होनेपर संस्कारका, विनाश होता है। संस्कार-विनाशसे विज्ञानका नाश होता है। विज्ञान-नाशसे नाम-रूपका नाश होता है। नाम-रूप नाशसे छः आयतनों का नाश होता है। छः आयतनोंके नाशसे स्पर्श नाश होता है। स्पर्श-नाशसे वेदना नाश होती है। वेदना-नाशसे तृष्णा नाश होती है। तृष्णा-नाशसे उपादान नाश होता है। उपादान-नाशसे भव नाश होता है। भव-नाशसे जाति नाश होती है। जन्म नाशसे जरा, मरण, शोक, रोना पीटना, दुःख, चित्त-विकार और चित्त-खेद नाश होते हैं। इस प्रकार इस केवल-दुःख-पुञ्जका नाश होता है।" भगवान्ने इस अर्थको जानकर, उसी समय यह उदान कहा—

"जब धर्म होते जग प्रकट, सोत्साह ध्यानी विप्र (=ब्राह्मण) को।
तब शांत हों कांक्षा सभी, देखै स-हेतु धर्मको॥"

फिर भागवानने रातके मध्यमयाममें प्रतीत्य-समुत्पादको अनुलोम-प्रतिलोमसे मनन किया।—"अविद्याके कारण संस्कार होता है० दुःखपुंजका नाश होता है"। भगवान्ने इस अर्थको जानकर उसी समय यह उदान कहा—

"जब धर्म होते जग प्रकट, सोत्साहध्यानी विप्रको।
तब शांत हो कांक्षा सभीही जानकर क्षय कार्यको॥"

फिर भगवान्ने रातके अन्तिमयाममें प्रतीत्य-समुत्पादको अनुलोम प्रतिलोम करके मनन किया।—"अविद्या० केवल-दुःख-पुंजका नाश होता है"। भगवान्ने इस अर्थको जानकर उसी समय यह उदान कहा—

"जब धर्म होते जग प्रकट, सोत्साह ध्यानी विप्रको।
ठहरै कँपाता मार-सेना, रवि प्रकाशै गगन ज्यों॥"

---

१ विनय-पिटक, महावग्ग १। २ बोध-गया, जि० गया (विहार)।

सप्ताह बीतनेपर भगवान् उस समाधिसे उठकर, बोधिवृक्षके नीचेसे वहाँ गये, जहाँ अजपाल नामक बर्गदका वृक्ष था, वहाँ पहुँचकर अजपाल बर्गदके वृक्षके नीचे सप्ताह भर विमुक्तिका आनंद लेते हुये, एक आसनसे बैठे रहे। उस समय कोई अभिमानी ब्राह्मण, जहाँ भगवान् थे, वहाँ आया। पास आकर भगवान्‌केसाथ•••(कुशलक्षेम कर)•••एक ओर खड़ा होगया। एक ओर खड़े हुये उस ब्राह्मणने भगवान्‌से यों कहा—"हे गौतम! ब्राह्मण कैसे होता है? ब्राह्मण बनानेवाले कौन धर्म हैं"? भगवान्‌ने इस अर्थको जानकर, उसी समय यह उदान कहा—

"जो विप्र बाहित-पाप मल-अभिमान-बिनु संयत रहे।
वेदांत-पारग ब्रह्मचारी ब्रह्मवादी धर्मसे।
सम नहिं कोई जिससा जगत्।"

फिर सप्ताह बीतनेपर भगवान् उस समाधिसे उठ, अजपालबर्गदके नीचेसे वहाँ गये, जहाँ मुचलिन्द (वृक्ष) था। वहाँ पहुँचकर मुचलिंदके नीचे सप्ताह भर विमुक्तिका आनन्द लेते हुये एक आसनसे बैठे रहे। उस समय सप्ताह भर अ-समय महामेघ, (और) ठंडी हवा-वाली बदली पड़ी। तब मुचलिन्द नाग-राज अपने घरसे निकलकर भगवान्‌के शरीरको सात बार अपने देहसे लपेटकर, ऊपर शिरके ऊपर बड़ा फण तान कर खड़ा हो गया; जिसमें कि भगवानको शीत, उष्ण, डंस, मच्छर, वात, धूप तथा सरीसृप (=रेंगने वाले) न छूवें। सप्ताह बाद मुचलिन्द नागराज आकाशको मेघ-रहित देख, भगवान्‌के शरीरसे (अपने) देहको हटाकर (और उसे) छिपाकर, बालकका रूप धारणकर भगवान्‌के सामने खड़ा हुआ। भगवान्‌ने इसी अर्थको जानकर उसी समय यह उदान कहा—

"सन्तुष्ट देखनहार श्रुतधर्म, सुखी एकान्तमें।
निर्द्वन्द्व सुख है लोकमें, संयम जो प्राणी मात्रमें॥
सब कामनायें छोड़ना, वैराग्य है सुखलोकमें।
है परम सुख निश्चय वही, जो साधना अभिमान का॥

सप्ताह बीतनेपर भगवान् फिर उस समाधिसे उठ, मुचलिंदके नीचेसे वहाँ गये, जहाँ राजायतन (वृक्ष) था। वहाँ पहुँचकर राजायतनके नीचे सप्ताहभर विमुक्तिका आनन्द लेते हुये एक आसनसे बैठे रहे। उस समय तपस्सु और भल्लिक, (दो) व्यापारी (=बनजारे) उत्कलदेशसे उस स्थानपर पहुँचे। उनकी जात-बिरादरीके देवताने तपस्सु, भल्लिक बनजारोंको कहा—"मार्ष! बुद्धपदको प्राप्त हो यह भगवान् राजायतनके नीचे विहार कर रहे हैं। जाओ उन भगवान्‌को मट्ठे और लड्डू (=मधुपिंड) से सन्मानित करो, यह (दान) तुम्हारे लिये चिरकालतक हित और सुखका देनेवाला होगा। तब तपस्सु और भल्लिक बंजारे मट्ठा और लड्डू ले जहाँ भगवान् थे वहां गये। पास जाकर भगवान्‌को अभिवादनकर एक तरफ़ खड़े हो गये। एक तरफ खड़े हुए तपस्सु और भल्लिक बनजारोंने यह कहा—"भन्ते! भगवान्! हमारे मट्ठे (=मन्थ) और लड्डुओंको स्वीकार कीजिये, जिससे कि चिरकालतक हमें हित और सुख हो।" उस समय भगवान्‌ने सोचा—"तथागत

हाथमें नहीं ग्रहण किया करते; मैं मट्ठा और लड्डू किस (पात्र) में ग्रहण करूँ "। तब चारों महाराजा भगवान्‌के मनकी बात जान, चारों दिशाओंसे चार पत्थरके (भिक्षा-) पात्र भगवान्‌के पास ले गये—" भन्ते ! भगवान् ! इसमें मट्ठा और लड्डू ग्रहण कीजिये।" भगवान्‌ने उस अभिनव शिलामय पात्रमें मट्ठा और लड्डू ग्रहणकर भोजन किया। उस समय तपस्सु मल्लिक वनजारोंने भगवान्‌से कहा—' भन्ते ! हम दोनों भगवान् तथा धर्मकी शरण जाते हैं। आजसे भगवान् हम दोनोंको साञ्जलि शरणागत उपासक जानें।" संसारमें वही दोनों दो [1]वचनसे प्रथम उपासक हुये।

सप्ताह बीतनेपर भगवान् फिर उस समाधिसे उठ, राजायतनके नीचेसे जहां अजपाल बर्गद था, वहां गये। वहां अजपाल बर्गदके नीचे भगवान् विहार करने लगे। तब एकान्तमें ध्यानावस्थित भगवान्‌के चित्तमें वितर्क पैदा हुआ—"मैंने गंभीर, दुर्दर्शन, दुर्-ज्ञेय, शांत, उत्तम, तर्कसे अप्राप्य, निपुण पण्डितों द्वारा जानने योग्य, इस धर्मको पा लिया। यह जनता काम तृष्णामें रमण करने वाली काम-रत काममें प्रसन्न है। काममें रमण करने वाली इस जनताके लिये, यह जो कार्य-कारण रूपी प्रतीत्य समुत्पाद है, वह दुर्दर्शनीय है। और यह भी दुर्दर्शनीय है, जो कि यह सभी संस्कारोंका शमन, सभी मलोंका परित्याग, तृष्णा-क्षय, विराग, निरोध (दुःख निरोध), और निर्वाण हैं। मैं यदि धर्मोपदेश भी करूँ और दूसरे उसको न समझ पावें, तो मेरे लिये यह तरद्दुद, और पीड़ा (मात्र) होगी। उसी समय भगवान्‌के पहिले कभी न सुनी यह अद्भुत गाथायें सूझ पड़ीं—

> "यह धर्म पाया कष्टसे, इसका न युक्त प्रकाशना।
> नहि राग-द्वेष-प्रलिप्तको है सुकर इसका जानना॥
> गंभीर उल्टी-धारयुक्त दुर्दृश्य सूक्ष्म प्रवीणका।
> तम-पुंज-छादित रागरतद्वारा न संभव देखना॥"

भगवान्‌के ऐसा समझनेके कारण, (उनका) चित्त धर्मप्रचारकी ओर न झुककर अल्प-उत्सुकताकी ओर झुक गया। तब सहापति ब्रह्माने भगवान्‌के चित्तकी बातको जानकर ख्याल किया—"लोक नाश हो जायगा रे ! लोक विनाश हो जायगा रे ! जब तथागत अर्हत् सम्यक् संबुद्धका चित्त धर्म प्रचारकी ओर न झुककर, अल्प-उत्सुकता (=उदासीनता) की ओर झुक जाये" (ऐसा ख्याल कर) सहापति ब्रह्मा "ब्रह्मलोकसे अन्तर्ध्यान हो, भगवान्‌के सामने प्रकट हुये। फिर सहापति ब्रह्माने उपरना (=चद्दर) एक कंधेपर करके, दाहिने जानुको पृथिवीपर रख, जिधर भगवान् थे उधर हाथ जोड़, भगवान्‌से कहा—"भन्ते ! भगवान् धर्मोपदेश कर, सुगत ! धर्मोपदेश करें। अल्प मलवाले प्राणी भी हैं, धर्मके न सुननेसे वह नष्ट हो जायेंगे। (उपदेश करें) धर्मको सुननेवाले (भी होवेंगे)" सहापति ब्रह्माने यह कहा, और यह कहकर यह भी कहा—"मगधमें मलिन चित्तवालोंसे चिन्तित, पहिले अशुद्ध धर्म पैदा हुआ। अमृतके द्वारको खोलनेवाले विमल (पुरुष) से जानेगये इस धर्मको (अब लोक) सुनें॥ पथरीले पर्वतके शिखरपर खड़ा (पुरुष) जैसे चारों ओर जनताको देखे। उसी तरह

---

[1] संघके न होनेसे वह बुद्ध और धर्म दो ही की शरण जा सकते थे।

हे सुमेध ! हे सर्वत्र नेत्र वाले ! धर्मरूपी महलपर चढ सब जनताको देखो ॥ हे शोक-रहित ! शोक-निमग्न जन्मजरासे पीड़ित जनताकी ओर देखो ।—

उठ वीर ! हे संग्रामजित् ! हे सार्थवाह ! उऋण-ऋणा ।
जगविचर धर्मप्रचार कर, भगवान् ! होगा जानना ॥

तब भगवान्ने ब्रह्माके अभिप्रायको जानकर, और प्राणियोंपर दया करके, बुद्ध-नेत्रसे लोकको अवलोकन किया। बुद्ध-चक्षुसे लोकको देखते हुये भगवान्ने जीवोंको देखा, जिनमें कितने ही अल्प-मल, तीक्ष्ण-बुद्धि, सुन्दर-स्वभाव, समझानेमें सुगम प्राणियोंको भी देखा। उनमें कोई कोई परलोक और दोषसे भय करते, विहर रहे थे। जैसे उत्पलिनी, पद्मिनी (=पद्मसमुदाय) या पुंडरीकिनीमें से कितनेही उत्पल, पद्म या पुंडरीक उदकमें पैदा हुये उदकमें बँधे उदकसे बाहर न निकल (उदकके) भीतरही डूबकर पोषित होते हैं। कोई कोई उत्पल (नीलकमल), पद्म (रक्तकमल), या पुंडरीक (श्वेतकमल) उदकमें उत्पन्न, उदकमें बंधे (भी) उदकके बराबरही खड़े होते हैं। कोई कोई उत्पल, पद्म या पुंडरीक उदकमें उत्पन्न, उदकमें बँधे (भी), उदकसे बहुत ऊपर निकलकर, उदकसे अलिप्त (हो) खड़े होते हैं। इसी तरह भगवान्ने बुद्ध-चक्षुसे लोकको देखते हुये—अल्पमल, तीक्ष्णबुद्धि, सुस्वभाव, सुबोध्य प्राणियोंको देखा ; जो परलोक तथा बुराईसे भय खाते विहर रहे थे। देखकर सहांपति ब्रह्माको गाथाद्वारा कहा—

"उनके लिये अमृतका द्वार बंद होगया है, जो कानवाले होनेपर भी, श्रद्धाको छोड़ देते हैं। हे ब्रह्मा ! (वृथा) पीड़ाका ख्यालकर मैं मनुष्योंको निपुण, उत्तम, धर्मको नहीं कहता था।"

तब ब्रह्मा सहांपति—"भगवान्ने धर्मोपदेशके लिये मेरी बात मानली" यह जान, भगवान्को अभिवादनकर प्रदक्षिणाकर वहीं अन्तर्ध्यान होगये ।

उस समय भगवान्के (मनमें) हुआ—"मैं पहिले किसे इस धर्मकी देशना (=उपदेश) करूँ ; इस धर्मको शीघ्र कौन जानेगा ?" फिर भगवान्के (मनमें) हुआ—"यह आलार-कालाम पण्डित, चतुर, मेधावी चिरकालसे अल्प-मलिन-चित्त है; मैं पहिले क्यों न आलार--कालामको ही धर्मोपदेश दूं ? वह इस धर्मको शीघ्रही जान लेगा।" तब गुप्त देवताने भगवान्को कहा--"भन्ते ! आलार-कालामको मरे सप्ताह होगया"। भगवान्को भी ज्ञान-दर्शन हुआ—"आलार कालामको मरे सप्ताह होगया।" तब भगवान्के (मनमें) हुआ—आलार कालाम महा आजानीय था, यदि वह इस धर्मको सुनता, शीघ्रही जान लेता।" फिर भगवान्के (मनमें) हुआ—"यह उद्दक-रामपुत्र पण्डित, चतुर, मेधावी, चिरकालसे अल्प-मलिन चित्त है, क्यों न मैं पहिले उद्दक-रामपुत्रको ही धर्मोपदेश करूँ ? वह इस धर्मको शीघ्रही जान लेगा।" तब गुप्त (=अन्तर्ध्यान) देवताने, कहा—"भन्ते ! रात ही उद्दक-रामपुत्र मर गया।" भगवान्को भी ज्ञान-दर्शन हुआ।...। फिर भगवान्के (मनमें) हुआ—"पञ्च वर्गीय भिक्षु मेरे बहुत काम करनेवाले थे, उन्होंने साधनामें लगे मेरी सेवाकी थी। क्यों न मैं पहिले पञ्चवर्गीय भिक्षुओंकोही धर्मोपदेश दूँ।" भगवान्ने सोचा—"इस समय

पञ्चवर्गीय भिक्षु कहाँ विहर रहे हैं ?" भगवान्‌ने अ-मानुष दिव्य विशुद्ध नेत्रोंसे देखा—"पञ्चवर्गीय भिक्षु वाराणसीके [1]ऋषिपतन मृग-दावमें विहारकर रहे हैं।"

तब भगवान् उरुवेलामें इच्छानुसार विहारकर, जिधर वाराणसी है, उधर चारिका (=रामत) के लिये निकल पड़े। उपक आजीवक[2] ने देखा—भगवान् बोधि (=बुद्ध गया) और गयाके बीचमें जारहे हैं। देखकर भगवान्‌से बोला—"आयुष्मान् (आवुस)! तेरी इन्द्रियां प्रसन्न हैं, तेरा छवि-वर्ण (=कांति) परिशुद्ध तथा उज्वल है। किसको (गुरु) मानकर हे आवुस! तू प्रव्रजित हुआ है, तेरा शास्ता (=गुरु) कौन? तू किसके धर्मको मानता है?" यह कहनेपर भगवान्‌ने उपक आजीवकको...कहा—"मैं सबको पराजित करनेवाला, सबको जाननेवाला हूँ; सभी धर्मोंमें निर्लेप हूँ। सर्व-त्यागी (हूँ), तृष्णाके क्षयसे हो विमुक्त हूँ; मैं अपनेही जानकर उपदेश करूँगा।

मेरा आचार्य नहीं, है मेरे सदृश (कोई) विद्यमान नहीं।
देवताओं सहित (सारे) लोकमें मेरे समान पुरुष नहीं।
मैं संसारमें अर्हत हूँ, अपूर्व शास्ता (=गुरु) हूँ।
मैं एक सम्यक् संबुद्ध, शीतल तथा निर्वाणप्राप्त हूँ।
धर्मका चक्का घुमानेके लिये काशियोंके नगरको जारहा हूँ।
(वहाँ) अन्धे हुये लोकमें अमृत-दुन्दुभी बजाऊँगा॥"

"आयुष्मन्! तू जैसा दावा करता है उससे तो अनन्त जिन हो सकता है।"
"मेरे ऐसेही सत्त्व जिन होते हैं, जिनके कि आस्रव (=क्लेश=मल) नष्ट हो गये हैं।
मैंने पाप (=बुरे)—धर्मोंको जीत लिया है, इसलिये हे उपक! मैं जिन हूँ।"
ऐसा कहनेपर उपक आजीवक—"होवोगे आवुस!" कह, शिर हिला, बेरास्ते चल दिया।

---

१. वर्तमान सारनाथ, बनारस। २. उस समयके नग्न साधुओंका एक सम्प्रदाय, मक्खली-गोसाल जिसका एक प्रधान आचार्य था।

(९)

प्रथमधर्मोपदेश। यशका संन्यास।।(वि० पृ. ४७१)

तब भगवान् क्रमशः यात्रा (=चारिका) करते हुए, जहाँ वाराणसी ऋषि-पतन मृग-दाव था, जहां पञ्चवर्गीय भिक्षु थे, वहाँ पहुँचे। दूरसे आते हुये भगवान्को, पञ्चवर्गीय भिक्षुओंने देखा। देखतेही आपसमें पक्का किया —

"आवुसो! यह बाहुलिक (=बहुत जमा करने वाला) साधना-भ्रष्ट बाहुल्य-परायण (=जमा करनेकी ओर लौटा हुआ) श्रमण गौतम आ रहा है। इसे अभिवादन नहीं करना चाहिये, न प्रत्युत्थान (=सत्कारार्थ खड़ा होना) करना चाहिये। न इसका पात्र चीवर (=आगे बढ़कर) लेना चाहिये, केवल आसन रख देना चाहिये, यदि इच्छा होगी तो बैठेगा।"

जैसे जैसे भगवान् पञ्चवर्गीय भिक्षुओंके समीप आते गये, वैसेही वैसे वह··· अपनी प्रतिज्ञापर स्थिर न रह सके। (अन्तमें) भगवान्के पास जा, एकने भगवान्का पात्र चीवर लिया, एकने आसन बिछाया; एकने पादोदक (=पैर धोनेका जल), पादपीठ (=पैरका पीढ़ा), पादकठलिका (पैर रगड़नेकी लकड़ी) ला पास रक्खी। भगवान् बिछाये आसनपर बैठे। बैठकर भगवान्ने पैर धोये। वह भगवान्के लिये 'आवुस' शब्दका प्रयोग करते थे। ऐसा करनेपर भगवान्ने कहा—"भिक्षुओ! तथागतको नामलेकर या 'आवुस' कहकर मत पुकारो। भिक्षुओ! तथागत अर्हत् सम्यक्-सम्बुद्ध हैं। इधर कान दो, मैंने जिस अमृतको पाया है, उसका तुम्हें उपदेश करता हूँ। उपदेशानुसार आचरण करनेपर, जिसके लिये कुलपुत्र घरसे बेघरहो संन्यासी होते हैं, उस अनुत्तम ब्रह्मचर्यफलको, इसी जन्ममें शीघ्रही स्वयं जानकर = साक्षात्कारकर = उपलाभकर विचरोगे।"

ऐसा कहनेपर पञ्चवर्गीय भिक्षुओंने भगवान्को कहा—"आवुस! गौतम उस साधनामें, उस धारणामें, उस दुष्कर तपस्यामें भी तुम आर्योंके ज्ञानदर्शनकी पराकाष्ठाकी विशेषता, उत्तर-मनुष्य-धर्म (= दिव्य शक्ति)को नहीं पा सके; फिर अब बाहुलिक साधना-भ्रष्ट, बाहुल्यपरायण (= जमाकरनेकी ओर पलट गये), तुम आर्य-ज्ञान-दर्शनकी पराकाष्ठा, उत्तर-मनुष्य-धर्मको क्या पाओगे।"

यह कहनेपर भगवान्ने पञ्चवर्गीय भिक्षुओंसे कहा—"भिक्षुओ। तथागत बाहुलिक नहीं है, और न साधना से भ्रष्ट है, न बाहुल्यपरायण है। भिक्षुओ! तथागत अर्हत् सम्यक् संबुद्ध हैं ०। ० उपलाभकर विहार करोगे।

दूसरी बारभी पञ्चवर्गीय भिक्षुओंने भगवान्को कहा—"आवुस! गौतम ०।" दूसरी बार भी भगवान्ने फिर (वही) कहा०। तीसरी बार भी पञ्चवर्गीय भिक्षुओंने भगवान्को (वही) कहा०। ऐसा कहनेपर भगवान्ने पञ्चवर्गीय भिक्षुओंको कहा— "भिक्षुओ! इससे पहिले भी क्या मैंने कभी इस प्रकार कहा है?"

"भन्ते! नहीं"

"भिक्षुओ! तथागत अर्हत्० विहार करोगे।"

(तब) भगवान् पञ्चवर्गीय भिक्षुओंको समझानेमें समर्थ हुये । तब पञ्चवर्गीय भिक्षुओंने भगवान्‌से (उपदेश) सुननेकी इच्छासे कान दिया,...चित्त उधर किया ।[१]...

धर्मचक्र-प्रवर्तन सूत्र ।

[२]ऐसा मैंने सुना—एक समय भगवान् वाराणसीके ऋषिपतन मृगदावमें विहार करते थे । वहाँ भगवान्‌ने पञ्चवर्गीय भिक्षुओंको संबोधित किया—

"भिक्षुओं ! इन दो अन्तों (=अतियों) को प्रव्रजितोंको नहीं सेवन करना चाहिये । कौनसे दो ? (१) जो यह हीन, ग्राम्य, पृथग्जनों (=भूले मनुष्यों) के (योग्य), अनार्य-(सेवित), अनर्थोंसे युक्त, कामवासनाओंमें काम-सुख-लिप्त होना है; और (२) जो दुःख(-मय), अनार्य(-सेवित) अनर्थोंसे युक्त कायक्लेश (=आत्म-पीड़ा) में लगना है । भिक्षुओ ! इन दोनों ही अंतों (=अति)में न जाकर, तथागतने मध्यम-मार्ग खोज निकाला है, (जोकि) आँख-देनेवाला, ज्ञान-करनेवाला उपशम (=शांति) के लिये, अभिज्ञ होनेके लिये, सम्बोध(=परिपूर्ण-ज्ञान)केलिये, निर्वाण के लिये है । वह कौनसा मध्यम मार्ग (=मध्यम-प्रतिपद्) तथागतने खोज निकाला है ; (जोकि)० ? वह यही [३]आर्य-अष्टाङ्गिक मार्ग है; जैसे कि—सम्यक् (=ठीक)-दृष्टि, सम्यक्-संकल्प, सम्यक्-वचन, सम्यक्-कर्म, सम्यक्-जीविका, सम्यक्-व्यायाम (=प्रयत्न, परिश्रम), सम्यक्-स्मृति, सम्यक्-समाधि । यह है भिक्षुओ ! मध्यम-मार्ग (जिसको)० ।

यह भिक्षुओ ! दुःख आर्य (=उत्तम)-सत्य (=सचाई)है ।—जन्म भी दुःख है, जरा भी दुःख है, व्याधि भी दुःख है, मरण भी दुःख है, अप्रियोंका संयोग दुख, है प्रियोंका वियोग भी दुःख है, इच्छा करनेपर किसी (चीज) का नहीं मिलना भी दुःख है । संक्षेपमें पाँच [४]उपादानस्कन्ध ही दुःख हैं । भिक्षुओ ! **दुःख-समुदय** (=दुःख-कारण) आर्य सत्य है । यह जो तृष्णा है—फिर जन्मनेकी, खुश होनेकी, राग-सहित जहाँ तहाँ प्रसन्न होनेवाली—। जैसेकि—काम-तृष्णा, भव(=जन्म)-तृष्णा, विभव-तृष्णा । भिक्षुओ ! यह है **दुःख निरोध** आर्य-सत्य; जोकि उसी तृष्णाका सर्वथा विराग हो, निरोध=त्याग=प्रति निस्सर्ग=मुक्ति=न लीन होना । भिक्षुओ ! यह है दुःख-निरोधकी ओर जानेवाला मार्ग (**दुःख-निरोध-गामिनी-प्रतिपद्**) आर्य सत्य । यही आर्य अष्टाङ्गिक मार्ग है ।...

'यह दुःख आर्य-सत्य है' भिक्षुओ ! यह मुझे अ-श्रुत-पूर्व धर्मोंमें, आँख उत्पन्न हुई=ज्ञान उत्पन्न हुआ=प्रज्ञा उत्पन्न हुई=विद्या उत्पन्न हुई=आलोक उत्पन्न हुआ । 'यह दुःख आर्य-सत्य परिज्ञेय है' भिक्षुओ ! यह मुझे पहिले न सुने गये धर्मोंमें० । (सो यह दुःख-सत्य) परि-ज्ञात है'' भिक्षुओ ! यह पहिले न सुने गये धर्मोंमें० ।

---

१. महावग्ग । २. संयुत्त नि० ५५ : २ : १, विनय महावग्ग । ३. विस्तार के लिये "सतिपट्ठान-सुत्त" को देखो । ४. रूप, वेदना, संज्ञा, संस्कार, विज्ञान ।

'यह दुःख-समुदय आर्य सत्य है' भिक्षुओ, यह मुझे पहिले न सुने गये धर्मोंमें आँख उत्पन्न हुई, ज्ञान हुआ=प्रज्ञा उत्पन्न हुई=विद्या उत्पन्न हुई=आलोक उत्पन्न हुआ। "यह दुःख-समुदय आर्य-सत्य प्रहातव्य (=त्याज्य) है", भिक्षुओ! यह मुझे०। "०प्रहीण (छूट गया)" यह भिक्षुओ मुझे०।

'यह दुःख-निरोध आर्य-सत्य है' भिक्षुओ! यह मुझे पहिले न सुने गये धर्मोंमें आँख उत्पन्न हुई० "सो यह दुःख-निरोध आर्य-सत्य साक्षात् (=प्रत्यक्ष) करना चाहिये" भिक्षुओ! यह मुझे०। "यह दुःख-निरोध-सत्य साक्षात् किया' भिक्षुओ! यह मुझे०।

"यह दुःख-निरोध-गामिनी-प्रतिपद् आर्यसत्य है" भिक्षुओ! यह मुझे पहिले न सुने गये धर्मोंमें, आँख उत्पन्न हुई०। यह दुःख-निरोध-गामिनी-प्रतिपद् आर्यसत्य भावना करना चाहिये', भिक्षुओ! यह मुझे०। "यह दुःख-निरोधगामिनी-प्रतिपद् भावनाकी' भिक्षुओ! यह मुझे०।

भिक्षुओ! जबतक कि इन चार आर्यसत्योंका (उपरोक्त) प्रकारसे तेहरा (हो) बारह आकारका—यथार्थ विशुद्ध ज्ञान-दर्शन न हुआ। तबतक मैंने भिक्षुओ! यह दावा नहीं किया—कि "देवों सहित मार-सहित ब्रह्मा-सहित (सभी) लोकमें, देव-मनुष्य-सहित, श्रमण-ब्राह्मण-सहित (सभी) प्रजा (=प्राणी) में, अनुत्तर (जिससे उत्तम दूसरा नहीं), सम्यक्-संबोधि (=परमज्ञान) को मैंने जान लिया" भिक्षुओ! (जब) इन चार आर्य-सत्यों का (उपरोक्त) प्रकारसे तेहरा (हो) बारह आकारका यथार्थ विशुद्ध ज्ञान-दर्शन हुआ, तब मैंने भिक्षुओ! यह दावा किया, कि "देवों सहित० मैंने जान लिया। मैंने ज्ञानको देखा। मेरी विमुक्ति (मुक्ति) अचल है। यह अंतिम जन्म है। फिर अब आवागमन नहीं।

[1]भगवान्‌ने यह कहा। संतुष्ट हो पंचवर्गीय भिक्षुओंने भगवान्‌के वचनको अभिनन्दन किया। इस व्याख्यान (=व्याकरण) के कहे जानेके समय, आयुष्मान् कौण्डिन्यको, "जो कुछ समुदय-धर्म (=कारण स्वभाव वाला) है, वह सब निरोध-धर्म (=नाश-स्वभाव वाला) है" यह विरज=विमल धर्मचक्षु उत्पन्न हुआ।... तब भगवान्‌ने उदान कहा—"आहा! कौण्डिन्यने जानलिया आहा! कौण्डिन्यने जानलिया!" इसीलिये आयुष्मान् कौण्डिन्यका आज्ञात (=जानलिया) कौण्डिन्य नामही होगया। × × ×

[2] तब दृष्टधर्म=प्राप्तधर्म=विदितधर्म=पर्यवगाढधर्म, संशयरहित, विवादरहित, शास्ता (=गुरु=बुद्ध) के शासन (=धर्म) में विशारद, स्वतंत्र हो, आयुष्मान् आज्ञात कौण्डिन्यने भगवान्‌से कहा—"भन्ते! भगवान्‌के पास मुझे [3]प्रव्रज्या मिले, [4]उपसम्पदा मिले।" भगवान् ने कहा—"भिक्षु! आओ, धर्म [5]सु-आख्यात है, अच्छी तरह दुःखके क्षयके लिये ब्रह्मचर्य (का पालन) करो"। वही उन आयुष्मान् की उपसंपदा हुई।

भगवान्‌ने उसके पीछे भिक्षुओंको फिर धर्म संबंधी कथाओंका उपदेश किया; अनुशासन किया। भगवान्‌के धार्मिक कथाओंका उपदेश करते=अनुशासन करते समय

---

१. सं. नि. ५५: २: १, विनय, महावग्ग १. २. महावग्ग १. ३. श्रामणेर-संन्यास। ४. भिक्षु-संन्यास। ५. स्वाख्यात=सुंदर प्रकारसे वर्णित।

आयुष्मान् वप्प और आयुष्मान् भद्दियको भी—'जो कुछ समुदय-धर्म है, वह सब निरोध-धर्म है" यह विरज=विमल=धर्मचक्षु उत्पन्न हुआ । तब दृष्टधर्म=प्राप्त-धर्म० ०स्वतंत्र० उन्होंने भगवान्से कहा—"भन्ते ! भगवान्के पास हमें प्रव्रज्या मिले, उपसम्पदा मिले" । भगवान्ने कहा—"भिक्षु ! आओ, धर्म सु-आख्यात है, अच्छी तरह दुःखके क्षयके लिये ब्रह्मचर्य (अनु-पालन) करो ।" यही उन आयुष्मानोंकी उपसंपदा हुई ।

उसके पीछे भगवान् (भिक्षुओं द्वारा) लाये भोजनको ग्रहण करते, भिक्षुओंको धार्मिक कथाओंद्वारा उपदेश करते=अनुशासन करते (रहे) । तीन भिक्षु जो भिक्षा माँगकर लाते थे, उसीसे छःओ जने निर्वाह करते थे । भगवान्के धार्मिक कथा उपदेश करते= अनुशासन करते, आयुष्मान् महानाम और आयुष्मान् अश्वजित्को भी—' जो कुछ समुदय धर्म है० ।" ० वही उन आयुष्मानोंकी उपसंपदा हुई ।....।

उस[1] समय यश नामक कुलपुत्र, वाराणसीके [2]श्रेष्ठीका सुकुमार लड़का था । उसके तीन प्रासाद थे— एक हेमन्तका, एक ग्रीष्मका, एक वर्षाका । वह वर्षाके चारो महीने वर्षा-कालिक-प्रासादमें, अ-पुरुषों (=स्त्रियों) के वाद्योंसे सेवित हो, प्रासादके नीचे न उतरता था । (एक दिन)...यश कुलपुत्रकी...निद्रा खुली । सारी रात वहां तेल-दीप जलता था । तब यश कुल-पुत्रने ..अपने परिजनको देखा—किसीकी बगलमें वीणा है, किसीके गलेमें मृदङ्ग है... । किसीको फैले-केश, किसीको लार-गिराते, किसीको बर्राते, साक्षात् श्मशानसा देखकर, (उसे) घृणा उत्पन्न हुई, वैराग्यचित्तमें आया । यश कुल-पुत्रने उदान कहा—"हा ! संतप्त !! हा ! पीड़ित !!"

यश कुलपुत्र सुनहला जूता पहिन, घरके फाटककी ओर गया... । फिर ..नगर-द्वार की ओर... । तब यश कुल-पुत्र वहां गया, जहां ऋषिपतन मृगदाव था । उस समय भगवान् रातके भिनूसारको उठकर, खुले (स्थान)में टहल रहे थे । भगवान्ने दूरसे यश कुल-पुत्रको आते देखा । देखकर टहलनेको जगहसे उतरकर, बिछे आसनपर बैठगये । तब यश कुलपुत्रने भगवान्के समीप (पहुँच), उदान कहा—' हा ! सन्तप्त !! हा ! पीड़ित !! ' । भगवान्ने यश कुलपुत्रको कहा —"यश ! यह है अ-संतप्त, यश ! यह है अ-पीड़ित । यश ! आ बैठ, तुझे धर्म बताता हूं ।" तब यशकुल-पुत्रने "यह अ-सन्तप्त है, यह अ-पीड़ित है" यह (सुन) आह्ला-दित, प्रसन्न हो, सुनहले जूतेको उतार, जहाँ भगवान् थे, वहां गया । पास जाकर भगवान्को अभिवादनकर एक ओर बैठ गया, एक ओर बैठे यश कुलपुत्रको, भगवान्ने आनुपूर्वी कथा, जैसे —दान-कथा, शीलकथा, स्वर्ग-कथा, कामवासनाओंका दुष्परिणाम अपकार दोष, निष्कर्मताका, माहात्म्य प्रकाशित किया । जब भगवान्ने यशको, भव्य-चित्त, मृदुचित्त, अनाच्छादित-चित्त, आह्लादित-चित्त, प्रसन्न-चित्त देखा; तब जो बुद्धोंकी उठानेवाली (=समुत्कर्षक) देशना (=उपदेश) है—दुःख, समुदय (=दुःखका कारण), निरोध (=दुःखका नाश), और मार्ग (=दुःख-नाशका उपाय)—उसे प्रकाशित किया । जैसे कालिमा रहित शुद्ध-वस्त्र अच्छी तरह रंग पकड़ता है; वैसेही यशकुल-पुत्रको उसी आसनपर "जो कुछ समुदय-धर्म है, वह निरोध-धर्म है" यह वि-रज=निर्मल धर्मचक्षु उत्पन्न हुआ ।

---

१. महावग्ग।१. २. श्रेष्ठी यह नगरका एक अवैतनिक पदाधिकारी होता था, जो कि धनिक व्यापारियों मेंसे बनाया जाता था ।

यशकुल-पुत्रकी माता प्रासादपर चढ़, यशकुल-पुत्रको न देख, जहाँ श्रेष्ठी गृह-पति था वहाँ गई, (और)....कहा—'गृहपति ! तुम्हारा पुत्र यश दिखाई नहीं देता है' ? तब श्रेष्ठी गृह-पति चारों ओर सवार छोड़, स्वयं जिधर ऋषि-पतन मृग-दाव था, उधर गया । श्रेष्ठी गृहपति जुतहले जूतोंका चिन्ह देख, उसीके पीछे पीछे चला । भगवान्‌ने श्रेष्ठी गृहपतिको दूरसे आते देखा । तब भगवान्‌को (ऐसा विचार) हुआ—"क्यों न मैं ऐसा योग-बल करूँ, जिससे श्रेष्ठी गृहपति यहाँ बैठे यशकुल-पुत्रको न देख सके ।" तब भगवान्‌ने वैसाही योग-बल किया । श्रेष्ठी गृहपतिने जहाँ भगवान् थे वहाँ....जाकर भगवान्‌से कहा—" भन्ते ! क्या भगवान्‌ने यश कुल-पुत्रको देखा है ?"

"गृहपति ! बैठ । यहीं बैठा यहाँ बैठे यशकुलपुत्रको तू देखेगा ।"

श्रेष्ठी गृहपति—"यहीं बैठा यहाँ बैठे यशकुल-पुत्रको देखूँगा" यह (सुन) आह्लादित प्रसन्न हो, भगवान्‌को अभिवादनकर, एक ओर बैठ गया ।...भगवान्‌ने आनुपूर्वी कथा, जैसे—'दानकथा०' प्रकाशित की । श्रेष्ठी गृहपतिको उसी आसनपर० धर्मचक्षु उत्पन्न हुआ । भगवान्‌के धर्ममें स्वतंत्रहो, वह भगवान्‌से बोला—"आश्चर्य ! भन्ते !! आश्चर्य ! भन्ते !! जैसे औंधेको सीधा करदे, ढँके को उघाड़ दे, भूलेको रास्ता बतलादे, अंधकारमें तेलका प्रदीप रखदे, जिसमें कि आँखवाले रूप देखें; ऐसेही भगवान्‌ने अनेक पर्यायसे धर्मको प्रकाशित किया । यह मैं भगवान् की शरण जाता हूँ, धर्म और भिक्षु-संघकी भी । आजसे मुझे भगवान् सांजलि शरणागत उपासक ग्रहण करें ।" वह (गृहपति) ही संसारमें [1]तीन—वचनोंवाला प्रथम उपासक हुआ ।

जिस समय पिताको धर्मोपदेश किया जा रहाथा, उस समय देखे और जानेके अनुसार प्रत्यवेक्षण (=गंभीर चिन्तन) करते, यशकुल-पुत्रका चित्त अलिप्त हो, आस्रवों (=दोषों =मलों) से मुक्त होगया । तब भगवान्‌के (मनमें) हुआ—"पिताको धर्म-उपदेश० यशकुल-पुत्रका चित्त अलिप्त हो, आस्रवोंसे मुक्त होगया । (अब) यशकुलपुत्र पहिलेकी गृहस्थ अवस्थाकी भाँति हीन(-स्थिति)में रह, कामोपभोग करनेके योग्य नहीं है, क्योंन मैं योगबलके प्रभावको हटा लूँ ।" तब भगवान्‌ने ऋद्धिके प्रभावको हटा लिया । श्रेष्ठी गृहपतिने यश कुलपुत्रको बैठे देखा । देखकर यश कुलपुत्रसे बोला—

"तात ! यश ! तेरीमाँ रोतीपीटती तथा शोकमें पड़ी है, माताको जीवन दान दे" ।

यशकुलपुत्रने भगवान्‌की ओर आँख फेरी । भगवान्‌ने श्रेष्ठी गृहपतिको कहा—

"सो गृहपति ! क्या समझतेहो, जैसे तुमने शेष-सहित (=अपूर्ण) ज्ञानसे, शेष-सहित-दर्शन(=साक्षात्कार)से धर्मको देखा, वैसेही यशने भी (देखा) ? देखे और जानेके अनुसार प्रत्यवेक्षण करके, उसका चित्त अलिप्त हो, आस्रवोंसे मुक्त हो गया । अब क्या वह पहिलेकी गृहस्थ-अवस्थाकी भाँति हीन(स्थिति-)में रहकर, कामोपभोग करनेके योग्य है ?"

" नहीं, भन्ते ! "

---

१. बुद्ध, धर्म और संघ तीनोंकी शरणागत होनेका वचन ।

"हे गृहपति ! (पहिले) शैक्ष-सहित ज्ञानसे, शैक्ष-सहित दर्शनसे यशने भी धर्मको देखा, जैसे तूने । (फिर) देखे और जानेके अनुसार प्रत्यवेक्षण करके, (उसका) चित्त अलिप्त हो आस्रवोंसे मुक्त हो गया । हे गृहपति ! अब यश कुल-पुत्र पहिलेकी गृहस्थ-अवस्थाकी भांति हीन(-स्थिति)में रह, कामोपभोग करने योग्य नहीं है ।"

" लाभ है भन्ते ! यश कुल-पुत्रको; सुलाभ किया भन्ते ! यश कुल-पुत्रने; कि यश कुल-पुत्रका चित्त अलिप्त हो आस्रवोंसे मुक्त हो गया । भन्ते ! भगवान् यशको अनुगामी भिक्षु (= पश्चात्-श्रमण) करके, मेरा आजका भोजन स्वीकार कीजिये ।"

भगवान्ने मौनसे स्वीकृति प्रकट की ।

श्रेष्ठी गृहपति भगवान्की स्वीकृति जान, आसनसे उठ, भगवान्को अभिवादनकर प्रदक्षिणाकर, चला गया । फिर यशकुल-पुत्रने श्रेष्ठी गृहपतिके चले जानेके थोड़ीही देर बाद भगवान्से कहा—"भन्ते ! भगवान्के पाससे मुझे प्रव्रज्या मिले, उपसंपदा मिले ।" भगवान्ने कहा—" भिक्षु ! आओ धर्म सु-आख्यात है । अच्छी तरह दुःखके क्षयके लिये ब्रह्मचर्यका पालन करो ।" यही इस आयुष्मान्की सम्पदा हुई । उस समय लोकमें सात अर्हत् थे ।

भगवान् पूर्वाह्न समय वस्त्र पहिन (भिक्षा-) पात्र और चीवरले, आयुष्मान् यशको अनुगामी भिक्षु बना, जहां श्रेष्ठी गृहपतिका घर था, वहां गये । वहां, बिछे आसनपर बैठे । तब आयुष्मान् यशकी माता और पुरानी पत्नी भगवान्के पास आईं । आकर भगवान्को अभिवादनकर एक ओर बैठ गईं । उनको भगवान्ने आनुपूर्विक कथा० कही । जब भगवान्ने उन्हें भव्यचित्त०, देखा; तब जो बुद्धोंकी उठाने वाली देशना है—दुःख,समुदय, निरोध और मार्ग—उसे प्रकाशित किया । जैसे कालिमा-रहित शुद्ध-वस्त्र अच्छी तरह रंग पकड़ता है, वैसेही उन (दोनों) को, उसी आसन पर—" जो कुछ समुदय-धर्म है, वहनिरोध-धर्म है"—यह विरज = निर्मल धर्मचक्षु उत्पन्न हुआ । दृष्ट-धर्म = प्राप्त-धर्म = विदित-धर्म = पर्यवगाढ-धर्म, सन्देह-रहित, कथोपकथन-रहित, भगवान्के धर्ममें विशारदता-प्राप्त = स्वतन्त्र हो, उन्होंने भगवान्को कहा—" आश्चर्य ! भन्ते !! आश्चर्य ! भन्ते !! ० आजसे हमें भगवान् साञ्जलि शरणागत उपासिकायें जानें । लोक में वही तीन वचनों वाली प्रथम उपासिकायें हुईं ।

आयुष्मान् यशके माता पिता और पुरानी पत्नीने, भगवान् और आयुष्मान् यशको उत्तम खाद्य भोजनसे सन्तृप्त कर = संप्रवारित किया । जब भोजनकर, भगवान्ने पात्रसे हाथ खींच लिया, तब भगवान्के एक ओर बैठ गये । तब भगवान् आयुष्मान् यशकी माता, पिता और पुरानी पत्नीको धार्मिक-कथा द्वारा संदर्शन = समादापन = समुत्तेजन = संप्रहर्षण कर आसनसे उठकर चल दिये ।

आयुष्मान् यशके चारों गृही मित्रों, वाराणसीके श्रेष्ठी-अनुश्रेष्ठियोंके कुलके लड़कों—विमल, सुबाहु, पूर्णजित् और गवांपतिने सुना, कि यश कुल-पुत्र शिर-दाढ़ी मुड़ा, काषायवस्त्र पहिन, घरसे बेघर हो प्रव्रजित हो गया । सुनकर उनके (चित्तमें) हुआ—" वह [1]धर्म-विनय छोटा न होगा, वह प्रव्रज्या (=संन्यास) छोटी न होगी, जिसमें यशकुलपुत्र शिर-दाढ़ी मुड़ा,

[1] धार्मिक सम्प्रदाय ।

काषाय-वस्त्र पहिन, घरसे बेघर हो, प्रव्रजित हो गया ।" वह वहांसे आयुष्मान् यशके पास आये । आकर आयुष्मान् यशको अभिवादनकर एक ओर खड़े हो गये । तब आयुष्मान् यश उन चारों गृहीमित्रों सहित जहाँ भगवान् थे, वहां आये । आकर भगवान्‌को अभिवादन कर एक ओर बैठ गये । एक ओर बैठे हुए आयुष्मान् यशने भगवान्‌को कहा—" भन्ते ! यह मेरे चार गृहीमित्र वाराणसीके श्रेष्ठी-अनुश्रेष्ठियोंके कुलके लड़के—विमल, सुबाहु, पूर्णजित और गवाम्पति—हैं । इन्हें भगवान् उपदेश करें=अनुशासन करें" । उनको भगवान्‌ने ०[1]आनुपूर्विक कथा कही० । वह भगवान्‌के धर्ममें विशारद=स्वतन्त्र हो, भगवान्‌से बोले—" भन्ते ! भगवान्‌के पाससे हमें प्रव्रज्या मिले, उपसम्पदा मिले ।" भगवान्‌ने कहा—

" भिक्षुओ ! आओ धर्म सु-आख्यात है । अच्छी तरह दुःखके क्षयके लिये ब्रह्मचर्यका पालन करो ।" यही उन आयुष्मानोंकी सम्पदा हुई । तब भगवान्‌ने उन भिक्षुओंको धार्मिक कथाओं द्वारा उपदेश दिया=अनुशासना की ।···(जिससे) अलिप्तहो उनके चित्त आस्रवोंसे मुक्त हो गये । उस समय लोकमें ग्यारह अर्हत् थे ।

आयुष्मान् यशके ग्रामवासी (=जानपद=देहाती) पुराने खान्दानोंके पुत्र, पचास गृहीमित्रोंने सुना, कि यश कुलपुत्र ···प्रव्रजित होगया । सुनकर उनके चित्तमें हुआ—"वह धर्म-विनय छोटा न होगा···, जिसमें यशकुल-पुत्र...प्रव्रजित होगया ।" वह आयुष्मान् यशके पास आये ।···आयुष्मान् यश उनचारों गृहीमित्रों सहित···भगवान्‌के पास···आये ।···भगवान्‌ने···निष्कर्मताका महात्म्य वर्णन किया··· । वह···विशारदहो भगवान्‌से बोले—"हमें उपसम्पदा मिले"··· । ··उन आयुष्मानोंकी उपसम्पदा हुई··· । तब भगवान्‌ने···उपदेश दिया ।....(जिससे) अलिप्त हो उनके चित्त आस्रवोंसे मुक्त होगये । उस समय लोकमें एकसठ अर्हत थे ।

(६)

चारिका-सुत्त। उपसंपदा-प्रकार। भद्रवर्गीयोंका संन्यास। काश्यप-बंधुओं का संन्यास।

[1]भगवान्ने भिक्षुओंको सम्बोधित किया—"भिक्षुओ! जितने (भी) दिव्य और मानुष पाश (=बन्धन) हैं। मैं (उन सबों) से मुक्त हूँ, तुमभी दिव्य और मानुष पाशोंसे मुक्त होओ। भिक्षुओ! बहु-जन-हितार्थ (=बहुत जनोंके हितके लिये), बहु-जन-सुखार्थ (=बहुत जनोंके सुखके लिये), लोकपर दया करनेके लिये, देवताओं और मनुष्योंके प्रयोजनके लिये, हितके लिये, सुखके लिये चारिका चरण (=विचरण) करो। एकसाथ दो मत जाओ। हे भिक्षुओ! आदिमें कल्याण-(कारक) मध्यमें कल्याण (-कारक) अन्तमें कल्याण (-कारक) (इस) धर्मका उपदेश करो। अर्थ सहित=व्यंजन-सहित, केवल (=अमिश्र) परिपूर्ण परिशुद्ध ब्रह्मचर्यका प्रकाश करो। अल्प दोषवाले प्राणी (भी) हैं, धर्मके न श्रवण करनेसे उनकी हानि होगी। (सुननेसे वह) धर्मके जाननेवाले होंगे। भिक्षुओ! मैं भी जहां उरुवेला है, जहां सेनानी ग्राम है, वहां धर्म-देशनाके लिये जाऊँगा ...।"

[2]उस समय नानादिशाओंसे नाना जनपदोंसे भिक्षु, प्रव्रज्याकी इच्छावाले, उपसम्पदाकी अपेक्षावाले (आदमियोंको) लातेथे, कि भगवान् उन्हें परिव्राजक बनावें, उपसम्पन्न करें। इससे भिक्षुभी हैरान होते थे, प्रव्रज्या-उपसम्पदा चाहने वालेभी। एकान्तस्थित ध्यानावस्थित भगवान्के चित्तमें (विचार) हुआ, "क्यों न भिक्षुओंको ही अनुज्ञा दे दूं, कि भिक्षुओ! तुम्हीं उन उन दिशाओंमें, उन उन जनपदोंमें प्रव्रजित बनाओ, उपसम्पन्न करो"। इसलिये भगवान्ने संध्या समय भिक्षु-संघको एकत्रितकर धर्मकथा कह, संबोधित किया—"भिक्षुओ! एकान्तमें स्थित, ध्यानावस्थित०। इसलिये, हे भिक्षुओ मैं स्वीकृति देता हूँ"—अब तुम्हेंही उन उन दिशाओंमें, उन उन देशोंमें प्रव्रज्या देनी चाहिये, उपसम्पदा देनी चाहिये। और उपसम्पदा देनेका प्रकार यह है—पहिले शिर दाढ़ी मुड़वाकर, काषाय-वस्त्र पहनाकर, उपरना एक कंधेपर कराकर, भिक्षुओंको पाद-वंदना कराकर, उकड़ूं बैठाकर, हाथ जोड़वाकर "ऐसे बोलो" कहना चाहिये—"बुद्धकी शरण लेता हूं, धर्मकी शरण लेता हूं, संघकी शरण लेता हूं। दूसरी बारभी बुद्धकी० धर्मकी० संघकी शरण लेता हूं। तीसरी बारभी बुद्धकी०, धर्मकी० संघकी शरण लेता हूं। इनतीनशरणागमनोंसे प्रव्रज्या और उपसम्पदा (देनेकी) अनुज्ञा देता हूं"।

[3]भगवान् वाराणसीमें इच्छानुसार विहारकर, (साठ भिक्षुओंको भिन्न भिन्न दिशाओंमें भेजकर), जिधर उरुवेला है, उधर चारिका (=विचरण)के लिये चल दिये। भगवान् मार्गसे हटकर एक [4]वन-खंडमें पहुँच, वन-खंडके भीतर एक वृक्षके नीचे जा बैठे। उस समय भद्रवर्गीय (नामक) तीस मित्र अपनी स्त्रियों सहित उसी वन-खंडमें विनोद करते थे। (उनमें)

---

१. संयुत्त-नि० ४:१:४ महावग्ग १। २. महावग्ग १। ३. जातक. निदान।
४. कप्पासिय वन-संड (जातक. नि.)

एकको पत्नी न थी। उसकेलिये वेश्या लाई गई थी। वह वेश्या उनके नशामें हो घूमते वक्त, आभूषण आदि लेकर भाग गई। तब (सब) मित्रोंने (अपने) मित्रकी मददमें उस स्त्रीको खोजते हुए उस वन-खंडको हींडते, वृक्षके नीचे बैठे भगवान्‌को देखा। (फिर) जहाँ भगवान् थे, वहाँ गये। जाकर भगवान्‌से बोले—"भन्ते! भगवान्‌ने (किसी) स्त्रीको तो नहीं देखा?"

"कुमारो! तुम्हें स्त्रीसे क्या है?"

"भन्ते! वह भद्रवर्गीय (नामक) तीस मित्र (अपनी २) पत्नियों सहित इस वन-खंडमें सैरविनोद कर रहे थे। एकको पत्नी न थी, उसके लिये वेश्या लाई गई थी। भन्ते! वह वेश्या हमलोगोंके नशामें हो घूमते वक्त आभूषण आदि लेकर भाग गई। सो भन्ते! हमलोग मित्रकी मददमें, उस स्त्रीको खोजते हुये, इस वन-खंडको हींड रहे हैं।"

"तो कुमारो! क्या समझतेहो, तुम्हारे लिये कौन उत्तम होगा; यदि तुम स्त्रीको ढूँढो, अथवा तुम अपने (=आत्मा) को ढूँढो।"

"भन्ते! हमारे लिये यही उत्तम है, यदि हम अपनेको ढूँढें।"

"तो कुमारो! बैठो, मैं तुम्हें धर्म-उपदेश करता हूँ।"

"अच्छा, भन्ते!" कह, वह भद्रवर्गीय मित्र भगवान्‌को वन्दनाकर, एक ओर बैठ गये। उनको भगवान्‌ने आनुपूर्वी कथा०[1] कही।...भगवान्‌के धर्ममें विशारद हो...भगवान्‌से बोले—...भगवान्‌के हाथसे हमें प्रव्रज्या मिले...। वही उन आयुष्मानोंकी उपसम्पदा हुई।

वहाँसे भगवान् क्रमशः विचरते हुये...उरुवेला पहुँचे। उस समय उरुवेलामें तीन [2]जटिल (=जटाधारी)—उरुवेल-काश्यप, नदी-काश्यप और गया-काश्यप—वास करते थे। उनमें उरुवेल-काश्यप जटिल पाँचसौ जटिलोंका नायक=विनायक=अग्र=प्रमुख=प्रामुख्य था। नदी-काश्यप जटिल तीनसौ जटिलोंका नायक०। गया-काश्यप जटिल दोसौ जटिलोंका नायक०। तब भगवान्‌ने उरुवेल-काश्यप जटिलके आश्रमपर पहुँच, उरुवेल-काश्यप जटिलसे बोले—"हे काश्यप! यदि तुझे भारी न हो, तो मैं एकरात (तेरी) अग्निशालामें वास करूँ।"

"महाश्रमण! मुझे भारी नहीं है (लेकिन), यहाँ एक बड़ाही चंड, दिव्य-शक्तिधारी, आशी-विष=घोर-विष नागराज है। वह तुम्हें हानि न पहुँचावे।"

दूसरी बारभी भगवान्‌ने उरुवेल-काश्यप जटिलको कहा—"...।"

तीसरी बारभी भगवान्‌ने उरुवेल-काश्यप जटिलको कहा—"....।"

"काश्यप! नाग मुझे हानि न पहुँचावेगा, तू मुझे अग्निशालाकी स्वीकृति दे दे।"

"महाश्रमण! सुखसे विहार करो।"

तब भगवान् अग्निशालामें प्रविष्टहो तृण बिछा, आसन बाँध, शरीरको सीधारख, स्मृतिको थिरकर बैठ गये। भगवान्‌को भीतर आया देख, नाग क्रुद्धहो धूआँ देने लगा। भगवान्‌के

---

१. पृष्ठ देखो

२. उस समयके ब्राह्मणोंका एक सम्प्रदाय, जो ब्रह्मचारी, जटाधारी, अग्निहोत्री होते थे।

(मनमें) हुआ—क्यों न मैं इस नागके छाल, चर्म, मांस, नस, हड्डी, मज्जाको विना हानि पहुँचाये, (अपने) तेजसे (इसके) तेजको खींच लूं।" फिर भगवान्‌भी वैसेही योगवलसे धूँआं देने लगे। तव वह नाग कोपको सहन न कर प्रज्वलित हो उठा। भगवान्‌भी तेज-महाभूत (=धातु) में समाधिस्थ हो प्रज्वलित हो उठे। उन दोनोंके ज्योतिरूप होनेसे, वह अग्निशाला जलती हुई=प्रज्वलितसी जान पड़ने लगी। तव वह जटिल अग्निशालाको चारों ओरसे घेर, यों कहने लगे—"हाय! परम-सुन्दर महाश्रमण नागद्वारा मारा जा रहा है।" भगवान्‌ने उस रातके वीत जानेपर, उस नागके छाल, चर्म, मांस, नस, हड्डी, मज्जाको विना हानि पहुँचाये, (अपने) तेजसे (उसका) तेज खींचकर, पात्रमें रख (उसे) उरुवेल-काश्यप जटिल को दिखाया—"हे काश्यप! यह तेरा नाग है, (अपने) तेजसे (मैंने) इसका तेज खींच लिया है। तव उरुवेल-काश्यप जटिलके (मनमें) हुआ—महादिव्यशक्तिवाला=महा-अनुभाव-वाला[1] महाश्रमण है; जिसने कि दिव्यशक्ति-संपन्न आशी-विष=घोर-विष चण्ड नागराजका तेज (अपने) तेजसे खींच लिया।…। भगवान्‌के इस चमत्कार (=ऋद्धि-प्रति-हार्य) से उरुवेल-काश्यप जटिलने भगवान्‌को कहा— "महाश्रमण! यहीं विहार करो, मैं नित्य भोजनसे तुम्हारी (सेवा करूँगा)।"

भगवान् उरुवेल-काश्यप जटिलके आश्रमके समीप-वर्ती एक वन-खण्डमें,…उरुवेल काश्यपका दिया भोजन ग्रहण करते हुए, विहार करने लगे।

उस समय उरुवेल-काश्यप जटिलको एक महायज्ञ आ उपस्थित हुआ। जिसमें सारेके सारे अंग-मगध-निवासी वहुतसा खाद्य भोज्य लेकर आनेवाले थे। तव उरुवेल काश्यपके चित्तमें (विचार) हुआ—"इस समय मेरा महायज्ञ आ उपस्थित हुआ है, सारे अंग-मगधवाले वहुतसा खाद्य भोज्य लेकर आयेंगे। यदि महाश्रमणने जन-समुदायमें चमत्कार दिखलाया, तो महाश्रमणका लाभ और सत्कार वढ़ेगा मेरा लाभ, सत्कार घटेगा। अच्छा होता यदि महाश्रमण कल (से) न आता।" भगवान्‌ने उरुवेल-काश्यप जटिलके चित्तका वितर्क (अपने) चित्तसे जान, [2]उत्तर-कुरु जा, वहांसे भिक्षान्न ले अनवतप्त [3]सरोवर (द्रह) पर भोजनकर, वहीं दिनको विहार किया। उरुवेल-काश्यप जटिल उस रातके वीत जानेपर, भगवान्‌के…पासजा… वोला—"महाश्रमण! (भोजनका) समय है, भात तय्यार होगया। महाश्रमण! कल क्यों नहीं आये? हमलोग आपको याद करतेथे—क्यों नहीं आये? आपके खाद्य-भोज्यका भाग रक्खा है।"

"काश्यप! क्यों? क्या तेरे मनमें (कल) यह न हुआ था, कि इस समय मेरा महायज्ञ आ उपस्थित हुआ है० महाश्रमणका लाभसत्कार वढ़ैगा०? इसीलिये काश्यप! तेरे चित्तके वितर्कको (अपने) चित्तसे जान, मैंने उत्तरकुरु जा, अनवतप्त सरोवर पर० वहीं दिनको विहार किया।" तव उरुवेल-काश्यप जटिलको हुआ—महाश्रमण महानुभाव दिव्य-शक्तिधारी है, जोकि (अपने) चित्तसे (दूसरेका) चित्त जानलेता है। तोभी यह (वैसा) अर्हत नहीं है, जैसा कि मैं।"

---

१. महावग्ग १। २. मेरुपर्वतकी उत्तर दिशामें अवस्थित द्वीप। ३. मानसरोवर झील।

तब भगवान्‌ने उरुवेल-काश्यपका भोजन ग्रहणकर उसी वन-खंडमें (जा) विहार किया ।···

एक समय भगवान्‌को पांसु-कूल (=पुराने चीथड़े) प्राप्तहुये । भगवान्‌के दिलमें हुआ,—"मैं पांसु-कूलोंको कहां धोऊँ" । तब देवोंके इन्द्र शक्रने, भगवान्‌के चित्तकी बातजान··· हाथसे पुष्करिणी खोदकर, भगवान्‌को कहा—"भन्ते ! भगवान् ! (यहां) पांसुकूल धोवें" । तब भगवान्‌को हुआ—"मैं पांसुकूलोंको कहां उपछूं (=पीटूं)"···इन्द्रने···(वहां) बड़ीभारी शिला डालदी···। तब भगवान्‌को हुआ—"मैं किसका आलम्बले (नीचे) उतरूँ" ?··· इन्द्रने···शाखा लटका दी···। मैं पांसुकूलों को कहां फैलाऊँ ?···इन्द्रने···एक बड़ीभारी शारी डालदी···। उस रातके बीतजानेपर, उरुवेल-काश्यप जटिलने, जहां भगवान् थे, वहां पहुँच, भगवान्‌से कहा—"महाश्रमण ! (भोजनका) समय है, भात तय्यार होगया है । महाश्रमण ! यह क्या ? यह पुष्करिणी पहिले यहां न थी !···। पहिले यह शिलायें (भी) यहां नथीं ; यहांपर शिलायें डाली किसने ? इस ककुध (वृक्ष) की शाखा (भी) पहिले लटकी नथी, सो यह लटकी है ।"

"मुझे काश्यप ! पांसुकूल प्राप्त हुआ०···" उरुवेल-काश्यप जटिलके (मनमें) हुआ —"महाश्रमण दिव्य-शक्ति-धारी है ! महा-अनुभाव-वाला है···। तोभी यह वैसा अर्हत् नहीं है, जैसा कि मैं" । भगवान्‌ने उरुवेल-काश्यपका भोजन ग्रहणकर, उसी वन-खंडमें विहार किया ।

एक समय बड़ाभारी अकालमेघ बरसा । जलकी बड़ी बाढ़ आगई । जिस प्रदेशमें भगवान् विहार करतेथे, वह पानीसे डूबगया·· तब भगवान्‌को हुआ—"क्योंन मैं चारोंओरसे पानी हटाकर, बीचमें धूलियुक्त भूमिपर चंक्रमण करूँ (टहलूं) ?" भगवान्···पानी हटाकर··· धूलि-युक्त भूमिपर टहलने लगे । उरुवेल-काश्यप जटिल—"अरे ! महाश्रमण जलमें डूब न गया हो !!" (यह सोच) नाव ले, बहुतसे जटिलोंके साथ जिस प्रदेशमें भगवान् विहार करते थे, वहां गया । (उसने)···भगवान्‌को···धूलि-युक्त भूमिपर टहलते देखा । देखकर भगवान्‌से बोला—"महाश्रमण यह तुमहो ?" "यह मैं हूँ" कह भगवान् आकाशमें उड़,नावमें आकर खड़े होगये । तब उरुवेल-काश्यप जटिलको हुआ—"महाश्रमण दिव्य शक्ति-धारी है हो ! किन्तु यह वैसा अर्हत नहीं है, जैसाकि मैं" । तब भगवान्‌को (विचार) हुआ "चिरकाल तक इस मूर्ख (=मोघपुरुष) को यह (विचार) होता रहेगा—कि महाश्रमण दिव्य-शक्ति-धारी है ; किन्तु यह वैसा अर्हत् नहीं है, जैसा कि मैं । क्यों न मैं इस जटिलको संवेजन करूँ ? ।" तब भगवान्‌ने उरुवेल-काश्यप जटिलको कहा—"काश्यप ! नतो तू अर्हत है, न अर्हतके मार्गपर आरूढ़ । वह सूझभी तुझे नहीं है, जिससे अर्हत होवे, या अर्हत्‌के मार्गपर आरूढ़ होवे ।" उरुवेल-काश्यप जटिल भगवान्‌के पैरों पर शिर रख,भगवान्‌से बोला—"भन्ते ! भगवान्‌के पाससे मुझे प्रव्रज्या मिले, उपसम्पदा मिले"

---

१. रास्ता या कूड़ों पर फेंके चीथड़े ।

काश्यप बंधुओं का संन्यास ।

"काश्यप ! तू पांचसौ जटिलोंका नायक···है। उनको भी देख···"। तब उरुवेल काश्यप जटिलने···जाकर, उन जटिलोंसे कहा—"मैं महाश्रमणके पास ब्रह्मचर्य-ग्रहण करना चाहता हूं; तुमलोगों की जो इच्छा हो सो करो'

"देखो ! हम महाश्रमणसे प्रसन्न हैं, यदि आप महाश्रमणके पास ब्रह्मचर्य-चरण करेंगे, (तो) हम सभी महाश्रमणके पास ब्रह्मचर्य-चरण करेंगे" ।

वह सभी जटिल केश-सामग्री, जटा-सामग्री, [1]खारीकी, घीकी सामग्री, अग्निहोत्र-सामग्री (आदि अपने सामानको) जलमें प्रवाहितकर, भगवान्‌के पास गये । जाकर भगवान्‌के चरणों पर शिर झुका बोले—" भन्ते ! हम भगवान्‌के पास प्रव्रज्या पावें, उपसम्पदा पावें ।"

" भिक्षुओ ! आओ धर्म सु-अख्यात है, भली प्रकार दुःखके अन्त करनेके लिये ब्रह्मचर्य पालन करो ।"

यही उन आयुष्मानोंकी उपसंपदा हुई ।

नदी-काश्यप जटिलने केश-सामग्री, जटा-सामग्री, खारीकी घीकी सामग्री, अग्निहोत्र-सामग्री नदीमें बहती हुई देखी । देखकर उसको हुआ—"अरे ! मेरे भाईको कुछ अनिष्ट तो नहीं हुआ है," (और) जटिलोंको—"जाओ, मेरे भाईको देखो तो"; (और) स्वयंभी तीनसौ जटिलोंको साथले, जहां आयुष्मान् उरुवेल-काश्यप थे, वहां गया ; और जाकर बोला—" काश्यप ! क्या यह अच्छा है ?"

" हां, आवुस ! यह अच्छा है ।"

तब वह जटिलभी केश-सामग्री···जलमें प्रवाहितकर, जहां भगवान्‌थे वहां गये । जाकर ···बोले—" पावें हम भन्ते ! ···उपसम्पदा ।" ···वही उन आयुष्मानोंकी उपसम्पदा हुई ।

गया-काश्यप जटिलने केश-सामग्री नदीमें बहती देखी ।···"काश्यप ! क्या यह अच्छा है ?" "हां ! आवुस ! यह अच्छा है ।" ···यही उन आयुष्मानोंकी उपसम्पदा हुई ।

" तब भगवान् उरुवेलामें इच्छानुसार विहारकर, सभी एकसहस्र पुराने जटिल भिक्षुओं के महाभिक्षु-संघके साथ गया में गये ।

आदित्त-परियाय-सुत्त । राजगृहमें बिंबसारकी दीक्षा । (ब्रि. पू. ४७०)

[1]ऐसा मैंने सुना—एक समय भगवान् एक हजार भिक्षुओंके साथ गयामें [2]गया-सीसपर विहार करते थे । वहाँ भगवान्ने भिक्षुओंको आमन्त्रित किया—" भिक्षुओ ! सभी जल रहा है । क्या जल रहा है ? चक्षु जल रही, रूप जल रहा है, चक्षुका विज्ञान[3] जल रहा है, चक्षुका संस्पर्श जल रहा है, और चक्षुके संस्पर्शके कारण जो वेदनायें—सुख, दुःख, न-सुख-न-दुख—उत्पन्न होती हैं, वह भी जल रही हैं ?—राग-अग्निसे, द्वेषअग्निसे, मोह-अग्निसे जल रही हैं । जन्म, जरासे, और मरणके योगसे, रोने-पीटनेसे, दुःखसे, दुर्मनतासे, परेशानीसे जल रही है—यह मैं कहता हूँ ।

श्रोत्र० । ०शब्द० । ०श्रोत्र-विज्ञान० । ०श्रोत्रका-संस्पर्श० । ०श्रोत्रके संस्पर्शके कारण (उत्पन्न) वेदनायें० । घ्राण (=नासिका-इन्द्रिय)···गंध···घ्राण-विज्ञान जल रहे हैं । घ्राणका संस्पर्श जल रहा है···यह मैं कहता हूँ । जिह्वा० । ०रस० । ०जिह्वा-विज्ञान० । ०जिह्वा-संस्पर्श० । ०जिह्वा-संस्पर्शके कारण (उत्पन्न) वेदनायें०···०जल रही हैं ।···यह मैं कहता हूँ । काया०-०स्प्रष्टव्य०···काय-विज्ञान०···०काय-संस्पर्श···काय-संस्पर्शसे (उत्पन्न) वेदनायें०···०जल रही हैं ।०....मन० ··०धर्म०···०मनो-विज्ञान०···०मन-संस्पर्श···मन-संस्पर्शसे (उत्पन्न) वेदनायें जलरही हैं । किससे जलरही है । राग-अग्निसे द्वेष-अग्निसे मोह-अग्निसे जलरही हैं । जन्म,जरा और मरणके योगसे जल रही हैं, रोने-पीटनेसे दुःखसे दुर्मनता से जलरही हैं"— यह मैं कहता हूँ ।

भिक्षुओ ! ऐसा देख, (धर्मको) सुननेवाला [4]आर्यश्रावक चक्षुसे [5]निर्वेद-प्राप्त होता है, रूपसे निर्वेद-प्राप्त होता है, चक्षु-विज्ञानसे निर्वेद-प्राप्त होता है, चक्षु-संस्पर्शसे निर्वेद-प्राप्त होता है, चक्षु-संस्पर्शसे[6] निर्वेद-प्राप्त होता है ; चक्षु-संस्पर्शके कारण जो यह उत्पन्न होती है वेदना-सुख, दुःख, नसुख—नदुःख—उससे भी निर्वेद-प्राप्त होता है ।

श्रोत्र० । शब्द० । श्रोत्र विज्ञान० । श्रोत्र-संस्पर्श० । श्रोत्र-संस्पर्शके कारण (उत्पन्न) वेदना० ।घ्राण० । गंध० । घ्राण-विज्ञान० । घ्राण-संस्पर्श० । घ्राण-संस्पर्शके कारण (उत्पन्न) वेदना० । जिह्वा० । रस० । जिह्वा-विज्ञान० । जिह्वा-संस्पर्श० । जिह्वा-संस्पर्शके कारण (उत्पन्न) वेदना० । काय० । [6]स्प्रष्टव्य० । काय-विज्ञान० । काय-संस्पर्श० । काय-संस्पर्शके कारण (उत्पन्न) वेदना० ।

मनसे निर्वेद-प्राप्त होता है । धर्मसे निर्वेद-प्राप्त होता है । मनो-विज्ञानसे निर्वेद-प्राप्त होता है । मन-संस्पर्शसे निर्वेद-प्राप्त होता है । मन-संस्पर्शके कारण जो यह वेदना—सुख, दुःख, नसुख-नदुःख उत्पन्न होती है उससे भी निर्वेद-प्राप्त होता है ।

---

१. संयुत्त. नि. ४३:३:६ । महावग्ग १: २. गयासीस, गयाका ब्राह्मयोनि पर्वत है । ३. इन्द्रिय और विषयके सम्बन्ध से जो ज्ञान होता है । ४. स्रोतआपन्न, सकृदागामी, अनागामी, अर्हत् । ५. वैराग्यकी पूर्वा अवस्था । ६. शीत, उष्ण आदि ।

बिंबसारकी दीक्षा ।

निर्वेद-प्राप्त हो विरक्त होता है । विरक्त होनेसे विमुक्त होता है । विमुक्त होनेपर "मैं विमुक्त हूँ" यह ज्ञान होता है । वह जानता है–"जन्म क्षीण हो गया, ब्रह्मचर्य पूरा हो गया, कर्तव्य कर चुका, और यहां कुछ (बाकी) नहीं है ।" इस व्याकरण (=व्याख्यान) के कहे जाते वक्त उन हजार भिक्षुओंके चित्त अलिप्त हो आस्रवोंसे छूट गये ।...

[1]भगवान् गयासीसमें इच्छानुसार विहारकर, ([2]राजा बिंबसारको दी प्रतिज्ञा स्मरणकर) सभी एक हजार पुराने जटिल भिक्षुओंके महान् भिक्षु-संघके साथ, चारिकाके लिये चल दिये । भगवान् क्रमशः चारिका करते, राज-गृह पहुँचे । वहां भगवान् राजगृहमें [3]लट्ठि (यष्टि) वनके "सुप्रतिष्ठित" चैत्यमें ठहरे ।

मगध-राज श्रेणिक बिंबसारने (अपने मालीके मुँहसे) सुना, कि शाक्यकुलसे प्रव्रजित शाक्यपुत्र श्रमण गौतम राजगृहमें पहुँच गये हैं । राजगृहमें लट्ठि(=यष्टि)वनके "सुप्रतिष्ठित" चैत्यमें विहार कर रहे हैं । उन भगवान् गौतमकी ऐसी मंगल-कीर्ति फैली हुई है—"वह भगवान् अर्हत् हैं, सम्यक्-संबुद्ध हैं, विद्या और आचरणसे युक्त हैं, सुगत हैं, लोकोंके जानने वाले हैं; उनसे उत्तम कोई नहीं है, ऐसे (वह) पुरुषोंके चाबुक-सवार हैं, देवताओं और मनुष्योंके शास्ता (=उपदेशक) हैं—(ऐसे वह) बुद्ध भगवान् हैं ।" वह ब्रह्मलोक, मारलोक, देवलोक, सहित इस लोकको, देव-मनुष्य-सहित श्रमण-ब्राह्मण-युक्त (सभी) प्रजाको, स्वयं समझ=साक्षात्कारकर जनाते हैं । वह आदिमें कल्याण(-कारक), मध्यमें कल्याण(-कारक), अन्तमें कल्याण(-कारक) धर्मका, अर्थ-सहित=व्यञ्जन-सहित उपदेश करते हैं । वह केवल परिपूर्ण परिशुद्ध ब्रह्मचर्यका प्रकाश करते हैं । इस प्रकारके अर्हत् लोगोंका दर्शन करना उत्तम है ।"

मगध-राज श्रेणिक बिंबसार १२ नियुत[4] मगध-निवासी ब्राह्मणों और गृहपतियोंके साथ जहां भगवान् थे वहां गये । जाकर भगवान्को अभिवादनकर एक ओर बैठ गये । वह १२ नियुत मगधवासी ब्राह्मण गृहपति भी–कोई भगवान्को अभिवादनकर, कोई भगवान्से कुशल प्रश्न पूछकर, कोई भगवान्की ओर हाथ जोड़कर, कोई भगवान्को नाम-गोत्र सुनाकर, कोई कोई चुप-चापही एक ओर बैठ गये । तब उन १२ नियुत मगधके ब्राह्मणों, गृहपतियोंके (चित्तमें) होने लगा—

"क्योंजी ! महाश्रमण (गौतम) उरुवेल-काश्यपके पास ब्रह्मचर्य-चरण करता है, अथवा उरुवेल-काश्यप महाश्रमणके पास ब्रह्मचर्य चरण करता है ?"

तब भगवान्ने उस १२ नियुत मगध-वासी ब्राह्मणों गृहपतियोंके चित्तके वितर्कको चित्तसे जान, आयुष्मान् उरुवेल-काश्यपको गाथामें कहा—

"क्या देखकर हे उरुवेल-वासी ! तपः कृशोंके उपदेशक ! (तूने) आग छोड़ी ? काश्यप ! तुमसे यह बात पूछता हूं, तुम्हारा अग्निहोत्र कैसे छूटा ?"

(काश्यपने कहा)—"रूप, शब्द और रसमें कामभोगोंमें स्त्रियोंमें रूपशब्द, और रसमें हवन, काम-भोगोंमें रूपशब्द और में रस [5]कामेष्टि-यज्ञ कहते हैं । यह (रागादि उपधियां मल हैं, (मैंने) यह जान लिया, इसलिये मैं [6]इष्ट और हुतसे विरक्त हुआ ।"

---

१. महावग्ग १ २. जातक नि० ११ ३. राजगृह नगरके समीपवर्ती जठियांव (लट्ठिवन उद्यान) जातक. नि. ४. १२ लाख । ५. किसी कामनासे किया जाने वाला यज्ञ । ६. यज्ञ, हवन ।

भगवान्‌ने (कहा)—"हे काश्यप! रूप शब्द और रसमें तेरा मन नहीं रमा। तो देव-मनुष्य-लोकमें कहाँ मन रमा, काश्यप! इसे मुझे कह। काम-मदमें अविद्यमान, निर्लेप, शांत, उपधि(=रागादि)-रहित (निर्वाण-) पदको देखकर।

निर्विकार, दूसरेकी सहायतासे न पार होने वाले (निर्वाण-) पदको देखकर (मैं) इष्ट और हुतसे विरक्त हुआ।"

तब आयुष्मान् उरुवेल-काश्यप आसनसे उठ, उपरने (=उत्तरासंग) को एक कंधेपर कर, भगवान्‌के पैरोंपर शिर रख भगवान्‌से बोले—"भन्ते! भगवान् मेरे शास्ता (=गुरु) हैं, मैं श्रावक (=शिष्य) हूँ। भन्ते! भगवान् मेरे शास्ता हैं, मैं श्रावक हूँ।" तब उन १२ नियुत मगध-वासी ब्राह्मणों और गृहपतियों के (मनमें) हुआ—"उरुवेल-काश्यप महा-श्रमण के पास ब्रह्मचर्य चरता है।" तब भगवान्‌ने उन १२ नियुत मगध-वासी ब्राह्मणों और गृहपतियोंके चित्तकी बात चित्तसे जान आनुपूर्वी [1]कथा० कही०। तब बिंबसार आदि ११ नियुत मगध-वासी ब्राह्मणों और गृहपतियों को उसी आसनपर "जो कुछ समुदय धर्म है वह निरोध-धर्म है" यह विरज=निर्मल धर्म-चक्षु उत्पन्न हुआ; और एक नियुत उपासकत्वको प्राप्त हुये।

तब दृष्ट-धर्म=प्राप्त-धर्म=विदित-धर्म=पर्यवगाढ-धर्म, सन्देह-रहित, विवाद-रहित भगवान्‌के धर्ममें विशारद, स्वतंत्र हो, बिम्बसारने भगवान्‌से कहा—"भन्ते! पहिले कुमार-अवस्थामें मेरी पांच अभिलाषायें थीं, वह अब पूरी होगईं। भन्ते! पहिले कुमार अवस्थामें (चित्तमें) यह होता था—" (क्याही अच्छा होता) यदि मैं (राज्य—) अभिषिक्त होता।" यह मेरी...पहिली अभिलाषा थी, जो अब पूरी होगई है। "मेरे राज्यमें अर्हत् सम्यक्-संबुद्ध आते" यह मेरी...दूसरी अभिलाषा थी, वह भी अब पूरी होगई। "उन भगवान्‌की मैं पर्युपासना (=सेवा) करता"; यह मेरी तीसरी अभिलाषा थी, वह भी अब पूरी होगई। "वह भगवान् मुझे धर्म-उपदेश करते" यह मेरी चौथी अभिलाषा थी, वह भी अब पूरी होगई। "उन भगवान्‌को मैं जानता" यह पांचवीं अभिलाषा थी, वह भी अब पूरी होगई। आश्चर्य है! भन्ते! आश्चर्य है! भन्ते!! जैसे औंधेको सीधा कर दे, ढँकेको उघाड़ दे, भूलेको रास्ता बतला दे, अंधकारमें तेलकी रोशनी रख दे, जिसमें आंखवाले रूप देखें; ऐसेही भगवान्‌ने अनेक पर्याय (=प्रकार) से धर्मको प्रकाशित किया। इसलिये मैं भगवान्‌की शरण लेता हूँ, धर्म और भिक्षु-संघकी भी। आजसे भगवान् मुझे सांजलि शरण—आया उपासक जानें। भिक्षु-संघ-सहित कलके लिये मेरा निमन्त्रण स्वीकार करें।"

भगवान्‌ने मौन रह उसे स्वीकार किया। तब मगध-राज श्रेणिक बिम्बसार भगवान्‌की स्वीकृतिको जान, आसनसे उठ भगवान्‌को अभिवादन कर, प्रदक्षिणा कर चला गया। मगध-राज श्रेणिक बिम्बसारने उस रातके बीतनेपर, उत्तम खाद्य-भोज्य तय्यार करा, भगवान्‌को कालकी सूचना दी—भन्ते! काल होगया, भोजन तय्यार है। तब भगवान् पूर्वाह्ण समय सु-आच्छादित (हो), (भिक्षा-) पात्र और चीवर ले, सभी एक सहस्र पुराने जटिल-भिक्षुओंके महान् भिक्षुसंघके साथ राजगृहमें प्रविष्ट हुये।

बिम्बसारकी दीक्षा ।

तब भगवान्, जहां मगध-राज श्रेणिक बिम्बसारका घर था, वहां गये । जाकर भिक्षु-संघ-सहित बिछे आसनपर बैठे । तब मगधराज...बुद्ध-प्रमुख भिक्षु-संघको उत्तम खाद्य भोज्य ले अपने हाथसे संतृप्त कर, पूर्ण कर ; भगवान्‌के पात्रसे हाथ खींच लेनेपर एक ओर बैठ गये । एक ओर बैठे मगध-राज...के (चित्तमें) हुआ—" भगवान् कौनसी जगह विहार करें, जो कि गांवसे न बहुत दूर हो, न बहुत समीप हो, इच्छुकोंके पहुँचने, आने जाने लायक हो ; (जहां) दिनमें बहुत भीड़ न हो, (और) रातमें शब्द घोष कम हो ; लोगोंके हल्ले-गुल्लेसे रहित हो; मनुष्योंके लिये रहस्य (=एकान्त) स्थान हो, एकान्तवासके योग्य हो ? " तब मगध-राज... को हुआ —" यह हमारा वेलु (वेणु) वन उद्यान गांवसे न बहुत दूर है, न बहुत समीप० । एकान्तवासके योग्य है, क्यों न मैं वेणुवन उद्यान बुद्ध-प्रमुख भिक्षु-संघको प्रदान करूँ । "

तब मगध-राज··· ने भगवान्‌से निवेदन किया—"भन्ते ! मैं वेणुवन उद्यान बुद्ध-प्रमुख भिक्षु-संघको देता हूं ।"

भगवान् आराम (=आश्रमको) स्वीकार किये ; औरफिर मगध-राजको धर्म-संबंधी कथाओं द्वारा,····समुत्तेजितकर ··आसनसे उठकर चलेगये ।

भगवान्‌ने इसीके सम्बन्धमें धर्म-संबंधी कथा कह, भिक्षुओंको सम्बोधित किया—"भिक्षुओ ! आराम ग्रहण करनेकी अनुज्ञा देता हूं ।"

सारिपुत्र और मौद्गल्यायनका संन्यास। (वि॰ पू॰ ४७०)

[1]उस समय संजय (नामक) परिव्राजक राजगृहमें ढाईसौ परिव्राजकोंकी बड़ी जमातके साथ निवास करता था। सारिपुत्र, और मौद्गल्यायन, संजय परिव्राजकके पास ब्रह्मचर्य-चरण करते थे। उन्होंने (आपसमें) प्रतिज्ञाकी थी—जो पहिले अमृतको प्राप्तकरें, वह दूसरेको कहे। उस समय आयुष्मान् अश्वजित् पूर्वाह्ण समय सु-आच्छादित (हो), पात्र और चीवरले, अति सुन्दर = प्रतिक्रांत आलोकन = विलोकनके साथ, संकोचन और प्रसारणके साथ, नीची नजर रखते, संयमी ढंगसे, राजगृहमें भिक्षाके लिये प्रविष्ट हुये। सारिपुत्र परिव्राजकने आयुष्मान् अश्वजित्को अतिसुन्दर...आलोकन = विलोकनके साथ...नीची नज़र रखते संयमी ढंगसे राज-गृहमें भिक्षाके लिये घूमते देखा। देखकर उनको हुआ—"लोकमें अर्हत या अर्हत्के मार्गपर जो आरुढ हैं, यह भिक्षु उनमेंसे एक है। क्यों न मैं इस भिक्षुके पास जा पूछूँ—आवुस! तुम किसको (गुरु) करके प्रव्रजित हुये हो; कौन तुम्हारा शास्ता (=गुरु) है ?; तुम किसके धर्मको मानते हो ?" फिर सारिपुत्र परिव्राजक (के चित्तमें) हुआ—यह समय इस भिक्षुसे (प्रश्न) पूछनेका नहीं है, यह घर घर भिक्षाके लिये घूम रहा है। क्योंन मैं इस भिक्षुके पीछे होलूं "।

आयुष्मान् अश्वजित् राज-गृहमें भिक्षाके लिये घूमकर, भिक्षाको ले चलदिये। तब सारि-पुत्र परिव्राजक जहां आयुष्मान् अश्वजित थे, वहां गया; जाकर आयुष्मान् अश्वजित्के साथ यथायोग्य कुशल प्रश्न पूछ एक ओर खड़ा होगया। खड़े होकर सारिपुत्र परिव्राजकने आयुष्मान् अश्वजित्को कहा—"आवुस! तेरी इन्द्रियां प्रसन्न हैं, तेरे छवि-वर्ण परिशुद्ध तथा उज्वल हैं। आवुस! तुम किसको (गुरु) करके प्रव्रजित हुये हो, तुम्हारा शास्ता (=गुरु) कौन है ?; तुम किसका धर्म मानते हो ?"

"आवुस! शाक्य-कुलसे प्रव्रजित शाक्य-पुत्र (जो) महाश्रमण हैं, उन्हीं भगवान्को (गुरु) करके मैं प्रव्रजित हुआ। वही भगवान् मेरे शास्ता हैं। उन्ही भगवान्का धर्म मैं मानता हूं"।

"आयुष्मान्के शास्ता क्या वादी हैं = किस (सिद्धांत) को कहने वाले हैं ?"

"आवुस! मैं नया हूं, इस धर्ममें अभी नयाही प्रव्रजित हुआ हूं; विस्तारसे मैं तुम्हें नहीं बतला सकता। किंतु संक्षेपसे तुम्हें धर्म कहता हूँ।"

"तब सारिपुत्र परिव्राजकने आयुष्मान् अश्वजित्को कहा—"अच्छा आवुस—

अल्प या बहुत कहो, अर्थहीको मुझे बतलाओ।

अर्थही से मुझे प्रयोजन है, क्या करोगे बहुतसा [2]व्यंजनलेकर"।

तब आयुष्मान् अश्वजित्ने सारिपुत्र परिव्राजकको यह [3]धर्म-पर्याय कहा—

---

१. विनय, महावग्ग १। २. विस्तार, स्पष्टीकरण। ३. उपदेश।

"हेतु (=कारण) से उत्पन्न होनेवाले जितने धर्म (दुःख आदि) हैं, उनका हेतु (=समुदय) तथागत बतलाते हैं। उनका जो निरोध है (उसको भी बतलाते हैं), (जो यह समुदय, निरोध है) यही दुःख, महाश्रमणका वाद (=प्रतिपद्) है"। तब सारिपुत्र परिव्राजकको इस धर्म-पर्यायके सुननेसे—"जोकुछ समुदय-धर्म है, वह सब निरोध- धर्म है;" यह विरज=विमल धर्मचक्षु उत्पन्न हुआ।....

तब सारिपुत्र परिव्राजक जहाँ मोग्गल्लान परिव्राजक था, वहाँ गया। मौद्गल्यायन परिव्राजकने दूरसेही सारिपुत्र परिव्राजकको आते देखा। देखकर सारिपुत्र परिव्राजकको कहा—"आवुस ! तेरी इन्द्रियाँ प्रसन्न हैं, तेरे छवि-वर्ण परिशुद्ध तथा उज्वल हैं। तूने आवुस ! अमृत तो नहीं पा लिया ?"

"हाँ आवुस ! अमृत पालिया।"

"आवुस ! कैसे तूने अमृत पाया ?"

"आवुस ! मैंने यहाँ राजगृहमें अश्वजित्‌भिक्षुको अति सुन्दर...आलोकन=विलोकनमें ....भिक्षाके लिये घूमते देखकर...(सोचा) 'लोकमें जो अर्हत हैं...यह भिक्षु उनमेंसे एक है'। .. मैंने....अश्वजित्...को पूछा...तुम्हारा शास्ता कौन है...। अश्वजितने यह धर्म पर्याय कहा—हेतुसे उत्पन्न जितने धर्म हैं, उनका हेतु तथागत कहते हैं। (और) उनका जो निरोध है (उसको भी), यही महाश्रमणका वाद है।',

तब मौद्गल्यायन परिव्राजकको इस धर्म-पर्यायके सुननेसे—'जो कुछ समुदय-धर्म है, वह सब निरोध-धर्म है'—यह विमल=विरज धर्म-चक्षु उत्पन्न हुआ।...

मोग्गल्लान परिव्राजकने सारिपुत्र परिव्राजकसे कहा—"चलो चलें आवुस !! भगवान्‌के पास, वह हमारे शास्ता हैं। और यह (जो) ढाई सौ परिव्राजक हमारे आश्रयसे=हमें देखकर यहाँ विहार करते हैं; उन्हें भी देखलें (और कहदें)—जैसी तुम लोगोंकी रायहो वैसा करो—।" तब सारिपुत्र, मौद्गल्यायन जहाँ वह परिव्राजक थे वहाँ गये, और जाकर उन परिव्राजकोंसे बोले—"आवुसो ! हम भगवान्‌के पास जाते हैं, वह हमारे शास्ता हैं"।

"हम आयुष्मानोंके आश्रयसे=आयुष्मानोंको देखकर, यहाँ विहार करते हैं। यदि आयुष्मान् महाश्रमणके पास ब्रह्मचर्य चरण करेंगे, तो हम सभी महाश्रमणके पास ब्रह्मचर्य चरेंगे।"

तब सारिपुत्र और मौद्गल्यायन जहाँ संजय परिव्राजक था, वहाँ गये। जाकर संजय परिव्राजकसे बोले—

"आवुस ! हम भगवान्‌के पास जाते हैं, वह हमारे शास्ता हैं।"

"बस आवुसो ! मत जाओ। हम तीनों (मिलकर) इस (परिव्राजक)-गणकी महन्ताई करेंगे"

---

१. ये धम्मा हेतुप्पभवा, हेतुं तेसं तथागतो आह। तेसं च निरोधो एवं वादी, महासमनो॥

सारिपुत्र और मौद्गल्यायनका संन्यास।

"दूसरी वारभी सारिपुत्र और मौद्गल्यायनने संजय परिव्राजकको कहा—"...हम भगवान्‌के पास जाते हैं...।"

"...मत जाओ! हम तीनों (मिलकर) इस गणकी महन्ताई करेंगे।"

तीसरी वार भी···।

तब सारिपुत्र और मौद्गल्यायन उन ढाई सौ परिव्राजकोंको ले, जहां वेणुवन था, वहां चले गये। संजय परिव्राजकको वहीं मुँहसे गर्म खून निकल आया। भगवान्‌ने दूरसे ही सारिपुत्र और मौद्गल्यायनको आते हुये देख भिक्षुओंको संबोधित किया—

"भिक्षुओ! यह दो मित्र कोलित (=मौद्गल्यायन) और उपतिष्य (=सारिपुत्र) आ रहे हैं। यह मेरे अग्रश्रावक-युगल होंगे, भद्र-युगल होंगे।"...

तब सारिपुत्र और मौद्गल्यायन जहां भगवान् थे, वहां गये, जाकर भगवान्‌के चरणोंमें शिर झुकाकर बोले—

"भन्ते! हम भगवान्‌के पास प्रव्रज्या पावें, उपसम्पदा पावें।"

भगवान् ने कहा—"भिक्षुओ आओ धर्म सु-आख्यात है। अच्छी प्रकार दुःखके क्षयके लिये ब्रह्मचर्य-चरण करो।"

यही उन आयुष्मानोंकी उपसम्पदा हुई।

(१)

काश्यप-संन्यास (वि. पू. ४७०)

[1]यह पिप्ली नामका [2]माणवक मगध देशके महातित्थ (=महातीर्थ) नामक ब्राह्मणोंके गांवमें कपिलब्राह्मणकी प्रधान भार्याके गर्भसे उत्पन्न हुआ ।...भद्रा कापिलायनी [3]मद्रदेशके [4]सागल नगरमें कौशिक-गोत्र ब्राह्मणकी प्रमुख-भार्याके गर्भसे उत्पन्न हुई । क्रमसे बढ़ते २ पिप्पली माणवक बीस (वर्ष) और भद्रा कपिलायनी सोलह (वर्ष) की हुई । माता-पिताने पुत्रको देख—" तात ! तू वयःप्राप्त (=युवा) है, कुल-वंशको कायम रखना चाहिये " —कह बहुत ही जोर दिया । माणवकने कहा—"मेरे कानमें ऐसी बात मत कहिये । जब तक आपलोग हैं, तब तक (आपलोगोंकी) सेवा करूँगा । आपलोगोंके बाद निकलकर प्रव्रजित होऊँगा ।" वह कुछ दिन ठहर कर फिर बोले, पर उसने 'नहीं' किया । फिर कहा, फिर नहीं (=इन्कार) किया । उसके बाद माता बराबर कहतीही रहती । माणवकने ' माताको सचेत कर दूँ ' विचार, हजारलाल-सोनेके निष्क (=अशर्फी) दे सोनारसे एक स्त्री-मूर्ति बनवाकर, उसकी सफाईघुटाई आदि समाप्तहो जानेपर, उसे लाल-वस्त्र पहना ; रंग बिरंगे फूलों, और नाना प्रकारके अलंकारोंसे अलंकृत करा, माताको बुलाकर—' मां ! इस प्रकारका रूप पा, गृहस्थमें रहूंगा ' कहा । ब्राह्मणी पंडिता थी, उसने सोचा—" मेरा पुत्र पुण्यवान् है, (पूर्वजन्ममें) दान दिये ...हैं । पुण्य अकेले ही नहीं किये होंगे । अवश्य इसके साथ पुण्य करनेवाली (कोई) सुवर्ण-वर्णा (स्त्री) भी रही होगी ।" (और) आठ ब्राह्मणोंको बुलवा (उनकी) सब मुराद पूरीकर, सुवर्ण-प्रतिमाको रथपर रखवा—"तातो ! जाओ जहां कहीं जाति-गोत्र और भोगमें हमारे समान, ऐसी (सुवर्ण-वर्णा) कन्या देखना, इसी सुवर्ण-प्रतिमाको (विवाहके) पक्केपनकी जमानत रखकर, लौट आना " कह भेज दिया ।

वह " यह हमारा काम है,' कह, निकलकर, 'कहां जायें' सोच, (फिर) "मद्र-देश स्त्रियोंका आगार (=खजाना, खान) है, मद्र-देशको चलें" (विचार), मद्रदेशके सागल नगरमें गये । वहां उस सुवर्ण-प्रतिमाको नहानेके घाटपर रख, एक ओर बैठ गये । तब भद्राकी दाई, भद्राको नहलाकर, अलंकृतकर रङ्गमहल (श्रीगर्भ)के भीतर बैठाकर, स्वयं नहानेके लिये पानीके घाटपर आई । वहां उस सुवर्ण-प्रतिमाको देख—"यह कैसी विनय-शून्य है, (जो) यहां आकर खड़ी है" (सोच) पीठपर (थप्पड़) मारा । तब उसे पता लगा कि यह सुवर्ण-प्रतिमा है । "मैंने समझा (था) मेरी अय्य-धीता (=स्वामि-पुत्री) है, यह तो मेरी अय्य-धीताकी वस्त्र ले चलने वाली (लौंडी) जैसी भी नहीं है" वह बोली । तब उन मनुष्योंने उसे चारों ओरसे घेरकर पूछा "क्या तेरी स्वामि-पुत्री ऐसे रूपकी है ?'

"ऐसे रूपकी ? मेरी अय्या (=आर्या) इस सुवर्ण-प्रतिमासे सौ-गुना, हजार-गुना, लाख-गुना, (अधिक) सुन्दरी है । बारह हाथके घरमें बैठी होनेपरही दीपकका काम नहीं, शरीर की प्रभासे अन्धकार दूर हो जाता है ।"

---

१ थेरगाथा-अट्ठकथा. ३० । संयु० नि. अट्ठकथा १९.१.११ । अंगु. नि. अ. क. १.१.४ । २ ब्राह्मण-विद्यार्थी । ३ रावी और चनावके बीचका प्रदेश मद्रदेश है । ४ स्यालकोट (पंजाव) ।

"तो आ फिर" कह उस कुब्जाको ले, सुवर्ण-प्रतिमाको रथपर रख, कौशिक-गोत्र (ब्राह्मण) के द्वारपर जा, आगमनकी सूचनादी। ब्राह्मणने सत्कारकर पूछा—"कहाँसे आये हो?"

"मगध-देशमें महातित्थ ग्रामके कपिल ब्राह्मणके घरसे,—इस उद्देश्यसे (आये हैं)"

"अच्छा तातो! वह ब्राह्मण गोत्र, जाति, विभवमें हमारे समान है, मैं कन्या प्रदान करूँगा" कह, (उसने) भेंट स्वीकारकी।

उन्होंने कपिल ब्राह्मणको शासन (=संदेशपत्र) भेजा—"कन्या मिल गई, करना है सो करो।"

उस पत्रको सुन, उन्होंने पिप्पली माणवक को सूचित किया।...। माणवकने—"मैंने सोचा था, कि न मिलेगी; (और) यह कह रहे हैं कि मिल गई, मुझे नहीं चाहिये कहकर पत्र भेजना चाहिये" (सोच) एकांतमें बैठ पत्र लिखा—"भद्रा! अपने जाति, गोत्र, भोगके समान गृहवास पावो। मैं निकलकर प्रव्रजित होऊँगा, पीछे दुःखी न होना।" भद्राने भी मुझे अमुकको देना चाहते हैं, सुनकर, 'चिट्ठी भेजनी चाहिये' विचार, एकान्तमें बैठ पत्र लिखा—'आर्य-पुत्र! अपने जाति, गोत्र भोगके समान गृहवास पावो, मैं निकलकर प्रव्रजित होऊँगी; पीछे अफसोस न करना पड़े।" दोनों पत्र(-वाहक) रास्तेमें मिले।

"यह किसका पत्र है?"

"पिप्पली माणवकने भद्राके लिये भेजा है।"

"यह किसका?"

"भद्राने पिप्पली माणवकके लिये भेजा है" यह कहने पर "इन दोनोंको पढ़ो।" "देखो लड़कोंके कामको" (कह, पत्रवाहकोंने पत्र) फाड़कर जंगलमें फेंक, उसी प्रकार के दूसरे पत्र लिखकर...पहुँचा दिये। कुमार और कुमारीका अनुकूल-पत्र लोगोंकी प्रसन्नता की बात ठहरी। इस प्रकार अनिच्छा रखतेभी दोनोंका समागम हुआ।

उसी दिन पिप्पली माणवकने एक फूल-माला गुँथवाई, और भद्राने भी (एक)। उन (मालाओं) को पलंगके बीचमें रख दिया। ब्यालू करके दोनों सोने गये। माणवक दाहिनी ओरसे, और भद्रा बाईं ओरसे शयनारूढ हुई। वह एक दूसरेके शरीर-स्पर्शके भयसे रातको बिना निद्राकेही बिताते थे। दिनको हँसना तकभी न होता था। इस प्रकार सांसारिक सुखमें बिना लिप्त हुये, जब तक माता-पिता जीवित रहे, तब तक कुटुम्बका ख्याल न किया; उनके मरनेपर विचार करने लगे। माणवकके पास बड़ी भारी सम्पत्ति थी। शरीरको उबटनकर फेंक देनेका चूर्णही, मगधकी [1]नालीसे बारह नाली भर होता था। तालेके भीतर साठ बड़े चहबच्चे (=तड़ाक), बारह योजन तक (फैले) खेत, अनुराधपुर जैसे १४ दासोंके गांव, चौदह हाथियोंके झुण्ड, चौदह घोड़ोंके झुण्ड और चौदह रथोंके झुण्ड थे। उसने एक दिन अलंकृत घोड़ेपर चढ़, लोगोंसे घिरे खेतपर जा, खेतकी मेंड़ पर खड़े (हो), हलों द्वारा विदारित स्थानोंसे,

१. एक माप।

और आदि चिड़ियोंको (कीड़े केंचुवे) प्राणियोंको निकालकर खाते देखकर, पूछा-"तातो ! यह क्या खाते हैं ?"

"आर्य ! केंचुओंको"

"इनका किया पाप किसको लगेगा ?',

"आर्य ! तुम्हें"

उसने सोचा—"यदि इनका किया पाप मुझे होता है, तो सत्तासी करोड़ धन मेरा क्या करेगा ? बारह योजनकी खेती क्या (करेगी) ? तालमें बन्द बहुयन्त्र क्या (करेंगे) ? चौदह दास-ग्राम क्या (करेंगे) ? यह सब भद्रा कापिलायनीको सुपुर्दकर, निकलकर प्रव्रजित होजाऊं ।"

भद्रा कापिलायनी भी उस समय हवेलीके भीतर तिलके तीन घड़ोंको फैलवाकर, दाइयोंके साथ बैठी, तिलके कीड़ोंको खाते जाते देख—"अम्म ! यह क्या खाते हैं ?"

"आर्ये ! प्राणियोंको"

' पाप किसको होगा ?'

"तुम्हींको आर्ये !"

उसने सोचा—"मुझे तो सिर्फ चार हाथ वस्त्र और [1]नालीभर भात चाहिये । यदि इन सबका किया पाप मुझेही होता है, तो हजार जन्ममें भी शिर भँवरसे ऊपर नहीं किया जासकता । आर्य-पुत्रके आतेही (यह) सभी उनको सपुर्द कर, निकल कर प्रव्रजित होऊँगी ।"

माणवक आकर नहाकर प्रासादपर चढ़, बहुमूल्य पलंगपर बैठा । तब उसके लिये चक्रवर्तीके लायक भोजन सजाया गया । दोनों भोजनकर, परिजनोंके चले जानेपर, एकान्तमें अनुकूल-स्थानमें बैठे । तब माणवकने भद्राको कहा—

"भद्रे ! इस घरमें, आतेवक्त कितना धन साथ लाईथी ?'

"पचपन हजार गाड़ी, आर्य !"

"वह सब, और जो इस घरमें सत्तासी करोड़, (तथा) तालेमें बन्द साठ बहुयन्त्रे आदि सम्पत है, वह सब तुम्हेंही सपुर्द करता हूँ ।"

"और तुम कहाँ (जाते हो) आर्य ?"

"मैं प्रव्रजित होऊँगा"

"आर्य ! मैं भी तुम्हारे ही आनेकी प्रतीक्षामें बैठी थी, मैं भी प्रव्रजित होऊँगी" ।

वह-"हमारे तीनो भव (= लोक) जलती हुई फूसकी झोपड़ीके सदृश मालूम पड़ते हैं, हम प्रव्रजित होवेंगे" विचार; बाजार से वस्त्र, और मिट्टीका (भिक्षा-) पात्र मंगवा, एक दूसरेके केशोंको काटकर—"संसार में जो अर्हत् हैं, उन्हींके उद्देश्यसे हमारी यह प्रव्रज्या है" कह, प्रव्रजित हो, झोलीमें पात्र रखकर कंधेसे लटका, महलसे उतरे । घरमें दासों या कम-करोंमें से किसीने भी न जाना ।

---

१. प्रायः सेरभर ।

तब वह ब्राह्मण-ग्रामसे निकल दासोंके ग्रामके द्वारसे जानेलगे । आकार-प्रकारसे दास-ग्राम-वासियोंने उन्हें पहिचाना । वह रोते हुये पैरोंमें गिरकर बोले—

"आर्य ! हमको क्यों अनाथ बनारहे हो ?"

[1]"भणे ! हम तीनों भवोंको जलती फूसकी झोपड़ीसा समझ प्रव्रजित हुये हैं; यदि तुममेंसे एक एकको पृथक् [2] दासतासे मुक्त करें, तो सौ वर्षमें भी न होसकेगा । तुम्हीं अपने आप शिरोंको धोकर दासता-मुक्त होजावो ।" यह कह उन्हें रोते छोड़ चलेगये ।

आगे [2] चलते स्थविरने पीछे घूमकर देखा और सोचा—"इस सारे जम्बूद्वीपके मूल्यकी स्त्री (इस) भद्रा कापिलायनीको मेरे पीछे आते देख, हो सकता है, कोई सोचे—'यह प्रव्रजित होकर भी अलग नहीं हो सकते । अनुचित कर रहे हैं ।' कोई पापसे मन बिगाड़ नरक-गामी भी हो सकता है । (इसलिये) इसे छोड़कर (ही) मुझे जाना योग्य है ।" वह सामने जाकर रास्तेको दो तरफ फटता देख, उसपर खड़े हो गये । भद्रा भी जाकर वन्दना कर खड़ी होगई । तब उसको बोले—

"भद्रे ! तुझ स्त्रीको मेरे पीछे आते देख—'यह प्रव्रजित होकर भी अलग नहीं हो सकते'—यह सोच लोग हमारे विषयमें दूषित-चित्त हो, नरक-गामी बन सकते हैं । (अतः) इन दो रास्तोंमेंसे एक तू पकड़ ले, (और) एक मैं पकड़ लेता हूं ।"

"हां ! आर्य ! प्रव्रजितोंके लिये स्त्रीजन बाधक होते हैं । (लोग) हमारेमें दोष देखेंगे, आप एक रास्ता पकड़ें (मैं दूसरा) हम दोनों अलग होजावें" (कह), तीनवार प्रदक्षिणा कर चार स्थानोंमें पांच-अंगोंसे वन्दना कर, दस नखोंके योगसे समुज्ज्वल अंजलीको जोड़, "लाखों कल्प कालसे चला आया साथ, आज छूटेगा" कह, "तुम दक्षिण-जातिके हो, इसलिये तुम्हारा मार्ग दक्षिणका है, हम स्त्रियां वाम-जातिकी हैं, इसलिये हमारा मार्ग बायका है" कह वन्दना कर अपना मार्ग लिया ।

* * * *

सम्यक्-संबुद्धने, वेणुवन महाविहारकी गंधकुटीमें बैठे हुये...(ध्यानमें देखा)—पिप्पली माणवक और भद्रा कापिलायनी अपार संपत्ति छोड़ प्रव्रजित हुए हैं ।...। मुझे भी इनका संग्रह करना चाहिये (सोच), गंधकुटीसे निकल, स्वयं पात्रचीवर ले, अस्सी महा स्थविरोंमेंसे किसीको भी बिना कहे, तीन गव्यूति (पौन योजन) मार्ग अगवानी करके, राजगृह और नालन्दाके बीच "बहु-पुत्रक" नामक बर्गदके वृक्षके नीचे आसनमार कर बैठ गये ।....। महा काश्यप...ने—यह हमारे शास्ता होंगे, इन्हींको उद्देश कर हम प्रव्रजित हुए—ऐसा सोच, देखनेके स्थानसे (ही) झुके-झुके जाकर तीन स्थानोंमें वन्दना कर "भगवान् मेरे शास्ता (=गुरु) हैं, मैं आपका श्रावक (=शिष्य) हूं" कहा ।...। तब भगवान्‌ने उनको तीन उपदेश कर उपसंपदा दी (और उपसंपदा) देकर "बहुपुत्रक" बर्गदके नीचेसे निकल स्थविरको अनुचर-श्रमण बना रास्ता पकड़ा । शास्ताका शरीर महापुरुषोंके बत्तीस लक्षणोंसे चित्रित था, और महाकाश्यपका शरीर महापुरुषके सात लक्षणोंसे । वह किसी महानावसे बँधे (डोंगी)

१. 'रे' की जगहपर । २ वर्तमान सिलाव (जि० पटना) में यह स्थान रहा होगा

के समान, पीछे २ पग डालते चल रहे थे। शास्ताने थोड़ा मार्ग चलकर, मार्गसे हट, किसी पेड़के नीचे बैठने जैसा संकेत किया। स्थविर ने—शास्ता बैठना चाहते हैं—जान, अपनी पहनी रेशमी संघाटी चौपेतकर बिछा दी। शास्ता उसपर बैठकर हाथसे चीवरको मसलते हुये बोले—

"काश्यप ! तेरी यह रेशमी (=पट-पिलोतिका) संघाटी मुलायम है ?"

शास्ता मेरी संघाटीके मुलायमपनको बखान रहे हैं, (शायद) पहिनना चाहते होंगे, ऐसा समझकर बोले—

"भन्ते ! भगवान् संघाटीको धारण करें ।"

"काश्यप ! तुम क्या पहनोगे ?"

"भन्ते ! यदि आपका वस्त्र मिलेगा, तो पहनूँगा !"

"काश्यप ! क्या तुम इस पहिनते-पहिनते जीर्ण होगये पांसुकूल (=गुदड़ी) को धारण कर सकते हो ? .. यह बुद्धोंका पहिनते-पहिनते जीर्ण हुआ चीवर है। थोड़े गुणोंवाला (मनुष्य) इसे धारण नहीं कर सकता। समर्थ, धर्मके अनुसरणमें पक्के, जन्मभर [1]पांसुकूलिक रहनेवाले होंको (इसे) लेना योग्य है।"

यह कह स्थविरके साथ चीवर-परिवर्तन किया। इस प्रकार चीवर-परिवर्तन कर, स्थविरके चीवरको भगवान्‌ने धारण किया, और शास्ताके चीवरको स्थविरने।...। स्थविर—'बुद्धोंका चीवर पालिया, अब इसके बाद मुझे क्या करना है'—इस प्रकारका अभिमान किये बिना ही, बुद्धोंके पाससे तेरह [2]अवधूतोंके गुणोंको लेकर, सात ही दिन [3]पृथग्जन रहे। आठवें दिन प्रतिसंवित्-सहित आर्हत-पदको प्राप्त हो गये।

कस्सप-सुत्त ।

[4]ऐसा मैंने सुना—एक समय आयुष्मान् महाकाश्यप राजगृहके वेणुवन कलन्दक-निवापमें विहार करते थे। उस समय आयुष्मान् आनंद बड़े भारी भिक्षुसंघके साथ, दक्षिण-गिरिमें चारिका कर रहे थे। आयुष्मान् आनंदके तीस शिष्य भिक्षु-भाव छोड़कर गृहस्थ होगये, उनमें विशेष संख्या तरुणोंकी थी। तब आयुष्मान् आनंद दक्षिण-गिरिमें इच्छानुसार चारिका करके, जहाँ राजगृह वेणुवन कलन्दकनिवाप था, जहाँपर आयुष्मान् काश्यप थे, वहाँ आये। आकर आयुष्मान् काश्यपको अभिवादनकर, एक ओर बैठ गये। एक ओर बैठे हुये आयुष्मान् आनन्दको, आ० महाकाश्यपने कहा—

"आवुस आनन्द ! किन कारणोंसे भगवान्‌ने कुलोंमें तीन भोजन विधान किये ?"

"भन्ते काश्यप ! तीन कारणोंसे भगवान्‌ने०। उच्छृंखल जनोंके निग्रहके लिये, पेशल (अच्छे) जनोंके सुखसे विहार करनेके लिये, जिसमें बुरी नियतवाले सहारा लेकर फूट न डालें (और) कुलोंपर अनुग्रह हो। भन्ते काश्यप ! इन्हीं तीनों बातोंसे भगवान्‌ने तीन भोजन विधान किये।"

---

१ सिर्फ चीथड़ोंको सीकर ही पहननेवाला। २ धुतंग। ३ जिसे तत्त्व-साक्षात्कार नहीं हुआ। ४. संयुत्त. नि. १. २७. ९।

"आवुस आनन्द ! तू क्यों इन इन्द्रियोंमें अगुप्त-द्वारवाले, भोजनमें परिमाण न जानने-वाले, जागरणमें तत्पर न रहनेवाले, नये भिक्षुओंके साथ चारिका करता है । मानो तू सस्योंका घातकर रहा है । मानो तू कुलोंका घात कर रहा है । तू सस्योंका घात करता चलता है,... तू कुलोंका घात करता चलता है—(ऐसा) मैं समझता हूँ । आवुस आनन्द ! तेरी मंडली भंग होरही है, अधिकतर नये (भिक्षुओं) वाली तेरी (मंडली) टूट रही है । यह कुमार (=आनन्द) मात्रा नहीं जानता ।"

"भन्ते काश्यप ! मेरे शिरके (केश) सफेद होगये । तोभी, आयुष्मान् महाकाश्यपके कुमार (=बच्चा) कहनेसे नहीं छूट रहा हूँ"

"हाँ, आवुस आनन्द ! तू इन इन्द्रियों में अगुप्त द्वारवाले (=अजितेन्द्रिय)० । यह कुमार मात्रा नहीं जानता ।"

थुल्लनन्दा भिक्षुणीने सुना कि आर्य महाकाश्यपने वेदेहमुनि आर्य आनंदको कुमार कहकर फटकारा है । तब थुल्लनन्दा भिक्षुणीने अप्रसन्न (हो), अप्रसन्नताकी बात कही—

"दूसरे [1]तीर्थ (=संप्रदाय) में रहे आर्य महाकाश्यप, वेदेहमुनि आर्य आनंदको 'कुमार' कहकर फटकारनेकी हिम्मत कैसे करते हैं ?"

आयुष्मान् महाकाश्यपने थुल्लनन्दा भिक्षुणीके इस वचनको सुना । तब (उन्होंने) ... आयुष्मान् आनन्दको यों कहा—

"आवुस आनन्द ! थुल्लनन्दा भिक्षुणीने जल्दीसे बिना विचारेही यह कहा । क्योंकि आवुस ! जबसे मैं शिर-दाढ़ी मुँड़ा, काषाय वस्त्र पहिन, घरसे बेघर प्रव्रजित हुआ; तबसे उस भगवान् अर्हत् सम्यक्-संबुद्धको छोड़, दूसरेको शास्ता कहना नहीं जानता । पहिले आवुस ! गृही होते समय, यह (विचार) हुआ—"यह एकान्त (=बिल्कुल) परिपूर्ण, एकान्त परिशुद्ध, खरादे-शंखसा (उज्वल) ब्रह्मचर्य, घरमें रहते हुये नहीं पालन किया जा सकता ! क्यों न मैं शिर-दाढ़ी मुँड़ा, काषाय वस्त्र पहन, घरसे बेघरहो प्रव्रजित होजाऊँ । सो मैं आवुस ! पीछे [1]पटपिलोतिकों की संघाटी बना, लोकमें जो अर्हत् हैं, यह मेरी प्रव्रज्या उन्हींके लिये है, (कह) शिर-दाढ़ी मुँड़ा काषाय वस्त्र पहिन, घरसे बेघर हो प्रव्रजित हुआ । इस प्रकार प्रव्रजितहो रास्तेमें जाते हुये, मैंने राजगृह और नालन्दाके बीच, बहुपुत्तक चैत्यमें बैठे भगवान्‌को देखा । देखकर मुझे यह हुआ—'अरे ! मैं शास्ताको देख रहा हूँ, मैं भगवान्‌को देख रहा हूँ' । सो आवुस ! मैं वहीं भगवान्‌के पैरोंमें शिर रखकर बोला—भन्ते भगवान् ! मेरे शास्ता (=गुरु) हैं, मैं श्रावक (=शिष्य) हूँ । भन्ते भगवान् ! मेरे शास्ता हैं, मैं श्रावक हूँ । यह बोलनेपर आवुस ! भगवान्‌ने मुझे कहा—

'काश्यप ! जो इस प्रकारके सारे मनसे युक्त श्रावक (=शिष्य) को न जानकर 'मैं जानता हूँ,' कहे, न देखकर 'मैं देखता हूँ' कहे, उसका शिर गिर जाय । किन्तु काश्यप मैं

१. "तेरहहाथका भी नया शाटक (=सारी या धोती) किनारेके फटतेही, पिलोतिका कहा जाता है, इस प्रकार महार्घ वस्त्रोंको फाड़कर बनाई संघाटीके लिये पटपिलोतिकोंकी संघाटी कहा" । अ. क.

जानता हुआ ही 'जानता हूँ' कहता हूँ, देखता हुआही 'देखता हूँ' कहता हूँ । इसलिये काश्यप ! तुझे वृद्धों (=थेरों) में, तरुणोंमें, प्रौढों (मध्यमों) में लज्जा और भय रखना सीखना चाहिये । काश्यप तुझे यह सीखना चाहिये —जो कुछ कुशल (=पवित्र=अच्छा) धर्म सुनूँगा, उन सबको अपनाकर, चारों ओरसे चित्तद्वारा अच्छी तरह एकत्रित कर, कान लगाकर धर्मको सुनूँगा ।··· काश्यप ! तुझे यह सीखना चाहिये, कि शरीर-संबंधी अनुकूल स्मृति (=काय-गत-स्मृति) न छूटेगी । काश्यप ! तुझे यह सीखना चाहिये ।'

''आवुस ! भगवान् मुझे यह उपदेशकर, आसनसे उठकर चल दिये । कुछ सप्ताह भरही आवुस ! मल-चित्त-युक्त (=स-रण) मैंने राष्ट्रके पिंडको खाया, आठवें दिन अज्ञा (=विमल-ज्ञान) उत्पन्न हुई । तब आवुस ! भगवान् मार्ग छोड़, एक पेड़के नीचे गये । तब मैंने आवुस ! पटपिलोतिकोंकी संघाटीको चौपेतकर रख, भगवान्से कहा—यहाँ भन्ते ! भगवान् बैठें, जिसमें मेरा चिर-काल तक कल्याण और सुख हो । आवुस ! भगवान् बिछे आसनपर बैठ गये । बैठकर मुझे भगवान्ने कहा—काश्यप 'यह तेरी पट-पिलोतिकोंकी संघाटी मुलायम है ।'

'भन्ते ! भगवान् पट-पिलोतिकाओंकी संघाटीको कृपा करके स्वीकार करें'

'काश्यप ! मेरे सनके पांसुकूल (=गुदड़ी) वस्त्रोंको धारण करोगे ?'

'भन्ते ! भगवान्के सनके पांसु-कूल वस्त्रोंको धारण करूँगा ।'

सो मैंने पट-पिलोतिकाओंकी संघाटी भगवान्को दे दी, और भगवान्के सनके पांसु-कूल वस्त्रोंको लेलिया । जिसको कि ठीक बोलते हुये बोलना चाहिये—भगवान्के औरसपुत्र, मुखसे उत्पन्न, धर्मज (=धर्मसे उत्पन्न), धर्मने निर्मित, धर्मका दायाद (=वारिस); (कि उसने) सनके पांसुकूलवस्त्र ग्रहण किये । मेरे लिये ठीक बोलते हुये बोलना चाहिये—भगवान्का औरस, मुखसे उत्पन्न, धर्म-ज, धर्मसे निर्मित, धर्मका दायाद (है जो कि) सनके पांसुकूल वस्त्र ग्रहण किये ।···

* * * *

महाकात्यायनका संन्यास (वि. पू. ४७०)

(महाकात्यायन)...उज्जैन नगरमें पुरोहितके घर उत्पन्न हुये।...। उन्होंने बड़े हो तीनों वेद पढ़, पिताके मरनेपर पुरोहितका पद पाया। गोत्रके नामसे कात्यायन (प्रसिद्ध) हुए। राजा चण्ड प्रद्योतने (अपने) अमात्योंको एकट्ठाकर कहा-"तातो! लोकमें बुद्ध उत्पन्न हुये हैं, उनको जो कोई ला सकता है, वह जाकर ले आवे।"

"देव! दूसरे नहीं ला सकते, आचार्य कात्यायन ब्राह्मणही समर्थ हैं, उन्हींको भेजिये।"

राजाने उनको बुलवाकर—"तात दशबल (=बुद्ध)के पास जाओ।"

"महाराज! यदि प्रव्रजित होने (की आज्ञा) पाऊँ, तो जाऊँगा।"

"तात! जो कुछभी करके, तथागतको ले आओ।"

उन्होंने (सोचा)—बुद्धोंके पास जानेके लिये बड़ी जमातकी आवश्यकता नहीं (होती), इसलिये सात जने और अपने आठवां हो, (भगवान्‌के पास) गये। तब शास्ताने इनको धर्मोपदेश दिया। देशनाके अन्तमें यह सातो जनों सहित, प्रतिसंविद्‌के साथ अर्हत् पद को प्राप्त हुये। शास्ताने "भिक्षुओ! आओ" कह हाथ पसारा। उसी समय वे सभी शिर-दाढ़ीके बाल लुप्त हुए, ऋद्धिसे मिले पात्र-चीवर धारण किये, सौ वर्षके स्थविर समान हो गये। स्थविर (कात्यायन) ने अपने कार्यके समाप्त होनेपर, चुप न हो...शास्ताको उज्जैन चलनेके लिये यात्राको प्रशंसाकी। शास्ताने उनकी बात सुन...बुद्ध एक कारणसे न जाने योग्य स्थानमें नहीं जाते; इसलिये स्थविरको कहा—"भिक्षु! तूही जा, तेरे जानेपरभी राजा प्रसन्न होगा।" स्थविरने (यह सोच कि) बुद्धोंकी दो बात नहीं होती, तथागतकी वन्दनाकर, अपने साथ आये सातो भिक्षुओंको ले, उज्जैनको जाते हुये रास्तेमें तेलप्पनाली नामक कस्बेमें भिक्षाचार करने गये। उस नगरमें दो सेठकी लड़कियां थीं, एक दरिद्र होगये कुलमें पैदा हुई, माता पिताके मरनेपर दाईके सहारे जी रही थी, किन्तु इसका रूप अति सुन्दर (और) केश दूसरोंकी अपेक्षा बहुत लम्बे थे। उसी नगरमें एक बड़े ऐश्वर्यवान् सेठके खान्दानकी लड़की केश-हीना थी। वह इसके पूर्व उसके पास (सन्देश) भेजकर—"सौ या हजार दूँगी," कहकर भी केश न मँगा सकी। उस दिन उस सेठकी लड़कीने सात भिक्षुओंके साथ स्थविरको खाली पात्र लौटते देख (सोचा) —'यह सुवर्ण-वर्ण एक ब्रह्म-बन्धु भिक्षु पहिले जैसे धोये (=खाली) पात्रसेही (लौटा) जा रहा है। मेरे पास और धन नहीं है; लेकिन, अमुक सेठ कन्या इन केशोंके लिये (माँग) भेजती है। अब इससे मिले धन द्वारा स्थविरके लिये दान धर्म किया जा सकता है'—(और) दाईको भेजकर स्थविरोंको निमंत्रित कर घरके भीतर बैठाया। स्थविरोंके बैठनेपर घरमें जा, दाईसे अपने केशोंको कटवा—"अम्मा! इन केशोंको अमुक सेठ-कन्याको दे; जो वह दे वह ले आ, आर्योंको मैं भिक्षा (=पिंड-पात) दूंगी।"

---

१. अंगुत्तर-नि. अ. क. १: १:१०

दाई...हाथसे आँसू पोंछ, एक हाथसे कलेजेको थाम, स्थविरोंके सामने ढाँककर, उन केशोंको ले, उस सेठ-कन्याके पास गई । (सच है) "सार-पूर्ण उत्तम (वस्तु) स्वयं पास आनेपर, आदर नहीं पाती" इसलिये उस सेठ-कन्याने सोचा, 'मैं पहिले वहुत धनसे भी इन केशोंको न मँगा सकी, अब कट जानेके बाद तो कीमतके मुताबिक ही देना होगा, ; (और) दाईको कहा—

"पहिले मैं तेरी स्वामिनीको वहुत धन देकर भी, इन केशोंको न मँगा सकी ; जहाँ जी चाहे लेजा, जीते-वाल (=जीवितकेश) आठ ही कार्षापणके होते हैं" (और) आठ कार्षापण ही दिये ।

दाईने कार्षापण ला सेठ-कन्याको दिये । सेठ-कन्याने एक-एक कार्षापणका एक-एक भिक्षान्न तय्यार कर, स्थविरोंको प्रदान किया । स्थविरने ध्यानसे सेठ-कन्याके भावको जान "सेठ-कन्या कहाँ है ?" पूछा ।

"घरमें है ! आर्य !"

"उसे बुलाओ !"

उसने स्थविरके गौरवसे एक वात हीमें आकर, स्थविरोंको वन्दना कर, (मनमें) बड़ी श्रद्धा उत्पन्न की । "सुन्दर खेतमें (=सुपात्रमें) दिया भिक्षान्न इसी जन्ममें फल देता है" इसलिये स्थविरोंकी वन्दना करते समय ही, केश पूर्ववत् होगये । स्थविर उस भिक्षान्नको ग्रहण कर, सेठ-कन्याके देखते-देखते ही उड़कर, आकाशमें जा कांचन-वनमें उतरे । मालीने स्थविरोंको देख, राजाके पास जाकर कहा—

"देव ! आर्य पुरोहित कात्यायन प्रव्रजित हो, उद्यानमें आये हैं" ।

राजाने आनन्दित (=छन्दजात) हो उद्यानमें जा, भोजन करलेनेपर, पांच अंगोंसे स्थविरों को वन्दना कर, (और) एक ओर वैठकर पूछा—"भन्ते ! भगवान् कहाँ हैं ?"

"महाराज ! शास्ता ने स्वयं न आकर मुझे भेजा है ?"

"भन्ते ! आज भिक्षा कहाँपर पाई ?"

स्थविरने राजाके पूछनेके साथ ही, सेठ-कन्याके सब दुष्कर कर्मको कह डाला । राजाने स्थविरके लिये वास-स्थानका प्रबंध कर, (भोजनका) निमन्त्रण दिया; और घर जा सेठ कन्याको बुला, अग्रमहिषी (=पटरानी) के पदपर स्थापित किया । इस स्त्रीको इस जन्ममें ही यश प्राप्त हुआ । इसके वाद राजा स्थविरका बड़ा सत्कार करने लगा ।...। उस देवीने गर्भ धारण कर, दसमास वाद पुत्र प्रसव किया । उसका नाम (उसके) नाना सेठके नामपर गोपालकुमार रक्खा । वह पुत्रके नामसे गोपाल-माता देवीके नामसे (प्रसिद्ध) हुई । उसने स्थविरसे अत्यन्त सन्तुष्ट हो, राजासे कह कर, कांचन-वन उद्यानमें स्थविरके लिये विहार बनवाया । (और) स्थविर उज्जैन नगरको अनुरक्त बना, फिर शास्ताके पास गये ।....

उपाध्याय, आचार्य, शिष्यके कर्तव्य। उपसम्पदा। (त्रि. पृ. ४७०)

उस समय मगधके प्रसिद्ध-प्रसिद्ध कुल-पुत्र (=खान्दानी) भगवान्‌के पास ब्रह्मचर्य-चरण करते थे। लोग (देखकर) हैरान होते, निन्दा करते और दुःखी होते थे—"अपुत्र बनानेको श्रमण गौतम (उतरा है), विधवा बनानेको श्रमण गौतम (उतरा) है, कुल-विनाशके लिये श्रमण गौतम (उतरा) है। अभी उसने एक सहस्र जटिलोंको साधू बनाया। इन ढाई सौ संजयके परिव्राजकोंको भी साधू बनाया। अब मगधके प्रसिद्ध-प्रसिद्ध कुल-पुत्रभी श्रमण गौतमके पास साधू बन रहे हैं।" वह भिक्षुओंको देख इस गाथाको कह, ताना देते थे—

"महाश्रमण मगधोंके [1]गिरिव्रजमें आया है।
संजयके सभी (परिव्राजकों) को तो ले लिया, अब किसको लेनेवाला है?"
भिक्षुओंने इस बातको भगवान्‌से कहा। भगवान्‌ने कहा—

"भिक्षुओ! यह शब्द देर तक न रहेगा। एक सप्ताह बीतते लोप होजायगा। जो तुम्हें उस गाथासे ताना देते हैं...। उन्हें तुम इस गाथासे उत्तर देना—

"महावीर तथागत सच्चे धर्म (के रास्ते) से ले जाते हैं।
धर्मसे ले जाये जातोंके लिये बुद्धिमानोंको असूया (=हसद) क्यों?"

...लोगोंने कहा—"शाक्य-पुत्रीय (=शाक्य-पुत्र बुद्धके अनुयायी) श्रमण, धर्म (के रास्ते) से ले जाते हैं, अधर्मसे नहीं।"

सप्ताह भर ही वह शब्द रहा। सप्ताह बीतते २ लोप होगया।

[2]उस समय भिक्षु उपाध्यायके बिना रहते थे, (इसलिये वह) उपदेश=अनुशासन न किये जानेसे, बिना ठीकसे पहने, बिना ठीकसे ढाँके, बेसहूरीसे भिक्षाके लिये जाते थे। खाते हुये मनुष्योंके भोजनके ऊपर, खाद्यके ऊपर...पेयके ऊपर जूठे पात्रको बढा देते थे। स्वयं दालभी भातभी माँगते थे, खाते थे। भोजनपर बैठे हल्ला मचाते रहते थे। लोग हैरान होते, धिक्कारते और दुःखी होते थे। क्यों शाक्य-पुत्रीय श्रमण बिना ठीकसे पहिने० भोजनपर बैठे भी हल्ला मचाते रहते हैं, जैसे कि ब्राह्मण ब्राह्मणभोजनमें। भिक्षुओंने लोगोंका हैरान होना० सुना। जो भिक्षु निर्लोभी, सन्तुष्ट, लज्जाशील, संकोचशील, शिक्षार्थी थे, वह हैरान हुये, धिक्कारने लगे, दुखी हुये०।...। तब उन भिक्षुओंने भगवान्‌से इस बातको कहा।...। भगवान्‌ने धिक्कारा—'भिक्षुओ! उन नालायकोंका (यह करना) अनुचित है....अयोग्य है...अश्रमणोंका आचार है, अभव्य है, अकरणीय है। भिक्षुओ! कैसे वह नालायक बिना ठीकसे पहिने० भिक्षाके लिये घूमते हैं०। भिक्षुओ! (उनका) यह (आचरण) अप्रसन्नोंको प्रसन्न करनेके लिये नहीं है, और न प्रसन्नों (=श्रद्धालुओं) को अधिक प्रसन्न करनेके लिये; बल्कि अप्रसन्नोंको (और भी) अप्रसन्न करनेके लिये, तथा प्रसन्नोंमेंसे भी किसी किसीके उलट देनेके लिये है।" तब भगवान्‌ने उन भिक्षुओंको अनेक प्रकारसे धिक्कार कर···भिक्षुओंको संबोधित किया—

[1] राजगृह। [2] महावग्ग १.४ भाण।

शिष्यका कर्तव्य।

"भिक्षुओ! मैं उपाध्याय (करने) की अनुज्ञा देता हूं। उपाध्यायको शिष्य (=सद्धि-विहारी) में पुत्र-बुद्धि रखनी चाहिये, और शिष्यको उपाध्यायमें पिता-बुद्धि···। इस प्रकार उपाध्याय ग्रहण करना चाहिये—उपरना (उत्तरा-संग) को एक कंधे पर करवा, पाद-वंदन करवा, उकडूं बैठवा, हाथ जोड़वा ऐसा कहलवाना चाहिये—'भन्ते! मेरे उपाध्याय बनिये, भन्ते! मेरे उपाध्याय बनिये, भन्ते! मेरे उपाध्याय बनिये।'···

"शिष्यको उपाध्यायके साथ अच्छा वर्ताव करना चाहिये। अच्छा वर्ताव यह है—समयसे उठकर, जूता छोड़, उत्तरासंगको एक कंधेपर रख, दातुवन देनी चाहिये, मुख (धोने को) जल देना चाहिये। आसन बिछाना चाहिये। यदि खिचड़ी (कलेऊके लिये) है, तो पात्र धोकर (उसे) देना चाहिये।···। पानी देकर पात्र ले···बिना घसे धोकर रख देना चाहिये। उपाध्यायके उठ जाने पर, आसन उठाकर रख देना चाहिये। यदि वह स्थान मैला हो, तो झाड़ू देना चाहिये। यदि उपाध्याय गांवमें जाना चाहते हैं, तो वस्त्र थमाना चाहिये,···, कमर-बंद देना चाहिये, चौपेतकर [1]संघाटी देनी चाहिये, धोकर पानीसहित पात्र देना चाहिये। यदि उपाध्याय अनुचर-भिक्षु चाहते हैं, तो तीन स्थानोंको ढांकते हुये घेरादार (चीवर) पहन, कमर बन्द बांध चौपेती संघाटी पहिन, मुद्धी बांध, धोकर पात्र ले उपाध्यायका अनुचर (=पीछे चलने वाला) भिक्षु बनना चाहिये। न बहुत दूर होकर चलना चाहिये, न बहुत समीप होकर चलना चाहिये। पात्रमें ग्रासको ग्रहण करना चाहिये। उपाध्यायके बात करते समय, बीच बीचमें बात न करना चाहिये। उपाध्याय (यदि) सदोष (बात) बोल रहे हों, तो मना करना चाहिये। लौटते समय पहिलेही आकर आसन बिछा देना चाहिये, पादोदक (=पैर धोने का जल), पाद-पीठ, पादकठली (पैर घिसने का साधन) रख देना चाहिये। आगे बढ़कर पात्र-चीवर (हाथसे) लेना चाहिये। दूसरा वस्त्र देना चाहिये, पहिना वस्त्र ले लेना चाहिये। यदि चीवर में पसीना लगा हो, थोड़ी देर धूपमें सुखा देना चाहिये। धूपमें चीवरको डाहना न चाहिये। (फिर) चीवर बटोर लेना चाहिये।···· यदि भिक्षा है, और उपाध्याय भोजन करना चाहते हैं, तो पानी देकर भिक्षा देना चाहिये। उपाध्यायको पानीके लिये पूछना चाहिये। भोजन कर लेने पर पानी देकर, पात्र ले, झुकाकर बिना घिसे अच्छी तरह धो, पोंछकर मुहूर्तभर धूपमें सुखा देना चाहिये। धूपमें पात्र डाहना न चाहिये।···· यदि उपाध्याय स्नान करना चाहें, स्नान कराना चाहिये।··· यदि जंताघर (=स्नानागार) में जाना चाहें, (स्नान-) चूर्ण ले जाना चाहिये, मिट्टी भिगोनी चाहिये। जंताघरके पीढ़ेको लेकर उपाध्यायके पीछे पीछे जाकर, जन्ताघरके पीढ़ेको दे, चीवर ले एक ओर रख देना चाहिये। (स्नान-) चूर्ण देना चाहिये, मिट्टी देनी चाहिये।··· उपाध्यायका (शरीर) मलना चाहिये। (उपाध्यायके) नहा लेनेसे पूर्वही अपने देहको पोंछ (सुखा), कपड़ा पहन, उपाध्यायके शरीरसे पानी पोंछना चाहिये। वस्त्र देना चाहिये। संघाटी देनी चाहिये। जंताघरका पीढ़ा ले पहिलेही आकर, आसन बिछाना चाहिये०।····

जिस विहारमें उपाध्याय विहार करते हैं, यदि वह विहार मैला हो, और उत्साह हो, तो उसे साफ करना चाहिये। विहार साफ करनेमें पहिले पात्र चीवर निकालकर, एक ओर रखना

[1]. दोहरा चीवर।

चाहिये । गद्दा चद्दर निकालकर एक ओर रखनी चाहिये । तकिया '' रखनी चाहिये । चारपाईको खड़ीकर'''केवाड़में विना टकराये लेकर, ऐक ओर रख देना चाहिये । पीढ़ेको खड़ाकर'''केवाड़में विना टकराये० । चारपाईके (पावेके) ओट० । पीकदानको एक ओर० । सिरहानेका पटरा एक ओर० । फर्शको विछावटके अनुसार जानकर, ले जाकर० । यदि विहारमें जालाहो, तो उल्लोक पहिले वहारना चाहिये । अन्धेरे कोने साफ करने चाहिये । यदि भीत (=दीवार) गेरूसे गचकी हुई हो, तो लत्ता भिगोकर रगड़कर साफ करनी चाहिये । यदि काली हो गई, मलिन भूमि हो, (तो भी) लत्ता भिगोकर रगड़कर साफ करनी चाहिये ।'''। जिसमें धूलसे खराव न हो जाय । कूड़ेको ले जाकर एक तरफ फेंकना चाहिये । फर्शको धूपमें सुखा, साफकर फटकारकर, ले आकर पहिलेकी भाँति विछा देना चाहिये । चारपाईके ओट धूपमें सुखा साफकर लेआकर, उनके स्थानपर रख देने चाहिये । चारपाईको धूपमें सुखा, साफकर, फटकारकर नवाकर केवाड़को विना टकराये'''ले आकर० । पीढा० । तकिया० । गद्दा चद्दर धूपमें सुखा साफकर, फटकारकर ले आकर विछा देना चाहिये । पीकदान सुखा साफकर लेकर यथा-स्थान रख देना चाहिये ।''''।

यदि धूली लिये पुरवा हवा चल रही हो, पूर्वकी खिड़कियाँ वन्दकर देनी चाहिये ।'''। यदि जाड़ेके दिन हों, दिनको जंगला खुला रख कर, रातको वन्द कर देना चाहिये । यदि गर्मी का दिन हो, दिनको जंगला वन्द कर रातको खोल देना चाहिये । यदि आंगन (=परिवेण) मैला हो, आंगन झाड़ना चाहिये । यदि कोठरी मैली हो० । यदि उपस्थान-शाला (=वैठक) मैली हो० । यदि अग्निशाला (=पानी गर्म करनेका घर) मैली०। यदि पाखाना मैला हो० । यदि पानी न हो, पानी भर कर रखना चाहिये'''। यदि पीनेका जल न हो० । यदि पाखानेकी मटकीमें जल न हो० ।

उपाध्यायको शिष्यसे अच्छा वर्ताव करना चाहिये । वह वर्ताव यह है—उपाध्यायको शिष्यपर...अनुग्रह करना चाहिये,...(शिष्यके लिये) उपदेश देना चाहिये...।...पात्र देना चाहिये...। यदि उपाध्यायको चीवर है, शिष्यको....नहीं ।...चीवर देना चाहिये; या शिष्यको चीवर दिलानेके लिये उत्सुक होना चाहिये—[1]परिष्कार देना चाहिये ।...। यदि शिष्य [2]रोगी हो, तो समयसे उठकर दातवान..., मुखोदक देना चाहिये । आसन विछाना चाहिये । यदि खिचड़ी हो, तो पात्र धोकर देना चाहिये । पानी देकर, पात्र ले विना घिसे धोकर रख देना चाहिये । शिष्यके उठ जानेपर, आसन उठा लेना चाहिये । यदि वह स्थान मैला है, तो झाड़ू देना चाहिये । यदि शिष्य गाँवमें जाना चाहता है, तो वस्त्र थमाना चाहिये० ।०यदि पाखानेकी मटकीमें जल न हो० ।...

उस समय शिष्य उपाध्यायके चले जानेपर, विचार-परिवर्तन कर लेनेपर (या) मर जाने पर''' विना आचार्यके हो, उपदेश=अनुशासन न किये जानेसे, विना ठीकसे (चीवर) पहने विना ठीकसे ढँके वेसहूरीसे भिक्षाके लिये जाते थे० । भगवान्‌ने...भिक्षुओंको संवोधित किया—

---

१ भिक्षुओंके सामान । २ रोगी होनेपर उपाध्यायको शिष्यके लिये वह सभी सेवा करनी होती हैं ; जो स्वस्थ शिष्यके कर्त्तव्यमें आ चुकी हैं ।

उपसम्पदा।

"भिक्षुओ! आचार्य (करने) की अनुज्ञा देता हूँ।"

[1]उस समय...ब्राह्मण राधने भिक्षुओंसे प्रव्रज्या माँगी। भिक्षुओंने (उसे) प्रव्रजित न करना चाहा। वह...प्रव्रज्या न पानेसे दुर्बल, रूखा, दुर्वर्ण, पीला हाड-हाड-निकला होगया। ...। भगवान्‌ने उस ब्राह्मणको देख...भिक्षुओंको संबोधित किया—"भिक्षुओ! इस ब्राह्मणका उपकार किसीको याद है?" ऐसे कहनेपर आयुष्मान् सारिपुत्रने भगवान्‌को कहा—"भन्ते! मैं इस ब्राह्मणका उपकार स्मरण करता हूँ।"

"सारिपुत्र! इस ब्राह्मणका क्या उपकार तू स्मरण करता है?"

"भन्ते! मुझे राजगृहमें भिक्षाके लिये घूमते समय, इस ब्राह्मणने कलछीभर भात दिलवाया था। भन्ते! मैं इस ब्राह्मणका यह उपकार स्मरण करता हूँ।"

"साधु! साधु! सारिपुत्र! सत्पुरुष कृतज्ञ=कृतवेदी (होते हैं)। तो हे सारिपुत्र! तू (ही) इस ब्राह्मणको प्रव्रजित कर, उपसम्पादित कर।"

"भन्ते! कैसे इस ब्राह्मणको प्रव्रजित करूँ, (कैसे) उपसम्पादित करूँ?"

तब भगवान्‌ने इसी सम्बन्धमें=इसी प्रकरणमें धर्मसम्बन्धी कथा कह भिक्षुओंको सम्बोधित किया—

"भिक्षुओ! मैंने जो तीन [2]शरण-गमनसे उपसम्पदाकी अनुज्ञा दी थी, आजसे उसे मना करता हूँ। (आजसे) चौथी ज्ञप्तिवाले कर्मके साथ उपसंपदाकी अनुज्ञा देता हूँ। इस तरह...उपसंपदा करनी चाहिये—योग्य समर्थ भिक्षु संघको ज्ञापित करे—

(१) "भन्ते! संघ मुझे सुने; [3]अमुक नामक, अमुक नामके आयुष्मान्‌का [4]उपसंपदापेक्षी है। यदि संघ उचित समझे, संघ अमुक नामकको, अमुकनामकके उपाध्यायत्वमें उपसम्पन्न करे। यह ज्ञप्ति है।

(२) "भन्ते! संघ मुझे सुने; अमुक नामक, अमुक नामके आयुष्मान् का उपसंपदापेक्षी है। संघ अमुक नामकको अमुक नामकके उपाध्यायत्वमें उपसम्पन्न करता है। जिस आयुष्मान्‌को अमुक नामककी उपसंपदा अमुक नामकके उपाध्यायत्वमें स्वीकार है, वह चुप रहे, जिसको स्वीकार न हो, वह बोले।

(३) दूसरी बार भी इसी बातको बोलता हूँ—"भन्ते! संघ सुने, यह अमुक नामक, अमुक नामक आयुष्मानका उपसंपदापेक्षी है०। जिसको स्वीकार न हो, वह बोले।

(४) तीसरी बार भी इसी बातको बोलता हूँ—"भन्ते! संघ सुने०।

संघको स्वीकार है, इसलिये चुप है—ऐसा समझता हूँ।"

* * *

१ महावग्ग १। २ देखो पृष्ठ २९। ३ अमुकके स्थानपर उपसंपदापेक्षीका नामलिया जाता है, कहीं-कहीं एक काल्पनिक नाम भी लिया जाता है। ४ भिक्षु-पन चाहनेवाला

कपिलवस्तु-गमन। नन्द और राहुल का संन्यास। (त्रि. पृ. ४७०)

[1]तथागतके वेणुवनमें विहार करते समय, शुद्धोदन महाराजने—मेरा पुत्र छः वर्ष दुष्कर तपकर, परम-अभिसंबोधि (=बुद्धत्व) को प्राप्तकर, धर्म-चक्र-प्रवर्तनकर, (इस समय) वेणु-वनमें विहार करता है—यह सुन अमात्यको संबोधित किया—"आ, भणे! मेरे वचनसे हज़ार आदमियोंके साथ राजगृहमें जा—'तुम्हारे पिता शुद्धोदन महाराज तुम्हें देखना चाहते हैं।' यह कह, मेरे पुत्रको ले आ।"

"अच्छा देव!" (कहकर अमात्य) राजाका वचन शिरसे ग्रहणकर; हज़ार पुरुषों सहित शीघ्रही साठ योजन मार्ग जाकर, [2]दशबलके [3]चारों परिषद्के बीच धर्मोपदेश करते समय, विहारके भीतर गया। उसने—'राजाका भेजा शासन (=संदेश पत्र) अभी पड़ा रहे' (सोच), एक ओर खड़ा हो, शास्ताकी धर्मदेशनाको सुनकर, खड़े ही खड़े हजार पुरुषों समेत अर्हत्-पदको प्राप्त हो, प्रव्रज्या माँगी। भगवान्ने—"भिक्षुओ! तुम आओ" (कह) हाथ पसारा; सभी चमत्कारसे, उसी क्षण उत्पन्न पात्र चीवर धारण किये हुये, १०० वर्षके वृद्ध-थेर होगये। अर्हत्त्व प्राप्त-कालसे—[4]आर्य लोग मध्य (-वृत्ति) होते हैं–(सोच), राजाका भेजा शासनक दशबलको न कहा।

राजाने "गया (अमात्य) न लौटता है, न शासन (=चिट्ठी) सुनाई देता है; आ भणे! तू जा" (कह) पहिले हीकी भाँति दूसरे अमात्यको भेजा। वह भी जाकर पहिलेकी भाँति अनुचरों सहित अर्हत्व पाकर चुप होगया। राजाने इसी प्रकार हजार हजार पुरुषों-सहित नव अमात्योंको भेजा। सभी अपना कृत्य समाप्तकर, चुप हो वहीं विहरने लगे। राजा शासन (=पत्र) मात्र भी लाकर कहनेवालेको न पा, सोचने लगा—"इतने जन मेरेमें प्रेम-भाव रखते हुये, शासन मात्र भी न ले आये, (अब) कौन मेरी बात करेगा।" (तब उसने) सब राज (-पुरुष) मंडलको देखते काल-उदायीको देखा। वह राजाका सर्व-अन्तरंग, अति विश्वास्य, सर्वार्थसाधक अमात्य, बोधिसत्त्वके साथ एक ही दिन उत्पन्न, साथ धूली खेला मित्र, था। तब राजाने उसे संबोधित किया—"तात! काल-उदायी! मैं अपने पुत्रको देखना चाहता हूँ, नव हजार पुरुषोंको भेजा, एक पुरुष भी आकर शासन मात्र भी कहनेवाला नहीं है। शरीरका कोई ठिकाना नहीं। मैं जीते जी पुत्रको देख लेना चाहता हूँ। मेरे पुत्रको मुझे दिखा सकोगे?"

"देव! सकूँगा, यदि प्रव्रज्या लेने की आज्ञा मिले"

"तात! तू प्रव्रजित या अप्रव्रजित हो, मेरे पुत्रको लाकर दिखा।"

"देव! अच्छा" (कह) वह राजाका शासन ले, राजगृह जा, शास्ताकी धर्मदेशनाके समय परिषद्के अन्तमें खड़ा हो, धर्म सुन, परिवार-सहित अर्हत्फल प्राप्त हो "भिक्षु! आओ" से भिक्षु

---

१ जातक. नि० ४।. महावग्ग अ. क.। महाखंधक, राहुल वस्तु। २ बुद्धके दस बल होते हैं। ३ भिक्षु, भिक्षुणी, उपासक और उपासिका।

४ स्रोत आपन्न, सकृदागामी, अनागामी और अर्हत्।

हो ठहर गया । शास्ता बुद्ध होकर, पहिले ऋतुभर ऋषिपतनमें वासकर, वर्षावास समाप्तकर, [1]प्रावारणा (=पारणा) कर, उरुवेलामें जा वहां तीन मास रहकर, तीनों भाई जटिलोंको रास्तेपर ला, एक सहस्र भिक्षुओंके साथ, पौषमासकी पूर्णिमाको राजगृह जा, दो मास बसे । इतनेमें वाराणसीसे चले पांच मास बीत गये । सारा हेमन्त-ऋतु बीत गया । उदायी स्थविर, आनेके दिनसे सात-आठ दिन बिता, फाल्गुनकी पूर्णिमाको सोचने लगे—हेमन्त बीत गया बसन्त आगया । मनुष्योंने सस्य आदि (काटकर)···रास्ता छोड़ दिया । पृथिवी हरित तृणसे आच्छादित है, वन खंड फूले हुये हैं । रास्ते जाने लायक होगये हैं । यह दशबलके लिये अपनी जातिको संग्रह करनेका (उचित) समय है । (यह सोच) भगवान्‌के पास जाकर बोले—

'भदन्त ! पत्ते छोड़कर, फलकी इच्छासे (इस समय) द्रुम अंगार वाले हो गये हैं ।
महावीर ! वह लौ-वाले-से प्रतीत होते हैं,···रसोंका यह समय है ।

न बहुत शीत है, न बहुत उष्ण है, न बहुत अन्नकी कठिनाई है । हरियालीसे भूमि हरित है । महामुनि ! यह (जानेका) समय है," (इत्यादि) साठ गाथाओं द्वारा दश-बलसे कुल-नगर जानेकी प्रशंसाकी ।

तब भगवान्‌ने कहा—" उदायी ! क्या है, जो मधुर-स्वरसे यात्राकी प्रशंसा कर रहा है ?"

" भन्ते ! आपके पिता शुद्धोदन महाराज (आपको) देखना चाहते हैं, जातिवालोंका संग्रह करें ।"

" उदायी ! अच्छा मैं जाति वालोंका संग्रह करूँगा; भिक्षु-संघको कहो कि यात्राका व्रत (=क्रिया) पूरा करै ।'

" अच्छा भन्ते ! " (कह) स्थविरने (भिक्षु-संघको) कहा ।

भगवान् अंग-मगधके दस हजार कुल-पुत्रों, तथा दस हजार कपिल-वस्तुके निवासी, सब बीस हजार क्षीणाऽऽस्रव (=अर्हत्) भिक्षुओं सहित राजगृहसे निकलकर, रोज योजन भर चलते थे । राजगृहसे साठ योजन कपिल-वस्तु दो मासोंमें पहुंचनेकी इच्छासे, धीमी चारिका से चलतेथे ।···

शाक्योंने···भगवान्‌के रहनेके स्थानका विचार करते हुये, न्यग्रोध (नामक) शाक्यके आरामको रमणीय जान, वहां सफाई करा, गंध, पुष्प हाथमें ले, भगवानीके लिये सब अलंकारोंसे अलंकृत नगरके छोटे लड़के लड़कियोंको पहिले भेजा । फिर राजकुमारों और राजकुमारियोंको । उनके बाद स्वयं गंध, पुष्प, चूर्ण आदिसे भगवान्‌की पूजा करते, न्यग्रोधाराम ले गये । वहां बीस हजार क्षीणास्रवों (=अर्हतों) के सहित भगवान्, स्थापित बुद्धासनपर बैठे ।

दूसरे दिन भिक्षुओं सहित (भगवान्‌ने)···कपिलवस्तुमें भिक्षाके लिये प्रवेश किया ।···। भगवान्‌ने [2]इन्द्रकीलपर खड़े हो सोचा—'पहिलेके बुद्धोंने कुल-नगरमें भिक्षाचार

१ आश्विन पूर्णिमा । २. जातकट्ठकथा नि० ।

कैसे किया ? क्या बीच-बीचमें घर छोड़कर या एक ओरसे…?' फिर एक बुद्धको भी बीच-बीचमें घर छोड़कर भिक्षाचार करते नहीं देख, मेराभी यही (बुद्धोंका) वंश है, इसलिये यही कुलधर्म ग्रहण करना चाहिये। इससे आने वाले समयमें मेरे श्रावक (=शिष्य) मेराही अनुकरण करते (हुये) भिक्षाचारव्रत पूरा करेंगे' ऐसा (सोच), छोरके घरसे ही…भिक्षा-चार आरंभ किया। "आर्य सिद्धार्थकुमार भिक्षाचार कर रहे हैं" यह (सुन) लोग दुतल्ले, तितल्ले पर खिड़कियां खोल देखने लगे।

राहुल-माता देवी भी—' आर्यपुत्र इसी नगरमें राजाओंके ठाटसे सोनेकी पालकी आदिमें घूमे, और आज (इसी नगरमें) शिर-दाढी मुँड़ा काषाय वस्त्र पहिन, कपाल (=खपड़ा) हाथमें ले, भिक्षाचार कर रहे हैं !! क्या (यह) शोभा देता है' कहती, खिड़की खोलकर नाना विरागसे उज्वल शरीर-प्रभा-द्वारा नगरकी सड़कको अवभासितकर,·· अनुपम बुद्धश्रीसे विरोचमान भगवान्‌को देख, राजासे बोली,… 'आपका पुत्र भिक्षाचार कर रहा है'। राजा घबराया हुआ हाथसे धोती संभालते, जल्दी जल्दी निकलकर, वेगसे जा, भगवान्‌के सामने खड़ा हो बोला—"भन्ते ! हमें क्यों लजवाते हो ? किसलिये भिक्षा-चरण करते हो ? क्या इतने भिक्षुओंके लिये भोजन नहीं मिलता ?"

"महाराज ! हमारे वंशका यही आचार है"

"भन्ते ! हम लोगोंका वंश तो महा सम्मत (=मनु?) का क्षत्रियवंश है ? एक क्षत्रिय भी तो कभी भिक्षाचारी नहीं हुआ"।

…(राजाने) भगवान्‌का पात्रले परिषद्-सहित भगवान्‌को महलपर चढ़ा, उत्तम खाद्य भोज्य परोसे। भोजनके बाद एक राहुल-माताको छोड़, सभी रनिवासने आ आकर भगवान्‌की वन्दनाकी। वह परिजनद्वारा—'जाओ, आर्यपुत्रकी वन्दना करो'…कहे जाने पर भी—" यदि मेरेमें गुण है, तो स्वयं आर्य-पुत्र मेरे पास आयेंगे। आनेपरही वंदना करूँगी।" यह कह, न आई।

भगवान् राजाको पात्रदे, दो अग्रश्रावकों (=सारिपुत्र, मौद्गल्यायन) के साथ, राजकुमारीके शयनागार (=श्रीगर्भ) में जा—" राजकन्याको यथारुचि वन्दना करने देना, कुछ न बोलना" कह, बिछाये आसनपर बैठ गये। उसने जल्दीसे आ गुल्फ पकड़कर, शिरको पैरोंपर रख, अपनी इच्छानुसार वन्दनाकी। राजाने भगवान्‌के प्रति राजकन्याके स्नेह-सत्कार आदि गुणको कहा—" भन्ते ! मेरी बेटी आपके काषाय-वस्त्र-पहिनने को सुनकर, तभीसे काषाय-धारिणी हो गई। आपके एकबार भोजनको सुन, एकाहारिणी हो गई। आपके ऊँचेपलंगके छोड़नेकी बात सुन, खटियाके मंचेपर सोने लगी। आपके माला, गन्ध आदिसे विरत होनेकी बात जान, गंध माला आदिसे विरत हो गई। अपने पीहर वालोंके 'हम तुम्हारी सेवा सुश्रूषा करेंगे' ऐसा पत्र भेजने पर, एक…को भी नहीं देखती। भगवान् ! मेरी बेटी ऐसी गुणवती है"।…(भगवान् उपदेश दे,) आसनसे उठकर चले गये।

---

२. किलेके द्वारके बाहर गड़ा खम्भा।

श्रामणेर-प्रव्रज्या ।

[1]तीसरे दिन (भगवान्‌ने) नन्द (राजकुमार) के अभिषेक, गृहप्रवेश, और विवाह—इनतीन मंगलकर्म होनेके दिन, भिक्षाके लिये प्रवेशकर नन्द कुमारके हाथमें पात्रदे, मंगल कह, उठकर चलते वक्त, कुमारके हाथसे पात्र न लिया । वह भी तथागतके गौरवसे "भन्ते! पात्र लीजिये" न कह सका । उसने सोचा—"सीढ़ीपर चल पात्र लेलेंगे" । शास्ताने वहां भी न लिया, ··· "सीढ़ीके नीचे ग्रहण करेंगे" ।···"राज-आंगनमें ग्रहण करेंगे" । शास्ताने वहां भी न ग्रहण किया । "पात्र लीजिये" न कह सका । "यहां लेलेंगे, वहां लेलेंगे" यही सोचता जा रहाथा । उस समय लोगोंने जनपद-कल्याणीको कहा—"भगवान् नन्दराजाको लिये जा रहे हैं, वह तुम्हें उनके विनाकर देंगे" । वह बूंदें गिरते, अपने कँगही किये केशोंके साथही जल्दीसे महलपर चढ़, खिड़कीपर खड़ीहो बोली—"आर्यपुत्र ! जल्दी आना" वह वचन उसके हृदयमें उलटे पड़े शल्यकी भांति लगारहा । शास्ताने भी उसके हाथसे पात्र नले, विहारमें जा—"नन्द ! प्रव्रजित होगे ?" पूछा । उसने बुद्धके ख्यालसे नहीं···न करके "हां ! प्रव्रजित होऊँगा"—कहा । तब शास्ताने "नन्दको प्रव्रजित करो" कहा । इस प्रकार कपिलपुरमें जाकर तीसरे दिन नन्दको प्रव्रजित किया ।

[2]सातवें दिन राहुल-माताने कुमारको अलंकृत कर, भगवान्‌के पास यह कहकर भेजा—"तात ! वीस हजार श्रमणोंके मध्यमें सुवर्ण-वर्ण···श्रमणको देख, वही तेरे पिता हैं । उनके पास वहुत खजाने थे; जिन्हें उनके (घरसे) निकलनेके वादसे नहीं देखते ।"

[4]भगावन् पूर्वाह्न समय पहनकर पात्र-चीवरले जहां शुद्धोदन शाक्यका घरथा, वहां गये । जाकर विछाये आसनपर बैठे । तब राहुल-माता देवीने राहुल-कुमारको यों कहा—"राहुल ! यह तेरे पिता हैं, जा दायज (=वरासत) मांग" । तब राहुलकुमार जहां भगवान् थे, वहां गया । जाकर भगवान्‌के सामने खड़ा हो कहने लगा—"श्रमण ! तेरी छाया सुखमय है" । तब भगवान् आसनसे उठकर चल दिये । राहुलकुमार भी भगवान्‌के पीछे पीछे लगा—

"श्रमण ! मुझे दायज दे", "श्रमण ! मुझे दायज दे ।"

तब भगवान्‌ने आयुष्मान् सारिपुत्रको कहा—

"तो सारिपुत्र ! राहुल-कुमारको प्रव्रजित करो"

"भन्ते ! किस प्रकार राहुल कुमारको प्रव्रजित करूँ ?"

इसी मौकेपर इसी प्रकरणमें धार्मिक कथा कहकर, भगवान्‌ने भिक्षुओंको संवोधित किया—

"भिक्षुओ ! तीन शरण-गमनसे [5]श्रामणेर-प्रव्रज्याकी अनुज्ञा देता हूं । इस प्रकार प्रव्रजित करना चाहिये । पहिले शिर-दाढ़ी मुँड़वा काषाय-वस्त्र पहिना, एक कंधेपर उपरना करवा, भिक्षुओंकी पाद-वन्दना करवा, उकड़ूं बैठवा, हाथ जोड़वा 'ऐसा कहो' बोलना चाहिये—'बुद्धकी शरण जाता हूं, धर्मकी शरण जाता हूं, संघकी शरण जाता हूं । दूसरी वारभी० । तीसरी वारभी बुद्धकी शरण० ।"

---

१. उदान अट्ठ कथा. ३:२ । अ. नि. अ.क. १:४:८ । विनय. महावग्ग अ. क । २. विनय-अट्ठ कथामें दूसरे दिन । ३. जातक अट्ठकथा. नि. ४ । ४ महावग्ग १९ भाणवार । ५. भिक्षु-पनके उमेदवारको श्रामणेर कहते हैं ।

तब आयुष्मान् सारिपुत्रने राहुलकुमारको प्रव्रजित किया । तब शुद्धोदन शाक्य जहां भगवान् थे, वहां गया; और भगवान्को अभिवादन कर, एक ओर बैठ गया । एक ओर बैठे हुए शुद्धोदन शाक्यने भगवान्को कहा—

"भन्ते ! भगवान् से मैं एक वर चाहता हूं ।"
"गौतम ! तथागत वरसे दूर हो चुके हैं ।"
"भन्ते ! जो उचित है, दोष-रहित है ।"
"बोलो गौतम !"

"भगवानके प्रव्रजित होनेपर मुझे बहुत दुःख हुआ था, वैसेही नन्द (के प्रव्रजित) होने पर भी । राहुलके (प्रव्रजित) होनेपर अत्यधिक । भन्ते ! पुत्र-प्रेम मेरी छाल छेद रहा है । छाल छेदकर० । चमड़ेको छेदकर मांसको छेद रहा है । मांसको छेदकर नसको छेद रहा है । नसको छेदकर हड्डीको छेद रहा है । हड्डीको छेदकर घायलकर दिया है । अच्छा हो, भन्ते ! आर्य (=भिक्षुलोग) माता पिताकी अनुज्ञाके विना (किसीको) प्रव्रजित न करें ।"

भगवान्ने शुद्धोदन शाक्यको धार्मिक कथा कही…। तब शुद्धोदन शाक्य…आसनसे उठ अभिवादनकर प्रदक्षिणाकर चलागया । भगवान्ने इसी मौकेपर, इसी प्रकरणमें धार्मिक कथा कह, भिक्षुओंको संबोधित किया—"भिक्षुओ ! माता पिताकी अनुज्ञाके विना, पुत्रको प्रव्रजित न करना चाहिये । जो प्रव्रजित करे, उसे दुक्कटका दोष है।"

महामौद्गल्यायन स्थविरने कुमारको केश काटकर काषाय-वस्त्र दे 'शरण' दिया । महाकाश्यप स्थविर अववाद (=उपदेश) के आचार्य हुये ।

अनुरुद्ध, आनन्द, उपलि आदिका संन्यास (वि. पू. ४७०)

...[1]राहुल कुमारको प्रव्रजितकर भगवान् [2]थोड़ी ही देरमें कपिल (वस्तु)...से, मल्ल-देशमें चारिका करते, अनूपियाके आम्रवनमें पहुँचे...।

[3]उस समय भगवान् मल्लोंके कस्बे (=निगम) अनूपियामें विहार करते थे। उस समय कुलीन कुलीन शाक्य-कुमार भगवान्के प्रव्रजित होनेपर अनु-प्रव्रजित होरहे थे। उस समय महानाम शाक्य और अनुरुद्ध-शाक्य दो भाई थे। अनुरुद्ध सुकुमार था, उसके तीन महल थे—एक जाड़ेके लिये, एक गर्मीके लिये; एक वर्षाके लिये। वह वर्षाके चार महीनोंमें वर्षा-प्रसादके ऊपर अ-पुरुष-वाद्योंके साथ सेवित हो, प्रसादके नीचे न उतरता था। तब महानाम शाक्यके (चित्तमें) हुआ—आज-कल कुलीन कुलीन शाक्यकुमार भगवान्के प्रव्रजित होनेपर अनुप्रव्रजित हो रहे हैं। हमारे कुलसे कोई भी घर छोड़ बेघर हो प्रव्रजित नहीं हुआ है। क्यों न मैं या अनुरुद्ध प्रव्रजित हों। तब महानाम, जहाँ अनुरुद्ध शाक्य था, वहाँ गया। जाकर अनुरुद्ध शाक्यसे बोला—"तात! अनुरुद्ध! इस समय० हमारे कुलसे कोई भी० प्रव्रजित नहीं हुआ। इसलिये तुम प्रव्रजित हो या मैं प्रव्रजित होऊँ।"

"मैं सुकुमार हूं, घर छोड़ बेघर हो प्रव्रजित नहीं हो सकता, तुम्हीं प्रव्रजित होवो।"

"तात! अनुरुद्ध! आओ तुम्हें घर-गृहस्थी समझा दूं।—पहिले खेत जोतवाना चाहिये। जोतवाकर बोवाना चाहिये। बोवाकर पानी भरना चाहिये। पानी भरकर निकालना चाहिये, निकालकर सुखाना चाहिये, सुखवाकर कटवाना चाहिये, कटवाकर ऊपर लाना चाहिये, ऊपर ला सीधा करवाना चाहिये, सीधा करा मर्दन करवाना (=मिसवाना) चाहिये, मिसवाकर पयाल हटाना चाहिये। पयालको हटाकर भूसी हटानी चाहिये। भूसी हटाकर फटकवाना चाहिये। फटकवाकर जमा करना चाहिये। इसी प्रकार अगले वर्षोंमें भी करना चाहिये। काम (=अवश्यकतायें) नाश नहीं होते, कामोंका अन्त नहीं जान पड़ता।"

"कब काम खतम होंगे, कब कामोंका अन्त जान पड़ेगा? कब हम बे-फिकर हो, पांच प्रकारके कामोपभोगोंसे युक्त हो···विचरण करेंगे?"

"तात! अनुरुद्ध! काम खतम नहीं होते, न कामोंका अन्त ही जान पड़ता है। कामोंको विना खतम किये ही पिता और पितामह मर गये।"

"तुम्हीं घर गृहस्थी संभालो, हम ही प्रव्रजित होवेंगे।"

तब अनुरुद्ध शाक्य जहाँ माता थी वहाँ गया, जाकर मातासे बोला—

"अम्मा! मैं घरसे बेघर हो प्रव्रजित होना चाहता हूँ, मुझे प्रव्रज्याके लिये आज्ञा दे।"

ऐसा कहनेपर अनुरुद्ध शाक्यकी माताने अनुरुद्ध शाक्यको कहा—

---

१. अ. नि. अ. क. १: १: ९। २. नचिरस्सेव। ३. चुल्लवग्ग ७।

"तात ! अनुरुद्ध ! तुम दोनों मेरे प्रिय = मन आप = अप्रतिकूल पुत्र हो; · मरनेपर भी (तुमसे) अनिच्छुक नहीं होऊँगी, भला जीते जी···प्रव्रज्याकी स्वीकृति कैसे दूँगी ?"

दूसरी बार भी अनुरुद्ध शाक्यने माताको यों कहा० ।

तीसरी बार भी० ।

उस समय भद्दिय नामक शाक्य-राजा शाक्योंका राज्य करता था, (वह) अनुरुद्ध शाक्यका मित्र था । तब अनुरुद्ध शाक्यकी माताने (यह सोच)—यह भद्दिय (=भद्रिक) शाक्यराजा अनुरुद्धका मित्र शाक्योंका राज्य करता है, वह घर छोड़····प्रव्रजित होना नहीं चाहेगा—और अनुरुद्ध शाक्यसे कहा—

"तात ! अनुरुद्ध ! यदि भद्दिय शाक्य-राजा प्रव्रजित हो, तो तुमभी प्रव्रजित होना ।"

तब अनुरुद्ध शाक्य जहाँ भद्दिय शाक्य-राजा था, वहाँ गया; जाकर भद्दिय शाक्य-राजासे बोला—

"सौम्य ! मेरी प्रव्रज्या तेरे आधीन है ।"

"यदि सौम्य ! तेरी प्रव्रज्या मेरे आधीन है, तो वह आधीनता मुक्त हो ।····। सुखसे प्रव्रजित होवो ।"

"आ सौम्य दोनों० प्रव्रजित होवें ।"

"सौम्य ! मैं प्रव्रजित होनेमें समर्थ नहीं हूं । तेरे लिये और जो मैं कर सकता हूँ, वह करूँगा । तू प्रव्रजित हो जा ।

"सौम्य ! माताने मुझे ऐसा कहा है—यदि तात अनुरुद्ध ! भद्दिय शाक्य-राजा० प्रव्रजित हो, तो तुम भी प्रव्रजित होना । सौम्य ! तू यह बात कह चुका है—'यदि सौम्य ! तेरी प्रव्रज्या मेरे आधीन है, तो वह आधीनता मुक्त हो ।····। सुखसे प्रव्रजित होवो' । आ सौम्य ! दोनों प्रव्रजित होवें ।"

उस समयके लोग सत्यवादी सत्य-प्रतिज्ञ होते थे । तब भद्दिय शाक्य-राजाने अनुरुद्ध शाक्यको यों कहा—

"सौम्य सात वर्ष ठहर । सात वर्ष बाद दोनों० प्रव्रजित होवेंगे ।"

"सौम्य ! सात वर्ष बहुत चिर है । मैं इतनी देर नहीं ठहर सकता ।"

"सौम्य ! छः वर्ष ठहर० ।"

"० नहीं ठहर सकता ।"

"०पांच वर्ष०" । "०चार वर्ष०" । "०तीन वर्ष०" । "०दो वर्ष०" । "०एक वर्ष०" । "०सात मास०" । "०छः मास०" । "०पांच मास०" । "०चार मास०" । "०तीन मास०" । "०दो मास०" । "०एक मास०" । "०आध मास बाद दोनों० प्रव्रजित होंगे ।"

"सौम्य ! आध मास बहुत चिर है । मैं इतनी देर नहीं ठहर सकता ।"

"सौम्य ! सप्ताहभर ठहर, जिसमें कि मैं पुत्रों और भाइयोंको राज्य सौंप दूँ ।"

"सौम्य ! सप्ताह अधिक नहीं है, ठहरूँगा ।"

तब भद्दिय शाक्य-राजा, अनुरुद्ध, आनन्द, भृगु, किम्बिल, देवदत्त और सातवाँ उपालि हजाम, जैसे पहिले चतुरंगिनी-सेना-सहित बगीचे ले जाये जाते थे, वैसे ही चतुरंगिनी-सेना-सहित ले जाये गये । वह दूर तक जा, सेनाको लौटा, दूसरेके राज्यमें पहुँच, आभूषण उतार, उपरनेमें गँठरी बाँध, उपालि हजामसे यों बोले—

" भणे ! उपाली ! तुम लौटो । तुम्हारी जीविकाके लिये इतना काफी है ।" तब उपाली नाईको लौटते वक्त यों हुआ—

"शाक्य चंड (=क्रोधी) होते हैं । 'इसने कुमार मार डाले', (समझ) मुझे मरवा डालेंगे । यह राजकुमार हो, प्रव्रजित होंगे, तो फिर मुझे क्या ?"

उसने गँठरी खोलकर, आभूषणोंको वृक्षपर लटका "जो देखे, उसको दिया, ले जाय" कह, जहाँ शाक्य-कुमार थे, वहाँ गया । उन शाक्य-कुमारोंने दूरसे ही देखा कि उपाली नाई आ रहा है । देखकर उपाली नाईको कहा—

"भणे ! उपाली ! किस लिये लौट आये ?"

"आर्य-पुत्रो ! लौटते वक्त मुझे यों हुआ—शाक्य चंड होते हैं० । इसलिये आर्य-पुत्रो ! मैं गँठरी खोलकर, आभूषणोंको वृक्षपर लटका०, वहाँसे लौटा हूँ ।"

"भणे ! उपाली ! अच्छा किया, जो लौट आये । शाक्य चंड होते हैं । 'इसने कुमार मार डाले' (कह) तुझे मरवा डालते ।"

तब वह शाक्य-कुमार उपाली हजामको ले वहाँ गये, जहाँ भगवान् थे । जाकर भगवान्‌को वन्दनाकर एक ओर बैठ गये । एक ओर बैठकर उन शाक्य-कुमारोंने भगवान्‌से कहा—

"भन्ते ! हम शाक्य अभिमानी होते हैं । यह उपाली नाई, चिरकाल तक हमारा सेवक रहा है । इसे भगवान् पहिले प्रव्रजित करायें । (जिसमें कि) हम इसका अभिवादन, प्रत्युत्थान (=सम्मनार्थ खड़ा होना), हाथ जोड़ना···करें । इस प्रकार हम शाक्योंका शाक्य होनेका अभिमान मर्दित होगा ।"

तब भगवान्‌ने उपाली हजामको पहिले प्रव्रजित कराया, पीछे उन शाक्य-कुमारोंको । तब आयुष्मान् भद्दियने उसी वर्षके भीतर तीनों विद्याओंको साक्षात् किया । आयुष्मान् अनुरुद्धने दिव्य-चक्षुको० । आ० आनन्दने सोतापत्ति फलको० । देवदत्तने पृथग्जनोंवाली ऋद्धिको सम्पादित किया ।

उस समय आयुष्मान् भद्दिय अरण्यमें रहते हुए भी, पेड़के नीचे रहते हुये भी, शून्य गृहमें रहते हुए भी, बराबर उदान कहते थे—"अहो ! सुख !! अहो ! सुख !!" बहुतसे भिक्षु जहाँ भगवान् थे, वहाँ गये । जाकर भगवान्‌को अभिवादनकर० एक ओर बैठ, उन भिक्षुओंने भगवान्‌से कहा—

"भन्ते ! आयुष्मान् भद्दिय अरण्यमें रहते० । निःसंशय भन्ते ! आयुष्मान् भद्दिय बे-मनसे ब्रह्मचर्य-चरण कर रहे हैं । उसी पुराने राज्य-सुखको याद करते अरण्यमें रहते० ।"

तब भगवान्‌ने एक भिक्षुको संबोधित किया—"आ, भिक्षु! तू जाकर मेरे वचनसे भद्दिय भिक्षुको कह—आवुस भद्दिय! तुमको शास्ता बुलाते हैं।"

"अच्छा" कह, वह भिक्षु जहाँ आयुष्मान् भद्दिय थे, वहाँ गया। जाकर आयुष्मान् भद्दियको बोला—"आवुस भद्दिय! तुम्हें शास्ता बुला रहे हैं।"

"अच्छा आवुस!" कह उस भिक्षुके साथ (आयुष्मान् भद्दिय) जहाँ भगवान् थे, वहाँ गये। जाकर भगवान्‌को अभिवादन कर एक ओर बैठ गये। एक ओर बैठे हुए आयुष्मान् भद्दियको भगवान्‌ने कहा—

"भद्दिय! क्या सचमुच तुम अरण्यमें रहते हुये भी० उदान कहते हो०।"

"भन्ते! हाँ!"

"भद्दिय! किस बातको देखते हुये अरण्यमें रहते हुये भी०।"

"भन्ते! पहिले राजा होते वक्त अन्तःपुरके भीतर भी अच्छी प्रकार रक्षा होती रहती थी। नगर-भीतर भी०। नगर-बाहर भी०। देश-भीतर भी०। देश-बाहर भी०। सो मैं भन्ते! इस प्रकार रक्षित गोपित होते हुये भी भीत, उद्विग्न, स-शंक, त्रास-युक्त घूमता था। किन्तु आज भन्ते! अकेला अरण्यमें रहते हुये भी० शून्य-गृहमें रहते हुये भी, निडर, अनुद्विग्न, अ-शंक अ-त्रास-युक्त, बे-फिकर····विहार करता हूँ। इस बातको देख भन्ते! अरण्यमें रहते०।"

नलकपान-सुत्त (वि. पू. ४७०)

¹ऐसा मैंने सुना—एक समय भगवान् कोसल देशमें नलकपानके पलास-वनमें विहार करते थे। उस समय बहुतसे कुलीन कुलीन कुल-पुत्र भगवान्के पास घरसे बे-घर हो प्रव्रजित हुये थे, (जैसे)—आयुष्मान् अनुरुद्ध, आयुष्मान् नन्दिय, आ० किम्बिल, आ० भृगु, आ० कुण्डधान, आ० रेवत, आ० आनन्द, तथा दूसरेभी कुलीन कुलीन कुल-पुत्र। उस समय भिक्षु-संघके सहित भगवान् खुले आंगनमें बैठे थे। तब भगवान्ने उन कुलपुत्रोंके संबंधमें भिक्षुओंको संबोधित किया—

"भिक्षुओ! जो वह कुल-पुत्र मेरे पास श्रद्धा-पूर्वक ०प्रव्रजित हुये हैं; वह मनसे ब्रह्मचर्यमें प्रसन्नतो हैं?"

ऐसा कहनेपर भिक्षु चुप होगये। दूसरी बारभी भगवान्ने उन कुलपुत्रोंके संबंधमें भिक्षुओंको संबोधित किया—"भिक्षुओ!०।"

दूसरी बारभी वह भिक्षु चुप होगये। तीसरी बार भी० "भिक्षुओ!०"

तीसरी बारभी वह भिक्षु चुपही गये।

तब भगवान्के (मनमें) हुआ, "क्यों न मैं उन्हीं कुलपुत्रोंको पूछूं?" तब भगवान्ने आयुष्मान् अनुरुद्धको संबोधित किया—

"अनुरुद्धो! तुम (लोग) ब्रह्मचर्यमें प्रसन्नतो हो न?"

"हां भन्ते! हम (लोग) ब्रह्मचर्यमें बहुत प्रसन्न हैं।"

"साधु, साधु अनुरुद्धो! तुम जैसे श्रद्धासे० प्रव्रजित कुल-पुत्रोंके यह योग्यही है, कि तुम ब्रह्मचर्यमें प्रसन्न हो। जो तुम अनुरुद्धो! उत्तम यौवन-सहित प्रथम वयस, बहुतही कालेकेश वाले, कामोपभोग कर रहेथे; सो तुम अनुरुद्धो! उत्तम यौवन० वाले, घरसे बे-घर हो प्रव्रजित हुये। सो तुम अनुरुद्धो! राजाकी जबर्दस्तीसे नहीं ०प्रव्रजित हुये। चोरके डरसे नहीं०। ऋणसे पीड़ित होकर नहीं०। भयसे पीड़ित होकर नहीं०। बे-राजीके होनेसे नहीं०। बल्कि, (यही सोच) 'जन्म, जरा, मरण, शोक, रोना-पीटना, दुःख, दुर्मनता, हैरानीमें फँसा हूं, दुःखमें गिरा दुःखमें लिपटा (हूं), जो कहीं इस केवल दुःख-स्कंध (=दुःखकी ढेरी का विनाश मालूम होता)'। अनुरुद्धो! तुम तो इस प्रकार श्रद्धायुक्त ०प्रव्रजित हुये हो न?"

"हां, भन्ते!"

"ऐसे प्रव्रजित हुये कुल-पुत्रको क्या करना चाहिये? अनुरुद्धो! कामभोगोंसे, बुरे (=अकुशल) धर्मोंसे, अलग होना चाहिये। (मनुष्य तबतक) विवेक=प्रीतिसुख या उससेभी अधिक शांत (=सुख) को नहीं पाता, (जबतककि) अभिध्या (=लोभ) उसके चित्तको पकड़े रहती है। व्यापाद (=द्वेष) उसके चित्तको पकड़े रहता है। औद्धत्य-कौकृत्य (=उच्छृं-

१. मज्झिम. नि. २:२:८

चलता), ०विचिकित्सा (=संदेह)० । अरति (=असंतोष)० । तन्द्री (=आलस्य) उसके चित्तको पकड़े रहती है ।···अनुरुद्धो ! कामनाओं से, बुरे धर्मोंसे विवेक प्रीति-सुख या उससे भी अधिक शांत (=सुख) को पाता है; (यदि), अभिध्या उसके चित्तको न पकड़े रहे, व्यापाद०, औद्धत्य-कौकृत्य०, विचिकित्सा०, अरति०, तन्द्री उसके चित्तको न पकड़े रहे ।···

"क्यों अनुरुद्धो ! मेरे विषयमें तुम्हारा क्या (विचार) होता है, कि जो आस्रव (=चित्त-मल) क्लेश (=मल)-देनेवाले, आवागमन-देनेवाले, सभय (=सदर), भविष्यमें दुःख-फलोत्पादक, जन्म-जरा-मरण-देनेवाले हैं; वह तथागतके नहीं छूटे, इसीलिये तथागत जानकर एकका सेवन करते हैं, ०एकको स्वीकार करते हैं, जानकर एकका त्याग करते हैं, जानकर एकको हटाते हैं ?"

" नहीं भन्ते ! हमको ऐसा नहीं होता कि, जो आस्रव क्लेश देने वाले आवागमन देने वाले० हैं, वह तथागतके नहीं छूटे० । भन्ते ! भगवान्‌के विषयमें हम (लोगों) को ऐसा होता है, कि जो आस्रव जन्म-जरा-मरण देने वाले हैं, वह तथागतके छूट गये हैं । इसलिये तथागत जानकर एकको सेवन करते हैं, जानकर एकको करते हैं, जानकर एकका त्याग करते हैं, जानकर एकको हटाते हैं ।"

" साधु, साधु, अनुरुद्धो ! जो आस्रव० क्लेश देने वाले हैं, वह तथागतके छूट गये हैं, नष्ट-मूल हो गये, ठूंठे-तालसे हो गये, नष्ट हो गये, भविष्यमें न उत्पन्न वाले हो गये हैं । जैसे अनुरुद्धो ! शिरसे कटे ताल (का वृक्ष) फिर नहीं पनप सकता, ऐसेही अनुरुद्धो ! जो आस्रव० क्लेश देने वाले हैं, वह तथागतके छूट गये० । इसलिये तथागत जानकर एकको सेवन करते हैं० ।"

(१९)

राहुलोवाद-सुत्त (वि. पृ. ४७०)

....[1]पिताको [2]तीनफलोंमें प्रतिष्ठितकर, भिक्षुसंघसहित भगवान् फिर राजगृहमें जा सीतवनमें विहार करने लगे।

\+ \+ \+ \+ \+

अम्ब-लट्ठिक-राहुलोवाद-सुत्त।

[3]ऐसा मैंने सुना—एक समय भगवान् राजगृहके वेणुवन कलन्दकनिवापमें विहार करते थे। उस समय आयुष्मान् राहुल [4]अम्बलट्ठिकामें विहार करते थे। तब भगवान् सायंकाल को ध्यानसे उठ, जहां अम्बलट्ठिका वनमें आयुष्मान् राहुल (थे) वहां गये। आयुष्मान् राहुलने दूरसेही भगवान्को आते देखा; देखकर आसन बिछाया, पैर धोनेके लिये पानी रखा। भगवान्ने बिछाये आसनपर बैठ पैर धोये। आयुष्मान् राहुलभी भगवान्को अभिवादनकर एक ओर बैठ गये।

तब भगवान्ने थोड़ा सा बचा पानी लोटेमें छोड़, आयुष्मान् राहुलको सम्बोधित किया—

"राहुल! लोटाके इस थोड़ेसे बचे पानीको देखता है?"

"हां भन्ते!"

"राहुल! ऐसाही थोड़ा उनका श्रमण-भाव (साधुपन) है, जिनको जानबूझकर झूठ बोलनेमें लज्जा नहीं।"

तब भगवान्ने उस थोड़ेसे बचे जलको फेंककर आयुष्मान् राहुलको संबोधित किया—

"राहुल! देखा मैंने उस थोड़ेसे जलको फेंक दिया?"

"हाँ भन्ते!"

"ऐसाही 'फेंका' उनका श्रमण भावभी है, जिनको जानकर झूठ बोलनेमें लज्जा नहीं।"

तब भगवान्ने उस लोटेको औंधा कर, आयुष्मान राहुलको संबोधित किया—

"राहुल! तू इस लोटेको औंधा देखता है?"

"हां, भन्ते!"

---

१. जातक. नि। २. स्रोत आपन्न, सकृदागामी, अनागामी। ३. म. नि. २: २: १।

४. "वेणुवनके किनारे...एकान्त प्रियोंके लिये किया गया वास-स्थान।...यह आयुष्मान् (=राहुल) सात वर्षके श्रामणेर होनेके समयसे ही, एकान्त (चिन्तना) बढ़ाते वहां विहार करते थे" (अ. क.)।

" ऐसाही "औंधा" उनका श्रमण-भाव है—जिनको जान बूझकर झूठ बोलने लज्जा नहीं ।"

तब भगवान्‌ने उस लोटेको सीधाकर आयुष्मान् राहुलको संबोधित किया—

" राहुल ! इस लोटेको तू सीधा किया देख रहा है ? खाली देख रहा है ?"

" हाँ भन्ते ! " "ऐसाही खाली तुच्छ उनका श्रमण-भाव है, जिनको जान बूझकर झूठ बोलनेमें लज्जा नहीं । जैसे राहुल ! हरिस-समान लम्बे दाँतों वाला, महाकाय, सुन्दर जातिका, संग्राममें जाने वाला, राजाका हाथी, संग्राममें जानेपर, अगले पैरोंसे भी (लड़ाईका) काम करता है । पिछले पैरोंसे भी काम करता है । शरीरके अगले भागसे भी काम करता है । शरीरके पिछले भागसे भी काम करता है । शिरसे भी काम करता है । कायसे भी काम करता है । दाँतसे भी काम करता है । पूँछसे भी काम लेता है । लेकिन सूँडको (बेकाम) रखता है । हाथीवान्‌को ऐसा (विचार) होता है—' यह राजाका हाथी हरिस जैसे दाँतों वाला० पूँछसे भी काम लेता है, (लेकिन) सूँडको (बेकाम) रखता है । राजाके ऐसे नागका जीवन अविश्वसनीय है ' ।

"लेकिन यदि राहुल ! राजाका हाथी हरिस जैसे दाँतवाला०, पूँछसे भी काम करता है, सूँडसे भी काम करता है, तो राजाके हाथीका जीवन विश्वसनीय है; अब राजाके हाथीको और कुछ करना नहीं है । ऐसे ही राहुल ! 'जिसे जानबूझकर झूठ बोलनेमें लज्जा नहीं; उसके लिये कोई भी पाप-कर्म अकरणीय नहीं' ऐसा मैं मानता हूँ । इसलिये राहुल ! 'हँसीमें भी नहीं झूठ बोलूँगा', यह सीख लेनी चाहिये ।

"तो क्या जानते हो, राहुल ! दर्पण किस कामके लिये है ?"

"भन्ते ! देखनेके लिये ।"

"ऐसे ही राहुल ! देख देखकर कायासे काम करना चाहिये । देख देखकर वचनसे काम करना चाहिये । देख देखकर मनसे काम करना चाहिये ।

"जब राहुल ! तू कायासे (कोई) काम करना चाहे, तो तुझे कायाके कामपर विचार करना चाहिये—जो मैं यह काम करना चाहता हूँ, क्या यह मेरा काय-कर्म अपने लिये पीड़ा-दायक तो नहीं हो सकता ? दूसरेके लिये पीड़ा-दायक तो नहीं हो सकता ? (अपने और पराये) दोनोंके लिये पीड़ा-दायक तो नहीं हो सकता ? यह अ-कुशल (=बुरा) काय-कर्म है, दुःखका हेतु =दुःख विपाक (=भोग) देनेवाला है ? यदि तू राहुल ! प्रत्यवेक्षा (=देखभाल=विचार) कर ऐसा जाने—'जो मैं यह कायासे काम करना चाहता हूँ० । यह बुरा काय-कर्म है ।' ऐसा राहुल ! काय-कर्म सर्वथा न करना चाहिये । यदि तू राहुल ! प्रत्यवेक्षाकर ऐसा समझे,—'जो मैं यह कायासे काम करना चाहता हूँ, वह काय-कर्म न अपने लिये पीड़ा-दायक हो सकता है, न परके लिये० । यह कुशल (अच्छा) काय-कर्म है, सुखका हेतु=सुख-विपाक है' । इस प्रकारका कर्म राहुल ! तुझे कायासे करना चाहिये ।

राहुलोवाद-सुत्त ।

"राहुल ! कायासे काम करते हुये भी, तब काय-कर्मका प्रत्यवेक्षण (=परीक्षा) करना चाहिये—'क्या जो मैं यह कायासे काम कर रहा हूँ, यह मेरा काय-कर्म अपने लिये पीड़ा-दायक है०' । यदि तू राहुल० जाने । ० यह काय-कर्म अकुशल है० । तो राहुल ! इस प्रकारके काय-कर्मको छोड़ देना ।० यदि० जाने ।० यह काय-कर्म कुशल है, तो इस प्रकारके काय-कर्मको राहुल बारबार करना ।

"काय-कर्म करके भी राहुल ! काय-कर्मका फिर तुझे प्रत्यवेक्षण करना चाहिये—'क्या जो मैंने यह काय-कर्म किया है, वह मेरा काय-कर्म अपने लिये पीड़ादायक है० । यह कायकर्म अकुशल है०' । ०जाने । ०अकुशल है । तो राहुल इस प्रकारके काय-कर्मको शास्ताके पास, या विज्ञ गुरु-भाई (=सब्रह्मचारी) के पास कहना चाहिये, खोलना चाहिये=उतान करना चाहिये । कहकर, खोलकर=उतानकर, आगेको संयम करना चाहिये । यदि राहुल ! तू प्रत्यवेक्षणकर जाने । ० कुशल है । तो दिनरात कुशल (=उत्तम) धर्मों (=बातों) में शिक्षा ग्रहण करनेवाला बन । राहुल ! इससे तू प्रीति=प्रमोदसे विहार करेगा ।

"यदि राहुल ! तू, वचनसे काम करना चाहे० । ०कुशल वचन-कर्म० करना ।० बार-बार करना ।० उससे तू० प्रीति=प्रमोदसे विहार करेगा ।

"यदि तू राहुल ! मनसे काम करना चाहे० । ० कुशल मन-कर्म ०करना ।० बराबर करना । मन-कर्म करके० यह मनकर्म अकुशल है० । तो इस प्रकारके मन-कर्म' में खिन्न होना चाहिये, शोक करना चाहिये, घृणा करनी चाहिये । खिन्न हो, शोककर घृणाकर आगेको संयम करना चाहिये ।० यह मनकर्म कुशल है० । उससे तू० प्रमोदसे विहार करेगा ।

"राहुल ! जिन किन्हीं श्रमणों (=भिक्षुओं) या ब्राह्मणों (=सन्तों)ने अतीत-कालमें काय-कर्म०, वचनकर्म०, मनकर्म० परिशोधित किये । उन सबोंने इसी प्रकार प्रत्यवेक्षणकर प्रत्यवेक्षणकर काय०, वचन०, मन-कर्म परिशोधित किये । जो कोई राहुल ! श्रमण या ब्राह्मण भविष्यकालमें भी काय०, वचन०, मन-कर्म परिशोधित करेंगे; वह सब इसी प्रकार० । जो कोई राहुल ! श्रमण या ब्राह्मण आजकल भी काय०, वचन०, मन-कर्म परिशोधित करते हैं; वह सब भी इसी प्रकार० ।

" इसलिये राहुल ! तुझे सीखना चाहिये कि मैं प्रत्यवेक्षणकर काय-कर्म०, ०वचन-कर्म, ०मन-कर्म परिशोधन करूँगा ।"

अनाथ-पिंडककी दीक्षा। जेतवन-स्वीकार। (वि. पू. ४६९)

[१]ऐसा मैंने सुना—एक समय भगवान् राजगृहमें सीतवनमें विहार करते थे। उस समय अनाथ-पिण्डक गृह-पति किसी कामसे राजगृहमें आया था। अनाथ पिंडकने सुना—'लोकमें बुद्ध उत्पन्न हो गये'। उसी वक्त वह भगवान्के दर्शनार्थ जानेके लिये इच्छुक हुआ। तब उस० को हुआ···

[२]उस समय अनाथ-पिंडक गृहपति (जो) राजगृहके-श्रेष्ठीका बहनोई था; किसी कामसे राजगृह गया। उस समय राजगृहक-श्रेष्ठीने संघ-सहित बुद्धको दूसरे दिनके लिये निमंत्रण दे रक्खा था। इसलिये उसने दासों और कम-करोंको आज्ञा दी—

"तो भणे! समयपर ही उठकर खिचड़ी पकाओ, भात पकाओ। सूप (=तेमन) तैयार करो...।" तब अनाथपिंडक गृहपतिको ऐसा हुआ—"पहिले मेरे आनेपर यह गृह-पति, सब काम छोड़कर मेरेही आव-भगतमें लगा रहता था। आज विक्षिप्तसा दासों कमकरोंको आज्ञा दे रहा है—"तो भणे! समयपर०।" क्या इस गृहपतिके (यहां) आवाह होगा, या विवाह होगा, या महायज्ञ उपस्थित है, या लोग-बाग-सहित मगध-राज श्रेणिक बिम्बसार कलके लिये निमंत्रित किये गये हैं?"

तब राज-गृहक श्रेष्ठी दासों और कमकरोंको आज्ञा देकर, जहाँ अनाथ-पिंडक गृहपति था, वहाँ आया। आकर अनाथ-पिंडक गृहपतिके साथ प्रतिसम्मोदन (=प्रणामापाती) कर, एक ओर बैठ गया। एक ओर बैठे हुये, राजगृहक श्रेष्ठीको अनाथ-पिंडक गृहपतिने कहा—"पहिले मेरे आनेपर तुम गृहपति!०।"

"गृहपति! मेरे (यहाँ) न आवाह होगा, न विवाह होगा। न ०मगध-राज० निमंत्रित किये गये हैं। बल्कि कल मेरे यहाँ बड़ा यज्ञ है। संघ-सहित बुद्ध (=बुद्ध-प्रमुख-संघ) कलके लिये निमंत्रित हैं।"

"गृहपति! तू 'बुद्ध' कह रहा है?" "गृहपति! हाँ 'बुद्ध' कह रहा हूँ।""गृहपति! 'बुद्ध'०?" "गृहपति! हाँ 'बुद्ध'०।" "गृहपति! 'बुद्ध'०?" "गृहपति! हाँ 'बुद्ध'०।"

"गृहपति! 'बुद्ध' यह शब्द (=घोष) भी लोकमें दुर्लभ है। गृहपति! क्या इस समय उन भगवान् अर्हत् सम्यक्-संबुद्धके दर्शनके लिये जाया जा सकता है?"

"गृहपति! यह समय उन भगवान् अर्हत् सम्यक्-संबुद्धके दर्शनार्थ जानेका नहीं है।"

तब अनाथ-पिंडक गृहपति—"अब कल समयपर उन भगवान्०के दर्शनार्थ जाऊँगा" इस बुद्ध-विषयक स्मृतिको (मनमें) ले सो रहा। रातको सवेरा समझ तीनवार उठा। तब अनाथ-पिंडक गृहपति जहाँ (राजगृह नगरका) शिवद्वार था, (वहाँ) गया। अ-मनुष्यों (=देव आदि)

---

१. संयु. नि. ११; १: ८। २. चुल्लवग्ग ६: २ भाण।

ने द्वार खोल दिया । तब अनाथ-पिंडक०के नगरसे बाहर निकलते ही प्रकाश अन्तर्ध्यान होगया, अन्धकार प्रादुर्भूत हुआ । (उसे) भय, जड़ता और रोमांच उत्पन्न हुआ । तब अनाथ-पिंडक गृहपति जहाँ सीत-वन (है वहाँ) गया । उस समय भगवान् रातके प्रत्यूष (=भिनसार) कालमें उठकर चौड़ेमें टहल रहे थे । भगवान्ने अनाथ-पिंडक गृहपतिको दूरसे ही आते हुये देखा । देखकर चंक्रमण (=टहलनेकी जगह) से उतरकर, बिछे आसनपर बैठ गये । बैठकर अनाथ-पिंडक गृहपतिको कहा—"आ सुदत्त ।" अनाथ-पिंडक गृहपति यह (सोच) "भगवान् मुझे नाम लेकर बुला रहे हैं" हृष्ट=उदग्र (=फूला न समाता) हो, जहाँ भगवान् थे, वहाँ गया । जाकर भगवान्के चरणोंमें शिरसे पड़कर बोला—

"भन्ते ! भगवान्को निद्रा सुखसे तो आई ?"

"निर्वाण-प्राप्त ब्राह्मण सर्वदा सुखसे सोता है ।

शीतल हुआ, दोष-रहित हो जोकि काम वासनाओंमें लिप्त नहीं होता ॥

सारी आसक्तियोंको खंडितकर हृदयसे डरको हटाकर ।

चित्तकी शांतिको प्राप्तकर उपशांत हो (वह) सुखसे सोता है ॥"

तब भगवान्ने अनाथ-पिंडक गृहपतिको आनुपूर्वी [1]कथा० कही । जैसे कालिमा-रहित शुद्ध-वस्त्र अच्छी तरह रंग पकड़ता है, ऐसे ही अनाथ-पिंडक गृहपतिको उसी आसनपर 'जो कुछ समुदय-धर्म है वह निरोध-धर्म है', यह वि-रज=वि-मल धर्म-चक्षु उत्पन्न हुआ । तब दृष्ट-धर्म =प्राप्त-धर्म=विदित-धर्म=पर्यवगाढ-धर्म, संदेह-रहित, वाद-विवाद-रहित, शास्ताके शासन (=बुद्ध-धर्म)में स्वतंत्र हो, अनाथ-पिंडक गृहपतिने भगवान्से कहा—

"आश्चर्य ! भन्ते ! आश्चर्य ! भन्ते ! जैसे औंधेको सीधा करदे, ढँकेका उघाड़दे, भूलेको रास्ता बतलादे, अंधकारमें तेलका प्रदीप रखदे जिसमें आँखवाले रूप देखें; ऐसेही भगवान्ने अनेक प्रकारसे धर्मको प्रकाशित किया । मैं भगवान्की शरण जाता हूँ, धर्म और भिक्षु संघकी (शरण जाता हूँ) । आजसे मुझे भगवान् सांजलि शरण-आया उपासक ग्रहण करें । भगवान् भिक्षु-संघके सहित कलका मेरा भोजन स्वीकार करें ।"

भगवान्ने मौनसे स्वीकार किया । तब अनाथ पिंडक० भगवान्की स्वीकृतिको जान, आसनसे उठ, भगवान्को अभिवादन कर, प्रदक्षिणा कर चलागया । राजगृहक-श्रेष्ठी ने सुना— अनाथ-पिंडक गृह-पतिने कलको भिक्षु-संघ-सहित बुद्धको निमंत्रित किया है । तब राजगृहक श्रेष्ठीने अनाथ-पिंडक गृह-पति से कहा—

"तूने गृह-पति ! कलके लिये भिक्षु-संघ-सहित बुद्धको निमंत्रित किया है, और तू आगंतुक (=पाहुना=अतिथि) है । इसलिये गृह-पति ! मैं तुझे खर्च देता हूँ; जिससे तू बुद्ध-प्रमुख भिक्षु-संघकेलिये भोजन (तय्यार) करे ?"

"नहीं गृहपति ! मेरे पास खर्च है, जिससे मैं बुद्ध-प्रमुख भिक्षु-संघका भोजन (तय्यार) करूँगा ।"

---

[1] देखो पृष्ठ २९ ।

राज-गृहके [1]नैगमने सुना—अनाथ पिंडक० । तब राजगृहके नैगमने अनाथ-पिंडक० को यों कहा—"०मैं तुझे खर्च० देता हूँ"

"नहीं आर्य ! मेरे पास खर्च है० ।"

मगध-राज० ने सुना—० । तब मगध-राज०ने अनाथ-पिंडक०को⋯कहा० "मैं तुझे खर्च० देताहूँ" ।

"नहीं देव ! मेरेपास खर्च है० ।"

तब अनाथ-पिंडक गृह-पतिने उस रातके बीत जानेपर, राजगृहके श्रेष्ठीके मकानपर उत्तम खाद्य भोज्य तय्यार करा, भगवान्‌को कालकी सूचना दिलवाई "काल है भन्ते ! भोजन तय्यार होगया" । तब भगवान् पूर्वाह्णके समय सु-आच्छादित हो, पात्र चीवर हाथमें ले, जहाँ राजगृहके श्रेष्ठीका मकान था, वहाँ गये । जाकर भिक्षुसंघ सहित बिछाये आसनपर बैठे । तब अनाथ-पिंडक गृह-पति बुद्ध-प्रमुख भिक्षु-संघको अपने हाथसे उत्तम खाद्य भोज्यसे संतर्पित कर, पूर्णकर, भगवान्‌के भोजनकर पात्रसे हाथ खींच लेनेपर, एक ओर बैठ गया । एक ओर बैठे अनाथ-पिंडक गृह-पतिने भगवान्‌से कहा—

"भिक्षु-संघके साथ भगवान् श्रावस्तीमें वर्षा-वास स्वीकार करें ।"

"शून्य-आगारमें गृहपति ! तथागत अभिरमण (=विहार) करते हैं ।"

"समझ गया भगवान् ! समझ गया सुगत !"

उस समय अनाथ-पिंडक गृह-पति बहु-मित्र=बहु-सहाय, और प्रामाणिक था । राज-गृहमें (अपने)⋯कामको खतम कर, अनाथ-पिंडक गृह-पति श्रावस्तीको चल पड़ा । मार्गमें उसने मनुष्योंको कहा—"आर्यो ! आराम बनवाओ, विहार (=भिक्षुओंके रहनेका स्थान) प्रतिष्ठित करो । लोकमें बुद्ध उत्पन्न होगये हैं; उन भगवान्‌को मैंने निमंत्रित किया है, (वह) इसी मार्गसे आवेंगे ।" तब अनाथ-पिंडक गृह-पति-द्वारा प्रेरित हो, मनुष्योंने आराम बनवाये, विहार प्रतिष्ठित किये, दान (=सदाव्रत) रक्खे ।

तब अनाथ-पिंडक गृह-पतिने श्रावस्ती जाकर, श्रावस्तीके चारों ओर नजर दौड़ाई—

"भगवान् कहाँ निवास करेंगे ? (ऐसी जगह) जो कि गाँवसे न बहुत दूर हो, न बहुत समीप; चाहनेवालोंके आने-जाने योग्य, इच्छुक मनुष्योंके पहुँचने लायक हो । दिनको कम-भीड़ रातको अल्प-शब्द=अल्प-निर्घोष, वि-जन-वात (=आदमियोंकी हवासे रहित) मनुष्योंसे एकान्त, ध्यानके लायक हो ।" अनाथ-पिंडक गृहपतिने (ऐसी जगह) जेत राज-कुमारका उद्यान देखा; (जो कि) गाँवसे न बहुत दूर था० । देखकर जहाँ जेत राजकुमार था, वहाँ गया । जाकर जेत राजकुमारसे कहा—

"आर्य-पुत्र ! मुझे आराम बनानेके लिये उद्यान दीजिये ?"

"गृहपति ! 'कोटि-संथारसे भी' (वह) आराम अ-देय है ।"

---

१. 'श्रेष्ठी' या नगर-सेठ उस समयका एक अवैतनिक राजकीय पद था । इसी तरह 'नैगम' एक पद था ; जो शायद 'श्रेष्ठी' से ऊपर था ।

"आर्य-पुत्र ! मैंने आराम ले लिया ।"

"गृहपति ! तूने आराम नहीं लिया ।"

'लिया या नहीं लिया', यह उन्होंने व्यवहार-अमात्यों (=न्यायाध्यक्षों) को पूछा । महामात्योंने कहा—

"आर्य-पुत्र ! क्योंकि तूने मोल किया, (इसलिये) आराम ले लिया ।"

तब अनाथ-पिंडक गृहपतिने गाड़ियोंपर हिरण्य (=मोहर) ढुलवाकर जेतवनको 'कोटि-सन्थार' (=किनारेसे किनारा मिलाकर) बिछा दिया । एक बारके लाये (हिरण्य) से (द्वारके) कोठेके चारो ओरका थोड़ासा (स्थान) पूरा न हुआ । तब अनाथ-पिंडक गृहपतिने (अपने) मनुष्योंको आज्ञा दी—

"जाओ भणे ! हिरण्य ले आओ, इस खाली स्थानको ढाँकें ।" तब जेत राजकुमारको (ख्याल) हुआ—"यह (काम) कम महत्वका न होगा, क्योंकि यह गृहपति बहुत हिरण्य खर्च कर रहा है ।" (और) अनाथ-पिंडक गृहपतिको कहा—

"बस, गृहपति ! तू इस खाली जगहको मत ढँकवा । यह खाली-जगह (=अवकाश) मुझे दे, यह मेरा दान होगा ।"

तब अनाथ-पिंडक गृहपतिने 'यह जेत कुमार गण्य-मान्य प्रसिद्ध मनुष्य है । इस धर्म-विनय (=धर्म) में ऐसे आदमीका प्रेम लाभदायक है ।' (सोच) वह स्थान जेत राजकुमारको दे दिया । तब जेत-कुमारने उस स्थानपर कोठा बनवाया । अनाथ-पिंडक गृहपतिने जेतवनमें विहार (=भिक्षु-विश्राम-स्थान) बनवाये । परिवेण (=आंगनसहित घर) बनवाये । कोठरियां० । उपस्थान-शालायें (=सभा-गृह)० । अग्नि-शालायें (=पानी-गर्म करनेके घर)० । कल्पिक-कुटियां (=भंडार)० । पाखाने० । पेशाबखाने० । चंक्रमण (=टहलनेके स्थान०)० । चंक्रमण-शालायें० । प्याउ० । प्याउ-घर० । जन्ता-घर (=स्नानागार)० । जन्ताघर-शालायें० । पुष्करिणियां० । मंडप० ।

भगवान् राजगृहमें इच्छानुसार विहारकर, जिधर वैशाली थी, उधर चारिका (=रामत) को चल पड़े । क्रमशः चारिका करते हुये जहां वैशाली थी, वहां पहुँचे । वहां भगवान् वैशालीमें [1]महावनकी कूटागार-शालामें विहार करते थे । उस समय लोग सत्कार-पूर्वक नव-कर्म (=नये भिक्षु-निवासका निर्माण) कराते थे । जो भिक्षु नव-कर्मकी देख-रेख (=अधिष्ठान) करते थे, वह भी (१) चीवर (=वस्त्र), (२) पिंड-पात (=भिक्षान्न), (३) शयनासन (=घर), (४) ग्लान-प्रत्यय (=रोगि-पथ्य) भैषज्य (=औषध) इन परिष्कारोंसे सत्कृत होते थे । तब एक दरिद्र तंतुवाय (=जुलाहा)के (मनमें)) हुआ—"यह छोटा काम न होगा, जो कि यह लोग सत्कार-पूर्वक नव-कर्म कराते हैं; क्यों न मैं भी नव-कर्म बनाऊँ ?" तब उस गरीब तन्तु-वायने स्वयं ही कीचड़ तैय्यारकर, ईंटें चिन, भीत खड़ीकी । अनजान होनेसे उसकी बनाई भीत गिर पड़ी । दूसरीबार भी उस गरीब० । तीसरीबार भी उस दरिद्र० । तब वह गरीब

---

१ बसाढ (जि० मुजफ्फरपुर) के प्रायः २ मील उत्तर वर्तमान कोल्हुआ, जहां आज भी अशोक स्तम्भ खड़ा है ।

तन्तुवाय'''खिन्न'''होता था—"इन शाक्य-पुत्रीय श्रमणोंको जो चीवर० देते हैं; उन्हींके नव-कर्मकी देख-रेख करते हैं । मैं दरिद्र हूँ, इसलिये कोई भी मुझे न उपदेश करता है, न अनुशासन करता है, और न नव-कर्मकी देख-रेख करता है ।" भिक्षुओंने उस गरीब तन्तुवायको''' खिन्न''' होते सुना । तब उन्होंने इस बातको भगवान्से कहा । तब भगवान्ने इसी संबंधमें, इसी प्रकरणमें, धार्मिक-कथा कहकर, भिक्षुओंको आमंत्रित किया—

" भिक्षुओ ! नव-कर्म देनेकी आज्ञा करता हूँ । नव-कर्मिक (=विहार बनवानेका निरीक्षक) भिक्षुको विहारकी जल्दी तय्यारीका ख्याल करना चाहिये । (उसे) टूटे फूटेकी मरम्मत करानी होगी । और भिक्षुओ ! (नव-कर्मिक भिक्षु) इस प्रकार देना चाहिये । पहिले भिक्षुसे प्रार्थना करनी चाहिये । फिर एक चतुर समर्थ भिक्षु-द्वारा संघ ज्ञापित किया जाना चाहिये—

" भन्ते ! संघ मुझे सुने । यदि संघको पसन्द है, तो अमुक गृह-पतिके विहारका नव-कर्म, अमुक भिक्षुको दिया जाये । यह ज्ञप्ति (=निवेदन) है ।

" भन्ते ! संघ मुझे सुने । अमुक गृह-पतिके विहारका नव-कर्म अमुक भिक्षुको दिया जाता है । जिस आयुष्मान्को मान्य है, कि अमुक-गृह-पतिके विहारका नव-कर्म अमुक भिक्षुको दिया जाय, वह चुप रहे; जिसको मान्य न हो बोले ।"

" दूसरी बार भी०" । "तीसरी बार भी० ।"

" संघने० नव-कर्म अमुक भिक्षुको दे दिया; संघको मान्य है, इसलिये चुप है, ऐसा मैं समझता हूँ ।"

भगवान् वैशालीमें इच्छानुसार विहार करके, जहाँ श्रावस्ती है वहाँ चारिकाके लिये चले । उस समय छः-वर्गीय भिक्षुओंके शिष्य, बुद्ध-प्रमुख भिक्षु-संघके आगे आगे जाकर, विहारोंको दखलकर लेते थे, शय्यायें दखलकर लेते थे—" यह हमारे उपाध्यायोंके लिये होगा, यह हमारे आचार्योंके लिये होगा, यह हमारे लिये होगा ।" आयुष्मान् सारिपुत्र, बुद्ध-प्रमुख संघके पहुँचनेपर, विहारोंके दखल हो जानेपर, शय्याओंके दखल हो जानेपर, शय्या न पा, किसी वृक्षके नीचे बैठे रहे । भगवान्ने रातके भिनसारको उठकर खाँसा । आयुष्मान् सारिपुत्रने भी खाँसा ।

" कौन यहाँ है ?" " भगवान् ! मैं सारिपुत्र ! " " सारि-पुत्र ! तू क्यों यहाँ बैठा है ? "

तब आयुष्मान् सारि-पुत्रने सारी बात भगवान्से कही । भगवान्ने इसी संबन्धमें= इसी प्रकरणमें भिक्षु-संघको जमा करवा, भिक्षुओंसे पूछा—

" सचमुच भिक्षुओ ! छ-वर्गीय भिक्षुओंके अन्तेवासी (=शिष्य) बुद्ध-प्रमुख संघके आगे आगे जाकर० दखलकर लेते हैं ?"

" सच-मुच भगवान् ! "

भगवान्ने धिक्कारा—" भिक्षुओ ! कैसे वह नालायक भिक्षु बुद्ध-प्रमुख संघके आगे० ? भिक्षुओ ! यह न अप्रसन्नोंको प्रसन्न करनेके लिये है, न प्रसन्नोंको अधिक प्रसन्न करनेके लिये

है; बल्कि अ-प्रसन्नोंको (और भी) अप्रसन्न करनेके लिये, तथा प्रसन्नों (=श्रद्धालुओं) में से भी किसी किसीके उलटा (अप्रसन्न) हो जानेके लिये है ।"

धिक्कार कर धार्मिक कथा कह, भिक्षुओंको संबोधित किया—

" भिक्षुओ ! प्रथम आसन, प्रथम जल, और प्रथम परोसा (=अग्र-पिंड) के योग्य कौन है ?"

किन्हीं भिक्षुओंने कहा—" भगवान् ! जो क्षत्रिय कुलसे प्रव्रजित हुआ हो, वह योग्य है ।"

किन्हीं० ने कहा—" भगवान् जो ब्राह्मण कुलसे प्रव्रजित हुआ है, वह० । "

किन्हीं० ने कहा—" भगवान् ! जो गृह-पति (=वैश्य) कुलसे ।"

किन्हीं० ने कहा—" भगवान् ! जो सौत्रांतिक (=सूत्र-पाठी) हो० ।"

किन्हीं० ने कहा—" भगवान् ! जो विनय-धर (=विनय-पाठी) हो० । "

किन्हीं भिक्षुओंने कहा—" भगवान् जो धर्म-कथिक (=धर्मव्याख्याता) हो० । "

किन्हीं० —" जो प्रथम ध्यान का लाभी (=पाने वाला) हो० ।

किन्हीं०—" जो द्वितीय ध्यानका लाभी ।"...."जो तृतीय ध्यानका० ।"..."जो चतुर्थ ध्यानका० ।'...."जो स्रोतापन्न (स्रोत आपन्न) हो० ।"...." जो सकिदागामी (=सकृदागामी)० ।...जो अनागामी० ।'...."जो अर्हत्० ।"...."जो त्रैविद्य हो० ।" .. "जो षड्-अभिज्ञ० ।",""...

तब भगवान्ने भिक्षुओंको संबोधित किया—

"पूर्वकालमें भिक्षुओ ! हिमालयके पासमें एक बड़ा बर्गद था । उसको आश्रयकर, तित्तिर, वानर और हाथी तीन मित्र विहार करते थे । वह तीनों एक दूसरेका गौरव न करते, सहायता न करते, साथ जीविका न करते हुये, विहार करते थे । भिक्षुओ ! उन मित्रों को ऐसा (विचार) हुआ—'अहो ! हम जानें (कि हममें कौन जेठा है), ताकि हम जिसे जन्मसे बड़ा जानें, उसका सत्कार करें, गौरव करें, मानें, पूजें, और उसकी सीखमें रहें ।'

तब भिक्षुओ ! तित्तिर और मर्कट (=वानर) ने हस्ति-नाग को पूछा—

'सौम्य ! तुम्हें क्या पुरानी (बात) याद है ?'

'सौम्यो ! जब मैं बच्चा था, तो इस न्यग्रोध (बर्गद) को जांघोंके बीचमें करके लांघ जाता था । इसकी फुनगी मेरे पेटको छूती थी । 'सौम्यो ! यह पुरानी बात स्मरण है ।'

"तब भिक्षुओ ! तित्तिर और हस्ति-नागने मर्कटको पूछा—

'सौम्य ! तुम्हें क्या पुरानी (बात) याद है ?'

'सौम्यो ! जब मैं बच्चाथा, भूमिमें बैठकर इस बर्गदके फुनगीके अंकुरोंको खाता था। सौम्यो ! यह पुरानी० ।'

"तब भिक्षुओ ! मर्कट और हस्ति-नागने तित्तिरको पूछा—

'सौम्य ! तुम्हें क्या पुरानी (बात) याद है ?'

'सौम्यो ! उस जगहपर महान् बर्गद था, उससे फल खाकर इस जगह मैंने विष्टा किया, उसीसे यह बर्गद पैदा हुआ । उस समय सौम्यो ! मैं जन्मसे बहुत सयाना था ।'

"तब भिक्षुओ ! हाथी और मर्कटने तित्तिर को यों कहा—

'सौम्य ! तू जन्ममें हम सबसे बहुत बड़ा है । तेरा हम सत्कार करेंगे, गौरव करेंगे, मानेंगे, पूजेंगे, और तेरी सीखमें रहेंगे ।'

"तब भिक्षुओ ! तित्तरने मर्कट और हस्ति-नागको[1] पांच शील ग्रहण कराये, आप भी पांच शील ग्रहण किये । वह एक दूसरेका गौरव करते, सहायता करते, साथ जीविका करते हुये विहरकर; काया छोड़ मरनेके बाद, सुगति (प्राप्त कर) स्वर्ग लोकमें उत्पन्न हुये । यही भिक्षुओ ! तैत्तिरीय-ब्रह्मचर्य हुआ—

'धर्मको जानकर जो मनुष्य वृद्धका सत्कार करते हैं ।

(उनके लिये) इसी जन्ममें प्रशंसा है, और परलोकमें सुगति ।'

"भिक्षुओ ! वह तिर्यग् योनिके प्राणी (थे, तो भी) एक दूसरेका गौरव करते, सहायता करते, साथ जीवन-यापन करते हुये, विहार करते थे । और भिक्षुओ ! यहां क्या यह शोभा देगा, कि तुम ऐसे सु-आख्यात धर्म-विनयमें प्रव्रजित होकर भी, एक दूसरेका गौरव न करते, सहायता न करते, साथ जीवन-यापन न करते (हुये) विहार करो । भिक्षुओ ! यह न अप्रसन्नों को प्रसन्न करनेके लिये है० ।"

धिक्कारकर धार्मिक कथा कहके उन भिक्षुओंको संबोधित किया—

"भिक्षुओ ! वृद्ध-पनके अनुसार अभिवादन, प्रत्युत्थान, (बड़ेके सामने खड़ा होना), हाथ जोड़ना, कुशलप्रश्न, प्रथम-आसन, प्रथम-जल, प्रथम-परोसा देनेकी अनुज्ञा करता हूँ । सांघिक वृद्धपनके अनुसरणको न तोड़ना चाहिये, जो तोड़े उसको '[2]दुष्कृत' की आपत्ति (होगी) । भिक्षुओ ! यह दस अ-वन्दनीय हैं—

'पूर्वके उप-सम्पन्नको पीछेका [3]उपसम्पन्न अ-वन्दनीय है । अन्-उपसम्पन्न अवंदनीय है । नाना सह-वासी, वृद्ध-तर अ-धर्म-वादी० । स्त्रियां० । नपुंसक० । '[4]परिवास' दिया गया० । '[5]मूलके प्रति-कर्षणार्ह० । '[5]मानत्वार्ह० । '[5]मानत्व-चारिक० । '[5]आह्वानार्ह० । भिक्षुओ ! यह तीन वंदनीय हैं—पीछे उपसम्पन्न द्वारा पहिले उपसम्पन्न हुआ वन्दनीय है, नाना सहवासी वृद्धतर धर्मवादी० । देव-मार-ब्रह्मा सहित सारे लोकके लिये, देव-मनुष्य-श्रमण-ब्राह्मण सहित सारी प्रजाके लिये, तथागत अर्हत् सम्यक्-सम्बुद्ध वन्दनीय हैं ।

---

१. अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, मद्-वर्जन ।

२. भिक्षु-नियमके अनुसार छोटा पाप है । ३. भिक्षुकी दीक्षा प्राप्त । ४. किसी अपराधके कारण संघ द्वारा कुछ दिनके लिये पृथक् करण । ५. यहभी एक दंड ।

जेतवन-स्वीकार । वर्षावास ।

क्रमशः चारिका करते हुये, भगवान् जहां श्रावस्ती है, वहां पहुंचे । वहां श्रावस्तीमें भगवान् अनाथ-पिंडकके आराम 'जेत-वन'में विहार करते थे । तब अनाथ-पिंडक गृहपति जहां भगवान् थे, वहां आया, आकर भगवान्को अभिवादनकर एक ओर बैठ गया । एक ओर बैठे हुये, अनाथ-पिंडक गृहपतिने भगवान्से कहा—

"भन्ते ! भगवान् भिक्षु-संघ-सहित कलको मेरा भोजन स्वीकार करें ।"

भगवान्ने मौन रह स्वीकार किया । तब अनाथ-पिंडक॰ भगवान्की स्वीकृति जान, आसनसे उठ, भगवान्को अभिवादनकर, प्रदक्षिणाकर चला गया । अनाथ-पिंडकने ···उस रातके बीत जानेपर उत्तम खाद्य भोज्य तैय्यार करवा, भगवान्को काल सूचित कराया॰ । तब अनाथ-पिंडक गृहपति अपने हाथसे बुद्ध-प्रमुख भिक्षु-संघको उत्तम खाद्य भोज्यसे संतर्पित कर पूर्णकर, भगवान्के पात्रसे हाथ हटा लेनेपर, एक ओर॰ बैठकर भगवान्से बोला—

"भन्ते ! भगवान् ! मैं जेतवनके विषयमें कैसे करूँ ?"

"गृहपति ! जेतवनको आगत-अनागत चातुर्दिश संघके लिये प्रदान कर दे ?"

अनाथ-पिंडकने 'ऐसा ही भन्ते !' उत्तर दे, जेतवनको आगत-अनागत चातुर्दिश भिक्षु-संघको प्रदानकर दिया ।

\+ \+ \+ \+

···[1]तथागत प्रथम बोधिमें=बीसवर्ष तक अस्थिर-वास हो, जहां जहां ठीक रहा वहां जाकर वास करते रहे । पहिली-वर्षामें ऋषिपतनमें धर्म-चक्र-प्रवर्तन कर···वाराणसीके पास ऋषिपतनमें वास किया । दूसरी-वर्षामें राजगृह ···वेणुवनमें॰ । तीसरी चौथी भी वहीं । पांचवीं वर्षामें वैशालीमें ···महावन कूटागारशालामें । छठवीं-वर्षा मंकुल-पर्वतपर । सातवीं त्रयस्त्रिंश भवनमें । आठवीं भर्ग-देशमें सुंसुमारगिरिके···भेसकलावनमें । नवीं कौशाम्बीमें । दसवीं पारिलेयक वनखंडमें । ग्यारहवीं नाला ब्राह्मण-ग्राममें । बारहवीं वेरंजामें । तेरहवीं चालिय-पर्वतमें चौदहवीं जेतवनमें । पंद्रहवीं कपिल-वस्तुमें । सोलहवीं आलवकको दमनकर···आलवीमें सत्रहवीं राजगृहमें । अठारहवीं भी चालिय-पर्वतपर, और उन्नीसवीं भी । बीसवीं-वर्षामें, राजगृहीमें वसे । इस प्रकार बीसवर्ष अ-निबद्ध–(वर्षा)–वास करते, जहां जहां ठीक हुआ, वहीं वसे इससे आगे दो ही शयनासन (=निवास-स्थान) ध्रुव-परिभोग (=सदा रहनेके) किये कौनसे दो ?—जेतवन और पूर्वाराम ।···

---

[1] अ. नि. अ. क. २:४:५ ।

१.	वर्षा-वास.	ऋषि-पतन	१२.	वर्षा-वास.	वेरंजा
२—४.	,,	राजगृह	१३.	,,	चालिय-पर्वत
५.	,,	वैशाली	१४.	,,	श्रावस्ती
६.	,,	मंकुल-पर्वत	१५.	,,	कपिलवस्तु
७.	,,	त्रयस्त्रिंश	१६.	,,	आलवी
८.	,,	सुंसुमारगिरि	१७.	,,	राजगृह
९.	,,	कोशाम्बी	१८.१९.	,,	चालिय-पर्वत
१०.	,,	पारिलेयक	२०.	,,	राजगृह
११.	,,	नाला	२१-४५.	,,	श्रावस्ती
			४६.	,,	वैशाली

दक्षिणा-विभङ्ग-सुत्त । प्रजापती का संन्यास । (त्रि. पू. ४६८-४६७)

...[1]गौतम यह गोत्र है।...नामकरणके दिन... इसका नाम महाप्रजापती रक्खा गया।...गोत्रसे मिलाकर महाप्रजापती गौतमी कहा गया।...गौतमीने भगवान्‌को दुस्स देनेका मन कब किया? अभि-संबोधि प्राप्तकर पहिली यात्रामें कपिलपुर आनेके समय...।

\+ + + + +

दक्षिणा-विभङ्ग-सुत्त ।

[2]ऐसा मैंने सुना—एक समय भगवान् शाक्यों (के देश)में कपिल-वस्तुके न्यग्रोधाराममें विहार करते थे। तब महाप्रजापती गौतमी नये दुस्स (=धुस्से) के जोड़ेको लेकर, जहां भगवान् थे वहां आई। आकर भगवान्‌को अभिवादनकर एक ओर बैठ गई। एक ओर बैठी, महाप्रजापती गौतमीने भगवान्‌को यों कहा—" भन्ते! यह अपनाही काता, अपनाही बुना, मेरा यह नया धुस्सा-जोड़ा भगवान्‌को (अर्पण है)। भन्ते! भगवान् अनुकम्पा (=कृपा) कर, इसे स्वीकार करें।"

ऐसा कहने पर भगवान्‌ने महाप्रजापती गौतमीको कहा—

" गौतमी! (इसे) संघको दें। संघको देनेसे मैं भी पूजित हूँगा, और संघ भी।"

दूसरी बार भी० कहा—" भन्ते यह० "। ... " गौतमी! संघको दे० "। तीसरी बार भी०।

यह कहनेपर आयुष्मान् आनन्दने भगवान्‌को यों कहा—

" भन्ते! भगवान् महाप्रजापती गौतमीके धुस्सा-जोड़ेको स्वीकार करें। भन्ते! आपादिका (=अभिभाविका), पोषिका, क्षीर-दायिका (होनेसे), भगवान्‌की मौसी महाप्रजापती गौतमी बहुत उपकार करनेवाली है। इसने जननीके मरनेपर भगवान्‌को दूध पिलाया। भगवान् भी महाप्रजापती गौतमीके महोपकारक हैं। भन्ते! भगवान्‌के कारण महाप्रजापती० बुद्धकी शरण आई, धर्मकी शरण आई, संघकी शरण आई। भगवान्‌के कारण भन्ते! महाप्रजापती गौतमी प्राणातिपात (=हिंसा) से विरत हुई। अदत्तादान (=विना दिये लेना=चोरीसे) विरत हुई। काम-मिथ्याचारसे०। मृषावाद (=झूठ बोलना) से०। सुरा-मेरय(=कच्ची शराब)-मद्य-प्रमादस्थान (=प्रमाद करनेकी जगह) से०। भगवान्‌के कारण भन्ते! महाप्रजापती गौतमी बुद्धमें अत्यन्त श्रद्धा (=प्रसाद) युक्त, धर्ममें अत्यन्त प्रसाद-युक्त, संघमें अत्यन्त प्रसाद-युक्त (हुई); आर्य (=उत्तम) कांत (=कमनीय=सुंदर) शीलोंसे युक्त (हुई)। भगवान्‌के ही कारण भन्ते!० दुःखसे बेफिक्र हुई, दुःख-समुदयसे०, दुःख-निरोधसे०, दुःख-निरोध-गामिनी-प्रतिपद्‌से०। भगवान् भी भन्ते! महाप्रजापती गौतमीके महाउपकारक हैं।"

"आनन्द! यह ऐसाही है, पुद्गल (=व्यक्ति=प्राणी) पुद्गलके सहारे बुद्धका शरणागत होता है, धर्मका०, संघका०। लेकिन आनन्द! जो यह अभिवादन, प्रत्युपस्थान (=सेवा),

---

१. म० नि० अ० क० ३ : ४ : १२। २. म० नि० ३ : ४ : १२।

अञ्जलि जोड़ना=समीची करना, चीवर, पिंड-पात, शयनासन, ग्लान (=रोगी) को पथ्य-औषध देना है, (इसे) मैं इस पुद्गलका उस पुद्गलके प्रति सुप्रतिकार (=प्रत्युपकार) नहीं कहता। जो (कि यह) पुद्गल (दूसरे) पुद्गल के सहारे प्राणातिपात०, अदत्तादान०, काम-मिथ्याचार०, मृषावाद०, सुरा-मेरय-मद्य-प्रमाद-स्थानसे विरत होता है! आनंद! जो यह अभिवादन०। जो यह आनन्द! पुद्गल पुद्गलके सहारे दुःखसे बेफिक्र होता है०।

आनन्द यह चौदह प्राति-पुद्गलिक (=व्यक्तिगत) दक्षिणायें (=दान) हैं। कौनसी चौदह? तथागत अर्हत्सम्यक्-संबुद्धको दान देता है; यह पहिली प्राति-पुद्गलिक दक्षिणा है। प्रत्येक संबुद्धको दक्षिणा देता है; यह दूसरी०।। तथागतके श्रावक (=शिष्य) अर्हतको० तीसरी०। अर्हत्-फलके साक्षात करनेमें लगे हुयेको० चौथी०। अनागामीको० पांचवीं०। अनागामि-फल साक्षात् करनेमें लगेहुयेको० छठीं०। सकृदागामी को० सातवीं०। सकृदागामि-फल साक्षात् करनेमें लगे को० आठवीं०। सोतापन्न को० नवीं०। सोतापत्ति (=स्रोत आपत्ति)-फल साक्षात्करनेमें लगे को० दसवीं०। गांवके बाहरके वीत-राग को० ग्यारहवीं०। शीलवान् पृथग्जन (स्रोत आपत्ति आदिको न प्राप्त) को० बारहवीं०। दुःशील पृथग्जन को० तेरहवीं०। तिर्यग्योनिगत (=पशु पक्षी आदि) को० चौदहवीं०। वहां आनन्द! तिर्यग्योनि-गत को दान देनेमें सौगुनी दक्षिणा की आशा रखनी चाहिये। दु:शील पृथग्जनमें० हजार गुनी०। शील-वान् पृथग्जनमें० सौ हजार०। ०सौ हजार करोड़०। स्रोत आपत्ति फल साक्षात् करनेमें लगेको दान दे० असंख्य (=अनगिनत) अप्रमेय (=प्रमाण रहित) दक्षिणाकी आशा रखनी चाहिये। फिर स्रोतआपन्न की बात क्या कहनी है? फिर सकृदागामी०? फिर अनागामी०? फिर अर्हत्०? फिर प्रत्येक-बुद्ध०? फिर तथागत अर्हत् सम्यक् संबुद्ध०?

"आनन्द! यह सात संघ-गत (=संघमेंकी) दक्षिणायें हैं। कौन सी सात? बुद्ध प्रमुख दोनों संघोंको दान देता है; यह पहिली संघ-गत दक्षिणा है। तथागतके परिनिर्वाणपर [1]दोनों संघोंको० दूसरी०। भिक्षु-संघको० तीसरी०। भिक्षुणी-संघको० चौथी०। मुझे संघ इतने भिक्षु भिक्षुणी उद्देश करें (=दान देनेके लिये दे), ऐसे दान देता है० यह पांचवीं०। मुझे संघमेंसे इतने भिक्षु० छठीं०। मुझे संघमें से इतनी भिक्षुणियां०, सातवीं०।

"आनन्द! भविष्यकालमें भिक्षु-नाम-धारी (=गोत्रभू), काषाय-मात्र-धारी (=काषाय-कंठ) दुःशील, पाप-धर्मा (=पापी) (भिक्षु) होंगे। (लोग) संघके (नामपर) उन दुःशीलों को दान देंगे। उस वक्तभी आनन्द! मैं संघ-विषयक दक्षिणाको असंख्येय, अपरिमित (फलवाली) कहता हूं। आनन्द! किसी तरहभी संघ-विषयक दक्षिणासे प्राति-पुद्गलिक (=व्यक्तिगत) दक्षिणाको अधिक फल-दायक मैं नहीं मानता।

"आनन्द यह चार दक्षिणा (=दान) की विशुद्धियां (=शुद्धियां) हैं। कौनसी चार? आनन्द! (कोई २) दक्षिणा तो दायकसे परि-शुद्ध होती है, प्रतिग्राहक से नहीं। (कोई) दक्षिणा प्रति-ग्राहकसे परिशुद्ध होती है, दायकसे नहीं। आनन्द! (कोई) दक्षिणा न दायकसे शुद्ध होती है, न प्रति-ग्राहकसे। (कोई) दक्षिणा दायकसे भी शुद्ध होती है

---

१. भिक्षु और भिक्षणीके संघ।

प्रतिग्राहकसे भी ''। आनन्द ! दक्षिणा कैसे दायकसे शुद्ध होती है, ''प्रतिग्राहकसे नहीं''? आनन्द ! जब दायक शील-वान् (=सदाचारी) और कल्याण-धर्मा (=पुण्यात्मा) हो, और प्रति-ग्राहक हो दुःशील (=दुराचारी) पाप-धर्मा (=पापी); तो आनन्द ! दक्षिणा दायकसे शुद्ध होती है, प्रति ग्राहकसे नहीं । आनन्द ! कैसे दक्षिणा प्रति-ग्राहकसे शुद्ध होती है, दायकसे नहीं ? आनन्द ! जब प्रतिग्राहक शील-वान् और कल्याण-धर्मा हो, (और) दायक हो दुःशील, पाप-धर्मा० । आनन्द ! कैसे दक्षिणा न दायकसे शुद्ध होती है, न प्रति-ग्राहकसे ? आनन्द ! जब दायक दुःशील, पाप-धर्मा हो, और प्रतिग्राहक भी दुःशील पाप-धर्मा हो । आनन्द ! कैसे दक्षिणा दायकसे भी शुद्ध होती है, और प्रतिग्राहकसे भी ? आनन्द ! (जब) दायक शील-वान् कल्याण-धर्मा हो (और) प्रतिग्राहकभी शील-वान् कल्याण-धर्मा हो, तो० । आनन्द ! यह चार दक्षिणाकी विशुद्धियाँ हैं ।"

× × × ×

(पजापती-पब्बज्जा) सुत्त ।

[1]ऐसा मैंने सुना—एक समय भगवान् शाक्यों (के देश) में कपिल-वस्तुके न्यग्रोधाराममें विहार करते थे । तब महाप्रजापती गौतमी जहाँ भगवान् थे, वहाँ आई । आकर भगवान्‌को वन्दनाकर, एक ओर खड़ी होगई । एक ओर खड़ी हुई महाप्रजापती गौतमीने भगवान्‌से कहा—"भन्ते ! अच्छा हो (यदि) मातृग्राम (=स्त्रियाँ) भी तथागतके दिखाये धर्म-विनय (=धर्म) में घरसे बेघर हो प्रव्रज्या पावें ।"

"नहीं गौतमी ! मत तुझे (यह) रुचे—स्त्रियाँ तथागतके दिखाये धर्ममें० ।"

दूसरीवार भी० । तीसरीवार भी० ।

तब महाप्रजापती गौतमी—भगवान्, तथागत-प्रवेदित धर्म-विनय (=बुद्धके दिखलाये धर्म) में स्त्रियोंकी घर छोड़ बेघर हो प्रव्रज्या (लेने) की अनुज्ञा नहीं करते—जान, दुःखी=दुर्मना अश्रुमुखी (हो) रोती, भगवान्‌को अभिवादनकर प्रदक्षिणाकर चली गई ।

भगवान् कपिल-वस्तुमें इच्छानुसार विहारकर (जिधर) वैशाली थी, (उधर) चारिकाको चल दिये । क्रमशः चारिका करते हुये, जहाँ वैशाली थी, वहाँ पहुँचे । भगवान् वैशालीमें महावनकी कूटागारशालामें विहार करते थे । तब महाप्रजापती गौतमी, केशोंको कटाकर काषाय-वस्त्र पहिन, बहुत सी 'शाक्य-स्त्रियों' के साथ, जिधर वैशाली थी (उधर) चली । क्रमशः चलकर वैशालीमें जहाँ महावनकी कूटागार-शाला थी (वहाँ) पहुँची । महाप्रजापती गौतमी फूले-पैरों धूल-भरे शरीरसे, दुःखी=दुर्मना अश्रु-मुखी, रोती, द्वार-कोष्ठक (=बड़ा द्वार, जिसपर कोठा होता था) के बाहर जा खड़ी हुई । आयुष्मान् आनन्दने महाप्रजापती०को खड़ा देखकर ''' पूछा—

"गौतमी ! तू क्यों फूले पैरों० ?"

"भन्ते ! आनन्द ! तथागत-प्रवेदित धर्म-विनयमें स्त्रियोंकी घर छोड़ बे-घर प्रव्रज्याकी भगवान् अनुज्ञा नहीं देते ।"

---

१. अ. नि. ८:२:१:१ । चुल्लवग्ग. ११ ।

पजापती-पब्बज्जा-सुत्त ।

"गौतमी ! तू यहीं रह; बुद्ध-धर्ममें स्त्रियोंको० प्रव्रज्याके लिये मैं भगवान्‌से प्रार्थना करता हूँ ।"

तब आयुष्मान् आनन्द जहाँ भगवान् थे, वहाँ गये । जाकर भगवान्‌को अभिवादनकर एक ओर० बैठ, भगवान्‌से बोले—

"भन्ते ! महाप्रजापती गौतमी फूले-पैरों धूल-भरे शरीरसे दुःखी दुर्मना अश्रु-मुखी रोती हुई द्वार-कोष्ठकके बाहर खड़ी है (कि),—भगवान्··· (बुद्ध-धर्ममें)··· स्त्रियोंको० प्रव्रज्याकी अनुज्ञा नहीं देते । भन्ते ! अच्छा हो स्त्रियोंको···(बुद्ध-धर्ममें)··· ०प्रव्रज्या मिलै ।"

"नहीं आनन्द ! मत तुझे रुचे—तथागतके जतलाये धर्ममें स्त्रियोंकी घरसे बेघरहो प्रव्रज्या ।"

दूसरीवार भी आयुष्मान् आनन्द० । तीसरीवार भी० ।

तब आयुष्मान् आनन्दको हुआ,—भगवान् तथागत-प्रवेदित धर्म-विनयमें स्त्रियोंकी घरसे बेघर प्रव्रज्याकी अनुज्ञा नहीं देते, क्यों न मैं दूसरे प्रकारसे ०प्रव्रज्याकी अनुज्ञा माँगूँ । तब आयुष्मान् आनन्दने भगवान्‌को कहा—

"भन्ते ! क्या तथागत-प्रवेदित धर्ममें घरसे बेघर प्रव्रजित हो, स्त्रियाँ स्रोत-आपत्ति-फल, सकृदागामि-फल, अनागामि-फल, अर्हत्त्व-फलको साक्षात् कर सकती हैं ?"

"साक्षात् कर सकती हैं, आनन्द ! तथागत-प्रवेदित० ।"

"यदि भन्ते ! तथागत-प्रवेदित धर्म-विनयमें ०प्रव्रजित हो, स्त्रियाँ ०अर्हत्त्व-फलको साक्षात् करने योग्य हैं । जो, भन्ते ! अभिभाविका, पोषिका, क्षीर-दायिका हो, भगवान्‌की मौसी महाप्रजापती गौतमी बहुत उपकार करनेवाली है । जननीके मरनेपर (उसने) भगवान्‌को दूध पिलाया । भन्ते ! अच्छा हो स्त्रियोंको० प्रव्रज्या मिलै ।"

"आनन्द ! यदि महाप्रजापती गौतमी आठ गुरु-धर्मों (=बड़ी शर्तों) को स्वीकार करें, तो उसकी उपसम्पदा हो ।—

(१) सौ वर्षकी उप-सम्पन्न (=उपसंपदा पाई) भिक्षुणीको भी उसी दिनके उप-सम्पन्न भिक्षुके लिये अभिवादन प्रत्युत्थान, अंजलि जोड़ना, सामीची-कर्म करना चाहिये । यह भी धर्म सत्कार-पूर्वक गौरव-पूर्वक मानकर, पूजकर जीवनभर न अतिक्रमण करना चाहिये ।

(२) (भिक्षुका) उपगमन (=धर्मश्रवणार्थ आगमन) करना चाहिये । यह भी धर्म० ।

(३) प्रति आधेमास भिक्षुणीको भिक्षु-संघसे पर्येषण करना चाहिये । यह० ।

(४) वर्षा-वास कर चुकनेपर भिक्षुणीको दोनों संघोंमें देखे, सुने, जाने तीनों स्थानोंसे प्रवारणा करनी चाहिये ।०

(५) गुरु-धर्म स्वीकार किये भिक्षुणीको दोनों संघोंमें पक्ष-मानता करनी चा० ।

(६) किसी प्रकार भी भिक्षुणी भिक्षुको गाली आदि (=आक्रोश) न दे । यह भी० ।

(७) आनन्द ! आजसे भिक्षुणियोंका भिक्षुओंको (कुछ), कहनेका रास्ता बन्द हुआ० ।

(८) लेकिन भिक्षुओंका भिक्षुणियोंको कहनेका रास्ता खुला है । यह० ।

यदि आनन्द ! महाप्रजापती गौतमी इन आठगुरु-धर्मोंको स्वीकार करे, तो उसकी उपसम्पदा हो ।"

तब आयुष्मान् आनन्द भगवान्‌के पास, इन आठ गुरु-धर्मोंको समझ (=उद्ग्रहण=पढ़) कर जहाँ महाप्रजापती गौतमी थी, वहाँ गये । जाकर महा-प्रजापती गौतमीसे बोले—

"यदि गौतमी ! तू इन आठ गुरु-धर्मोंको स्वीकार करे, तो तेरी उपसम्पदा होगी—(१) सौ वर्षकी उपसम्पन्न० (८)० ।

"भन्ते ! आनन्द ! जैसे शौकीन शिरसे नहाये अल्प-वयस्क, अथवा तरुण स्त्री या पुरुष उत्पलकी माला, वार्षिक (=जूही) की माला, या अतिमुक्तक (=मोतिया) की मालाको पा, दोनों हाथोंमें ले, (उसे) उत्तम-अंग शिरपर रखता है । ऐसेही भन्ते ! मैं इन आठ गुरु-धर्मोंको स्वीकार करती हूँ ।"

तब आयुष्मान् आनन्द जहाँ भगवान् थे, वहाँ गये । जाकर ०अभिवादनकर० एक ओर बैठकर, भगवान्‌से बोले—

"भन्ते ! प्रजापती गौतमीने यावज्जीवन अनुल्लंघनीय आठ गुरु धर्मोंको स्वीकार किया ।"

"आनन्द ! यदि तथागत-प्रवेदित धर्म-विनयमें स्त्रियाँ० प्रव्रज्या न पातीं, तो (यह) ब्रह्मचर्य चिर-स्थायी होता, सद्धर्म सहस्रवर्ष तक ठहरता । लेकिन चूँकि आनन्द ! स्त्रियाँ० प्रव्रजित हुईं; अब ब्रह्मचर्य चिर-स्थायी न होगा, सद्धर्म पाँच ही सौ वर्ष ठहरेगा । आनन्द ! जैसे बहुत स्त्रीवाले और थोड़े पुरुषोंवाले कुल, चोरों द्वारा, भँडियाहों (=कुम्भ-चोरों) द्वारा आसानीसे ध्वंसनीय (=सु-प्र-ध्वंस्य) होते हैं, इसी प्रकार आनन्द ! जिस धर्म-विनयमें स्त्रियाँ ०प्रव्रज्या पाती हैं, वह ब्रह्मचर्य चिर-स्थायी नहीं होता । जैसे आनन्द ! सम्पन्न (=तय्यार, लहलहाते) धानके खेतमें सेतट्टिका (=सफेदा) नामक रोग-जाति पड़ती है, जिससे वह शालि-क्षेत्र चिर-स्थायी नहीं होता; ऐसे ही आनन्द ! जिस धर्म-विनयमें० । जैसे आनन्द ! सम्पन्न (=तय्यार) ऊखके खेतमें मांजेट्ठिका (=लाल-रोग) नामक रोग-जाति पड़ती है, जिससे वह ऊखका खेत चिर-स्थायी नहीं होता; ऐसे ही आनन्द० । आनन्द ! जैसे आदमी पानीको रोकनेके लिये, बड़े तालाबकी रोक-थामके लिये, मेंड (=आली) बाँधे, उसी प्रकार आनन्द ! मैंने रोक-थामके लिये भिक्षुणियोंको जीवनभर अनुल्लंघनीय आठ गुरु-धर्मोंको स्थापित किया ।

× × × ×

(पजापती)-सुत्त ।

[1]ऐसा मैंने सुना—एक समय भगवान् वैशालीमें महावनकी कूटागार-शालामें विहार करते थे । तब महाप्रजापती गौतमी जहाँ भगवान् थे, वहाँ गई । जाकर भगवान् को अभिवादनकर, एक ओर बैठ गई । ०भगवान्‌से यों बोली—

"भन्ते ! अच्छा हो (यदि) भगवान् संक्षेपसे धर्मका उपदेश करें, जिसे भगवान्‌से सुनकर, एकाकी=उपकृष्ट, प्रमाद-रहित हो (मैं) आत्म-संयमकर विहार करूँ ।"

---

१. अं. नि. ८: २: १: ३ ।

" गौतमी ! जिन धर्मों को तू जाने कि, वह (धर्म) स-रागके लिये हैं, विरागके लिये नहीं । संयोगके लिये हैं, वि-संयोग (=वियोग=अलग होना) के लिये नहीं । जमा करनेके लिये हैं, विनाशके लिये नहीं । इच्छाओं को बढ़ानेके लिये हैं, इच्छाओंको कम करनेके लिये नहीं । असन्तोषके लिये हैं, संतोषके लिये नहीं । भीड़के लिये हैं, एकान्तके लिये नहीं । अनुद्योगिताके लिये हैं, उद्योगिता (=वीर्यारंभ) के लिये नहीं । दुर्भरता (=कठिनाई) के लिये हैं, सुभरता के लिये नहीं । तो तू गौतमी ! सोलहो आने (=एकांसेन) जान, कि न वह धर्म है, न विनय है, न शास्ता (=बुद्ध) का शासन (=उपदेश) है ।

" और गौतमी ! जिन धर्मों को तू जाने, कि वह विरागके लिये हैं, सरागके लिये नहीं । वियोगके लिये० । उद्योगके लिये० । विनाश० । इच्छाओं को अल्प करनेके लिये० । सन्तोषके लिये० । एकान्तके लिये० । उद्योगके लिये० । सुभरता (=आसानी) के लिये० । तो तू गौतमी ! सोलहों आने जान, कि यह धर्म है, यह विनय है, यह शास्ताका शासन है ।"

दिव्य-शक्ति प्रदर्शन। यमक-प्रातिहार्य। संकाश्य में अवतरण। (वि. पू. ४९६)

[1]तथागत····छठी वर्षामें मंकुल पर्वतपर (वस)।···

[2]उस समय राजगृहके श्रेष्ठीको एक महार्घ चन्दन-सारकी चन्दन गांठ मिली थी। तब राजगृहके श्रेष्ठीके मनमें हुआ—'क्यों न मैं इस चन्दनगांठका, पात्र खरदवाऊँ; चूरा मेरे कामका होगा, और पात्र दान दूँगा।' तब राजगृहके श्रेष्ठीने उस चंदन-गांठका पात्र खरदवाकर, सींके में रख, बांसके सिरपर लगा, एकके ऊपर एक बांसोंको बँधवाकर कहा—"जो श्रमण ब्राह्मण अर्हत् या ऋद्धिमान् हो (वह इस दान) दिये हुये पात्रको उतार ले।"

पूर्ण काश्यप जहाँ राजगृहका श्रेष्ठी रहता था, वहाँ गये। और जाकर राजगृहके श्रेष्ठी से बोले—"गृहपति! मैं अर्हत् हूँ, ऋद्धिमान् भी हूँ। मुझे पात्र दो।"

"भन्ते! यदि आयुष्मान् अर्हत् और ऋद्धिमान् हैं, दिया ही हुआ है, पात्रको उतार लें।"

तब मक्खली-गोसाल (=मस्करी गोशाल)०। अजित-केश-कम्बली०। प्रकुध-कात्यायन०। संजय-बेलट्ठि-पुत्त०। निगंठ-नाथ-पुत्त०। जहाँ राज-गृहका श्रेष्ठी था, वहां गये। जाकर राजगृहके श्रेष्ठीसे बोले—"गृह-पति! मैं अर्हत् हूँ, और ऋद्धिमान् भी, मुझे पात्रदो।"

"भन्ते! यदि आयुष्मान् अर्हत्०।"

उस समय आयुष्मान् मौद्गल्यायन और आयुष्मान् पिंडोल भारद्वाज, पूर्वाह्न समय सु-आच्छादित हो, पात्र चीवरले राज-गृहमें पिंडके (=भिक्षा) के लिये प्रविष्ट हुये। तब आयुष्मान् पिंडोल भारद्वाजने आयुष्मान् मौद्गल्यायन से कहा—

"आयुष्मान् महामौद्गल्यायन अर्हत् हैं, और ऋद्धिमान भी जाइये आयुष्मान् मौद्गल्यायन! इस पात्रको उतार लाइये। आपके लिये ही यह पात्र है।"

"आयुष्मान् पिंडोल भारद्वाज अर्हत् हैं, और ऋद्धिमान् भी०।"

तब आयुष्मान् पिंडोल भारद्वाजने आकाशमें उड़कर, उस पात्रको ले, तीनवार राजगृहका चक्कर दिया। उस समय राजगृहके श्रेष्ठीने पुत्र-दारा-सहित हाथ जोड़, नमस्कार करते हुये अपने घरपर खड़े हो—

"भन्ते! आर्य-भारद्वाज! यहीं हमारे घरपर उतरें।"

आयुष्मान् पिंडोल भारद्वाज राजगृहके श्रेष्ठीके मकानपर उतरे (=प्रतिष्ठित हुये)। तब राज-गृहक श्रेष्ठीने आयुष्मान् पिंडोल भारद्वाजके हाथसे पात्र लेकर, महार्घ खाद्यसे भरकर उन्हें दिया। आयुष्मान् पिंडोल भारद्वाज पात्र-सहित आराम (=निवास-स्थान) को गये। मनुष्योंने सुना—आर्य-पिंडोल भारद्वाजने राजगृहक श्रेष्ठीके पात्रको उतार लिया। वह मनुष्य हल्ला मचाते आयुष्मान् पिंडोल भारद्वाजके पीछे पीछे लगे। भगवान्ने हल्लेको सुना, सुनकर आयुष्मान् आनन्दको संबोधित किया—"आनन्द! यह क्या हल्ला-गुल्ला है?"

---

१. अ. नि. अ. क २: ४: ६। २. चुल्ल व. ५। ध. प. अ. क ४: २।

"आयुष्मान् पिंडोल भारद्वाजने भन्ते ! राजगृहके श्रेष्ठीके पात्रको उतार लिया । लोगोंने (इसे) सुना० । भन्ते ! इसीसे लोग हल्ला करते आयुष्मान् पिंडोल-भारद्वाजके पीछे पीछे लगे हैं । भगवान् ! वही यह हल्ला है ।"

तब भगवान्ने इसी संबंधमें इसी प्रकरणमें, भिक्षु-संघको जमा करवा, आयुष्मान् पिंडोल भारद्वाजसे पूछा—

"भारद्वाज ! क्या तूने सचमुच राजगृहके श्रेष्ठीका पात्र उतारा ?"

"सच-मुच भगवान् !"

भगवान्ने धिक्कारते हुये कहा—

"भारद्वाज ! यह अनुचित है प्रतिकूल=अ-प्रतिरूप, श्रमणके अयोग्य, अविधेय=अकरणीय है । भारद्वाज ! मुर्दे लकड़ीके वर्तनके लिये कैसे तू गृहस्थोंको [1]उत्तर-मनुष्य-धर्म [2]ऋद्धि-प्रातिहार्य दिखायेगा ।...। भारद्वाज ! यह न अप्रसन्नोंको प्रसन्न करनेके लिये है० ।" (इस प्रकार) धिक्कारते (हुये) धार्मिक कथा कह, भिक्षुओंको संबोधित किया—

"भिक्षुओ ! गृहस्थोंको उत्तर-मनुष्य-धर्म ऋद्धि-प्रातिहार्य न दिखाना चाहिये, जो दिखाये उसको 'दुष्कृत' की आपत्ति । भिक्षुओ ! इस पात्रको तोड़, टुकड़ा टुकड़ाकर, भिक्षुओंको अंजन पीसनेके लिये दे दो । भिक्षुओ ! लकड़ीका वर्तन न धारण करना चाहिये । ०'दुष्कृत' ।"

"भिक्षुओ ! सुवर्णमय पात्र न धारण करना चाहिये, रौप्यमय०, मणि-मय०, वैदूर्यमय०, स्फटिकमय०, कंसमय, काच-मय, रांगेका० सीसेका०, ताम्रलोह (=तांबा) का०,...'दुष्कृत' ....। भिक्षुओ ! लोहेके और मिट्टीके—दो पात्रोंकी अनुज्ञा देता हूं ।"

\+ \+ \+ \+

[3]"श्रमण गौतमने उस पात्रको तोड़वा, अपने श्रावकोंको पाटिहारिय (=प्रातिहार्य =चमत्कार) न करनेके लिये शिक्षा-पद बना दिया है"—तैर्थिक यह सुन,—श्रमण गौतमके श्रावक तो प्रज्ञप्त (=निर्धारित) शिक्षा-पदको प्राणके लिये भी नहीं छोड़ सकते, श्रमण गौतम भी उसको मानेहीगा । अब हमलोगोंको मौका मिला—(विचार,) नगरकी सड़कोंपर यह कहते विचरने लगे—"हमने गुण (=करामात) रखते भी पहले लकड़ीके पात्रके लिये अपना गुण लोगोंको नहीं दिखाया । श्रमण गौतमके शिष्योंने (उसे) सिर्फ वर्तनके लिये भी लोगोंको दिखलाया । श्रमण गौतमने अपनी पंडिताई (=चतुराई) से उस पात्रको तोड़वाकर शिक्षा-पद (=नियम) बना दिया । अब हमलोग उसके ही साथ दिव्य-शक्ति-प्रदर्शन (=पाटिहारिय) करेंगे ।

राजा बिम्बसारने इस बातको सुन शास्ताके पास जाकर—

"भन्ते ! आपने श्रावकोंके लिये पाटिहारिय न करनेका शिक्षा-पद बनाया है ?"

"महाराज ! हाँ ।"

"तैर्थिक आपके साथ प्रातिहार्य करनेको कह रहे हैं, अब क्या करेंगे ?"

"महाराज ! उनके करनेपर करूँगा ।"

---

१ मनुष्योंकी शक्तिसे परेकी बात । २ चमत्कार दिव्य-शक्ति । ३ धम्मपद अ. क. ४:२ ।

"आपने तो शिक्षा-पद बना दिया ?"

"मैंने अपने लिये शिक्षा-पद नहीं बनाया, वह मेरे श्रावकोंके लिये बना है ।"

"भन्ते ! अपनेको छोड़, सिर्फ औरोंके लिये भी शिक्षा-पद होता है ?"

"महाराज ! तुझीको पूछता हूँ । तेरे राज्यमें उद्यान है न ?"

"है, भन्ते !"

"यदि महाराज ! लोग उद्यानमें (जाकर) आम आदि खायें, तो इसका क्या करना चाहिये ।"

"दण्ड, भन्ते !"

"और तू खा सकता है ?"

"हां भन्ते ! मेरे लिये दण्ड नहीं है, मैं अपनी (चीज) को खा सकता हूँ ।"

"महाराज ! जैसे तीन सौ-योजन (अंग-मगध) राज्यमें तेरी आज्ञा चलती है । आम आदि खानेमें (तुझे) दंड नहीं है; लेकिन औरोंको है । इसी प्रकार सौ-हजार-कोटि चक्र-वाल भर मेरी आज्ञा चलती है । मुझे शिक्षा-पद-निर्धारणके अतिक्रम (में दोष) नहीं है । लेकिन दूसरोंको है । मैं प्रातिहार्य करूँगा ।"

तैर्थिकोंने इस बातको सुनकर—

"अब हम बर्बाद हुये । श्रमण गौतमने श्रावकोंके लियेही शिक्षापद निर्धारित किया है, अपने लिये नहीं । स्वयं प्रातिहार्य करना चाहता है । अब क्या करें ।" (ऐसी) सलाह करने लगे ।

राजाने शास्तासे पूछा—" भन्ते ! कब प्रातिहार्य करेंगे ?'

" आजसे चार मास बाद, आषाढ़ पूर्णिमाको महाराज ! "

" कहां करेंगे भन्ते ?"

" श्रावस्तीमें महाराज ! "

शास्ताने इतने दूरका स्थान क्यों कहा ? इसलिये कि वह सभी बुद्धोंके प्रातिहार्यका स्थान है। और लोगोंके जमावड़ेके लिये भी दूर स्थान बतलाया । तैर्थिकोंने इसबातको सुनकर—

" आजसे चार मास बाद श्रमण गौतम श्रावस्तीमें प्रातिहार्य करेगा । इस वक्त निरन्तर उसका पीछा करना चाहिये । लोग हमें 'यह क्या है' पूछेंगे, तब उन्हें कहेंगे—'हमने श्रमण गौतमके साथ प्रातिहार्य करनेको कहा, वह भाग रहा है, हम भागने न देकर उसके पीछे लगे हैं' ।"

शास्ता राजगृहमें भिक्षाचार कर, निकले । तैर्थिकभी पीछे पीछे निकल भोजन किये स्थानपर वास करते थे, (रात्रि-) वासके स्थानपर दूसरे दिन कलेऊ करते थे । वह मनुष्यों द्वारा "यह क्या है ?" पूछे जानेपर, उक्त सोचे हुये ढंगपर ही कहते थे । लोगभी प्रातिहार्य देखनेके लिये पीछे होलिये । शास्ता क्रमशः श्रावस्ती पहुँचे । तैर्थिक भी साथही जाकर, अपने भक्तोंको चेता, सौ हजार पाकर, खैरके स्तम्भोंसे मण्डप बनवा, नीले कमलसे छवा—' यहां प्रातिहार्य करेंगे' (कहकर) बैठे ।

राजा प्रसेनजित् कोसल शास्ताके पास जा—

"भन्ते ! तैर्थिकोंने मंडप बनवाया है, मैं भी तुम्हारा मंडप बनवाता हूँ ।"

"नहीं महाराज ! हमारा मंडप बनाने वाला (दूसरा) है ।"

"भन्ते ! यहां मुझे छोड़, दूसरा कौन बनायेगा ?"

"शक्र देव-राज, महाराज !"

"फिर भन्ते ! प्रातिहार्य कहां, करेंगे ?"

"गंडम्ब-रुक्ख (गण्डके आम) के नीचे, महाराज !"

तैर्थिकोंने 'आमके वृक्षके नीचे प्रातिहार्य करेंगे' सुन, अपने भक्तोंको कह, एक योजन स्थानके भीतर, उसदिन जन्मे अमोले तकको भी उखाड़कर जंगलमें फेंकवा दिया ।

शास्ताने आषाढ़ पूर्णिमाके दिन नगरमें प्रवेश किया । राजाके उद्यान-पाल गण्डने, माटों (=पिंगल-किपिल्लक) की झाल्की आड़में एक बड़े पके आमको देख, उसके गन्ध-रसके लोभसे आये कौओंको उड़ा, राजाके लिये लेकर जाते (समय), रास्तेमें शास्ताको देख, सोचा—' राजा इस आमको खाकर मुझे आठ या सोलह कार्षापण (=कहापण) देगा, वह मेरे अकेलेकी जीवन-वृत्तिके लिये काफी नहीं । यदि मैं इसे शास्ताको दूं, जरूर वह अपरिमित कालतक हित-प्रद होगा ।' (और) उस आमको शास्ताके पास ले गया । शास्ताने आनन्द स्थविरकी ओर देखा । तब स्थविरने चारों (दिव्य-) महाराजोंके दिये पात्रको लेकर हाथमें रक्खा । शास्ताने पात्रको रोप, उस पके आमको लेकर, बैठने जैसा दर्शाया । स्थविरने चीवर बिछा दिया । तब उनके बैठने पर स्थविरने पानी छान, उस पके आमको गारकर, रस बनाकर शास्ता को दिया । शास्ताने आमके रसको पीकर गंडको कहा—' इस आमकी गुठली (=अट्ठि= आंठी)को यहीं मट्टी हटाकर तोप दे ।' उसने वैसाही किया । शास्ताने उसपर हाथ धोया । हाथ धोते मात्रही, तना हल के सिरके बराबर हो, ऊँचाईमें पचास हाथका आम्र वृक्ष हो गया । चारों दिशाओंमें चार और एक ऊपर को—पांच पचास हाथ लम्बी महाशाखायें हो गईं । वह उसी समय पुष्प और फलसे आच्छन्न हो गया, (तथा) हर स्थानमें पक्व आम्र धारण किये हुये था । पीछेसे आने वाले भिक्षुभी पके आम खाते हुये ही गये । राजाने ऐसा आम उगा है, सुन—इसको कोई न काटै, इसके लिये पहरा (=आरक्षा) लगा दिया ।

वह गंड-द्वारा रोपा गया होनेसे ' गंडम्ब रुक्ख ' (=गंडका आम्र वृक्ष) के नाम से ही प्रसिद्ध हुआ । धूर्तों ने भी पके आम खा—"अरे दुष्ट तैर्थिको ! 'श्रमण गौतम गंडम्ब-रुक्ख के नीचे प्रातिहार्य करेगा' इसलिये तुमने योजन भर के भीतर उस दिन के जन्मे अमोलों तक को उपड़वा (=उखाड़=उप्पाट) दिया । ' यह गंडम्ब है ' कह जूठी गुठलिय फेंक फेंक कर (उन्हें) मारा । शक्रने वात-वलाहक (=मरुत) देवपुत्रको आज्ञा दी— 'तैर्थिकों के मंडपको हवासे उखाड़कर कूड़ेकी भूमिपर फेंक दो' । उसने वैसा ही किया । सूर्य देव-पुत्र को भी आज्ञा दी—'सूर्य-मंडल को थामकर तपाओ' । उसने भी वैसा ही किया । फिर वात-वलाहक को आज्ञा दी—' वात-वलाहक ! आंधी उड़ाते जाओ ' । उसने वैसा कर तैर्थिकों के पसीना चूते शरीर को धूल से (ढांक) दिया । वह तांबे के चमड़ेवाले जैसे हो गये । वर्षा-वलाहक को भी आज्ञा दी—" बड़ी बड़ी बूंद गिराओ ।"

उसने वैसा ही किया । तब उनका शरीर कबरी गाय जैसा हुआ । वह निगंठ (=निग्रंथ) लजाते हुये सामने से भाग गये ।

ऐसे पलायन करते समय पूर्ण काश्यपका एक सेवक (=भक्त) कृषक—'यह मेरे आर्यों के प्रातिहार्य करनेकी वेला है, जाकर प्रातिहार्य देखूँ'—(विचार), बैलों को छोड़, सबेरेके लाये खिचड़ीका कूट और जोता लेकर चलते (हुए), पूर्णको उस प्रकार भागते देख—"भन्ते ! मैं आर्योंका प्रातिहार्य देखने आ रहा हूँ, आप कहां जा रहे हैं ?"

"तुझे प्रातिहार्यसे क्या ? इस कूट (=वर्तन) और जोतेको मुझे दे ।"

उसके दिये कूट और जोतेको ले (पूर्ण काश्यप) नदी तीर जा, कूटको जोतेसे गलेमें बांध, लज्जासे कुछ न कह दहमें कूद, पानीका बुलबुला उठाते हुये मरकर, अवीचि (नर्क) में उत्पन्न हुआ ।

शक्रने आकाशमें रत्न (-मय-) चंक्रमण (=टहलनेका चबूतरा) बनाया । उसका एक छोर पूर्वके चक्रवालके मुखमें था, एक छोर पश्चिमके चक्र-वालके मुखमें । (शास्ता) एकत्रित हुई छत्तीस योजनकी परिषद्को (देख),—'अब वर्द्धमानककी छायामें प्रातिहार्य करनेकी वेला है' (सोच), गंधकुटीसे निकल देहलीके चबूतरे (=प्रमुख) पर खड़े हुए......

शास्ता रत्न-चंक्रमणपर उतरे । सामने बारह योजन लम्बी परिषद् थी, वैसेही पीछे, उत्तर और दक्खिनकी ओर भी, सीधमें चौबीस योजन उस परिषद्के बीचमें भगवान्ने यमक-प्रातिहार्य किया । उसे पाली (=मूलत्रिपिटक) से इस प्रकार जानना चाहिये ।

"क्या है तथागतका यमक-प्रातिहार्य का ज्ञान ? यहां तथागत श्रावकों के साथ यमक-प्रातिहार्य करते हैं—ऊपर के शरीर से अग्नि-पुंज निकलता है, निचले शरीरसे पानी की धार निकलती है, । नीचे वाले शरीर से अग्नि-पुंज०, ऊपर के शरीर से जल-धारा० । आगे की काया से अग्नि-पुंज०, पीछे की काया से जलधारा; पीछे० अग्नि०, आगे० जल० । दाहिनी आंखसे अग्नि०, बाईं आंखसे जल-धारा०, बाईं०, दाहिनी० । दाहिने कानके सोतेसे अग्नि०, बायें कानके सोतेसे जलधारा०; बायें०, दाहिने० । दाहिनी नासिकाके सोतेसे अग्नि०, बाईं नासिकाके सोतेसे जलधारा०; बाईं०, दाहिनी० । दाहिने कन्धेसे अग्नि०, बायें कन्धेसे०; बायें०, दाहिने० । दाहिने हाथसे अग्नि०, बायें हाथसे जलधारा०; बायें०, दाहिने० । दाहिनी बगलसे अग्नि०, बाईं बगलसे जलधारा०; बाईं०, दाईं० । दाहिने पैरसे अग्नि०, बायें पैरसे जलधारा०, बायें०, दाहिने० । अंगुलियोंसे अग्नि०, अंगुलियोंके बीचसे जलधारा०; अंगुलियोंके बीच०, अंगुलियोंसे० । एक-एक रोम-छिद्रसे अग्नि-पुंज०, एक-एक रोम-छिद्रसे उदक-धारा० । नील, पीत, लोहित (=लाल), अवदात (=सफेद), मांजिष्ठ (=मजीठके रङ्गका), प्रभास्वर (=सूर्य-प्रकाशके रङ्गका)—छः रङ्गोंके (हो), भगवान् टहलते हैं, बुद्धि-निर्मित (=योग-बलसे उत्पादित बुद्ध-रूप) खड़ा होता है, बैठता है, सोता है । निर्मित सोता है, भगवान टहलते हैं, खड़े होते हैं, या बैठते हैं । यह तथागतके यमक-प्रातिहार्यका ज्ञान है ।

द्विव्य-शक्ति-प्रदर्शन ।

इस प्रातिहार्यको शास्ताने उस चंक्रमणपर टहलते हुये किया। उनके [1]'तेजो-कसिण' (=तेजः कृत्स्न) समाधि-ध्यानके कारण, उनके ऊपरके शरीरसे अग्नि-पुंज निकलता था, 'आपो कसिण' (आपः कृत्स्न) ध्यानके कारण, निचले शरीरसे जल-धारा उत्पन्न होती थी। किन्तु जल-धाराके निकलनेके स्थानसे अग्नि-पुंज नहीं निकलता था।

शास्ताने प्रातिहार्य करते हुए ही (सोचा), कि अतीत कालके बुद्ध प्रातिहार्य करके कहां वर्षावास करते थे—'ध्यानमें देखते हुये त्रयस्त्रिंशमें वर्षा वासकर, माताको अभिधर्म-पिटक का उपदेश करते हैं' देख, दाहिने चरणको युगन्धर पर्वतके शिखरपर रख, दूसरे चरणको उठा [2]सुमेरुपर्वतके मस्तकपर रक्खा। इस प्रकार अड़सठ-लाख-योजन स्थानमें तीनही पग (=पाद-वार) हुये। ऐसा न समझना कि शास्ताने दो पगोंके अन्तरको पैर फैलाके पार किया। उनके पैर उठानेके समय पर्वतोंने स्वयं ही आकर, पाद-मूलको ग्रहण किया। शास्ता के आगे जानेपर, उठकर अपने स्वाभाविक स्थानपर जा स्थित हुये।

शक्रने शास्ताको देख सोचा—'मालूम होता है, भगवान् यह वर्षावास पाण्डु-कम्बल शिला (=संगमर्मर जैसी देवलोककी एक शिला) पर करेंगे। अहो! बहुतसे देवताओं का उपकार होगा। शास्ताके यहां वर्षा-वाससे दूसरे देवता इसपर हाथ भी न रख सकेंगे। किन्तु यह पांडु-कंबल शिला लम्बाईमें साठ योजन, विस्तार (=चौड़ाई)में पचास योजन, मोटाई (=पृथुलता)में पन्द्रह योजन है। शास्ताके बैठनेपर भी (यह) खाली (=तुच्छ) की तरह ही होगी।' शास्ताने उसके मनकी बातको जान, शिलाको ढांकनेके लिये अपनी संघाटी फेंकी। शक्रने सोचा—'चीवरको ढांकनेके लिये फेंका है; परन्तु स्वयं स्वल्प स्थान में ही बैठेंगे'। शास्ताने उसके मनकी बात जान, छोटे पीढ़ेपर बैठे, बड़े (शरीरवाले) पांशु-कुलिक (=गुदड़ी-धारी) की भांति, पांडु-कम्बल-शिलाको बीचमें कर बैठ गये। लोगोंने उस क्षण शास्ताको न देखा।

"चित्रकूटको गये, या कैलाश या युगन्धरको? लोक-ज्येष्ठ नर-पुङ्गव संबुद्धको अब, हम नहीं देख पायेंगे।" यह गाथा कहते हुये लोग रोने-कांदने लगे। किन्हीं किन्हींने (कहा)— शास्ता तो एकांत-प्रिय हैं, ऐसी परिषद्के लिये ऐसा प्रातिहार्य किया' इस लज्जासे दूसरे नगर, राष्ट्र या जनपदको चले गये होंगे। तो अब उनको कहां देखेंगे" (कह) रोते हुए इस गाथाको बोले—

"एकांत-प्रेमी धीर इस लोकको फिर न आयेंगे।

लोक-ज्येष्ट नरपुंगव संबुद्धको (अब) हम न देख पायेंगे।"

उन्होंने महामौद्गल्यायनसे पूछा—"भन्ते शास्ता कहां हैं?" वह खुद जानते हुये भी 'दूसरेकी भी करामात प्रकट हो' इस विचारसे —'अनुरुद्धको पूछो'—बोले। उन्होंने स्थविरसे वैसेही पूछा—"भन्ते शास्ता कहां हैं?"

---

१. एक प्रकारका योगाभ्यास, जिसमें आंखको तेज-खंडपर लगाकर, धीरे धीरे सारे भूमण्डलको तेजोमय देखनेकी भावनाकी जाती है। २. भूण्मडलके बीचमें सुमेरु पर्वत है; जिसके शिखरपर इन्द्रका त्रयस्त्रिंश लोक है। सुमेरुके चारों ओर समुद्र है; उसके बाद युगंधर पर्वत घेरे हुए है। फिर छः पर्वत और छः समुद्रके पार जम्बू द्वीप है।

उन पांच सौ भिक्षुओंको धर्म-उपदेश करते । वह (पांच सौ भिक्षु) शास्ताके देवलोकमें वास करते समय ही [1]सप्तप्राकरणिक हो गये ।

शास्ताने इसी प्रकार तीन मासतक अभि-धर्म-पिटक उपदेश किया । देशनाकी समाप्ति-पर अस्सी-करोड़-हज़ार प्राणियोंको धर्माभिसमय (=धर्म-दीक्षा) हुआ । महामाया भी स्रोत आपत्ति-फलमें प्रतिष्ठित हुईं ।

छत्तीस योजनके घेरेमें (इकट्ठी हुई) परिषद्ने—'अव सातवें दिन प्रवारणा होगी' (जान), महामौद्गल्यायन स्थविरके पास जाकर कहा—

"भन्ते ! शास्ताके उतरनेका दिन जानना चाहिये । विना देखे हम नहीं जायेंगे ।"

आयुष्मान् मौद्गल्यायनने इस वातको सुन—'अच्छा आवुसो !' कह, वहीं पृथिवीमें डूब—'परिषद् मुझे सुमेरु (पर्वत) पर चढ़ते हुये देखे' यह अधिष्ठान (=योग-संबंधी संकल्प) कर, मणि-रत्नसे आच्छादित पाण्डु (=लाल)-कंवलके सूत्रकी भांति, रूप दिखाते, सुमेरुके बीचमें चढ़े । मनुष्योंने भी 'एक योजन चढ़े', 'दो योजन चढ़े' उन्हें देखा । स्थविरने भी शिरके वल ऊपर-फेंके-जातेकी भांति आरोहण कर, शास्ताके चरणकी वन्दना कर यों कहा—

"भन्ते ! परिषद् आपको विना देखे नहीं जाना चाहती, आप कहां उतरेंगे ?"

"महामौद्गल्यायन ! तेरा ज्येष्ठ-भ्राता सारि-पुत्र कहां है ?"

"[2]संकाश्य-नगरके द्वारपर वर्षा-वासके लिये गये ।"

"मौद्गल्यायन ! मैं आजसे सातवें दिन महाप्रवारणाको संकाश्य-नगरके द्वारपर उतरूँगा । मुझे देखनेकी इच्छावाले वहां आवें । श्रावस्तीसे संकाश्य-नगर तीस योजन है । इतने रास्तेके लिये किसीको पाथेयका काम नहीं । उपोसथिक (=उपवास रखनेवाले) हो, स्थायी विहारमें धर्म (=उपदेश) सुननेके लिये जाते हुये की भांति आवें"—यह उनको कहा ।

स्थविरने 'अच्छा भन्ते !' (कह) जाकर वैसे ही कह दिया ।

शास्ताने वर्षा-वास समाप्तकर, प्रवारणा (=पारन) कर शक्रको कहा—"महाराज मनुष्य-पथ (=मनुष्य-लोक) को जाऊँगा" शक्रने सुवर्ण-मय, मणि-मय, रजत-मय तीन सोपान वनवाये । उनके पैर संकाश्य-नगरके द्वारपर प्रतिष्ठित थे, और सीस सुमेरुके शिखरपर । उनमें दक्षिण ओरका स्वर्ण-सोपान देवताओंके लिये था, वाईं ओरका रजत-सोपान महाब्रह्मोंके लिये और वीचका मणि-सोपान तथागतके लिये । शास्ताने भी सुमेरु-शिखरपर खड़े हो, देवावरोहण यमक-प्रातिहार्य कर, ऊपर अवलोकन किया; नवो ब्रह्मलोक एक-आंगन (से) हो गये । नीचे अवलोकन किया; अवीचि (नर्क) तक एक-आंगन हो गया । दिशाओं और अनु-दिशाओंकी ओर अवलोकन किया, सौ-हज़ार चक्रवाल एक-आंगन हो गये । (उस समय) देवताओंने मनुष्योंको देखा, मनुष्योंने भी देवताओंको देखा । भगवान्ने छः वर्ण (=रंग) की रश्मियां छोड़ीं । उस दिन बुद्धकी श्री (=शोभाको) देख, छत्तीस योजन लम्वी परिषद्में एक भी ऐसा न था; जो बुद्धत्वकी चाहना न करता हो, न रखता हो । (तव) सुवर्ण सोपानसे देवता उतरे,

---

[1] अभिधर्मके पिटकके सातों ग्रंथ सप्त-प्रकरण कहे जाते हैं । [2] संकिसा वसंतपुर, स्टेशन मोटा (E. I. Ry.)

मणि-सोपानसे सम्यक्-संबुद्ध उतरे । पंच-शिखा गंधर्व-पुत्र वेलुव-पंडु-वीणा (=वेणुकी लाल-वीणा) ले दाहिनी ओर खड़ा, शास्ताकी गंधर्व-पूजा (=संगीतसे पूजा) करते हुए उतर रहा था। मातली संग्राहक बाईं ओर खड़े हो, दिव्य गंधमाला पुष्प ले, नमस्कार पूजा करते हुए उतर रहा था। महाब्रह्मा छत्र लगाये थे, और सुयाम (देव-पुत्र) वाल-व्यजनी (=मोर-छत्र)। शास्ता ऐसे परिवार (=अनुचर-गण) के साथ उतरकर, संकाश्य नगरके द्वारपर खड़े हुये। सारिपुत्र स्थविरने भी आकर शास्ताको वन्दनाकर—क्योंकि इससे पूर्व ऐसी बुद्ध-श्रीके साथ उतरते शास्ताको न देखा था, इसलिये—

"इससे पूर्व किसीका न ऐसा देखा, न सुना।
ऐसे मधुर-भाषी शास्ता तुषित (लोक) से (अपने) गणमें आये ॥"

आदिसे अपने संतोषको प्रकाशित करते—"भन्ते! आज सभी देव, और मनुष्य आपकी स्पृहा और प्रार्थना करते हैं" कहा। तब शास्ताने—"सारिपुत्र! ऐसे ही गुणोंसे युक्त बुद्ध, देवों और मनुष्योंके प्रिय होते हैं" कह, धर्म-देशना करते इस गाथाको कहा—

"जो ध्यानमें तत्पर, धीर, निष्कर्मता और उपशममें रत हैं।
उन स्मृतिवाले संबुद्धोंको देवता भी चाहते हैं ॥"

…देशनाके अन्तमें तीस करोड़ प्राणियोंको धर्म-दीक्षा हुई। स्थविर (सारिपुत्र) के शिष्य पांच-सौ भिक्षु अर्हत्-पदको प्राप्त हुये।

यमक-प्रातिहार्य कर, देवलोकमें वर्षा-वासकर, संकाश्य नगर-द्वारपर उतरना, (सभी) संबुद्धोंसे अत्याज्य है। वहाँ (संकाश्यमें) दहिने पैरके रखनेके स्थानका नाम "अचल-चैत्य" है……।

\+ \+ \+ \+

छः शास्ताओंकी सर्वज्ञता। कुछ भिक्षु-नियम। (वि. पू. ४६४)।

(जटिल)-सुत्त।

[1]ऐसा मैंने सुना—एक समय भगवान् श्रावस्तीमें अनाथ-पिंडकके आराम जेतवनमें विहार करते थे। तब राजा प्रसेन-जित् कौसल जहां भगवान् थे, वहां गया। जाकर कुशल-प्रश्न पूछ, एक ओर बैठ...भगवान्से बोला—

"गौतम! आप भी तो 'अनुत्तर (=सर्वोत्तम) सम्यक् संबोधि, (=परमज्ञान) को जान लिया' यह दावा करते हैं?"

"महाराज! 'अनुत्तर सम्यक् संबोधिको जान लिया', यह ठीकसे बोलनेपर, मेरे ही लिये बोलना चाहिये।"

"हे गौतम! वह जो श्रमण-ब्राह्मण संघके अधिपति, गणाधिपति, गणके आचार्य, ज्ञात (=प्रसिद्ध) यशस्वी, तीर्थंकर (=पंथ चलनेवाले), बहुत जनों द्वारा साधु-सम्मत (=अच्छे माने जानेवाले) हैं, जैसे—पूर्ण-काश्यप, मक्खली (=मस्करी) गोशाल, निगंठ नाट-पुत्त (=निर्ग्रन्थ ज्ञातृपुत्र), संजय-वेलट्ठिपुत्त, प्रकुध-कात्यायन, अजित-केशकम्बली,—वह भी '(क्या आप) अनुत्तर सम्यक्-संबोधिको जान लिया', यह दावा करते हैं' पूछनेपर, 'अनुत्तर ०संबोधिको जान लिया' यह दावा नहीं करते। फिर जन्मसे अल्प-वयस्क, और प्रव्रज्यामें नये, आप गौतमके लिये तो क्या कहना है?"

"महाराज! चारको अल्प-वयस्क (=दहर) न जानना चाहिये, 'छोटे (=दहर) हैं' (समझकर) परिभव (=तिरस्कार) न करना चाहिये। कौनसे चार? महाराज! क्षत्रिय को दहर न जानना चाहिये०। सर्पको०। अग्निको०। भिक्षुको०! इन चारको महाराज! दहर न समझना चाहिये ०। यह कहकर शास्ताने फिर यह भी कहा।—

"कुलीन, उत्तम, यशस्वी, क्षत्रियको, दहर करके, आदमी उसका अपमान और तिरस्कार न करै। हो सकता है राज्य-प्राप्तकर, वह मनुजेन्द्र क्षत्रिय, क्रुद्ध हो राज-दण्डसे पराक्रम करै॥ इसलिये अपने जीवनकी रक्षाके लिये उससे अलग रहना चाहिये। गांव या अरण्यमें जहां सांपको देखे, दहर करके, आदमी उसका अपमान और तिरस्कार न करै॥ नाना प्रकारके रूपोंसे उरग(=सांप) तेजमें विचरता है। वह समय पाकर नर, नारी, बालकको डँस लेगा॥ इसलिये अपने जीवन की रक्षाके लिये उससे अलग रहना चाहिये॥ बहु-भक्षी ज्वाला-युक्त पावक=कृष्णवर्त्मा (=काले मार्गवाला) को दहर करके, आदमी उसका अपमान और तिरस्कार न करै। उपादान (=सामग्री) पा, बड़ा होकर वह आग समय पाकर, नर नारीको जला देगी॥ इसलिये अपने जीवनकी रक्षाके लिये उससे अलगरहना चाहिये॥ पावक=कृष्ण-वर्त्मा=अग्नि...वनको जलादेता है। (लेकिन) अहोरात्र बीतनेपर वहां अंकुर उत्पन्न होजाते हैं॥ लेकिन जिसको सदाचारी भिक्षु (अपने) तेजसे जलाता है।

[1] सं. नि. ३:१:१।

उसके पुत्र पशु (तक) नहीं होते, दायाद भी धन नहीं पाते ॥ सन्तान-रहित दायाद-रहित शिर कटे ताल जैसा वह होता है ॥ इसलिये पंडितजन अपने हितको जानते हुए, भुजंग, पावक, यशस्वी क्षत्रिय; और शील-सम्पन्न (=सदाचारी) भिक्षु के (साथ), अच्छी तरह वर्ताव करें ॥"

ऐसा कहने पर राजा प्रसेनजित् कोसलने भगवान्से कहा।—

"आश्चर्य ! भन्ते !! आश्चर्य ! भन्ते !! जैसे भन्ते ! औंधेको सीधा करदे ० । ० मुझे उपासक धारण करें ।"

\+ + + +

[1]यह छः शास्ता......आचार्योंकी सेवाकर चिन्ता-मणि आदि विद्याओं को पढ़कर 'हम बुद्ध हैं' यह दावा करते, बहुतसे लोग-बागले, देश-देशान्तरमें विचरते, क्रमशः श्रावस्ती पहुँचे । उनके भक्तोंने राजाके पास जाकर कहा—"महाराज ! पूर्ण काश्यप .... अजित केश-कम्बली, बुद्ध हैं सर्वज्ञ हैं।"

राजाने कहा—"तुम उन्हें निमंत्रित कर ले आओ।"

उन्होंने जाकर कहा—"राजा आप लोगोंको निमंत्रित कर रहेहैं, (आप) राजाके घर भिक्षा ग्रहण करें।"

वह जानेका साहस न करते थे । बार बार कहनेपर, भक्तोंके मनको रखनेके लिये, स्वीकारकर सभी एक साथही गये । राजाने आसन विछाकर 'बैठिये' कहा । निर्गुणोंके शरीरमें राज-तेज छा जाता है; (इसलिये) वह बहु-मूल्य आसनोंपर बैठनेमें असमर्थहो, धरतीपरही बैठ गये । राजाने—'इतने हीसे इनके भीतर शुक्र-धर्म नहीं है–' कह, बिना भोजन प्रदान किये; तालसे गिरेको मुंगरे से पीटते हुए की भांति—"तुम बुद्ध हो, (या) बुद्ध नहीं हो ?" पूछा । उन्होंने सोचा—यदि बुद्ध हैं, कहें, तो राजा बुद्धके विषयमें प्रश्न पूछेगा, न कह सकनेपर-तुम लोग 'हम बुद्ध हैं', (कहकर) लोगोंको ठगते फिरते हो—(कह) जिह्वाभी कटवा सकता है, दूसरा भी अनर्थकर सकता है । इसलिये दावा करके भी 'हम बुद्ध नहीं हैं' उत्तर दिया । तब राजाने उन्हें घरसे निकलवा दिया ।

राज-घरसे निकलनेपर भक्तोंने पूछा—"क्यों आचार्यो ! राजाने तुमसे प्रश्न पूछकर, सत्कार सन्मान किया ?"

"राजाने 'तुम बुद्ध हो' पूछा, तब हमने—'यदि राजा बुद्धके विषय में प्रश्न-व्याख्यानको न जानते हुये, हमलोगोंके प्रति मनको दूषित करेगा, तो बहुत पाप करेगा' सोच राजापर दयाकर, हमने 'हम बुद्ध नहीं हैं' कहा । हम तो बुद्धही हैं, हमारा बुद्धत्व तो पानीसे धोनेसे भी नहीं जा सकता ।"...

\+ + + + +

[2]उस समय बुद्ध भगवान् राजगृहमें विहार करते थे । उस समय छः वर्गीयभिक्षु नहाते हुये वृक्षसे शरीरको रगड़ते थे, जंघाको, बाहुको, छातीको, पेटको भी । लोग खिन्न होते, धिक्कारते थे—कैसे यह शाक्य-पुत्रीय श्रमण नहाते हुये वृक्षसे०, जैसे कि मल्ल (=पहलवान्) और मालिश

१. सं. नि. अ. क ३: १: १ । २. विनय-पिटक, चुल्लवग्ग ५ ।

करने वाले' ।···। भगवान्‌ने भिक्षुओंको संबोधित किया—" भिक्षुओ ! नहाते हुये भिक्षुको वृक्षसे शरीर न रगड़ना चाहिये, जो रगड़े उसको 'दुष्कृत' की आपत्ति है ।"

····" भिक्षुओ ! वाली नहीं धारण करनी चाहिये, साँकल०, कंठ-सूत्र०, कटि-सूत्र०, ओवट्टिक (=कटि-भूषण)०, केयूर०, हाथका आभरण०, अंगुलीकी अंगूठियां न धारण करनी चाहिये, जो धारण करैं (उसे) दुष्कृतकी आपत्ति है ।"

····'लम्बे केश नहीं रखने चाहिये । ०'दुष्कृत' की आपत्ति० । दो महीनेके (केश) या दो अंगुल लम्बेकी, अनुज्ञा देता हूं ।···

····" दर्पण या जल-पात्रमें मुँह न देखना चाहिये । ०'दुष्कृत'० ।"

···" रोगसे (पीड़ितको) दर्पण या जल-पात्रमें मुँह देखनेकी अनुज्ञा देता हूं ।"···

उस समय राजगृहमें गिरग्ग-समज्या[1] (=गिरग्ग समज्जा) होती थी; छःवर्गीय भिक्षु गिरग्ग-समज्जा देखने गये । लोग खिन्न होते धिक्कारते ···।·· "नाच, गीत, वाजा देखनेको न जाना चाहिये ।···' दुष्कृत '···।

उस समय छःवर्गीय भिक्षु लम्बे गीतके स्वरसे धर्म (=सूत्र) को गाते थे । लोग खिन्न होते धिक्कारते—कैसे शाक्य-पुत्रीय श्रमण लम्बे गीत-स्वरसे धर्मको गाते हैं ।···। भगवान्‌ने···धिक्कारकर ··संबोधित किया—

" भिक्षुओ ! लम्बे गीत-स्वरमें धर्मको गानेमें यह पांच बुराइयां हैं—(१) स्वयं भी उस स्वरमें स-राग होता है, (२) दूसरे भी०, (३) गृहस्थ भी खिन्न होते हैं, (४) अलाप लेने वालेकी (=सरकुत्तिम्पि निकामयमानस्स) समाधिका भंग होता है, (५) आने वाली जनता भी देखेका अनुगमन करती है । भिक्षुओ ! लम्बे गीतस्वरमें यह० । ०लम्बे गीत स्वरसे धर्म न गाना चाहिये ।···दुष्कृत···। [2]स्वरभण्यकी अनुज्ञा देता हूं ।

भगवान् क्रमशः चारिका करते जहां वैशाली थी वहां पहुँचे । वहां वैशालीमें भगवान् महावनकी कूटागारशालामें विहार करते थे ।···

····" भिक्षुओ ! मशक-कुटी (=मकसकुटी=मसहरी) की अनुज्ञा देता हूं । "

उस समय वैशालीमें उत्तम भोजनोंका····(निरंतर निमंत्रण रहता था), भिक्षु·· बहुत रोगी···हो रहे थे । जीवक कौमारभृत्य किसी कामसे वैशाली आया था । जीवक० ने भिक्षुओंको···बहुत रोगी देख···भगवान्‌को अभिवादनकर···कहा—

" भन्ते ! इस समय भिक्षु ··बहुत रोगी हो रहे हैं । भन्ते ! अच्छा हो यदि भगवान् [3]चंकम और [4]जन्ताघरकी अनुज्ञा दें, इस प्रकार भिक्षु निरोग रहेंगे । "···

"भिक्षुओ ! चंकम और जन्ताघरकी अनुज्ञा देता हूँ ।"···

" चंकमण-वेदिका० अनुज्ञा देता हूं ।" ···············

[5]वैशालीमें इच्छानुसार विहारकर, भगवान् जिधर [6]भर्ग (=भर्गोंका देश) थे, उधर चारिका को चले ।···। वहां भगवान् भर्गमें सुंसुमार-गिरिके भेसकला-वन मृगदावमें विहार करते थे ।

---

१. समज्या=समाज=मेला=तमाशा । २. वेदिकोंकी भांति सस्वर पाठ । ३. टहलना और टहलनेका चबूतरा । ४. स्नान-गृह । ५. चुल्ल वग्ग ५. ६. बनारस, मिर्जापुर, इलाहाबाद जिलोंके गंगाके दक्षिणवाले भागका कितनाही भाग ।

द्वितीय-खण्ड।

आयु-वर्ष ४३—४८।

(वि. पू. ४६३-४५८)

द्वितीय-खण्ड ।

(१)

भिक्षु-संघमें कलह । पारिलेयक-गमन । (वि. पू. ४६३-४६२)

[1]उस समय भगवान् कौशाम्बीके घोषितारामनें विहार करते थे, (तब) किसी भिक्षुको 'आपत्ति' (=दोष) हुई थी। वह उस आपत्तिको आपत्ति समझता था; दूसरे भिक्षु उस आपत्तिको अनापत्ति समझते थे। (फिर) दूसरे समय वह (भी) उस आपत्तिको अनापत्ति समझने लगा; और दूसरे भिक्षु उस आपत्तिको आपत्ति समझने लगे। तब उन भिक्षुओंने उस भिक्षुसे कहा—"आवुस! तुम जो आपत्ति किये हो, उस आपत्तिको देख रहे हो?" "आवुसो! मुझे 'आपत्ति' ही नहीं; किसको मैं देखूं?" तब उन भिक्षुओंने जमा हो, ... आपत्ति न देखनेके लिये, उस भिक्षुका '[2]उत्क्षेपण' किया। वह भिक्षु, बहु-श्रुत, [3]आगमज्ञ, धर्म-धर, विनय-धर; [4]मात्रिका-धर, पंडित=व्यक्त, मेधावी, लज्जी, आस्थावान् सीखनेवाला था। उस भिक्षुने जानकर, संभ्रान्त भिक्षुओंके पास जाकर कहा—"हे आवुसो! यह अनापत्ति आपत्ति नहीं। मैं आपत्ति-रहित हूं, इसे मुझे (वह लोग) आपत्ति-सहित (कहते हैं)। 'उत्क्षेपण'-रहित (=अनुत्क्षिप्त) हूं, मुझे (उन्होंने) उत्क्षिप्त किया। अधार्मिक=कोप्य, स्थानमें अनुचित निर्णय (=कर्म) द्वारा उत्क्षिप्त किया गया हूं। आयुष्मान् (लोग) धर्मके साथ विनयके साथ मेरा पक्ष ग्रहण करें।" (तब) सभी जानकार संभ्रान्त भिक्षुओंको पक्षमें उसने पाया। जानपद (=दीहाती) जानकार और संभ्रान्त भिक्षुओंके पास भी दूत भेजा०। जानपद जानकार और संभ्रान्त भिक्षुओंको भी पक्षमें पाया। तब वह उत्क्षिप्त भिक्षुके पक्षवाले भिक्षु, जहां उत्क्षेपक थे, वहां गये। जाकर उत्क्षेपक भिक्षुओंसे बोले—

---

१ महावग्ग १०. इसकी अट्ठकथामें है—

"एक संघाराममें दो भिक्षु—एक विनय-धर (=विनयपिटक-पाठी), दूसरा सौत्रान्तिक (=सूत्रपिटक-पाठी), वास करते थे। उनमें सौत्रान्तिक एक दिन पाखानेमें जा, शौचके बचे जलको बर्तनमें ही छोड़, चला आया। विनयधर पीछे पाखाने गया। बर्तनमें पानी देखकर, उस भिक्षुसे पूछा—'आवुस! तुमने इस जलको छोड़ा है?' 'हां, आवुस!' 'तुम इसमें आपत्ति (=दोष) नहीं समझते?' 'हां, नहीं समझता' 'आवुस! यहां आपत्ति होती है।' 'यदि होती है, तो (प्रति-) देशना (=क्षमापन) करूँगा।' 'यदि तुमने बिना जाने, भूलसे किया, तो आपत्ति नहीं है' वह उस आपत्तिको अनापत्ति समझता था। विनय-धरने भी अपने अनुयायियोंको कहा—"यह सौत्रान्तिक 'आपत्ति' करके भी नहीं समझता"। वह उस (सौत्रान्तिक) के अनुयायियोंको देखकर कहते—"तुम्हारा उपाध्याय आपत्ति करके भी 'आपत्ति हुई' नहीं जानता।" वह कहते—"पर विनयधर पहिले अनापत्ति कर, अब आपत्ति करता है, वह मिथ्या-वादी है।" उन्होंने कहा—'तुम्हारा उपाध्याय मिथ्या-वादी है'। इस प्रकार कलह बढ़ी।" २ एक प्रकारका दण्ड। ३ सूत्र-पिटकके दीघ-निकाय आदि पांच निकाय 'आगम' भी कहे जाते हैं। ४. अति संक्षिप्त अभिधर्म।

"यह अनापत्ति है आवुसो ! आपत्ति नहीं । यह भिक्षु आपत्ति-रहित है, आपत्ति-सहित (=आपन्न) नहीं । अनुत्क्षिप्त है....उत्क्षिप्त नहीं । यह अ-धार्मिक० कर्म (=न्याय) से उत्क्षिप्त किया गया है ।" ऐसा कहनेपर उत्क्षेपक भिक्षुओंने उत्क्षिप्त भिक्षुके पक्षवालोंसे कहा-'आवुसो ! यह आपत्ति है, अनापत्ति नहीं । यह भिक्षु आपन्न है, अनापन्न नहीं । यह भिक्षु उत्क्षिप्त है, अनुत्क्षिप्त नहीं । यह धार्मिक=अकोप्य=स्थानीय, कर्म (=न्याय) द्वारा उत्क्षिप्त हुआ है । आयुष्मानो ! आप लोग इस उत्क्षिप्त भिक्षुका अनुवर्तन=अनुगमन न करें ।" उत्क्षिप्तके पक्षवाले भिक्षु, उत्क्षेपक भिक्षुओं द्वारा ऐसा कहे जानेपर भी; उत्क्षिप्त भिक्षुका वैसे ही अनुवर्तन=अनुगमन करते रहे ।

\+ + + +

[1]ऐसा मैंने सुना—एक समय भगवान् [2]कौशाम्बीके घोषितराममें विहार करते थे । उस समय कौशाम्बीमें भिक्षु भंडन करते, कलह करते, विवाद करते, एक दूसरेको मुख (रूपी) शक्ति (=हथियार) से वेधते फिरते थे । तब कोई भिक्षु, जहां भगवान् थे, वहां जाकर भगवान्को अभिवादनकर, एक ओर खड़ा हो गया । एक ओर खड़े हुये उस भिक्षुने भगवान्से यों कहा— "यहां कौशाम्बीमें भन्ते ! भिक्षु भंडन करते, कलह करते, विवाद करते एक दूसरेको मुखशक्तिसे वेधते फिरते हैं । अच्छा हो यदि भन्ते ! भगवान्, जहाँ वह भिक्षु हैं, वहाँ चलें ।"

भगवान्ने मौनसे उसे स्वीकार किया । तब भगवान् जहाँ वह भिक्षु थे, वहाँ गये । जाकर उन भिक्षुओंसे बोले—

"बस भिक्षुओ ! भंडन, कलह, विग्रह, विवाद (मत) करो ।"

ऐसा कहनेपर एक भिक्षुने भगवान्को कहा—

"भन्ते ! भगवान् ! धर्म-स्वामी ! रहने दें । परवाह मत करें । भन्ते ! भगवान् ! धर्म-स्वामी ! दृष्ट-धर्म (इसी जन्म) के सुखके साथ विहार करें । हम इस भंडन कलह विग्रह विवादसे (स्वयं निपट लेंगे) ।

दूसरीवार भी भगवान्ने उन भिक्षुओंसे कहा—"बस भिक्षुओ० ! ०' ।०। तीसरीवार भी भगवान् ०।०।

तब भगवान् पूर्वाह्ण समय (वस्त्र) पहनकर पात्र-चीवरले कौशाम्बीमें भिक्षाचार कर, भोजनकर पिंड-पातसे उठ, आसन समेट, पात्र चीवर ले, खड़ेही खड़े इस गाथाको बोले—

"बड़े शब्द करने वाले एक समान (यह) जन कोई भी अपनेको बाल (=अज्ञ) नहीं मानते;
संघके भंग होने (और) मेरे लिये मनमें नहीं करते ॥
मूढ, पंडितसे दिखलाते, जीभपर आई बातको बोलने वाले ;
मन-चाहा मुख फैलाना चाहते हैं; जिस (कलह) से (अयोग्य मार्गपर)
ले जाये गये हैं, उसे नहीं जानते ॥

'मुझे निन्दा', 'मुझे मारा', 'मुझे जीता', 'मुझे त्यागा' !
(इस तरह) जो उसको (मनमें) बांधते (=उपनहन) हैं, उनका वैर शांत नहीं होता ॥

---

१. म. नि. ३: ३: ८ । २. कोसम्, जिला इलाहाबाद ।

'मुझे निन्दा', 'मुझे मारा', 'मुझे जीता', 'मुझे त्यागा'।
(इस तरह) जो उसको नहीं बांधते, उनका वैर शांत हो जाता है ॥
वैरसे वैर यहां कभी शांत नहीं होता।
अ-वैरसे (ही) शांत होता है, यही सनातन-धर्म है ॥
दूसरे (=अपंडित) नहीं जानते, कि हम यहां मृत्युको प्राप्त होंगे।
जो वहां (मृत्युके पास) जाना जानते हैं, वे (पंडित) बुद्धिगत (कलहोंको) शमन करते हैं ॥
हड्डी तोड़ने वालों, प्राण हरने वालों, गाय-घोड़ा-धन-हरने वालों।
राष्ट्रको विनाश करने वालों (तक) का भी मेल होता है ॥
यदि नम्र-साधु-विहारी धीर (पुरुष) सहचर=सहायक (=साथी) मिले।
तो सब झगड़ोंको छोड़ प्रसन्न हो बुद्धिमान् उसके साथ विचरे ॥
यदि नम्र साधु-विहारी धीर सहचर सहायक न मिले।
तो राजाकी भांति विजित राष्ट्रको छोड़, उत्तम मातंग-राजकी भांति अकेला विचरे ॥
अकेला विचरना अच्छा है, बालसे मित्रता नहीं (अच्छी)।
बे-पर्वाह हो उत्तम मातंग-(=नाग) राजकी भांति अकेला विचरे, और पाप न करे ॥"

तब भगवान् खड़े खड़े इन गाथाओंको कहकर, जहां बालक-लोणकार ग्राम था, वहाँ गये। उस समय आयुष्मान् भृगु बालक-लोकार ग्राममें वास करते थे। आयुष्मान् भृगुने दूर सेही भगवान्‌को आते देखा। देखकर आसन बिछाया, पैर धोनेको पानी भी (रक्खा)। भगवान् बिछाये आसनपर बैठे। बैठकर चरण धोये। आयुष्मान् भृगु भी भगवान्‌को अभिवादनकर एक ओर बैठ गये। एक ओर बैठे हुये आयुष्मान् भृगुको भगवान्‌ने यों कहा—
"भिक्षु! क्या खमनीय (=ठीक) तो है, क्या यापनीय (=अच्छी गुजरती) तो है? पिंड (=भिक्षा) के लिये तो तुम तकलीफ नहीं पाते?"

"खमनीय है भगवान! यापनीय है भगवान्! मैं पिंडके लिये तकलीफ नहीं पाता।"

तब भगवान् आयुष्मान भृगुको धार्मिक कथासे० समुत्तेजितकर०, आसनसे उठकर, जहां प्राचीन-वंश-दाव है, वहां गये। उस समय आयुष्मान् अनुरुद्ध, आयुष्मान् नन्दिय और आयुष्मान् किम्बिल प्राचीन-वंश-दावमें विहार करते थे। दाव-पालक (=वन-पाल) ने दूरसे ही भगवान्‌को आते देखा। देखकर भगवान्‌को कहा—

"महाश्रमण! इस दावमें प्रवेश मत करो। यहांपर तीन कुल-पुत्र यथाकाम (=मौज से) विहर रहे हैं। उनको तकलीफ मत दो।"

आयुष्मान् अनुरुद्धने दाव-पालको भगवान्‌के साथ बात करते सुना। सुनकर दाव-पालसे यह कहा—

"आवुस! दाव-पाल! भगवान्‌को मत मना करो। हमारे शास्ता भगवान् आये हैं।"

तब आयुष्मान् अनुरुद्ध जहां आयुष्मान् नन्दिय और आयु० किम्बिल थे वहां गये। जाकर बोले…—

"आयुष्मानो! चलो आयुष्मानो! हमारे शास्ता भगवान् आ गये।"

तब आ० अनुरुद्ध, आ० नन्दिय, आ० किम्बिल भगवान्‌की अगवानीकर, एकने पात्र-चीवर ग्रहण किया, एकने आसन बिछाया, एकने पादोदक रक्खा । भगवान्‌ने बिछाये आसनपर बैठ पैर धोये । वे भी आयुष्मान् भगवान्‌को अभिवादनकर, एक ओर बैठ गये । एक ओर बैठे हुये आयुष्मान् अनुरुद्धको भगवान्‌ने कहा—

"अनुरुद्धो ! खमनीय तो है ? यापनीय तो है ? पिंडके लिये तो तुमलोग तकलीफ नहीं पाते ?"

"खमनीय है, भगवान् !०"

"अनुरुद्धो ! क्या एकत्रित, परस्पर मोद-सहित, दूध-पानी हुये, परस्पर प्रिय-दृष्टिसे देखते, विहरते हो ? "हाँ भन्ते ! हम एकत्रित० ।"

"तो कैसे अनुरुद्धो ! तुम एकत्रित० ?" "भन्ते ! मुझे, यह विचार होता है—'मेरे लिये लाभ है ! मेरे लिये सुलाभ प्राप्त हुआ है, जो ऐसे स-ब्रह्मचारियों (=गुरु भाइयों) के साथ विहरता हूं । भन्ते ! इन आयुष्मानोंमें मेरा कायिक कर्म अन्दर और बाहरसे मित्रता-पूर्ण होता है; वाचिक-कर्म अन्दर और बाहरसे मित्रता-पूर्ण होता है ; मानसिककर्म अन्दर और बाहर० । तब भन्ते ! मुझे यह होता है—क्यों न मैं अपना मन हटाकर, इन्हीं आयुष्मानोंके चित्तके अनुसार वर्तूं । सो भन्ते ! मैं अपने चित्तको हटाकर इन्हीं आयुष्मानोंके चित्तोंका अनुवर्तन करता हूँ । भन्ते ! हमारा शरीर नाना है, किन्तु चित्त एक ...।"

आयुष्मान् नन्दीने भी कहा—"भन्ते ! मुझे यह होता है० ।"

आयुष्मान् किम्बिलने भी कहा—भन्ते ! मुझे यह० ।

"साधु, साधु, अनुरुद्धो ! अनुरुद्धो ! क्या तुम प्रमाद-रहित, आलस्य-रहित, संयमी हो, विहरते हो ?" "भन्ते ! हाँ ! हम प्रमाद-रहित० ।"

"अनुरुद्धो ! तुम कैसे प्रमाद-रहित० ?" "भन्ते ! हमरेमें जो पहिले ग्रामसे भिक्षाचार करके लौटता है, वह आसन लगाता है, पीनेका पानी रखता है, कूड़ेकी थाली रखता है । जो पीछे गांवसे पिंडचार करके लौटता है, (वह) भोजन (मेंसे जो) बँचा रहता है, यदि चाहता है, खाता है, (यदि) नहीं चाहता है, तो (ऐसे) स्थानमें, जहां हरियाली न हो, छोड़ देता है, या जीव-रहित पानीमें छोड़ देता है । आसनोंको समेटता है । पीनेके पानीको समेटता है । कूड़ेकी थालीको धोकर समेटता है । खानेकी जगहपर झाड़ू देता है । पानीके घड़े, पीनेके घड़े, या पाखानेके घड़ेमें जिसे खाली देखता है; उसे (भरकर) रख देता है । यदि वह उससे होने लायक नहीं होता तो हाथके इशारेसे, हाथके संकेत (=हत्थ-विलंघक)से दूसरोंको बुलाकर, पानीके घड़े, या पीनेके घड़ेको (भरकर) रखवाता है । भन्ते ! हम उसके लिये वाग्-युद्ध नहीं करते । भन्ते ! हम पांचवें दिन सारी रात धर्म-सम्बन्धी कथा करते बैठते हैं । इस प्रकार भन्ते ! हम प्रमाद-रहित० ।"

"साधु, साधु, अनुरुद्धो ! अनुरुद्धो ! इस प्रकार प्रमाद-रहित, निरालस, संयमी हो विहरते, क्या तुम्हें [1]उत्तर-मनुष्य-धर्म अलमार्य-ज्ञान-दर्शन-विशेष अनुकूल-विहार प्राप्त है ?"

---

१. देखो पृष्ठ ।

"भन्ते ! हम प्रमाद-रहित० विहार करते, अवभास और रूपोंके दर्शनको जानते हैं। किंतु वह अवभास, और रूपोंके दर्शन हम लोगोंको जल्द ही अन्तर्ध्यान होजाते हैं। हम इसका कारण नहीं जान पाते।"

"अनुरुद्धो ! तुम्हें वह कारण जान लेना चाहिये। मैं भी सम्बोधिसे पूर्व, न बुद्ध हुआ, बोधि-सत्त्व होते (समय) अवभास और रूपोंके दर्शनको जानता था। मेरा वह अवभास और रूपोंका दर्शन जल्द ही अन्तर्ध्यान होजाता था। तब मुझे ! अनुरुद्धो यह हुआ—क्या है हेतु (=कारण), क्या है प्रत्यय (=कार्य), जिससे मेरा अवभास और रूपोंका दर्शन अन्तर्ध्यान होजाता है। तब मुझे अनुरुद्धो ! यह हुआ—(१) विचिकित्सा (=शंका, सन्देह) मुझे उत्पन्न हुई, विचिकित्साके कारण मेरी समाधि च्युत होगई। समाधिके च्युत होनेपर अवभास और रूपोंका दर्शन अन्तर्ध्यान होता है। सो मैं ऐसा करूँ, जिसमें फिर विचिकित्सा न उत्पन्न हो। सो मैं अनुरुद्धो ! प्रमाद-रहित० विहार करते, अवभास (=प्रकाश) और रूपोंका दर्शन देखने लगा। (किंतु)वह अवभास और रूपोंका दर्शन जल्द ही (फिर) अन्तर्ध्यान होजाता था। तब मुझे अनुरुद्धो ! यह हुआ—क्या है हेतु०। 'तब मुझे अनुरुद्धो ! हुआ—(२) अमनसिकार (=मनमें न दृढ़ करना), मुझे उत्पन्न हुआ। अ-मनसिकारके कारण मेरी समाधि च्युत हुई०। सो मैं ऐसा करूँ, जिसमें फिर न विचिकित्सा न अ-मनसिकार उत्पन्न हो। सो मैं०। ०(३) थीन-मिद्ध (=स्त्यान-मिद्ध)०। ०न विचिकित्सा न अमनसिकार, न थीन-मिद्ध उत्पन्न हो। सो मैं०। ० (४) छम्भितत्त (=स्तम्भितत्त्व)०। स्तम्भितत्त्व (=जड़ता)के कारण मेरी समाधि च्युत हुई। समाधिके च्युत होनेपर, अवभास और रूपोंका दर्शन अन्तर्ध्यान हुआ। अनुरुद्धो ! जैसे पुरुष (अँधेरी रातमें) रास्तेमें जारहा हो, उसके दोनों ओर बटेरें उड़ जांय। उसके कारण उसको स्तम्भितत्त्व उत्पन्न हो। ऐसेही अनुरुद्धो ! मुझे स्तम्भितत्त्व उत्पन्न हुआ। स्तम्भितत्त्वके कारण०। सो मैं ऐसा करूँ, जिसमें फिर न विचिकित्सा उत्पन्न हो, न अ-मनसिकार, न स्त्यान-मिद्ध, न स्तम्भितत्त्व। सो मैं अनुरुद्धो०। (५) ०उप्पील (=उब्बिल्ल=उत्पीड़ा=विह्वलता)०। अनुरुद्धो ! पुरुष एक निधि (=खजाना)को ढूंढ़ता, एकही बार पांच निधियोंके मुखको पाजाय, जिसके कारण उसे उत्पीड़ा उत्पन्न हो। ऐसेही अनुरुद्धो ! उत्पीड़ा उत्पन्न हुई। उत्पीड़ाके कारण मेरी समाधि च्युत हुई०। सो मैं ऐसा करूँ, जिसमें मुझे फिर न विचिकित्सा उत्पन्न हो० न उत्पीड़ा। सोमैं अनुरुद्धो !०। ०(६)दुट्ठुल्ल (=दुःस्थौल्य)०। सो मैं ऐसा करूँ, जिसमें मुझे न विचिकित्सा उत्पन्न हो०, न दुःस्थौल्य। सो मैं०। तब मुझे अनुरुद्ध ! यह हुआ—(७) अति-आरब्ध-वीर्य (=अच्चारद्ध-वीरिय, अत्यधिक अभ्यास) मुझे उत्पन्न हुआ०। जैसे अनुरुद्ध ! पुरुष दोनों हाथोंसे बटेरको जोरसे पकड़े, वह वहीं मर जाय। ऐसेही मुझे अनुरुद्धो !०। सो मैं ऐसा करूँ, जिसमें मुझे० अत्यारब्ध वीर्य०। (८) अति-लीन-वीर्य (=अतिलीनवीरिय)०। जैसे अनुरुद्धो ! पुरुष बटेरको ढीला पकड़े, वह उसके हाथसे उड़ जाय०। सो मैं० अतिलीन वीर्य०।० (९) अभिजप्प। (=अभिजल्प)०। सो मैं० अभिजप्प०। ०(१०) नानात्त्वप्रज्ञा (=नानत्तपञ्ञा)०।

"सो मैं० नानात्त्व-प्रज्ञा०। ०(११) अतिनिध्यायितत्त्व (=अतिनिज्झायितत्त) रूपोंका मुझे उत्पन्न हुआ। अतिनिध्यायितत्त्वके कारण मेरी रूपोंकी समाधि-च्युत हुई।

समाधिके च्युत होनेसे अवभास, और रूपोंका दर्शन अन्तर्ध्यान हुआ । सो मैं ऐसा करूँ, जिसमें मुझे फिर न (१) विचिकित्सा उत्पन्न हो, न (२) अ-मनसिकार, न (३) स्त्यान-मृद्ध, न (४) स्तम्भितत्त्व, न (५) उत्पीड़ा, न (६) दुःस्थौल्य, न (७) अत्यारब्ध-वीर्य, न (८) अति-लीन-वीर्य, न (९) अभि-जल्प, न (१०) नानात्त्व-प्रज्ञा, न (११) रूपोंका अति-नि-ध्यायितत्त्व । सो मैंने अनुरुद्धो ! 'विचिकित्सा चित्तका उप-क्लेश (=मल) है' जानकर, चित्तके उप-क्लेश विचिकित्साको छोड़ दिया ; 'अ-मनसिकार चित्तका उप-क्लेश है' जानकर, चित्तके उप-क्लेश अ-मनसिकारको छोड़ दिया; ०स्त्यान-मृद्ध० ; ०स्तम्भितत्त्व०; ०उत्पीड़ा०; ०दुःस्थौल्य०; ०अत्यारब्ध-वीर्य०; ०अति-लीन-वीर्य०; ०अभि-जल्प०; ०नानात्त्व-प्रज्ञा०; ०रूपोंका अति-नि-ध्यायितत्त्व चित्तका उप-क्लेश है' जानकर, चित्तके उप-क्लेश रूपोंके अति-नि-ध्यायितत्त्वको छोड़ दिया । सो मैं अनुरुद्धो ! प्रमाद-रहित निरालस, संयमी हो विहरते अवभासको जानता, और रूपोंको नहीं देखता; रूपोंको देखता, और अवभासको नहीं पहिचानता (कि) 'केवल रात (है, या) केवल दिन, या केवल रात-दिन' ।

"तब मुझे अनुरुद्धो ! यह हुआ—क्या हेतु है, क्या प्रत्यय है, (कि) मैं अवभासको जानता हूँ० ? तब मुझे अनुरुद्धो ! यह हुआ जिस समय मैं रूपके निमित्त (=विशेषता) को मनमें न कर, अवभासके निमित्त हीको मनमें करता हूँ, उस समय अवभासको पहिचानता हूं, और रूपों को नहीं देखता । जिस समय मैं अव-भासके निमित्तको मनमें न कर, रूपोंके निमित्तको मनमें करता हूं; उस समय रूपोंको देखता हूँ, 'केवल रात है, केवल दिन है, केवल रात-दिन है' इस अवभासको नहीं पहिचानता । सो मैं अनुरुद्धो ! प्रमाद-रहित० विहरते, अल्प (=परित्त) अवभासको भी पहिचानता, अल्प रूपको भी देखता ; अ-प्रमाण (=महान्) अवभासको भी पहिचानता, अ-प्रमाण रूपोंको भी देखता—'केवल रात है, केवल दिन है, केवल रात-दिन है' । तब मुझे अनुरुद्धो ! ऐसा हुआ—क्या हेतु है, क्या प्रत्यय है, जो मैं अल्प अवभासको भी पहिचानता० ? तब अनुरुद्धो ! मुझे यह हुआ—जिस समय समाधि अल्प होती है, उस समय मेरा चक्षु अल्प होता है ; सो मैं अल्प चक्षुसे परिच्छिन्न (=अल्प) ही अवभासको जानता हूँ, परिच्छिन्न ही रूपोंको देखता हूँ । जिस समय अप्रमाण समाधि होती है, उस समय मेरा चक्षु अप्रमाण होता है ; सो मैं अप्रमाण चक्षुसे अ-प्रमाण अवभासको जानता; अप्रमाण रूपों—केवल दिन, केवल रात, केवल रात-दिनको देखता । क्योंकि अनुरुद्धो ! मैंने 'विचिकित्सा चित्तका उप-क्लेश है' जानकर, चित्तके उप-क्लेश विचिकित्साको छोड़ दिया था । 'अमनसिकार० । स्त्यानमृद्ध० । स्तम्भितत्त्व० । उत्पीड़ा० । दुःस्थौल्य० । अत्यारब्ध-वीर्य० । अति-लीन वीर्य० । अभि-जल्प० । नानार्थ-संज्ञा० । 'रूपोंका अति-निध्यायितत्त्व चित्तका उपक्लेश है' जानकर, चित्तके उप-क्लेश अतिनिध्यायितत्त्वको छोड़ दिया था ।

"तब मुझे अनुद्धो ! ऐसा हुआ—जो मेरे चित्तके उप-क्लेश थे, वह छूट गये । हां तो ! अब मैं तीन प्रकारसे समाधि भावना करूँ । सो मैं अनुरुद्धो ! वितर्क-सहित भी समाधिकी भावना करता । वितर्क-रहित विचार मात्रवाली समाधिकी भावना करता । वितर्क-रहित समाधिकी भी भावना करता । प्रीति (=स-प्रीतिक) समाधिको भी०; प्रीति विनावाली (= निःप्रीतिक) समाधि० । सात (=सुख)-संयुक्त समाधि० । उपेक्षा-युक्त समाधि० । क्योंकि, अनुरुद्धो !

मैंने स-वितर्क स-विचार समाधिकी भी भावनाकी थी : अवितर्क विचारमात्रवाली समाधि० । अवितर्क अविचार समाधि० । स-प्रीतिक० । निःप्रीतिक० । सात-सह-गत० । मेरे लिये ज्ञान-दर्शन हो गया । मेरी चित्तकी विमुक्ति (=मुक्ति) अटल होगई । यह अन्तिम जन्म है । अब पुनर्भव (=आवगमन) नहीं ।"

भगवान्! (इस प्रकार बोले); आयुष्मान् अनुरुद्धने सन्तुष्ट हो भगवान्के भाषणको अभिनन्दित किया ।

(पारिलेयक-सुत्त) ।

[1]ऐसा मैंने सुना—एक समय भगवान् कौशाम्बीके घोषितारामें विहार करते थे ।

उस समय भगवान्···भिक्षुओंसे, भिक्षुनियोंसे, उपासकोंसे, उपासिकाओंसे, राजाओंसे, राज-महामात्योंसे, तैर्थिकोंसे, तैर्थिक-श्रावकोंसे आकीर्ण हो, दुःखसे विहरते थे, अनुकूलतासे (=फासु) न विहरते थे । तब भगवान्को यह हुआ—'मैं इस समय ०आकीर्ण हो दुःखसे विहरता हूँ, अनुकूलतासे नहीं विहरता हूँ । क्यों न गणसे अकेला, अ-समीप हो विहरूँ ?

तब भगवान् पूर्वाह्ण समय पहनकर पात्र-चीवर ले, कौशाम्बीमें भिक्षाके लिये प्रविष्ट हुये । कौशाम्बीमें पिंड-चारकरके, पिंड-पात खतमकर, भोजनके पश्चात् स्वयं आसन समेट पात्र-चीवर ले, उपस्थाक (=हजूरी) को बिना कहे, भिक्षु संघको बिना देखे, अकेले अ-द्वितीय, जिधर पारिलेयक था, उधरको चारिकाके लिये चल दिये । क्रमशः चारिका करते जहां पारिलेयक था, वहाँ पहुँचे । वहां भगवान् पारिलेयकमें रक्षित-वन-खंडके भद्र-शाल (वृक्ष) के नीचे विहार करते थे । दूसरा हस्ति-नाग (=महागज) भी हाथी, हथिनी, हाथीके कलभ (=तरुण) और हाथीके छउआ (=छाप=शावक) से आकीर्ण हो विहरता था । शिरकटे तृणोंको खाता था । टूटी-भांगी·· शाखाओं···को (वह) खाता था । मैले पानीको पीता था । अवगाह (=जलाशय) उतर जानेपर हथिनियां उसके शरीरको रगड़ती चलती थीं । (ऐसे) आकीर्ण (हो) (वह) दुःखसे अननुकूलतासे विहार करता था । तब उस महागजको हुआ, इस वक्त मैं हाथी०, आकीर्ण० हूँ० । क्यों न मैं गणसे अकेला० ?

तब वह हस्ति-नाग यूथसे हटकर, जहां पारिलेयक रक्षित वन-खंड भद्र-शाल-मूल था, जहां भगवान् थे, वहां आया । वहां आकर वह नाग जो हरित स्थान होता था, उसे अहरित-करता था । भगवान्के लिये सूँडसे पानी ला, पीनेका (पानी) रखता था । तब एकान्त-स्थ ध्यान-स्थ भगवान्के मनमें यह वितर्क उत्पन्न हुआ—मैं पहिले भिक्षुओं०से आकीर्ण विहरता था, अनुकूलतासे न विहरता था । सो मैं अब भिक्षुओं०से अन्-आकीर्ण विहर रहा हूं । अन्-आकीर्ण हो, सुखसे, अनुकूलतासे विहारकर रहा हूँ । उस हस्ति-नागको भी मनमें यह वितर्क उत्पन्न हुआ—मैं पहिले हाथियों० अन्-आकीर्ण सुखसे अनुकूलसे विहर रहा हूँ । तब भगवान्ने अपने प्र-विवेक (=एकान्त सुख) को जान, और (अपने) चित्तसे उस हस्ति नागके चित्तके वितर्कको जानकर, उसी समय यह उदान कहा—

"हरीस जैसे दांतवाले हस्ति-नागसे नाग (=बुद्ध) का चित्त समान है, जो कि वनमें अकेला रमण करता है ।"

---

१ उदान. ४-५ । महावग्ग १० (आरम्भमें थोड़ा छोड़) ।

(२)

पारिलेय्यकसे श्रावस्ती । संघ-मेल । (वि. पू. ४६१) ।

"ऐसा[1] मैंने सुना—एक समय भगवान् कौशाम्बीके घोषितारामर्में विहार करते थे। तब भगवान् पूर्वाह्ण समय पहिनकर पात्र-चीवर ले, कौशाम्बीमें पिंड-पातके लिये प्रविष्ट हुये। कौशाम्बीमें पिंडचार करके, पिंड-पात समाप्तकर, भोजनके पश्चात्, स्वयं आसन समेट पात्र-चीवरले उपस्थाकों (=हजूरियों)को विना कहे, भिक्षु-संघको विना देखे, अकेले=अ-द्वितीय चारिकाके लिये चल दिये। तब एक भिक्षु भगवान्‌के जानेके थोड़ीही देर बाद जहाँ आयुष्मान् आनन्द थे, वहाँ गया। जाकर आयुष्मान् आनन्दको बोला—

"आवुस! आनन्द! भगवान् स्वयं आसन समेटकर पात्र-चीवरले० चारिकाके लिये चले गये।"

भगवान् उस समय अकेलेही विहार करना चाहते थे, इस लिये वह किसीके द्वारा अनु-गमनीय न थे।

क्रमशः चारिका करते भगवान् जहाँ पारिलेयक[2] था, वहाँ गये। वहाँ पारिलेयकमें भद्रशालके नीचे विहार करते थे। तब बहुत से भिक्षु जहाँ आयुष्मान् आनन्द थे, वहाँ गये। जाकर आयुष्मान् आनन्दके साथ संमोदन किया०। एक ओर बैठ गये। एक ओर बैठे उन भिक्षुओंने आयुष्मान् आनन्दको कहा—

"आवुस! आनन्द! हमें भगवान्‌के मुखसे धर्म-कथा सुने देर हुई। आवुस! आनन्द! हम भगवान्‌के मुखसे धर्म-कथा सुनना चाहते हैं।"

तब आयुष्मान् आनन्द उन भिक्षुओंके साथ, जहाँ पारिलेयक-भद्रशाल-मूल था, जहाँ भगवान् थे, वहाँ गये। जाकर भगवान्‌को वन्दनाकर एक ओर बैठ गये। एक ओर बैठे हुये उन भिक्षुओंको भगवान्‌ने धार्मिक कथा द्वारा दर्शाया, सिखाया, हर्षाया। उस समय एक भिक्षुके चित्तमें ऐसा वितर्क उत्पन्न हुआ—

"क्या जानने क्या देखनेके अनन्तर आस्रवों (=दोषों) का क्षय होता है?"

तब भगवान्‌ने उस भिक्षुके चित्तके वितर्कको अपने चित्तसे जानकर भिक्षुओंको संबोधित किया—

"भिक्षुओ मैंने धर्मको पूरी तरह उपदेश किया है। पूरी तरह मैंने उपदेश किये हैं, चार स्मृति-प्रस्थान। ० चार सम्यक् प्रधान। ० चार ऋद्धि-पाद। ० पाँच इन्द्रियाँ। ० छः बल। ० सात बोधि-अङ्ग। ० आर्य-अष्ट-आंगिक-मार्ग। इस प्रकार भिक्षुओ! मैंने पूरी तरह धर्मको उपदेश किया है। इस प्रकार मेरे पूरी तरह धर्मके उपदेश कर देनेपर भी, यहाँ एक भिक्षुके चित्तमें ऐसा वितर्क उत्पन्न हुआ—'क्या जानने क्या देखनेके अनन्तर आस्रवोंका क्षय होता है।' भिक्षुओ! क्या जानते क्या देखते हुए बीचहीमें आस्रवोंका क्षय होता है? भिक्षुओ! अ-श्रुत-वान् (=अ-पण्डित) पृथग्जन, आर्योंका अ-दर्शक, आर्य-धर्ममें

---

१. सं० नि० २१ : ८ : ९। २. पालिलेय्यक (वर्मी पुस्तकमें)।

अ-कोविद, आर्य-धर्ममें अ-मती; [1]सत्पुरुषोंका अ-दर्शक, सत्पुरुषोंके धर्ममें अ-कोविद सत्पुरुष-धर्ममें अ-मती, रूपको आत्मा करके जानता है। उसकी जो समनुपश्यना (=सूझ, सिद्धांत) है, वह संस्कार (=कृत्रिम) है। वह संस्कार किस निदानवाला=किस समुदय (=हेतु) वाला, किससे जन्मा—किससे प्रभव हुआ है? अ-विद्याके स्पर्श (=योग) से। भिक्षुओ! वेदनासे स्पृष्ट (=युक्त, लिप्त) अ-पंडित पृथग्जनको तृष्णा उत्पन्न होती है; उसीसे उत्पन्न है, वह संस्कार। इस प्रकार भिक्षुओ! वह संस्कार अ-नित्य=संस्कृत (=निर्मित)=प्रतीत्य-समुत्पन्न (=कारणसे उत्पन्न) है। जो तृष्णा है, वह भी अ-नित्य, संस्कृत, प्रतीत्य-समुत्पन्न है। जो वेदना है०। जो स्पर्श (=योग) है०। जो अविद्या है०। भिक्षुओ! ऐसा भी जानने देखनेके अनंतर आस्रवोंका क्षय होता है। (तब) वह (द्रष्टा) रूपको आत्मा करके नहीं देखता, बल्कि रूप-वान्‌को आत्मा समझता है। भिक्षुओ! जो वह समनुपश्यना (=सूझ) है, वह संस्कार है। वह संस्कार किस निदान वाला० है? अविद्याके योगसे उत्पन्न वेदनासे लिप्त अ-पंडित पृथग्जनको तृष्णा उत्पन्न होती है, उसीसे उत्पन्न हुआ है, वह संस्कार। इस प्रकार भिक्षुओ! वह संस्कार अ-नित्य, संस्कृत, प्रतीत्य-समुत्पन्न है। जो तृष्णा है वह भी अनित्य०। जो वेदना०। जो स्पर्श०। जो अ-विद्या०। भिक्षुओ! ऐसा जानने देखनेके अनन्तर भी आस्रवोंका क्षय होता है। (वह) रूपको आत्मा करके नहीं देखता, न रूपवान्‌को आत्मा करके देखता है।

"भिक्षुओ! जो वह समनुपश्यना (=सूझ) है, वह संस्कार है।० ऐसा जानने देखनेके अनन्तर भी आस्रवोंका क्षय होता है। (वह) न रूपको आत्मा करके०। न रूपवान्०। न आत्मामें रूप देखता है; बल्कि रूपमें आत्माको देखता है।

"भिक्षुओ! जो वह समनुपश्यना०। (वह) रूपको आत्मा करके नहीं देखता। न रूपवान्०। न आत्मामें रूपको०। न रूपमें आत्माको। बल्कि वेदनाको आत्मा करके देखता है; बल्कि वेदनावान्‌को आत्मा देखता है; बल्कि आत्मामें वेदनाको देखता है; बल्कि वेदनाके लिये आत्माको देखता (=जानता) है। ० संज्ञा०।

"बल्कि, संस्कारोंको आत्मा करके देखता है। बल्कि संस्कार-वान्‌को०। ०आत्मामें संस्कारोंको०। संस्कारोंमें आत्माको०।

"०विज्ञान०। ०विज्ञानवान्‌को०। ०आत्मामें विज्ञानको०। ०विज्ञानमें०।

"भिक्षुओ! जो वह समनुपश्यना (है) वह संस्कार है। वह संस्कार किस-निदान-वाला० है? ०तृष्णा उत्पन्न होती है, उसीसे उत्पन्न है, वह संस्कार। इस प्रकार भिक्षुओ! वह संस्कार भी अ-नित्य०। जो तृष्णा० वेदना० स्पर्श० अविद्या०। ऐसे भी भिक्षुओ! जानने देखनेके अनन्तर आस्रवोंका क्षय होता है। न रूपको आत्मा करके देखता है, न वेदनाको० न संज्ञाको०, न संस्कारको०, न विज्ञानको०। बल्कि इस प्रकारकी दृष्टि (=सिद्धान्त) वाला होता है—'वही आत्मा है, वही लोक है, वही पीछे जन्मता है, (वह) नित्य=ध्रुव=अ-वि-परि-णाम धर्मवाला है।' भिक्षुओ! वह जो शाश्वत-दृष्टि (=नित्यता-वाद) है, वह संस्कार है।

१ स्रोत आपन्न, सकृदागामी, अनागामी, अर्हत् फलमेंसे किसीको न प्राप्त पृथग्जन कहलाता है, और किसीको प्राप्त आर्य या सत्पुरुष।

वह संस्कार किस-निदान-वाला० है? भिक्षुओ! इस प्रकार भी जानने०। न रूपको आत्मा करके देखता, न वेदनाको०, न संज्ञा०, न संस्कार०, न विज्ञान०। न इस दृष्टिवाला होता है— 'वही आत्मा है, वही लोक है, वही पीछे जन्मता है; (वह) नित्य=ध्रुव=अ-वि-परिणाम-धर्मवाला है'। बल्कि इस दृष्टिवाला होता है—'न मैं था, न मेरे लिये था, न होऊँगा, न मेरे लिये होगा।'

"भिक्षुओ! जो वह उच्छेद-दृष्टि (=उच्छेद-वाद) है, वह संस्कार है। वह संस्कार किस-निदानवाला०। ०आस्रवोंका क्षय होता है। न रूपको आत्मा करके मानता है। न वेदनाको०। न संज्ञाको०। न संस्कारको०। न विज्ञानको०, न विज्ञानवान्‌को०, न आत्मामें विज्ञानको०, न विज्ञानमें आत्माको०। न इस दृष्टिवाला होता है—'वही आत्मा है, वही लोक है, वही पीछे जन्मता हूँ, नित्य=ध्रुव=अ-वि-परिणाम-धर्मवाला (हूँ)।' न इस दृष्टिवाला होता है—'न मैं था, न मेरे लिये था, न होऊँगा, न मेरे लिये होगा।' बल्कि कांक्षा=विचिकित्सा (=संशय) वाला होता है, सद्धर्ममें न निष्ठा रखनेवाला (होता) है।

"भिक्षुओ! जो यह कांक्षा=वि-चिकित्सा सद्धर्म में निष्ठा न रखना है, वह (भी) संस्कार है। वह संस्कार किस निदानवाला०। इस प्रकार वह संस्कार अ-नित्य० है। जो तृष्णा०। जो वेदना०। जो स्पर्श०। जो अविद्या०। भिक्षुओ! इस प्रकार जानने देखनेके अनन्तर (भी) आस्रवोंका क्षय होता है। × × ×

[1]तब भगवान् पारिलेयकमें इच्छानुसार विहारकर, जिधर श्रावस्ती थी, उधर चारिकाके लिये चल दिये। क्रमशः चारिका करते जहाँ श्रावस्ती थी, वहाँ गये। वहाँ भगवान् श्रावस्तीमें अनाथपिंडकके आराम जेतवनमें विहार करते थे। तब कौशाम्बीके उपासकोंने (विचारा)—

"यह अय्या (=भिक्षु) कौशाम्बीके भिक्षु, हमारे बड़े अनर्थ करने वाले हैं। इनसेही पीड़ित हो भगवान् चले गये। हाँ! तो अब हम अय्या कोशम्बक भिक्षुओंको न अभिवादन करें, न प्रत्युत्थान करें, न हाथ जोड़ना=सामीचीकर्म करें, न सत्कार करें, न गौरव करें, न मानें, न पूजें; आनेपर भी पिंड (=भिक्षा) न दें। इस प्रकार हम लोगों द्वारा अ-सत्कृत, अ-गुरुकृत, अ-मानित, अ-पूजित, असत्कार-वश चले जायँगे, या गृहस्थ बन जायँगे, या भगवान्‌को जाकर प्रसन्न करेंगे।" तब कौशाम्बी-वासी उपासक कौशाम्बी-वासी भिक्षुओंको न अभिवादन करते०। तब कौशाम्बी-वासी भिक्षुओंने कौशाम्बीके उपासकोंसे असत्कृत हो कहा—

"अच्छा आवुसो! हमलोग श्रावस्तीमें भगवान्‌के पास इस झगड़े (=अधिकरण) को शांत करें।" तब कौशाम्बी-वासी भिक्षु आसन समेटकर पात्र-चीवर ले जहाँ श्रावस्ती थी वहाँ गये।

आयुष्मान् सारिपुत्रने सुना—"वह भंडन-कारक=कलह-कारक=विवाद-कारक, भस्स(=भष)कारक, संघमें अधिकरण(=झगड़ा)कारक कौशाम्बी-वासी भिक्षु

---

१. महावग्ग १०।

श्रावस्ती आ रहे हैं।" तब आयुष्मान् सारिपुत्र जहाँ भगवान् थे, वहां गये। जाकर भगवान्को अभिवादनकर एक ओर बैठ गये। एक ओर बैठे हुये आयुष्मान् सारिपुत्रने भगवान्से कहा—"भन्ते! वह भंडन-कारक० कौशाम्बी-वासी भिक्षु श्रावस्ती आ रहे हैं, उन भिक्षुओंके साथ मैं कैसे वर्तूं ?"

"सारिपुत्र! तो तू धर्मके अनुसार वर्ते।"

"भन्ते! मैं धर्म या अधर्म कैसे जानूँ?"

"सारि-पुत्र! अठारह बातों (=वस्तु) से अ-धर्मवादी जानना चाहिये। 'सारि-पुत्र! भिक्षु (१) अ-धर्मको धर्म (=सूत्र) कहता है। (२) धर्मको अ-धर्म कहता है। (२) अ-विनय को विनय कहता है। (४) विनयको अ-विनय कहता है। (५) तथागत-द्वारा अ-भाषित=अ-लपितको, तथागत-द्वारा भाषित=लपित कहता है। (६) ०भाषित=लपितको, ०अ-भाषित =अ-लपित कहता है। (७) तथागत-द्वारा अन्-आचरितको ०आचरित कहता है। (८) तथागत-द्वारा आचरितको ०अन्-आचरित कहता है। (९) तथागत-द्वारा अ-प्रज्ञप्त (=अ-विहित) को ०प्रज्ञप्त कहता है। (१०) ०प्रज्ञप्तको ०अ-प्रज्ञप्त०। (११) अन्-आपत्तिको आपत्ति (=दोष) कहता है। (१२) आपत्तिको अन्-आपत्ति कहता है। (१३) लघु (=छोटी)-आपत्तिको गुरु (=बड़ी)-आपत्ति कहता है। (१४) गुरु-आपत्तिको लघु-आपत्ति कहता है। (१५) स-अवशेष (=अ-पूर्ण) आपत्तिको अन्-अवशेष (=पूर्ण) आपत्ति कहता है। (१६) अन्-अवशेष आपत्तिको स-अवशेष आपत्ति कहता है। (१७) दुःस्थौल्य (=दुराचार) आपत्तिको, अ-दुःस्थौल्य आपत्ति कहता (=दीपेति= प्रकाशित करता है)। (१८) दुःस्थौल्य आपत्तिको अ-दुःस्थौल्य आपत्ति कहता है।

"अठारह वस्तुओंसे सारि-पुत्र धर्म-वादी जानना चाहिये।—

'सारिपुत्र! भिक्षु (१) अधर्मको अधर्म कहता है। (२) धर्मको धर्म०। (३) अ-विनय को अ-विनय०। (४) विनयको विनय०। (५) ०अ-भाषित=अ-लपित०। (६) ०भाषित =लपितको ०भाषित=लपित०। (७) ०अन्-आचरितको ०अन्-आचरित०। (८) ०आचरितको ०आचरित०। (९) ०अ-प्रज्ञप्तको ०अ-प्रज्ञप्त०। (१०) ०प्रज्ञप्तको ०प्रज्ञप्त०। (११) अन्-आपत्तिको अन्-आपत्ति०। (१२) आपत्तिको आपत्ति०। (१३) लघु-आपत्तिको लघु-आपत्ति०। (१४) गुरु-आपत्तिको गुरु-आपत्ति०। (१५) स-अवशेष आपत्तिको स-अवशेष आपत्ति०। (१६) अन्-अवशेष आपत्तिको अन्-अवशेष आपत्ति०। (१७) दुःस्थौल्य आपत्तिको दुःस्थौल्य आपत्ति०। (१८) अ-दुःस्थौल्य आपत्तिको अ-दुःस्थौल्य आपत्ति०।

आयुष्मान् महामौद्गल्यायनने सुना—'वह भंडनकारक ०।०।

आयुष्मान् महाकाश्यपने ०।० महाकात्यायनने सुना—:।० महाकोट्ठित (=कोट्ठिल) ने सुना—०।० महा कप्पिनने सुना—०।० महाचुन्द ०।० अनुरुद्ध ०।० रेवत ०।० उपाली ०।० आनन्द ०।० राहुल ०।

महाप्रजापती गौतमीने सुना—'वह भंडन-कारक०।' "भन्ते! मैं उन भिक्षुओंके साथ कैसे वर्तूं ?"

"गौतमी ! तू दोनों ओरका धर्म (=बात) सुन। दोनों ओरका धर्म सुनकर, जो भिक्षु धर्म-वादी हों, उनकी दृष्टि, शान्ति, रुचि, पसन्दकर। भिक्षुनी-संघको भिक्षु-संघसे जो कुछ अपेक्षा करना है, वह सब धर्मवादीसे ही अपेक्षा करना चाहिये।"

अनाथ-पिंडक गृह-पतिने सुना—'वह भंडनकारक०।' "भन्ते! मैं उन भिक्षुओंके साथ कैसे बर्तूं ?"

"गृहपति! तू दोनों ओर दान दे। दोनों ओर दान देकर दोनों ओर धर्म सुन। दोनों ओर धर्म सुनकर, जो भिक्षु धर्म-वादी हों, उनकी दृष्टि (=सिद्धान्त) क्षांति (=औचित्य), रुचिको ले, पसन्दकर।"

विशाखा मृगार-माताने सुना—जो वह०। "भन्ते! मैं उन भिक्षुओंके साथ कैसे बर्तूं ?"

"विशाखा! तू दोनों ओर दान दे०। ०रुचिको ले पसन्दकर।"

तब कौशाम्बी-वासी भिक्षु क्रमशः जहां श्रावस्ती थी, वहां पहुँचे। तब आयुष्मान् सारिपुत्रने जहां भगवान् थे, वहां जा० "भन्ते! वह भंडनकारक० कौशाम्बी-वासी भिक्षु श्रावस्ती आ गये। भन्ते! उन भिक्षुओंको आसन आदि कैसे देना चाहिये ?"

"सारिपुत्र! अलग आसन देना चाहिये।"

"भन्ते! यदि अलग न हो, तो कैसे करना चाहिये ?"

"सारिपुत्र! तो अलग बनाकर देना चाहिये। परन्तु सारि-पुत्र! वृद्धतर भिक्षुका आसन हटाने (के लिये) मैं किसी प्रकार भी नहीं कहता। जो हटाये उसको 'दुष्कृति' की आपत्ति।

"भन्ते! आमिष (=भोजन आदि)के (विषयमें) कैसे करना चाहिये ?"

"सारिपुत्र! आमिष सबको समान बांटना चाहिये।"

तब धर्म और विनयकी प्रत्यवेक्षा (=मिलान, खोज) करते उस उत्क्षिप्त भिक्षुको (विचार) हुआ—'यह आपत्ति (=दोष) है, अन्-आपत्ति नहीं है। मैं आपन्न (=आपत्ति-युक्त) हूं, अन्-आपन्न नहीं हूं। मैं उत्क्षिप्त (='उत्क्षेपण' दंडसे दंडित) हूं, अन्-उत्क्षिप्त नहीं हूं। अ-कोप्य=स्थानार्ह=धार्मिक कर्म (=न्याय)से मैं उत्क्षिप्त हूं।' तब वह उत्क्षिप्त भिक्षु (अपने)···अनुयायियोंके पास गया,····बोला—'यह आपत्ति है आवुसो! आओ आयुष्मानो मुझे मिला दो।०। तब वह उत्क्षिप्त-अनुयायी भिक्षु उत्क्षिप्त भिक्षुको लेकर जहां भगवान् थे, वहां गये, जाकर भगवान्को अभिवादनकर एक ओर बैठ गये। एक ओर बैठकर उन भिक्षुओंने भगवान्से यह कहा—

"भन्ते! यह उत्क्षिप्तक भिक्षु कहता है—'आवुसो! यह आपत्ति है अन्-आपत्ति नहीं०, आओ आयुष्मानों मुझे (संघमें) मिला दो।' भन्ते! तो कैसे करना चाहिये ?"

"भिक्षुओ! यह आपत्ति है, अन्-आपत्ति नहीं। यह भिक्षु, आपन्न है, अन्-आपन्न नहीं है। उत्क्षिप्त है अन्-उत्क्षिप्त नहीं है। अ-कोप्य=स्थानार्ह=धार्मिक कर्मसे उत्क्षिप्त

है। भिक्षुओ ! चूँकि यह भिक्षु आपन्न है, उत्क्षिप्त है, और (आपत्ति=दोष) देखता है; अतः इस भिक्षुको मिलालो ।"

तब उत्क्षिप्त के अनुयायी भिक्षुओंने उस उत्क्षिप्त भिक्षुको मिलाकर (=ओसारणकर), जहां उत्क्षेपक भिक्षु थे, वहां गये। जाकर उत्क्षेपक भिक्षुओंको कहा—

"आवुसो ! जिस वस्तु (=बात)में संघका भंडन=कलह, विग्रह, विवाद हुआ था, संघ-(फूट) भेद=संघराजी=संघ-व्यवस्थान=संघ-नानाकरण हुआ था। सो (उस विषयमें) यह भिक्षु आपन्न है, उत्क्षिप्त है, अव-सारित (=मिला लिया गया) है। हां तो ! आवुसो ! हम इस वस्तु (=मामला, बात)के उप-शमन (=फैसला, मिटाना)के लिये संघकी सामग्री (=मेल) करें।"

तब वह उत्क्षेपक (=अलग करनेवाले) भिक्षु जहां भगवान् थे,···जाकर भगवान्को अभिवादनकर···एक ओर बैठ···भगवान्को बोले—

"भन्ते ! वह उत्क्षिप्त-अनुयायी भिक्षु ऐसा कहते हैं—'आवुसो ! जिस वस्तुमें० संघकी सामग्री करें।' भन्ते ! कैसे करना चाहिये ?"

"भिक्षुओ ! चूँकि वह भिक्षु आपन्न, उत्क्षिप्त, पश्यी (=दर्शी=आपत्ति देखने माननेवाला) और अव-सारित है। इसलिये भिक्षुओ ! उस वस्तुके उप-शमनके लिये संघ संघकी सामग्री करें। और वह इस प्रकार करनी चाहिये—रोगी निरोग सभीको एक जगह जमा होना चाहिये, किसीको (बदला) भेजकर, छन्द (=वोट) न देना चाहिये। जमा होकर, योग्य, समर्थ भिक्षु-द्वारा संघ ज्ञापित (=सूचित=संबोधित) होना चाहिये— 'भन्ते ! संघ मुझे सुने। जिस वस्तुमें संघमें भंडन, कलह, विग्रह, विवाद० हुआ था; सो (उस विषयमें) यह भिक्षु आपन्न है, उत्क्षिप्त, (है) पश्यी, अव-सारित है। यदि संघ उचित (=पत्तकल्ल) समझे, तो संघ उस वस्तुके उपशमके लिये संघ-सामग्री करें। यह ज्ञप्ति (=सूचना) है।

'भन्ते ! संघ मुझे सुने—जिस वस्तुमें० अवसारित है। संघ उस वस्तुके उपशमनके लिये संघ-सामग्री कररहा है। जिस आयुष्मान्को उस वस्तुके उपशमनके लिये संघ-सामग्री करना, पसन्द है, वह चुप रहे; जिसको नहीं पसन्द है, वह बोले। दूसरी बार भी०। तीसरी बार भी०। संघने उस वस्तुके उपशमनके लिये संघ-सामग्री (=फूटे संघको एक करना) की; संघ-राजी=० संघ-भेद निहत (=नष्ट) हो गया। 'संघको पसन्द है, इसलिये चुप है'—यह मैं समझता हूं।···"

× × × ×

(३)

महावीर-शिष्य असिबंधकके प्रश्न । कुल-नाशकेकारण । पिंड-सुत । (वि० पू० ४६१) ।

[1]ग्यारहवाँ (वर्षा) नाला ब्राह्मण-ग्राममें ।

असिबंधक-पुत्त सुत्त ।

× × ×

[2](ऐसा मैंने सुना)—एक समय कोसलमें चारिका चरते हुये वड़े भारी भिक्षु-संघके साथ भगवान् जहाँ नालन्दा है, वहाँ पहुँचे । वहाँ भगवान् नालन्दामें प्रावारिक (सेठ)के आमके बागमें विहार करते थे । उस समय नालन्दा दुर्भिक्ष (=भिक्षा पाना कठिन जहाँ हो), दो ईतियों (=अकाल और महामारी)से युक्त, और श्वेत-हड्डियोंवाली, 'सलाकावुत्ता' (=फल रहित खूंटी हो गई खेती जहाँ हो) थी । उस समय वड़ी भारी निगंठों (=जैन-साधुओं)की परिषद् (=जमात)के साथ निगंठ [3]नाटपुत्त (=महावीर) नालन्दा में (ही) वास करते थे । तब निगंठोंका शिष्य (=जैन) असि-बन्धक-पुत्र ग्रामणी जहाँ निगंठ नाट-पुत्त (=ज्ञातृ-पुत्र) थे, वहाँ गया । जाकर निगंठ नाट-पुत्तको अभिवादनकर एक ओर बैठ गया । एक ओर बैठे असि-बन्धक-पुत्र ग्रामणीको निगंठ नाट-पुत्तने यह कहा—

"आ ग्रामणी ! श्रमण गौतमसे वाद (=शास्त्रार्थ) कर, इस प्रकार तेरा सुन्दर कीर्ति-शब्द फैल जायेगा । (लोग कहेंगे)—'असिबन्धकपुत ग्रामणीने इतने वड़े ऋद्धिवाले, इतने महाप्रतापवाले श्रमण गौतमसे वाद किया ।"

"भन्ते ! मैं इतने वड़े ऋद्धिवाले, इतने महाप्रतापी श्रमण गौतमसे कैसे वाद रोपूँगा ?"

"ग्रामणी ! आ जहाँ श्रमण गौतम है, वहाँ जा । जाकर श्रमण गौतमसे ऐसे कह— 'भन्ते ! भगवान् तो अनेक प्रकारसे कुलोंकी, उन्नति बखानते हैं, अनुरक्षा बखानते हैं, अनुकम्पा (=दया) बखानते हैं ?' यदि ग्रामणी ! श्रमण गौतम ऐसा पूछे जानेपर, इस प्रकार उत्तर दे—'ऐसा ही ग्रामणी ! तथागत अनेक प्रकारसे कुलोंकी०' । तो तू इस प्रकार कहना— 'तो क्यों भन्ते ! भगवान् महान् भिक्षु-संघके साथ, दुर्भिक्ष, दो ईतियोंसे युक्त, श्वेत हड्डियाँ पूर्ण, जमते सूखे खेतोंवाले (प्रदेश) में चारिका करते हैं ? (क्या) भगवान् कुलोंको सतानेके लिये हुये हैं ? (क्या) भगवान् कुलोंके उप-घातके लिये हुये हैं ।' ग्रामणी ! इस प्रकार दोनों ओरसे प्रश्न पूछनेपर श्रमण गौतम न उगलना चाहेगा, न निगलना चाहेगा ।"

---

१. अं० नि० अ० क० २:४:९ । २. सं० नि० ४०:१:९ । ३. नाट-पुत्त = ज्ञातृ-पुत्र । ज्ञातृ लिच्छवियोंकी एक शाखा थी; जो वैशालीके आसपास रहती थी । ज्ञातृसे ही वर्तमान जथरिया शब्द बना है । महावीर और जथरिया दोनोंका गोत्र काश्यप है । आज भी जथरिया भूमिहार ब्राह्मण इस प्रदेशमें बहुत संख्यामें है । उनका निवास रत्ती पर्गना भी ज्ञातृ = नत्ती = लत्ती = रत्तीसे बना है ।

निगंठ नाट-पुत्तको 'अच्छा भन्ते !' कह असि-बन्धक-पुत्र ग्रामणी, आसनसे उठ, निगंठ नाट-पुत्तको अभिवादनकर, प्रदक्षिणाकर जहाँ भगवान् थे, वहाँ गया । जाकर भगवान्को अभिवादनकर एक ओर बैठ गया । एक ओर बैठे हुये असि-बन्धक-पुत्र ग्रामणीने भगवान्से कहा—

" क्या भन्ते ! भगवान् तो अनेक० ?"

" ऐसा ही ग्रामणी ! तथागत० ।"

" तो क्यों भन्ते ! भगवान्० ?"

" ग्रामणी ! आजसे एकानवे कल्प (पूर्व तक), जिसे मैं स्मरण करता हूँ, एक कुलको भी नहीं जानता, जो पकी भिक्षाको देने मात्रसे उप-हत (=नष्ट) हो गया हो । बल्कि जो वह कुल आढ्य, महाधन-सम्पन्न, महाभोग-सम्पन्न, बहुत-सोना-चाँदी-युक्त, बहुत-वस्तु-उपकरण-युक्त, बहुत-धन-धान्य-युक्त हैं, वह सभी दानसे हुये, सत्यसे हुये, श्रामण्य (=श्रमण होने) से हुये हैं । ग्रामणी ! कुलोंके उपघातके आठ हेतु आठ प्रत्यय (=कार्य) होते हैं । (१) राजा द्वारा उप-घातको प्राप्त होते हैं । (२) या चोरसे० । (३) या आगसे० । (४) या उदक (=पानी) से० । (५) या गड़ा रक्खा (अपने) स्थानसे चला जाता है । (६) या अच्छी तौर न की हुई खेती नष्ट हो जाती है । (७) या कुलमें कुल-अंगार पैद होता है, वह उनभोगोंको उड़ाता, चौपट करता, विध्वंस करता है । (८) आठवीं (सभी वस्तुओंकी) अनित्यता है । ग्रामणी ! यह आठ हेतु, आठ प्रत्यय कुलोंके उप-घातके लिये हैं । इन आठ हेतुओं आठ प्रत्ययोंके होते भी जो मुझे यह कहे—'भगवान् कुलोंके उच्छेदके लिये हुये हैं० ।' ग्रामणी ! (वह) इस बातको बिना छोड़े, इस विचारको बिना छोड़े, इस दृष्टि (=धारणा) को बिना परित्याग किये, ले जाते (=मरते) ही नर्कमें जायगा ।' ऐसा कहनेपर असि-बन्धक-पुत्र ग्रामणीने भगवान्से कहा—

" आश्चर्य ! भन्ते !! आश्चर्य ! भन्ते !! जैसे० । आजसे भगवान् मुझे सांजलि शरणागत उपासक धारण करें ।"

(निगंठ)-सुत्त ।

[1]ऐसा मैंने सुना—एक समय भगवान् नालन्दामें प्रवारिकके आम्रवनमें विहार करते थे ।

तब निगंठोंका शिष्य असि-बन्धक-पुत्र ग्रमणी जहाँ भगवान् थे, वहाँ गया । जाकर एक ओर बैठ गया । एक ओर बैठे असि-बन्धक-पुत्र ग्रामणीसे भगवान्ने यह कहा—

" ग्रामणी ! निगंठ नाट-पुत्त श्रावकों (=शिष्यों) को क्या धर्म उपदेश करते हैं ?"

" भन्ते ! निगंठ नाट-पुत्त श्रावकोंको यह धर्म उपदेश करते हैं कि—जो कोई प्राणोंको मारता (=अतिपात) है, वह सभी दुर्गति, नर्कको जाता है । जो कोई बिना दियेको (चोरी) लेता है, वह सभी० । ०काममें मिथ्याचार (=निषिद्ध स्त्री-प्रसंग) करता है० । जो कोई झूठ बोलता है० । जो जैसे बहुत करके विहरता है, वह उसीसे ले जाया जाता है ।' भन्ते ! निगंठ नाट-पुत्त श्रावकोंको इस प्रकारसे धर्म उपदेश करते हैं ।"

---

१. सं. नि. ४०:१:८ ।

"ग्रामणी ! जो (जैसे) बहुत करके विहरता है, वह उसीसे ले जाया जाता है? ऐसा होनेपर (निगंठ नाट-पुत्तके वचनानुसार) कोई भी दुर्गति-गामी=नरक-गामी न होगा। तो क्या मानते हो ग्रामणी ! जो वह पुरुष रात या दिनमें, समय अ-समयमें प्राण-हिंसा करता है, उसका कौनसा समय अधिकतर होता है, जब वह प्राणीको मारता है या जब वह प्राणीको नहीं मारता ?"

"भन्ते ! पुरुष रात या दिन समय अ-समय प्राण-हिंसा करता है; (उसमें) वही समय अल्प-तर है; जब कि वह प्राण-हिंसा करता है। और वही समय अधिकतर है, जब कि वह प्राण-हिंसा नहीं करता।"

"ग्रामणी जो जैसे बहुत करके विहार करता है, उसीसे वह (नरक) ले जाया जाता है'—ऐसा होनेपर, निगंठ नाट-पुत्तके वचनानुसार कोई भी दुर्गति-गामी नरक-गामी न होगा। तो क्या मानते हो ग्रामणी ! जो पुरुष रात या दिन समय अ-समय चोरी करता है, उसका कौनसा समय अधिकतर होता है, जब कि वह चोरी करता है, या जब कि वह चोरी नहीं करता ?"

"भन्ते ! जब वह पुरुष रात या दिन समय अ-समय चोरी करता है, (उसमें) वही समय अल्पतर है, जब कि वह चोरी करता है (और) वही समय अधिकतर है जब कि वह चोरी नहीं करता।"

"ग्रामणी ! 'जो बहुत०।' ऐसा होनेपर तो, निगंठ नाट-पुत्तके वचनानुसार कोई भी दुर्गति-गामी नरक-गामी न होगा। तो क्या मानते हो, ग्रामणी ! ०काम-मिथ्याचार०। ०मृषा-वाद०। ग्रामणी ! कोई कोई प्राणी ऐसी धारणा=दृष्टि (=वाद) वाला होता है—'जो कोई प्राण मारता है, वह सभी अपाय-गामी नरक-गामी होता है; ०चोरी०; ०काम-मिथ्याचार०; ०मृषा-वाद०।' ऐसे शास्ता (=गुरु) में ग्रामणी ! श्रावक (=शिष्य) श्रद्धावान् होता है। उसको ऐसा होता है—मेरे शास्ताका यह वाद=यह दृष्टि है—'जो कोई प्राण मारता है; वह अपाय-गामी निरय-गामी होता है।' 'मैंने प्राणोंको मारा है, (अतः) मैं अपायगामी निरय-गामी हूँ'; इस दृष्टि (=धारणा) को पाता है। ग्रामणी ! इस वचनको बिना छोड़े इस विचारको बिना छोड़े, इस दृष्टिको बिना परित्याग किये, ले जाते (मरते) वह निरयमें (पड़ेगा)। ०मेरा शास्ता० चोरी०। ०काम-मिथ्याचार०। ०मृषा-वाद०।

"यहाँ ग्रामणी ! 'अर्हत्, सम्यक्-संबुद्ध, विद्या-आचरण-संपन्न, सुगत, लोक-विद्, अनुत्तर पुरुष-दम्य-सारथी, देव-मनुष्योंके शास्ता (=उपदेशक), बुद्ध भगवान्' तथागत लोकमें उत्पन्न होते हैं। वह अनेक प्रकारसे प्राण-हिंसाकी निन्दा=विगर्हणा करते हैं। 'प्राण-हिंसा विरत होओ'—कहते हैं। वह अनेक प्रकारसे चोरी०। ०काम-मिथ्याचार०। ०मृषावाद०। ऐसे शास्तामें ग्रामणी ! (जब) श्रावक श्रद्धालु होता है। वह इस प्रकार विचारता है—भगवा- अनेक प्रकारसे प्राण-हिंसाकी निन्दा=विगर्हणा करते हैं, 'प्राण-हिंसा विरत होओ' कहते हैं। मैंने भी जितनी तितनी प्राण-हिंसाकी है। सो अच्छा नहीं, ठीक नहीं। मैं भी उसके प- संताप करता हूँ—'काश ! यदि मैंने उस पाप-कर्मको न किया होता।' वह इस प्रक

विचारकर, उस प्राण-हिंसाको छोड़ता है, आगेके लिये प्राण-हिंसासे विरत होता है । इस प्रकार इस पापकर्मका परित्याग करता है, इस प्रकार इस पापकर्मसे हटता है । ०भगवान् अनेक प्रकारसे चोरी० । ०काम-मिथ्याचार० । ०मृषावाद ।

" (फिर) वह प्राण-अतिपात (=प्राण-हिंसा) छोड़, प्राण-अतिपातसे विरत होता है ।० अदत्त-आदान (=चोरी) छोड़० । ०काम-मिथ्याचार० । ०मृषा-वाद० । ०पिशुन-वचन (=चुगली० । ०परुष-वचन (=कठोर-वचन)० । ०सं-प्र-प्रलाप (=संफप्पलाप=बकवाद) ०अभिध्या (=लोभ) को छोड़ अन्-अभिध्यालु (=अलोभी)० । ०व्यापाद (=द्रोह) छोड़, अ-व्यापन्न-चित्त (=अ-द्रोह-चित्त)० । मिथ्या-दृष्टि (=झूठी धारणा) छोड़, सम्यग्-दृष्टि (=सच्ची धारणावाला) होता है । सो ग्रामणी! वह आर्य-श्रावक (=सच्ची धारणावाला शिष्य) इस प्रकार अभिध्या-रहित, व्यापाद-रहित, संमोह-रहित जानकर, सुननेवाला हो, मित्र-भाव-युक्त-चित्तसे एक दिशाको पूर्णकर विहार करता है । ०दूसरी दिशा० । ०तीसरी दिशा० । ०चौथी दिशा० । इस प्रकार ऊपर नीचे, आड़े बेंड़े सबका विचार करनेवाला, सबके अर्थ; विपुल, महान्, प्रमाण-रहित, वैर-रहित, व्यापाद-रहित, मित्रता-भाव-युक्त चित्तसे सभी लोकको पूर्णकर विहार करता है । जैसे ग्रामणी! बलवान् शंख बजानेवाला थोड़ी ही मेहनतसे चारों दिशाओंको (शब्द) सूचितकर देता है; इस प्रकार ग्रामणी! इस प्रकार भावनाकी गई —मैत्रीभावना,=इस प्रकार बढ़ाई चित्त-विमुक्ति," जिस प्रमाणमें कीजाये, वहीं अव-शिष्ट (=खतम) नहीं होती; वह वहीं अव-शिष्ट नहीं होती ।

" ग्रामणी! वह आर्य-श्रावक इस प्रकार लोभ-रहित, द्रोह-रहित, मोह-रहित, जानकर सुननेवाला एक दिशाको करुणा-युक्त चित्तसे पूर्णकर विहार करता है । ०दूसरी दिशा० । ०तीसरी दिशा० । ०चौथी दिशा० ।०। ० मुदिता-युक्त चित्तसे० । " ० उपेक्षा-सहित चित्तसे० । "

(भगवान्के) ऐसा कहनेपर असि-बन्धक-पुत्र ग्रामणीने भगवान्से कहा—" आश्चर्य !! भन्ते ! आश्चर्य !! भन्ते !! ०उपासक धारण करें । "

पिंड-सुत्त ।

[१](ऐसा मैंने सुना)—एक समय भगवान् मगधमें पंच-शाला ब्राह्मण-ग्राममें विहार करते थे ।

उस समय पंच-शाला ब्राह्मण-ग्राममें कुमारियोंका त्योहार था । तब भगवान्ने पूर्वाह्ण समय पहिनकर पात्र-चीवर ले पंच-शाला ब्राह्मण-ग्राममें प्रवेश किया । उस समय पंच-शालाके ब्राह्मण गृहस्थ, मारके आवेशमें थे—' (जिसमें) श्रमण गौतम पिंड न पावे । ' भगवान् जैसे पात्र लिये पंचशाला ब्राह्मण-ग्राममें प्रविष्ट हुए थे, वैसे ही धुले पात्रके साथ निकल आये । तब मार पापी जहाँ भगवान् थे, वहाँ गया, जाकर भगवान्से बोला —

" श्रमण ! क्या तुम्हें पिंड नहीं मिला ? "

" पापी ! वैसा ही तो तूने किया; जिसमें पिंड न पाउँ । "

१ सं. नि. ४:२:८ ।

"भन्ते ! भगवान् दूसरीबार पंचशाला ब्राह्मण-ग्राममें प्रवेश करें, मैं वैसा करूँगा, जिसमें भगवान् पिंड पावें ।"

"मारने तथागतसे लगलगा अ-पुण्य (=पाप) कमाया ।
पापी ! क्या तू समझता है कि, तुझे पाप न लगेगा ॥"
अहो ! सुखसे हम जीते हैं, जिन हमारे (लोगोंके) पास कुछ नहीं है ।
[1]आभास्वर देवताओंकी भांति हम प्रीति-रूपी भोजनके खानेवाले हैं ।"

तब मार पापी—"भगवान् मुझे पहिचानते हैं, सुगत मुझे पहिचानते हैं"—(कह) वहीं अन्तर्ध्यान होगया ।

मागंदिय-संवाद (वि० पृ० ४६०) ।

[1]एक समय भगवान्‌ने ···कुरु देशमें कल्माष-दम्य (=कम्मास-दम्म)—निगम (=कस्बा)-निवासी मागन्दीय ब्राह्मणका स्त्री-सहित अर्हत्-पद-प्राप्तिका भविष्य देख,···वहां जाकर, कल्माष-दम्यके पास किसी वन-खण्डमें बैठ (अपना) सुवर्ण-प्रभास प्रकट किया। मागन्दीय भी उस समय वहां मुंह धोनेके लिये जा, सुवर्ण-तेज देख—'यह क्या है।' इधर उधर देखते, भगवान्‌को देख सन्तुष्ट हुआ। उसकी कन्या सुवर्ण-वर्णा थी। उस (कन्या) को बहुतसे क्षत्रिय-कुमार आदि चाहते हुये भी न पा सके थे। ब्राह्मणका ख्याल था—'(किसी) सुवर्ण-वर्ण श्रमणको ही दूंगा। उसने भगवान्‌को देखकर—'यह मेरी कन्याके समान वर्णका है, इसीको उसे दूँगा' निश्चय किया। इसलिये देखते ही सन्तुष्ट हो गया।

उसने वेगसे घर जाकर ब्राह्मणीको कहा—

"भवती (=आप) ! भवती ! मैंने बेटीके समान-वर्णका पुरुष देख लिया। बेटीको अलंकृत करो, इसे उसको दिखाऊँगा।"

ब्राह्मणीके लड़कीको सुगंधित जलसे नहला वस्त्र, पुष्प, अलंकारसे अलंकृत करते करते ही, भगवान्‌की भिक्षाचारकी वेला आगई। तब भगवान् कम्मास-दम्ममें पिंडके लिये प्रविष्ट हुये। वह दोनों भी कन्याको ले भगवान्‌के बैठनेकी जगह पर पहुँचे। भगवान्‌को वहां न देख, ब्राह्मणीने इधर उधर ताकते, भगवान्‌के बैठनेके स्थानपर तृण-बिछा देखा।··· ब्राह्मणीने कहा—

"ब्राह्मण ! यह उसका तृण-संस्तर (=तृण-आसन) है ?" "हां, भवती !"

"तो ब्राह्मण ! हमारे आनेका काम पूरा न होगा।"

"भवती ! क्यों ?"

"ब्राह्मण ! देखो, तृण-संस्तर कामके जीतनेवाले पुरुषका होनेसे इधर-उधर नहीं हुआ है।"

"मत भवती ! मंगल खोजते समय अमंगल (की बात) कहो।"

फिर ब्राह्मणीने इधर उधर विचरकर भगवान्‌के पद-चिन्हको देखकर कहा—"देखो ब्राह्मण ! पद-चिन्ह; यह सत्त्व (=जीव) काममें लिप्त नहीं है।"

"भवती ! तुम कैसे जानती हो ?"

ऐसा कहने पर अपने ज्ञान-बलको दिखलाती हुई बोली—"राग-युक्तका पद उकड़ूं होता है, द्वेष-युक्तका पद निकला हुआ होता है। मोह-युक्तका सहसा दबा होता है, मल-रहितका पद ऐसा होता है।"

उनकी यह कथा हो (ही) रही थी, कि भगवान् भिक्षा-समाप्त कर उस वन-खंडमें आगये। ब्राह्मणीने सुन्दर लक्षणोंसे युक्त···भगवान्‌के रूपको देखकर, ब्राह्मणको कहा—

---

१. सुत्तनिपात अ. क. ४ : ९।

" जो सम अधिक या न्यून समझता है, वह विवाद करता है ।

तीनों भेदोंमें (जो) अचल है, (उसके लिये) सम, विशेष (और न्यून) नहीं होता ॥ (६)

" हे ब्राह्मण ! 'सत्य है' यह किसे कहे, 'झूठ है' यह किससे विवाद करे ।

जिसमें सम विषम नहीं है, वह किसके साथ वाद करै ॥ (७)

" आवास छोड़ जो विना निकेत (=घर) का विचरता है, ग्राममें जो संसर्ग नहीं करता ।

(जो) कामसे शून्य (अपने लिये) भविष्यको न बनाने वाला है । (वह मुनि) लोगसे विग्रहकी कथा नहीं कहता ॥ (८)

जिन (दृष्टियों) से अलग हो लोकमें विचरण करे नाग (=मुनि) उन्हें सीखकर विवाद न करै ।

जैसे जलसे उत्पन्न कंटक और कमल, जल और पंकसे लिप्त नहीं होते ।

इस प्रकार शांति-वादी लोभ-रहित मुनि, काम और लोकमें अ-लिप्त (होता है) ॥ (९)

दृष्टि और मतिसे वेद (-पार-)ग नहीं होता, तृष्णादि-परायग (जन) (शांति-वादीके) समान नहीं होता ।

कर्म और श्रुतिसे भी नहीं (मुक्ति-पद्को) ले जाया जा सकता, वह (तो) (तृष्णा आदि) निवेशनोंमें अ-प्राप्त है ॥ (१०)

संज्ञासे विरक्तको ग्रंथि नहीं होती, प्रज्ञा द्वारा विमुक्त हुयेको मोह नहीं ।

संज्ञा और दृष्टिको जिन्होंने ग्रहण किया है । वह लोकमें धक्का पाते चलते हैं ॥ (११)

—

रखकर बैठता है। वह स्मरण रखते सांस छोड़ता है, स्मरण रखते ही साँस लेता है। लम्बी सांस छोड़ते वक्त 'लम्बी सांस छोड़ता हूँ' जानता है, लम्बी सांस लेते वक्त 'लम्बी सांस लेता हूं' जानता है। छोटी सांस छोड़ते, 'छोटी सांस छोड़ता हूँ' जानता है। छोटी सांस लेते 'छोटी सांस लेता हूँ' जानता है। सारी कायाको जानते (=अनुभव करते) हुये, सांस छोड़ना सीखता है। सारी कायाको जानते हुये सांस लेना सीखता है। कायाके संस्कारको शांत करते सांस छोड़ना सीखता है। कायाके संस्कारको शांत करते सांस लेना सीखता है। जैसे कि—भिक्षुओ! एक चतुर खरादकार (=भ्रमकार) या खरादकारका अन्तेवासी लम्बे (काष्ट)को रंगते समय 'लम्बा रंगता हूं' जानता है। छोटेको रंगते समय 'छोटा रंगता हूं' जानता है। ऐसेही भिक्षुओ! भिक्षु लम्बी सांस छोड़ते०, लम्बी सांस लेते०, छोटी सांस छोड़ते०, छोटी सांस लेते० जानता है। सारी कायाको जानते (=अनुभव करते) हुये सांस छोड़ना सीखता है, ०सांस लेना। काय-संस्कारको शांत करते सांस छोड़ना सीखता है;० सांस लेना०। इस प्रकार कायाके भीतरी भागमें कायानुपश्यी हो विहरता है, कायाके बाहरी भागमें०। कायाके भीतरी और बाहरी भागमें कायानुपश्यी विहरता है। कायामें समुदय (=उत्पत्ति) धर्मको देखता विहरता है। कायामें व्यय (=खर्च, विनाश) धर्मको देखता विहरता है। कायामें समुदय-व्यय (=उत्पत्ति-विनाश) धर्मको देखता विहरता है। 'काया है' यह स्मृति, ज्ञान और स्मृतिके प्रमाणके लिये उपस्थित रहती है। (तृष्णा आदिमें) अ-लग्न हो विहरता है। लोकमें कुछ भी (मैं, और मेरा करके) नहीं ग्रहण करता। इस प्रकार भी भिक्षुओ! भिक्षु कायामें काय-बुद्धि रखते विहरता है।

[1]फिर भिक्षुओ! भिक्षु जाते हुये 'जाता हूँ' जानता है। बैठे हुये 'बैठा हूँ' जानता है। सोये हुये 'सोया हूँ' जानता है। जैसे जैसे उसकी काया अवस्थित होती है, वैसेही उसे जानता है। इसी प्रकार कायाके भीतरी भागमें कायानुपश्यी हो विहरता है; कायाके बाहरी भागमें कायानुपश्यी विहरता है। कायाके भीतरी और बाहरी भागोंमें कायानुपश्यी विहरता है। कायामें समुदय-(उत्पत्ति)-धर्म देखता विहरता है, ०व्यय-(=विनाश) धर्म०, ०समुदय-व्यय-धर्म०।०।

[2]और भिक्षुओ! भिक्षु गमन-आगमन जानते (=अनुभव करते) हुये करता है। आलोकन=विलोकन जानते हुये करता है। सिकोड़ना फैलाना० [3]संघाटी, पात्र, चीवरका धारण जानते हुये करता है। आसन, पान, खादन, आस्वादन, जानते हुये करता है। पाखाना (=उच्चार), पेशाब (=पस्साव), जानते हुये करता है। चलते, खड़े होते, बैठते, सोते, जागते, बोलते, चुप रहते, जानकर करनेवाला होता है। इस प्रकार कायाके भीतरी भागमें कायानुपश्यी हो विहरता है।०।

[4]और भिक्षुओ? भिक्षु पैरके तलवेसे ऊपर केश-मस्तकसे नीचे, इस कायाको नाना प्रकारके मलोंसे पूर्ण देखता (=अनुभव करता) है—इस कायामें हैं—केश, रोम, नख, दांत,

१. यही ईर्या-पथ है। २. यही संप्रजन्य हैं। ३. भिक्षुओंकी दोहरी चादर। ४. प्रति-कूल-मनसिकार।

करते 'दुःखवेदना अनुभवकर रहा हूँ' जानता है। अदुःख-असुख वेदनाको अनुभव करते 'अदुःख-असुख-वेदना अनुभवकर रहा हूँ' जानता है। स-आमिष (=भोग-पदार्थ-सहित) सुख-वेदनाको अनुभव करते०। निर्-आमिष सुख-वेदना०। स-आमिष दुःख-वेदना०। निर्-आमिष दुःख-वेदना०। स-आमिष अदुःख-असुख-वेदना०। निर्-आमिष अदुःख-असुख-वेदना०। इस प्रकार कायाके भीतरी भाग०।०।

"कैसे भिक्षुओ! भिक्षु चित्तमें [1]चित्तानुपश्यी हो विहरता है? यहाँ भिक्षुओ! भिक्षु स-राग चित्तको 'स-राग चित्त है' जानता है। विराग (=राग-रहित) चित्तको 'विराग चित्त है' जानता है। स-द्वेष चित्तको 'सद्वेष चित्त है' जानता है। वीत-द्वेष (=द्वेष-रहित) चित्तको 'वीत-द्वेष चित्त है' जानता है। स मोह चित्तको०। वीत-मोह चित्तको०। संक्षिप्त चित्तको०। विक्षिप्त चित्तको०। महद्-गत (=महापरिमाण) चित्तको०। अ-महद्गत चित्तको०। स-उत्तर०। अन्-उत्तर (=उत्तम)०। समाहित (=एकाग्र)०। अ-समाहित०। विमुक्त०। अ-विमुक्त०। इस प्रकार कायाके भीतरी भाग०।०।

"कैसे भिक्षुओ! भिक्षु धर्मोंमें [2]धर्मानुपश्यी हो विहरता है? भिक्षुओ! भिक्षु पाँच नीवरण धर्मोंमें धर्मानुपश्यी (हो) विहरता है। कैसे भिक्षुओ! भिक्षु पाँच [3]नीवरण धर्मोंमें धर्मानुपश्यी हो विहरता है? यहाँ भिक्षुओ! भिक्षु विद्यमान भीतरी काम-च्छन्द (=कामुकता)को 'मेरेमें भीतरी काम-च्छन्द विद्यमान है' जानता है। अ-विद्यमान भीतरी कामच्छन्दको 'मेरेमें भीतरी कामच्छन्द नहीं विद्यमान है'—जानता है। अन्-उत्पन्न कामच्छन्दकी जैसे उत्पत्ति होती है—उसे जानता है। जैसे उत्पन्न हुये कामच्छन्दका प्रहाण (=विनाश) होता है, उसे जानता है। जैसे विनष्ट कामच्छन्दकी आगे फिर उत्पत्ति नहीं होती, उसे जानता है। विद्यमान भीतरी व्यापाद (=द्रोह)को—'मेरेमें भीतरी व्यापाद विद्यमान है'—जानता है। अ-विद्यमान भीतरी व्यापादको—'मेरेमें भीतरी व्यापाद नहीं विद्यमान है'—जानता है। जैसे अन्-उत्पन्न व्यापाद उत्पन्न होता है, उसे जानता है। जैसे उत्पन्न व्यापाद नष्ट होता है, उसे जानता है। जैसे विनष्ट व्यापाद आगे फिर नहीं उत्पन्न होता, उसे जानता है। विद्यमान भीतरी स्त्यान-मृद्ध (=थीन-मिद्द=मनकी अलसता)०।०।

० भीतरी औद्धत्य-कौकृत्य (=उद्धच्च-कुक्कुच्च=उद्वेग-खेद,) ०।०।

० भीतरी विचिकित्सा (=संशय) ०।०।

"इस प्रकार भीतर धर्मोंमें धर्मानुपश्यी हो विहरता है। बाहर धर्मोंमें (भी) धर्मानुपश्यी हो विहरता है। भीतर-बाहर०। धर्मोंमें समुदय (=उत्पत्ति) धर्मका अनुपश्यी (=अनुभव करनेवाला) हो विहरता है।० व्यय (=विनाश)-धर्म०। ०उत्पत्ति-विनाश-धर्म०। स्मृतिके प्रमाणके लिये ही, 'धर्म है' यह स्मृति उसकी बराबर विद्यमान रहती है। वह (तृष्णा आदिमें) अ-लग्न हो विहरता है। लोकमें कुछ भी (मैं और मेरा) करके ग्रहण नहीं करता। इस प्रकार भिक्षुओ! भिक्षु धर्मोंमें धर्म-अनुपश्यी हो विहरता है।

---

१. (३) चित्तानुपश्यना। २. (४) धर्मानुपश्यना। ३. पाँच नीवरण— कामच्छन्द, व्यापाद, स्त्यानमृद्ध, औद्धत्य-कौकृत्य, विचिकित्सा।

अनुभव करता विहरता है । कैसे भिक्षुओ !० ? भिक्षुओ ! भिक्षु विद्यमान भीतरी (=अध्यात्म) स्मृति संबोधि-अङ्गको 'मेरे भीतर स्मृति संबोधि-अङ्ग है' अनुभव करता है । अ-विद्यमान भीतरी स्मृति संबोधि-अङ्गको 'मेरे भीतर स्मृति संबोधि-अङ्ग नहीं है' अनुभव करता है । जिस प्रकार अन्-उत्पन्न स्मृति संबोधि-अङ्गकी उत्पत्ति होती है, उसे जानता है । जिस प्रकार उत्पन्न स्मृति संबोधि अङ्गकी भावना परिपूर्ण होती है, उसे भी जानता है ।० भीतरी धर्म-विचय (=धर्म-अन्वेषण) संबोधि-अङ्ग० । ०वीर्य० । ०प्रीति० । ०प्रश्रब्धि० । ०समाधि० । विद्यमान भीतरी उपेक्षा संबोधि-अङ्गको 'मेरे भीतर उपेक्षा संबोधि अङ्ग है' अनुभव करता है । अ-विद्यमान भीतरी उपेक्षा संबोधि-अङ्गको 'मेरे भीतर उपेक्षा संबोधि-अङ्ग नहीं है' अनुभव करता है । जिस प्रकार अन्-उत्पन्न उपेक्षा संबोधि-अङ्गकी उत्पत्ति होती है, उसे जानता है । जिस प्रकार उत्पन्न उपेक्षा संबोधि-अङ्गकी भावना परिपूर्ण होती है, उसे जानता है । इस प्रकार शरीरके भीतरके धर्मोंमें धर्म अनुभव करता विहरता है; शरीरके बाहर०, शरीरके भीतर-बाहर०।० । इस प्रकार भिक्षुओ ! भिक्षु शरीरके भीतर और बाहर वाले सात संबोधि-अङ्ग धर्मोंमें धर्म अनुभव करता विहरता है ।

"और फिर भिक्षुओ ! भिक्षु चार [1]आर्य-सत्य धर्मोंमें धर्म अनुभव करते विहरता है । कैसे० ? भिक्षुओ ! 'यह दुःख है' ठीक ठीक (=यथाभूत = जैसा है वैसा) अनुभव करता है । 'यह दुःखका समुदय (=कारण) है' ठीक ठीक अनुभव करता है । 'यह दुःखका निरोध (=विनाश) है' ठीक ठीक अनुभव करता है । 'यह दुःखके निरोधकी ओर ले जाने वाला मार्ग (=दुःख-निरोध-गामिनी-प्रतिपद्) है' ठीक ठीक अनुभव करता है ।

"भिक्षुओ ! दुःख आर्य-सत्य क्या है ? जन्म भी दुःख है, जरा (=बुढ़ापा) भी दुःख है, व्याधिभी दुःख है, मरना भी दुःख है । शोक करना, रोना-पीटना, दुःख=दौर्मनस्य, उपायास(=परेशानी) भी दुःख हैं । जिस (वस्तु) को इच्छा करके नहीं पाता वह (न पाना) भी दुःख है । संक्षेपमें पाँच उपादान-स्कंध (=रूप, वेदना, संज्ञा, संस्कार, विज्ञान) (सभी) दुःख हैं । जन्म (=जाति) क्या है, भिक्षुओ ? जो उन उन सत्त्वों (=चित्त-धाराओं) का उन उन प्राणि-समुदायों (=योनियों) में जन्म=संजायन= अवक्रांति = अभि-निर्वृत्ति=स्कंधों (= रूप आदि पाँच) का प्रादुर्भाव=आयतनों (=चक्षुः आदि छः) का लाभ है । यह भिक्षुओ ! जन्म है ।

"भिक्षुओ ! जरा (=बुढ़ापा) क्या है ? जो उन उन सत्त्वोंका उन उन प्राणि-समुदायोंमें जरा=जीर्णता=दाँत-टूटना (=खांडित्य),=बाल-पकना=चमड़ेमें झुर्री पड़ना = आयुका खातमा = इन्द्रियोंका पक जाना, यह भिक्षुओ ! जरा कही जाती है ।

"क्या है भिक्षुओ ! मरण ? जो उन सत्वोंका उस प्राणि-निकाय (=योनि)से च्युत होना=च्यवन होना=भेद=अन्तर्ध्यान=मृत्यु=मरण = कालकरना=स्कंधों (=रूप आदि)की जुदाई=कलेवर (=शरीर)का फेंकना (=निक्षेप) । यह है भिक्षुओ ! मरण ।

प्रीति (=हर्ष), प्रश्रब्धि (=शांति), समाधि, उपेक्षा । संबोधि = बोधि (= परम ज्ञान) प्राप्त करनेमें यह परम सहायक हैं, इसलिये इन्हें बोधि-अङ्ग कहा जाता है । १. आर्य-सत्य चार हैं—दुःख, समुदय, निरोध, निरोध-गामिनी-प्रतिपद् ।

"क्या है भिक्षुओ ! शोक ? भिक्षुओ ! जो यह तिन तिन व्यसनोंसे युक्त, तिन तिन दुःख-धर्मोंसे लिप्त (पुरुष) का, शोक करना=शोचना=शोचित होना=भीतरी शोक=भीतरी परिशोक। यह है भिक्षुओ ! शोक।

"क्या है भिक्षुओ ! परिदेव ? भिक्षुओ ! जो यह तिन तिन व्यसनोंसे युक्त, तिन तिन दुःख-धर्मोंसे लिप्त (पुरुष)का आदेव (=रोना-पीटना)=परिदेव=आदेवन=परिदेवन=आदेवित होना=परिदेवित होना। यह है भिक्षुओ ! परिदेव।

"क्या है भिक्षुओ ! दुःख ? भिक्षुओ ! जो (यह) (=काय-सम्बन्धी) दुःख=कायिक अ-सात=कायके संयोगसे उत्पन्न दुःख=प्रतिकूल वेदना (=अ-सात वेदयित)। यही है भिक्षुओ ! दुःख।

"क्या है भिक्षुओ ! दौर्मनस्य ? जो यह भिक्षुओ ! मानसिक (=चेतसिक) दुःख=मानसिक प्रतिकूलता (=अ-सात)=मनके संयोगसे उत्पन्न दुःख=प्रतिकूल वेदना। यही है भिक्षुओ ! दौर्मनस्य।

"क्या है भिक्षुओ ! उपायास ? भिक्षुओ ! जो यह तिन तिन व्यसनोंसे युक्त, तिन तिन दुःख-धर्मोंसे लिप्त (पुरुष) का आयास=उपायास=आयासित होना=उपायासित होना (=परेशान होना)। यही है भिक्षुओ ! उपायास।

"क्या है भिक्षुओ ! 'जिसको इच्छा करके भी नहीं पाता वह भी दुःख है' ? 'जन्म-धर्मवाले सत्त्वों (=प्राणियों)को यह इच्छा होती है—'हा ! हम जन्म-धर्म-वाले न होते, और हमारा (दूसरा) जन्म न होता।' किंतु यह इच्छासे पाने लायक नहीं है। यह 'जिसको इच्छा करके भी नहीं पाता, यह भी दुःख है'।

"भिक्षुओ ! जरा-धर्म-वाले व्याधि-धर्म-वाले; मरण-धर्मवाले, शोक-परिदेव-दुःख-दौर्मनस्य-उपायास-धर्मवाले सत्त्वों (=प्राणियों) को यह इच्छा होती है—'काश ! कि हम शोक-परिदेव-दुःख-दौर्मनस्य-उपायास-धर्मवाले न होते, और शोक, परिदेव, दुःख, दौर्मनस्य, उपायास हमारे पास न आते'। किन्तु यह (केवल) इच्छासे मिलने को नहीं है। यह 'जिसको इच्छा करके भी नहीं पाता—यह भी दुःख है'।

"कौनसे भिक्षुओ ! 'संक्षेपमें पांच उपादान-स्कंध दुःख हैं' ? जैसे—रूप उपादान-स्कंध, वेदना उपादान-स्कंध, संज्ञा उपादान-स्कंध, संस्कार उपादान-स्कंध, विज्ञान उपादान-स्कंध। भिक्षुओ ! संक्षेपमें यह पांच उपादान-स्कंध दुःख कहे जाते हैं। इसे ही भिक्षुओ ! दुःख आर्य-सत्य कहते हैं।

"क्या है भिक्षुओ ! दुःख-समुदय आर्य सत्य ? जो यह आवागमन वाली (=पौनर्भविक) तृष्णा, नन्दि-राग (=सुख सम्बन्धी इच्छा)-संयुक्त, तहाँ तहाँ अभिनन्दन करनेवाली, जैसे कि—काम-(-उपभोगकी) तृष्णा, भव (=आवागमन)की तृष्णा, विभव-तृष्णा उत्पन्न होती है—वहाँ वहाँ घुसकर बैठती है। जो लोकमें प्रियरूप=सात-रूप है उत्पन्न होनेवाली होनेपर यह तृष्णा, वहाँ उत्पन्न होती है। घुसनेवाली होनेपर वहाँ घुसत है। लोकमें प्रिय-रूप=सात-रूप क्या है ? चक्षु (=आंख) लोकमें प्रियरूप

सात-रूप है। तृष्णा उत्पन्न होनेवाली होनेपर यहाँ उत्पन्न होती, घुसनेवाली होनेपर यहाँ घुसती है। और क्या लोकमें प्रिय-रूप=सात-रूप है? श्रोत्र०। ०घ्राण०। ०जिह्वा०। ०काया(=स्पर्श-इन्द्रिय)०। ०मन०। ०रूप०। ०शब्द०। ०गन्ध०। ०रस०। ०स्प्रष्टव्य (=ठण्डा आदि)०। ०धर्म (=मन का विषय)०। ०चक्षुका विज्ञान (=चक्षु और रूपके मिलनेसे जो रूप सम्बन्धी ज्ञान होता है, वह)०। ०श्रोत्रका विज्ञान०। ०घ्राणका विज्ञान०। ०जिह्वाका विज्ञान०। ०कायाका विज्ञान०। ०मनका विज्ञान०। ०चक्षुका संस्पर्श (=रूप और चक्षुका टकराना, छूना)०। ०श्रोत्र-संस्पर्श०। ०घ्राण-संस्पर्श०। ०जिह्वा-संस्पर्श०। ०काय-संस्पर्श०। ०मन-संस्पर्श०। ०चक्षु-संस्पर्शसे पैदा हुई वेदना (=रूप और चक्षुके एक साथ मिलनेके बाद चित्तमें जो दुःख, सुख आदि विकार उत्पन्न होता है)०। ०श्रोत्र-संस्पर्शसे उत्पन्न वेदना०। ०घ्राण-संस्पर्शसे उत्पन्न वेदना०। ०जिह्वा-संस्पर्शसे उत्पन्न वेदना०। ०काय-संस्पर्शसे उत्पन्न वेदना०। ०मन-संस्पर्शसे उत्पन्न वेदना०। ०रूप-संज्ञा (=चक्षु और रूपके एक साथ मिलनेपर अनुकूल प्रतिकूल वेदनाके बादही 'यह अमुक रूप है' ज्ञानको रूप-संज्ञा कहते हैं)०। ०शब्द-संज्ञा०। ०गंध-संज्ञा०। ०रस-संज्ञा०। ०स्प्रष्टव्य-संज्ञा०। ०धर्म-संज्ञा०। ०रूप-संचेतना-(रूप-ज्ञानके बाद रूपका चिन्तन करना जो होता है)०। ०शब्द-संचेतना०। ०गंध-संचेतना०। ०रस-संचेतना०। ०स्प्रष्टव्य-संचेतना०। ०धर्म-संचेतना०। ०रूप-तृष्णा (रूपके चिन्तनके बाद उसके लिये लोभ)०। ०शब्द-तृष्णा०। ०गंध-तृष्णा०। ०रस-तृष्णा०। ०स्प्रष्टव्य-तृष्णा०। ०धर्म-तृष्णा०। ०रूप-वितर्क (=रूप तृष्णाके बाद उसके विषयमें जो तर्क वितर्क होता है)०। ०शब्द-वितर्क०। ०गंध-वितर्क०। ०रस-वितर्क०। ०स्प्रष्टव्य-वितर्क०। ०धर्म-वितर्क०। ०रूपका विचार०। ०शब्द-विचार०। ०गंध-विचार०। ०रस-विचार०। ०स्प्रष्टव्य-विचार०। ०धर्म-विचार०। लोकमें यह (सब) प्रिय-रूप=सात-रूप है। तृष्णा उत्पन्न होनेवाली होनेपर यहीं उत्पन्न होती है, घुसने-वाली होनेपर यहीं घुसती है। भिक्षुओ! यह दुःख-समुदय आर्य-सत्य कहा जाता है।

"क्या है भिक्षुओ! दुःख-निरोध आर्य-सत्य? उसी तृष्णासे सर्वथा वैराग्य, (उसी तृष्णाका सर्वथा) निरोध=त्याग=प्रतिनिस्सर्ग=मुक्ति=अन्-आलय (=न घर पकड़ना)। भिक्षुओ! यह तृष्णा कहाँ छोड़ी जानेसे छूटती है—कहाँ निरोधकी जानेसे निरुद्ध होती है? लोकमें जो प्रिय-रूप=सात-रूप है, वहीं छोड़ी जानेपर यह तृष्णा छूटती है—वहीं निरोधकी जानेसे निरुद्ध होती है। क्या है फिर लोकमें प्रिय-रूप=सात-रूप? चक्षु लोकमें प्रिय-रूप=सात-रूप है०।०।०। धर्म-विचार लोकमें प्रिय-रूप=सात-रूप; यहाँ यह तृष्णा छोड़ी जानेपर छूटती है=यहीं निरोधकी जानेपर निरुद्ध होती है। भिक्षुओ! यह दुःख-निरोध आर्य-सत्य कहा जाता है।

"क्या है भिक्षुओ! दुःख-निरोध-गामिनी-प्रतिपद् (=दुख-विनाशकी ओर जानेवाला मार्ग)? यही (जो) आर्य (=श्रेष्ठ) अष्टांगिक-मार्ग (=आठ अंगोंवाला मार्ग); सम्यक् (=ठीक)-दृष्टि, सम्यक्-संकल्प, सम्यक्-वचन, सम्यक्-कर्मान्त, सम्यक्-आजीव, सम्यक्-व्यायाम, सम्यक्-स्मृति, सम्यक्-समाधि।

"क्या है भिक्षुओ ! सम्यक्-दृष्टि ? जो यह दुःख-विषयक ज्ञान, दुःख-समुदय-विषयक ज्ञान, दुःख-निरोध-विषयक ज्ञान, दुःख-निरोधकी-ओर-जानेवाली प्रतिपद्-विषयक ज्ञान । यही कही जाती है, भिक्षुओ ! सम्यक्-दृष्टि ।

"क्या है भिक्षुओ ! सम्यक्-संकल्प ? निष्कर्मता संबन्धी संकल्प, अ-व्यापाद (=अद्रोह) संबंधी संकल्प, अ-विहिंसा (=अ-हिंसा)-संकल्प, भिक्षुओ ! यह कहा जाता है, सम्यक् (=ठीक, अच्छा —संकल्प ।

"क्या है भिक्षुओ ! सम्यक्-वचन ? मृषावाद (=झूठ बोलना)से विरत होना (=छोड़ना) पिशुन (=चुगलीके)-वचन छोड़ना, परुष (=कड़ी)-वचन छोड़ना, सम्प्रलाप (=बकवाद) छोड़ना । यह है भिक्षुओ ! सम्यक्-वचन है ।

"क्या है भिक्षुओ ! सम्यक्-कर्मान्त ? प्राणातिपात (=प्राण-हिंसा)से विरत होना, बिना दिया-लेनेसे विरत होना, काम (=उपभोग)के मिथ्याचार (=दुराचार)से विरत होना । भिक्षुओ ! यह सम्यक्-कर्मान्त कहलाता है ।

"क्या है भिक्षुओ ! सम्यक्-आजीव ? भिक्षुओ ! आर्य-श्रावक मिथ्या-आजीव (=रोजगार) छोड़ सम्यक्-आजीव से जीवन यापन करता है । यही है० सम्यक्-आजीव ।

"क्या है भिक्षुओ ! सम्यक्-व्यायाम ? भिक्षुओ ! भिक्षु अन्-उत्पन्न पापक=अ-कुशल धर्मोंकी न उत्पत्तिके लिये निश्चय (=छन्द) करता है, परिश्रम करता है, उद्योग करता है, चित्तको पकड़ता है, रोकता है । उत्पन्न पाप=अ-कुशल धर्मोंके प्रहाण (=छोड़ना, विनाश) के लिये निश्चय करता है० । अन्-उत्पन्न कुशल (=अच्छे) धर्मोंकी उत्पत्तिके लिये निश्चय० । उत्पन्न कुशल धर्मोंकी स्थिति=अ-विस्मरण, वृद्धी=विपुलता, भावना, परिपूर्णताके लिये निश्चय करता है० । यही है भिक्षुओ ! सम्यक्-व्यायाम ।

"क्या है भिक्षुओ ! सम्यक्-स्मृति ? भिक्षुओ ! भिक्षु काय (=शरीर)में काय (-धर्म, अशुचि जरा आदि)को अनुभव करता हुआ, उद्योगशील अनुभव-ज्ञान-युक्त हो, लोकमें अभिध्या (=लोभ) और दौर्मनस्य (चित्त-संताप)को छोड़कर विहरता है । वेदनाओंमें० । चित्तमें० । धर्मोंमें० । भिक्षुओ ! यही सम्यक्-स्मृति कही जाती है ।

"क्या है भिक्षुओ ! सम्यक्-समाधि ? भिक्षुओ ! भिक्षु कामसे अलग हो, और अ-कुशल धर्मों (=बुरे विचार आदि)से अलग हो, स-वितर्क, स-विचार, विवेकसे उत्पन्न प्रीति सुख-वाले प्रथम ध्यानको, प्राप्त हो विहरता है । वितर्क और विचारके शांत होने भीतरी शांति, चित्तकी एकाग्रता, अ-वितर्क, अ-विचार, समाधिसे उत्पन्न प्रीति सुख-वा. द्वितीय ध्यानको प्राप्त हो विहरता है । प्रीतिसे भी विरक्त, और उपेक्षक हो, स्मृति-मा संप्रजन्य (=अनुभव)-वान् हो, कायासे सुखको भी अनुभव करता हुआ; जिसको आर्य लोग उपेक्षक, स्मृतिमान्, सुख-विहारी कहते हैं; (वैसे) तृतीय ध्यानको प्राप्त विहरता है । सुख और दुःखके प्रहाण (=परित्याग)से; सौमनस्य (=चित्तोल्लास और दौर्मनस्य (=चित्त-सन्ताप)के पहिले ही अस्त होजानेसे, अ-दुःख, अ-सुख, उपे

स्मृतिकी परिशुद्धता (रूपी) चतुर्थ ध्यानको प्राप्त हो विहरता है। यह है कही जाती भिक्षुओ! सम्यक्-समाधि।

"यह कही जाती है भिक्षुओ! दुःख-निरोध-गामिनी-प्रतिपद् आर्य सत्य।

"इस प्रकार भीतरी धर्मोंमें धर्मानु-पश्यी हो विहरता है।०। अ-लग्न हो विहरता है। लोकमें किसी (वस्तु)को भी (मैं और मेरा) करके नहीं ग्रहण करता। इस प्रकार भिक्षुओ! भिक्षु चार आर्य-सत्य धर्मोंमें धर्मानुपश्यी हो विहरता है।

"जो कोई भिक्षुओ! इन चार स्मृति-प्रस्थानों की इस प्रकार सात वर्ष भावना करे, उसको दो फलोंमें एक फल (अवश्य) होना चाहिये—इसी जन्ममें आज्ञा (=अर्हत्व) का साक्षात्कार, या [1]उपाधि शेष होनेपर अनागामि-भाव। रहने दो भिक्षुओ! सात वर्ष, जो कोई इन चार स्मृति-प्रस्थानोंको इस प्रकार छः वर्ष भावना करे०। ०पांच वर्ष०। चार वर्ष०। ०तीन वर्ष०। ०दो वर्ष०। ०एक वर्ष०। ०सात मास०। ०छः मास०। ०पांच मास०। ०चार मास०। ०तीन मास०। ०दो मास०। ०एक मास०। ०अर्द्ध मास०। ० सप्ताह०।

"भिक्षुओ! 'यह जो चार स्मृति प्रस्थान हैं; वह सत्त्वोंके शोक-कष्टकी विशुद्धिके लिये, दुःख दौर्मनस्यके अतिक्रमणके लिये, न्याय (=सत्य)की प्राप्तिके लिये, निर्वाण की प्राप्ति और साक्षात् करनेके लिये, एकायन मार्ग है।' यह जो (मैंने) कहा, इसी कारणसे कहा।"

भगवान्‌ने यह कहा, उन भिक्षुओंने सन्तुष्ट हो, भगवान्‌के वचनको अभिनन्दित किया।

(६)

महानिदान सुत्त (वि. पु. ४६०)।

[1]ऐसा मैंने सुना—एक समय भगवान् कुरु देशमें, कुरुओंके निगम कम्मास-दम्ममें विहार करते थे।

तब आयुष्मान आनन्द जहां भगवान् थे, वहां गये। जाकर भगवान्‌को अभिवादनकर एक ओर बैठ गये। एक ओर बैठे आयुष्मान् आनन्दने भगवान्‌से कहा—

"आश्चर्य है भन्ते! अद्भुत है, भन्ते! कितना गंभीर है, और गंभीरसा दीखता है... यह प्रतीत्य समुत्पाद। परन्तु मुझे साफ साफ (=उत्तान) जान पड़ता है।"

"ऐसा मत कहो आनन्द! ऐसा मत कहो आनन्द! आनन्द! यह प्रतीत्य-समुत्पाद गंभीर है, और गंभीर सा दीखता (भी) है। आनन्द इस धर्मके न जाननेसे=न प्रतिवेध करनेसे ही, यह प्रजा (=जनता) उलझे सूत सी, गांठे पड़ी रस्सी सी, मूँज बल्वज सी, अप्-आय=दुर्‌गति=वि-निपातको प्राप्तहो, संसारसे नहीं पार हो सकती।

"आनन्द! 'क्या जरा-मरण स-कारण है?' पूछनेपर, 'है' कहना चाहिये। 'किस कारणसे जरा-मरण होता है' यह पूछे तो, 'जन्मके कारण जरा-मरण होता है' कहना चाहिये। 'क्या जन्म (=जाति) स-कारण है' पूछनेपर; 'है' कहना चाहिये। 'किस कारणसे जन्म होता है' पूछनेपर 'भवके कारण जन्म' कहना चाहिये। 'क्या भव स-कारण है' पूछनेपर, 'है'०। 'किस कारणसे भव होता है' पूछे, तो 'उपादानके कारण भव' ०। 'क्या उपादान स-कारण है' पूछनेपर, 'है'०। 'किस कारणसे उपादान होता है' पूछे तो, 'तृष्णाके कारण उपादान' ०। ०वेदनाके कारण तृष्णा०। स्पर्शके कारण वेदना०। नाम-रूपके कारण स्पर्श०। ०विज्ञानके कारण नाम-रूप०। नाम-रूपके कारण विज्ञान०।

"इस प्रकार आनन्द! नाम-रूपके कारण विज्ञान है, विज्ञानके कारण नाम-रूप है। नाम-रूपके कारण स्पर्श है। स्पर्शके कारण वेदना है। वेदनाके कारण तृष्णा है। तृष्णाके कारण उपादान है। उपादानके कारण भव है। भवके कारण जाति (=जन्म) है। जातिके कारण जरा-मरण है। जरा-मरणके कारण शोक, परिदेव (=रोना पीटना), दुःख, दौर्मनस्य (=मन-सन्ताप) उपायास (=परेशानी) होते हैं। इस प्रकार इस केवल (=सम्पूर्ण)-दुःख-स्कन्ध (रूपीलोक)का समुदय (=उत्पत्ति) होता है।

"'जातिके कारण जरा-मरण' यह जो कहा, इसे आनन्द! इस प्रकार जानना चाहिये...। यदि आनन्द! जाति न होती तो सर्वथा बिल्कुल ही सब किसीकी कुछ जाति न होती; जैसे—देवोंका देवत्त्व, गन्धर्वोंका गन्धर्वत्त्व, यक्षोंका यक्षत्त्व, भूतोंका भूतत्त्व मनुष्योंका मनुष्यत्त्व चतुष्पदों(=चौपायों)का चतुष्पदत्त्व, पक्षियोंका पक्षित्त्व, सरी (=रेंगनेवालों)का सरीसृपत्त्व, उन उन प्राणियों (=सत्त्वों)का वह होना।

---

१. दी. नि. २:१९।

जाति न हो, सर्वथा जातिका अभाव हो, जातिका निरोध (=विनाश) हो; तो क्या आनन्द ! जरा-मरण जान पड़ेगा ?"

"नहीं भन्ते !"

"इसलिये आनन्द ! जरा-मरणका यही हेतु है=यही निदान है=यही समुदय है= यही प्रत्यय है, जो कि यह जाति ।

"'भवके कारण जाति होती है' यह जो कहा, सो आनन्द ! इस प्रकार जानना चाहिये० । यदि आनन्द ! सर्वथा० सब किसीका कोई भव (=लोक) न होता ; जैसे कि— काम-भव, रूप-भव, अ-रूप-भव । तो भवके सर्वथा न होनेपर, भवके सर्वथा अभाव होनेपर, भवके निरोध होनेपर, क्या आनंद ! जाति जान पड़ती ?"

"नहीं भन्ते !"

"इसीलिये आनन्द ! जातिका यही हेतु है०, जो कि यह भव ।"

"'उपादानके कारण भव होता है' यह जो कहा, सो आनन्द ! इस प्रकार जानना चाहिये० । यदि आनंद ! सर्वथा० किसीका कोई उपादान न होता ; जैसे कि—काम-उपादान, दृष्टि-उपादान, शील-व्रत-उपादान या आत्मवाद-उपादान । उपादानके सर्वथा न होनेपर० क्या आनन्द ! भव होता ?"

"नहीं भन्ते !"

"इसीलिये आनन्द ! भवका यही हेतु है०, जो कि यह उपादान ।

"'तृष्णाके कारण उपादान होता है'० । यदि आनन्द ! सर्वथा० तृष्णा न होती; जैसे कि—रूप-तृष्णा, शब्द-तृष्णा, गंध-तृष्णा, रस-तृष्णा, स्प्रष्टव्य (=स्पर्श)-तृष्णा, धर्म (=मनका विषय)-तृष्णा । तृष्णाके सर्वथा न होनेपर० क्या आनन्द ! उपादान जान पड़ता ?"

"नहीं भन्ते !"

"इसीलिये आनन्द ! उपादानका यही हेतु है०, जो कि यह तृष्णा ।

"'वेदनाके कारण तृष्णा है' ० । यदि आनन्द ! सर्वथा० वेदना न होती; जैसे कि— चक्षु-संस्पर्श (=चक्षु और रूपके योग)से उत्पन्न वेदना, श्रोत्र-संस्पर्शसे उत्पन्न वेदना, घ्राण-संस्पर्शसे उत्पन्न वेदना, जिह्वा-संस्पर्शसे उत्पन्न वेदना, काय-संस्पर्शसे उत्पन्न वेदना, मन-संस्पर्शसे उत्पन्न वेदना । वेदनाके सर्वथा० न होनेपर० क्या आनन्द ! तृष्णा जान पड़ती ?"

"नहीं भन्ते !"

"इसीलिये आनन्द ! तृष्णाका यही हेतु है०, जो कि—यह वेदना ।

"इस प्रकार आनन्द ! वेदनाके कारण तृष्णा, तृष्णाके कारण पर्येषणा (=खोजना), पर्येषणाके कारण लाभ, लाभके कारण विनिश्चय (=दृढ़ विचार), विनिश्चयके कारण छन्द-राग (=प्रयत्नकी इच्छा) छन्द-रागके कारण, अध्यवसान (=प्रयत्न); अध्यवसानके कारण परिग्रह (=जमा करना), परिग्रहके कारण मात्सर्य (=कंजूसी), मात्सर्यके कारण आरक्षा (= हिफाजत), आरक्षाके कारण ही दंड-ग्रहण, शस्त्र-ग्रहण, कलह, विग्रह, विवाद, 'तू तू मैं मैं (=तुवं तुवं)', चुगली, झूठ बोलना, अनेक पाप=अ-कुशल-धर्म होते हैं ।

" 'आरक्षाके कारण ही दंड-ग्रहण० अनेक पाप० होते हैं' यह जो आनन्द ! कहा; उसे इस प्रकारसे भी जानना चाहिये० । यदि सर्वथा० आरक्षा न होती; तो सर्वथा आरक्षाके न होनेपर०, क्या आनन्द !, दंड-ग्रहण० अनेक पाप० होते ?"

" नहीं भन्ते !"

" इसीलिये आनन्द ! यह जो आरक्षा है, यही इस दंड-ग्रहण० पाप=अकुशल धर्मोंकि उत्पत्तिका हेतु=निदान=समुदय=प्रत्यय है ।

" मात्सर्य (=कंजूसी)के कारण आरक्षा है' यह जो कहा, सो इसे आनन्द ! इस प्रकार जानना चाहिये० । यदि आनन्द ! सर्वथा किसीको कुछ भी मात्सर्य न होता; तो सब तरह मात्सर्यके अभावमें=मात्सर्य (=कंजूसी)के निरोधसे, क्या आरक्षा देखनेमें आती ?"

" नहीं भन्ते !"

" इसीलिये आनन्द ! आरक्षाका हेतु०, जो कि यह कंजूसी ।

" परिग्रह (=जमा करना, बटोरना)के कारण कंजूसी है०' । यदि आनन्द ! सर्वथा किसीको कुछ भी परिग्रह न होता०, क्या कंजूसी दिखाई पड़ती ?०।०।

" अध्यवसानके कारण परिग्रह है' ०। यदि आनन्द ! सर्वथा किसीको कुछ भी अध्यावसान न होता०; क्या परिग्रह (=बटोरना) देखनेमें आता ?०।०।

" छन्द-रागके कारण अध्यवसान होता है' ०। क्या अध्यवसान देखनेमें आता ?०।०

" विनिश्चयके कारण छंद-राग होता है' ०।

" लाभके कारण विनिश्चय है"०। यदि आनन्द ! सर्वथा किसीको कहीं कुछभी लाभ न होता०; क्या निश्चय दिखाई देता ? ०।० ।

" पर्येषणाके कारण लाभ होता"० । क्या लाभ दिखाई देता ? ०।० ।

तृष्णाके कारण पर्येषणा होती है"० । क्या पर्येषणा दिखाई देती ? ०।० ।

" स्पर्शके कारण तृष्णा होती है'० । क्या तृष्णा दिखाई देती ? ०।० ।

" नाम-रूपके कारण स्पर्श होता है'० । यह जो कहा, इसको आनन्द ! इस प्रकारसे जानना चाहिये, जैसे 'नाम रूपके कारण स्पर्श होता है । जिन आकारों=जिन लिंगों=जिन निमित्तों=जिन उद्देश्योंसे नाम-काय (=नाम समुदाय) का ज्ञान होता है; उन आकारों, उन लिंगों, उन निमित्तों, उन उद्देश्योंके न होने पर; क्या रूप-काय (=रूप-समुदाय) का अधि-वचन (=नाम) देखा जाता ?"

" नहीं भन्ते !'

" आनन्द ! जिन आकारों, जिन लिंगों,० से रूपकायका ज्ञान होता है; उन आकारों० के न होनेपर, क्या नाम-कायमें प्रतिघ-संस्पर्श (=प्रतिहिंसाका योग) दिखाई पड़ता ?"

" नहीं भन्ते !'

" आनन्द जिन आकारों० से नाम-काय और रूप-कायका ज्ञान होता है; आकारों० के न होनेपर, क्या अधिवचन-संस्पर्श या प्रतिघ-संस्पर्श दिखाई पड़ता ?"

" नहीं भन्ते !'

" आनन्द ! जिन आकारों, जिन लिंगों, जिन निमित्तों, जिन उद्देश्योंसे नाम-रूपका ज्ञान (=प्रज्ञापन) होता है; उन आकारों, उन लिंगों, उन निमित्तों, उन उद्देश्योंके अभावमें क्या स्पर्श (=योग) दिखाई पड़ता ?"

" नहीं भन्ते ! "

" इसीलिये आनन्द ! स्पर्शका यही हेतु=यही निदान=यही समुदय=यही प्रत्यय है, जो कि नाम-रूप ।

" विज्ञानके कारण नाम-रूप होता है "० । यदि आनन्द ! विज्ञान (=चित्त-धारा, जीव) माताके कोखमें नहीं आता, तो क्या नाम-रूप संचित होता ?"

" नहीं भन्ते ! "

" आनन्द ! (यदि केवल) विज्ञानही माताकी कोखमें प्रवेशकर निकल जाये; तो क्या नाम-रूप इसके लिये बनेगा (होगा) ?"

" नहीं भन्ते ! "

" कुमार या कुमारीके अति-शिशु रहतेही यदि विज्ञान छिन्न हो जाये; तो क्या नाम-रूप वृद्धि=विरुढि=विपुलताको प्राप्त होगा ?

" नहीं भन्ते ! "

" इसीलिये आनन्द ! नाम-रूपका यही हेतु० है, जो कि विज्ञान । "

" नाम-रूपके कारण विज्ञान होता है' ०।० । आनन्द ! यदि विज्ञान नाम-रूपमें प्रतिष्ठित न होता, तो क्या भविष्यमें (=आगे चलकर) जाति, जरा-मरण, दुःख समुदय दिखाई पड़ते ? "

" नहीं भन्ते ! "

" इसीलिये आनन्द ! विज्ञानका यही हेतु० है, जो कि यह नाम-रूप । आनन्द ! यह जो विज्ञान-सहित नाम-रूप है, इतनेहीसे जन्मता, बूढ़ा होता, मरता=च्युत होता, उत्पन्न होता है; इतनेहीसे अधिवचन (=नाम-संज्ञा)-व्यवहार, इतनेहीसे निरुक्ति (=भाषा)-व्यवहार, इतनेही से प्रज्ञा-विषय है, इतनेही से 'इस प्रकार' का जतलानेके लिये मार्ग वर्तमान है ।

" आनन्द ! आत्माको प्रज्ञापन करनेवाला कितनेसे प्रज्ञापन (=जताना) करता है ? रूपवान् क्षुद्र रूप-धारीको आत्मा प्रज्ञापन करते हुए 'मेरा आत्मा रूप-धरी और क्षुद्र (=अणु) है' प्रज्ञापन करता है । रूप-वान् और अनन्त प्रज्ञापन करते हुये 'मेरा आत्मा रूपवान् और अनन्त है, प्रज्ञापन करता है । रूप-रहित अणु (=परित्त) आत्मा कहते हुये 'मेरा आत्मा अ-रूप अणु है' कहता है । रूप-रहित अनन्तको आत्मा मानते हुये 'मेरा आत्मा अ-रूप अनन्त है' कहता है ।

"वहाँ जो आनन्द ! आत्माको प्रज्ञापन करते हुये रूप-वान् अणु (=परित्त)को

आत्मा कहता है [1]वह वर्तमानके आत्माको प्रज्ञापन करता, रूप-वान् अणु कहता है। या [2]भावी आत्माको० रूप-वान् अणु कहता है। या [3]उसको होता है कि, 'वैसा न होते हुये (=अ-तथ)को उस प्रकारका कहूँ।' ऐसा होते हुये आनन्द! 'आत्मा रूपवान् अणु है' इस दृष्टि (=धारणा)को पकड़ता है, यही कहना योग्य है।

"वह जो आनन्द! आत्माको प्रज्ञापन करते हुये 'रूप-वान् अनन्त आत्मा' कहता है। वह वर्तमानके आत्माको प्रज्ञापन करते हुये रूप-वान् अनन्त कहता है; या भावी आत्माको० रूप-वान् अनन्त कहता है। या उसको (मनमें) होता है 'वैसा न होते हुयेको वैसा कहूँ'। ऐसा होते हुये वह आनन्द! 'आत्मा रूप-वान् अनन्त है' इस दृष्टि (=धारणा)को पकड़ता है, यही कहना योग्य है।

"वह जो आनन्द!० 'आत्मा रूप-रहित अणु है' कहता है···। वह वर्तमानके आत्माको० कहता है; या भावीको०; या उसको होता है, कि,—'वैसा न होते हुयेको वैसा कहूँ' ।०।

"वह जो आनन्द! ०'आत्मा रूप-रहित अनन्त है' कहता है ।०।०।

"आनन्द! आत्माको प्रज्ञापन करनेवाला इन्हीं (मेंसे एक प्रकारसे) प्रज्ञापित करता है।

"आनन्द! आत्माको न [4]प्रज्ञापन करनेवाला, कैसे प्रज्ञापित नहीं करता?— आनन्द! 'आत्माको रूप-वान् अणु' न प्रज्ञापन करनेवाला (=तथागत) 'मेरा आत्मा रूप-वान् अणु है' नहीं कहता। आत्माको 'रूप-वान् अनन्त' न प्रज्ञापन करनेवाला 'मेरा आत्मा रूप-वान् अनन्त है' नहीं कहता। आत्माको 'रूप-रहित अणु' न प्रज्ञापन करनेवाला 'मेरा आत्मा रूप-रहित अणु है' नहीं कहता। आत्माको 'रूप-रहित अनन्त' न प्रज्ञापन करनेवाला 'मेरा आत्मा रूप-रहित अनन्त है' नहीं कहता।

'आनन्द! जो वह आत्माको 'रूप-वान् अणु' न प्रज्ञापन करनेवाला, प्रज्ञापन नहीं करता। वह यातो आजकल (=वर्तमान)के आत्माको रूप-वान् अणु प्रज्ञापन नहीं करता। या भावी आत्माको० प्रज्ञापन नहीं करता। 'वैसा नहींको वैसा कहूँ' यह भी उसको नहीं होता। ऐसा होनेसे (वह) आनन्द! 'आत्मा रूप-वान् अणु है' इस दृष्टिको नहीं पकड़ता—यही कहना योग्य है। आनन्द! जो वह आत्माको 'रूप-वान् अनन्त' न प्रज्ञापन करनेवाला, प्रज्ञापन नहीं करता। वह यातो वर्तमान आत्माको रूपवान् अनन्त प्रज्ञापन नहीं करता०।०। ऐसा होनेसे (वह) आनन्द! 'आत्मा रूप-वान् अनन्त है' इस दृष्टिको नहीं पकड़ता; यही कहना चाहिये।

"आनन्द! जो वह आत्माको 'रूप-रहित अणु' न प्रज्ञापन करनेवाला प्रज्ञापन नहीं करता। वह या तो वर्तमान आत्माको रूप-रहित अणु न माननेवाला होनेसे, प्रज्ञापन नहीं

---

१. उच्छेदवादी आत्माको विनाशी मानते हुये, वर्तमानमें ही उसकी सत्ता स्वीकार करता है। २. शाश्वतवादी आत्माको शाश्वत (=नित्य) मानते हुये, भविष्य में भी उसकी सत्ता स्वीकार करता है। ३. उच्छेदवादी और शाश्वतवादी दोनों ही को। ४. तथागत।

करता है । ०भावी० । ऐसा होनेसे आनन्द ! वह 'आत्मा रूप-रहित अणु है' इस दृष्टिको नहीं पकड़ता, यही कहना चाहिये ।

"आनन्द ! जो वह आत्माको रूप-रहित अनन्त न बतलानेवाला, (कुछ) नहीं कहता । वह वर्तमान आत्माको रूप-रहित अनन्त न बतलानेवाला हो, नहीं कहता है । ०भावी० । 'वैसा नहींको वैसा कहूँ' यह भी उसको नहीं होता । ऐसा होनेसे आनन्द ! यही कहना चाहिये, कि वह 'आत्मा रूप-रहित अनन्त है' इस दृष्टिको नहीं पकड़ता ।

"इन कारणोंसे आनन्द ! अनात्म-वादी (आत्माकी प्रज्ञप्ति) नहीं कहता ।

"आनन्द ! किस कारणसे आत्मदर्शी (आत्माको) देखता हुआ देखता है ? आत्मदर्शी देखते हुये वेदनाको ही 'वेदना मेरा आत्मा है' समझता है । अथवा 'वेदना मेरा आत्मा नहीं, अ-प्रतिसंवेदन (=न अनुभव) मेरा आत्मा है' ऐसा समझता है'''अथवा—'न वेदना मेरा आत्मा है, न अ-प्रतिसंवेदना मेरा आत्मा है, मेरा आत्मा वेदित होता है, (अतः) वेदना-धर्म-वाला मेरा आत्मा है ।' आनन्द ! आत्मदर्शी देखते हुये देखता है ।

"आनन्द ! वह जो यह कहता है—'वेदना मेरा आत्मा है' उसे पूछना चाहिये—'आवुस ! तीन वेदनायें हैं, सुखा-वेदना, दुःखा-वेदना, अदुःख-असुखा-वेदना, इन तीनों वेदनाओंमें किसको आत्मा मानते हो ?' जिस समय आनन्द ! सुखा-वेदनाको वेदन (=अनुभव) करता है, उस समय न दुःखा-वेदनाको अनुभव करता है, न अदुःख-अ-सुखा-वेदनाको अनुभव करता है । सुखा वेदनाहीको उस समय अनुभव करता है । जिस समय दुःखा-वेदनाको० । जिस समय अदुःख-असुखा-वेदनाको० ।

"सुखा वेदना भी, आनन्द ! अनित्य=संस्कृत (=कृत)=प्रतीत्य-समुत्पन्न (=कारणसे उत्पन्न)=क्षय-धर्मवाली=व्यय-धर्मवाली, विराग-धर्मवाली, निरोध-धर्मवाली है । दुःखा-वेदना भी आनन्द ! ०; अदुःख-असुख वेदना भी० । उसको सुखा-वेदना अनुभव करते समय 'यह मेरा आत्मा है' होता है । उसी सुखा-वेदनाके निरोध होनेसे 'विगत होगया मेरा आत्मा' ऐसा होता है । दुःखा-वेदना अनुभव करते० । अदुःख-असुख-वेदना अनुभव करते 'यह मेरा आत्मा है' होता है । उसी अदुःख-असुख-वेदनाके निरुद्ध (=विनष्ट, विगत) विलीन) होनेपर 'मेरा आत्मा विगत होगया' होनेपर 'मेरा आत्मा विगत होगया' होता है । इस प्रकार आनन्द ! इसी जन्ममें आत्माको अ-नित्य, सुख दुःख, (या) व्यवकीर्ण, उत्पत्ति धर्मवाला=व्यय (=विनाश) धर्मवाला देखता है; जो ऐसा कहता है, कि 'वेदना मेरा आत्मा है' । इसलिये भी आनन्द ! उसका (ऐसा कहना) कि 'वेदना मेरा आत्मा है' ठीक नहीं ।

"आनन्द ! जो वह ऐसा कहता है—'वेदना मेरा आत्मा नहीं, अ-प्रति-संवेदना मेरा आत्मा है', उसे यह पूछना चाहिये—'आवुस ! जहाँ सब कुछ अनुभव (=वेदयित) है, क्या वहाँ 'मैं हूँ' यह होता है ?"

"नहीं भन्ते !"

"इसीलिये आनन्द ! इससे भी यह समझना ठीक नहीं—'वेदना आत्मा नहीं है, अ-प्रतिसंवेदना मेरा आत्मा है ।'

"आनन्द ! जो वह यह कहता है— 'न वेदना मेरा आत्मा है, और न अ-प्रति-संवेदना मेरा आत्मा है, मेरा आत्मा वेदित होता है (=अनुभव किया जाता है); वेदना-धर्मवाला मेरा आत्मा है।' उसे यह पूछना चाहिये—'आवुस ! यदि वेदनायें सारी सर्वथा बिल्कुल निरुद्ध हो जायें ; तो वेदनाके सर्वथा न होनेसे, वेदनाके निरोध होनेसे, क्या वहां 'मैं हूं' यह होगा ?"

"नहीं भन्ते !"

"इसलिये आनन्द ! इससे भी यह समझना ठीक नहीं कि—'न वेदना मेरा आत्मा है, और न अ-प्रतिसंवेदना० वेदना-धर्मवाला मेरा आत्मा है ।

"चूंकि आनन्द ! भिक्षु न वेदनाको आत्मा समझता है, न अ-प्रतिसंवेदनाको०, और नहीं 'आत्मा मेरा वेदित होता है, वेदना-धर्मवाला मेरा आत्मा है' समझता है। इस प्रकार न समझे हुये, लोकमें किसीको (मैं और मेरा करके) नहीं ग्रहण करता। न ग्रहण करनेवाला होनेसे त्रास नहीं पाता। त्रास न पानेसे स्वयं परि-निर्वाणको प्राप्त होता है। (तब)-'जन्म खतम होगया, ब्रह्मचर्य-वास हो चुका, कर्तव्य कर चुका, और कुछ यहां (करणीय) नहीं' जानता है। ऐसे विमुक्त-चित्त भिक्षुको जो कोई ऐसा कहे—'मरनेके बाद तथागत होता है—यह इसकी दृष्टि है' सो अयुक्त है। 'मरनेके बाद तथागत नहीं होता है—यह इसकी दृष्टि है'—सो अ-युक्त है। 'मरनेके बाद तथागत होता भी है, नहीं भी होता है—यह इसकी दृष्टि है—सो अयुक्त है। 'मरनेके बाद तथागत न होता है, न नहीं होता है' यह इसकी दृष्टि है—सो अयुक्त है। सो किस कारण ? जितना भी आनन्द ! अधिवचन (=नाम, संज्ञा), जितना वचन-व्यवहार, जितनी निरुक्ति (=भाषा), जितना भी भाषा-व्यवहार, जितनी प्रज्ञप्ति (=समझाना), जितना भी प्रज्ञप्ति-व्यवहार, जितनी भी प्रज्ञा (=ज्ञान), जितना भी प्रज्ञाका विषय, जितना संसार जितना संसारमें है, उस (सबको) जानकर भिक्षु विमुक्त हुआ है। उसे जानकर विमुक्त हुआ भिक्षु, 'नहीं जानता है, नहीं देखता है, यह इसकी दृष्टि है'—सो अयुक्त है।

"आनन्द ! विज्ञान (=जीव)की सात स्थितियां हैं, और दो ही आयतन। कौन सी सात ? आनन्द ! (१) कोई कोई सत्त्व (=जीव) नाना कायावाले और नाना संज्ञावाले हैं, जैसे कि मनुष्य, कोई कोई देवता (=काम धातुके छः) और कोई २ विनिपातिक (=नीच गतिवाले=पिशाच) यह प्रथम विज्ञान-स्थिति है। (२) आनन्द ! कोई कोई सत्त्व नाना कायावाले, किंतु एक संज्ञा (=नाम) वाले होते हैं, जैसे कि, प्रथम-ध्यानके साथ उत्पन्न ब्रह्म-कायिक (=ब्रह्मा लोग) देवता। यह दूसरी विज्ञान-स्थिति है। (३) आनंद !० एक काया किंतु नाना संज्ञावाले देवता हैं, जैसे कि आभास्वर देवता। यह तीसरी विज्ञान-स्थिति है। (४) ० एक कायावाले, एक संज्ञावाले देवता, जैसे कि शुभकीर्ण (=सुभ-किण्ण) देवता। यह चौथी विज्ञान-स्थिति है। (५) आनन्द ! (कोई २) सत्त्व हैं, (जो कि) रूप-संज्ञाके अतिक्रमणसे,

प्रतिघ-संज्ञाके अस्त हो जानेसे, नानापन संज्ञाको मनमें न करनेसे 'अनन्त आकाश' इस आकाश आयतन (=निवास-स्थान) का प्राप्त हैं। यह पांचवी विज्ञान-स्थिति है। (६) आनन्द! (कोई कोई) सत्त्व आकाश-आयतनको सर्वथा अतिक्रमणकर 'विज्ञान अनंत है', इस विज्ञान आयतनको प्राप्त हैं। यह छठीं विज्ञान-स्थिति है। (७) आनन्द! (कोई कोई) सत्त्व विज्ञान-आयतनको सर्वथा अतिक्रमणकर 'नहीं कुछ है' इस आकिंचन्य-आयतन (=निवास-स्थान)को प्राप्त हैं। यह सातवीं विज्ञान-स्थिति है। (दो आयतन हैं:) असंज्ञि-सत्त्व-आयतन (=संज्ञा-रहित सत्त्वोंका आवास), और दूसरा नैव-संज्ञा-नासंज्ञा-आयतन (=न संज्ञावाला न असंज्ञावाला आयतन)।

"आनन्द! जो यह प्रथम विज्ञान-स्थिति 'नाना काया नाना संज्ञा' है, जैसे कि०। जो उस (प्रथम विज्ञान-स्थिति)को जानता है, उसकी उत्पत्ति (=समुदय)को जानता है, उसके अस्तगमन (=विनाश)को जानता है, उसके आस्वादको जानता है, उसके परिणाम (=आदिनव)को जानता है, उसके निस्सरण (=छंदराग छोड़ना)को जानता है, क्या उस (जानकारको) उस (=विज्ञान-स्थिति)का अभिनन्दन करना युक्त है?"

"नहीं भन्ते!"

० दूसरी विज्ञान स्थिति—०सातवीं विज्ञान-स्थिति०। ०असंज्ञ-सत्वायतन०, ०नैव-संज्ञा-न-संज्ञायतन०।

आनन्द! जो इन सात सत्त्व-स्थियों और दो आयतनोंके समुदय, अस्त-गमन, आस्वाद, परिणाम, निस्सरणको जानकर, (उपादानोंको) न ग्रहणकर विमुक्त होता है; वह भिक्षु प्रज्ञा-विमुक्त (=जानकर मुक्त) कहा जाता है।

"आनन्द! यह आठ विमोक्ष हैं। कौनसे आठ? (१) (स्वयं) रूप-वान् (दूसरे) रूपोंको देखता है। यह प्रथम विमोक्ष है। (२) भीतरमें (=अध्यात्मं) रूप-रहित संज्ञा वाला, बाहर रूपोंको देखता है, यह दूसरा विमोक्ष है। (३) 'शुभ है' इससे अधिमुक्त (=विमुक्त) होता है, यह तीसरा विमोक्ष है। (४) सर्वथा रूप-संज्ञाके अतिक्रमण, प्रतिघ (=प्रतिहिंसा) संज्ञाके अस्त होनेसे, नाना-त्वकी संज्ञाके मनमें न करनेसे 'आकाश अनन्त है' इस आकाशके आयतनको प्राप्त हो विहरता है, यह चौथा विमोक्ष है। (५) सर्वथा आकाशोंके आयतनको अतिक्रमणकर, 'विज्ञान अनन्त है' इस विज्ञान आयतनको प्राप्त हो विहरता है, यह पांचवां विमोक्ष है। (६) सर्वथा विज्ञान आयतनको अतिक्रमणकर, 'कुछ नहीं है' इस आकिंचन्य-आयतनको प्राप्त हो विहरता है, यह छठां विमोक्ष है। (७) सर्वथा आकिंचन्य-आयतनको अतिक्रमणकर, नैव-संज्ञा-न-असंज्ञा-आयतनको प्राप्त हो विहरता है। यह सातवां विमोक्ष है। (८) सर्वथा नैव-संज्ञा-न-असंज्ञा-आयतनको अतिक्रमणकर संज्ञाकी वेदना (=अनुभव) के निरोधको प्राप्त हो विहरता है। यह आठवां विमोक्ष है। आनन्द! यह आठ विमोक्ष हैं।

"जब आनन्द! भिक्षु इन आठ विमोक्षोंको अनुलोम (१,२,३...क्रमसे) प्राप्त (=समाधि-प्राप्त) होता है, प्रतिलोमसे (८,७,६....) भी (समाधि-) प्राप्त होता है।

अनुलोम भी और प्रतिलोम भी (१····८···१) प्राप्त होता है, जहां चाहता है, जब चाहता है, जितना चाहता है, उतनी (समाधि-) प्राप्त होता है; (समाधिसे) उठता भी है। (=राग द्वेष आदि चित्त मलों) के क्षयसे, इसी जन्ममें आस्रव-रहित (=अन्-आस्रव) चित्तकी विमुक्ति, प्रज्ञा-विमुक्तिको स्वयं जानकर=साक्षात्कर, प्राप्त हो, विहरता है। आनन्द ! यह भिक्षु उभतोभाग-विमुक्त (=नाम रूपसे विमुक्त) कहा जाता है। आनन्द ! इस उभतो-भाग-विमुक्तिसे बढ़कर=उत्तम दूसरी उभतो-भागविमुक्ति नहीं है।"

भगवान्‌ने ऐसा कहा। सन्तुष्ट हो आयुष्मान् आनन्दने भगवान्‌के भाषणका अभिनंदन किया।

पति-पत्नी-गुण । वेरंजक-ब्राह्मण-सुत्त । (वि. पृ. ४६०) ।

[1]ऐसा मैंने सुना—एक समय भगवान् मथुरा और वेरञ्जाके बीचमें रास्तेमें जा रहे थे। उस समय बहुतसे गृहपति और गृह-पतिनियाँ भी मथुरा और वैरञ्जाके बीच रास्तेमें जा रही थीं। भगवान् मार्गसे हटकर, एक वृक्षके नीचे बैठे। उन०ने भगवान्‌को एक वृक्षके नीचे बैठे देखा। देखकर जहां भगवान् थे, वहां गये। जाकर भगवान्‌को अभिवादनकर एक ओर बैठे। एक ओर बैठे उन गृह-पतियों और गृह-पतिनियोंको भगवान्‌ने यह कहा—

"गृह-पतियो! चार प्रकारके संवास (=सहवास, एक साथ वास) होते हैं। कौनसे चार? (१) शव (=मुर्दा) शवके साथ संवास करता है; (२) शव देवीके साथ संवास करता है; (३) देव शवके साथ संवास करता है; (४) देव देवीके साथ संवास करता है; कैसे गृहपतियो! शव शवके साथ संवास करता है? यहाँ गृहपतियो! स्वामी(=पति); हिंसक, चोर, दुराचारी, झूठा, नशा-बाज़, दुःशील, पाप-धर्मा, कंजूसीकी गंदगीसे लिप्त चित्त, श्रमण (=साधु) ब्राह्मणोंको दुर्वचन कहने वाला हो, गृहमें वास करता है (और) इसकी भार्या भी —हिंसक० होती है। (उस समय) गृहपतियो! शव शवके साथ संवास करता है। कैसे गृह-पतियो! शव देवीके साथ संवास करता है? ...गृहपतियो स्वामी हिंसक० होता है। और उसकी भार्या अ-हिंसारत, चोरी-रहित, सदाचारिणी, सच्ची, नशा-विरत, सुशीला, कल्याण-धर्म-युक्त, मल-मात्सर्य-रहित, श्रमण-ब्राह्मणोंको दुर्वचन न कहने वाली हो, गृहमें वास करती है। (उस समय) गृह-पतियो! शव देवीके साथ संवास करता है। कैसे गृहपतियो! देव शवके साथ वास करता है?...गृहपतियो! स्वामी होता है, अहिंसारत० उसकी भार्या हिंसक० होती है। (उस समय) गृहपतियो! देव शवके साथ संवास करता है। कैसे गृह-पतियो! देव देवीके साथ संवास करता है? ...स्वामी अहिंसा-रत० और उसकी भार्या भी अहिंसा-रत० होती है। उस (उस समय) देव देवीके साथ संवास करता है। गृह-पतियो! यह चार संवास हैं।

× × × ×

वेरंजक-सुत्त ।

[2]ऐसा मैंने सुना—एक समय भगवान् वेरंजामें नलेरु-पुचिमन्द (वृक्ष)-के नीचे विहार करते थे।

तब वैरंजक-ब्राह्मण जहाँ भगवान् थे, वहाँ गया। जाकर भगवान्‌के साथ...संमोदन कर...कुशल प्रश्न पूछ, एक ओर बैठ गया। एक ओर बैठे हुए, वैरंजक ब्राह्मणने भगवान्‌से कहा—"हे गौतम! मैंने सुना है, कि श्रमण गौतम जीर्ण=वृद्ध=महल्लक=अध्व-गत=वयः-प्राप्त ब्राह्मणोंके आने पर, न अभिवादन करता है, न प्रत्युत्थान करता है, न आसनके लिये कहता है। हे गौतम! क्या यह ठीक है?" "ब्राह्मण! देव-मार-ब्रह्मा-सहित

१. अं. नि. ४:२:१:३। २. अ० नि० ८:१:२:१। पाराजिका १।

सारे लोकमें, श्रमण-ब्राह्मण-देव-मनुष्य-सहित सारी प्रजा (=जनता)में भी, मैं किसीको ऐसा नहीं देखता, जिसको कि मैं अभिवादन करूँ, प्रत्युत्थान करूँ, आसनके लिये कहूँ। ब्राह्मण ! तथागत जिस (मनुष्य)को अभिवादन करें, प्रत्युत्थान करें, या आसनके लिये कहें, उनका शिर भी गिर सकता है ।"

"गौतम ! आप अ-रस-रूप हैं ।"

"ब्राह्मण ! ऐसा कारण है जिस कारणसे मुझे ठीक कहते हुये 'श्रमण गौतम अ-रस-रूप है' कहा जा सकता है। ब्राह्मण ! जो वह रूप-रस (=रूपका मज़ा), शब्द-रस, गंध-रस, रस-रस, स्पर्श-रस, हैं; तथागतके वह सभी प्रहीण=जड़ मूलसे कटे, सिर कटे ताड़से, नष्ट, आगे न उत्पन्न होनेवाले हो गये हैं। ब्राह्मण ! यह कारण है, जिससे मुझे० 'श्रमण गौतम अ-रस-रूप है' कहा जासकता है; उससे नहीं जिस ख्यालसे कि तू कहता है ।"

"आप गौतम ! निर्भोग हैं ।"

"ब्राह्मण ! ऐसा कारण है जिससे ठीक ठीक कहते मुझे 'श्रमण गौतम निर्भोग है' कहा जा सकता है। जो वह ब्राह्मण ! शब्द-भोग०; तथागतके० वह नष्ट, आगेको न उत्पन्न होनेवाले हो गये हैं। ब्राह्मण ! यह कारण है, जिससे० मुझे 'श्रमण गौतम निर्-भोग है' कहा जा सकता है। उससे नहीं जिस ख्यालसे कि तू कहता है ।"

"आप गौतम ! अ-क्रिया-वादी हैं"

"ब्राह्मण ! ऐसा कारण है जिससे०। ब्राह्मण ! मैं कायाके दुराचार (=प्राण-हिंसा, चोरी, व्यभिचार), वचनके दुराचार (झूठ, चुगली, कटुवचन, प्रलाप), मनके दुश्चरित (=लोभ, द्रोह, मिथ्या-दृष्टि)को अ-क्रिया कहता हूँ। अनेक प्रकारके पाप =अ-कुशल-धर्मोंको मैं अ-क्रिया कहता हूँ। यह कारण है ब्राह्मण !०"

"आप गौतम ! उच्छेद-वादी हैं ।"

"ब्राह्मण ! ऐसा कारण है,०। ब्राह्मण ! मैं 'राग, द्वेष, मोह, का उच्छेद (करना चाहिये)' कहता हूँ, अनेक प्रकारके पाप=अ-कुशल-धर्मोंका उच्छेद कहता हूँ।०।"

"आप गौतम ! जुगुप्सु (=घृणा करनेवाले) हैं ।"

"०ब्राह्मण ! मैं कायिक, वाचिक, मानसिक दुराचारोंसे घृणा कहता हूँ; अनेक प्रकारके पाप०।०।"

"आप गौतम ! वैनयिक (=हटानेवाले, साधनेवाले) हैं ।"

"०ब्राह्मण ! मैं राग, द्वेष, मोहके विनयन (=हटाने)के लिये धर्म उपदेश करता हूँ; अनेक प्रकारके पाप०।०।"

"आप गौतम ! तपस्वी हैं ।"

"०ब्राह्मण ! मैं पाप=अकुशल-धर्मों (को), काय-वचन-मनके दुराचारोंको, तपानेवाला कहता हूँ। ब्राह्मण ! जिसके पाप० तपानेवाले धर्म नहीं हो गये, जड़-मूलसे

चले गये, सिर कटे ताड़से हो गये, अभावको प्राप्त हो गये, भविष्यमें न उत्पन्न होने लायक हो गये; उसको मैं तपस्वी कहता हूँ। ब्राह्मण! तथागतके पाप० तपानेवाले धर्म नहीं हो गये० भविष्यमें न उत्पन्न होनेलायक हो गये। ब्राह्मण! यह कारण है जिससे० ।०।

"आप गौतम! अप-गर्भ हैं।"

"०ब्राह्मण! जिसका भविष्यका गर्भ-शयन=आवागमन नष्ट हो गया, जड़ मूलसे चला गया०; उसको मैं अप-गर्भ कहता हूँ। ब्राह्मण! तथागतका भविष्यका गर्भ-शयन, आवागमन नष्ट हो गया, जड़ मूलसे चला गया० ।०।

" ब्राह्मण! जैसे मुर्गीके आठ या दश या बारह अण्डे हों, ···(और) मुर्गी-द्वारा अच्छी तरह सेवित हों=परिभावित हों। उन मुर्गीके बच्चोंमें जो प्रथम पैरके नखोंसे या चोंचसे अंडेको फोड़कर सकुशल बाहर चला आये, उसको क्या कहना चाहिये, ज्येष्ठ या कनिष्ठ?"

"हे गौतम! उसे ज्येष्ठ कहना चाहिये। वही उनमें ज्येष्ठ होता है।"

" इसी प्रकार ब्राह्मण! अविद्यामें पड़ी, (अविद्यारूपी) अंडेसे जकड़ी इस प्रजा (=जनता) में, मैं अकेलाही अविद्या (रूपी) अंडेके खोलको फोड़कर, अनुत्तर (=सर्वश्रेष्ठ) सम्यक्-संबोधि (=बुद्धत्व) को जानने वाला हूँ। मैंही ब्राह्मण लोकमें ज्येष्ठ श्रेष्ठ हूँ।··· मैंनेही ब्राह्मण! न दबनेवाला वीर्य आरम्भ किया; विस्मरण-रहित स्मृति मेरे सन्मुख थी, अ-चल और शांत (मेरा) शरीर था, एकाग्र संमाहित चित्त था। सो ब्राह्मण! मैं स-वितर्क स-विचार विवेकसे उत्पन्न प्रीति-सुख वाले प्रथम ध्यानको प्राप्त हो विहरने लगा। वितर्क और विचार शांत हो, भीतरी शांति, चित्तकी एकाग्रता, अ-वितर्क, अ-विचार, समाधिसे उत्पन्न प्रीति सुख,-वाले द्वितीय ध्यानको प्राप्त हो विहरने लगा। प्रीतिसे भी विरक्त, और उपेक्षक हो विहरता हुआ स्मृति-मान्, अनुभव (=संप्रजन्य)-वान् हो, कायासे सुखको भी अनुभव करता हुआ; जिसको कि आर्य लोग—उपेक्षक, स्मृतिमान्, सुख-विहारी—कहते हैं। (वैसा हो) तृतीय ध्यानको प्राप्तहो विहरने लगा। सुख और दुःखके प्रहाण (=परित्याग) से; सौमनस्य (=चित्तोल्लास) और दौर्मनस्य (चित्त-सन्ताप) के पहिलेही अस्त हो जानेसे, अ-दुःख, अ-सुख, उपेक्षा, स्मृतिकी परिशुद्धता (रूपी) चतुर्थ-ध्यानको प्राप्त हो विहरने लगा। सो इस प्रकार चित्तके समाहित परिशुद्ध=पर्यवदात अङ्गण-रहित=उपक्लेश (=मल)-रहित, मृदु-भूत=काम-लायक, स्थिर=अचलता-प्राप्त=समाहित हो जानेपर, पूर्व जन्मोंकी स्मृतिके ज्ञान (=पूर्व-निवासानुस्मृति-ज्ञान) के लिये चित्तको मैंने झुकाया। फिर मैं अनेक पूर्व निवासोंको स्मरण करने लगा—जैसे एक जन्म भी दो जन्म भी···आकार-सहित उद्देश्य-सहित, अनेक ···पूर्व निवासोंका स्मरण करने लगा। ब्राह्मण! यह रातके पहिले याममें, उस प्रकार प्रमाद-रहित, तत्पर, आत्म-संयम-युक्त विहरते हुये, मुझे पहिली विद्या प्राप्त हुई, अविद्या गई, विद्या आई, तम नष्ट हुआ, आलोक उत्पन्न हुआ। ब्राह्मण! अंडेसे मुर्गीके बच्चेकी तरह यह पहिली फूट हुई।

" सो इस प्रकार चित्तके परिशुद्ध=होनेपर प्राणियोंके जन्म-मरणके लिये मैंने चित्तको झुकाया । सो अ-मानुष दिव्य विशुद्ध चक्षु (=नेत्र) से अच्छे बुरे, सुवर्ण दुर्वर्ण, सुगत (=अच्छी गतिमें गये) दुर्गत, मरते उत्पन्न होते, प्राणियोंको देखने लगा । सो० कर्मानुसार गतिको प्राप्त प्राणियोंको जानने लगा । ब्राह्मण ! रातके बिचले पहरमें यह द्वितीय विद्या उत्पन्न हुई, अविद्या गई० । ब्राह्मण ! अण्डेसे मुर्गीके बच्चेकी भाँति यहदूसरी फूट हुई ।

" सो इस प्रकार चित्तके०, आस्रवोंके क्षयके ज्ञानके लिये, मैंने चित्तको झुकाया— 'यह दुःख है' इसे यथार्थ जान लिया 'यह दुःख-समुदय है' इसे यथार्थ जान लिया । 'यह दुःख-निरोध-गामिनी-प्रतिपद् है' इसे यथार्थ जान लिया । 'यह आस्रव है' इसे यथार्थ जान लिया । 'यह आस्रव-निरोध है' इसे यथार्थ जान लिया । 'यह आस्रव-निरोध-गामिनी-प्रतिपद् है' इसे यथार्थ जान लिया । सो इस प्रकार जानते, इस प्रकार देखते हुये चित्त कामास्रवों से मुक्त हो गया । भवास्रवोंसे भी विमुक्त हो गया । अ-विद्यास्रवोंसे भी विमुक्त हो गया । छूट (=विमुक्त) जानेपर 'छूट गया' ऐसा ज्ञान हुआ । 'जन्म खतम हो गया, ब्रह्मचर्य पूरा हो गया ; करना था सो कर लिया ; अब यहांके लिये कुछ (शेष) नहीं' इसे जाना । ब्राह्मण ! रातके पिछले याम (=पहर) में (यह) तृतीय विद्या प्राप्त हुई । अविद्या चली गई, विद्या उत्पन्न हुई । तम गया, आलोक उत्पन्न हुआ । ब्राह्मण ! अण्डेसे मुर्गीके बच्चेकी भाँति यह तीसरी फूट हुई' ।

ऐसा कहनेपर वेरञ्जक ब्राह्मणने भगवान्‌को कहा—" आप गौतम ! ज्येष्ठ हैं, आप गौतम ! श्रेष्ठ हैं । आश्चर्य ! हे गौतम !! आश्चर्य ! हे गौतम !!० उपासक धारण करें ।"

वेरंजा-वर्षावास। (वि. पू. ४६०)।

"[1]भन्ते ! भिक्षु-संघ-सहित भगवान् वेरंजामें वर्षावास स्वीकार करें।" भगवान्ने मौनसे उसे स्वीकार किया। भगवान्की स्वीकृतिको जान वेरंजक ब्राह्मण आसनसे उठ भगवान्को अभिवादनकर, प्रदक्षिणाकर चला गया।

उस समय वेरंजा दुर्भिक्ष-युक्त दो ईतियों (अकाल और महामारी)से युक्त श्वेत-हड्डियोंवाली, सूखी खेतीवाली थी। भिक्षा करके गुजर करना सकर न था। उस समय उत्तरा-पथके घोड़ोंके सौदागर पांच-सौ घोड़ोंके साथ वेरंजामें वर्षावास=(करते थे)। घोड़ोंके डेरोंमें उन्होंने भिक्षुओंको प्रस्थभर चावल बांध रक्खा था।

भिक्षु पूर्वाह्न समय (चीवर) पहनकर पात्र-चीवर ले वेरंजामें पिंड-चारके लिये प्रवेशकर, पिंड न पा, घोड़ोंके डेरों (=अश्वमंडलिका) में भिक्षाचारकर प्रस्थ प्रस्थ चावल (=पुलक) पा, आराममें लाकर, ओखलमें कूट कूटकर खाते थे। आयुष्मान् आनन्द प्रस्थभर पुलकको सीलपर पीसकर, भगवान्को देते थे, भगवान् उसे भोजन करते थे।

भगवान्ने ओखलका शब्द सुना। जानते हुये भी तथागत पूछते हैं। (पूछनेका) काल जान पूछते (हैं)। (न पूछनेका) काल जान नहीं पूछते। अर्थ-युक्तको पूछते हैं, अनर्थ-युक्तको नहीं। अनर्थ-सहितमें तथागतोंका सेतु-घात (=मर्यादा-खंडन) है। दो कारणोंसे बुद्ध भिक्षुओंको पूछते हैं, (१) धर्म-देशना करनेके लिये या (२) श्रावकोंको शिक्षा-पद (=भिक्षु-नियम) विधान करनेके लिये। तब भगवान्ने आयुष्मान् आनन्दको कहा—

"आनन्द ! क्या वह ओखलका शब्द है ?"

आयुष्मान् आनन्दने वह (सब) बात भगवान्को कह दी।

"साधु ! साधु ! आनन्द ! तुम सत्पुरुषोंने (लोकको) जीत लिया। आनेवाली जनता (तो) पुलाव (=शालि-मांस-ओदन) चाहेगी।"

\+ \+ \+ \+

एकान्त-स्थ ध्यान-अवस्थित आयुष्मान् सारिपुत्रके चित्तमें इस प्रकार वितर्क उत्पन्न हुआ—"किन २ बुद्ध भगवानोंका ब्रह्मचर्य (=सम्प्रदाय) चिर-स्थायी नहीं हुआ ? किन २ बुद्ध भगवानोंका ब्रह्मचर्य चिरस्थयी हुआ ?" तब संध्या समय आयुष्मान् सारिपुत्र ध्यानसे उठकर, जहां भगवान् थे, वहां गये; जाकर भगवान्को अभिवादनकर एक ओर बैठ गये। एक ओर बैठे आयुष्मान् सारिपुत्रने भगवान्से कहा—

"भन्ते ! एकान्त-स्थित ध्यानावस्थित होनेके समय, मेरे चित्तमें इस प्रकारका परि-वितर्क उत्पन्न हुआ—किन २ बुद्ध भगवानों०, सो भन्ते ! किन २ बुद्ध भगवानोंका० ?"

"सारिपुत्र ! भगवान् [2]विपश्यी, भगवान् शिखी और भगवान् विश्वभू (=वेस्सभू) का ब्रह्मचर्य चिरस्थायी नहीं हुआ। सारिपुत्र ! भगवान् ककुसंध (=क्रकुच्छन्द), भगवान् कोनागमन और भगवान् कश्यपका ब्रह्मचर्य चिरस्थायी हुआ।"

---

१. पाराजिका १ २. इस भद्रकल्पके ७ बुद्ध हैं, उपरके छः, और सातवें गौतम बुद्ध।

"भन्ते ! क्या हेतु है, भन्ते ! क्या प्रत्यय है (=कार्य-कारण), जिससे कि भगवान् विपस्सी ··सिखी···विश्वभूके ब्रह्मचर्य चिरस्थायी न हुये ?"

"सारिपुत्र ! भगवान् विपस्सी···सिखी···वेस्सभू श्रावकोंको विस्तारसे धर्म-उपदेश करनेमें आलसी (=किलासी) थे । [1]उनके सुत्त (=सूत्र), गेय्य (=गेय), वेय्याकरण (=व्याकरण=व्याख्यान), गाथा, उदान, इतिवुत्तक (=इतिवृत्तक) जातक, अब्भुत-धम्म (=अद्भुत-धर्म), वेदल्ल थोड़े थे । उन्होंने शिक्षा-पदों (=भिक्षु-नियम=विनय) का विधान नहीं किया था, [2]प्रातिमोक्षका उद्देश्य नहीं किया था । उन बुद्ध भगवानोंके अन्तर्ध्यान होनेपर, उनके बुद्ध-अनु-बुद्ध श्रावकोंके अन्तर्ध्यान होने बाद; नाना नाम, नाना गोत्र, नाना जाति, नाना कुलसे प्रव्रजित (जो) पिछले श्रावक (=शिष्य) थे, उन्होंने उस ब्रह्मचर्यको शीघ्र ही अन्तर्ध्यान कर दिया । जैसे सारिपुत्र ! सूतमें बिना पिरोये नाना फूल तख्तेपर रक्खे हों, उनको हवा बिखेरती है, विधमन=विध्वंसन करती है । सो किस हेतु ? चूँकि सूतसे पिरोये (=संगृहीत) नहीं हैं; इसी प्रकार सारिपुत्र ! उन बुद्ध भगवानोंके अन्तर्ध्यान होनेपर०, उस ब्रह्मचर्यको शीघ्र ही अन्तर्ध्यानकर दिया ।······।"

"भन्ते ! क्या हेतु है, क्या प्रत्यय है, जिससे कि भगवान्···ककुसंध···कोनागमन··· कस्सपके ब्रह्मचर्य चिरस्थायी हुये ?"

"सारिपुत्र ! भगवान् ककुसंध···कोनागमन···कस्सप श्रावकोंको विस्तार-पूर्वक धर्म-देशना करनेमें निर्-आलस थे । उनके (उपदेश किये) सूत्र, गेय, व्याकरण, गाथा, उदान, इतिवृत्तक, जातक, अद्भुत-धर्म, वैदल्य बहुत थे । (उन्होंने) शिक्षा-पद विधान किये थे, प्रातिमोक्ष (=प्रातिमोक्ख) उद्देश्य किये थे । उन बुद्ध भगवानोंके अन्तर्ध्यान होनेपर, बुद्धानु-बुद्ध श्रावकोंके अन्तर्ध्यान होनेपर; जो नाना नाम, नाना गोत्र, नाना जाति, नान कुलसे प्रव्रजित पीछेके शिष्य थे; उन्होंने उस ब्रह्मचर्यको चिर तक, दीर्घकाल तक स्थापित रक्खा । जैसे सारिपुत्र ! सूतमें संगृहीत (=गूँथे) तख्तेपर रक्खे नाना फूल हों, उनको हवा नहीं बिखेरती० । सो किस लिये ? चूँकि सूतसे सुसंगृहीत हैं ।······।

तब आयुष्मान् सारिपुत्रने आसनसे उठ, उत्तरासंग (=चादर)को एक कंधेपर (दाहिने कंधेको खोले हुये रख) कर, जिधर भगवान् थे, उधर हाथ जोड़ भगवान्से कहा—

"इसीका भगवन् ! काल है, इसीका सुगत ! समय है; कि, भगवान् श्रावकोंके लिये शिक्षा-पदका विधान करें, प्रातिमोक्षका उद्देश करें; जिससे कि यह ब्रह्मचर्य अध्वनीय= चिरस्थायी हो ।"

"सारिपुत्र ! ठहरो, सारिपुत्र ! ठहरो, तथागत काल जानेंगे । सारिपुत्र ! शास्ता (=गुरु) तब तक श्रावकोंके लिये शिक्षापद विधान नहीं करतेप्रातिमोक्ष उद्देश नहीं करते, जब तक कि···संघमें कोई आस्रव (=चित्त-मल)वाले धर्म (=पदार्थ) प्रादुर्भूत नहीं हो जाते । सारिपुत्र ! जब यहाँ संघमें कोई कोई आस्रववाले धर्म प्रादुर्भूत हो जाते हैं, तब शास्ता श्रावकोंको शिक्षा-पद विधान करते हैं, प्राति-मोक्ष उद्देश करते हैं; उन्हीं आस्रव

१. बुद्धके उपदेश इन नौ प्रकारोंके हैं । २. भिक्षुओंके पाप-निषेधक नियम ।

स्थानीय धर्मोंके प्रतिघातके लिये। सारिपुत्र ! संघमें तब तक कोई आस्रव-स्थानीय धर्म उत्पन्न नहीं होते, जब तक कि संघ रत्तञ्ञ-महत्त्व (=रत्तञ्ञु महत्त)को न प्राप्त हो। सारिपुत्र ! जब संघ रत्तञ्ञ-महत्त्वको प्राप्त हो जाता है, तब यहाँ संघमें कोई कोई आस्रव-स्थानीय धर्म उत्पन्न होते हैं, और तबही शास्ता श्रावकोंके लिये शिक्षा-पद विधान करते हैं, प्रातिमोक्ष उद्देश करते हैं०। तब तक सारिपुत्र !··· संघमें कोई आस्रवस्थानीय धर्म नहीं उत्पन्न होते, जब तक कि सारिपुत्र ! उसको वैपुल्य-महत्त्व०, ०उत्तम (वस्तुओंके) लाभकी बढ़ाई (=लाभग्ग-महत्त)को०, ०बाहु-सच्च०। सारिपुत्र ! (इस समय) संघ अर्बुद-(=मल)-रहित=आदिनव-रहित, कालिमा-रहित, शुद्ध, सारमें स्थित है। इन पांचसौ भिक्षुओंमें जो सबसे पिछड़ा भिक्षु है, वह स्रोत आपत्ति (फल)को प्राप्त, दुर्गति-से रहित, स्थिर संबोधि=परायण (=परम ज्ञान प्राप्तिमें निश्चल) है।"

यह कह भगवान्‌ने आयुष्मान् आनन्दको संबोधित किया—

"आनन्द ! यह तथागतोंका आचार है, कि जिनके द्वारा निमंत्रित हो वर्षा-वास करते हैं, उनको बिना देखे (पूछे) नहीं जाते। चलें आनन्द ! वेरंज ब्राह्मणको देखें।"

"अच्छा भन्ते !" (कह) आयुष्मान् आनन्दने भगवान्‌को उत्तर दिया।

भगवान् (चीवर) पहिन पात्र-चीवर ले० आनन्दको अनुगामी बना, जहाँ वेरंज ब्राह्मणका घर था, वहाँ गये। जाकर बिछे आसन पर बैठे। वेरंज ब्राह्मण···भगवान्‌के पास, आकर, भगवान्‌को अभिवादनकर एक ओर बैठ गया। एक ओर बैठे वेरंज ब्राह्मणको भगवान्‌ने कहा—

"ब्राह्मण ! तुझसे निमंत्रित हो, हमने वर्षा-वास कर लिया। अब तुमको देखने आये हैं। हम जनपद-चारिका (=देशाटन)को जाना चाहते हैं।"

"हे गौतम ! सच-मुचही मैंने वर्षा-वासके लिये निमन्त्रित किया था—मेरा जो देनेका धर्म था, वह (मैंने) नहीं दिया। सो न होनेके कारण नहीं, और न देनेकी इच्छासे (भी नहीं)। सो (मौका) कैसे मिले ? गृहमें बसना (=गृहस्थाश्रम) बहुत काम, बहुत-कृत्योंवाला (होता है)। आप गौतम कलके लिये भिक्षु-संघ-सहित मेरा भोजन स्वीकार करें।"

भगवान् ने मौन रह स्वीकार किया। तब भगवान् वेरंज ब्राह्मणको धार्मिक कथासे संदर्शन···करा आसनसे उठकर चल दिये।

वेरंज ब्राह्मणने उस रातके बीत जानेपर, अपने घरमें उत्तम खाद्य-भोज्य तय्यार करा, भगवान्‌को कालकी सूचना दी···। तब भगवान् पूर्वाह्न समय (चीवर) पहिनकर, पात्र-चीवर ले, जहाँ वेरंज ब्राह्मणका घर था, वहाँ गये। जाकर भिक्षु-संघ-सहित बिछे आसन पर बैठे। वेरंज ब्राह्मणने अपने हाथसे बुद्ध-प्रमुख भिक्षु-संघको उत्तम खाद्य-भोज्यसे संतर्पित कर, पूर्णकर, खाकर पात्रसे हाथ हटा लेनेपर, भगवान्‌को तीन [1]चीवरसे आच्छादित किया।

१. (१) अन्तरावसक (=लुङ्गी), (२) उत्तरासंग (=इकहरी चद्दर), (३) संघाटी (=दुहरी चद्दर)।

एक एक भिक्षुको एक एक धुस्से-(=थान, जोड़ेसे आच्छादित किया। भगवान् वेरंज ब्राह्मणको धर्म-उपदेश कर'''आसनसे उठ चल दिये ।

भगवान् वेरंजामें इच्छानुसार विहरकर, [1]सोरेय्य, [2]संकाश्य (=संकस्स), कान्य-कुब्ज (=कण्णकुज्ज, कन्नौज) होते हुये, जहाँ [3]प्रयाग-प्रतिष्ठान (=पयाग-पतिट्ठान) था वहाँ गये। जाकर प्रयाग-प्रतिष्ठानमें गङ्गा नदी पारकर, जहाँ वाराणसी थी, वहाँ गये। तब भगवान् वाराणसीमें इच्छानुसार विहरकर, जहाँ वैशाली थी, वहाँ चारिकाके लिये चल दिये। क्रमशः चारिका करते जहाँ वैशाली थी वहाँ पहुँचे। वैशालीमें भगवान् महावन कूटागारशालामें विहार करते थे ।

[4]बुद्धोंका आचार है, वर्षा-वास समाप्तकर [5]प्रवारणा करके लोक-संग्रहके लिये देशा-टन करते हुये महा-मण्डल, मध्य-मण्डल, अन्तिम-मण्डल इन तीन मण्डलोंमें से एक मण्डलमें चारिका करते हैं। महामण्डल नौ सौ योजन है, मध्य-मण्डल ६०० योजन और अन्तिम मण्डल तीनसौ योजन है। जब महामंडलमें चारिका करना चाहते हैं, तो महाप्रवारणा (=आश्विन पूर्णिमा)को प्रवारणाकर, प्रतिपद्के दिन महा-भिक्षु-संघके साथ निकलकर ग्राम निगम (=कस्बा) आदिमें अन्न-पान आदि (=आमिष) ग्रहणकर लोगोंपर कृपा करते, धर्म-दान (=धर्मोपदेश) से'' उनके पुण्यकी वृद्धि करते, नव मासमें देशाटन समाप्त करते हैं। यदि वर्षाकालमें भिक्षुओंकी शमथ-विपश्यना (=सामाधि-प्रज्ञा) अपरिपक्व (=तरुण) होती है, तो महाप्रवारणाको प्रवारणा न कर,''' कार्तिककी पूर्णमासीको प्रवारणाकर, मार्ग-शीर्षके पहिले दिन महा-भिक्षु-संघ-सहित निकलकर, उपरोक्त प्रकारसे ही मध्य-मंडलमें आठ महीनेमें चारिका समाप्त करते हैं। यदि वर्षा समाप्त करनेपर भी विनयाकांक्षी सत्त्वोंकी भावना नहीं होती, तो उनकी भावनाके परिपक्व होनेके लिए मार्ग-शीर्षमास भर भी वहीं वासकर, पूस (=फुस्स) मासके पहिले दिन, महा-भिक्षु-संघ-सहित निकलकर, उक्तक्रमसे ही अन्तिम-मण्डलमें सात महीनेमें चारिका समाप्त करते हैं।

+ + + + +

(९)

बनारसमें । वैशालीमें । (त्रि. पृ. ४५९) ।

[१]ऐसा मैंने सुना—एक समय भगवान् वाराणसीमें ऋषि-पतन मृगदावमें विहार करते थे ।

वहां भगवान्ने पूर्वाह्न समय (चीवर) पहिनकर पात्र-चीवर ले वाराणसीमें पिंड-चार के लिये प्रवेश किया । [२]गो-योग-प्लक्षमें पिंड-चार करते, भगवान्ने किसी शून्य-हृदय (=रित्तास), वहिर्मुख-चित्त (=वाहिरास) मूढ़-स्मृति, संप्रजन्य-रहित अ-समाधान-चित्त= विभ्रान्त-चित्त प्राकृत-इन्द्रिय (=साधारण काम-भोगी जनों जैसा) भिक्षुको देखा । देखकर उस भिक्षुको कहा—

" भिक्षु ! भिक्षु ! अपनेको तू जूठन मत बना । जूठन बने दुर्गन्धसे लिप्त हुये तुझपर कहीं मक्खियां न आपड़ें, (तुझे) मलिन न करदें । (तेरे लिये) यह उचित नहीं है ।'

भगवान्-द्वारा इस प्रकारके उपदेशसे उपदिष्ट हो, वह भिक्षु वैराग्य (=संवेग) को प्राप्त हुआ । भगवान्ने वाराणसीमें पिंडचारकर, भोजनानन्तर "भिक्षुओंको संबोधित किया—

" भिक्षुओ ! आज मैंने पूर्वाह्न समय० भिक्षुको देखा । देखकर भिक्षुको कहा— 'भिक्षु ! भिक्षु ! अपनेको तू जूठन मत बना० तब भिक्षुओ ! वह भिक्षु मेरे इस उपदेशसे उपदिष्ट हो, संवेगको प्राप्त हो गया ।'

ऐसा कहनेपर एक भिक्षुने भगवान्से पूछा—

" क्या है भन्ते ! जूठन (=कटुविय), क्या है दुर्गन्ध (=आमगंध), क्या हैं मक्खियां ?"

" भिक्षु ! अभिध्या (=लोभ, राग) जूठन है, व्यापाद (=द्रोह) आमगंध है; और पाप अ-कुशल-वितर्क (=बुरे विचार) मक्खियां हैं । "

वैशालीमें ।

[३]उस समय वैशालीके नातिदूर कलन्दक-ग्राम नामका (गांव) था । वहां सुदिन्न-कलन्दपुत्त नामक सेठका लड़का रहता था । तब सुदिन्न कलन्द-पुत्त बहुतसे मित्रोंके साथ, किसी कामके लिये वैशाली गया । उस समय भगवान् बड़ी भारी परिषद्के साथ बैठे, धर्म उपदेश कर रहे थे । सुदिन्न कलन्द-पुत्तने भगवान्को० उपदेश करते देखा । देखकर उसके चित्तमें हुआ—मैं भी क्यों न धर्म सुनूं । तब सुदिन्न कलन्द-पुत्र जहां वह परिषद् थी, वहां गया । जाकर एक ओर बैठ गया । एक ओर बैठे हुये सुदिन्न कलन्द-पुत्रको यह हुआ—' जैसे जैसे मैं भगवान्के उपदिष्ट धर्मको जान रहा हूं, (उससे जान पड़ता है कि) यह सर्वथा परिपूर्ण, सर्वथा परिशुद्ध खरादे शंखसा उज्वल ब्रह्मचर्य, घरमें बसे (=गृहस्थ रहते) को सुकर नहीं है । क्यों न मैं शिर-दाढ़ी मुड़ा, काषाय वस्त्र पहिन, घरसे बेघर हो प्रव्रजित होजाऊँ ? तब भगवान्के धार्मिक उपदेश को···(सुन)···वह परिषद् आसनसे उठ, भगवान्को अभिवादनकर,

---

१. अ. नि. ३:३:६ । २. " वैलहट्टेमें उगा एक पाकड़का वृक्ष ।" अ. क. ३. विनय, पाराजिका १ ।

प्रदक्षिणाकर चली गई। परिषद्‌के चले जानेके थोड़ीही देर बाद, सुदिन्न कलन्द-पुत्र जहाँ भगवान् थे वहाँ गया, जाकर भगवान्‌को अभिवादनकर एक ओर बैठ गया। एक ओर बैठे सुदिन्न कलन्द-पुत्रने भगवान्‌को कहा—

" जैसे जैसे भन्ते ! मैं भगवान्‌के उपदिष्ट धर्मको जान रहा हूँ०। भन्ते ! मैं सिर-दाढ़ी मुड़ा० प्रव्रजित होना चाहता हूँ। भन्ते ! भगवान् मुझे प्रव्रजित करें।"

" सुदिन्न ! क्या घरसे बेघर हो प्रव्रजित होनेके लिये तुम माता पिताके द्वारा अनुज्ञात हो।"

" भन्ते ! घरसे बेघर प्रव्रजित होनेके लिये, मैं माता-पिता-द्वारा अनुज्ञात नहीं हूँ।"

" सुदिन्न ! तथागत माता-पिता-द्वारा अननुज्ञात पुत्रको प्रव्रजित नहीं करते।"

" तो मैं भन्ते ! ऐसा करूँगा, जिसमें० प्रव्रजित होनेकी अनुज्ञा (=आज्ञा) देदें।"

तब सुदिन्न कलन्दक-पुत्र वैशालीमें उस कार्यको भुक्ताकर, जहाँ कलन्द-ग्राम था, जहाँ माता-पिता थे, वहाँ गया। जाकर माता-पिताको बोला—

" अम्मा ! तात ! जैसे जैसे मैं भगवान्‌के० उपदिष्ट धर्म०। मैं० प्रव्रजित होना चाहता हूँ। मुझे ०प्रव्रजित होनेकी अनुज्ञा दो।"

ऐसा कहनेपर सुदिन्न० के माता पिताने सुदिन्नको० यह कहा—" तात ! सुदिन्न ! तुम हमारे प्रिय=मनाप, सुखमें बढ़े, सुखमें पले एक पुत्र हो। तात ! सुदिन्न ! तुम दुःख कुछ भी नहीं जानते। मरनेपर भी हम तुमसे अनिच्छुक न होंगे; फिर हम तुम्हें जीतेजी, कैसे घरसे बेघर प्रव्रजित होनेकी अनुज्ञा देंगे ?"

दूसरी वारभी सुदिन्नने० माता पिताको यह कहा ०।०।

तीसरी वार भी ०।०।

तब सुदिन्न कलन्द-पुत्र—'मुझे माता-पिता घरसे बेघर प्रव्रजित होनेकी अनुज्ञा नहीं देते'—(सोच) वहीं नंगी धरतीपर पड़ गया—'यहीं मेरा मरण होगा या प्रव्रज्या'। तब सुदिन्न०ने एक (वारका) भात (=भोजन) न खाया, दो भी०, तीन भी०, चार०, पांच०, छः०, सात०। तब सुदिन्नके० माता पिताने सुदिन्नको० यह कहा—

" तात ! सुदिन्न ! तुम हमारे प्रिय० एक पुत्र हो०। मरनेपरभी हम तुमसे अकाम न होंगे०। उठो तात ! सुदिन्न खाओ पीओ'''(सुखी) हो। खाते पीते''''सुखसे काम-सुख भोगते पुण्य करते रमण करो। हम तुम्हें''''प्रव्रजित होनेकी अनुज्ञा न देंगे।"

ऐसा बोलनेपर सुदिन्न० चुप रहा।

दूसरीवार भी ०।०।

तीसरीवार भी ०।०।

तब सुदिन्न० के मित्र जहाँ सुदिन्न था, वहां गये; जाकर सुदिन्न० को बोले—

" सौम्य ! सुदिन्न ! तुम माता पिताके प्रिय० एक-पुत्र हो। मरनेपर भी तुम्हारे माता पिता० प्रव्रजित होने की आज्ञा न देंगे। उठो सौम्य सुदिन्न ! खाओ, पीओ० पुण्य करते रमण करो। मात-पिता तुम्हें प्रव्रजित होनेकी आज्ञा न देंगे।"

ऐसा बोलनेपर सुदिन्न० चुप रहा।

दूसरीबार भी ०।०।

तीसरीबार भी ०।०।

तब सुदिन्नके० मित्र जहाँ सुदिन्न०के माता-पिता थे, वहाँ गये। जाकर "बोले—

"अम्मा! तात! यह सुदिन्न नंगी धरतीपर पड़ा"(कहता है)—'यहीं मरण होगा या प्रव्रज्या'। यदि ०प्रव्रज्याकी अनुज्ञा न दोगे, तो वहीं मर जायेगा। यदि सुदिन्नको ०प्रव्रज्याकी अनुज्ञा देदोगे, तो प्रव्रजित होनेपर उसे देखोगे। यदि सुदिन्नको ०प्रव्रज्या अच्छी न लगी, तो उसकी दूसरी और क्या गति होगी?—यहीं लौट आयेगा। सुदिन्नको० प्रव्रज्याकी अनुज्ञा देदो।"

"तातो! हम सुदिन्नको ०प्रव्रज्याकी अनुज्ञा देते हैं।"

तब सुदिन्न कलन्द-पुत्रके मित्र जहाँ सुदिन्न कलन्द-पुत्र था वहाँ गये, जाकर सुदिन्न कलन्द-पुत्रको बोले—

"उठो सौम्य! सुदिन्न! ०प्रव्रज्याके लिये माता-पिता-द्वारा अनुज्ञात हो।"

तब सुदिन्न कलन्द-पुत्र—'०प्रव्रज्याके लिये माता-पिता-द्वारा अनुज्ञात हूं'—(जान) हृष्ट=उदग्र हाथसे शरीर पोंछते, उठ खड़ा हुआ। तब सुदिन्न० कुछ दिनमें ताकत पाकर, जहाँ भगवान् थे, वहाँ गया; जाकर भगवान्को अभिवादनकर एक ओर बैठ गया। एक ओर बैठे हुये, सुदिन्न कलन्द-पुत्रने भगवान्को कहा—

"भन्ते! ०प्रव्रज्याके लिये मैं माता-पिता-द्वारा अनुज्ञात हूं। मुझे भगवान् प्रव्रजित करें।"

सुदिन्न कलन्द-पुत्रने भगवान्के पास प्रव्रज्या (=श्रामणेरभाव) और उपसंपदा (=भिक्षु-भाव) पाई। उपसंपदा (=भिक्षु होने)के थोड़ी ही देर बाद, सुदिन्न इन धुत (=अवधूत)—गुणोंसे युक्त हो वज्जी (देश)के एक ग्राममें विहार करने लगे—जैसे, आरण्यक (=वनमें रहना), पिंड-पातिक (=मधूकरी खाना, निमंत्रण आदि नहीं), पांशु-कूलिक (=फेंके चीथड़ोंको ही सीकर पहिनना), और स-पदान-चारी निरंतर (-चारिका) चलतेरहना।

\+ \+ \+

[1]भगवान्ने तेरहवीं (वर्षा) चालिय पर्वतमें (बिताई)।

सीह-सुत्त (वि. पू. ४५८)।

[1]ऐसा मैंने सुना—एक समय भगवान् वैशालीमें महावनकी कूटागार-शालामें विहार करते थे।

उस समय बहुतसे प्रतिष्ठित प्रतिष्ठित लिच्छवी संस्थागार (=प्रजातंत्र-सभागृह)में बैठे हुये, एकत्रित हुये, बुद्धका गुण बखानते थे, धर्मका०, संघका गुण बखानते थे। उस समय निगंठों (=जैनों)का श्रावक सिंह सेनापति उस सभामें बैठा था। तब सिंह सेनापतिके चित्तमें हुआ—'निःसंशय वह भगवान् अर्हत् सम्यक्-संबुद्ध होंगे, तब तो यह बहुतसे प्रतिष्ठित लिच्छवि ०बखान रहे हैं। क्यों न मैं उन भगवान् अर्हत् सम्यक्-संबुद्धके दर्शनके लिये जाऊँ।'

तब सिंह सेनापति जहाँ निगंठ नाथ-पुत्त थे, वहाँ गया। जाकर निगंठ नाथ-पुत्तको बोला—

"भन्ते! मैं श्रमण गौतमको देखनेके लिये जाना चाहता हूँ।"

"सिंह! क्रियावादी होते हुये, तू क्या अक्रिया-वादी श्रमण गौतमके दर्शनको जायेगा। सिंह! श्रमण गौतम अक्रिया-वादी है, श्रावकोंको अ-क्रिया-वादका उपदेश करता है···।"

तब सिंह सेनापतिकी भगवान्के दर्शनके लिये जानेकी जो इच्छा थी, वह शांत होगई।

दूसरीवार भी बहुतसे प्रतिष्ठित प्रतिष्ठित लिच्छवी०। तब सिंह सेनापति जहाँ निगंठ नाथ-पुत्त थे, वहाँ गया० कहा०।

"क्या तू सिंह! क्रियावादी होकर, अक्रियावादी श्रमण गौतमके दर्शनको जायेगा०।"

दूसरीवार भी सिंह सेनापतिकी० इच्छा० शांत होगई।

तीसरीवार भी बहुतसे प्रतिष्ठित प्रतिष्ठित लिच्छवी०। 'पूछूँ या न पूछूँ, निगंठ नाथ-पुत्त मेरा क्या करेगा? क्यों न निगंठ नाथ-पुत्तको बिना पूछे ही, मैं उन भगवान् अर्हत् सम्यक्-संबुद्धके दर्शनके लिये जाऊँ'?

तब सिंह सेनापति पाँच सौ रथोंके साथ, दिन ही दिन (=दो पहर) को भगवान्के दर्शनके लिये, वैशालीसे निकला। जितना यान (=रथ) का रास्ता था, उतना यानसे जाकर, यानसे उतर, पैदल ही आराममें प्रविष्ट हुआ। सिंह सेनापति जहाँ भगवान् थे, वहाँ गया। जाकर भगवान्को अभिवादनकर, एक ओर बैठ गया। एक ओर बैठे हुये सिंह सेनापतिने भगवान्को यह कहा—

"भन्ते! मैंने सुना है कि—श्रमण गौतम अक्रिया-वादी है। अक्रियाके लिये धर्म उपदेश करता है, उसीकी ओर शिष्योंको ले जाता है। भन्ते! जो ऐसा कहता है—'श्रमण गौतम अक्रिया-वादी है०।'···क्या वह भगवान्को···ठीक कहता है? अभूत (=जो नहीं है)से भगवान्की निन्दा तो नहीं करता? धर्मानुसारही धर्मको कहता है?

---

[1] अं. नि. ८:१:२:२।

कोई सह-धार्मिक वादानुवाद तो निन्दित नहीं होता ? भन्ते ! हम भगवान्‌की निन्दा करना नहीं चाहते । "

" सिंह ! ऐसा कारण है, जिस कारणसे ठीक ठीक कहते हुये, मुझे कहा जा सकता है—' श्रमण गौतम [1]अक्रिया-वादी है०' ।

" सिंह ! क्या कारण है, ' ०श्रमण गौतम अ-क्रिया-वादी है० ' सिंह ! मैं काय-दुश्चरित, वचन-दुश्चरित, मन-दुश्चरितको, अनेक प्रकारके पाप अकुशल-धर्मोंको अक्रिया कहता हूँ० ।०

" सिंह ! क्या कारण है जिस कारणसे०—' श्रमण गौतम क्रिया-वादी है, क्रियाके लिये धर्म उपदेश करता है, उसीसे श्रावकोंको ले जाता है० । सिंह ! मैं काय-सुचरित (=अ-हिंसा, चोरी न करना, अ-व्यभिचार), वाक्-सुचरित (=सच बोलना, चुगली न करना, मीठा वचन, बकवाद न करना), मन-सुचरित (=अ-लोभ, अ-द्रोह, सम्यक्-दृष्टि) अनेक प्रकारके कुशल (=उत्तम) धर्मोंको क्रिया कहता हूँ । सिंह ! यह कारण है जिस कारणसे० मुझे ' श्रमण गौतम क्रियावादी ' है० ।०

" ०उच्छेदवादी० । ०जुगुप्सु० । ०वैनायिक० । ०तपस्वी० । अपगर्भ० ।

" सिंह ! क्या कारण है जिस कारणसे ठीक ठीक कहनेवाला मुझे कह सकता है—' श्रमण गौतम अस्ससन्त (=आश्वसन्त) है, आश्वासके लिये धर्म-उपदेश करता है, उसीसे श्रावकोंको ले जाता है' । सिंह ! मैं परम आश्वाससे आश्वासित हूँ, आश्वासके लिये धर्म उपदेश करता हूँ, आश्वास (के मार्ग) से ही श्रावकोंको ले जाता हूँ । यह कारण० । "

ऐसा कहनेपर सिंह सेनापतिने भगवान्‌को कहा—

" आश्चर्य ! भन्ते ! आश्चर्य ! भन्ते !० उपासक मुझे स्वीकार करें ।"

"[2]सिंह ! सोच समझकर करो० । तुम्हारे जैसे संभ्रान्त मनुष्योंका सोच समझकर (निश्चय) करना ही अच्छा है । "

" भन्ते ! भगवान्‌के इस कथनसे मैं और भी सन्तुष्ट हुआ । भन्ते ! दूसरे तैर्थिक मुझे श्रावक पाकर, सारी वैशालीमें पताका उड़ाते—सिंह सेनापति हमारा श्रावक (=चेला) हो गया । लेकिन भगवान् मुझे कहते हैं—' सोच समझकर सिंह ! करो० । यह मैं भन्ते ! दूसरी बार भगवान्‌की शरण जाता हूँ, धर्म और भिक्षु-संघकी भी० ।"

" सिंह ! तुम्हारा कुल दीर्घकालसे निगंठोंके लिये प्याउकी तरह रहा है ; उनके आनेपर ' पिंड न देना (चाहिये) ' ऐसा मत समझना । "

" भन्ते ! इससे मैं और भी प्रसन्न-मन, सन्तुष्ट, और अभिरत हुआ । ० । मैंने सुना था भन्ते ! कि श्रमण गौतम ऐसा कहता है—' मुझे ही दान देना चाहिये, दूसरोंको दान न देना चाहि०' । भन्ते ! भगवान् तो मुझे निगंठोंको भी दान देनेको कहते हैं । हम भी भन्ते ! इसे युक्त समझेंगे । यह भन्ते ! मैं तीसरी बार भगवान्‌की शरण जाता हूँ । ० ।

१ अक्रियावादी, उच्छेदवादी, जुगुप्सु, तपस्वी, अप-गर्भकी व्याख्या वेरञ्जसुत्त (पृष्ठ १३८, १३९)में देखो । २ उपालि-सुत्त देखो ।

तब भगवान्‌ने सिंह सेनापतिको आनुपूर्वी कथा कही, जैसे—दान-कथा, शील-कथा, स्वर्ग-कथा, कामभोगोंके दोष, अपकार और क्लेश ; और निष्कर्मताका माहात्म्य प्रकाशित किया। जब भगवान्‌ने सिंह सेनापतिको अरोग-चित्त, मृदु-चित्त, अनाच्छादित-चित्त, उदग्र-चित्त, प्रसन्न-चित्त जाना। तब वह जो बुद्धोंकी स्वयं उठानेवाली धर्म-देशना है, उसे प्रकाशित किया—दुःख, समुदय, निरोध और मार्ग। जैसे कालिमा-रहित शुद्ध वस्त्र अच्छी प्रकार रङ्ग पकड़ता है। इसी प्रकार सिंह सेनापतिको उसी आसनपर वि-मल, वि-रज, धर्म-चक्षु उत्पन्न हुआ—

'जो कुछ समुदय-धर्म है, वह सब निरोध-धर्म है'। सिंह सेनापति दृष्ट-धर्म=प्राप्त-धर्म =विदित-धर्म=परि-अवगाढ-धर्म, संदेह-रहित, वाद-विवाद-रहित, विशारदता-प्राप्त, शास्ताके शासनमें स्वतंत्र हुआ। और भगवान्‌से यह बोला—

"भन्ते! भिक्षु-संघके साथ भगवान् मेरा कलका भोजन स्वीकार करें।"

भगवान्‌ने मौनसे स्वीकार किया। तब सिंह सेनापति भगवान्‌की स्वीकृतिको जान आसनसे उठ भगवान्‌को अभिवादनकर प्रदक्षिणाकर चला गया।

तब सिंह सेनापतिने एक आदमीसे कहा—

"हे आदमी! जा तू तय्यार मांसको देख तो।"

तब सिंह सेनापतिने उस रातके बीतनेपर अपने घरमें उत्तम खाद्य-भोज्य तय्यार करा, भगवान्‌को कालकी सूचना दी। भगवान् पूर्वाह्ण समय (चीवर) पहनकर पात्रचीवर ले जहाँ सिंह सेनापतिका घर था, वहाँ गये। जाकर भिक्षु-संघके साथ बिछे आसनपर बैठे। उस समय बहुतसे निगंठ (=जैनसाधु) वैशालीमें एक सड़कसे दूसरी सड़कपर, एक चौरस्तेसे दूसरे चौरस्तेपर, बाँह उठाकर चिल्लाते थे—'आज सिंह सेनापतिने मोटे पशुको मारकर, श्रमण गौतमके लिये भोजन पकाया ; श्रमण गौतम जान बूझकर (अपनेही) उद्देश्यसे किये, उस (मांस) को खाता है।···

तब कोई पुरुष जहाँ सिंह सेनापति था, वहाँ गया। जाकर सिंह सेनापतिके कानमें बोला—

"भन्ते! जानते हैं, बहुतसे निगंठ वैशालीमें एक सड़कसे दूसरी सड़कपर० बाँह उठाकर चिल्ला रहे हैं—आज०।"

"जाने दो आर्यो (=अय्यो)! चिरकालसे यह आयुष्मान् (=निगंठ) बुद्ध० धर्म० संघकी निन्दा चाहने वाले हैं। यह आयुष्मान् भगवान्‌की असत्, तुच्छ, मिथ्या, अ-भूत निन्दा करते नहीं शरमाते। हम तो (अपने) प्राणके लिये भी जान बूझकर प्राण न मारेंगे।"

तब सिंह सेनापतिने बुद्ध-प्रमुख भिक्षु-संघको अपने हाथसे उत्तम खाद्य-भोज्यसे संतर्पित (कर), परिपूर्ण किया। भगवान्‌के भोजनकर पात्रसे हाथ खींच लेनेपर, सिंह सेनापति···एक ओर बैठ गया। एक ओर बैठे हुये सिंह सेनापतिको भगवान्, धार्मिक कथासे संदर्शन करा···, आसनसे उठकर चल दिये।

\+ \+ \+ \+ \+

(११)

मेण्डक-दीक्षा । विशाखा । (वि. पू. ४५८) ।

[1]तब भगवान् वैशालीमें इच्छानुसार विहारकर साढ़े बारहसौ भिक्षुओंके महाभिक्षुसंघके साथ, जिधर [2]भद्दिया थी, उधर चारिकाके लिये चल दिये । क्रमशः चारिका करते जहाँ भद्दिया थी, वहाँ पहुँचे । वहाँ भगवान् भद्दिया (= भद्रिका) में जातिया(=जातिका)-वनमें विहार करते थे । मेण्डक गृहपतिने सुना कि—'शाक्य-कुलसे प्रव्रजित शाक्य-पुत्र श्रमण गौतम भद्दियामें आए हैं,...जातिया वनमें विहार करते हैं । उन भगवान् गौतमका ऐसा कल्याण (=मङ्गल) कीर्ति-शब्द फैला हुआ है—'वह भगवान् अर्हत, सम्यक्-संबुद्ध, विद्या-आचणर-संयुक्त, सुगत, लोक-विद्, अनुत्तर (=सर्वश्रेष्ठ) पुरुषोंके दम्य-सारथी (=चाबुक-सवार), देव-मनुष्योंके शास्ता, बुद्ध भगवान् हैं । वह देव-मार-ब्रह्मा सहित इस लोकको ; श्रमण-ब्राह्मणों सहित, देव-मनुष्यों सहित-(इस) प्रजा (=जनता) को, स्वयं (परम-तत्त्वको) जानकर साक्षात्कर जतलाते हैं । वह आदि-कल्याण, मध्य-कल्याण, अवसान (अन्तमें)-कल्याण, अर्थ-सहित =व्यंजनसहित, धर्मको उपदेशते हैं ; और केवल, परिपूर्ण, परिशुद्ध, ब्रह्मचर्यका प्रकाश करते हैं । इस प्रकारके अर्हतोंका दर्शन उत्तम होता है ।'

तब मेंडक गृहपति भद्र (=उत्तम) भद्र यानोंको जुड़वाकर, भद्र यानपर आरूढ़ हो, भद्र भद्र यानोंके साथ, भगवान्के दर्शनके लिये भद्रिकासे निकला । बहुतसे तैर्थिकों (=पंथाइयों)ने दूरसे ही मेंडक-गृहपतिको आते हुये देखा । देखकर मेंडक-गृहपतिको कहा—

"गृहपति ! तू कहाँ जाता है ?"

"भन्ते ! मैं श्रमण गौतमके दर्शनके लिये जाता हूँ ।"

"क्यों गृहपति ! तू क्रियावादी होकर अ-क्रियावादी श्रमण गौतमके दर्शनको जाता है ? गृह-पति ! श्रमण गौतम अ-क्रियावादी है, अ-क्रियाके लिये धर्म उपदेश करता है, उसी (रास्ते)से श्रावकोंको भी ले जाता है ।"

तब मेंडक गृहपतिको हुआ—

"निःसंशय वह भगवान् अर्हत सम्यक्-संबुद्ध होंगे, जिसलिये कि यह तैर्थिक निंदा करते हैं ।"

(और) जितना रास्ता यानका था, उतना यानसे जाकर (फिर) यानसे उतर, पैदल ही जहाँ भगवान् थे, वहाँ गया । जाकर भगवान्को अभिवादनकर, एक ओर बैठ गया । एक ओर बैठे मेंडक श्रेष्ठीको भगवान्ने आनुपूर्विक [3]कथा कही ०।० मेंडक गृहपतिको उसी आसनपर विमल विरज धर्म-चक्षु उत्पन्न हुआ—'जो कुछ समुदय-धर्म है, वह निरोध-धर्म है ।०। तब दृष्टधर्म० मेंडक गृहपतिने भगवान्को कहा—"आश्चर्य ! भन्ते !! आश्चर्य ! भन्ते !! जैसे कि भन्ते !० मैं भगवान्की शरण जानता हूँ, धर्म और भिक्षु-संघकी भी । आजसे भगवान्

---

१ महावग्ग ६. २ मुंगेर (विहार) । ३ देखो. पृ. २९ ।

मुझे सांजलि शरणागत उपासक जानें । भन्ते ! भिक्षु-संघ-सहित भगवान् मेरा कलका भोजन स्वीकार करें ।"

"भगवान्‌ने मौनसे स्वीकार किया ।"

मेंडक गृहपति भगवान्‌की स्वीकृतिको जान, आसनसे उठ, भगवान्‌को अभिवादनकर प्रदक्षिणाकर चला गया ।

तब मेंडक गृहपतिने उस रातके बीतनेपर उत्तम खाद्य-भोज्य तय्यार करा, भगवान्‌को काल सूचित कराया० । भगवान् पूर्वाह्न समय पहिनकर पात्र-चीवर ले, जहाँ मेंडक श्रेष्ठीका घर था, वहाँ गये । जाकर भिक्षुसंघ-सहित बिछे आसनपर बैठे । तब मेंडक गृहपतिकी भार्या, पुत्र, पुत्र-वधु (=सुणिसा) और दास जहाँ भगवान् थे, वहाँ गये; जाकर भगवान्‌को अभिवादनकर एक ओर बैठ गये । उनको भगवान्‌ने आनुपूर्विक कथा कही० । उनको उसी आसनपर वि-मल वि-रज धर्म-चक्षु उत्पन्न हुआ० । तब दृष्ट-धर्म० उन्होंने भगवान्‌को कहा—

"आश्चर्य ! भन्ते !! आश्चर्य ! भन्ते !!० हम भन्ते ! भगवान्‌की शरण जाते हैं, धर्म और भिक्षु संघकी भी । आजसे हमें भन्ते !० उपासक जानें ।"

तब मेंडक गृहपतिने अपने हाथसे बुद्ध-प्रमुख भिक्षु-संघको उत्तम खाद्य भोज्यसे संतर्पित-कर, पूर्णकर, भगवान्‌के भोजनकर, पात्रसे हाथ हटा लेनेपर० एक ओर बैठ गया । एक ओर बैठ मेंडक गृह-पतिने भगवान्‌को कहा—

"जब तक भन्ते ! भगवान् भद्दियामें विहार करते हैं, तब तक मैं बुद्ध-प्रमुख भिक्षु-संघकी ध्रुव-भक्त (=ससर्वदाके भोजन) से (सेवा करूँगा)।"

तब भगवान् ! मेंडक गृहपतिको धार्मिक कथा···(कह)····आसनसे उठकर चल दिये ।

+　　　　+　　　　+　　　　+

विशाखाका जन्म (वि. पू. ४६५) ।

[1]विशाखाका जन्म [2]अंगदेशके भद्दिया नगरमें मेंडक श्रेष्ठीके पुत्र धनंजय श्रेष्ठीकी अग्रमहिषी सुमना देवीकी कोखमें हुआ था । उसकी सात वर्षकी अवस्थामें शास्ता शैल ब्राह्मण आदिको···(बोध करानेके लिये)····महाभिक्षु-संघके साथ चारिका करते हुये, उस नगरको प्राप्त हुये । उस समय मेंडक गृहपति उस नगरके पाँच महापुण्यात्माओंमें प्रधान (=ज्येष्ठ) होकर, (नगर-) श्रेष्ठी-पद (पर) काम करता था । पाँच महापुण्य थे—मेंडक श्रेष्ठी, चन्द्र-पद्मा उसकी प्रधान भार्या, उसका ज्येष्ठ-पुत्र धनंजय, इसकी भार्या सुमना देवी, मेंडक श्रेष्ठीका दास पूरण । केवल मेंडक श्रेष्ठी ही नहीं, बिंबसार-राजाके राज्यमें पाँच (जने) अमित भोगवाले थे—जोतिय, जटिल, मेंडक, पुण्णक, (=पूर्णक), और काक-वलिय ।

उनमेंसे मेंडक श्रेष्ठीने दश-बल (=बुद्ध) के अपने नगरमें आनेकी बात जानकर, पुत्र धनंजय श्रेष्ठीकी कन्या विशाखाको बुलाकर कहा—

"अम्म ! तेरा भी मंगल है, हमारा भी मंगल है । अपने परिवारकी पाँचसौ कन्याओं (तथा) पाँचसौ दासियोंके साथ, पाँचसौ रथोंपर चढ़ दशबलकी अगवानी कर ।"

---

१ धम्मपद. अ. क. ४:८ । २ गंगाके दक्षिण, वर्तमान भागलपुर और मुंगेर जिले (विहार)।

उसने 'अच्छा' कह वैसा ही किया। कारण अ-कारण जाननेमें कुशल होनेसे जितना मार्ग यानका था, उतना यानसे जा उतरकर पैदल ही शास्ताके पास जा वन्दनाकर एक ओर खड़ी हो गई। भगवान्‌ने उसे चर्याके संबंधमें देशनाकी। देशनाके अन्तमें वह पांचसौ कन्याओंके साथ स्रोत-आपत्ति-फलमें प्रतिष्ठित हुई। मेंण्डक श्रेष्ठीने भी शास्ताके पास आकर, धर्म-कथा सुन स्रोत-आपत्ति-फलमें प्रतिष्ठित हो, दूसरे दिनके लिये, निमंत्रितकर, दूसरे दिन अपने घरमें उत्तम खाद्य-भोज्य बुद्ध-प्रमुख भिक्षु-संघको परोसकर, इस प्रकार आठ मास महादान दिया। शास्ता भद्दिया (=मुंगेर) नगरमें इच्छानुसार विहारकर, चले गये।

उस समय बिम्बसार और प्रसेनजित् कोसल एक दूसरेके बहनोई थे। एक दिन कोसल-राजाने सोचा—'बिंबसारके राज्यमें पांच अमित भोगवाले (आदमी) बसते हैं, मेरे राज्यमें एक भी वैसा नहीं है। क्यों न बिंबसारके पास जाकर, एक महापुण्यको मांग लाऊं।' वह वहां जाकर, राजाके खातिर करनेके बाद—'किस कारणसे आये?' पूछे जानेपर—'तुम्हारे राज्यमें पांच अमित-भोग महापुण्य बसते हैं, उनमेंसे एकको ले जानेके लिये आया हूँ। उनमेंसे एक मुझे दो।"

"महाकुलोंको हम हटा नहीं सकते।"—कहा।

"विना पाये न जाऊँगा।" —कहा।

राजाने अमात्योंसे सलाह करके—

"जोति आदि महाकुलोंका चलाना पृथिवीके चलानेके समान है। मेंडक महाश्रेष्ठीका पुत्र धनंजय श्रेष्ठी है, उसके साथ सलाहकर, तुम्हें उत्तर दूँगा।" कह, उसको बुलवाकर—

"तात! कोसल-राजा एक धनी श्रेष्ठी ले जानेको कहता है। तुम उसके साथ जाओगे?"

"आपके भेजनेपर, देव! जाऊँगा।"

"तो तात! प्रबंध करके जाओ।"

उसने अपना कृत्य समाप्त कर लिया। राजाने भी उसका बहुत सत्कार करके—'इसे ले जाओ'—कह प्रसेनजित राजाको दे दिया। वह उसको लेकर एक रास्तेमें एक रात ठहरकर जाते हुए, एक स्थान पर डेरा डाल दिया। धनंजय श्रेष्ठीने पूछा—

"यह किसका राज्य है?"

"मेरा है, श्रेष्ठी!"

"यहांसे श्रावस्ती कितनी दूर है?"

"यहांसे सात योजनपर।"

"नगरके भीतर बहुत भीड़ होती है, हमारा परिजन (=नोकर-चाकर) भारी है। यदि आज्ञा हो तो, देव! यहीं बसें।"

राजा, 'अच्छा' कह, उस स्थान पर नगर बनवा, उसे देकर चला गया। सायं वास-स्थान पानेके कारण '[1]साकेत' यही नगरका नाम हुआ।

---

१. अयोध्या, जि० फैजाबाद (युक्तप्रान्त)।

[1]तब भद्दियामें इच्छानुसार विहारकर, मेंडक गृहपतिको बिना पूछेही, साढ़े बारह सौके महान् भिक्षु-संघके साथ, भगवान् जहां [2]अंगुत्तराप था, वहां चारिकाके लिये चल दिये। मेंडक गृहपतिने सुना, कि भगवान्० अंगुत्तरापको चारिकाके लिये चले गये। तब मेंडक गृह-पतिने दासों और कमकरोंको आज्ञा दी—

"तो भणे! बहुत सा लोन, तेल, मधु, तंडुल और खाद्य गाड़ियोंपर लादकर आओ। साढ़े बारह सौ ग्वाले भी, साढ़े बारह सौ धेनु (=दूध देने वाली) गायोंको लेकर आवें। जहां हम भगवान्को देखेंगे, वहां गर्मधारवाले दूधके साथ भोजन करायेंगे।"

तब मेंडक गृहपतिने रास्तेमें एक जंगल (=कांतार) में भगवान्को पाया। जहां भगवान् थे वहां गया, जाकर भगवान्को अभिवादनकर एक ओर खड़ा हो गया। एक ओर खड़े हुए, मेंड़क श्रेष्ठीने भगवान्को कहा—

"भन्ते! भिक्षु-संघ-सहित भगवान् कलका मेरा भात स्वीकार करें।"

भगवान्ने मौनसे स्वीकार किया।

तब मेंडक श्रेष्ठी भगवान्की स्वीकृतिको जान, भगवान्को अभिवादनकर प्रदक्षिणाकर चला गया।

मेंडक गृह-पतिने उस रातके बीत जानेपर, उत्तम खाद्य-भोज्य तय्यार करा, भगवान्को काल सूचित कराया०। तब भगवान् पूर्वाह्न समय, पहिनकर पात्रचीवर ले, जहां मेंडक गृहपति का परोसना था, वहां गये। जाकर भिक्षु-संघ-सहित बिछे आसनपर बैठे। तब मेंडक गृहपतिने साढ़े बारह सौ गोपालोंको आज्ञा दी—

"तो भणे! एक एक गाय ले, एक एक भिक्षुके पास खड़े हो जाओ, गर्मधारवाले दूधसे भोजन करायेंगे।" तब मेंडक गृह-पतिने अपने हाथसे बुद्ध-प्रमुख भिक्षु-संघको उत्तम खाद्य-भोज्यसे संतर्पित किया, पूर्ण किया। गर्मधारके दूधसे आना कानी करते, भिक्षु (उसे) ग्रहण न करते थे।

(तब भगवान्ने कहा)—"ग्रहण करो, परिभोग करो, भिक्षुओ!"

मेंडक गृह-पति बुद्ध-प्रमुख भिक्षुसंघको उत्तम खाद्य-भोज्य तथा धार-उष्ण दूधसे, अपने हाथसे संतर्पितकर पूर्णकर० एक ओर बैठ गया। एक ओर बैठे मेंडक गृहपतिने भगवान्से कहा—

"भन्ते! जल-रहित, खाद्य-रहित, कांतार (=बीरान) मार्गभी हैं; बिना पाथेयके (उनसे) जाना सुकर नहीं। अच्छा हो, भन्ते! भगवान् पाथेयकी अनुज्ञा दें।"

तब भगवान् मेंडक श्रेष्ठीको धर्म-उपदेश (कर)···आसनसे उठकर चल दिये। भगवान्ने इसी प्रकरणमें धार्मिक कथा कह, भिक्षुओंको आमंत्रित किया—

"अनुज्ञा करता हूं, भिक्षुओ! पांच गोरसकी—दूध, दही, तक्र (=छाछ), नवनीत (=मक्खन) और घी (=सर्पिप्)।

---

१. महावग्ग. ६। २. मुंगेर भागलपुर जिलोंका गंगाके उत्तरका भाग। अङ्ग-उत्तर आप = पानी (=गंगा) के उत्तरका अङ्ग।

"भिक्षुओ ! (कोई कोई) जल-रहित, खाद्य-रहित, कांतार-मार्ग हैं; (जिनसे) बिना पाथेयके जाना सुकर नहीं । अनुज्ञा देता हूँ, भिक्षुओ ! तंडुलार्थी (=तंडुल चाहनेवाला) तंडुलका, मूँग-चाहनेवाला मूँगका, उड़द चाहनेवाला उड़दका, लोन चाहनेवाला लोनका, गुड़ चाहनेवाला गुड़का, तेल चाहनेवाला तेलका; घी चाहनेवाला घीका पाथेय ढूँढ़ें ।"

"भिक्षुओ ! (कोई कोई) श्रद्धालु और प्रसन्न मनुष्य होते हैं। वह कप्पियकारक (=भिक्षुका अनुचर गृहस्थ)के हाथमें हिरण्य (=सोना या सोनेका सिक्का) देते हैं—'इससे आर्यको जो विहित है, वह ले देना'। भिक्षुओ ! उससे जो विहित हो, उसे उपभोग करनेकी अनुज्ञा देता हूँ। किन्तु, भिक्षुओ ! जातरूप (=सोना)—रजत (=चाँदी) का उपभोग करना या संग्रह करना, मैं किसी भी हालतमें नहीं कहता ।"

क्रमशः चारिका करते हुए भगवान् जहाँ आपण था, वहाँ पहुँचे ।

\+ + + +

(१२)

पोतलिय-सुत्त । (त्रि. पृ. ४५८)

[1]ऐसा मैंने सुना—एक समय भगवान् अंगुत्तराप-(देश)में अंगुत्तरापोंके आपण नामक निगम (=कस्बे)में विहार करते थे ।

तब भगवान् पूर्वाह्न समय (चीवर) पहिनकर पात्र-चीवर ले, भिक्षा-चारके लिये आपणमें प्रविष्ट हुये । आपणमें पिंड-चार करके पिंड-पात (=भोजन)-समाप्तकर, एक वन-खंडमें दिनके विहारके लिये गये । भीतर जाकर दिनके विहारके लिये एक वृक्षके नीचे बैठे । पोतलिय गृह-पति भी निवासन (=पोशाक) प्रावरण (=चादर) पहिने, छाता जूता धारण किये, जंघा-विहार (=चहल-कद़मी) के लिये टहलता, जहाँ वह वनखंड था वहाँ गया । वनखंडमें घुसकर, जहाँ भगवान् थे वहाँ पहुंचा । जाकर भगवान्‌के साथ···संमोदन कर··· (और) एक ओर खड़ा हो गया । एक ओर खड़े हुये पोतलिय गृह-पतिको भगवान्‌ने यह कहा—

"गृहपति ! आसन विद्यमान हैं, यदि चाहते हो, तो बैठो ।"

ऐसा कहने पर पोतलिय गृह-पति—'गृहपति (=गृहस्थ, वैश्य)' कहकर मुझे श्रमण गौतम पुकारता है'—कुपित और अ-सन्तुष्ट हो चुप रहा ।

दूसरी बार भी० । ० ।

तीसरी बार भी० । तब पोतलिय गृहपतिने—'गृहपति कहकर०'—कुपित और असन्तुष्ट हो भगवान्‌से कहा—

---

१ म. नि. २:१:४. (यहाँ अट्ठकथामें है)—"अङ्गही यह जनपद है । मही (? गंगा) नदीके उत्तरमें जो पानी है, उसके अ-दूर उत्तर होनेसे उत्तराप कहा जाता है । किस महीके 'उत्तरमें ···' ? महामहीके ।···। यह जम्बूद्वीप दश-सहस्र-योजन बड़ा है । इसमें चार हजार योजन प्रदेश जलसे भरा होनेसे, समुद्र कहा जाता है । (और) तीन हजार योजनमें मनुष्य बसते हैं । तीन हजार योजनमें चौरासी हजार कूटों (=चोटियों)से सुशोभित, चारों ओर बहती पांच सौ नदियोंसे विचित्र, पांच सौ योजन ऊँचा हिमवान् (=हिमालय) है । जहां पर कि—लम्बाई, चौड़ाई, गहराईमें पचास पचास योजन, घेरेमें डेढसौ योजन, अनवतप्त-दह, कण्णमुंड-दह, रथकार-दह, छद्दन्त-दह, कुणाल-दह, मंदाकिनी, सिंहप्पपातक (=सिंह-प्रपातक) यह सात महासरोवर प्रतिष्ठित हैं । अनोतत्त-दह, सुदर्शन-कूट, चित्र-कूट, काल-कूट, गंधमादन-कूट, कैलाश-कूट इन पाँच कूटों (=गिरि-शिखरों) से घिरा है । ··· । इसके चारों ओर सिंह-मुख, हस्ति-मुख, अश्व-मुख, गो-(=वृषभ) मुख—चार मुख हैं । जिनसे चार नदियां निकलती हैं । सिंह-मुखसे निकली नदीके किनारे सिंह बहुत होते है । हस्ति आदि मुखोंसे (निकली नदियोंके किनारे) हस्ती, अश्व और बैल ।···। गङ्गा, यमुना, अचिरवती (=रापती), सरभू (=सरयू , घाघरा), मही (=गंडक) ··· यह पाँच नदियाँ हिमवान्‌से निकलती हैं । इनमें जो यह पाँचवीं मही है, वही यहाँ महीसे अभिप्रेत है । ··· । इस अंगुत्तराप जनपदमें आपण···निगममें बीस हजार आपणों (=दुकानों)के मुँह विभक्त थे । इस प्रकार आपणों (=दूकानों) से भरे होनेसे, आपण नाम हो गया । उस निगमके अ-दूर, नदीतीर-पर घनी छायावाला रमणीय भूमि-भागवाला वन-खंड था । उसमें भगवान् विहरते थे ।

"हे गौतम ! तुम्हें यह उचित नहीं, तुम्हें यह योग्य नहीं, जो मुझे गृह-पति कहकर पुकारते हो ।"

"गृहपति ! तेरे वही आकार हैं, वही लिङ्ग हैं, वही निमित्त (=लिङ्ग) हैं, जैसे कि गृह-पति के ।"

"चूंकि हे गौतम ! मैंने सारे कर्मान्त (=खेती) छोड़ दिये, सारे व्यवहार (=व्यापार, वाणिज्य) समाप्त कर दिये । हे गौतम ! मेरे पास जो धन, धान्य, रजत (=चांदी), जातरूप (=सोना) था, सब पुत्रोंको तर्का दे दिया । सो मैं (खेती आदिमें) न ताकीद करनेवाला, न कटु कहनेवाला हूं ; सिर्फ खाने पहिरने भरसे वास्ता रखने वाला (हो), विहरता हूं ।…"

"गृहपति ! तू जिस प्रकार व्यवहारके उच्छेदको कहता है । आर्योंके विनयमें व्यवहार-उच्छेद, (इससे) दूसरी ही प्रकार होता है ।"

"तो भन्ते ! आर्य-विनयमें व्यवहार-उच्छेद कैसे होता है ? अच्छा ! भन्ते ! भगवान् मुझे उस प्रकारका धर्म-उपदेश करें, जैसे कि आर्य-विनयमें व्यवहार-उच्छेद होता है ।"

"तो गृहपति ! सुनो, अच्छी तरह मनमें करो ; कहता हूं ।"

"अच्छा भन्ते !" पोतलिय गृह-पतिने भगवान्‌को कहा । भगवान्‌ने कहा—

"गृहपति ! आर्य-विनय (=आर्य-धर्म, आर्य-नियम) में यह आठ धर्म व्यवहार-उच्छेद करनेके लिये हैं । कौन से आठ ? (१) अ-प्राणातिपात (=अहिंसा) के लिये, प्राणातिपात छोड़ना चाहिये । (२) दिया-लेने (=दिन्नादान) के लिये, अ-दिन्नादान (=चोरी, न दिया लेना) छोड़ना चाहिये । (३) सत्य बोलनेके लिये, मृपावाद छोड़ना चाहिये । (४) अ-पिशुन-वचन (=न चुगली करना) के लिये, पिशुन-वचन छोड़ना चाहिये । (५) अ-गृद्ध-लोभ (=निर्लोभ) के लिये गृद्ध-लोभ छोड़ना चाहिये । (६) अ-निन्दा-दोषके लिये, निन्दा छोड़ना चाहिये । (७) अ-क्रोध-उपायास (=परेशानी) के लिये क्रोध-उपायास छोड़ना चाहिये । (८) अन्-अतिमानके लिये, अतिमान (=अभिमान) को छोड़ना चाहिये । गृहपति ! संक्षिप्तसे कहे, विस्तारसे न विभाजित किये, यह आठ धर्म, आर्य-विनयमें व्यवहार-उच्छेद करनेके लिये हैं ।"

"भन्ते ! भगवान्‌ने जो मुझे विस्तारसे न विभाजित किये, संक्षिप्तसे, आठ धर्म० कहे । अच्छा हो भन्ते ! (यदि) भगवान् अनुकम्पाकर (उन्हें) विस्तारसे विभाजित करें ।"

"तो गृहपति ! सुनो, अच्छी तरह मनमें करो, कहता हूँ ।"

"अच्छा भन्ते !" पोतलिय गृहपतिने भगवान्‌को उत्तर दिया । भगवान् बोले—

"गृहपति ! 'अप्राणातिपातके लिये प्राणातिपात छोड़ना चाहिये, यह जो कहा, किस कारणसे कहा ? गृहपति ! आर्य-श्रावक ऐसा सोचता है—'जिन संयोजनोंके कारण मैं प्राणातिपाती होऊँ, उन्हीं संयोजनोंको छोड़नेके लिये, उच्छेदके लिये मैं लगा हुआ हूं, और मैं ही प्राणातिपाती होगया । प्राणातिपातके कारण, आत्मा (=अपना चित्त) भी मुझे धिक्कारता

है । प्राणातिपातके कारण, विज्ञ लोग भी जानकर धिकारते हैं । प्राणातिपातके कारण, काया छोड़नेपर, मरनेके बाद, दुर्गति भी होनी है । यही संयोजन (=बंधन) है, यही नीवरण (=ढकन) है, जो कि यह प्राणातिपात । प्राणातिपातके कारण जो विघात-परिदाह (=द्वेष-जलन) और आस्रव (=चित्त-दोष) उत्पन्न होते हैं, प्राणातिपातसे विरतको वह विघात-परिदाह, आस्रव नहीं उत्पन्न होते । 'अ प्राणातिपातके लिये, प्राणातिपात छोड़ना चाहिये' यह जो कहा, वह इसी कारणसे कहा ।

"दिन्नादानके लिये अदिन्नादान छोड़ना चाहिये, यह जो कहा, किस कारणसे कहा ? गृहपति ! आर्य-श्रावक ऐसा सोचता है, जिन संयोजनोंके हेतु मैं अदिन्नादायी (=विना दिया लेनेवाला) होताहूं, उन्हीं संयोजनोंके छोड़नेके लिये, उच्छेद करनेके लिये, मैं लगा हुआ हूं; और मैं ही अ-दिन्नादायी होगया! अ-दिन्नादानके कारण आत्मा भी मुझे धिकारता है। अ-दिन्ना-दानके कारण विज्ञ लोग भी जानकर धिकारते हैं । अ-दिन्नादानके कारण काया छोड़नेपर, मरनेके बाद दुर्गति भी होनी है। यही संयोजन है, यही नीवरण है, जो कि यह अ-दिन्नादान । अ-दिन्ना-दानके कारण विघात (=पीड़ा) परिदाह (=जलन) (और) आस्रव उत्पन्न होते हैं; अ-दिन्नादान-विरतको वह० नहीं होते । 'दिन्नादानके लिये अ-दिन्नादान छोड़ना चाहिये' यह जो कहा, वह इसी कारण कहा ।

"अ-पिशुन-वचनके लिये० ।

"अ-गृद्ध-लोभके लिये० ।

"अ-निन्दा-रोषके लिये० ।

"अ-क्रोध-उपायासके लिये० ।

"अन्-अतिमानके लिये० ।

"गृहपति यह आठ ! संक्षिप्तसे कहे, विस्तारसे विभाजित, आर्य-विनयमें व्यवहार-उच्छेद करनेवाले हैं ।···(किंतु इनसे) सर्वथा सब कुछ व्यवहारका उच्छेद नहीं होता ।"

"तो कैसे भन्ते ! आर्य-विनयमें···सर्वथा सब कुछ व्यवहार उच्छेद होता है ? अच्छा हो भन्ते ! भगवान् मुझे वैसे धर्मका उपदेश करें, जैसे कि आर्यविनयमें···सर्वथा सब कुछ व्यवहारका उच्छेद होता है ?"

"तो गृहपति ! सुनो, अच्छी तरह मनमें करो, कहता हूं ।"

"अच्छा भन्ते ।"०।०।

"गृहपति ! जैसे भूखसे अति-दुर्बल कुक्कुर गो-घातकके सूना (=मांस काटनेका पीढ़ा) के पास खड़ा हो । चतुर गो-घातक या गो-घातकका अन्तेवासी उसको मांस-रहित लोहूमें सनी ···हड्डी फेंक दे । तो क्या मानते हो, गृहपति ! क्या वह कुक्कुर उस हड्डी ····को खाकर, भूखकी दुर्बलताको हटा सकता है ?"

"नहीं, भन्ते !"

"सो किस हेतु ?"

"भन्ते ! वह लोहू-में चुपड़ी मांस-रहित हड्डी है । वह कुक्कुर केवल परेशानी=पीड़ाकाही भागी होगा ।"

"ऐसे ही गृहपति ! आर्य-श्रावक सोचता है—'बहुत दुःख बहुत परेशानीवाले हड्डी-...से भगवान्ने भोगोंको कहा है, इनमें बहुतसी बुराइयां हैं। अतः इसको यथार्थसे, अच्छी तरह प्रज्ञासे, देखकर, जो यह अनेकतावाली अनेकमें लगी उपेक्षा है, उसे छोड़, जो यह एकान्त-वाली एकान्तमें लगी (उपेक्षा) है, जिसमें लोकके आमिष (=विष) का उपादान (=ग्रहण, स्वीकार) सर्वथा ही टूट जाते हैं; उसी उपेक्षाकी भावना करता है।

"जैसे गृहपति ! गिद्ध, कौवा या चील्ह मांसके टुकड़ेको लेकर उड़े, उसको गिद्ध भी, कौवे भी, चीलह भी पीछे उड़ उड़कर नोचें, खसोटें। तो क्या मानता है, गृहपति ! वह गिद्ध कौआ या चील्ह, यदि शीघ्र ही उस मांसके टुकड़ेको न छोड़ दे, तो क्या वह उसके कारण मरणको या मरणान्त दुःखको पावेगा ?"

"ऐसा ही, भन्ते !"

"ऐसे ही, गृहपति ! आर्य-श्रावक सोचता है—भगवान्ने मांसके टुकड़ेकी भांति बहुत दुःखवाले बहुत परेशानीवाले कामोंको कहा है; इनमें बहुत सी बुराइयां हैं। इस प्रकार इसको अच्छी तरह प्रज्ञासे देखकर, जो यह अनेकताकी, अनेकमें लगी उपेक्षा है, उसे छोड़, जो यह एकान्तकी एकान्तमें लगी उपेक्षा है; जिसमें लोकामिषके उपादान (=ग्रहण) सर्वथा ही उच्छिन्न हो जाते हैं; उसी उपेक्षाकी भावना करता है।

"जैसे गृहपति ! पुरुष तृणकी उल्का (=मशाल, लुकारी)को ले, हवाके रुख जाये। तो क्या मानते हो, गृहपति ! यदि वह पुरुष शीघ्र ही उस तृण-उल्काको न छोड़ दे, तो (क्या) वह तृण-उल्का उसके हथेलीको (न) जला देगी, या बांहको (न) जला देगी, या दूसरे अंग प्रत्यंगको न जला देगी... ?"

"ऐसा ही, भन्ते।"

"ऐसे ही, गृहपति ! आर्य-श्रावक सोचता है—तृण-उल्काकी भांति बहुत दुःखवाले बहुत परेशानीवाले० हैं० ।०।

"जैसे कि गृहपति ! धूम-रहित, अर्चि (=लौ)-रहित अंगारका (=भउर, अग्नि-चूर्ण) हो। तब जीवित-इच्छुक, मरण-अनिच्छुक, सुख-इच्छुक, दुःख-अनिच्छुक पुरुष आवे; उसको दो बलवान् पुरुष अनेक बाहुओंसे पकड़कर अङ्गारकामें डाल दें। तो क्या मानते हो गृहपति ! क्या वह पुरुष इस प्रकार चिताहीमें शरीर (नहीं) डालैगा ?"

"हां भन्ते !"

"सो किस हेतु ?"

"भन्ते ! उस पुरुषको मालूम है, यदि मैं इन अङ्गारकाओंमें गिरूँगा, तो उसके कारण मरूँगा या मरणांत दुःख पाऊँगा।"

"ऐसेही गृहपति आर्य-श्रावक यह सोचता है—अङ्गारका की भांति दुःखद०। इसमें बहुत बुराइयां हैं।०।

" जैसे गृह-पति ! पुरुष आरामकी रमणीयता-युक्त, वन-रमणीयता-युक्त, भूमि-रमणीयता-युक्त, पुष्करिणी-रमणीयता-युक्त स्वप्नको देखे । सो जागनेपर कुछ न देखै । ऐसेही गृहपति ! आर्य-श्रावक यह सोचता है—भगवान्‌ने स्वप्न-समान (=स्वप्नोपम) बहुत दुःखद० कहा है ।० ।

"जैसे कि गृह पति ! (किसी) पुरुष (के पास) मँगनीके भोग, यान या पुरुषके उत्तम मणि-कुंडल—हों । वह ० उन मंगनीके भोगोंके साथ " बाजारमें जाये । उसको देखकर आदमी कहैं—कैसा भोग-संपन्न पुरुष है ! भोगी लोग ऐसे ही भोगका उपभोग करते हैं !! सो उसको मालिक (=स्वामी) ० जहाँ देखें वहां कनात लगादें । तो क्या मानते हो, गृहपति ! क्या उस पुरुषका दूसरा (भावसमझना) युक्त है ?"

"हाँ, भन्ते !"

"सो किस हेतु ?"

" (क्योंकि जेवरोंके) मालिक कनात घेर देते है । "

" ऐसेही गृहपति ! आर्य-श्रावक ऐसा सोचता है—मंगनीकी चीजके समान (=याचितकूपम)० कहा है ।० ।

" जैसे गृहपति ! ग्राम या निगमसे अ-दूर, भारी वन-खण्ड हो । वहाँ फल-सम्पन्न=उत्पन्न-फल वृक्ष हो ; कोई फल भूमिपर न गिरा हो । तब फल-इच्छुक, फल-गवेषक=फल-खोजी पुरुष घूमते हुये आये । वह उस वनके भीतर जाकर, उस फल-संपन्न० वृक्षको देखै । उसको यह हो— यह वृक्ष फल-सम्पन्न० है, कोई फल भूमिपर नहीं गिरा है; मैं वृक्षपर चढ़ना जानता हूँ । क्यों न मैं चढ़कर इच्छा-भर खाऊँ, और फांड (=उच्छङ्ग, उत्सङ्ग) भर ले चलूँ । तब दूसरा फल-इच्छुक, फल-गवेषी=फलखोजी, पुरुष घूमता हुआ तेज़ कुल्हाड़ा लिये उस वन-खण्डके भीतर जाकर, उस वृक्षको देखै । उसको ऐसा हो—यह वृक्ष फल सम्पन्न० है, मैं वृक्षपर चढ़ना नहीं जानता ; क्यों न इस वृक्षको जड़से काटकर इच्छा भर खाऊँ, और फांड़ भर ले चलूँ । वह उस वृक्षको जड़से काटै । तो क्या मानते हो, गृहपति ! वह जो पुरुष पेड़पर पहिले चढ़ा था, यदि जल्दीही न उतर आये, तो (क्या) वह गिरता हुआ वृक्ष उसके हाथको (न) तोड़ देगा, पैरको (न) तोड़ देगा, या दूसरे अङ्गप्रत्यङ्गको (न) तोड़ देगा ? वह उसके कारण क्या मरणको (न) प्राप्त होगा, या मरणान्त दुःखको (न प्राप्त होगा) ?

" हाँ, भन्ते ! "

" ऐसे ही गृह-पति ! आर्य-श्रावक सोचता है—वृक्ष-फल-समान कामोंको० कहा है ; इनमें बहुत सी बुराइयां (=आदि-नव) हैं । इस प्रकार इसको यथार्थतः, अच्छी प्रकार, प्रज्ञासे देखकर, जो यह अनेकता-वाली अनेकमें लगी उपेक्षा है, उसे छोड़ ; जो यह एकांतकी, एकांतमें लगी उपेक्षा है, जिसमें लोक-आमिषका उपादान (=ग्रहण) सर्वथाही उच्छिन्न हो जाता है, उसी अपेक्षाकी भावना करता है ।

" सो वह गृहपति ! आर्य-श्रावक इसी अनुपम (=अनुसार) उपेक्षा, स्मृतिकी पारिशुद्धि (=स्मरणको शुद्धि करने वाली उपेक्षा) को पाकर, अनेक प्रकारके पूर्व निवासों

(=पूर्व जन्मों) को स्मरण करता है;—जैसे कि एक जन्म भी, दो जन्म भी, तीन जन्म भी०[1] इस प्रकार आकार-सहित उद्देश (=नाम)-सहित, अनेक प्रकारके पूर्व-निवासोंको स्मरण करता है।

"सो वह गृह-पति ! आर्य-श्रावक इसी अनुपम उपेक्षा स्मृति-पारिशुद्धिको पाकर, दिव्य वि-शुद्ध अ-मानुष दिव्य-चक्षुसे, मरते उत्पन्न होते, नीच-ऊँच, सुवर्ण-दुर्वर्ण, सुगत-दुर्गत० कर्मानुसार (फलको) प्राप्त, प्राणियोंको जानता है।

"सो वह गृह-पति ! आर्य-श्रावक इसी अनुपम उपेक्षा स्मृति-पारिशुद्धिको पाकर, इसी जन्ममें आस्रवों (=चित्त-दोषों) के क्षयसे, अन्-आस्रव चित्त-विमुक्तिको जानकर, प्राप्तकर, विहरता है। गृहपति ! आर्य-विनयमें इस प्रकार···सर्वथा सभी कुछ सब व्यवहारका उच्छेद होता है। तो क्या मानता है, गृह-पति ! जिस प्रकार आर्य-विनयमें···सर्वथा सभी कुछ व्यवहार-उच्छेद होता है, क्या तू वैसा व्यवहार-समुच्छेद अपनेमें देखता है ?"

"भन्ते ! कहाँ मैं और कहां आर्य-विनयमें···व्यवहार-समुच्छेद ! ! भन्ते ! पहिले अन्-आजानीय अन्य-तैर्थिक (=पंथाई) परिव्राजकोंको, हम आजानीय (=परिशुद्ध, शुद्ध-जातिका) समझते थे, अनाजानीय होतोंको आजानीयका भोजन कराते थे, अन्-आजानीय होतोंको आजानीय-स्थानपर स्थापित करते थे। आजानीय भिक्षुओंको अन्-आजानीय समझते थे, आजानीय होतोंको अन्-आजानीय भोजन कराते थे, अजानीय होतोंको अन्-आजानीय स्थानपर रखते थे। भन्ते ! अब हम अन्-आजानीय होते अन्य-तैर्थिक परिव्राजकोंको अन्-आजानीय जानेंगे, ०अन्-आजानीय भोजन करायेंगे, ०अन्-आजानीय स्थानपर स्थापित करेंगे। भन्ते ! अब हम आजानीय होते भिक्षुओंको आजानीय समझेंगे, ०आजानीय भोजन करायेंगे, ०आजानीय स्थानपर रक्खेंगे। अहो ! भन्ते ! भगवान्‌ने मुझे श्रमणोंमें श्रमण-प्रेम पैदा कर दिया, श्रमणों (=साधुओं) में श्रमण-प्रसाद (=श्रमणोंके प्रति प्रसन्नता), ०श्रमण-गौरव०। आश्चर्य ! भन्ते ! आश्चर्य ! भन्ते !० आजसे भगवान् मुझे अञ्जलि-बद्ध शरणागत उपासक धारण करें।"

(१३)

सेल-सुत्त (वि पृ. ४५८) ।

[1]ऐसा मैंने सुना—एक समय भगवान् साढ़े बारह सौ भिक्षुओंके महाभिक्षु-संघके साथ, अंगुत्तराप (देशमें) चारिका करते हुये, जहाँपर...आपण नामक निगम (=कस्बा) था, वहाँ पहुँचे ।

केणिय जटिलने सुना—शाक्य-कुलसे प्रव्रजित-शाक्य पुत्र श्रमण गौतम साढ़े बारह सौ भिक्षुओंके महाभिक्षु-संघके साथ, अंगुत्तरापमें चारिका करते हुए, आपणमें आये हैं । उन भगवान् गौतमका ऐसा कल्याण कीर्ति-शब्द फैला हुआ है ०।०[2] । इस प्रकारके अर्हतोंका दर्शन उत्तम होता है ।

तब केणिय जटिल जहां भगवान् थे, वहाँ गया, जाकर भगवान्‌के साथ···संमोदन कर,···(कुशल-प्रश्न पूछ) एक ओर बैठ गया । एक ओर बैठे केणिय जटिलको भगवान्‌ने धर्म-उपदेशकर, संदर्शन, समादपन, समुत्तेजन, संप्रशंसन किया । भगवान्‌के धर्म-उपदेश-द्वारा संदर्शित···हो, केणिय जटिलने भगवान्‌को कहा—

"आप गौतम भिक्षु-संघ-सहित कलका मेरा भोजन स्वीकार करें ।"

ऐसा कहने पर भगवान्‌ने केणिय जटिलको कहा—

"केणिय ! भिक्षु-संघ बड़ा है, साढ़े बारह सौ भिक्षु हैं; और तुम ब्राह्मणोंमें प्रसन्न (=श्रद्धालु) हो ।"

दूसरी बार भी केणिय जटिलने भगवान्‌को कहा—

"क्या हुआ हे गौतम ! जो बड़ा भिक्षु-संघ है, साढ़े बारहसौ भिक्षु हैं, और मैं ब्राह्मणोंमें प्रसन्न हूँ ? आप गौतम भिक्षु-संघ-सहित कलका मेरा भोजन स्वीकार करें ।"

दूसरी बार भी भगवान्‌ने केणिय जटिलको यही कहा—० ।

०तीसरी बार भी केणिय जटिलने भगवान्‌को यही कहा—० ।

भगवान्‌ने मौन रहकर स्वीकार किया ।

तब केणिय जटिल भगवान्‌की स्वीकृतिको जान आसनसे उठ, जहाँ उसका आश्रम था, वहाँ गया । जाकर मित्र-अमात्य, जाति-बिरादरीवालोंको कहा—

"आप सब मेरे मित्र-अमात्य, जाति-बिरादरी सुनें—मैंने भिक्षु-संघ-सहित श्रमण गौतम को कलको भोजनके लिये निमंत्रित किया है, सो आप लोग शरीरसे सेवा करें ।"

"अच्छा, हो !" केणिय जटिलको, ०मित्र-अमात्य, जाति-बिरादरीने कहा । (उनमें से) कोई चूल्हा खोदने लगे, कोई लकड़ी फाड़ने लगे, कोई बर्तन धोने लगे, कोई पानीके मटके (=मणिक) रखने लगे, कोई आसन बिछाने लगे । केणिय जटिल स्वयं पट-मंडप (=मंडल-माल) तैयार करने लगा ।

---

१. म. नि. २:९:३ । सुत्त-निपात. ३:७ । २. देखो पृ. ३९।

उस समय निघण्टु, कल्प (=केटुभ)—अक्षर-प्रभेद सहित तीनों वेद तथा पाँचवें इतिहासमें पारङ्गत, पदक (=कवि), वैयाकरण, लोकायत (शास्त्र) तथा महापुरुषलक्षण (=सामुद्रिक-शास्त्र) में निपुण (=अनवय), शैल नामक ब्राह्मण आपणमें, वास करता था; और तीनसौ विद्यार्थियों (=माणव) को मंत्र (=वेद) पढ़ाता था। उस समय शैल ब्राह्मण केणिय जटिल में अत्यन्त प्रसन्न (=श्रद्धावान्) था। ···। तब (वह) तीनसौ माणवकोंके साथ जंघा-विहार (=चहल-कदमी) के लिये टहलता हुआ, जहाँ केणिय जटिलका आश्रम था, वहाँ गया। शैल ब्राह्मणने देखा कि केणिय जटिलके जटिलों (=जटा-धारी, वाणप्रस्थी शिष्यों) में, कोई चूल्हा खोद रहे हैं०, तथा केणिय जटिल स्वयं मंडल-माल तय्यार कर (रहा है)। देखकर (उसने) केणिय जटिलसे कहा—

"क्या आप केणियके यहाँ आवाह होगा, विवाह होगा, या महा-यज्ञ आ पहुँचा है? क्या वल-काय (=सेना)-सहित मगध-राज श्रेणिक बिंबसार, कलके भोजनके लिये निमंत्रित किया गया है?"

"नहीं, शैल! न मेरे यहाँ आवाह होगा, न विवाह होगा, और न वल-काय-सहित मगध-राज श्रेणिक बिंबसार कलके भोजके लिये निमंत्रित है। बल्कि मेरे यहाँ महा-यज्ञ है। शाक्य-कुलसे प्रव्रजित शाक्य-पुत्र श्रमण गौतम साढ़े बारहसौ भिक्षुओंके महा भिक्षु-संघ-केसाथ अंगुत्तरापमें चारिका करते, आपणमें आये हैं। उन भगवान् गौतमका ऐसा मंगल कीर्ति-शब्द फैला हुआ है—वह भगवान् अर्हत्, सम्यक्-संबुद्ध, विद्या आचरणसंपन्न, सुगत, लोकविद्, अनुत्तर (=अनुपम) पुरुषोंके चाबुक-सवार, देव-मनुष्योंके शास्ता, बुद्ध भगवान् हैं। वह भिक्षु-संघ-सहित कल मेरे यहाँ निमंत्रित हुये हैं। ०।

"हे केणिय! (क्या) 'बुद्ध' कह रहे हो?"

"हे शैल! (हाँ) 'बुद्ध' कहरहा हूँ।"

"०बुद्ध कह रहे हो?"

"०बुद्ध कह रहा हूँ।"

"०बुद्ध कह रहे हो?"

"०बुद्ध कह रहा हूँ।"

तब शैल ब्राह्मणको हुआ—'बुद्ध' ऐसा घोष (=आवाज) भी लोकमें दुर्लभ है। हमारे मंत्रोंमें महापुरुषोंके बत्तीस लक्षण आए हुए हैं, जिनसे युक्त महापुरुषकी दोही गतियां हैं। यदि वह घरमें वास करता है, तो चारों छोर तकका राज्यवाला, धार्मिक धर्म-राजा चक्रवर्ती ···राजा (होता) है···। वह सागर-पर्यन्त इस पृथिवीको बिना दण्ड-शस्त्रके, धर्मसे विजय कर शासन करता है। और यदि घर छोड़ बेघर हो, प्रव्रजित होता है, (तो) लोकमें आच्छादन-रहित अर्हत् सम्यक्-सम्बुद्ध होता है।' 'हे केणिय! तो फिर कहाँ वह आप गौतम अर्हत् सम्यक्-संबुद्ध, इस समय विहार करते हैं?'

ऐसा कहने पर केणिय जटिलने दाहिनी बाँह पकड़कर, शैल ब्राह्मणको यह कहा—

"हे शैल! जहाँ वह नील वन-पाँती है।"

तब शैल तीनसौ माणवकोंके साथ जहाँ भगवान् थे, वहाँ गया। तब शैल ब्राह्मणने उन माणवकोंको कहा—

"आपलोग निःशब्द (=अल्प-शब्द) हो, पैरके बाद पैर रखते आवें। सिंहोंकी भाँति वह भगवान् अकेले विचरनेवाले, (और) दुर्लभ होते हैं। और जब मैं श्रमण गौतमके साथ संवाद करूँ, तो आपलोग मेरे बीचमें बात न उठावें। आपलोग मेरे (कथन)की समाप्ति तक चुप रहें।"

तब शैल ब्राह्मण जहाँ भगवान् थे, वहाँ गया; जाकर भगवान्के साथ संमोदनकर···(कुशल प्रश्न पूछ)···एक ओर बैठ गया। एक ओर बैठकर शैल ब्राह्मण भगवान्के शरीरमें महापुरुषोंके बत्तीस लक्षण खोजने लगा। शैल ब्राह्मणने बत्तीस महापुरुष लक्षणोंमेंसे दोको छोड़ अधिकांश भगवान्के शरीरमें देख लिये। दो महापुरुष लक्षणों—झिल्लीसे ढँकी पुरुष-गुह्येंद्रिय, और अति-दीर्घ-जिह्वा—के बारेमें···संदेहमें था···। तब भगवान्ने इस प्रकारका योगबल प्रकट किया, जिससे कि शैल ब्राह्मणने भगवान्के कोष-आच्छादित बस्ति-गुह्यको देखा। फिर भगवान्ने जीभ निकालकर (उससे) दोनों कानोंके स्रोतको छूआ···, सारे ललाट मंडलको जीभसे ढाँक दिया। तब शैल ब्राह्मणको ऐसा (विचार) हुआ—श्रमण गौतम अ-परिपूर्ण नहीं, परिपूर्ण बत्तीस महापुरुष-लक्षणोंसे युक्त है। लेकिन कह नहीं सकता—बुद्ध है, या नहीं। वृद्ध=महल्लक ब्राह्मणों आचार्य-प्राचार्योंको कहते सुना है—कि जो अर्हत् सम्यक्-संबुद्ध होते हैं, वह अपने गुण कहे जानेपर अपनेको प्रकाशित करते हैं। क्यों न मैं श्रमण गौतमके संमुख उपयुक्त गाथाओंसे स्तुति करूँ। तब शैल ब्राह्मण भगवान्के सामने उपयुक्त गाथाओंसे स्तुति करने लगा—

"परिपूर्ण-काया सुन्दर रुचि (=कांति) वाले, सुजात, चारु-दर्शन।
सुवर्णवर्ण हो भगवान्! सु-शुक्ल-दाँत हो, (और) वीर्यवान्॥ १॥
सुजात (=सुन्दर जन्मवाले) नरके जो व्यंजन (=लक्षण) होते हैं।
वह सभी महापुरुष-लक्षण तुम्हारी कायामें (हैं)॥ २॥
प्रसन्न (=निर्मल)-नेत्र, सुमुख, बड़े सीधे, प्रताप-वान्।
(आप) श्रमण-संघके बीचमें आदित्यकी भाँति विराजते हो॥ ३॥
कल्याण-दर्शन हे भिक्षु! कंचन-समान शरीरवाले।
ऐसे उत्तम वर्णवाले तुम्हें श्रमण-भाव (=भिक्षु होने)में क्या (रक्खा) है?॥४॥
तुम तो चारों छोरके राज्यवाले, जम्बूद्वीपके स्वामी।
रथर्षभ, चक्रवर्ती, राजा हो सकते हो॥ ५॥
क्षत्रिय भोज-राजा (=मांडलिक-राजा) तुम्हारे अनुयायी होंगे।
हे गौतम! राजाधिराज मनुजेन्द्र हो, राज्य करो॥ ६॥"

(भगवान्-)"शैल! मैं राजा हूँ, अनुपम धर्मराजा।
मैं न पलटनेवाला···चक्र धर्मके साथ चला रहा हूँ॥ ७॥"

(शैलब्राह्मण-)" अनुपम धर्म-राजा संबुद्ध (अपनेको) कहते हो ?
हे गौतम ! 'धर्मसे चक्र चला रहा हूँ' कह रहे हो ॥ ८ ॥
कौन सा शास्ताका दन्तप (=नाग) श्रावक आपका सेनापति है ?
कौन इस चलाये धर्म-चक्रको अनु-चालनकर रहा है ॥ ९ ॥

(भगवान्—शैल !) "मेरे द्वारा संचालित चक्र, अनुपम धर्म-चक्रको ।
तथागतका अनुजात (=पीछे उत्पन्न) सारिपुत्र अनुचालितकर रहा है ॥१०॥
ज्ञातव्यको जान लिया, भावनीयकी भावना करली ।
परित्याज्यको छोड़ दिया, अतः हे ब्राह्मण ! मैं बुद्ध हूँ ॥ ११ ॥
ब्राह्मण ! मेरे विषयक संशय हटाओ, छोड़ो ।
बार बार संबुद्धोंका दर्शन दुर्लभ है ॥ १२ ॥
लोकमें जिसका बार बार प्रादुर्भाव दुर्लभ है ।
वह मैं (राग आदि) शल्यका छेदनेवाला अनुपम, संबुद्ध हूँ ॥ १३ ॥
ब्रह्म-भूत, तुलना-रहित, मार (=रागादि शत्रु)-सेनाका प्रमर्दक ।
(मुझे) देखकर कौन न संतुष्ट होगा, चाहे वह कृष्ण-[1] अभिजातिक क्यों न हो ॥१४॥"

(शैल—) "जो मुझे चाहता है, (वह मेरे) पीछे आवे, जो नहीं चाहता, वह जावे ।
(मैं) यहाँ उत्तम-प्रज्ञावाले (बुद्ध)के पास प्रव्रजित होऊँगा ॥ १५ ॥"

(शैलके शिष्य-)"यदि आपको यह सम्यक्-संबुद्धका शासन (=धर्म) रुचता है ।
(तो) हम भी वर-प्रज्ञके पास प्रव्रजित होंगे ॥ १६ ॥
यह जितने तीनसौ ब्राह्मण हाथ-जोड़े हैं ।
(वह) सभी भगवन् ! तुम्हारे पास ब्रह्मचर्य-चरण करेंगे ॥ १७ ॥"

(भगवान्—शैल !) "(यह) [2]सांदृष्टिक [3]अकालिक [4]स्वाख्यात ब्रह्मचर्य है ।
जहाँ प्रमाद-शून्य सीखनेवालेकी प्रव्रज्या अमोघ है ॥ १८ ॥"

शैल ब्राह्मणने परिषद्-सहित भगवान्‌के पास प्रव्रज्या और उपसंपदा पाई ।

तब केणिय जटिलने उस रातके बीतनेपर, अपने आश्रममें उत्तम खाद्य-भोज्य तय्यार करा, भगवान्‌को कालकी सूचना दिलवाई···। तब भगवान् पूर्वाह्ण समय पहिनकर पात्र-चीवर ले, जहाँ केणिय जटिलका आश्रम था, वहाँ गये । जाकर बिछे आसनपर भिक्षु-संघके साथ बैठे। तब केणिय जटिलने बुद्ध-प्रमुख भिक्षु-संघको अपने हाथसे, संतर्पित किया, पूर्ण किया । केणिय जटिल भगवान्‌के भोजनकर, पात्रसे हाथ हटा लेनेपर एक नीचा आसन ले, एक ओर बैठ गया । एक ओर बैठे हुये केणिय जटिलको भगवान्‌ने इन गाथाओंसे (दान-) अनुमोदन किया—

"यज्ञोंमें मुख अग्नि-होत्र है, छन्दोंमें मुख (=मुख्य) [5]सावित्री है ।
मनुष्योंमें मुख राजा है, नदियोंमें मुख सागर है ॥ (१)

---

१ दुर्गुणोंसे भरा । २ प्रत्यक्ष फलप्रद । ३ न कालान्तरमें फल-प्रद । ४ सुन्दर प्रकारसे व्याख्यान किया गया । ५ सावित्री गायत्री ।

नक्षत्रोंमें मुख चन्द्रमा है, तपनेवालोंमें मुख आदित्य है ।
इच्छितोंमें (मुख) पुण्य (है), यजन (=पूजा) करनेमें मुख संघ है ॥ (२)

भगवान् केणिय जटिलको इन गाथाओंसे अनुमोदितकर आसनसे उठकर चल दिये ।

तब आयुष्मान् शैल परिषद्-सहित एकान्तमें प्रमाद-रहित, उद्योग-युक्त, आत्म-निग्रही हो विहरते अचिरमें ही, जिसके लिये कुल-पुत्र घरसे बेघर हो प्रव्रजित होते हैं, उस अनुपम ब्रह्मचर्यके अन्त (=निर्वाण) को, इसी जन्ममें स्वयं जानकर, साक्षात्कर, प्राप्तकर, विहरने लगे । 'जन्म क्षय हो गया, ब्रह्मचर्य-वास पूरा हो गया । करणीय कर लिया गया, और यहाँ कुछ करना नहीं '—यह जान गये । परिषद्-सहित आयुष्मान् शैल अर्हत् हुये ।

तब आयुष्मान् शैलने शास्ता (=बुद्ध) के पास जाकर, चीवरको (दक्षिण कंधा नंगा रख) एक कंधेपर (रख), जिधर भगवान् थे, उधर अञ्जलि जोड़कर, भगवान्‌को गाथाओंसे कहा—

हे चक्षु-मान् ! जो मैं आजसे आठ दिन पूर्व तुम्हारी शरण आया ।
हे भगवान् ! तुम्हारे शासनमें सातही रातमें मैं दांत हो गया ॥ (१) ॥
तुम्हीं बुद्ध हो, तुम्हीं शास्ता हो, तुम्हीं मार-विजयी मुनि हो ।
तुम (राग आदि) अनुशयोंको छिन्नकर, (स्वयं) उत्तीर्ण हो, इस प्रजाको तारते हो ॥२॥
उपधि तुम्हारी हट गई, आस्रव तुम्हारे विदारित हो गये ।
सिंह-समान भव (-सागर) की भीषणतासे रहित, तुम [1]उपादान-रहित हो ॥ (३) ॥
यह तीन सौ भिक्षु हाथ जोड़े खड़े हैं ।
हे वीर ! पाद प्रसारित करो, (यह) नाग (=पाप-रहित) शास्ताकी वंदना करें ॥४

(१४)

केणिय-जटिल । रोजमल्ल उपासक । आपणसे श्रावस्ती । (वि. पू. ४५८) ।

[1]तब केणिय जटिलको हुआ—मैं श्रमण गौतमके लिये क्या लिवा चलूँ । फिर केणिय जटिलको हुआ—'जो कि वह ब्राह्मणोंके पूर्वके ऋषि, मंत्रोंको रचनेवाले (=कर्त्ता), मंत्रोंको प्रवचन (=वाचन) करनेवाले थे,—जिनके पुराने मंत्र-पदको, गीतको, कथितको, समीहितको, आजकल ब्राह्मण अनुगान करते हैं, अनु-भाषण करते हैं; भाषितको ही अनु-भाषण करते हैं, वांचेको ही अनु-वाचन करते हैं,—जैसेकि—अट्टक, वामक, वामदेव, विश्वामित्र, यमदग्नि, अङ्गिरा, भारद्वाज, वसिष्ठ, कश्यप, भृगु । (वह) रातको (भोजनसे) उपरत थे, विकाल—(मध्याह्नोत्तर) भोजनसे विरत थे । वह इस प्रकारके पान (पीनेकी चीज) पीते थे । श्रमण गौतम भी रातको उपरत=विकाल-भोजनसे विरत हैं । श्रमण गौतम भी इस प्रकारके पान पी सकते हैं ।' (यह सोच) बहुतसा पान तय्यार करा, बँहगी (=काज) से उठवाकर, जहां भगवान् थे वहां गया । जाकर भगवान्‌के साथ संमोदन किया ⋯ (और) एक ओर खड़ा हो गया । एक ओर खड़े हुये केणिय जटिलने भगवान्‌को कहा—

"हे भवान् (=आप)! गौतम यह मेरा पान ग्रहण करें ।"

"केणिय! तो भिक्षुओंको दो ।"

भिक्षु आगा-पीछा करते ग्रहण नहीं करते थे ।

"अनुज्ञा देता हूं भिक्षुओ! आठ पानकी । आम्र-पान, जम्बू-पान, चोच-पान, मोच (=केला)-पान, मधु-पान, मुद्दिक (=अंगूर)-पान, सालूक (=कोईकी जड़)-पान, और फारुसक (=फालसा)-पान । अनुज्ञा देता हूँ सभी फल-रसोंकी एक अनाजके फल-रसको छोड़ । ०सभी पत्र-रसकी, एक डाकके रसको छोड़ ।० सभी पुष्प-रसकी एक महुवेके फूलका रस छोड़ । अनुज्ञा देता हूं ऊखके रसकी । ⋯"

तब आपणमें इच्छानुसार विहारकर भगवान् साढ़े बारहसौ भिक्षुओंके भिक्षु-संघ-सहित जहां [2]कुसीनारा था । उधर चारिकाके लिये चल दिये । कुसीनाराके [3]मल्लोंने सुना—साढ़े बारहसौ भिक्षुओंके महासंघके साथ भगवान् कुसीनारा आ रहे हैं । उन्होंने नियम किया—'जो भगवान्‌की अगवानीको नहीं जाये, उसको पांच सौ दंड' । उस समय रोज नामक मल्ल आनन्दका मित्र था । भगवान् क्रमशः चारिका करते जहां कुसीनारा थी । वहां पहुँचे । ⋯ कुसीनाराके मल्लोंने भगवान्‌का प्रत्युद्गमन (=अगवानी) किया । रोजमल्ल भी भगवान्‌का प्रत्युद्गमन कर, जहां आयुष्मान् आनन्द थे, वहां गया । जाकर आनन्दको अभिवादनकर, एक ओर खड़ा हो गया, । एक ओर खड़े हुये रोज मल्लको आयुष्मान् आनन्दने कहा—

"आवुस रोज! यह तेरा (कृत्य) बहुत सुन्दर (=उदार) है, जो तूने भगवान्‌की अगवानी की ।"

"भन्ते! आनन्द! मैंने बुद्ध, धर्म, संघका सन्मान नहीं किया; बल्कि भन्ते! आनन्द! ज्ञातिके दण्डके भयसे ही मैंने भगवान्‌का प्रत्युद्गमन किया ।"

---

१. महावग्ग ६ । २. कसया, जि० गोरखपुर । ३ आजकलकी सैंथवार जाति ।

तब आयुष्मान् आनन्द अ-सन्तुष्ट हुये—"कैसे रोजमल्ल ऐसा कहता है ?"

आयुष्मान् आनन्द जहां भगवान् थे वहां गये । भगवानको अभिवादनकर, एक ओर बैठ गये । एक ओर बैठे हुये, आयुष्मान् आनन्दने भगवानको कहा—

"भन्ते ! रोज मल्ल विभव-सम्पन्न अभिज्ञात=प्रसिद्ध मनुष्य है । इसप्रकारके ज्ञात मनुष्योंका इस धर्म-विनयमें प्रसाद (=श्रद्धा) होना अच्छा है । अच्छा हो, भन्ते ! भगवान् वैसा करें, जिसमें रोज मल्ल इस धर्म-विनय (=बुद्धधर्म) में प्रसन्न होवे ।" तब भगवान रोज मल्लके प्रति मित्रता-पूर्ण (=मैत्र) चित्त उत्पन्नकर, आसनसे उठ विहारमें प्रविष्ट हुये । तब रोज मल्ल भगवानके मैत्र-चित्तके स्पर्शसे, छोटे बछड़े वाली गायकी भांति, एक विहारसे दूसरे विहार, एक परिवेणसे दूसरे परिवेणमें जाकर भिक्षुओंको पूछता था—

"भन्ते ! इस वक्त वह भगवान् अर्हत् सम्यक्-संबुद्ध कहां विहार कर रहे हैं; हम उन भगवान् अर्हत् सम्यक् सम्बुद्धका दर्शन करना चाहते हैं ?"

"आवुस, रोज ! यह दर्वाजा-बन्द विहार है । निःशब्द हो धीरे धीरे वहां जाकर [1]आलिन्दमें प्रवेशकर खांसकर जंजीरको खटखटाओ, भगवान् तुम्हारे लिये द्वार खोल देंगे ।"

तब रोज मल्लने जहां वह बन्द-द्वार विहार था, वहां निःशब्द हो धीरे धीरे जाकर, आलिन्दमें घुसकर, खांसकर जंजीर खटखटाई । भगवानने द्वार खोल दिया । तब रोज मल्ल विहारमें प्रवेशकर भगवानको अभिवादनकर, एक ओर बैठ गया । एक ओर बैठे हुये रोजमल्लको भगवानने आनुपूर्विक कथा०[2]—०रोजमल्लको उसी आसनपर विरज विमल धर्म-चक्षु उत्पन्न हुआ—'जो कुछ उत्पन्न होनेवाला है, वह सब विनाश होने वाला है ।' तब रोजने दृष्टधर्म हो० भगवानको कहा—

'अच्छा हो, भन्ते ! अय्या (=आर्य=भिक्षु लोग) मेराही चीवर, पिंड-पात (=भिक्षा), शयनासन (=आसन), ग्लान-प्रत्यय-भैषज्य-परिष्कार (=दवा-पथ्य) ग्रहण करें, औरोंका नहीं ।"

"रोज तेरी तरह जिन्होंने अपूर्णज्ञान और अपूर्ण-दर्शनसे धर्म देखा है, उनको ऐसा ही होता है—'क्या ही अच्छा हो, अय्या मेरा ही० ग्रहण करें, औरोंका नहीं ।'"···

तब भगवान् कुसीनारामें इच्छानुसार विहार कर०, जहां आतुमा थी, वहां चारिकाके लिये चल दिये । उस समय आतुमामें बुढ़ापेमें प्रव्रजित हुआ, भूत-पूर्व हजाम (=नहापित) एक (=भिक्षु) निवास करता था । उसके दो पुत्र थे, (जो) अपनी पंडिताई और कर्ममें सुन्दर, प्रतिभाशाली, दक्ष, शिल्पमें परिशुद्ध थे । वृद्ध-प्रव्रजित (=बुढ़ापेमें प्रव्रजित) ने सुना कि, भगवान्० आतुमा आ रहे हैं । तब उस वृद्ध-प्रव्रजितने उन दोनों पुत्रोंको कहा—

"तातो ! भगवान्० आतुमामें आरहे हैं । तातो ! हजामतका सामान लेकर नाली, आवापकके साथ घर घरमें फेरा लगाओ, (और) लोन, तेल, तंडुल और खाद्य (पदार्थ) संग्रह करो । आनेपर भगवानको यवागू (=खिचड़ी) दान देंगे ।"

---

१. सायवान (?) २. देखो पृष्ठ २९।

"अच्छा तात!" वृद्ध-प्रव्रजितको कह, पुत्र हजामतका सामान ले० लोन, तेल, तंडुल, खाद्य संग्रह करते घूमने लगे। उन लड़कोंको सुन्दर, प्रतिभा संपन्न देखकर, जिनको (क्षौर) न कराना था, वह भी कराते थे, और अधिक देते थे। तब उन लड़कोंने बहुत सा लोन भी, तेल भी, तंडुल भी, खाद्य भी संग्रह किया। भगवान् क्रमशः चारिका करते, जहां आतुमा थी, वहां पहुँचे। वहां आतुमामें भगवान् भुसागारमें विहार करते थे। तब वह बुढ़ा प्रव्रजित उस रातके बीत जानेपर, बहुत सा यागू तय्यार करा, भगवान्के पास ले गया—"भन्ते! भगवान् मेरी खिचड़ी स्वीकार करें"।···। भगवान्ने उस वृद्ध-प्रव्रजितसे पूछा—"कहांसे भिक्षु! यह खिचड़ी है?"

उस वृद्ध प्रव्रजितने भगवान्को (सब) बात कह दी। भगवान्ने धिक्कारा।

"मोघ-पुरुष (=नालायक)! (यह तेरा कहना) अनुचित=अन्-अनुलोम=अ-प्रतिरूप, श्रमण-कर्तव्यके विरुद्ध, अविहित (=अ-कप्पिय)=अ-करणीय है। कैसे तू मोघ-पुरुष! अविहित (चीज)के (जमा करनेके लिये) कहेगा?···"

···भिक्षुओंको आमंत्रित किया—

"भिक्षुओ! भिक्षुको निषिद्ध (=अ-कप्पिय)के लिये आज्ञा (=समादपन) नहीं देनी चाहिये। जो आज्ञा दे, उसको 'दुष्कृत' की आपत्ति; और भिक्षुओ! भूतपूर्व हजामको हजामतका सामान न ग्रहण करना चाहिये। जो ग्रहण करे, उसे 'दुष्कृत'की आपत्ति।"

तब भगवान् आतुमामें इच्छानुसार विहारकर, जिधर श्रावस्ती थी, उधर चारिकाके लिये चल दिये। क्रमशः चारिका करते, जहां श्रावस्ती थी, वहां पहुँचे। वहां श्रावस्तीमें भगवान् अनाथ-पिंडकके आराम जेतवनमें विहार करते थे। उस समय श्रावस्तीमें बहुत सा खाद्य फल था। भिक्षुओंने···भगवान्को यह बात कही।

"अनुज्ञा देता हूं, सब खाद्य फलोंके लिये।"

उस समय संघके बीजको व्यक्तिके (=पौद्गलिक) खेतमें रोपते थे, पौद्गलिक बीजको संघके खेतमें रोपते थे। भगवान्को यह बात कही—

(भगवान्ने कहा-) "संघके बीजको यदि पौद्गलिक खेतमें बोया जाय, तो [1]भाग देकर परिभोग करना चाहिये। पौद्गलिक बीजको यदि संघके खेतमें बोया जाय, तो भाग देकर परिभोग करना चाहिये।"

·······"जो मैंने भिक्षुओ! 'यह नहीं विहित है' (कहकर) निषिद्ध नहीं किया, यदि वह निषिद्ध (=अ-कप्पिय=हराम) के अनुलोम हो, और विहित (=कप्पिय=हलाल)का विरोधी, (तो) वह तुम्हें हलाल नहीं है। भिक्षुओ! जिसे मैंने 'यह विहित नहीं है' (कहकर) निषिद्ध नहीं किया, यदि वह कप्पियके अनुलोम है, और अ-कप्पियका विरोधी, (तो) वह तुम्हें कप्पिय है। भिक्षुओ! जिसे मैंने 'यह कप्पिय है' (कहकर) अनुज्ञा नहीं दी, वह यदि अ-कप्पियके अनुलोम (=अ-विरोधी) है, और कप्पियका विरोधी, तो वह तुम्हें कप्पिय नहीं है। भिक्षुओ! जिसे मैंने 'यह कप्पिय है' (कहकर) अनुज्ञा नहीं दी, वह यदि कप्पियके अनुलोम है, और कप्पियका विरोधी, तो वह तुम्हें कप्पिय है।"

१ (अट्ठकथामें) "दसवां भाग देकर। यह जम्बूद्वीप (=भारत)में पुराना रवाज (=पोराण-चारित्तं) है। इसलिये दश भागमें एक भाग भूमिके मालिकोंको देना चाहिये।"

चूल-हत्थिपदोपम-सुत्त (वि. पृ. ४५८)।

[१]ऐसा [२]मैंने सुना—एक समय भगवान् श्रावस्ती अनाथ-पिंडकके आराम जेतवनमें विहार करते थे।

उस समय जाणुस्सोणि (=जानुश्रोणि) ब्राह्मण सर्वश्वेत घोड़ियोंके रथपर सवार हो, मध्याह्नको श्रावस्तीके बाहर जा रहा था। जानुश्रोणि ब्राह्मणने पिलोतिक परिव्राजकको दूरसे ही आते देखा। देखकर पिलोतिक परिव्राजकसे यह कहा—

"हन्त! वात्स्यायन (=वच्छायन)! आप मध्याह्नमें कहाँसे आ रहे हैं?"

"भो! मैं श्रमण गौतमके पाससे आ रहा हूँ।"

"तो आप वात्स्यायन श्रमण गौतमकी प्रज्ञा, पाण्डित्यको क्या समझते हैं? पंडित मानते हैं?"

"मैं क्या हूँ, जो श्रमण गौतमका प्रज्ञा-पांडित्य जानूँगा?"

"आप वात्स्यायन उदार (=बड़ी) प्रशंसा द्वारा श्रमण गौतमकी प्रशंसा कर रहें हैं?"

"मैं क्या हूँ, और मैं क्या श्रमण गौतमको प्रशंसा करूँगा? प्रशस्त प्रशस्त (ही) हैं आप गौतम, देव-मनुष्योंके श्रेष्ठ हैं।"

आप वात्स्यायन किस कारणसे श्रमण गौतमके विषयमें इतने अभिप्रसन्न हैं?

"(जैसे) कोई चतुर नाग-वनिक (=हाथीके जंगलका आदमी) नाग-वनमें प्रवेश करे। वह वहाँ बड़े भारी (लंबे-चौड़े) हाथीके पैर (=हस्ति-पद)को देखे। उसको विश्वास हो जाय—अरे, बड़ा भारी नाग है। इसी प्रकार भो! जब मैंने श्रमण गौतमके चार पद देखे, तो विश्वास होगया—कि (वह) भगवान् सम्यक्-संबुद्ध हैं, भगवान्का धर्म स्वाख्यात है, भगवान्का श्रावक-संघ सुप्रतिपन्न (=सुन्दर प्रकारसे रास्तेपर लगा) है। कौनसे चार? मैं देखता हूँ, बालकी खाल उतारनेवाले, दूसरोंसे वाद-विवाद किये हुये, निपुण, कोई कोई क्षत्रिय पंडित, मानों प्रज्ञामें स्थित (तत्त्व) से, दृष्टिगत (=धारणामें स्थित तत्त्व) को खंडा-खंडी करते चलते हैं— सुनते हैं—श्रमण गौतम अमुक ग्राम या निगममें आवेगा। वह प्रश्न तय्यार करते हैं—'इस प्रश्नको हम श्रमण गौतमके पास जाकर पूछेंगे। ऐसा हमारे पूछनेपर, यदि वह ऐसा उत्तर देगा; तो हम इस प्रकार वाद (=शास्त्रार्थ) रोपेंगे।' वह सुनते हैं—श्रमण गौतम अमुक ग्राम या निगममें आगया। वह जहाँ श्रमण गौतम होता है, वहाँ जाते हैं। उनको श्रमण गौतम धार्मिक उपदेश कहकर दर्शाता है, समादपन,=समुत्तेजन, संप्रशंसन करता है। वह श्रमण गौतमसे धार्मिक उपदेश द्वारा संदर्शित, समादपित, समुत्तेजित, संप्रशंसित हो, श्रमण गौतमसे प्रश्न भी नहीं पूछते, उसके (साथ) वाद कहाँसे रोपेंगे? बल्कि और भी श्रमण गौतमके ही श्रावक (=शिष्य) हो जाते हैं। भो! जब मैंने श्रमण गौतममें यह प्रथम पद देखा, तब मुझे विश्वास हो गया—भगवान् सम्यक्-संबुद्ध हैं०।

१ अ. नि. अ. क. २:४:४—"चौदहवीं (वर्षा) भगवान्ने जेतवनमें बिताई। २ म. नि. १:३:७।

"और फिर भो ! मैं देखता हूँ, यहाँ कोई कोई बालकी खाल उतारने वाले, दूसरोंसे वाद-विवादमें सफल, निपुण ब्राह्मण पण्डित॰ । ॰मैंने श्रमण गौतम में यह दूसरा पद देखा ।

"॰गृहपति (=वैश्य)-पण्डित॰ ।॰ यह तीसरा पद॰ ।

"॰श्रमण (=प्रव्रजित)-पण्डित॰ । वह श्रमण गौतमके धार्मिक उपदेशद्वारा ॰समुत्तेजित संप्रहर्षित हो, श्रमण गौतमको प्रश्न भी नहीं पूछते, उसके (साथ) वाद कहाँसे रोपेंगे ? बल्कि और भी श्रमण गौतमसे घरसे बेघर(हो) प्रव्रज्याके लिये आज्ञा मांगते हैं । उनको श्रमण गौतम प्रव्रजित करता है, उपसम्पन्न करता है । वह वहाँ प्रव्रजित हो, अकेले एकान्तसेवी, प्रमाद-रहित, तत्पर, आत्म-संयमी हो विहार करते, अचिर ही में, जिसके लिये कुल-पुत्र घरसे बेघर हो, प्रव्रजित होते हैं, उस अनुत्तम ब्रह्मचर्य-फलको इसी जन्ममें स्वयं जान कर, साक्षात्कर, प्राप्तकर, विहरते हैं । वह ऐसा कहते हैं—"नसे भो ! नाश किया, मनको भो ! प्र-नाश किया । हम पहिले अ-श्रमण होते हुये भी 'हम श्रमण हैं' दावा करते थे ; अ-ब्राह्मण होते हुये भी 'हम ब्राह्मण हैं' दावा करते थे । अन्-अर्हत् होते हुये भी 'हम अर्हत् हैं' दावा करते थे । अब हम श्रमण हैं, अब हम ब्राह्मण हैं, अब हम अर्हत् हैं ।" श्रमण गौतममें जब इस चौथे पदको देखा, तब मुझे विश्वास हो गया—भगवान् सम्यक् संबुद्ध हैं॰ । भो ! मैंने जब इन चार पदोंको श्रमण गौतममें देखा, तब मुझे विश्वास हो गया॰ ।"

ऐसा कहने पर जानुश्रोणी ब्राह्मणने सर्व-श्वेत घोड़ीके रथसे उतर कर, एक कंधेपर उत्तरा-संग (=चादर) करके, जिधर भगवान थे उधर अञ्जलि जोड़कर, तीन बार यह उदान कहा—"[1]नमस्कार है, उस भगवान् अर्हत् सम्यक् संबुद्धको,' 'नमस्कार है॰ ।' 'नमस्कार है॰ ।' क्या मैं कभी किसी समय उन गौतमके साथ मिल सकूँगा ? क्या कभी कोई कथा-संलाप हो सकेगा ?'

तब जानु-श्रोणि ब्राह्मण जहाँ भगवान् थे, वहाँ गया । जाकर भगवान्के साथ ॰संमोदनकर… (कुशलप्रश्न पूछ) एक ओर बैठ गया । एक ओर बैठे हुये जानु-श्रोणि ब्राह्मण-ने, जो कुछ पिलोतिक परिव्राजकके साथ कथा-संलाप हुआ था, सब भगवान्को कह दिया । ऐसा कहनेपर भगवान्ने जानु-श्रोणि ब्राह्मणको कहा—

"ब्राह्मण ! इतने (ही) विस्तारसे हस्ति-पद-उपमा परिपूर्ण नहीं होती । ब्राह्मण ! जिस प्रकारके विस्तारसे हस्ति-पद-उपमा परिपूर्ण होती है, उसे सुनो और मनमें (धारण) करो ।"

"अच्छा भो !" कह जानु-श्रोणि ब्राह्मणने भगवान्को उत्तर दिया । भगवान्ने कहा—

"जैसे ब्राह्मण नाग-वनिक नाग-वनमें प्रवेश करे । वहाँ पर नाग-वनमें वह बड़े भारी॰ हस्ति-पदको देखे । जो चतुर-नाग-वनिक होता है वह विश्वास नहीं करता—'अरे ! बड़ा भारी नाग है' । किसलिये ? ब्राह्मण ! नाग-वनमें वामकी (=बौनी) नामकी हथिनियाँ भी महा-पदवाली होती हैं, उनका वह पैर हो सकता है । उसके पीछे चलते हुए वह नाग-वनमें बड़े भारी… (लम्बे चौड़े)…हस्ति-पद और ऊँचे डीलको देखता है । जो चतुर नाग-

[1] 'नमो तस्स भगवतो अरहतो सम्मा सम्बुद्धस्स' ।

वनिक होता है, वह तब भी विश्वास नहीं करता—'अरे बड़ा भारी नाग है'। किसलिये ? ब्राह्मण ! नागवनमें ऊँची कालारिका नामक हथिनियाँ बड़े पैरों वाली होती हैं, वह उनका पद हो सकता है। वह उसका अनुगमन करता है, अनुगमन करते नाग-वनमें देखता है—बड़े भारी लम्बे चौड़े हस्ति-पद, ऊँचे डील और ऊँचे दाँतोंसे आरक्षित को। जो चतुर नाग-वनिक होता है, वह तब भी विश्वास नहीं करता०। सो किस लिये ? ब्राह्मण ! नाग-वनमें ऊँची करेणुका नामक हथिनियाँ महा-पदवाली होती हैं। वह उनका भी पद हो सकता है। वह उसका अनुगमन करता है। उसका अनुगमन करते नाग-वनमें, बड़े भारी, ... (लम्बे-चौड़े) हस्ति-पद, ऊँचे डील, ऊँचे दाँतोंसे सुशोभित, और शाखाको ऊँचेसे टूटा देखता है। और वहाँ वृक्षके नीचे, या चौड़ेमें जाते, खड़े या बैठे, या लेटे उस नागको देखता है। वह विश्वास करता है, यही वह महानाग है।

"इसी प्रकार ब्राह्मण यहाँ तथागत, अर्हत् सम्यक्-सम्बुद्ध, विद्या-आचरण-सम्पन्न, सुगत, लोकविद्, अनुत्तर पुरुष-दम्य-सारथी, देव-मनुष्योंके शास्ता, बुद्ध भगवान् लोकमें उत्पन्न होते हैं। वह इस देव-मार-ब्रह्मा सहित लोक, श्रमण-ब्राह्मण-देव-मनुष्य-सहित प्रजाको, स्वयं जानकर, साक्षात्कर, समझाते हैं। वह आदि-कल्याण मध्य-कल्याण पर्यवसान-कल्याण वाले धर्मको उपदेश करते हैं। अर्थ-सहित व्यंजन-सहित, केवल, परिपूर्ण परिशुद्ध, ब्रह्म-चर्यको प्रकाशित करते हैं। उस धर्मको गृह-पति या गृह-पतिका पुत्र, या और किसी छोटे कुलमें उत्पन्न सुनता है। वह उस धर्मको सुनकर तथागतके विषयमें श्रद्धा लाभ करता है। वह उस श्रद्धा-लाभसे संयुक्त हो, यह सोचता है—गृह-वास जंजाल मैलका मार्ग है। प्रव्रज्या मैदान (=चौड़ा) है। इस एकान्त सर्वथा-परिपूर्ण, सर्वथा परिशुद्ध, खरादे शंख जैसे ब्रह्मचर्यका पालन, घरमें वसते हुयेके लिये सुकर नहीं है। क्यों न मैं सिर दाढ़ी मुँड़ाकर, काषायवस्त्र पहिन, घरसे बेघर प्रव्रजित हो जाऊँ ? सो वह दूसरे समय अपनी अल्प (=थोड़ी) भोग-राशि, या महा-भोग-राशिको छोड़, अल्प-ज्ञाति मंडल या महा-ज्ञाति-मंडलको छोड़, सिर-दाढ़ी मुँड़ा, काषायवस्त्र पहिन, घरसे बेघर हो, प्रव्रजित होता है। वह इस प्रकार प्रव्रजित हो, भिक्षुओंकी शिक्षा, समान-जीविकाको प्राप्त हो, प्राणातिपात छोड़ प्राणहिंसासे विरत होता है। दंड-त्यागी, शस्त्र-त्यागी, लज्जी, दयालु, सर्व-प्राणों सर्व-प्राण-भूतोंका हित और अनुकंपक हो, विहार करता है। अ-दिन्नादान (=चोरी) छोड़ दिन्नादायी (=दियेको लेने वाला), दत्त-प्रतिकांक्षी (=दियेका चाहने वाला),...पवित्रात्मा हो, विहरता है। अ-ब्रह्मचर्यको छोड़कर ब्रह्मचारी, ग्राम्यधर्म मैथुनसे विरत हो, आर-चारी (=दूर रहने वाला) होता है। मृषावादको छोड़, मृषावादसे विरत हो, सत्य-वादी, सत्य-संध, लोकका अ-विसंवादक =विश्वास-पात्र....होता है। पिशुन-वचन (=चुगली) छोड़, पिशुन-वचनसे विरत होता है,—यहाँ सुनकर इनके फोड़नेके लिये, वहाँ नहीं कहनेवाला होता; या, वहाँ सुनकर उनके फोड़नेके लिये, यहाँ कहने वाला नहीं होता। इस प्रकार भिन्नों (=फूटों) को मिलाने वाला, मिले हुयोंको भिन्न न करने वाला, एकतामें प्रसन्न, एकतामें रत, एकतामें आनन्दित हो, समग्र (=एकता)-करणी वाणीका बोलनेवाला होता है। परुष (=कटु) वचनको छोड़, परुष वचनसे विरत होता है। जो वह वाणी.. कर्ण-सुखा, प्रेमणीया, हृदयङ्गमा, पौरी

(=नागरिक, सभ्य) बहुजन-कान्ता=बहुजन-मनापा है; वैसी वाणीका बोलनेवाला होता है। प्रलापको छोड़कर प्रलापसे विरत होता है। काल-वादी (=समय देखकर बोलने वाला), भूत (=यथार्थ) वादी, अर्थ-वादी, धर्म-वादी, विनय-वादी हो, तात्पर्य-सहित, पर्यन्त-सहित, अर्थ-सहित, निधान-वती वाणीका बोलने वाला होता है।

"वह बीज-समुदाय भूत-समुदायके विनाश[1] (=समारंभ) से विरत होता है। एकाहारी, रातको उपरत=विकाल (=मध्याह्नोत्तर) भोजनसे विरत होता है। माला, गंध और विलेपनके धारण, मंडन और विभूषणसे विरत होता है। उच्चशयन और महाशयन (=शय्या) से विरत होता है। जातरूप (=सोना)-रजतके प्रतिग्रहणसे विरत होता है। कच्चे अनाजके प्रतिग्रहण (=लेना) से विरत होता है। कच्चा मांस लेनेसे विरत होता है। स्त्री-कुमारीके०। दासी-दास०। भेड़-बकरी०। मुर्गी-सूअर०। हाथी-गाय०, घोड़ा-घोड़ी०। खेत-घर०। दूत बनकर जाने···०। क्रय-विक्रय०। तराजूकी ठगी, कांसेकी ठगी, मान (=सेर मन आदि) की ठगी०। घूस, वंचना, जाल-साजी, कुटिल-योग०। छेदन, वध, बंधन, छापा मारने, आलोप (ग्राम आदिका विनाश) करने, डाका डालने०।

"वह शरीरपरके चीवरसे, पेटके खानेसे सन्तुष्ट होता है। वह जहां जहां जाता है, (अपना सामान) लियेही जाता है; जैसे कि पक्षी जहां कहीं उड़ता है, अपने पत्र-भार सहितही उड़ता है। इसी प्रकार भिक्षु शरीरके चीवरसे, पेटके खानेसे, सन्तुष्ट होता है।०। वह इस प्रकार आर्य-शील (=निर्दोष सदाचारकी)-स्कंध (=राशि) से युक्त हो, अपनेमें (=अध्यात्म, निर्दोष सुख अनुभव करता है।

"वह चक्षुसे रूपको देखकर, निमित्त (=लिंग आकृति, आदि) और अनुव्यञ्जनका ग्रहण करने वाला नहीं होता। चूँकि चक्षु इन्द्रियको अ-रक्षित रख विहरने वालेको, राग द्वेष पाप=अ-कुशल धर्म उत्पन्न हो जाते हैं, इसलिये उसको रक्षित रखता (=संवर करता) है। चक्षु इन्द्रियकी रक्षा करता है=चक्षु इन्द्रियमें संवर ग्रहण करता है। वह श्रोत्रसे शब्द सुनकर निमित्त और अनुव्यञ्जनका ग्रहण करने वाला नहीं होता०। घ्राणसे गंध ग्रहणकर०। जिह्वासे रस ग्रहणकर०। कायसे स्पर्श ग्रहणकर०। मनसे धर्म ग्रहणकर०। इस प्रकार वह आर्य-इन्द्रिय-संवरसे युक्त हो, अपनेमें निर्मल सुखको अनुभव करता है।

"वह आने जानेमें, जानकर करनेवाला होता है। अवलोकन विलोकनमें, संप्रजन्य-युक्त (=जानकर करनेवाला) होता है। समेटने-फैलानेमें संप्रजन्य-युक्त होता है। संघाटी पात्र-चीवर धारण करनेमें०। खाना-पीना भोजन-आस्वादनमें०। पाखाना-पेशाबके काम में०। जाते-खड़े होते, बैठते, सोते-जागते, बोलते-चुप रहते, संप्रजन्य-युक्त होता है। वह इस आर्य-शील-स्कंधसे युक्त, इस आर्य इन्द्रिय-संवरसे युक्त, इस आर्य स्मृति-संप्रजन्यसे युक्त हो, एकान्तमें—अरण्य, वृक्षके नीचे, पर्वत, कन्दरा, गिरि-गुहा, श्मशान, वन-प्रान्त, चौड़े, पुआलके गंजमें—वास करता है। वह भोजनके पश्चात्···आसन मारकर, कायाको सीधाकर, स्मृतिको सन्मुख रखकर बैठता है। वह लोकमें (१) अभिध्या (=लोभ) को छोड़, अभिध्या-रहित-चित्त हो, विहरता है; चित्तको अभिध्यासे परिशुद्ध करता है। (२) व्यापाद

१. समारम्भ=समालम्भ=हिंसा, जैसे अश्वालम्भ, गवालम्भ।

(=द्रोह)-दोषको छोड़कर, व्यापाद-रहित चित्तसे, सर्व प्राणियोंका हितानुकम्पी हो, विहरता है; व्यापाद दोषसे चित्तको परिशुद्ध करता है। (३) स्त्यानमृद्ध (=मनके आलस) को छोड़, स्त्यान-मृद्ध रहित हो, आलोक-संज्ञावाला, स्मृति, सम्प्र-जन्यसे युक्त हो विहरता है। औद्धत्य-कौकृत्यको छोड़ अन्-उद्धत हो भीतरसे शान्त हो, विहरता है। (४) औद्धत्य-कौकृत्यसे चित्तको परिशुद्ध करता है। (५) विचिकित्सा (=सन्देह) को छोड़ विचिकित्सा-रहित हो कुशल (=उत्तम)-धर्मोंमें विवाद-रहित (=अकथंकथी) हो, विहरता है; चित्तको विचिकित्सासे परिशुद्ध करता है।

"वह इन पांच नीवरणोंको चित्तसे छोड़, उप-क्लेशों (=चित्त-मलों) को जान, (उनके) दुर्बल करनेके लिये, कामोंसे पृथक् हो, अ-कुशल-धर्मोंसे पृथक् हो, स-वितर्क, स-विचार विवेकसे उत्पन्न, प्रीति-सुखवाले प्रथम-ध्यानको प्राप्त हो, विहरता है। ब्राह्मण! यह पद भी तथागतका पद कहा जाता है, यह (पद) भी तथागतसे सेवित है, यह (पद) भी तथागत-रञ्जित है। किन्तु आर्य-श्रावक इतनेहीसे विश्वास नहीं कर लेता—भगवान् सम्यक् संबुद्ध हैं, भगवान्का धर्म स्वाख्यात है, भगवान्का श्रावक-संघ सु-प्रतिपन्न है।

"और फिर ब्राह्मण? भिक्षु वितर्क और विचारके उपशांत होनेपर, भीतरके संप्रसाद (=प्रसन्नता)=चित्तकी एकाग्रताको वितर्क-विचार-रहित, समाधिसे उत्पन्न प्रीति-सुखवाले, द्वितीय-ध्यानको प्राप्त हो विहरता है। ब्राह्मण! यह पद भी तथागतका पद कहा जाता है, यह भी तथागत-सेवित है, यह भी तथागत-रञ्जित है। किन्तु आर्य-श्रावक इतनेहीसे विश्वास नहीं कर लेता—भगवान् सम्यक्-संबुद्ध हैं०।

"और फिर ब्राह्मण! भिक्षु प्रीति और विरागसे उपेक्षक हो, स्मृति और संप्रजन्यसे युक्त हो, कायासे सुखको अनुभव करता विहरता है। जिसको आर्य-जन उपेक्षक स्मृतिमान् सुख-विहारी कहते हैं; ऐसे तृतीय-ध्यानको प्राप्त हो, विहरता है। ब्राह्मण! यह पद भी तथागत-पद कहा जाता है०। किन्तु आर्य श्रावक इतनेहीसे विश्वास नहीं कर लेता०।

"और फिर ब्राह्मण! भिक्षु सुख और दुःखके विनाशसे, सौमनस्य और दौर्मनस्यके पूर्वही अस्त हो जानेसे, दुःख-रहित, सुख-रहित उपेक्षक हो, स्मृतिकी परिशुद्धता-युक्त चतुर्थ-ध्यानको प्राप्त हो विहरता है। यह भी ब्राह्मण! तथागत-पद कहा जाता है०। किन्तु आर्य श्रावक इतनेहीसे विश्वास नहीं कर लेता—भगवान् सम्यक् संबुद्ध हैं०।

"सो इस प्रकार चित्तके—परिशुद्ध=परि-अवदात, अंगण-रहित=उपक्लेश (=मल)-रहित, मृदु हुये, काम-लायक, स्थिर=अचलता-प्राप्त=समाहित—हो जानेपर, पूर्वजन्मोंको स्मृतिके ज्ञान (=पूर्व-निवासाऽनुस्मृति-ज्ञान) के लिये चित्तको झुकाता है। फिर वह अनेक पूर्व-निवासोंको स्मरण करने लगता है—जैसे 'एक जन्मभी, दो जन्मभी, तीन जन्मभी, चार०, पाँच०, छः०, दस०, बीस०, तीस०, चालीस०, पचास०, सौ०, हजार०, सौहजार०, अनेक संवर्त (=प्रलय)-कल्प, अनेक विवर्त (=सृष्टि)-कल्प, अनेक संवर्त-विवर्त-कल्पको भी,—इस नामवाला, इस गोत्र-वाला, इस वर्णवाला, इस आहारवाला, इस प्रकारके सुख दुःख को अनुभव करनेवाला, इतनी आयु-पर्यन्त, मैं अमुक स्थानपर रहा। सो मैं वहांसे च्युत हो,

यहाँ उत्पन्न हुआ ।' इस प्रकार आकार-सहित उद्देश्य-सहित अनेक किये गये निवासोंको स्मरण करता है । यह भी ब्राह्मण ! तथागत-पद कहा जाता है । ० ।

"सो इस प्रकार चित्तके परिशुद्ध० समाहित होनेपर प्राणियोंके जन्म-मरणके ज्ञान (=च्युति-उत्पाद-ज्ञान) के लिये चित्तका झुकाता है । सो अ-मानुष दिव्य विशुद्ध चक्षुसे अच्छे बुरे, सु-वर्ण, दुर्वर्ण, सुगत, दुर्गत, मरते, उत्पन्न होते, प्राणियोंको देखता है । उनके कर्मोंके साथ सत्त्वोंको जानता है—'यह जीव काय-दुश्चरित-सहित, वचन-दुश्चरित-सहित, मन-दुश्चरित-सहित थे, आर्योंके निन्दक (=उपवादक) मिथ्या-दृष्टिवाले, मिथ्यादृष्टि-सम्बन्धी कर्मोंसे युक्त थे । यह काया छोड़, मरनेके बाद अ पाय=दुर्गति=विनिपात=नर्कमें उत्पन्न हुये हैं । किंतु यह जीव (=सत्त्व) काय-सुचरित-सहित, वचन-सुचरित-सहित, मन-सुचरित-सहित थे, आर्योंके अ-निन्दक सम्यग्-दृष्टिवाले सम्यग्-दृष्टि-सम्बन्धी कर्मोंसे युक्त थे । यह कामसे अलग हो…मरनेके बाद सुगति=स्वर्गलोकको प्राप्त हुए हैं । इस प्रकार अ-मानुष दिव्य विशुद्ध चक्षुसे प्राणियोंको० देखता है । यह भी ब्राह्मण ! तथागत-पद कहा जाता है ।०।

"सो इस प्रकार चित्तके० समाहित हो जानेपर आस्रव-क्षय-ज्ञान (=रागादि मलोंके नाश होनेका ज्ञान) के लिये चित्तको झुकाता है । सो 'यह दुःख है' इसे यथार्थसे जानता है, 'यह दुःख-समुदय है' इसे यथार्थसे जानता है, 'यह दुःख-निरोध है' इसे यथार्थसे जानता है । 'यह आस्रव हैं'० । 'यह आस्रव-समुदय है' । 'यह आस्रव-निरोध है'० । 'यह आस्रव-निरोध-गामिनी-प्रतिपद् (=रागादि चित्त-मलोंके नाशकी ओर ले जानेवाला मार्ग) है'० । यह भी ब्राह्मण ! तथागत-पद कहा जाता है,० । ० ।

"इस प्रकार जानते, इस प्रकार देखते, उस (पुरुष) के चित्तको काम-आस्रव भी छोड़ देता है, भव-आस्रव भी०, अ-विद्या-आस्रव भी० । छोड़ देने (=विमुक्त हो जाने) पर, 'छूट गया हूँ' ऐसा ज्ञान होता है । 'जन्म खतम हो गया, ब्रह्मचर्य पूरा हो गया, करना था, सो कर लिया, अब यहाँके लिये कुछ नहीं' यह भी जानता है । ब्राह्मण ! यह भी तथागत-पद कहा जाता है० । इतनेसे ब्राह्मण ! आर्य-श्रावक विश्वास करता है—भगवान् सम्यक्-संबुद्ध हैं० ।

"इतनेसे ब्राह्मण ! हस्ति-पदकी उपमा विस्तारपूर्वक पूरी होती है ।"

ऐसा कहनेपर जानुश्रोणि ब्राह्मणने भगवान्को यह कहा—

"आश्चर्य ! भन्ते !! आश्चर्य ! भन्ते !!० भन्ते ! मैं आप गौतमकी शरण जाता हूँ, धर्म और भिक्षु-संघकी भी । आजसे (मुझे) आप गौतम अंजलि-बद्ध उपासक धारण करें ।

महाहत्थिपदोपम-सुत्त (वि. पृ. ४५८)।

[१]ऐसा मैंने सुना—एक समय भगवान् श्रावस्ती में अनाथ-पिंडकके आराम जेतवन में विहार करते थे।

वहां आयुष्मान् सारिपुत्रने भिक्षुओंको संबोधित किया—

"आवुसो ! भिक्षुओ !"

"आवुस" कह, उन भिक्षुओंने आयुष्मान् सारिपुत्रको उत्तर दिया। आयुष्मान् सारिपुत्रने कहा—

"जैसे आवुसो ! जंगली प्राणियोंके जितने पद हैं, वह सभी हाथीके पैर (=हस्ति पद) में समा जाते हैं। बड़ाईमें हस्ति-पद उनमें उग्र (=श्रेष्ठ) गिना जाता है। ऐसे ही आवुसो ! जितने कुशल धर्म हैं, वह सभी चार आर्य-सत्योंमें सम्मिलित हैं। कौनसे चारोंमें ? दुःख आर्य-सत्यमें, दुःख-समुदय आर्य-सत्यमें, दुःख-निरोध आर्य-सत्यमें, और दुःख-निरोध-गामिनी-प्रतिपद् आर्य-सत्यमें।

"क्या है आवुसो ! दुःख आर्य-सत्य ? जन्म भी दुःख है। जरा (=बुढ़ापा) भी दुःख है। मरण भी दुःख है। शोक, रोना-पिटना, दुःख है। मनःसंताप, परेशानी भी दुःख हैं। जो इच्छा करके नहीं पाता वह भी दुःख है। संक्षेपमें पांच उपादान-स्कंध दुःख हैं।

"आवुसो ! पांच उपादान-स्कंध कौनसे हैं ? (पांच उपादान-स्कंध हैं) जैसे कि—रूप-उपादान स्कंध, वेदना०, संज्ञा०, संस्कार०, विज्ञान०। आवुसो ! रूप-उपादान-स्कंध क्या है ? चार महाभूत, और चारों महाभूतोंको लेकर (होनेवाले) रूप। आवुसो ! चार महाभूत कौनसे हैं ? पृथिवी-धातु, आप (=पानी)०, तेज (=अग्नि)०, वायु०। आवुसो ! पृथिवी धातु क्या है ? पृथिवी धातु हैं (दो), अध्यात्मिक (=शरीरमें) और बाहरी। आवुसो ! आध्यात्मिक पृथिवी-धातु क्या है ? जो शरीरमें (=अध्यात्म) हरएक शरीरमें कर्कश कठोर लिये हुये हैं, जैसे कि—केश, लोम, नख, दन्त, त्वक् (=चमड़ा), मांस, स्नायु (=नहारु), अस्थि, अस्थिके भीतरकी मज्जा, वुक्क, हृदय, यकृत, क्लोमक, प्लीहा, फुफ्फुस, आंत, आंत-पतली, उदरका मल (=करीष)। और भी जो कुछ शरीरमें प्रतिशरीरके भीतर कर्कश, कठोर लिये हुये गृहीत है। यह आवुसो ! आध्यात्मिक पृथिवी-धातु कही जाती है। जो कि आध्यात्मिक पृथिवी धातु है, और जो बाहरी (=बाहिरा) पृथिवी-धातु है, यह पृथिवी धातुही है। 'वह यह (पृथिवी) न मेरी है, न यह मैं हूँ, न यह मेरा आत्मा है' यह यथार्थसे अच्छी प्रकार जानकर देखना चाहिये। इस प्रकार इसे यथार्थसे अच्छी प्रकार जानकर देखनेसे, (द्रष्टा) पृथिवी-धातुसे निर्वेद (=उदासीनता)को प्राप्त होता है। पृथिवी धातुसे चित्तको विरक्त करता है।

---

१. म. नि. १ : ३ : ८।

"आवुसो ! ऐसा भी समय होता है, जब बाहरी पृथिवी-धातु कुपित होती है, उस समय बाहरी पृथिवी धातु अन्तर्ध्यान होती है । (तब) आवुसो ! इतनी महान् बाहरी पृथिवी-धातुकी भी अनित्यता = क्षय-धर्मता = वि-परिणाम-धर्मता जान पड़ती है । इस क्षुद्र कायाका तो क्या (कहना है) ? तृष्णामें फँसा (= तण्हुपादिण्णस्स) जिसे 'मैं', 'मेरा' या 'मैं हूँ' (कहता); वही इसको नहीं होती ।

"भिक्षुको यदि दूसरे आक्रोश = परिहास = रोष = पीड़ा देते हैं, तो वह समझता है— 'यह उत्पन्न दुःखरूप-वेदना (= अनुभव) मुझे श्रोत्रके संस्पर्श (= संस्पर्श) से उत्पन्न हुई है । और यह कारणसे (उत्पन्न हुई है) अ-कारणसे नहीं । किस कारणसे ? स्पर्शके कारण । 'स्पर्श अ-नित्य है' यह वह देखता है । 'वेदना अ-नित्य है'० 'संज्ञा अ-नित्य है'० । 'संस्कार अ-नित्य है'० । 'विज्ञान अ-नित्य है'० । उसका चित्त धातु (= पृथिवी) रूपी विषयसे पृथक्, प्रसन्न (= स्वच्छ), स्थिर, विमुक्त होता है । उस भिक्षुके साथ आवुसो ! यदि दूसरे, अन्-इष्ट = अ-कांत = अ-मनाप (व्यवहार) से वर्त्ताव करते हैं—हाथके योग (= संस्पर्श) से, ढेलेके योगसे, डंडेके योगसे, शस्त्रके योगसे । वह यह जानता है—कि 'यह इस प्रकारकी काया है, जिसमें पाणि-संस्पर्श भी लगते हैं, ढेलेके संस्पर्श भी०, डंडेके संस्पर्श भी०, शस्त्रके संस्पर्श भी० । भगवान्‌ने 'क्रकचोपम' (= आराके समान) अववाद (= उपदेश) में कहा है—'भिक्षुओ ! यदि चोर डाकू (= ओचरक) दोनों ओर दस्तेवाले आरासे भी एक एक अंग काटें, वहाँपर भी जो मनको दूषित करे, वह मेरे शासन (= उपदेश) (के अनुकूल आचरण) करनेवाला नहीं है ।' मेरा वीर्य (= उद्योग) चलता रहेगा, विस्मरण-रहित स्मृति मेरी उपस्थित (रहेगी), काया स्थिर (= प्रश्रब्ध) अ-चंचल (= अ-सारब्ध), चित्त समाहित = एकाग्र (रहेगा) । चाहे इस कायामें पाणि-संस्पर्श हो, ढेला मारना हो, डण्डा पड़े, शस्त्र लगे, (किंतु) बुद्धोंका उपदेश (पूरा) करना ही होगा ।

"आवुसो ! उस भिक्षुको, इस प्रकार बुद्धको याद करते, इस प्रकार धर्मको याद करते, इस प्रकार संघको याद करते, कुशल-संयुक्त (= निर्मल) उपेक्षा जब नहीं ठहरती । वह उससे उदास होता है, संवेगको प्राप्त होता है—'अहो ! अ-लाभ है मुझे, मुझे लाभ नहीं हुआ ; मुझे दुर्लभ है, सुलाभ नहीं हुआ; जिस मुझे इस प्रकार बुद्ध, धर्म, संघको स्मरण करते कुशल-युक्त उपेक्षा नहीं ठहरती ; जैसे कि आवुसो ! बहू (= सुणिसा) ससुरको देखकर संविग्न होती है, संवेगको प्राप्त होती है । इस प्रकार आवुसो ! उस भिक्षुको ऐसे बुद्ध धर्म संघ (के गुणों) को याद करते कुशल-संयुक्त उपेक्षा नहीं ठहरती, वह उससे० संवेगको प्राप्त (= उदास) होता है—मुझे अलाभ है० । आवुसो ! उस भिक्षुको यदि इस प्रकार बुद्ध, धर्म, संघको अनुस्मरण करते कुशल युक्त उपेक्षा ठहरती है, तो वह उससे सन्तुष्ट होता है । इतनेसे भी आवुसो ! भिक्षुने बहुत कर लिया ।

"क्या है आवुसो ! आप-धातु ? आप (= जल)-धातु दो होती है, आध्यात्मिक और बाहरी । आवुसो ! आध्यात्मिक आप-धातु क्या है ? जो शरीरमें प्रति शरीरमें पानी, या पानीका (विषय) है ; जैसे कि पित्त, श्लेष्म (= कफ), पीब, लोहू, स्वेद (= पसीना), मेद, अश्रु, वसा (= चर्बी), राल, नासिकामल, कर्ण-मल (= लसिका), मूत्र, और जो कुछ

और भी शरीरमें पानी या पानीका है। आवुसो! यह आप-धातु कही जाती है। जो आध्यात्मिक आप-धातु है, और जो बाहरी आप-धातु है, यह आप-धातुही है। 'यह मेरा नहीं', 'यह मैं नहीं', 'यह मेरा आत्मा नहीं' इस प्रकार इसे यथार्थ जानकर, देखना चाहिये। इस प्रकार यथार्थतः अच्छी तरह, जानकर, देखकर, आप-धातुसे निर्वेदको प्राप्त (=उदास) होता है। आप-धातुसे चित्तको विरक्त करता है।

"आवुसो! ऐसा भी समय होता है, जब कि बाह्य आप-धातु प्रकुपित होती है। वह गाँवको भी, निगमको भी, नगरको भी, जनपदको भी, जनपद-प्रदेशको भी बहा देती है। आवुसो! ऐसा समय होता है, जब महा समुद्रमें सौ योजन, दो सौ योजन, सातसौ योजनके भी पानी आते हैं। आवुसो! सोभी समय होता है, जब महा समुद्रमें सात ताल, छः ताल, पाँच ताल, चार ताल, तीन ताल, दो ताल, तालभर भी पानी होता...है। आवुसो! सो समय होता है, जब महासमुद्रमें सात पोरिसा (=पुरुष-परिमाण), ०पोरिसा भर पानी रह जाता है। ०जब महासमुद्रमें आध-पोरिसा, कमर भर, जाँघ भर, घुट्टी भर पानी ठहरता है। ०जब महासमुद्रमें अंगुलिके पोर धोने भरके लिये भी पानी नहीं रह जाता। आवुसो! उस इतनी बड़ी बाह्य आप-धातुकी अनित्यता ०।० । आवुसो! इतनेसे भी भिक्षुने बहुत किया।

"आवुसो! तेज-धातु क्या है? तेज-धातु है आध्यात्मिक और बाह्य। आवुसो! आध्यात्मिक तेज-धातु क्या है? जो शरीरमें प्रतिशरीरमें तेज (=अग्नि) या तेजका है; जैसे कि—जिससे संतप्त होता है, जर्जरित होता है, परिदग्ध होता है, खाया पीया अच्छी प्रकार हजम होता है; या जो कुछ और भी शरीरमें, प्रति-शरीरमें, तेज या तेज-विषय है। यह कहा जाता है आवुसो! तेज-धातु। जो यह आध्यात्मिक (=शरीरमें की) तेज-धातु है, और जो कि यह बाह्य तेज-धातु है, यह तेज-धातुही है। 'न यह मेरी है', 'न यह मैं हूँ', 'न यह मेरा आत्मा है'—इस प्रकार इसे यथार्थ जानकर देखना चाहिये। इस प्रकार इसे यथार्थतः जानकर, देखनेसे तेज-धातुसे निर्वेदको प्राप्त होता है, तेज-धातुसे चित्त विरक्त होता है।०।

"आवुसो! ऐसा समय (भी) होता है, जब बाह्य तेज-धातु कुपित होता है। वह गाँव, निगम, नगर० को भी जलाता है। वह हरियाली महामार्ग (=पन्थन्त), या शैल या पानी (या) भूमि-भागको प्राप्त हो, आहार न पा बुझ जाता है। आवुसो! ऐसा भी समय होता है, जब कि इसे मुर्गीके पर भर भी, चमड़ेके छिलके भर भी ढूँढते हैं। आवुसो! उस इतने बड़े तेज-धातुकी अ-नित्यता ०।० । आवुसो! इतनेसे भी भिक्षुने बहुत किया।

"आवुसो! वायु-धातु क्या है? वायुधातु आध्यात्मिक भी है, बाह्य भी। आध्यात्मिक वायु-धातु कौन है? जो शरीरमें प्रति-शरीरमें वायु या वायु विषयक है; जैसे कि ऊर्ध्वगामी वात, अधोगामी वात (=हवा), कुक्षि (=पेट)के वात, कोठेमें रहने वाले वात, अङ्ग प्रत्यङ्गमें अनुसरण करने वाले वात, या आश्वास-प्रश्वास, और जो कुछ और भी०। यह आवुसो! आध्यात्मिक वायु-धातु।० कहा जाता है।

"आवुसो! ऐसा समय भी होता है, जब कि बाह्य वायु-धातु कुपित होता है, वह गाँवको भी० उड़ा ले जाता है। आवुसो! ऐसा समय (भी) होता है, जब ग्रीष्मके पिछले

महीनेमें तालका पंखा डुलाकर भी हवा खोजते हैं,...। आवुसो ! इस इतने बड़े वायु-धातु० । उस भिक्षुको यदि दूसरे आक्रोश ०।० । इतनेसे भी आवुसो ! भिक्षुने बहुतकर लिया ।

"जैसे आवुसो ! काष्ठ, वल्ली, तृण और मृत्तिकासे घिरा आकाश, घर कहा जाता है । ऐसेही आवुसो ! अस्थि, स्नायु, मांस औ चर्मसे घिरा आकाश, रूप (=मूर्ति, शरीर) कहा जाता है । (जब) आध्यात्मिक (=शरीरमें की) चक्षु अ-परिभिन्न (=अ-विकृत) होती है, बाह्यरूप सामने नहीं आते; (तो) उनसे समन्वाहार (=मनसिकार, विषय-ज्ञान) उत्पन्न नहीं होता; उनसे उत्पन्न विज्ञान-भाग प्रादुर्भूत नहीं होता । जब आवुसो ! शरीरमें की चक्षु अ-परिभिन्न होती है, बाह्यरूप सामने आते हैं । तो उनसे समन्वाहार (=विषय-ज्ञान) उत्पन्न होता है, इस प्रकार उनसे उत्पन्न (स्कन्धके) विज्ञान-भागका प्रादुर्भाव होता है ।

"जो चक्षु-विज्ञानके साथका रूप है, वह रूप-उपादान-स्कंध गिना जाता है । जो० वेदना है, वह वेदना उपादान-स्कंध गिना जाता है । ० संज्ञा० संज्ञा-उपादान-स्कंध० । ०संस्कार० संस्कार-उपादान-स्कंध० । ०विज्ञान० विज्ञान-उपादान-स्कंध० । सो इस प्रकार जानता है—इस प्रकार इन पांचो उपादान-स्कंधोंका संग्रह = सन्निपात = समवाय होता है । यह भगवान्‌ने भी कहा है—'जो प्रतीत्य-समुत्पादको देखता (=जानता) है, वह धर्मको देखता है ; जो धर्मको देखता है, वह प्रतीत्य-समुत्पाद (=कार्य कारणसे उत्पत्ति होना) को देखता है । यह प्रतीत्य-समुत्पन्न (=कारणकरके उत्पन्न) हैं, जोकि यह पांच उपादान-स्कंध । जो इन पांच उपादान-स्कंधोंमें छन्द (=रुचि) = आलय = अनुनय = अध्यवसान है, वही दुःख-समुदय है । जो इन पांच उपादान स्कंधोंमें छन्द = रागका हटाना, छोड़ना है, वह दुःख-निरोध है । इतनेसे भी आवुसो ! भिक्षुने बहुत किया ।०।

"आवुसो ! यदि आध्यात्मिक (=शरीरमेंका) श्रोत्र अ-विकृत होता है । ० । ०घ्राण० । ०जिह्वा० । ०काय० । ०मन० । इतनेसे भी आवुसो ! भिक्षुने बहुत किया० ।"

आयुष्मान् सारि-पुत्रने यह कहा । सन्तुष्ट हो उन भिक्षुओंने आयुष्मान् सारि-पुत्रके भाषणको अनुमोदित किया ।

(१७)

अस्सलायण-सुत्त (वि. पू. ४५८) ।

[1]ऐसा मैंने सुना—एक समय भगवान् श्रावस्तीमें अनाथ पिंडकके आराम जेतवन में विहार कर रहे थे ।

उस समय नाना देशोंके पाँचसौ ब्राह्मण किसी कामसे श्रावस्तीमें ठहरे थे । तब उन ब्राह्मणोंको यह (विचार) हुआ—यह श्रमण गौतम चारों वर्णकी शुद्धि (=चातुव्वण्णी सुद्धि) का उपदेश करता है । कौन है जो श्रमण गौतमसे इस विषयमें वाद कर सके ? उस समय श्रावस्तीमें आश्वलायन नामक निघंटु-केटुभ (=कल्प)-अक्षर-प्रभेद (=शिक्षा)-सहित तीनों वेदों तथा पाँचवे इतिहासमें भी पारङ्गत, पदक (=कवि), वैयाकरण, लोकायत महापुरुष-लक्षण(शास्त्रों) में निपुण, वपित (=मुण्डित)-शिर, तरुण माणवक (=विद्यार्थी) रहता था । तब उन ब्राह्मणोंको यह हुआ—यह श्रावस्तीमें आश्वलायन० माणवक रहता है, यह श्रमण गौतमसे इस विषयमें वाद कर सकता है ।

तब वह ब्राह्मण जहाँ आश्वलायन माणवक था, वहाँ गये । जाकर आश्वलायन माणवकसे बोले—

" आश्वलायन ! यह श्रमण गौतम [2]चातुर्वर्णी शुद्धि उपदेश करता है । जाइये आप आश्वलायन श्रमण गौतमसे इस विषयमें वाद कीजिये । "

ऐसा कहने पर आश्वलायन माणवकने उन ब्राह्मणोंको कहा—

" श्रमण गौतम धर्मवादी है । धर्मवादी वाद करनेमें दुष्प्रति-मंत्र्य (=वाद करनेमें दुष्कर) होते हैं । मैं श्रमण गौतमके साथ इस विषयमें वाद नहीं कर सकता । "

दूसरी वार भी उन ब्राह्मणोंने आश्वलायन माणवकको कहा० ।

तीसरी वार भी उन ब्राह्मणोंने आश्वलायन माणवकको कहा—

" भो आश्वलायन ! यह श्रमण गौतम चातुर्वर्णी शुद्धिका उपदेश करता है । जाइये आप आश्वलायन श्रमण गौतमसे इस विषयमें वाद कीजिये । आप आश्वलायन युद्धमें विना पराजित हुये ही मत पराजित हो जायें । "

ऐसा कहनेपर आश्वलायन माणवकने उन ब्राह्मणोंको कहा—

"...मैं श्रमण गौतमके साथ नहीं (पार) पा सकता । श्रमण गौतम धर्म-वादी है० । मैं श्रमण गौतमके साथ इस विषयमें वाद नहीं कर सकता । तो भी मैं आप लोगोंके कहनेसे जाऊँगा ।"

तब आश्वलायन माणवक बड़े भारी ब्राह्मण-गणके साथ जहाँ भगवान् थे, वहाँ गया । जाकर भगवान्के साथ ०संमोदन कर ।....(कुशल-प्रश्न-पूछ)...एक ओर बैठ गया । एक ओर बैठे हुये आश्वलायन माणवकने भगवान्को कहा—

---

१ म. नि. २:५:३ । २ केवल ब्राह्मणोंकी नहीं, चारों वर्णोंकी ध्यान आदिसे पाप-शुद्धि ।

"हे गौतम ! ब्राह्मण ऐसा कहते हैं—'ब्राह्मणही श्रेष्ठ वर्ण है, दूसरे वर्ण छोटे हैं। ब्राह्मण ही शुक्ल वर्ण है, दूसरे वर्ण कृष्ण हैं। ब्राह्मण ही शुद्ध होते हैं, अ-ब्राह्मण नहीं। ब्राह्मणही ब्रह्माके औरस पुत्र हैं, मुखसे उत्पन्न, ब्रह्म-ज, ब्रह्म-निर्मित, ब्रह्माके दायाद हैं'। इस विषयमें आप गौतम क्या कहते हैं।"

"लेकिन आश्वलायन ! ब्राह्मणोंकी ब्राह्मणियाँ ऋतुमती, गर्भिणी, जनन करती, पिलाती देखी जाती हैं। योनिसे उत्पन्न होते हुए भी वह (ब्राह्मण) ऐसा कहते हैं—ब्राह्मण ही श्रेष्ठ वर्ण है० !!"

"यद्यपि आप गौतम ऐसा कहते हैं, फिर भी ब्राह्मण तो ऐसाही कहते हैं—ब्राह्मण ही श्रेष्ठ०।"

"तो क्या मानते हो आश्वलायन ! तुमने सुना है कि [1]यवन और [2]कम्बोजमें और दूसरे भी सीमान्त देशोंमें दो ही वर्ण होते हैं—आर्य और दास (=गुलाम)। आर्य हो दास हो (सक)ता है, दास हो आर्य हो (सक)ता है ?"

"हाँ, भो ! मैंने सुना है कि यवन और कम्बोजमें०।"

"आश्वलायन ! ब्राह्मणोंको क्या बल=क्या आश्वास है, जो ब्राह्मण ऐसा कहते हैं—ब्राह्मणही श्रेष्ठ वर्ण है० ?"

"यद्यपि आप गौतम ऐसा कहते हैं, फिर भी ब्राह्मण तो ऐसाही कहते हैं०।"

"तो क्या मानते हो, आश्वलायन ! क्षत्रिय, प्राण-हिंसक, चोर, दुराचारी, झूठा, चुगुल-खोर, कटुभाषी, बकवादी, लोभी, द्वेषी, मिथ्या-दृष्टि (=झूठी धारणावाला) हो; (तो क्या) काया छोड़, मरनेके बाद अपाय=दुर्गति=विनिपात=नरकमें उत्पन्न होगा, या नहीं ? ब्राह्मण प्राणि-हिंसक० हो० नरकमें उत्पन्न होगा या नहीं ? वैश्य० ? शूद्र० नरकमें उत्पन्न होगा या नहीं ?"

"भो गौतम ! क्षत्रियभी प्राणि-हिंसक० हो० नरकमें उत्पन्न होगा। ब्राह्मण भी०। वैश्य भी०। शूद्र भी०। सभी चारो वर्ण हे गौतम ! प्राणि-हिंसक० हो० नरकमें उत्पन्न होंगे।"

"तो फिर आश्वलायन ! ब्राह्मणोंको क्या बल=क्या आश्वास है, जो ब्राह्मण ऐसा कहते हैं०।"

"०फिर भी ब्राह्मण तो ऐसा ही कहते हैं०।"

"तो क्या मानते हो, आश्वलायन ! क्या ब्राह्मण ही प्राण-हिंसासे विरत होता है, चोरीसे विरत होता है, दुराचार०, झूठ०, चुगली०, कटुवचन०, बकवादसे विरत होता है, अलोभी, अ-द्वेषी, सम्यक्-दृष्टि (=सच्ची दृष्टिवाला) हो, शरीर छोड़ मरनेके बाद, सुगति स्वर्गलोकमें उत्पन्न होता है; क्षत्रिय नहीं, वैश्य नहीं, शूद्र नहीं ?"

---

१ रूसी तुर्किस्तान (?) जहाँ सिकन्दरके बाद यवन (ग्रीक) लोग बसे हुये थे; अथवा यूनान। २ काफिर-स्तान (अफगानिस्तान), अथवा ईरान।

"नहीं, हे गौतम ! क्षत्रिय भी प्राण-हिंसा-विरत० सुगति स्वर्ग-लोकमें उत्पन्न हो सकता है, ब्राह्मण भी०, वैश्य भी०, शूद्र भी०, सभी चारों वर्ण० ।"

"आश्वलायन ! ब्राह्मणोंको क्या बल० ? । ०

"तो क्या मानते हो, आश्वलायन ! क्या ब्राह्मण ही वैर-रहित द्वेष-रहित मैत्र-चित्तकी भावनाकर सकता है, क्षत्रिय नहीं, वैश्य नहीं, शूद्र नहीं ?"

"नहीं, हे गौतम ! क्षत्रिय भी इस स्थानमें० भावना कर सकता है०।०। सभी चारों भावनाकर सकते हैं ।

"यहाँ आश्वलायन ! ब्राह्मणोंको क्या बल० ?" ०।

"तो क्या मानते हो, आश्वलायन ! क्या ब्राह्मण ही मंगल (=स्वस्ति) स्नान-चूर्ण लेकर नदीको जा, मैल धो सकता है, क्षत्रिय नहीं० ?"

"नहीं, हे गौतम ! क्षत्रिय भी मंगल स्नान-चूर्ण ले, नदी जा मैल धो सकता है०, सभी चारों वर्ण० ।"

"यहाँ आश्वलायन ! ब्राह्मणोंको क्या बल० ?"०

"तो क्या मानते हो, आश्वलायन ! (यदि) यहाँ मूर्द्धा-भिषिक्त क्षत्रिय राजा, नाना जातिके सौ-पुरुष इकट्ठे करे (और उन्हें कहे)—आवें आप सब, जो कि क्षत्रिय कुलसे, ब्राह्मण-कुलसे, और राजन्य (=राजसंतान) कुलसे उत्पन्न हैं; और शाल (=साखू)की या सरल (वृक्ष)की या चन्दन की या पद्म (काष्ठ)की उत्तरारणी लेकर आग बनावें, तेज प्रादुर्भूत करें। (और) आप भी आवें, जो कि चण्डालकुलसे, निषादकुलसे बसोर (=वेणु)—कुलसे रथकार-कुलसे, पुक्कसकुलसे उत्पन्न हुये हैं, और कुत्तेके पीनेकी, सूअरके पीनेकी कठरीकी, धोबीकी कठरीकी, या रेंडकी लकड़ीकी उत्तरारणी लेकर, आग बनावें, तेज प्रादुर्भूत करें। तो क्या मानते हो, आश्वलायन ! जो वह क्षत्रिय-ब्राह्मण-वैश्य-शूद्रकुलोंसे उत्पन्नों-द्वारा शाल-सरल–चन्दन–पद्मकी उत्तरारणीको लेकर, अग्नि उत्पन्नकी गई है, तेज प्रादुर्भूत किया गया, क्या वही अर्चिमान् (=लौवाला), वर्णवान् प्रभास्वर अग्नि होगा ? उसी आगसे अग्निका काम लिया जा सकता है; और जो वह चांडाल-निषाद-बसोर-रथकार-पुक्कस-कुलोत्पन्नों द्वारा श्वपान–कठरीकी शूकर–पान–कठरीकी, रेंड–काष्टकी उत्तराणीको लेकर उत्पन्न आग है, प्रादुर्भूत तेज (है) वह अर्चिमान् वर्णवान् प्रभास्वर न होगा ? उस आगसे अग्निका काम नहीं लिया जा सकेगा ?"

"नहीं, हे गौतम ! जो वह क्षत्रिय० कुलोत्पन्न द्वारा० अग्नि बनाई गई है० वह भी अर्चिमान्० अग्नि होगी, उस आगसे भी अग्निका काम लिया जा सकता है; और जो वह चांडाल० कुलोत्पन्न द्वारा० अग्नि बनाई गई है० वह भी अर्चिमान्० अग्नि होगी । सभी आगसे अग्निका काम लिया जा सकता है ।"

"यहाँ आश्वलायन ! ब्राह्मणोंका क्या बल० ?" ०।

"तो क्या मानते हो, आश्वलायन ! यदि क्षत्रिय–कुमार ब्राह्मण–कन्याके साथ संवास करे । उनके सहवाससे पुत्र उत्पन्न हो । जो वह क्षत्रिय–कुमार द्वारा ब्राह्मण-कन्यामें पुत्र उत्पन्न

हुआ है, क्या वह माताके समान और पिताके समान, 'क्षत्रिय (है)', 'ब्राह्मण (है)' कहा जाना चाहिये ?" "हे गौतम ! ०कहा जाना चाहिये ।"

"०आश्वलायन ! यदि ब्राह्मण-कुमार क्षत्रिय-कन्याके साथ संवास करे० 'ब्राह्मण (है)' कहा जाना चाहिये ?" "० 'ब्राह्मण (है)' कहा जाना चाहिये ।"

"०आश्वलायन ! यहां घोड़ीको गदहेसे जोड़ा खिलायें, उनके जोड़से किशोर (=बछड़ा) उत्पन्न हो । क्या वह माता० पिताके समान, 'घोड़ा है' 'गदहा है' कहा जाना चाहिये ?"

"…हे गौतम ! वह अश्वतर (=खच्चर) होता है । यहां…भेद देखता हूँ । उन दूसरोंमें कुछ भेद नहीं देखता ।"

"०आश्वलायन ! यहां दो माणवक जमुवे भाई हों । एक अध्ययन करनेवाला, और उपनीत (=उपनयय द्वारा गुरुके पास प्राप्त) है; दूसरा अन्-अध्यायक और अन्-उपनीत (है) । श्राद्ध, यज्ञ या पाहुनाई (=पाहुणे)में, ब्राह्मण किसको प्रथम भोजन करायेंगे ?"

"हे गौतम ! जो वह माणवक अध्यायक और उपनीत है, उसीको० प्रथम भोजन करायेंगे । अन्-अध्यायक अन्-उपनीतको देनेसे क्या महाफल होगा ?"

"तो क्या मानते हो, आश्वलायन ! यहां दो माणवक जमुवे भाई हों । एक अध्यायक उपनीत, (किंतु) दुःशील (=दुराचारी) पाप-धर्म (=पापी) हो; दूसरा अन्-अध्यायक अन्-उपनीत, (किंतु) शीलवान् कल्याण-धर्म । इनमें किसको ब्राह्मण श्राद्ध या यज्ञ या पाहुनाईमें प्रथम भोजन करायेंगे ?"

"हे गौतम ! जो वह माणवक अन्-अध्यायक, अन्-उपनीत, (किंतु) शील-वान् कल्याण-धर्म है, उसीको ब्राह्मण० प्रथम भोजन करायेंगे । दुःशील=पाप-धर्मको दान देनेसे क्या महा-फल होगा ?"

"आश्वलायन ! पहिले तू जातिपर पहुँचा, जातिपर जाकर मंत्रों पर पहुँचा, मन्त्रोंपर जाकर अब तू चातुर्वर्णी शुद्धिपर आगया, जिसका कि मैं उपदेश करता हूँ ।"

ऐसा कहनेपर आश्वलायन माणवक चुप होगया, मूक हो गया,…अधोमुख चिन्तित, निष्प्रतिभ हो बैठा ।

तब भगवान्‌ने आश्वलायन माणवकको चुप मूक० निष्प्रतिभ बैठे देख…कहा—

"पूर्वकालमें आश्वलायन ! जंगलमें, पर्णकुटियोंमें वास करते हुये सात ब्राह्मण-ऋषियोंको, इस प्रकारकी पाप-दृष्टि (=बुरी धारणा) उत्पन्न हुई—ब्राह्मणही श्रेष्ठ वर्ण है० । आश्वलायन ! तब असित देवल ऋषिने सुना, ०सात ब्राह्मण ऋषियों को इस प्रकारकी पाप-दृष्टि उत्पन्न हुई है० । तब आश्वलायन ! असित देवल ऋषि सिर-दाढ़ी मुंडा मंजीठके रंगका (=लाल) धुस्सा पहिन, खड़ाऊँपर चढ़, सोने चांदीका दंड धारणकर, सातों ब्राह्मण ऋषियोंको कुटीके आंगनमें प्रादुर्भूत हुये। तब आश्वलायन ! असित देवल ऋषि सातों ब्राह्मण ऋषियोंके कुटीके आंगनमें टहलते हुये कहने लगे—"हैं ! आप ब्राह्मण-ऋषि कहां

चले गये ? हैं ! आप ब्राह्मण-ऋषि कहां चले गये ?" तब आश्वलायन ! उन सातों ब्राह्मण ऋषियोंको हुआ—'कौन है यह गँवार लड़केकी तरह सातों ब्राह्मण ऋषियोंके कुटीके आँगनमें टहलते ऐसे कह रहा है—हैं ! आप० । अच्छा तो इसे शाप देवें ।' तब आश्वलायन ! सात ब्राह्मण-ऋषियोंने असित देवल ऋषिको शाप दिया—'शूद्र ! (=वृषल) भस्म हो जा ।' जैसे जैसे आश्वलायन ! सात ब्राह्मण ऋषि असित देवल ऋषिको शाप देते थे, वैसेही वैसे ....देवल ऋषि अधिक सुन्दर, अधिक दर्शनीय=अधिक प्रासादिक होते जा रहे थे। तब आश्वलायन ! सातों ब्राह्मण ऋषियोंको हुआ—'हमारा तप व्यर्थ है, ब्रह्मचर्य निष्फल हैं । हम पहिले जिसको शाप देते—'वृषल ! भस्म होजा', भस्मही होता था । इसको हम जैसे जैसे शाप देते हैं, वैसे वैसे यह अभिरूप-तर, दर्शनीय-तर, प्रासादिक-तर, होता जा रहा है ।' (देवलने कहा)—'आप लोगों का तप व्यर्थ नहीं, ब्रह्मचर्य निष्फल नहीं, आप लोगोंका मन जो मेरे प्रति दूषित हो गया है, उसे छोड़ दें ।' (उन्होंने कहा)—जो मनोपदोस (=मानसिक दुर्भाव) है, उसे हम छोड़ते हैं, आप कौन हैं ?' 'आप लोगोंने असित देवल ऋषिको सुना है ?' 'हाँ, भो !' 'वही मैं हूँ ।'

"तब आश्वलायन ! सातों ब्राह्मण ऋषि, असित देवल ऋषिको अभिवादन करनेके लिये पास गये । असित देवल ऋषिने कहा—' मैंने सुना'''कि 'अरण्यके भीतर पर्णकुटियोंमें वास करते, सात ०ऋषियोंको इस प्रकारकी ०उत्पन्न हुई है—ब्राह्मणही श्रेष्ठ वर्ण है० ।" "हाँ भो !" "जानते हैं आप, कि जननी=माता ब्राह्मणहीके पास गई, अ-ब्राह्मणके पास नहीं ?" "नहीं ।" "जानते हैं आप, कि जननी=माताकी माता सात पीढ़ी तक मातामह-युगल (=नानी) ब्राह्मणहीके पास गई, अ-ब्राह्मणके पास नहीं ?" 'नहीं भो !' "जानते हैं आप कि जनिता=पिता० पितामह-युगल (=दादा) सातवीं पीढ़ी तक ब्राह्मणहीके पास गये, अ-ब्राह्मणीके पास नहीं ?" "नहीं भो !" "जानते हैं आप, गर्भ कैसे ठहरता है ?" "हाँ जानते हैं भो ! जब माता-पिता एकत्र होते हैं, माता ऋतुमती होती है, और गंधर्व (=उत्पन्न होने वाला, सत्त्व) उपस्थित होता है ; इस प्रकार तीनोंके एकत्रित होनेसे गर्भ ठहरता है ।' "जानते हैं आप, कि यह गंधर्व क्षत्रिय होता है, ब्राह्मण, वैश्य या शूद्र होता है ?' "नहीं भो !' हम नहीं जानते, कि वह गंधर्व० ।" "जब ऐसा (है) तब जानते हो कि तुम कौन हो ?" "भो ! हम नहीं जानते हम कौन हैं ।"

"हे आश्वलायन ! असित देवल ऋषि-द्वारा जातिवादके विषयमें पूछे जानेपर, ...वह सातों ब्राह्मण ऋषि भी (उत्तर) न दे सके; तो फिर आज तुम'''क्या (उत्तर) दोगे ; (जबकि) अपनी सारी पण्डिताई-सहित तुम उनके रसोईदार (=दर्विग्राहक) (के समान) हो ।"

ऐसा कहने पर आश्वलायन माणवकने भगवान्‌को कहा—"आश्चर्य ! हे गौतम !! आश्चर्य ! हे गौतम !!० आजसे मुझे अंजलि-बद्ध उपासक धारण करें ।"

महाराहुलोवाद-सुत्त । अक्खण-सुत्त (वि० पू० ४५८) ।

[१]ऐसा मैंने सुना—एक समय भगवान् श्रावस्तीमें अनाथ-पिंडकके आराम-जेतवनमें विहार करते थे।

तब पूर्वाह्न समय भगवान् पहिनकर, पात्र-चीवरले श्रावस्तीमें पिंड-(चार) केलिये प्रविष्ट हुये। आयुष्मान् राहुलभी पूर्वाह्न समय पहिनकर पात्र-चीवरले भगवान्के पीछे पीछे होलिये। भगवान्ने देखकर, आयुष्मान् राहुलको संबोधित किया—

"राहुल ! जो कुछ रूपहै—भूत-भविष्य-वर्तमान-का शरीरके भीतर (=अध्यात्म) का, या बाहरका, महान् या सूक्ष्म, अच्छा या बुरा, दूर या समीप-का—सभी रूप 'न यह मेरा है', 'न मैं यह हूं', 'न यह मेरा आत्मा है', इस प्रकार यथार्थ जानकर देखना (=समझना) चाहिये।"

"रूपहीको भगवान् ! रूपहीको सुगत !"

"रूपकोभी राहुल ! वेदनाकोभी, संज्ञाकोभी, संस्कारकोभी, विज्ञानकोभी।"

तब आयुष्मान् राहुल—'कौन आज भगवान्का उपदेश सुनकर, गांवमें पिंड-चार के लिये जाये ?' (सोच) वहांसे लौटकर एक वृक्षके नीचे, आसन मार, शरीरको सीधा रख, स्मृतिको सन्मुख ठहराकर बैठगये। भगवान् ने आयुष्मान् राहुलको वृक्षके नीचे० बैठा देखा। देखकर संबोधित किया—

"राहुल ! आणापान-सति (=प्राणायाम) भावनाकी भावना (=ध्यान) कर। राहुल ! आणापान सति (=आनापान महा-स्मृति, भावना किये जानेपर महाफलदायक, बड़े माहात्म्यवाली होती है।"

तब आयुष्मान् राहुल सायंकालको ध्यानसे उठ, जहां भगवान् थे वहां गये। जाकर भगवान्को अभिवादनकर एक ओर बैठगये। एक ओर बैठे हुये आयुष्मान् राहुलने भगवान्को यह कहा—

"भन्ते ! किस प्रकार भावना कीगई, किस प्रकार बढ़ाईगई, आणापान-सति महा-फल-दायक, बड़े माहात्म्यवाली होती है ?"

"राहुल ! जो कुछ भी शरीरमें (=अध्यात्म), प्रतिशरीर में (=प्रत्यात्म) कर्कश, खर्खरा है, जैसे—केश, लोम, नख, दांत, चमड़ा, मांस, स्नायु, अस्थि, अस्थि-मज्जा, वुक्क, हृदय, यकृत, क्लोमक, प्लीहा, फुफ्फुस, आंत, पतली आंत (=अंत-गुण= आंतकी रस्सी), पेटका मल है। और जो और भी कुछ शरीरमें, प्रतिशरीरमें कर्कश० है। राहुल ! यह सब ! अध्यात्म पृथिवीधातु कहलाती है। जो कुछ कि अध्यात्म पृथिवीधातु है, और जो कुछ बाह्य; यह (सब) पृथिवी-धातु, पृथिवी-धातु ही है। उसको 'यह मेरी

---

[१] म. नि. २ : १ : २ ।

नहीं', 'यह मैं नहीं हूं', 'यह मेरा आत्मा नहीं है' इस प्रकार यथार्थतः जानकर देखना चाहिये । इस प्रकार इसे यथार्थतः अच्छी प्रकार जानकर देखनेसे(भिक्षु) पृथिवी-धातुसे उदास होता है, पृथिवी-धातुसे चित्तको विरक्त करता है ।

"क्या है राहुल ! आपधातु ? आप(=जल) धातु (दो) हैं आध्यात्मिक (=शरीरमें की) और बाह्य । क्या है ? अध्यात्मिक आप-धातु [1]० । ०तेज-धातु ०।० वायु-धातु० ।

"क्या है राहुल ! आकाश-धातु ? आकाश-धातु आध्यात्मिकभी है, और बाह्य भी । "राहुल ! आध्यात्मिक आकाश-धातु क्या है ? जो कुछ शरीरमें, प्रतिशरीरमें आकाश या आकाश-विषयक है, जैसे कि—कर्ण-छिद्र, नासिका-छिद्र, मुख-द्वार जिससे अन्न-पान खादन-आस्वादन किया जाता है ; और जहां खाना-पीना...ठहरता है, और जिससे कि अधोभागसे खाया-पिया...बाहर निकलता है । और जो कुछ और भी शरीरमें प्रति-शरीरमें आकाश या आकाश-विषयक है । यह सब राहुल ! आध्यात्मिक आकाश-धातु कही जाती है । जो कुछ आध्यात्मिक आकाश-धातु है, और जो कुछ बाह्य आकाश-धातु है, वह सब आकाश-धातु ही है । 'वह न मेरी है'०, ।०।

"राहुल ! पृथिवी-समान भावनाकी भावना (=ध्यान) कर । पृथिवी-समान भावनाकी भावना करते हुये, राहुल ! तेरे चित्तको, दिलको अच्छे लगनेवाले स्पर्श— चित्तको चारों ओरसे पकड़कर न चिमटेंगे । जैसे राहुल ! पृथिवीमें शुचि (=पवित्र वस्तु) भी फेंकते हैं, अशुचिभी फेंकते हैं । पाखानाभी०, पेशावभी०, कफ०, पीव०, लोहू० । उससे पृथिवी दुःखी नहीं होती,...ग्लानि नहीं करती, घृणा नहीं करती ; इसी प्रकार ; तू राहुल ! पृथिवी-समान भावनाकी भावनाकर । पृथिवीसमान भावना करते राहुल ! तेरे चित्तको अच्छे लगनेवाले स्पर्श चित्तको० न चिमटेंगे ।

"आप (=जल)-समान० । जैसे राहुल ! जलमें शुचिभी धोते हैं० ।

"तेज (=अग्नि)-समान० । जैसे राहुल ! तेज शुचिको भी जलाता है० ।

"वायु-समान० । जैसे राहुल ! वायु शुचिके पासभी बहता है ।

"आकाश-समान० । जैसे राहुल ! आकाश किसी पर प्रतिष्ठित नहीं । इसीप्रकार तू राहुल ! आकाश-समान भावनाकी भावनाकर । राहुल ! आकाश-समान भावनाकी भावना करनेपर, उत्पन्न हुये मनको अच्छे लगनेवाले स्पर्श चित्तको चारों ओरसे पकड़कर चित्त को न चिमटेंगे ।

"राहुल ! मैत्री (=सबको मित्र समझना)-भावनाकी भावनाकर । मैत्री-भावनाकी भावना करनेसे राहुल ! जो व्यापाद (=द्वेष) है, वह छूट जायेगा ।

"राहुल ! करुणा-(=सर्व प्राणिपर दया करना) भावनाकी भावना कर । करुणा भावनाकी भावना करनेसे राहुल ! जो तेरी विहिंसा (=पर-पीडा-करण) है, वह छूट जायगी ।

"राहुल ! मुदिता (=सुखी देख प्रसन्न होना)-भावनाकी भावनाकर ।

---

१. पृ० १७६, १७७ ।

० राहुल ! जो तेरी अ-रति (=मन न लगना) है वह हट जायेगी ।

" राहुल ! उपेक्षा (=शत्रुकी शत्रुताकी उपेक्षा)-भावनाकी भावना कर । ० जो तेरा प्रतिघ (=प्रतिहिंसा) है, वह हट जायेगा ।

" राहुल ! अ-शुभ (=सभी भोग बुरे हैं)-भावनाकी भावना कर । ० जो तेरा राग है, वह चला जायगा ।

" राहुल ! अ-नित्य-संज्ञा (=सभी पदार्थ अ-नित्य हैं)-भावनाकी भावनाकर । ० जो तेरा अस्मिमान (=अहंकार) है, वह छूट जायेगा ।

" राहुल ! आणापान-सति (=प्राणायाम)-भावनाकी भावना कर । आणा-पान सति भावना करना-बढ़ाना, राहुल ! महा-फल-प्रद बड़े माहात्म्यवाला है । राहुल ! आणा-पान-सति-भावना भावित होनेपर, बढ़ाई जानेपर कैसे महा-फल-प्रद० होती है ? राहुल ! भिक्षु अरण्यमें वृक्षके नीचे, या शून्य-गृहमें आसन मारकर, शरीरको सीधा धारण कर, स्मृति को सन्मुख रख, बैठता है । वह स्मरण रखते सांस छोड़ता है, स्मरण रखते सांस लेता है, लम्बी सांस छोड़ते ' लम्बी सांस छोड़ रहा हूं ' जानता है । लम्बी सांस लेते ' लम्बी सांस ले रहा हूँ ' जानता है । छोटी सांस छोड़ते० । छोटी सांस लेते० । 'सारे कामको अनु-भव (=प्रतिसंवेदन) करते सांस छोडूं ' सीखता है । ' सारे कामको अनुभव करते सांस लूं '-सीखता है । कायाके संस्कारों खाज आदि को दबाते हुये सांस छोडूं, ० ० सांस लूं ' सीखता है । ' प्रीतिको अनुभव करते सांस छोड़ूं ' ० । ' ० सांस लूँ ' सीखता है । ' सुख अनुभव करते० ' । ' चित्तके संस्कारको अनुभव करते० । ' चित्त संस्कारको दबाते हुये ० । ' चित्तको अनुभव करते० ' । ' चित्तको प्रमोदित करते० । ' चित्तको समाधान करते० । ' चित्तको (राग आदिसे) विमुक्त करते० । ' (सब पदार्थोंको) अनित्य देखने-वाला हो० । ' (सब पदार्थोंमें) विरागकी दृष्टि से० । ' (सब पदार्थों में) निरोध (=वि-नाश)की दृष्टिसे । ' (सब पदार्थोंमें) परित्यागकी दृष्टिसे सांस छोड़ूं ' सीखता है । ' परित्यागकी दृष्टिसे सांस लूँ ' सीखता है । राहुल ! इस प्रकार भावना की गई, बढ़ाई गई आणा-पान-सति-महा-फल-दायक, और बड़े माहात्म्यवाली होती है । राहुल ! इस प्रकार भावनाकी गई, बढ़ाई गई आणा-पाण-सतिसे जो वह अन्तिम आश्वास (=सांस छोड़ना) प्रश्वास (=सांस लेना) हैं, वह भी विदित होकर, लय (=निरुद्ध) होते हैं, अ-विदित होकर नहीं । "

भगवान्ने यह कहा । आयुष्मान् राहुलने संतुष्ट हो, भगवान्के भाषणका अभिनन्दन किया ।

आक्खरण-सुत्त ।

[1]ऐसा मैंने सुना—एक समय भगवान् श्रावस्तीमें अनाथ-पिंडकके आराम-जेतवनमें विहार करते थे ।

वहाँ भगवान्ने भिक्षुओंको संबोधित किया—

" भिक्षुओ ! "

---

[1] अं. नि. ८:१:३:८ ।

" भदन्त ! " (कह) उन भिक्षुओंने उत्तर दिया। तब भगवान्‌ने उन भिक्षुओंको कहा—

" भिक्षुओ ! 'लोक क्षण-कृत्य है, क्षण-कृत्य है' ऐसा अज्ञ (=अश्रुतवान्) पृथग्जन कहता है, लेकिन वह क्षण या अ-क्षणको नहीं जानता। भिक्षु ब्रह्मचर्य-वासके लिये यह आठ अ-क्षण=अ-समय हैं। कौनसे आठ ? भिक्षुओ ! लोकमें तथागत अर्हत सम्यक्-संबुद्ध विद्या-आचरण-संपन्न, सुगत, लोक-विद्, अनुपम पुरुषके चाबुक-सवार, देव-मनुष्य-उपदेशक बुद्ध भगवान् उत्पन्न हों। वह सुगतके ज्ञात, उपशांत करनेवाले, निर्वाणको लानेवाले, संबोधि (=परमज्ञान)-गामी धर्मको उपदेश करते हों। (१) (उस समय) यह पुद्गल (=पुरुष) नर्कमें उत्पन्न हो। (२)० पशु-योनिमें उत्पन्न हो। (३)० प्रेतलोकमें उत्पन्न हो। (४)० किसी दीर्घायु देव-समुदायमें०। (५)० (ऐसे) प्रत्यन्त (=सीमान्त) देशमें, अविज्ञ म्लेच्छों (के देश) में उत्पन्न हो जहां भिक्षु भिक्षुनियां, उपासक, उपासिकाओंकी गति नहीं। (६)० [२]मध्यमजनपदों (=मज्झिमेसु जनपदेसु)में उत्पन्न हुआ हो, (किंतु) मिथ्या दृष्टि=उल्टी मतका हो—दान (कुछ) नहीं, यज्ञ (कुछ) नहीं, सुकृत दुष्कृत कर्मोंका फल=विपाक कुछ नहीं, यह लोक नहीं, परलोक नहीं, माता नहीं है, पिता नहीं है, उत्पन्न होनेवाले (=औपपातिक) प्राणी (कोई) नहीं। लोकमें अच्छी तरह पहुँचे, अच्छी तरह (तत्त्वको) प्राप्त हुये, श्रमण-ब्राह्मण (कोई) नहीं हैं, जो कि इस लोक और परलोकको स्वयं जानकर=साक्षात् कर, जतलायें। (७)० यह पुद्गल मध्यम देशमें पैदा हुआ हो, लेकिन वह है, दुष्प्रज्ञ, जड़, वज्रमूर्ख (=एड़मूग=भेड़-गूँगा); सुभाषित, दुर्भाषितके अर्थको जाननेमें असमर्थ, यह भिक्षुओ ! ब्रह्मचर्य-वासके लिये सातवां अ-क्षण=अ-समय है।

" (८) और फिर भिक्षुओ ! लोकमें तथागत० उत्पन्न हों, उपदेश करते हों, उस समय यह पुद्गल मध्यम देशमें पैदा हुआ हो, और प्रज्ञावान्, अजड़, अन्-एड़मूग, सुभाषित दुर्भाषितके अर्थ जाननेमें समर्थ हो। यह भिक्षुओ ! ब्रह्मचर्य-वासके लिये, आठवां अ-क्षण=अ-समय।

" यह भिक्षुओ ! ब्रह्मचर्यवासके लिये तीन अ-क्षण=अ-समय हैं। भिक्षुओ ! ब्रह्मचर्य-वासके लिये एक ही क्षण=समय है। कौन सा एक ? भिक्षुओ ! लोकमें तथागत ०उत्पन्न हों, ०उपदेश करते हों; और यह पुद्गल मध्यम-देशोंमें पैदा हुआ हो, और वह हो प्रज्ञावान्०, अजड़, अन्-एड़-मूग सुभाषित दुर्भाषितके अर्थ जाननेमें समर्थ। यही भिक्षुओ ! एक क्षण=समय है, ब्रह्मचर्यवासके लिये।

+ + + +

कहा—'विना हेतु = विना प्रत्ययही पुरुषकी संज्ञा (= चेतना) उत्पन्न भी होती हैं, निरुद्ध भी होती हैं। वह उस समय संज्ञा-रहित (= अ-संज्ञी) होता है। इस प्रकार कोई कोई अभि-संज्ञा-निरोधका प्रचार करते हैं।' उसको दूसरेने कहा—'भो! यह ऐसा नहीं हो सकता। संज्ञा पुरुषका आत्मा है। वह आता भी है, जाता भी है। जिस समय आता है, उस समय संज्ञा-वान् (= संज्ञी) होता है; जिस समय जाता है, संज्ञा-रहित (= अ-संज्ञी) होता है। इस प्रकार कोई कोई अभि-संज्ञा-निरोध बतलाते हैं। उसको दूसरेने कहा—' भो! यह ऐसा नहीं होगा। (कोई कोई) श्रमण ब्राह्मण महा-ऋद्धि-मान् = महा-अनुभाव-वान् हैं। वह इस पुरुषकी संज्ञाको डालते भी हैं, निकालते भी हैं। जिस समय डालते हैं, उस समय संज्ञी होता है। जिस समय निकालते हैं, उस समय अ-संज्ञी होता है। इस प्रकार कोई कोई अभिसंज्ञा-निरोध बतलाते हैं।' उसको दूसरेने कहा—भो! यह ऐसे न होगा। (कोई कोई) देवता महा-ऋद्धि-मान् = महा-अनुभाव-वान् हैं। वह इस पुरुषकी संज्ञा डालते भी हैं, निकालते भी हैं०। इस प्रकार कोई कोई अभि-संज्ञा-निरोध बतलाते हैं।' तब मुझको भन्ते! भगवान्के बारेमेंही स्मरण आया—'अहो अवश्य वह भगवान् सुगत हैं' जो इन धर्मों (= अभिज्ञता) में चतुर हैं।' भगवान् अभि-संज्ञा-निरोधके प्रकृतिज्ञ (= स्वभावज्ञ) हैं।' कैसे भन्ते! अभि-संज्ञा-निरोध होता है?"

"पोट्ठ-पाद! जो वह श्रमण-ब्राह्मण ऐसा कहते हैं—विना हेतु = विना प्रत्ययही पुरुषकी संज्ञायें उत्पन्न होती हैं, निरुद्धभी होती हैं। आदिसेही उन्होंने भूलकी। वह किस लिये? स-हेतु (= कारणसे) = स-प्रत्यय पोट्ठ-पाद पुरुषकी संज्ञायें उत्पन्न होती हैं, निरुद्ध भी होती हैं। शिक्षासे कोई कोई संज्ञा उत्पन्न होती है, शिक्षासे कोई कोई संज्ञा निरुद्ध होती है।"

"और शिक्षा क्या है?"

भगवान्ने कहा—"पोट्ठपाद! यहाँ लोकमें तथागत उत्पन्न होते हैं,—सम्यक्-संबुद्ध, विद्या-आचरण-संपन्न, सुगत, लोक-वित्, अनुपम पुरुष-चाबुक-सवार, देव-मनुष्य-उपदेशक बुद्ध भगवान्। सो इस देव-मार-ब्रह्म-सहित लोकको०[1]। ०धर्म देशना करते हैं०। ०छेदन, वध, बंधन, छापा मारने आलोप (= ग्राम आदि विनाश करने), डाका डालनेमें विरत होते हैं। इस प्रकार पोट्ठपाद! भिक्षु शीलसम्पन्न होता है। ०। उसे इन पाँच नीवरणोंसे मुक्त हो, अपनेको देखनेसे प्रमोद उत्पन्न होता है। प्रमुदितको प्रीति उत्पन्न होती है। प्रीति-सहित चित्त वालेकी काया अ-चंचल (= प्रश्रब्ध) होती है। प्रश्रब्ध-काय-वाला सुख-अनुभव करता है। सुखितका चित्त समाहित (= एकाग्र) होता है। वह कामोंसे पृथक् हो, अ-कुशल धर्मोंसे पृथक् हो, स-वितर्क विवेकसे उत्पन्न प्रीति-सुख वाले प्रथम ध्यानको प्राप्त हो विहरता है। उसकी जो वह पहिलेकी काम-संज्ञा है, वह निरुद्ध (= नष्ट) होती है। विवेकसे उत्पन्न प्रीति-सुखवाली सूक्ष्म-सत्य-संज्ञा उस समय होती है। जिससे कि वह उस समय सूक्ष्म-सत्य-संज्ञी होता है। इस शिक्षासे भी कोई कोई संज्ञायें उत्पन्न होती हैं, कोई कोई निरुद्ध होती हैं।

---

१. पृष्ठ १७२-७४ 'तथागत पांच' और 'ब्राह्मण' छोड़कर।

"और भी पोट्टपाद ! भिक्षु वितर्क विचारके उपशांत होनेपर, भीतरके संप्रसाद (=प्रसन्नता)=चित्तकी एकाग्रताको, वितर्क-विचार-रहित समाधिसे उत्पन्न प्रीति-सुख-वाले द्वितीय ध्यानको, प्राप्तहो विहरता है। उसकी जो वह पहिली विवेकज प्रीति-सुख-वाली सूक्ष्म सत्य-संज्ञा थी, वह निरुद्ध होती है। समाधिसे उत्पन्न प्रीति-सुखवाली सूक्ष्म-सत्य-संज्ञा-वान्‌ही वह उस समय होता है। इस शिक्षामें भी कोई कोई संज्ञा उत्पन्न होती हैं, कोई कोई संज्ञा निरुद्ध होती हैं। यह शिक्षा है।'

"और फिर पोट्टपाद ! भिक्षु प्रीति और विरागसे उपेक्षक० तृतीय ध्यानको प्राप्त हो विहरता है। उसकी वह पहिलेकी समाधिज प्रीति सुख-वाली सूक्ष्म सत्य-संज्ञा निरुद्ध होती है। उपेक्षा सुख वाली सूक्ष्म सत्य-संज्ञा उस समय (पैदा) होती है। उपेक्षा-सुख-सत्य-संज्ञीही वह उस समय होता है। ऐसी शिक्षासे भी कोई कोई संज्ञायें उत्पन्न होती हैं, कोई कोई संज्ञायें निरुद्ध होती हैं। यह शिक्षा है।'

"और फिर पोट्टपाद ! भिक्षु सुख और दुःखके विनाशसे[1] चतुर्थ-ध्यानको प्राप्तहो विहरता है। उसकी वह जो पहिलेकी उपेक्षा-सुख-वाली सूक्ष्म सत्य-संज्ञा (थी, वह) निरुद्ध होती है। अदुःख-असुख सूक्ष्म सत्य-संज्ञा, उस समय होती है। उस समय (वह) अदुःख-असुख-सूक्ष्म-सत्य-संज्ञीही वह होता है। ऐसी शिक्षासे भी कोई कोई संज्ञायें उत्पन्न होती हैं, कोई कोई संज्ञायें निरुद्ध होती हैं। यह शिक्षा है।"

"और फिर पोट्ठपाद ! भिक्षु रूप-संज्ञाओंके सर्वथा छोड़नेसे, प्रतिघ (=प्रतिहिंसा)-संज्ञाओंके अस्त होजानेसे, नानापन (=नानात्व)की संज्ञाओंको मनमें न करनेसे, 'अनन्त आकाश' इस आकाश-आनंत्य-आयतनको प्राप्त हो विहरता है। उसकी जो पहिलेकी रूप-संज्ञा थी, वह निरुद्ध हो जाती है, आकाश आनन्त्य-आयतनवाली सूक्ष्मण-सत्य-संज्ञा उस समय होती है। आकाशआनन्त्य-आयतन सूक्ष्म-सत्य-संज्ञी ही वह उस समय होता है। ऐसी शिक्षासे भी०।" "और फिर पोट्ठपाद ! भिक्षु आकाश-आनन्त्य-आयतनको सर्वथा अतिक्रमणकर 'विज्ञान अन्त है' इस विज्ञान-आनन्त्य-आयतनको प्राप्त हो विहरता है। उसकी वह पहिलेकी आकाश-आनंत्य-आयतनवाली सूक्ष्म-सत्य-संज्ञा नष्ट होती है। विज्ञान-आनंत्य-आयतनवाली सूक्ष्म-सत्य-संज्ञा होती है। विज्ञान-आनंत्य-आयतन-सूक्ष्म-सत्य-संज्ञी ही (वह)उस समय होता है।०।"

"और फिर पोट्टपाद ! भिक्षु विज्ञान-आनन्त्य-आयतनको सर्वथा अतिक्रमणकर 'कुछ नहीं है' इस आकिंचन्य (=न-कुछ-भी-पना)-आयतनको प्राप्त हो विहार करता है। उसकी यह पहिलेकी विज्ञान-आनन्त्य-आयतनवाली सूक्ष्म-सत्य-संज्ञा नष्ट होजाती है आकिंचन्य-आयतनवाली सूक्ष्म-सत्य संज्ञा ही० वह आकिंचन्य-आयतन-सूक्ष्म-सत्य-संज्ञी ही उस समय होता है।०।"

"चूँकि पोट्ठपाद ! भिक्षु स्वक-संज्ञी (=अपनेमें संज्ञा ग्रहण करने-वाला) होता है, (इसलिये) वह वहांसे वहां, वहांसे वहां, क्रमशः श्रेष्ठ-तर संज्ञा प्राप्त (=स्पर्श)

---

[1] १. पृष्ठ १७४

करता है । श्रेष्ठतर-संज्ञापर स्थित हो, उसको यह होता है—'मेरा चिंतन करना बहुत बुरा (=पापीयस्) है, मेरा न चिंतन करना, बहुत अच्छा (=श्रेयस्) है । यदि मैं न चिंतन करूँ, न अभिसंस्करण करूँ, तो यह संज्ञायें मेरी नष्ट होजावेंगी, और और भी विशाल (=उदार) संज्ञायें उत्पन्न होंगी । क्यों न मैं न चिंतन करूँ, न अभिसंस्करण करूँ ।' उसके चिंतन न करने, अभिसंस्करण न करनेसे, वह संज्ञायें नाश हो जाती हैं, और दूसरी उदार संज्ञायें उत्पन्न नहीं होतीं । वह निरोधको स्पर्श (प्राप्त) करता है । इस प्रकार पोट्ठपाद ! क्रमशः अभिसंज्ञा (=संज्ञा=चेतना) निरोधवाली संप्रज्ञात-समापत्ति (=संप्रजान-समापत्ति=संप्रज्ञात-समाधि) उत्पन्न होती है ।

"तो क्या मानते हो, पोट्ठपाद ! क्या तुमने इससे पूर्व इस प्रकारकी क्रमशः अभिसंज्ञा-निरोध संप्रज्ञात-समापत्ति सुनी थी ?"

"नहीं, भन्ते ! भगवान्के भाषण करनेसे ही मैं इस प्रकार जानता हूँ ।"

"चूंकि पोट्ठपाद ! भिक्षु यहाँ स्वक-संज्ञी होता है । (इसलिये) वह वहाँसे वहाँ, वहाँसे वहाँ, क्रमशः संज्ञाके अग्र (=उत्तम)को प्राप्त (=स्पर्श) करता है । संज्ञाके अग्र (=सर्वोत्तम)पर स्थित हो, उसको ऐसा होता है—'मेरा चिंतन करना बहुत बुरा है, चिंतन न करना मेरे लिये बहुत अच्छा है० ।' वह निरोधको स्पर्श करता है । इस प्रकार पोट्ठपाद ! क्रमशः अभिसंज्ञा-निरोध संप्रज्ञात-समाधि होती है । ऐसे पोट्ठपाद !०"

"भन्ते ! भगवान् क्या एक हीको संज्ञा-अग्र (=संज्ञाओंमें सर्व-श्रेष्ठ) बतलाते हैं, या पृथक् पृथक् भी संज्ञाग्रोंको कहते हैं ?"

"पोट्ठपाद ! मैं एक भी संज्ञाग्र बतलाता हूँ, और पृथक् पृथक् भी संज्ञाग्रोंको बतलाता हूँ । पोट्ठपाद ! जैसे जैसे निरोधको प्राप्त (=स्पर्श) करता है, वैसे वैसे संज्ञा-अग्रको मैं कहता हूँ । इस प्रकार पोट्ठपाद ! मैं एक भी संज्ञाग्र बतलाता हूँ, और पृथक् भी संज्ञाग्रोंको बतलाता हूँ ।"

"भन्ते ! संज्ञा पहिले उत्पन्न होती है, पीछे ज्ञान; या ज्ञान पहिले उत्पन्न होता है, पीछे संज्ञा ; या संज्ञा और ज्ञान न-पूर्व न-पीछे उत्पन्न होते हैं ?"

"पोट्ठपाद ! संज्ञा पहिले उत्पन्न होती है, पीछे ज्ञान । संज्ञाकी उत्पत्तिसे (ही) ज्ञानकी उत्पत्ति होती है । वह यह जानता है—इस कारण (=प्रत्यय)से ही यह मेरा ज्ञान उत्पन्न हुआ है । पोट्ठपाद ! इस कारणसे यह जानना चाहिये कि, संज्ञा प्रथम उत्पन्न होती है, ज्ञान पीछे ; संज्ञाकी उत्पत्तिसे ज्ञानकी उत्पत्ति होती है ।"

"संज्ञा (ही) भन्ते ! पुरुषका आत्मा है ; या संज्ञा अलग है, आत्मा अलग ?"

"किसको पोट्टपाद ! तू आत्मा समझता है ?"

"भन्ते ! मैं आत्माको स्थूल (=औदारिक) रूप-वान्, चार महाभूतोंवाला, कवल-करके-खानेवाला (=कवलिंकार-आहार) मानता हूँ ।"

"तो पोट्टपाद ! तेरा आत्मा यदि स्थूल०, रूपी, चतुर्महाभौतिक, कवलिंकार-आहार-वान् है ; तो ऐसा होनेपर पोट्टपाद ! संज्ञा दूसरी ही होगी, आत्मा दूसरा ही होगा । सो

इस कारणसे भी पोट्टपाद ! जानना चाहिये, कि संज्ञा दूसरी होगी, आत्मा दूसरा । पोट्टपाद ! रहने दो इसे—आत्मा स्थूल० है, (इस) के होनेहीसे इस पुरुषकी दूसरी ही संज्ञायें उत्पन्न होती हैं, दूसरी ही संज्ञायें निरुद्ध होती हैं । सो इस कारणसे भी पोट्टपाद ! जानना चाहिये, संज्ञा दूसरी होगी, आत्मा दूसरा ।'

"भन्ते ! मैं आत्माको समझता हूँ—मनोमय सब अंग-प्रत्यंगवाला, इन्द्रियसे अहीन ।"

"ऐसा होनेपर भी पोट्टपाद ! तेरी संज्ञा दूसरी होगी और आत्मा दूसरा । सो इस कारणसे भी पोट्टपाद ! जानना चाहिये, (कि) संज्ञा दूसरी होगी, आत्मा दूसरा । पोट्टपाद ! सर्वांग-प्रत्यंग-युक्त इन्द्रियोंसे अ-हीन मनोमय आत्मा है , तभी इस पुरुषकी कोई कोई संज्ञायें उत्पन्न होती हैं, कोई कोई संज्ञायें निरुद्ध होती हैं । इस कारणसे भी पोट्टपाद ! ०। "

"भन्ते ! मैं आत्माको रूप-रहित संज्ञा-मय समझता हूँ ।'

"यदि पोट्ट-पाद ! तेरा आत्मा रूप-रहित संज्ञामय है, तो ऐसा होनेपर पोट्ट-पाद ! (इस) कारण से जानना चाहिये, कि संज्ञा दूसरी होगी, और आत्मा दूसरा । पोट्ट-पाद ! रूप-रहित संज्ञा-मय आत्मा है ही, तभी इस पुरुषकी० ।

"भन्ते ! क्या मैं यह जान सकता हूँ—कि संज्ञा पुरुषकी आत्मा है, या संज्ञा दूसरी (चीज़) है, आत्मा दूसरी (चीज़) ?"

"पोट्ट-पाद ! 'भिन्न-दृष्टि (=धारणा)-वाले, भिन्न क्षान्ति (=चाह)-वाले, भिन्न रुचिवाले, भिन्न-आयोग-वाले, भिन्न-आचार्य रखनेवाले तेरे लिये—'संज्ञा पुरुषकी आत्मा है ०'—जानना मुश्किल है ।'

"यदि भन्ते ! भिन्न-दृष्टि-वाले ० मेरे लिये-'संज्ञा पुरुषकी आत्मा है ०'-जानना मुश्किल है । तो फिर क्या भन्ते ! 'लोक नित्य (=शाश्वत) है,' यही सच है, दूसरा (अनित्यता का विचार) निरर्थक (=मोघ) है ?"

"पोट्ट-पाद !—'लोक नित्य है' यही सच है, और दूसरा (वाद) निरर्थक है—यह मैंने अ-व्याकृत (=कथनका विषय न होने से अ-कथित) किया है ।"

"क्या भन्ते !-'लोक अ-शाश्वत (=अ-नित्य) है,' यही सच और सब (वाद) फजूल हैं ? "

"यह भी पोट्ट-पाद ! 'लोक अ-शाश्वत०' मैंने अ-व्याकृत किया है ।'

"क्या भन्ते !—'लोक अन्त-वान् है' ० ? "

"यह भी पोट्ट-पाद ! ० अव्याकृत ० ।'

"क्या भन्ते !—'लोक-अन्-अन्त-वान् है ० ? "

"यह भी पोट्ट-पाद ! ० अ-व्याकृत ० । "

"० 'वही जीव है, वही शरीर है, ० ? " "० अ-व्याकृत ० ।"

"० 'जीव दूसरा है, शरीर दूसरा है' ० ? " "० अ-व्याकृत ० ।'

"० 'मरनेके बाद तथागत फिर (पैदा) होता है ० ? " "० अ-व्याकृत ० ।"

" ० ' मरने के बाद फिर तथागत नहीं होता ' ० ? " " ० अ-व्याकृत ० ।"

" ० ' ० होता है, और नहीं भी होता है ' ० ? " " ० अ-व्याकृत ० । "

" ० ' मरने के बाद तथागत न होता है, न नहीं होता है ' ० ?" " ० अ-व्याकृत ० ।"

" किस लिये भन्ते ! भगवान् ने इसे अ-व्याकृत किया है ? "

" पोट्ठ-पाद ! न यह अर्थ-युक्त (=स-प्रयोजन) है, न धर्म-युक्त, न आदि-ब्रह्मचर्यके उपयुक्त, न निर्वेद (=उदासीनता) केलिये, न विराग केलिये, न निरोध (=क्लेश-विनाश) केलिये, न उपशम (=शांति) के लिये, न अभिज्ञाकेलिये, न संबोधि (=परमार्थ-ज्ञान) केलिये, न निर्वाण केलिये, है । इसलिये मैंने इसे अ-व्याकृत किया । "

" भन्ते ! भगवान् ने क्या क्या व्याकृत किया है ? "

" पोट्ठ-पाद ! ' यह दुःख है ' (इसे) मैंने व्याकृत किया है । ' यह दुःख-समुदय है ' मैंने व्याकृत किया है । ' यह दुःख-निरोध है ' ० । ' यह दुःख-निरोध-गामिनी-प्रतिपद् (=मार्ग) है ' ० । "

"भन्ते ! भगवान्ने इसे क्यों व्याकृत किया है ?"

" पोट्ठपाद ! यह अर्थ-उपयोगी, धर्म-उपयोगी, आदि-ब्रह्म-चर्य-उपयोगी है । यह निर्वेदकेलिये, विरागकेलिये, निरोधकेलिये, उपशमके लिये, अभिज्ञाके लिये, संबोधके लिये, निर्वाणके लिये है । इसलिये मैंने इसे व्याकृत किया ।"

"यह ऐसाही है, भगवान् ! यह ऐसाही है, सुगत ! अब भन्ते ; भगवान् जिसका काल समझते हों (करें) ।"

तब भगवान् आसनसे उठकर चल दिये ।

तब परिव्राजकोंने भगवान्के जानेके थोड़ीही देर बाद, पोट्ठ-पाद परिव्राजकको चारों ओरसे वाग्-बाणसे जर्जरित करना शुरु किया—"इसी प्रकार आप पोट्ठ-पाद, जो जो श्रमण गौतम कहता (रहा), उसीको अनुमोदन करते (रहे) 'यह ऐसाही है भगवान् ! यह ऐसाही है सुगत !' हमतो श्रमण गौतमका कहा कोई धर्म एकसा नहीं देखते, कि—'लोक शाश्वत है', लोक-अशाश्वत है', 'लोक अन्तवान् है', 'लोक अन्-अन्त-वान् है', ' वही जीव है, वही शरीर है', 'दूसरा जीव है, दूसरा शरीर है', 'तथागत मरनेके बाद होता है', 'तथागत मरनेके बाद नहीं होता' 'तथागत मरनेके बाद होता है, नहीं भी होता है ।' 'तथागत मरनेके बाद न होता है, न नहीं होता है ।'

ऐसा कहनेपर पोट्ठ-पाद परिव्राजकने उन परिव्राजकोंको यह कहा—"मैं भी भो ! श्रमण गौतमका कहा कोई धर्म एकसा नहीं देखता--'लोक शाश्वत है० । बल्कि श्रमण गौतम 'भूत=तथ्य (=यथार्थ) धर्ममें स्थित हो, धर्म-नियामक-प्रतिपद् (=मार्ग, ज्ञान) को करता है । (तो फिर) मेरे जैसा विज्ञ, श्रमण गौतम के सुभाषितको सुभाषितके तौरपर कैसे अनुमोदन न करे ?"

तब दो तीन दिनके बीतनेपर, चित्र हत्थि-सारीपुत्त और पोट्ठ-पाद परिव्राजक जहाँ भगवान् थे, वहाँ गये । जाकर चित्त हत्थि-सारीपुत्त भगवान्को अभिवादनकर एक ओर बैठा ।

पोट्ठ-पाद परिव्राजक भगवान्‌के साथ संमोदन कर···, एक ओर बैठगया । एक ओर बैठे पोट्ठ-पाद परिव्राजकने भगवान्‌को कहा—

"उस समय भन्ते ! भगवान्‌के चले जानेके थोड़ीही देरबाद (परिव्राजक) मुझे चारों ओरसे···जर्जरित करनेलगे—'इसी प्रकार आप पोट्ठ-पाद ! ०।० मेरे जैसा विज्ञ० सुभाषितको० कैसे अनुमोदन नहीं करें ?"

"पोट्ठ-पाद ! सभी यह परिव्राजक अन्धे=चक्षु-रहित हैं" । तूही उनमें एक चक्षु-मान् है । पोट्ठ-पाद ! मैंने (कितनेही) धर्म एकांशिक कहे हैं=प्रज्ञापन किये हैं । कितनेही धर्म अन्-एकांशिक भी कहे हैं० । पोट्ठ-पाद ! मैंने कौनसे धर्म अन्-एकांशिक उपदेश किये हैं० ? 'लोक शाश्वत है' इसको मैंने अनेकांशिक धर्म कहा है० । 'लोक अ-शाश्वत है' ०अनेकांशिक धर्म०।० । 'तथागत मरनेके बाद न होता है, न नहीं होता है' मैंने अनेकांशिक धर्म उपदेश किया है० । यह पोट्ठ-पाद ! न अर्थ-उपयोगी हैं, न धर्म-उपयोगी हैं, न आदि ब्रह्मचर्य-उपयोगी हैं । न निर्वेदके लिये ०, न वैराग्यके लिये ० । इसलिये इन्हें मैंने अन्-ऐकांशिक उपदेश किया०

"पोट्ठ-पाद ! मैंने कौनसे एक-अंशिक धर्म कहे हैं=प्रज्ञापित किये हैं ? 'यह दुःख है' ०।० यह दुःख-निरोध-गामिनी-प्रतिपद् है' इसे पोट्ठ-पाद ! मैंने एकांशिक धर्म बतलाया है० । यह पोट्ठ-पाद ! अर्थ-उपयोगी है० । इसलिये मैंने उन्हें एकांशिक धर्म कहा है=प्रज्ञापित किया है ।"

"पोट्ठपाद ! कोई कोई श्रमण ब्राह्मण ऐसे वाद (=मत)-वाले=ऐसी दृष्टिवाले हैं—'मरनेके बाद आत्मा अरोग, एकान्तसुखी (=केवल सुखी) होता है' । उनसे मैं यह कहता हूँ—'सच-मुच तुम सब आयुष्मान् इस वादवाले=इस दृष्टिवाले हो—'मरने के बाद आत्मा अ-रोग एकान्त सुखी होता है' ? वह जब ऐसा पूछनेपर मुझे 'हां' कहते हैं । तब उनको मैं यह कहता हूँ—'क्या तुम सब आयुष्मान् एकान्त सुखवाले लोकको जानते, देखते, विहार करते हो' ? ऐसा पूछनेपर 'नहीं' कहते हैं । उनको मैं यह कहता हूँ—'क्या तुम सब आयुष्मान् एक रात या एक दिन, आधी रात या आधा दिन एकान्त-सुखवाले आत्माको जानते हो' ? यह पूछनेपर 'नहीं' कहते हैं । उनको मैं यह कहता हूँ—'क्या आप सब आयुष्मान् जानते हैं, यही मार्ग=यही प्रतिपद् एकान्त-सुखवाले लोकके साक्षात्कारके लिये हैं ? ऐसा पूछनेपर 'नहीं' कहते हैं । उनको मैं यह पूछता हूँ,—क्या आप सब आयुष्मान् जो वह देवता एकान्त-सुखवाले लोकमें उत्पन्न हैं, उनके भाषित शब्दको सुनते हैं एकान्त-सुखवाले लोकके साक्षात्कारके लिये—'मार्ष ! सु-प्रतिपन्न (=ठीकसे पहुँचे) हो ; मार्ष ! ऋजु-प्रतिपन्न (=अ-कुटिलतासे प्राप्त) हो ; हम भी मार्ष ! ऐसे ही प्रतिपन्न (=मार्गारूढ) हो, एकान्त-सुख-वाले लोकमें उत्पन्न हुये हैं ?" ऐसा पूछनेपर 'नहीं' कहते हैं । तो क्या मानते हो पोट्ठ-पाद ! क्या ऐसा होनेसे उन श्रमण ब्राह्मणोंका कथन प्रमाण (=प्रतिहरण)-रहित नहीं होता ?"

"अवश्य, भन्ते ! ऐसा होनेपर उन श्रमण ब्राह्मणोंका कथन प्रतिहरण-रहित होता है ।"

" जैसे कि पोट्ट-पाद ! कोई पुरुष ऐसा कहे—इस जनपद (=देश) में जो जनपद-कल्याणी (=देशकी सुंदरतम स्त्री) है, मैं उसको चाहता हूं, उसकी कामना करता हूं । उसको यदि (लोग) ऐसा कहें—' हे पुरुष जिस जन-पद कल्याणीको तू चाहता है=कामना करता है, जानता है, कि वह क्षत्रियाणी है, ब्राह्मणी है, वैश्य-स्त्री है, या शूद्री है' ? ऐसा पूछनेपर 'नहीं' बोले, तब उसको यह कहें—'हे पुरुष ! जिस जन-पद-कल्याणीको तू चाहता है०, जानता है० (वह) अमुक नाम वाली अमुक गोत्र वाली है, लम्बी छोटी या मझोली; काली, श्यामा या, मद्गुर (=मंगुर मछली) के वर्णकी है; इस ग्राम निगम या नगरमें (रहती) है ?' यह पूछनेपर 'नहीं' कहे । तब उसको यह कहें—'हे पुरुष जिसको तू नहीं जानता, जिसको तूने नहीं देखा; उसको तू चाहता है, उसकी तू कामना करता है ? ऐसा पूछनेपर 'हां' कहे । तो क्या मानते हो पोट्ट-पाद ! क्या ऐसा होनेपर उस पुरुषका भाषण प्रतिहरण-रहित नहीं हो जाता ?"

" अवश्य भन्ते ! ऐसा होनेपर उस पुरुषका भाषण प्रतिहरण-रहित हो जाता है । "

" इसी प्रकार पोट्ट-पाद ! जो वह श्रमण ब्राह्मण इस तरह वाद वाले=दृष्टि वाले हैं—'मरनेके बाद आत्मा अ-रोग एकान्त-सुखी होता है', उनको मैं यह कहता हूं—सचमुच तुम सब आयुष्मान् ०।० । तो'' पोट्ट-पाद ! क्या० उन श्रमण-ब्राह्मणोंका कथन प्रतिहरण-रहित नहीं है ?"

" अवश्य ! भन्ते ०।"

" जैसे पोट्ट-पाद ! कोई पुरुष चौरादे (=चातुर्महापथ) पर, महलपर चढ़नेके लिये सीढ़ी बनावे । तब उसको (लोग) यह कहें—' हे पुरुष ! जिस (प्रासाद)के लिये तुम सीढ़ी बनाते हो, जानते हो वह प्रासाद पूर्व दिशामें, दक्षिण दिशामें, पश्चिम दिशामें, (या) उत्तर दिशामें, है ? ऊँचा, नीचा, (या) मझोला है ?' ऐसा पूछने पर 'नहीं' कहे । उसको यह कहें—' हे पुरुष ! जिसको तू नहीं जानता, तूने नहीं देखा, उस प्रासादपर चढ़नेके लिये सीढ़ी बना रहा है ?' ऐसा पूछनेपर 'हां' कहे । तो क्या मानते हो पोट्ट-पाद ! क्या ऐसा होनेपर उस पुरुषका भाषण प्रमाण-रहित नहीं हो जाता ?"

" अवश्य भन्ते !० "''''

इसी प्रकार पोट्टपाद ! जो वह श्रमण ब्राह्मण० " मरनेके बाद आत्मा अ-रोग एकान्त सुखी होता है " ०।० ।

" अवश्य भन्ते !० "

" पोट्ठपाद ! तीन आत्म-प्रतिलाभ (=शरीर-ग्रहण) हैं, स्थूल (=औदारिक) आत्म-प्रतिलाभ, मनोमय आत्म-प्रतिलाभ, अ-रूप आत्म-प्रतिलाभ । पोट्ठपाद ! स्थूल आत्म-प्रतिलाभ कौन है ? रूपवान् चार महा भूतोंसे बना कवलिंकार (=ग्रास ग्रास करके) भक्ष्य वाला, यह स्थूल आत्म-प्रतिलाभ है । मनोमय आत्म-प्रतिलाभ कौन है ? रूपी (=रूपवान्, साकार) मनोमय सर्व-आहार सर्वअंग-प्रत्यङ्ग-वाला, इन्द्रियोंसे अ-हीन, यह मनोमय आत्म-प्रतिलाभ है । अ-रूप (=रूप-रहित=निराकार) आत्म-प्रतिलाभ कौन है ?

अ-रूपी संज्ञामय, यह अ-रूप आत्मप्रतिलाभ (=शरीर-ग्रहण) है। पोट्ठपाद ! मैं स्थूल शरीर-परिग्रहसे छूटनेके लिये धर्म उपदेश करता हूँ, इस तरह मार्गारूढ हुओंके [1]संक्लेश (=क्लेश मल) उत्पादक धर्म छूट जायेंगे। [2]व्यवदानीय धर्म, प्रज्ञाकी परि-पूर्णता, विपुलताको प्राप्त होंगे, (और वह) इसी जन्ममें स्वयं जानकर साक्षात्कर, प्राप्तकर विहरेगा। शायद पोट्ठ-पाद ! तुझे (यह विचार) हो—'संक्लेशिक धर्म छूट जायेंगे०, इसी जन्ममें० प्राप्तकर विहरेगा, (किन्तु) वह विहरना कठिन (=दुःख) होगा।' पोट्ठ-पाद ! ऐसा नहीं समझना चाहिये,०। उसे प्रामोद्य (=प्रमोद) भी होगा, प्रीति, प्रश्रब्धि, स्मृति, सम्प्रजन्य और सुख विहार भी होगा।'

"मनोमय शरीर-परिग्रहके परित्यागके लिये भी पोट्ठ-पाद ! मैं धर्म उपदेश करता हूँ। जिससे कि मार्गारूढ होने वालोंके संक्लेशिक धर्म छूट जायेंगे०।०। ०सुख विहारभी होगा।"

"अ-रूप (=निराकार) शरीर-परिग्रहके परित्यागके लिये भी पोट्ठपाद ! मैं धर्म उपदेश करता हूँ।०। ०सुखविहार भी होगा।"

"दूसरे लोग यदि पोट्ठपाद ! हमें पूछें—'क्या है आवुसो ! वह स्थूल शरीर-परिग्रह (=आत्म-प्रतिलाभ), जिसके प्रहाण (=परित्याग) के लिये तुम धर्म उपदेश करते हो; और जिस प्रकार मार्गारूढ हो०, इसी जन्ममें स्वयं जानकर० विहरोगे ?' उनके ऐसा पूछनेपर हम उत्तर देंगे—'यह है आवुसो ! वह स्थूल शरीर-परिग्रह, जिसके प्रहाणके लिये हम धर्म उपदेश करते हैं।०।

"दूसरे लोग यदि पोट्ठपाद हमें पूछें—क्या है आवुसो ! मनोमय शरीर-परिग्रह०। ०विहरोगे ?

"दूसरे लोग यदि पोट्ठपाद ! हमें पूछें—क्या है आवुसो ! अ-रूप शरीर परिग्रह ० ? ०।०।

"जैसे पोट्ठ-पाद ! कोई पुरुष प्रासादपर चढ़ने केलिये उसी प्रासादके नीचे सीढ़ी बनावे। उसको यह पूछें—'हे पुरुष ! जिस प्रासादपर चढ़नेके लिये तुम सीढ़ी बनाते हो; जानते हो, वह प्रासाद पूर्व दिशामें है, या दक्षिण ०; ऊँचा है या नीचा या मझोला ?।' वह यदि कहे—यह है आवुसो ! वह प्रासाद, जिसपर चढ़नेको, उसीके नीचे मैं सीढ़ी बनाता हूँ।' तो क्या मानते हो पोट्ठपाद ! ऐसा होनेपर क्या उस पुरुषका भाषण प्रामाणिक होगा ?"

"अवश्य, भन्ते ! ऐसा होनेपर उस पुरुषका भाषण प्रामाणिक होगा।"

"इसी प्रकार पोट्ठपाद ! यदि दूसरे हमें पूछें—आवुसो ! वह स्थूल शरीर-परिग्रह क्या है ०।०।

"० आवुसो ! वह मनोमय शरीर-परिग्रह क्या है ० ? ०।

"० आवुसो ! वह अ-रूप शरीर-परिग्रह क्या है, जिसके प्रहाण (=परित्याग) के लिये, तुम धर्म उपदेश करते हो, ०; ० ? उनके ऐसा पूछनेपर हम यह उत्तर देंगे—'यह

---

१. १२ अकुशल चित्तोत्पाद धर्म। २. शमथ, विपश्यना।

(पूर्वोक्त) है आवुसो ! वह अ-रूप शरीर-परिग्रह ० । ० तो क्या मानते हो पोट्ठपाद ! ऐसा होनेपर क्या उस पुरुपका भापण प्रामाणिक होता है ? "

" अवश्य भन्ते ! ० "

ऐसा कहनेपर चित्त हत्थि-सारि-पुत्तने भगवान्‌को कहा—" भन्ते जिस समय स्थूल शरीर-परिग्रह होता है, उस समय मनोमय शरीर-परिग्रह तथा अ-रूप-शरीर-परिग्रह मोघ (=मिथ्या) होते हैं, स्थूल शरीर-परिग्रह ही उस समय उसके लिये सच्चा होता है । जिस समय भन्ते ! मनोमय शरीर-परिग्रह होता है, उस समय स्थूल शरीर-परिग्रह तथा अ रूपशरीर-परिग्रह मिथ्या होते हैं, मनोमय शरीर-परिग्रह ही उस समय उसके लिये सच्चा होता है । जिस समय भन्ते ! अ-रूप शरीर-परिग्रह होता है, उस समय स्थूल शरीर-परिग्रह तथा मनोमय शरीर-परिग्रह मिथ्या होते हैं, अ-रूप शरीर-परिग्रह ही उस समय उसके लिये सच्चा होता है ।"

" जिस समय चित्त ! स्थूल शरीर-परिग्रह होता है, उस समय ' मनोमय शरीर-परिग्रह है' नहीं समझा जाता । न ' अ-रूप शरीर-परिग्रह है' यही समझा जाता है । ' स्थूल शरीर-परिग्रह है ' यहीं समझा जाता है । जिस समय चित्त ! मनोमय शरीर-परिग्रह ० । जिस समय अ-रूप शरीर-परिग्रह ० । यदि चित्त ! तुझे यह पूछें—तू भूत-कालमें था, नहीं तो तू न था ? भविष्य-कालमें तू होगा (=रहेगा) ? नहीं तो तू न होगा ? इस समय तू है ? नहीं तो तू नहीं है ? "

" ऐसा पूछने पर भन्ते ! मैं यह उत्तर दूँगा—' मैं भूत कालमें था, (मैं नहीं तो न) था । भविष्य कालमें मैं होऊँगा, नहीं तो मैं न होऊँगा । इस समय मैं हूं, नहीं तो मैं नहीं हूं ' । वैसा पूछने पर मैं भन्ते ! इस प्रकार उत्तर दूँगा ।"

" यदि चित्त ! तुझे यह पूछें—जो तेरा भूतकालका शरीर-परिग्रह था, वही तेराशरीर-परिग्रह सत्य है, भविष्यका और वर्तमानका (क्या) मिथ्याहै ? जो तेरा भविष्यमें होनेवाला शरीर-परिग्रह है, वही ० सच्चा है, भूतका और वर्तमानका (क्या) मिथ्या है ? जो इस समय तेरा वर्तमान शरीर-परिग्रह है, वही तेरा शरीर-परिग्रह सच्चा है, भूतका और भविष्यका (क्या) मिथ्या है ? ऐसा पूछनेपर चित्त तू कैसे उत्तर देगा ?"

" यदि भन्ते ! मुझे ऐसा पूछेंगे ' जो तेरा भूतकालका शरीर-परिग्रह था० । ' ऐसा पूछनेपर भन्ते ! मैं इस प्रकार उत्तर दूँगा—' जो मेरा भूतका शरीर-परिग्रह था, वही शरीर-परिग्रह मेरा उस समय सच्चा था, भविष्य और वर्तमानके० असत्य थे । जो मेरा भविष्यमें अन्-आगत शरीर-परिग्रह होगा, वही शरीर-परिग्रह मेरा उस समय सच्चा होगा ; भूत और वर्तमानके शरीर-परिग्रह असत्य होंगे । जो मेरा इस समय वर्तमान शरीर-परिग्रह है, वही शरीर-परिग्रह मेरा (इस समय) सच्चा है, भूत और भविष्यके शरीर-परिग्रह अ-सत्य हैं । ' ऐसा पूछनेपर भन्ते ! मैं यह उत्तर दूँगा । "

" ऐसे ही चित्त ! जिस समय स्थूल शरीर-परिग्रह होता है, उस समय मनोमय शरीर-परिग्रह नहीं कहा जाता, न उस समय अ-रूप शरीर-परिग्रह कहा जाता है ; स्थूल शरीर-परिग्रह

ही उस समय कहा जाता है। जिस समय चित्त! मनोमय शरीर-परिग्रह०। जिस समय चित्त! अरूप शरीर-परिग्रह होता है, उस समय 'स्थूल शरीर-परिग्रह है' नहीं कहा जाता; न 'मनोमय शरीर-परिग्रह है' कहा जाता है। 'अरूप शरीर-परिग्रह है' यही कहा जाता है। जैसे चित्त! गायसे दूध, दूधसे दही, दहीसे नवनीत (=मैनू), नवनीतसे घी (=सर्पिष्), सर्पिपसे सर्पिष्-मंड (=घीका सार) होता है। जिस समय दूध होता है, उस समय न दही होता है, न नवनीत०, न सर्पिप०, न सर्पिष्-मंड०; दूध ही उस समय उसका नाम होता है। जिस समय दही०। ०नवनीत०। ०सर्पिप०। सर्पिष्-मंड०। ऐसे ही चित्त! जिस समय स्थूल शरीर-परिग्रह होता है०। ०मनोमय०। ०अ-रूप०। यह चित्त! लौकिक संज्ञायें हैं=लौकिक निरुक्तियां हैं=लौकिक व्यवहार हैं=लौकिक प्रज्ञप्तियां हैं, तथागत इनसे विना लिप्त हुये, व्यवहार करते हैं।"

ऐसा कहनेपर पोट्ठपाद परिव्राजकने भगवान्‌को कहा—

"आश्चर्य! भन्ते!! आश्चर्य! भन्ते!! ० आजसे आप गौतम मुझे अंजलि-बद्ध उपासक धारण करें।"

चित्त हत्थि-सारि-पुत्त (=चित्र हस्ति-सारि-पुत्र) ने भगवान्‌को कहा—

"आश्चर्य! भन्ते!! आश्चर्य! भन्ते!! ०। भन्ते! मैं भगवान्‌का शरणागत हूं, धर्म और भिक्षु-संघका भी भन्ते! भगवान्‌के पास मुझे प्रव्रज्या मिले, उपसंपदा मिले।"

चित्त हत्थि-सारि-पुत्तने भगवान्‌के पास प्रव्रज्या पाई, उपसंपदा पाई। आयुष्मान् चित्त हत्थिसारिपुत्त उपसम्पदा प्राप्त करनेके थोड़े ही दिन बाद; एकाकी, एकांतवासी, प्रमाद-रहित उद्योगी, आत्म-संयमी हो, विहार करते हुये, जल्दी ही जिसके लिये कुल-पुत्र अच्छी तरह घरसे बेघर हो प्रव्रजित होते हैं, उस अनुपम ब्रह्मचर्य-फलको, इसी जन्ममें जानकर=साक्षात्कर=पाकर, विहार करने लगे। 'जन्म क्षीण होगया, ब्रह्मचर्य-वास हो लिया, करना था, सो कर लिया, और कुछ करनेको नहीं रहा।' यह जान गये। आयुष्मान् चित्त हत्थि-सारि-पुत्त अर्हतोंमेंसे एक हुये।

तृतीय-खण्ड ।

आयु-वर्ष ४६-५५ ।

(वि. पू. ४५७-४५१) ।

तृतीय-खंड ।

(१)

तेविज्ज-सुत्त (वि. पृ. ४५७) ।

[1] ऐसा मैंने सुना—एक समय भगवान् [2] कोसल देशमें पांचसौ भिक्षुओंके महाभिक्षु-संघके साथ चारिका करते, जहाँ मनसाकट नामक कोसलोंका ब्राह्मण-ग्राम था, वहाँ पहुँचे । वहाँ भगवान् मनसाकटमें, मनसाकटके उत्तर तरफ अचिरवती नदीके तीर आम्रवनमें विहार करते थे ।

उस समय बहुत से अभिज्ञात (=प्रसिद्ध) अभिज्ञात ब्राह्मण महाशाल (=महा-धनिक) मनसाकटमें निवासकर रहे थे, जैसे कि—[3] चंकि ब्राह्मण, तारुक्ख ब्राह्मण, पोक्खर-साति ब्राह्मण, जानुस्सोणि ब्राह्मण, तोदेय्य ब्राह्मण और दूसरे भी अभिज्ञात अभिज्ञात ब्राह्मण महाशाल ।

तब चहलकदमीके लिये टहलते हुये, विचरते हुये, वाशिष्ट और भारद्वाजमें रास्तेमें बात उत्पन्न हुई । वाशिष्ट माणवकने कहा—

"यही मार्ग (वैसा करनेवालेको) ब्रह्म-सलोकताके लिये जल्दी पहुँचानेवाला, सीधा ले जानेवाला है ; जिसे कि यह ब्राह्मण पौष्करसातिने कहा है ।"

भारद्वाज माणवकने कहा—"यही मार्ग० है, जिसे कि ब्राह्मण तारुक्षने कहा है ।"

वाशिष्ट माणवक भारद्वाज माणवकको नहीं समझा सका, न भारद्वाज माणवक वाशिष्ट माणवकको (ही) समझा सका । तब वाशिष्ट माणवकने भारद्वाज माणवकको कहा—

"यह भारद्वाज ! शाक्य-कुलसे प्रव्रजित शाक्य-पुत्र श्रमण गौतम मनसाकटमें, मनसाकटके उत्तर अचिरवती (=रापती) नदीके तीर, आम्रवनमें विहार करते हैं । उन भगवान् गौतमके लिये ऐसा मंगल कीर्ति-शब्द फैल हुआ है—वह भगवान्० बुद्ध भगवान् हैं । चलो भारद्वाज ! जहाँ श्रमण गौतम हैं, वहाँ चलें । चलकर इस बातको श्रमण गौतमसे पूछें । जैसा हमको श्रमण गौतम उत्तर देंगे, वैसा हम धारण करेंगे ।"

"अच्छा भो !" कह भारद्वाज माणवकने ··· उत्तर दिया ।

तब वाशिष्ट और भारद्वाज (दोनों) माणवक जहाँ भगवान् थे, वहाँ गये ; जाकर भगवान्के साथ संमोदन कर··· (कुशल-प्रश्न पूछ) एक ओर बैठ गये । एक ओर बैठे हुये वाशिष्ट माणवकने भगवान्से कहा—

"हे गौतम ! ० रास्तेमें हमलोगोंमें यह बात उत्पन्न हुई० । यहाँ हे गौतम ! विग्रह है, विवाद है, नानावाद हैं ।"

---

१ दी. नि. १. १३. । २ युक्तप्रांतके फैजाबाद, गोंडा, बहराइच, सुल्तानपुर, बाराबंकी, और बस्तीके जिले, तथागोरखपुर जिलेका कितना ही भाग । ३ चंकि ओपसाद-निवासी, तारुक्ख इच्छानंगल-निवासी, पोक्खरसाति उकट्ठा-वासी जानुस्सोणि श्रावस्ती-निवासी, तोदेय्य तुदीगाम-निवासी ।

"क्या वाशिष्ट ! तू ऐसा कहता है—'यही मार्ग० है, जिसे कि ब्राह्मण पौष्कर-सातिने कहा है' ? और भारद्वाज माणवक यह कहता है—०जिसे कि ब्राह्मण तारुक्षने कहा है। तब वाशिष्ट ! किस विषयमें तुम्हारा विग्रह० है ?"

"हे गौतम ! मार्ग-अमार्गके संबन्धमें ऐतरेय ब्राह्मण तैत्तिरीय ब्राह्मण, छन्दोग ब्राह्म-ण, छन्दावा-ब्राह्मण, ब्रह्मचर्य-ब्राह्मण अन्य अन्य ब्राह्मण नाना मार्ग बतलाते हैं। तब भी वह (वैसा करनेवालेको) ब्रह्माकी सलोकता को पहुँचाते हैं। जैसे हे गौतम ! ग्राम या निगमके अ-दूरमें बहुतसे नाना-मार्ग होते हैं, तो भी वे सभी ग्राममें ही जानेवाले होते हैं। ऐसे ही हे गौतम ! ०ब्राह्मण नाना मार्ग बतलाते हैं, ०। ० ब्रह्माकी सलोकताको पहुँचाते हैं।"

"वाशिष्ट ! 'पहुँचाते हैं' कहते हो ?" "'पहुँचाते हैं' कहता हूँ।"

"'वाशिष्ट ! पहुँचाते हैं, कहते हो ?" "पहुँचाते हैं' ०।"

"वाशिष्ट ! पहुँचाते हैं, कहते हो ?" "पहुँचाते हैं ०।"

"वाशिष्ट ! [1]त्रैविद्य ब्राह्मणोंमें क्या एक भी ब्राह्मण है, जिसने ब्रह्माको अपनी आँखसे देखा हो ?"

"नहीं हे गौतम !"

"क्या वाशिष्ट ! त्रैविद्य ब्राह्मणोंका एक भी आचार्य है, जिसने ब्रह्माको अपनी आँख से देखा हो ?"

"नहीं हे गौतम !"

"क्या वाशिष्ट ! त्रैविद्य ब्राह्मणोंका एकभी आचार्य-प्राचार्य है०?" "नहीं हे गौतम !"

"क्या वाशिष्ट ! त्रैविद्य ब्राह्मणोंके आचार्यकी सातवीं पीढ़ी तकमें कोई है ० ?"

"नहीं हे गौतम !"

"क्या वाशिष्ट ! जो त्रैविद्यब्राह्मणोंके पूर्वज, मन्त्रोंके कर्त्ता, मन्त्रोंके प्रवक्ता ऋषि (थे)—जिनके कि गीत, प्रोक्त, समीहित पुराने मंत्र-पदको आजकल त्रैविद्य ब्राह्मण अनुगान, अनुभाषण, करते हैं, भाषितको अनुभाषण करते हैं, वाँचेको अनु-वाचन करते हैं, जैसे कि अट्टक, वामक, वामदेव, विश्वामित्र, यमदग्नि, अङ्गिरा, भरद्वाज, वशिष्ट, कश्यप, भृगु। उन्होंने भी (क्या) यह कहा—जहां ब्रह्मा है, जिसके साथ ब्रह्मा है, जिस विषयमें ब्रह्मा है, हम यह जानते हैं, हम यह देखते हैं ?"

"नहीं हे गौतम !"

"इस प्रकार वाशिष्ट ! त्रैविद्य ब्राह्मणोंमें एक ब्राह्मण भी नहीं, जिसने ब्रह्माको अपनी आंखसे देखाहो। ० एक आचार्य भी ०। एक आचार्य-प्राचार्य भी०। ० सातवीं पीढ़ी तकके आचार्योंमें भी०। जो त्रैविद्य ब्राह्मणोंके पूर्ववाले ऋषि ०। और त्रैविद्य ब्राह्मण ऐसा कहते हैं !'—'जिसको न जानते हैं, जिसको न देखते हैं, उसकी स-लोकताकेलिये हम मार्ग उपदेश करते हैं'। यही मार्ग ब्रह्म-सलोकताके लिये जल्दी-पहुँचानेवाला, है !!' तो क्या मानते हो, वाशिष्ट ! क्या ऐसा होनेपर त्रैविद्य ब्राह्मणोंका [1]कथन अ-प्रामाणिकताको नहीं प्राप्त होजाता ?"

---

१. तीनों वेदोंके ज्ञाता।

"अवश्य, हे गौतम ! ऐसा होनेपर त्रैविद्य ब्राह्मणोंका कथन अ-प्रामाणिकताको प्राप्त होजाता है ।"

"अहो ! वाशिष्ट ! त्रैविद्य ब्राह्मण जिसको न जानते हैं, जिसको न देखते हैं, उसकी सलोकताके मार्गका उपदेश करते हैं !!—यही ० सीधा मार्ग है । यह उचित नहीं है । जैसे वाशिष्ट ! अन्धोंकी पांती एक दूसरेसे जुड़ी; पहिलेवाला भी नहीं देखता, बीचवालाभी नहीं देखता, पीछेवालाभी नहीं देखता । ऐसेही वाशिष्ट ! अन्ध-वेणीके समानही त्रैविद्य ब्राह्मणोंका कथन है, पहिले वालेनेभी नहीं देखा० । (अतः) उन त्रैविद्य ब्राह्मणोंका कथन प्रलापही ठहरता है, [1]व्यर्थ ०, रिक्त ० = तुच्छ ० । तो ······ वाशिष्ट ! क्या त्रैविद्य ब्राह्मण चन्द्र सूर्यको तथा दूसरे बहुतसे जनोंको, देखते हैं, कि कहांसे वह उगते हैं, कहां डूबते हैं, जो कि (उनकी) प्रार्थना करते हैं, स्तुति करते हैं, हाथ जोड़कर नमस्कार करते घूमते हैं ?"

"हां, हे गौतम ! त्रैविद्य ब्राह्मण चन्द्र सूर्य तथा दूसरे बहुत जनोंको देखते हैं ।०"

"तो क्या मानते हो, वाशिष्ट ! त्रैविद्य ब्राह्मण जिन चन्द्रसूर्य या दूसरे बहुत जनोंको, देखते हैं, कहांसे० । क्या त्रैविद्य ब्राह्मण चन्द्र-सूर्यकी सलोकता (= सहव्यता = एक स्थान निवास) के लिये मार्ग का उपदेश कर सकते हैं—'यही ऐसा करनेवाले को, चन्द्र-सूर्यकी सलोकताके लिये० सीधा मार्ग है ? ।"

"नहीं हे गौतम !"

"इस प्रकार वाशिष्ट ! त्रैविद्य ब्राह्मण जिनको देखते हैं, ० प्रार्थना करते हैं० । उन चन्द्र-सूर्यकी सलोकताके लिये भी मार्गका उपदेश नहीं कर सकते, कि० यही सीधा मार्ग है'; तो फिर ब्रह्माको—जिसे न त्रैविद्य ब्राह्मणोंने अपनी आंखोंसे देखा, ० ० न त्रैविद्यब्राह्मणोंके पूर्व-वाले ऋषियोंने० । तो क्या वाशिष्ट ! ऐसा होनेपर त्रैविद्य ब्राह्मणोंका कथन अ-प्रामाणिक (नहीं) (= अप्पाटिहीरक) ठहरता ?"

"अवश्य, हे गौतम !"

"अच्छा वाशिष्ट ! त्रैविद्य ब्राह्मण जिसे न जानते हैं, जिसे न देखते हैं, उसकी सलोकताके लिये मार्ग उपदेश करते हैं—० यही सीधा मार्ग है' । ०यह उचित नहीं । जैसे कि वाशिष्ट ! पुरुष ऐसा कहे—इस जनपद (= देश) में जो जनपद-कल्याणी (= देशकी सुंदरतम स्त्री) है, मैं उसको चाहता हूँ०[1] । तब उसको यह पूछें—हे पुरुष ! जिसको तू नही जानता, जिसको तूने नहीं देखा, उसको तू चाहता है, उसकी तू कामना करता है'? ऐसा पूछने पर 'हां' कहे । तो ············वाशिष्ट ! क्या ऐसा होनेपर उस पुरुष का भाषण अ-प्रामाणिक नहीं ठहरता ?'

"अवश्यक हे गौतम ! ।"

"ऐसे ही हे वाशिष्ट ! तैविद्य ब्राह्मणोंने ब्रह्माको अपनी आंखसे नहीं देखा० । अहो ! वह त्रैविद्य ब्राह्मण यह कहते हैं—जिसे हम नहीं जानते० उसकी सलोकता के लिये मार्ग उपदेश करते हैं० । तो क्या वाशिष्ट ! ० भाषण अ-प्रामाणिक नहीं होता ?"

---

१. पृष्ठ १९६ ।

" तो वाशिष्ट ! मनसाकट यहांसे समीप है ?, मनसाकट यहांसे दूर नहीं है ? "

" हां ! हे गौतम मनसाकट यहांसे समीप है०, यहांसे दूर नहीं है । "

" तो वाशिष्ट ! यहां एक पुरुष है । (जो कि) मनसा-कटहीमें पैदा हुआ है, बढ़ा है । उसको "मनसाकटका रास्ता पूछें । वाशिष्ट ! मनसाकटमें जन्मे, बढ़े उस पुरुषको, मनसाकटका मार्ग पूछनेसे (उत्तर देनेमें) क्या देरी या जड़ता होगी ?"

" नहीं हे गौतम ! "

" सो किस कारण ? "

" हे गौतम ! वह पुरुष मनसाकटमें उत्पन्न और बड़ा है, उसको मनसाकटके सभी मार्ग सुविदित हैं । "

" वाशिष्ट ! मनसाकटमें उत्पन्न और बड़े हुये उसपुरुषको मनसाकटका मार्ग पूछनेपर देरी या जड़ताहो सकती है; किन्तु तथागतको ब्रह्मलोक या ब्रह्मलोक जानेवाला मार्ग पूछने पर, देरी या जड़ता नहीं होसकती । वाशिष्ट ! मैं ब्रह्माको जानता हूं, ब्रह्मलोकको और ब्रह्मलोक गामिनी-प्रतिपद् (=ब्रह्मलोकके मार्ग) कोभी; और जैसे मार्गारूढ़ होनेसे ब्रह्मलोकमें उत्पन्न होता है; उसे भी जानता हूं ।"

ऐसा कहनेपर वाशिष्ट माणवकने भगवान्‌को कहा—

" हे गौतम ! मैंने यह सुना है, श्रमण गौतम ब्रह्माओं की सलोकताका मार्ग उपदेश करता है । अच्छा हो आप गौतम हमें ब्रह्माकी सलोकताके मार्ग (का) उपदेश करें हे गौतम ! आप (हम) ब्राह्मण-संतानका उद्धार करें ।"

" तो वाशिष्ट ! सुनो, अच्छी प्रकार मनमें (धारण) करो, कहता हूं । "

" अच्छा भो ! " वाशिष्ट माणवकने भगवान्‌को कहा । भगवान्‌ने कहा :—

" वाशिष्ट ! यहां लोकमें तथागत उत्पन्न होते हैं । ०[1] इस प्रकार भिक्षु शरीरके चीवर, और पेटके भोजनसे सन्तुष्ट होता है । इस प्रकार वाशिष्ट ! भिक्षु शील-संपन्न होता है । [2]० वह अपनेको इन पांच नीवरणोंसे मुक्त देख, प्रमुदित होता है । प्रमुदित प्रीति प्राप्त करता है, प्रीति-मान्‌का शरीर स्थिर शांत होता है । प्रश्रब्ध (=शांत)शरीरवाला सुख अनुभव करेगा, सुखितका चित्त एकाग्र होता है ।

" वह मित्र-भाव युक्त चित्तसे एक दिशाको पूर्ण करके विहरता है, ० दूसरी दिशा ०, ० तीसरी दिशा ०, ० चौथी दिशा ० इसी प्रकार ऊपर नीचे आड़े-बेड़े सम्पूर्ण मनसे, सबकेलिये सारेही लोकको मित्र-भाव-युक्त, विपुल, महान्, अ-प्रमाण, वैर-रहित, द्रोह-रहित चित्तसे स्पर्श करता विहरता है । जैसे वाशिष्ट ! बलवान् शंख-ध्मा (=शंख बजानेवाला) थोड़ी ही मिहनत से चारों दिशोंको गुंजा देता है । वाशिष्ट ! इसी प्रकार मित्र-भावना से भावित, चित्तकी विमुक्ति (=छूटने) से जितने प्रमाणमें काम किया है, वह वहीं अवशेष = खतम नहीं होता । यह भी वाशिष्ट ! ब्रह्माओंकी सलोकताका मार्ग है ।

---

१. पृ. १७२-७३,१९०-९१ । २. १७४ ।

" और फिर वाशिष्ट ! करुणा-युक्त चित्तसे एक दिशाको० । मुदिता-युक्त चित्तसे० ० ; उपेक्षा-युक्त चित्तसे ० सारेही लोकको उपेक्षा-युक्त विपुल, महान्, अ-प्रमाण, वैर-रहित, द्रोह-रहित चित्तसे स्पर्श करके विहरता है । जैसे वाशिष्ट ! बलवान् शंख-ध्मा ० । वाशिष्ट ! इसी प्रकार उपेक्षासे भावित चित्तकी विमुक्तिसे जितने प्रमाणमें काम किया गया है, वहाँ अवशेष= खतम नहीं होता । यह भी वाशिष्ट ! ब्रह्माओंकी सलोकताका मार्ग है ।

"तो····वाशिष्ट ! इस प्रकारके विहार वाला भिक्षु, स-परिग्रह है, या अ-परिग्रह ?" " अ-परिग्रह हे गौतम !"

" स-वैर-चित्त या अ-वैर-चित्त ?" " अ-वैर-चित्त हे गौतम !"

" स-व्यापाद-चित्त या अ-व्यापाद-चित्त ?" " अ-व्यापाद-चित्त हे गौतम !"

" संक्लिष्ट (=मलिन)-चित्त या अ-संक्लिष्ट-चित्त ?" " अ-संक्लिष्ट चित्त हे गौतम !"

" वश-वर्ती (=जितेन्द्रिय) या अ-वश-वर्ती ?" " वश-वर्ती हे गौतम !"

" इस प्रकार वाशिष्ट ! भिक्षु अ-परिग्रह है, ब्रह्मा अ-परिग्रह है, तो क्या अपरिग्रह भिक्षुकी अ-परिग्रह ब्रह्माके साथ समानता है, मेल है ?" " हां ! हे गौतम !"

" साधु, वाशिष्ट ! वह अ-परिग्रह भिक्षु काया छोड़ मरनेके बाद, अपरिग्रह ब्रह्माकी सलोकता को प्राप्त होवे, यह संभव है । इस प्रकार भिक्षु अ-वैर-चित्त है० ।०। वश-वर्ती भिक्षु काया छोड़ मरनेके बाद वशवर्ती ब्रह्माकी सलोकताको प्राप्त होवे, यह संभव है ।

ऐसा कहनेपर वाशिष्ट और भारद्वाज माणवकोंने भगवान् को कहा—

"आश्चर्य हे गौतम ! आश्चर्य हे गौतम !० आजसे आप गौतम हम (लोगों)को अंजलि-बद्ध शरणागत उपासक धारण करें ।"

(२)

अम्बट्ठ-सुत्त (वि. पृ. ४५७)।

[१]ऐसा मैंने सुना——एक समय भगवान् पाँच सौ भिक्षुओंके महान् भिक्षु-संघके साथ [२]चारिका करते हुए, जहाँ इच्छानंगल नामक कोसलोंका ब्राह्मण-ग्राम था, वहाँ पहुँचे। वहाँ भगवान् इच्छानंगलमें इच्छानंगल वनखण्डमें विहरते थे।

उस समय पौष्कर-साति ब्राह्मण, जनाकीर्ण, तृणकाष्ठ-उदक-धान्य-सहित कोसल-राज प्रसेन-जित्-द्वारा दत्त, राजा-भोग्य, राज-दायज, ब्रह्म-देय उक्कट्ठाका स्वामित्व करता था।

पौष्करसाति ब्राह्मणने सुनाः—शाक्य-कुलसे प्रव्रजित शाक्य-पुत्र श्रमण गौतम० कोसल-देशमें चारिका करते, इच्छा नंगलमें० विहार कर रहे हैं। उन भगवान् गौतमका ऐसा मंगल-कीर्ति शब्द उठा हुआ है०। इस प्रकारके अर्हतोंका दर्शन अच्छा होता है। उस समय पौष्कर-साति ब्राह्मणका शिष्य अम्बष्ट नामक माणवक (था, जो कि), अध्यायक मंत्र-धर, नि-घण्टु-केटुभ (=कल्प)-अक्षर-प्रभेद (=शिक्षा निरुक्त)-सहित तीनों वेद, पाँचवें इतिहासका पारङ्गत, पद-ज्ञ, वैयाकरण, लोकायत (शास्त्र) तथा महापुरुषलक्षण (=सामुद्रिक-शास्त्र) में परिपूर्ण, अपनी पंडिताई, प्रवचनमें—'जो मैं जानता हूँ, सो तू जानता है; जो तू जानता है वह मैं जानता हूँ' (कहकर आचार्य-द्वारा) अनुज्ञातप्रतिज्ञात (=स्वीकृत) था।

तब पौष्करसाति ब्राह्मणने अम्बष्ट माणवकको संबोधित किया—

"तात! अम्बष्ट! शाक्य कुलोत्पन्न० विहार करते हैं,० इस प्रकारके अर्हतोंका दर्शन अच्छा होता है। आओ तात! अम्बष्ट! जहाँ श्रमण गौतम हैं, वहाँ आओ। जाकर श्रमण गौतमको जानो, कि आप गौतमका शब्द यथार्थ फैला हुआ है, या अ-यथार्थ? क्या० वैसे हैं या नहीं, जिसमें कि हम उन आप गौतमको जानें।

"कैसे भो! मैं उन गौतमको जानूँगा—कि आप गौतम० वैसे हैं या नहीं?"

---

१. दी. नि. १:१।

२. अ. क "भगवान्की चारिका दो प्रकारकी होती थी—त्वरित-चारिका, और अत्वरित-चारिका।" दूर बोधनीय मनुष्यको देखकर, उसके बोधके लिये सहसा गमन, त्वरित-चारिका है। यह महाकाश्यप स्थविरके प्रत्युद्गमन (=अगवानी) आदिमें जानना चाहिये। भगवान्, महाकाश्यप स्थविरके प्रत्युद्गमनके लिये, एक मुहूर्तमें तीन गव्यूति (= ¾ योजन) मार्ग चले गये; आलवकके लिये तीस योजन; उतना ही अंगुलि-मालके लिये; पुक्कुसातिके लिये ४५ योजन, महाकप्पिनके लिये १२० योजन, धनियके लिये १०७ योजन गये। धर्म-सेनापति (=सारिपुत्र)के शिष्य वनवासी तिष्य-श्रामणेरके लिये १२० योजन तीन गव्यूति गये।...। यह त्वरित-चारिका है। जो गाँव निगमके क्रमसे प्रति-दिन योजन, अर्द्ध योजन करके, पिंडचार करते, लोकानुग्रह करते गमन करना है, यह अ-त्वरित चारिका है।...बालक (पौष्करसाति) तीनों वेदोंमें पारङ्गत, पंडित=व्यक्त हो, जम्बूद्वीपमें अग्र ब्राह्मण हुआ। दूसरे समय उसने कोसल-राजको (अपना) गुण (=शिल्प) दिखलाया। तब उसके शिल्पसे प्रसन्न हो राजाने, उक्कट्ठा नामक महानगरको ब्रह्म-देय किया।"

"तात ! अम्बष्ट ! हमारे मंत्रोंमें बत्तीस महा पुरुष-लक्षण आये हैं। जिनसे युक्त महा-पुरुषकी दो ही गतियां होती हैं, तीसरी नहीं । यदि वह घरमें रहता है,० चक्रवर्ती राजा होता है। यदि घरसे बेघर हो प्रव्रजित होता है,...अर्हत् सम्यक् संबुद्ध होता है । तात ! अम्बष्ट ! मैं मन्त्रोंका दाता हूं, तुम मन्त्रोंके प्रतिगृहीता हो ।"

पौष्कर-साति ब्राह्मणको "हां भो" कह अम्बष्ट माणवक, आसनसे उठ, अभिवादन कर, प्रदक्षिणा कर, घोड़ीके रथपर चढ़, बहुत माणवकोंके साथ जिधर इच्छानंगल वन-खंड था, उधरको चला । जितनी रथकी भूमि थी, रथसे जाकर, यानसे उतर, पैदलही आराममें प्रविष्ट हुआ । उस समय बहुतसे भिक्षु खुली जगहमें टहलरहे थे । तब अम्बष्ट माणवक जहां वह भिक्षु थे वहां गया, जाकर उन भिक्षुओं को बोला—

"भो ! आप गौतम इस समय कहां विहार कर रहे हैं ? हम आप गौतमके दर्शनके लिये यहां आये हैं ।"

तब उन भिक्षुओंको यह हुआ—यह कुलीन प्रसिद्ध अम्बष्ट माणवक, अभिज्ञात (=प्रख्यात) पौष्कर साति ब्राह्मणका शिष्य है । इस प्रकारके कुल-पुत्रोंके साथ कथा-संलाप भगवान्को भारी नहीं होता ।' (और) अम्बष्ट माणवकको कहा—

"अम्बष्ट ! यह द्वार-बन्द विहार है, वहां चुपचाप धीरे से जाकर, बरांडेमें (=अलिन्द) प्रवेशकर खांसकर, जंजीरको खटखटाओ, तालेको हिलाओ । भगवान् तुम्हारे लिये द्वार खोल देंगे ।"

तब अम्बष्ट माणवकने जहां द्वार-बंद विहार (=निवासघर) था, चुपचाप धीरे से वहां जा० तालेको हिलाया । भगवान्ने द्वार खोल दिया । अम्बष्ट माणवकने प्रवेश किया । (दूसरे) माणवकोंने भी प्रवेश कर भगवान्के साथ...संमोदन किया...(और) एक ओर बैठ गये । किंतु अम्बष्ट माणवक बैठे हुये भी, भगवान्के टहलते वक्त कुछ पूछरहा था, खड़े हुये भी बैठे हुये, भगवान्के साथ० ।

तब भगवान्ने अम्बष्ट माणवकको यह कहा—

"अम्बष्ट ! क्या वृद्ध=महल्लक आचार्य-प्राचार्य ब्राह्मणोंके साथ कथा-संलाप, ऐसेही होता है, जैसेकि तू चलते खड़े बैठे हुये मेरेसाथ...कर रहा है ?"

"नहीं हे गौतम ! चलते ब्राह्मणके साथ चलते हुये, खड़े ब्राह्मणके साथ खड़े हुये, बैठे ब्राह्मणके साथ बैठे हुये बात करना चाहिये । सोये ब्राह्मणके साथ सोये बातकर सकते हैं । किंतु जो हे गौतम ! मुंडक, श्रमण, इभ्य, काले, ब्रह्मा(=बंधु)के पैरकी संतान हैं, उनके साथ ऐसेही कथा-संलाप होता है, जैसाकि आप गौतमके साथ ।"

"अम्बष्ट ! अर्थीकी भांति तेरा यहां आना हुआ है । (मनुष्य) जिस अर्थके लिये आवे, उसी अर्थको मनमें करना चाहिये । अम्बष्ट ! तूने (गुरुकुलमें) नहीं वास किया है; क्या वासकरे विनाही (गुरुकुल) वासका अभिमानी है ?"

तब अम्बष्ट माणवकने भगवान्के (गुरुकुल) अ-वास कहने से कुपित हो असंतुष्ट हो,

भगवान्‌को ही खुन्साते (=खुन्सेन्तो) भगवान्‌को ही निन्दते, भगवान्‌को ही ताना देते 'श्रमण गौतम दुष्ट (=पापिक) होगा' (सोच) यह कहा—

"हे गौतम ! शाक्य-जाति चंड है । हे गौतम ! शाक्य-जाति क्षुद्र (=लघुक) है । हे गौतम ! शाक्य-जाति बकवादी (=रभस) है । नीच (इब्भ) समान होनेसे शाक्य ब्राह्मणोंका सत्कार नहीं करते, ब्राह्मणोंका गौरव नहीं करते,० नहीं मानते, ०नहीं पूजते; ०नहीं अपचय करते । हे गौतम ! सो यह अ-च्छन्न=अयोग्य है, जो कि नीच, नीच-समान शाक्य, ब्राह्मणोंका सत्कार नहीं करते० ।"

इस प्रकार अम्बट्ठने शाक्योंपर यह प्रथम इभ्यवाद (=नीच करना) कह, आपेक्ष किया ।

"अम्बट्ठ ! शाक्योंने तेरा क्या कसूर किया है ?"

"हे गौतम ! एक समयमें आचार्य ब्रा० पौष्करसातिके किसी कामसे कपिलवस्तु गया । (वहाँ) जहाँ शाक्योंका संस्थागार (=प्रजातंत्र-भवन) है, वहाँ गया । उस समय बहुत से शाक्य तथा शाक्य-कुमार संस्थागारमें ऊँचे आसनोंपर, एक दूसरे को अंगुली गड़ाते हंस रहे थे, खेल रहे थे; मुझेही मानो हंस रहे थे । किसीने मुझे आसनपर बैठने को नहीं कहा । सो यह गौतम ! अच्छन्न=अयुक्त है, जो यह इभ्य तथा इभ्य-समान शाक्य ब्राह्मणोंका सत्कार नहीं करते० ।"

इस प्रकार अम्बट्ठ माणवकने शाक्योंपर दूसरा इभ्यवाद का आक्षेप किया ।

"लटुकिका चिडिया भी अम्बट्ठ ! अपने घोंसलेपर स्वच्छंद-आलापिनी होती हैं । कपिलवस्तु शाक्योंका अपना (घर) है, अम्बट्ठ ! इस थोडी बातसे तुम्हें अमर्ष न करना चाहिये ।"

"हे गौतम ! चार वर्ण हैं,—क्षत्रिय, ब्राह्मण, वैश्य और शूद्र । इनमें हे गौतम ! क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र यह तीन वर्ण, ब्राह्मण के ही सेवक हैं । गौतम ! सो यह० अयुक्त है० ।"

इस प्रकार अम्बट्ठ माणवकने शाक्योंपर तीसरा इभ्यवादका आक्षेप किया । तब भगवान् को यह हुआ—यह अम्बट्ठ माणवक बहुत बढ़ बढ़कर शाक्योंपर इभ्यवादका आक्षेप कर रहा है, क्यों न मैं गोत्र पूछूँ । तब भगवान्‌ने अम्बट्ठ माणवक को कहा—

"किस गोत्रके हो, अम्बट्ठ !"

"कृष्णायन हूँ, हे गौतम !"

"अम्बट्ठ ! तुम्हारे पुराने नामगोत्रके अनुसार, शाक्य आर्य(=स्वामि-)-पुत्र होते हैं, । तुम शाक्योंके दासी-पुत्र हो । अम्बट्ठ ! शाक्य, राजा इक्ष्वाकु (=ओक्काक) को पितामह धारण करते (=मानते) हैं, पूर्व कालमें अम्बट्ठ ! राजा इक्ष्वाकुने अपनी प्रिया=मनापा रानीके पुत्रको राज्य देने की इच्छासे, ओक्कामुख (=उल्का मुख), करण्डु, हत्थिनिक, और सिनीसूर(नामक) चार बड़े लड़कोंको राज्यसे निर्वासित कर दिया । वह निर्वासित हो, हिमालयके पास सरोवरके किनारे (एक) बड़े शाक-वनमें वास करने लगे । जातिके

विगड़नेके डरसे अपनी वहिनोंके साथ उन्होंने संवास (=संभोग) किया। तब अम्बट्ठ! राजा इक्ष्वाकुने अपने अमात्यों और दरबारियों को पूछा—'कहाँ हैं भो! इस समय कुमार?'

'देव! हिमवान्‌के पास सरोवरके किनारे महाशाक-वन (=शाक-संड) है, वहीं इस वक्त कुमार रहते हैं। वह जातिके विगड़नेके डरसे अपनी बहिनोंके साथ संवास करते हैं।'

"तब अम्बट्ठ! राजा इक्ष्वाकुने उदान कहा—'अहो! कुमार! शाक्य (=समर्थ) हैं रे!! महाशाक्य हैं रे कुमार!' तबसे अम्बट्ठ! वह शाक्यके नामही से प्रसिद्ध हुये, वही (=इक्ष्वाकु) उनका पूर्वपुरुष था। अम्बट्ठ! राजा इक्ष्वाकुकी दिशा नामकी दासी थी। उसे कृष्ण(=कण्ह) नामक पुत्र पैदा हुआ। पैदा होते ही कृष्णने कहा—'अम्मा! धोओ मुझे, अम्मा! नहलाओ मुझे, इस गंदगी (=अशुचि)से मुझे मुक्त करो, में तुम्हारे काम आऊंगा।' अम्बट्ठ! जैसे आजकल मनुष्य पिशाचोंको देखकर 'पिशाच' कहते हैं, वैसे ही उस समय पिशाचोंको, कृष्ण कहते थे। उन्होंने कहा—इसने पैदा होते ही बात की, (अतः यह) 'कृष्ण पैदा हुआ', 'पिशाच पैदा हुआ'। इसीसे आगे कृष्णायन प्रसिद्ध हुये, वह कृष्णायनों का पूर्व-पुरुष था। इस प्रकार अम्बष्ट! तेरे माता-पिताओंके गोत्रको ख्याल करनेसे, शाक्य आर्य-पुत्र होते हैं, तू शाक्योंका दासी-पुत्र है।'"

ऐसा कहनेपर उन माणवकोंने भगवान्‌को कहा—

"आप गौतम! अम्बष्ट माणवकको कड़े दासी-पुत्र-वादसे मत लजावें। हे गौतम! अम्बष्ट माणवक सुजात है, कुल पुत्र है०, बहुश्रुत०, सुवक्ता०, पंडित है। अम्बष्ट माणवक इस बातमें आप गौतमके साथ वाद कर सकता है।"

तब भगवान्‌ने उन माणवकोंको कहा—

"यदि तुम माणवकोंको होता है—अम्बष्ट माणवक दुर्जात है, ०अ-कुलपुत्र है, ०अल्प-श्रुत०, ०दुर्वक्ता०, दुष्प्रज्ञ (=अ-पंडित)०। अम्बष्ट माणवक श्रमण गौतमके साथ इस विषयमें वाद नहीं कर सकता। तो अम्बष्ट माणवक बैठे, तुम्हीं इस विषयमें मेरे साथ वाद करो। यदि तुम माणवकोंको ऐसा है—अम्बष्ट माणवक सुजात है० ।०। तो तुम लोग ठहरो, अम्बष्ट माणवकको मेरे साथ वाद करने दो।"

"हे गौतम! अम्बष्ट माणवक सुजात है,०। अम्बष्ट माणवक इस विषयमें आप गौतमके साथ वाद कर सकता है। हमलोग चुप रहते हैं। अम्बष्ट माणवक ही आप गौतमके साथ इस विषयमें वाद करेगा।"

तब भगवान्‌ने अम्बष्ट माणवकको कहा—

"अम्बष्ट! यह तुझपर धर्म-संबन्धी प्रश्न आता है, न इच्छा होते भी उत्तर देना चाहिये, यदि नहीं उत्तर देगा, या इधर उधर करेगा, या चुप होगा, या चला जायेगा; तो यहीं तेरा शिर सात टुकड़े हो जायगा। तो अम्बष्ट! क्या तुमने वृद्ध=महल्लक ब्राह्मणों आचार्य-प्राचार्यों श्रमणोंसे सुना है (कि) कबसे कृष्णायन हैं, और उनका पूर्व-पुरुष कौन था?"

ऐसा पूछनेपर अम्बष्ट माणवक चुप होगया।

दूसरीबार भी भगवान्‌ने अम्बष्ट माणवकको यह पूछा—०।

तब भगवान्‌ने अम्बष्ट माणवकको कहा—

"अम्बष्ट! उत्तर दो, यह तुम्हारा चुप रहनेका समय नहीं। जो कोई तथागतसे तीनवार स्वधर्म-संबंधी प्रश्न पूछे जानेपर भी उत्तर नहीं देगा, उसका शिर यहीं सात टुकड़े हो जायगा।"

उस समय वज्रपाणि यक्ष बड़े भारी आदीप्त=संप्रज्वलित=सप्रकाश लोह-खंड (=अयः कूट)को लेकर, अम्बष्ट माणवकके ऊपर आकाशमें खड़ा था—'यदि यह अम्बष्ट माणवक तथागतसे तीनवार स्वधर्म-संबन्धी प्रश्न पूछे जानेपर भी उत्तर नहीं देगा; (तो) यहीं इसके शिरको सात टुकड़े करूँगा।' उस वज्र-पाणि यक्षको (या तो) भगवान् देखते थे, या अम्बष्ट माणवक। तब उसे देख अम्बष्ट माणवक भयभीत, उद्विग्न, रोमांचित हो, भगवान्‌से त्राण=लयन=शरण चाहता, बैठकर भगवान्‌से बोला—

"क्या आप गौतमने कहा, फिरसे आप गौतम कहें तो?"

"तो क्या मानते हो, अम्बष्ट! क्या तुमने सुना है०?"

"ऐसा ही है गौतम! जैसा कि आप ने कहा। तबसे ही कृष्णायन हुये, और वही कृष्णायनोंका पूर्व-पुरुष था।"

ऐसा कहनेपर माणवक उन्नाद=उच्चशब्द=महा-शब्द (=कोलाहल) करने लगे—

"अम्बष्ट माणवक दुर्जात है। अ-कुलपुत्र है। अम्बष्ट माणवक शाक्योंका दासी-पुत्र है। शाक्य, अम्बष्ट माणवकके आर्य (=स्वामि)-पुत्र होते हैं। सत्यवादी श्रमण गौतम को हम अश्रद्धेय करना चाहते थे।"

तब भगवान् को यह हुआ—'यह माणवक अम्बष्ट माणवकको दासी-पुत्र कहकर बहुत अधिक लजवाते हैं, क्यों न मैं (इसे) छुड़ाऊँ'। तब भगवान्‌ने माणवकों को कहा—

"माणवको! तुम अम्बष्टमाणवक को दासी-पुत्र कहकर बहुत अधिक मत लजवाओ। वह कृष्ण महान् ऋषि थे। उन्होंने दक्षिण-देशमें जाकर ब्रह्ममंत्र पढ़कर, राजा इक्ष्वाकुके पास जा क्षुद्र-रूपी कन्याको मांगा। तब राजा इक्ष्वाकुने- 'अरे यह मेरी दासीका पुत्र होकर क्षुद्र-रूपी कन्याको मांगता है' (सोच), कुपित हो असन्तुष्ट हो, बाण चढ़ाया। लेकिन उस बाणको न वह छोड़ सकता था, न समेट सकता था। तब अमात्य और पार्षद (=दर्बारी) कृष्ण ऋषिके पास जाकर बोले—

'भदन्त! राजाका मंगल हो, भदन्त! राजाका मंगल (=स्वस्ति) हो।'

'राजाका मंगल होगा, यदिराजा नीचेकी ओर बाण(=क्षुरप्र) को छोड़ेगा। (लेकिन) जितना राजाका राज्य है, उतनी पृथ्वी विदीर्ण हो जायगी।'

'भदन्त! राजाका मंगल हो, जनपद (=देश) का मंगल हो।'

'राजाका मंगल होगा, जनपदका भी मंगल होगा; यदि राजा ऊपरकी ओर बाण छोड़ैगा, (लेकिन) जहां तक राजाका राज्य है। वहां सात वर्ष तक वर्षा न होगी।'

'भदन्त! राजाका मंगल हो, जनपदका मंगल हो, देव भी वर्षा करै।'

'०देवभी वर्षा करैगा, यदि राजा ज्येष्ठ कुमारपर बाण छोड़े। कुमार स्वस्ति पूर्वक (किंतु) गंजा हो जायेगा।'

"तब माणवको! अमात्योंने इक्ष्वाकुको कहा—'...ज्येष्ठ कुमारपर बाण छोड़ें, कुमार स्वस्ति-सहित (किंतु) गंजा होगा। राजा इक्ष्वाकुने ज्येष्ठ कुमारपर बाण छोड़ दिया...। उस ब्रह्मदण्डसे भयभीत, उद्विग्न, रोमांचित, तर्जित राजाइक्ष्वाकुने ऋषिको कन्या-प्रदान की। माणवको! अम्बष्ट माणवकको दासी-पुत्र कह, तुम मत बहुत अधिक लजवाओ। वह कृष्ण महान् ऋषि थे।"

तब भगवान्‌ने अम्बष्ट माणवकको संबोधित किया—

"तो...अम्बष्ट! यदि (एक) क्षत्रिय-कुमार ब्राह्मण-कन्याके साथ संवास करै, उनके संवाससे पुत्र उत्पन्न हो। जो क्षत्रिय-कुमारसे ब्राह्मण-कन्यामें पुत्र उत्पन्न होगा, क्या वह ब्राह्मणोंमें आसन और पानी पायेगा?" "पायेगा हे गौतम!" "क्या ब्राह्मण श्राद्ध, स्थालि-पाक, यज्ञ या पहुनाईमें उसे खिलायेंगे?" "खिलायेंगे हे गौतम!" "क्या ब्राह्मण उसे मंत्र (=वेद) बँचायेंगे?" "बँचायेंगे हे गौतम!" "इसको स्त्री (पाने)में रुकावट होगी, या नहीं?" "नहीं रुकावट होगी।" "क्या क्षत्रिय! इसे क्षत्रिय-अभिषेकसे अभिषिक्त करेंगे?" "नहीं, हे गौतम!...माताकी ओरसे हे गौतम! अयुक्त है।"

"तो....अम्बष्ट! यदि एक ब्राह्मण-कुमार क्षत्रिय-कन्याके साथ संवास करता है, उनके संवाससे पुत्र उत्पन्न हो। जो वह ब्राह्मण-कुमारसे क्षत्रिय-कन्यामें पुत्र उत्पन्न हुआ है, क्या वह ब्राह्मणोंमें आसन, पानी पायेगा?" "पायेगा हे गौतम!" "क्या ब्राह्मण श्राद्ध, स्थालिपाक, यज्ञ या पहुनाईमें उसे खिलायेंगे?" "खिलायेंगे हे गौतम!" "क्या ब्राह्मण उसे मंत्र बँचागे, या नहीं?" "बँचायेंगे हे गौतम!" "क्या उसे (ब्राह्मण-) स्त्री (पाने)में रुकावट होगी?" "रुकावट न होगी हे गौतम!" "क्या उसे क्षत्रिय क्षत्रिय-अभिषेकसे अभिषिक्त करेंगे?" "नहीं, हे गौतम!" "सो किस हेतु?" "गौतम पितासे वह अनुपपन्न है।"

"इस प्रकार अम्बष्ट! स्त्रीसे करके भी, पुरुष करके भी क्षत्रिय ही श्रेष्ठ है, ब्राह्मण हीन है। तो...अम्बष्ट! यदि ब्राह्मण किसी ब्राह्मणको किसी कारणसे छुरेसे मुंडितकरा, घोड़ेके चाबुकसे मारकर, राष्ट्र या नगरसे निर्वासित करदें। क्या वह ब्राह्मणोंमें आसन, पानी पायेगा?" "नहीं हे गौतम!" "क्या ब्राह्मण श्राद्ध स्थालिपाक, यज्ञ पहुईनाईमें उसे खिलायेंगे?" "नहीं, हे गौतम!" "क्या ब्राह्मण उसे मंत्र बँचायेंगे या नहीं?" "नहीं, हे गौतम!" "उसे (ब्राह्मण-) स्त्री (लेने)में रुकावट होगी, या बेरुकावट?" "रुकावट होगी, हे गौतम!"

"तो... अम्बष्ट! यदि क्षत्रिय (एक पुरुषको) किसी कारणसे छुरेसे मुंडितकर, घोड़ेके चाबुकसे मारकर, राष्ट्र या नगरसे निर्वासित करदें। क्या वह ब्राह्मणोंमें आसन पानी पायेगा?" "पायेगा हे गौतम!" "क्या ब्राह्मण ०उसे खिलायेंगे?" "खिलायेंगे हे गौतम!" क्या ब्राह्मण उसे मंत्र बँचायेंगे?" "बँचायेंगे हे गौतम!" "क्या उसे स्त्रीमें रुकावट होगी, या बेरुकावट?" "बेरुकावट होगी हे गौतम!"

"अम्बष्ट ! क्षत्रिय बहुत ही निहीन (=नीच) होगया रहता है, जब कि इसको क्षत्रिय किसी कारणसे मुंडितकर० । इस प्रकार अम्बष्ट ! जब वह क्षत्रियोंमें परम नीचताको प्राप्त है, तब भी क्षत्रिय ही श्रेष्ट है, ब्राह्मण हीन हैं । ब्रह्मा सनत्कुमारने भी अम्बष्ट ! यह गाथा कही है—

"गोत्र लेकर चलनेवाले जनोंमें क्षत्रिय श्रेष्ट है ।"
जो विद्या और आचरण युक्त है, वह देव-मनुष्योंमें श्रेष्ट है ॥"

"सो अम्बष्ट ! यह गाथा ब्रह्मा सनत्कुमारने उचित ही गायी (=सुगीता) है, अनुचित नहीं गायी है,—सुभाषित है, दुर्भाषित नहीं है; सार्थक है, निरर्थक नहीं; मैं भी सहमत हूं, मैं भी अम्बष्ट कहता हूं—"गोत्र लेकर० ।"

"क्या है, हे गौतम ! चरण, और क्या है विद्या ?"

"अम्बष्ट ! अनुपम विद्या-आचरण-सम्पदाको जातिवाद नहीं कहते, नहीं गोत्र-वाद कहते हैं, नहीं मान-वाद—'मेरे तू योग्य है', 'मेरे तू योग्य नहीं है' कहतेहैं । जहां अम्बष्ट आवाह-विवाह होता है···, वहीं यह जातिवाद···, गोत्रवाद·, मानवाद, 'मेरे तू योग्य है', 'मेरे तू योग्य नहीं है' कहा जाता है । अम्बष्ट ! जो कोई जातिवादमें बँधे हैं, गोत्र-वादमें बँधे, (अभि-) मान-वादमें बँधे हैं, आवाह-विवाहमें बँधे हैं, वह अनुपम विद्या-चरण-संपदासे दूर हैं । अम्बष्ट ! जाति-वाद-बंधन गोत्र-वाद-बंधन, मान-वाद-बंधन, आवाह-विवाह-बंधन छोड़कर, अनुपम विद्या-चरण-संपदा प्रत्यक्षकी जाती है ।

"क्या है, हे गौतम ! चरण, और क्या है विद्या ?"

"अम्बष्ट ! लोकमें तथागत उत्पन्न होता है [1]० । ० । इसी प्रकार भिक्षु शरीरके चीवर, पेटके खानेसे सन्तुष्ट होता है ।०। इस तरहअम्बष्ट ! भिक्षु शील-संपन्न होता है [1]०। वह प्रीति-सुखवाले प्रथम ध्यानको प्राप्तहो विहरता है । यह भी उसके चरणमें होता । [1]०द्वितीय ध्यान० । ०तृतीय ध्यान० । ०चतुर्थ ध्यानको प्राप्त हो विहरता है, यह भी उसके चरणमें होता है । अम्बष्ट ! यह चरण, ज्ञानके प्रत्यक्ष करनेके लिये, (मनुष्यके) चित्तको नमाता है, झुकाता है । सो इस प्रकार चित्तके परिशुद्ध०[1] । इस प्रकार आकार-सहित उद्देश-सहित अनेक पूर्व-निवासोंको जानता है । यह भी अम्बष्ट ! उसकी विद्यामें है । [1]०दिव्य विशुद्ध चक्षुसे० प्राणियोंको देखता है । यह भी अम्बष्ट ! उसकी विद्यामें है । ०[2]'जन्म खतम होगया, ब्रह्मचर्य पूरा

---

१. पृष्ट. १७२-७४ ।

२. अ. क. "तापस आठ प्रकारके होते हैं—(१) स-पुत्र-भार्य, (२) उंछाचारी, (३) अन्-अग्नि-पक्कि, (४) अ-स्वयं-पाकी, (५) अश्म-मुट्ठिक, (६) दन्तवल्कलिक, (७) प्रवृत्त-फल-भोजी, (८) पाण्डु-पलाशिक । इनमें जो केणिय जटिलकी भांति कुटुम्ब सहित वास करते हैं, वह 'स-पुत्र-भार्य' कहलाते हैं । जो···गांव कस्बोंसे चावलकी भिक्षा लेकर पकाकर खाते हैं, वह 'अनग्नि-पक्कि' ०।···जो गांवमें जाकर पकी भिक्षाको ग्रहण करते हैं, वह 'अ-स्वयं-पाकी' ०। जो मुठिया पत्थरसे अम्बाटक आदि वृक्षोंके चमड़ेको उपाड़कर खाते हैं, वह 'अश्म-मुष्टिक'···। जो दांतसे ही (छाल=वल्कल) उपाड़कर खाते हैं, वह प्रवृत्त-फल-भोजी···। जो···स्वयं गिरे फूल फल पत्ते खाते; जीवन-यापन करते हैं, वह 'पांडु-पलाशिक'···। यह तीन प्रकारके होते हैं, उत्कृष्ट, मध्यम और मृदुक

होगया, करना था सो कर लिया, अब यहाँके लिये कुछ नहीं है' यह भी जानता है। यह भी उसकी विद्यामें है। यह अम्बष्ट! विद्या है। अम्बष्ट! ऐसा भिक्षु विद्या-सम्पन्न कहा जाता है। इस प्रकार चरण-संपन्न; इस प्रकार विद्या-चरण-संपन्न होता है। इस विद्या-संपदा, तथा चरण-सम्पदासे बढ़कर दूसरी विद्या-सम्पदा या चरण-सम्पदा नहीं है।

"अम्बष्ट! इस अनुपम विद्या-चरण-सम्पदाके चार अपाय-मुख (=विघ्न) होते हैं। कौनसे चार? कोई श्रमण या ब्राह्मण अम्बष्ट! इस अनुपम विद्या-चरण संपदाको पूरा न करके, खारी-विविध (=झोरी-मंत्रा वाणप्रस्थोंके सामान) लेकर—'फल मूलाहारी होऊँ' (सोच)-वन-वासके लिये जाता है। वह विद्या, चरणसे भिन्न वस्तुका परिचारक (=सेवक) बनता है। इस अनुपम विद्या-चरण-संपदाका यह प्रथम अपाय-मुख (=विघ्न) है। और फिर अम्बष्ट! यहां कोई श्रमण या ब्राह्मण इस अनुपम विद्या-चरण-संपदाको पूरा न करके, फलाहारिताको भी पूरा न करके, कुदाल ले 'कन्द-मूल फलाहारी होऊँ' (सोच) विद्या-चरणसे भिन्नवस्तुका परिचारक बनता है। ०यह द्वितीय अपाय-मुख है। और फिर अम्बष्ट! ०फलाहारिताको न पूरा करके, गांवके पास या निगम (=कस्बे)के पास अग्निशाला बना अग्नि-परिचरण (=होम आदि) करता रहता है०। ०यह तृतीय-मुख है। और फिर अम्बष्ट! ०अग्नि-परिचर्याको भी न पूरा करके, चौरस्तेपर चार द्वारों वाला आगार बनाकर रहता है, कि जो यहां चारों दिशाओंसे श्रमण या ब्राह्मण आयेगा, उसका मैं यथाशक्ति =यथाबल सत्कार करूँगा। वह इस प्रकार विद्याचरणसे भिन्नहीका परिचारक बनता है। ०यह चतुर्थ अपाय-मुख है। इस अनुपम विद्या-चरण-संपदाके अम्बष्ट! यह चार [1] विघ्न हैं।

"तो···अम्बष्ट! क्या आचार्य-सहित तुम इस अनुपम विद्याचरण-संपदाका उपदेश करते हो?

"नहीं हे गौतम! कहां आचार्य-सहित मैं और कहां अनुपम विद्या-चरण-संपदा! हे गौतम! आचार्य सहितमें अनुपम विद्या-चरण-संपदासे दूर हैं।"

"तो···अम्बष्ट! इस अनुपम विद्या-चरण संपदाको पूरा न कर, झोली आदि (=खारीविविध) लेकर 'प्रवृत्त फलभोजी होऊँ' (सोच), क्या तू वनवासके लिये आचार्य सहित वनमें प्रवेश करता है?

"नहीं हे गौतम।"

"०।०। चौरस्तेपर चार द्वारों वाला आगार बनाकर रहता है, कि जो यहां चारों दिशाओंसे श्रमण या ब्राह्मण आयेगा, उसका मैं यथाशक्ति यथाबल सत्कार करूँगा?"

"नहीं हे गौतम!"

(=साधारण)। जो बैठनेके स्थानसे विना उठे हाथ पहुँचने भरके स्थानके फलको खाते हैं, वह 'उत्कृष्ट'। जो एक वृक्षसे दूसरे वृक्षको नहीं जाते, वह 'मध्यम'। जो जिस किसी वृक्षके नीचे जाकर खोजकर खाते हैं वह 'मृदुक'। यह आठों तापस-प्रव्रज्यायें उन्हीं चारमें आ जाती हैं। कैसे? इनमें 'सपुत्र-भार्य' 'उंछाचारी' दानागार सेवन करते हैं। 'अनग्नि-पक्कि और 'अ-स्वयंपाकी, अग्न्यागार०। 'अश्म-मुष्टिक', और 'दन्त-वल्कलिक' कन्दमूल-फल भोजी०। 'पांडुपलाशी' प्रवृत्त-फल भोजी०।

" इस प्रकार अम्बष्ट ! आचार्य-सहित तू इस अनुत्तर विद्या-चरण-संपदासे भी हीन है, और यह जो अनुत्तर विद्या-चरण सम्पदाके चार अपाय-मुख हैं, उनसे भी हीन। तूने अम्बष्ट ! आचार्य ब्राह्मण पौष्कर-सातिसे सीखकर यह वाणी बोली—'कहाँ इब्भ, (=नीचा, इभ्य) काले, पैरसे उत्पन्न मुंडक श्रमण हैं, और कहाँ त्रैविद्य ब्राह्मणोंका साक्षात्कार[1] ' स्वयं अपायिक (=दुर्गतिगामी) भी, (विद्या-चरण) न पूरा करते (हुये भी), अम्बष्ट ! अपने आचार्य ब्राह्मण पौष्करसातिका यह अपराध देख। अम्बष्ट ! पौष्कर-साति ब्राह्मण राजा प्रसेनजित् कोसलका दिया खाता है। राजा प्रसेनजित् कोसल उसको दर्शन भी नहीं देता। जब उसके साथ मंत्रणा भी करता है, तो कपड़ेकी आड़से मंत्रणा करता है। अम्बष्ट ! जिसकी धार्मिक दी हुई भिक्षाको (पौष्करसाति) ग्रहण करता है, वह राजा प्रसेनजित् कोसल उसे दर्शन भी नहीं देता !! देख अम्बष्ट ! अपने आचार्य ब्राह्मण पौष्करसातिका यह अपराध !।" । तो क्या मानते हो अम्बष्ट ! राजा प्रसेनजित् कोसल हाथी पर बैठा, या घोड़ेपर बैठा, या रथके ऊपर खड़ा [2]उग्रोंके साथ या राजन्योंके साथ कोई सलाह करे, और उस स्थानसे हटकर एक ओर खड़ा हो जाये। तब (कोई) शूद्र या शूद्र-दास आजाय, वह उस स्थानपर खड़ा हो, उसी सलाहको करे—'जैसी राजा प्रसेनजित् कोसलने की थी, तो क्या वह राज-कथनको कहता है, राजमंत्रणाको मंत्रित करता है, इतनेसे वह राजा या राज-अमात्य हो जाता है ?"

"नहीं हे गौतम !"

"इसी प्रकार हे अम्बष्ट ! जो वह ब्राह्मणोंके पूर्वज ऋषि मंत्र-कर्ता, मंत्र-प्रवक्ता (थे), जिनके कि पुराने गीत, प्रोक्त, समीहित (=चिन्तित) मंत्रपदको ब्राह्मण आजकल अनुगान, अनुभाषण करते हैं, भाषितको अनुभाषित, वाचितको अनु-वाचित करते हैं; जैसेकि—अट्टक, वामक, वामदेव, विश्वामित्र, यमदग्नि, अंगिरा, भरद्वाज, वशिष्ट, कश्यप, भृगु। 'उनके मंत्रोंको आचार्य-सहित मैं अध्ययन करता हूँ' क्या इतने से तू ऋषी या ऋषित्वके मार्ग पर आरूढ़ हो जायगा ? यह संभव नहीं।

"तो क्या अम्बष्ट ! तूने वृद्ध-महल्लक ब्राह्मणों आचार्यों-प्राचार्योंको कहते सुना है, जो वह ब्राह्मणोंके पूर्वज ऋषि० अट्टक० (थे); क्या वह ऐसे सुस्नात, सु विलिप्त (=अंगराग लगाये), केश मोंछ सँवारे मणिकुण्डल आभरण पहिने, स्वच्छ (=श्वेत) वस्त्र-धारी पाँचकाम-गुणोंमें लिप्त, युक्त, घिरे रहते थे; जैसे कि आज आचार्य-सहित तू है ?" "नहीं, हे गौतम !"

---

१. अ. क. "वह (पौष्कर साति) सम्मुखावर्जनी माया (=Hypnotism) जानता था। जब राजा महार्घ अलंकारसे अलंकृत होता, तब राजाके पास खडा होकर उस अलंकारका नाम लेता। नाम लेनेपर राजा 'नहीं दूँगा' नहीं कह सकता था। देकर फिर महोत्सवके दिन, 'अलंकार लेआओ' कह कर, 'देव ! नहीं है' तुमने ब्राह्मण पौष्कर-सातिको देदिया' कहने पर, 'मैंने क्यों दिया ?' पूछता। वे अमात्य 'वह ब्राह्मण 'आवर्जनी-माया' जानता है, उसीसे आपको भरमा-कर लेजाता है' कहते। दूसरे राजाके साथ उसकी परम मित्रताको न सहनकर कहते—'देव ! इस ब्राह्मणके शरीरमें शंख-पलित-कुष्ट' (शंखसा उजला कोढ़) है। तुम इसको देखकर आलिंगन करते हो, छूते हो। यह कुष्ट (रोग) काय-संसर्गसे अनुगमन करता है, ऐसा मत करो।' तबसे राजा उसको दर्शन नहीं देता। (लेकिन) चूँकि वह ब्राह्मण पंडित, क्षत्र-विद्यामें कुशल था, इसलिये उसके साथ सलाह करके किया काम नहीं बिगडता, (सोच) कनातके भीतर खड़े हो बाहर खड़े उसके साथ मंत्रणा करता।" २ 'ऊँचे ऊँचे अमात्य'। ३ अभिषेक-रहित कुमार।

"ऐसे क्या वह शालिका भात, शुद्ध मांसका तेवन (=उपसेचन), कालिमारहित सूप (=दाल), अनेक प्रकारकी तर्कारी (=व्यंजन) भोजन करते थे, जैसेकि आज आचार्य-सहित तू ?" "नहीं, हे गौतम !"

"ऐसे क्या वह (सारी-)वेष्टित कमनीय गात्रवाली स्त्रियोंके साथ रमते थे, जैसेकि आज आचार्य-सहित तू ?' "नहीं, हे गौतम !"

"ऐसे क्या वह कटेबालोंवाली घोड़ियोंके रथपर लम्बे डंडवाले कोड़ोंसे वाहनोंको पीटते गमन करते थे, जैसे कि० ?" "नहीं, हे गौतम !"

'ऐसे क्या वह खाँई-खोदे, परिव (=काष्ट-प्राकार) उठाये, नगर-रक्षिकाओंमें (=नगरुपकारिकासु) दीर्घ-आयु-पुरुषोंसे रक्षा करवाते थे, जैसे कि० तू ?" "नहीं, हे गौतम !"

"इस प्रकार अम्बष्ट ! न आचार्य-सहित तू ऋषि है, न ऋषित्वके मार्गपर आरूढ़ । अम्बष्ट मेरे विषयमें जो तेरा संशय=विमति हो वह प्रश्न कर, मैं उसे उत्तरसे (दूर करूँगा) ।"

यह वह भगवान् विहारसे निकल, चंक्रम (=टहलने) के स्थानपर खड़े हुये । अम्बष्ट माणवक भी विहारसे निकल चंक्रमपर खड़ा हुआ । तब अम्बष्ट माणवक भगवान्‌के पीछे पीछे टहलता भगवान्‌के शरीरमें ३२ महापुरुष-लक्षणोंको ढूँढता था । अम्बष्ट माणवकने दो को छोड़ बत्तीस महापुरुष लक्षणोंमेंसे अधिकांश भगवान्‌के शरीरमें देख लिये ।०[1] । तब अम्बष्ट माणवकको ऐसा हुआ—'श्रमण गौतम बत्तीस महापुरुष-लक्षणोंसे समन्वित, परिपूर्ण है' और भगवान्‌को बोला—"हन्त ! हे गौतम ! अब हम जायेंगे, हम बहुत कृत्यवाले, बहुत कामवाले हैं ।"

"अम्बष्ट ! जिसका तू काल समझता है ?"

तब अम्बष्ट माणवक बड़वा(=घोड़ी)-रथपर चढ़कर चला गया ।

उस समय पौष्कर-साति ब्राह्मण बड़े भारी ब्राह्मण-गणके साथ, उक्कट्ठासे निकलकर, अपने आराम(=बगीचे)में, अम्बष्ट माणवककी ही प्रतीक्षा करते बैठा था । तब अम्बष्ट माणवक जहाँ अपना आराम था वहाँ गया । जितना यान (=रथ) का रास्ता था, उतना यानसे जाकर, यानसे उतर पैदलही जहाँ पौष्करसाति ब्राह्मण था, वहाँ गया । जाकर ब्राह्मण पौष्कर-सातिको अभिवादनकर एक ओर बैठ गया । एक ओर बैठे अम्बष्ट माणवकको पौष्कर-सातिने कहा—

"क्या तात ! अम्बष्ट ! उन भगवान् गौतमको देखा ?"

"देखा भो ! हमने उन भगवान् गौतमको ।"

"क्या तात ! अम्बष्ट ! उन भगवान् गौतमका यथार्थमें शब्द फैला हुआ है, या अयथार्थमें ? क्या आप गौतम वैसेही हैं, या दूसरे (=अन्यादृश) ?"

"यथार्थहीमें भो ! उन भगवान् गौतमके लिये शब्द फैला हुआ है । आप गौतम वैसेही हैं, दूसरे नहीं । आप गौतम बत्तीस महापुरुष-लक्षणोंसे समन्वित, परिपूर्ण हैं ।"

---

१. पृष्ठ १६४ ।

" तात ! अम्बष्ट ! क्या श्रमण गौतमके साथ तुम्हारा कुछ कथा-संलाप हुआ ।"

" हुआ भो ! मेरा श्रमण गौतमके साथ कथा संलाप ।"

" तात ! अम्बष्ट ! श्रमण गौतमके साथ कैसा कथा-संलाप हुआ ?"

तब अम्बष्ट माणवकने जितना भगवान्‌के साथ कथा-संलाप हुआ था, सब पौष्करसाति ब्राह्मणको कह दिया । ऐसा कहनेपर ब्राह्मण पौष्करसातिने अम्बष्ट माणवकको कहा—

"अहो रे ! हमारा पंडितवा-पन !! अहो रे ! हमारा बहुश्रुतवा-पन !! अहो बत ! रे !! हमारा त्रैविद्यक-पना ! इस प्रकारके नीच कामसे पुरुष, काया छोड़ मरनेके बाद, अपाय= दुर्गति= विनिपात= निरय (=नर्क)में ही उत्पन्न होगा, जो अम्बष्ट ! उन आप गौतमसे इस प्रकार क्षुभित करते हुये तुमने बात की । और आप गौत हम (ब्राह्मणों) को भी ऐसे खोल खोलकर बोले । अहोवत ! रे !! हमारी पंडिताई !!!, अहोवत ! रे !! हमारी बहुश्रुताई; अहोवत ! रे !! हमारा त्रैविद्यकपन !!!..." (ऐसा कह पौष्करसातिने) कुपित, असंतुष्ट हो, अम्बष्ट माणवकको पैदल ही वहाँसे हटाया, और उसी वक्त भगवान्‌के दर्शनार्थ जानेको (तैयार) हुआ । तब उन ब्राह्मणोंने पौष्कर-साति ब्राह्मणको यह कहा—

" भो ! श्रमण गौतमके दर्शनार्थ जानेको आज बहुत विकाल है । दूसरे दिन आप पौष्कर-साति श्रमण गौतमके दर्शनार्थ जावें ।"

इस प्रकार पौष्कर-साति ब्राह्मण अपने घरमें उत्तम खाद्य भोज्य तय्यारकर, यानोंपर रखवा, मशाल (=उल्का)की रोशनीमें उक्कट्ठासे निकल, जहाँ इच्छानंगल वन-खंड था, उधर गया । जितनी यानकी भूमिथी, उतनी यानसे जाकर, यानसे उतर पैदल ही जहाँ भगवान् थे वहाँ गया । जाकर भगवान्‌के साथ...सम्मोदनकर...(कुशल-प्रश्न पूछ) एक ओर बैठ गया । एक ओर बैठे पौष्कर-साति ब्राह्मणने भगवान्‌को कहा—

" हे गौतम ! क्या हमारा अन्तेवासी अम्बष्ट माणवक यहाँ आया था ?"

" ब्राह्मण ! तेरा अन्तेवासी अम्बष्ट माणवक यहाँ आया था ।

" हे गौतम ! अम्बष्ट माणवकके साथ क्या कुछ कथा-संलाप हुआ ?"

" ब्राह्मण ! अम्बष्ट माणवकके साथ मेरा कुछ कथा-संलाप हुआ ।"

" हे गौतम ! अम्बष्ट माणवकके साथ कैसा कथा-संलाप हुआ ?"

तब भगवान्‌ने, अम्बष्टके साथ जितना कथा-संलाप हुआ था, (वह) सब पौष्कर-साति ब्राह्मणको कह दिया । ऐसा कहनेपर पौष्कर-साति ब्राह्मणने भगवान्‌को कहा—

" बालक है, हे गौतम ! अम्बष्ट माणवक । क्षमा करें, हे गौतम ! अम्बष्ट माणवकको ।"

" सुखी होवे, ब्राह्मण ! अम्बष्ट माणवक ।"

तब पौष्कर-साति ब्राह्मण भगवान्‌के शरीरमें ३२ महापुरुष-लक्षणोंको ढूंढने लगा०[१] । पौष्कर-साति ब्राह्मणको हुआ—श्रमण गौतम बत्तीस महापुरुष-लक्षणोंसे समन्वित, परिपूर्ण है, और भगवान्‌से बोला—

---

१. पृष्ठ १६४ ।

" भिक्षु-संघ-सहित आप गौतम आजका मेरा भोजन स्वीकार करें । "

भगवान्‌ने मौनसे स्वीकार किया ।

तब पौष्कर-साति ब्राह्मणने भगवान्‌की स्वीकृति जान, भगवान्‌को काल निवेदन किया— (यह भोजनका) काल है, हे गौतम ! भात तय्यार है । तब भगवान् पहिनकर पात्र-चीवर ले, जहाँ ब्रह्मण पौष्कर-सातिके परोसनेका स्थान था, वहाँ गये । जाकर बिछे आसनपर बैठ गये । तब पौष्कर-साति ब्राह्मणने भगवान्‌को अपने हाथसे उत्तम खाद्य भोज्यसे संतर्पित = संप्रवारित किया ; और माणवकोंने भिक्षु-संघको । तब पौष्कर-साति ब्राह्मण भगवान्‌के भोजन-कर, पात्रसे हाथ हटा लेनेपर, एक दूसरे नीचे आसनको ले, एक ओर बैठ गया । एक ओर बैठे हुये, पौष्कर-साति ब्राह्मणको भगवान्‌ने [१]अनुपूर्वी-कथा कही० पौष्कर-साति ब्राह्मणको उसी आसनपर विरज = विमल धर्म-चक्षु-' जो कुछ समुदय-धर्म है, वह निरोध-धर्म है '-उत्पन्न हुआ ।

तब पौष्कर-साति ब्राह्मणने दृष्ट-धर्म० हो भगवान्‌को कहा—

" आश्चर्य ! हे गौतम !! ०पुत्र-सहित भार्या-सहित, परिषद्-सहित, अमात्य-सहित, मैं भगवान् गौतमकी शरण जाता हूँ, धर्म और भिक्षु-संघकी भी । आजसे आप गौतम मुझे बद्धांजलि उपासक धारण करें । जैसे उक्कट्ठामें आप गौतम दूसरे उपासक-कुलोंमें आते हैं, वैसे ही पुष्कर-साति-कुलमें भी आवें । वहाँपर माणवक (= तरुण ब्राह्मण) या माणविका जाकर भगवान् गौतमको अभिवादन करेंगे, आसन या उदक देंगे । या (आपके प्रति) चित्तको प्रसन्न करेंगे । वह उनके लिये चिरकालतक हित-सुखके लिये होगा । "

" सुन्दर (= कल्याण) कहा ब्राह्मण ! "

चंकिसुत्त (वि. पू. ४५७)।

ऐसा मैंने सुना—एक समय महा-भिक्षुसंघके साथ भगवान् कोसलमें चारिका करते जहाँ ओपसाद नामक कोसलोंका ब्राह्मण-ग्राम था वहां पहुँचे। वहां भगवान् ओपसादसे उत्तर देववन (नामक) शाल-वनमें विहार करते थे।

उस समय चंकि ब्राह्मण, जनाकीर्ण तृण-काष्ट-उदक-धान्य-सम्पन्न राजभोग्य, राजा प्रसेनजित् कौसलद्वारा प्रदत्त, राज-दायज, ब्रह्मदेय, ओपसाद, का स्वामी हो, वास करता था।

ओपसादवासी ब्राह्मणोंने सुना—शाक्य-कुलसे प्रव्रजित शाक्य-पुत्र श्रमण गौतम कोसलमें चारिका करते, महा-भिक्षु-संघके साथ ओपसादमें पहुँचे हैं, और ओपसादमें ओपसादसे उत्तर देववन शाल-वनमें विहार करते हैं। उन भगवान् गौतमका ऐसा मंगल कीर्तिशब्द उठा हुआ है० [१]परिशुद्ध ब्रह्मचर्य प्रकाशित करते हैं, इस प्रकारके अर्हतोंका दर्शन अच्छा होता है।

तब ओपसाद-वासी ब्राह्मण गृहस्थ ओपसादसे निकलकर, झुण्डके झुण्ड उत्तर मुँहकी ओर जहां देववन शालवन था, उधर जाने लगे। उस समय चंकि ब्राह्मण, दिनके शयनके लिये प्रासादके ऊपर गया हुआ था। चंकि ब्राह्मणने देखा कि ओपसाद-वासी ब्राह्मण गृहस्थ उत्तर मुँहकी ओर० उधर जा रहे हैं। देखकर क्षत्ता (=महामात्य) को संबोधित किया—

"क्या है, हे क्षत्ता! (कि) ओप-साद-वासी ब्राह्मण गृहस्थ ०जहां देववन शाल-वन हैं, उधर जा रहे हैं।

"हे चंकि! शाक्य कुलसे प्रव्रजित शाक्य-पुत्र, श्रमण गौतम कोसलमें चारिका करते महाभिक्षु-संघके साथ० देववन शालवनमें विहार कर रहे हैं। उन भगवान् गौतमका ऐसा मंगलकीर्ति-शब्द उठा हुआ है०। उन्हीं भगवान् गौतमके दर्शनके लिये जा रहे हैं।"

"तो क्षत्ता! जहां ओपसादक ब्राह्मण गृहपति हैं, वहां जाओ। जाकर ओपसादक ब्राह्मण गृहपतियोंको ऐसा कहो—चंकि ब्राह्मण ऐसा कह रहा है—'थोड़ी देर आप सब ठहरें, चंकि ब्राह्मण भी श्रमण गौतमके दर्शनार्थ जायेगा।"

चंकि ब्राह्मणको "अच्छा भो!" कह, वह क्षत्ता जहां ओपसादक ब्राह्मण थे, वहां गया। जाकर० बोला—

"चंकि ब्राह्मण ऐसा कह रहा है—'थोड़ी देर आप सब ठहरें, चंकि ब्राह्मण भी श्रमण गौतमके दर्शनार्थ जायेगा।"

उस समय नाना देशोंके पांच सौ ब्राह्मण किसी कामसे ओपसादमें वास करते थे। उन ब्राह्मणोंने सुना कि चंकि ब्राह्मण श्रमण गौतमके दर्शनार्थ जाने वाला है। तब वह ब्राह्मण जहाँ चंकि ब्राह्मण था, वहाँ गये। जाकर चंकि ब्राह्मणको बोले—

"सचमुच आप चंकि श्रमण गौतमके दर्शनार्थ जाने वाले हैं?"

"हाँ भो! मुझे यह हो रहा है, मैं भी श्रमण गौतमके दर्शनार्थ जाऊँ।"

---

१. म. नि. २:५:५। २. पृष्ठ ३९।

" आप चंकि गौतमके दर्शनार्थ मत जायें। आपको श्रमण गौतमके दर्शनार्थ जाना उचित नहीं है। श्रमण गौतमको ही आप चंकिके दर्शनार्थ आना योग्य है। आप चंकि दोनों ओरसे सुजात (=कुलीन) हैं, मातासे भी पितासे भी; पितामह-युगलकी सात पीढियों तक, जाति-वादसे अक्षिप्त=अनू-उपक्लिष्ट (=अ-निन्दित) हैं। जो आप चंकि दोनों ओर से सुजात हैं ०; इस कारणसे भी आप चंकि श्रमण गौतमके दर्शनार्थ जाने योग्य नहीं हैं। श्रमण गौतम ही आप चंकिके दर्शनार्थ आने योग्य है। आप चंकि आढ्य, महाधनी, महाभोगवाले हैं; इस अंगसे भी०। आप चंकि० तीनों वेदोंके पारंगत०। आप चंकि अभिरूप=दर्शनीय =प्रासादिक परम-वर्ण-सुन्दरतासे युक्त, ब्रह्मवर्ण वाले, ब्रह्मवर्चस्वी, दर्शनके लिये अल्प भी अवकाश न रखने वाले०। आप चंकि शीलवान् वृद्धशीली (=वढ़ी हुई शील वाले), वृद्धशीलसे युक्त हैं०। आप चंकि कल्याण-वचन बोलनेवाले=कल्याण-वाक्करण=पौर (=नागरिक, सभ्य) वाणीसे युक्त···०। आप चंकि बहुतोंके आचार्य प्राचार्य हैं, तीन सौ माणवकोंको मंत्र पढ़ाते हैं०। आप चंकि राजा प्रसेनजित कोसलसे सत्कृत=गुरुकृत=मानित, पूजित= अपचित हैं०। आप चंकि पौष्करसाति ब्राह्मणसे० हैं०। आप चंकि० ओपसादके स्वामी हो वसते हैं। इस अंगसे भी आप चंकि श्रमण गौतमके दर्शनार्थ जाने योग्य नहीं हैं। श्रमण गौतम ही आप चंकिके दर्शनार्थ आने योग्य है।"

"तो भो! मेरी भी सुनो—(कैसे) हमी श्रमण गौतमके दर्शनार्थ जाने योग्य हैं, वह आप श्रमण गौतम हमारे दर्शनार्थ आने योग्य नहीं हैं। भो! श्रमण गौतम दोनों ओरसे सुजात हैं०; इस अंगसे भी हमी श्रमण गौतमके दर्शनार्थ जाने योग्य हैं, आप श्रमण गौतम हमारे दर्शनार्थ आने योग्य नहीं हैं। श्रमण गौतम बहुत सा भूमिस्थ और आकाशस्थ हिरण्य सुवर्ण छोड़कर, प्रव्रजित हुये हैं०। श्रमण गौतम बहुत काले केशवाले भद्रयौवनसे संयुक्त अतितरुण प्रथम वयसमें ही घरसे वेघर हो, प्रव्रजित हुये०। श्रमण गौतम माता-पिताको अनिच्छुक अश्रुमुख रोते हुये, (छोड़), शिर-दाढ़ी मुँड़ाकर, काषाय-वस्त्र पहिन, घरसे वेघर प्रव्रजित हुये०। श्रमण गौतम अभिरूप=दर्शनीय० ब्रह्मवर्चस्वी, दर्शनके लिये अल्प भी अवकाश न रखनेवाले०। श्रमण गौतम शीलवान्०। श्रमण गौतम कल्याण-वचन बोलनेवाले०। श्रमण गौतम बहुतोंके आचार्य-प्राचार्य है०। ०काम-राग-विहीन०। प्रपंच-रहित०। श्रमण गौतम कर्मवादी क्रिया-वादी ब्राह्मण-संतानके निष्पाप अग्रणी हैं०। श्रमण गौतम अदीन क्षत्रिय-कुल, उच्च-कुलसे प्रव्रजित हुये०। ०महाधनी, महाभोगवान् आढ्य-कुलसे प्रव्रजित हुये०। श्रमण गौतमको देशके बाहरसे, राष्ट्रके वाहरसे भी (लोग) पूछनेको आते हैं०। श्रमण गौतमकी अनेक सहस्र देवता (अपने) प्राणोंसे शरणागत हुये हैं०। श्रमण गौतमका ऐसा मंगल कीर्ति-शब्द उठा हुआ है० ।०। श्रमण गौतम बत्तीस महापुरुष-लक्षणोंसे युक्त हैं०। श्रमण गौतमकी राजा मागध श्रेणिक विम्बसार पुत्र-दार-सहित····ब्राह्मण पौष्कर-साति० ।०। श्रमण गौतम भो! ओपसादमें प्राप्त हुये हैं, ओपसादमें ०देववन शालवनमें विहारकर रहे हैं। जो कोई श्रमण या ब्राह्मण हमारे गांव-खेतमें आते हैं, वह अतिथि होते हैं। अतिथि सत्करणीय=गुरुकरणीय=माननीय=पूजनीय है। चूँकि भो! श्रमण गौतम ओपसादमें प्राप्त हुये०। (अतः) हमारे अतिथि हैं। श्रमण गौतम अतिथि हो हमारे सत्करणीय०। इस अंगसे भी०। इतना ही भो! मैं उन आप गौतमका गुण

कहता हूँ, लेकिन वह आप गौतम इतने ही गुणवाले नहीं हैं। वह आप गौतम अ-परिमाण-गुणवाले हैं। एक एक अंगसे भी युक्त होनेपर, आप श्रमण गौतम हमारे दर्शन करनेके लिये आने योग्य नहीं हैं, बल्कि हमीं उन आप गौतमके दर्शनार्थ जाने योग्य हैं। इसलिये हम सभी श्रमण गौतमके दर्शनार्थ चलें।"

तब चंकी ब्राह्मण महान् ब्राह्मणोंके गणके साथ जहां भगवान् थे, वहां गया। जाकर भगवान्के साथ...संमोदन कर...एक ओर बैठ गया।...उस समय भगवान् वृद्ध वृद्ध ब्राह्मणोंके साथ कुछ (बात करते) बैठे हुये थे।

उस समय कापथिक नामक तरुण, मुंडित-शिर, जन्मसे सोहलवर्षका,...तीनों वेदोंका पारंगत माणवक परिषद्में बैठा था। वह बूढ़े बूढ़े ब्राह्मणोंके भागवान्के साथ बातचीत करते समय, बीच बीचमें बोल उठता था। तब भगवान्ने कापथिक माणवकको मना किया।

"आयुष्मान् भारद्वाज! बूढ़े बूढ़े ब्राह्मणोंके बात करनेमें बात मत डालो। आयुष्मान् भारद्वाज! कथा समाप्त होने दो!"

(भगवान्के) ऐसा कहनेपर चंकि ब्राह्मणने भगवान्को कहा—

"आप गौतम कापथिक माणवकको मत रोकें; कापथिक माणवक कुल-पुत्र (=कुलीन) है०, बहुश्रुत है०, सुवक्ता०, पंडित०। कापथिक माणवक आप गौतमके साथ इस बातमें वाद कर सकता है।"

तब भगवान्को हुआ—अवश्य कापथिक माणवककी कथा त्रिवेद-प्रवचन (=वेदाध्ययन) संबंधी होगी, जिससे कि ब्राह्मण इसे आगेकर रहे हैं। उस समय कापथिक माणवकको (विचार) हुआ—'जब श्रमण गौतम मेरी आंखकी ओर आंख लायेगा, तब मैं श्रमण गौतमको प्रश्न पूछूँगा'। तब भगवान्ने (अपने) चित्तसे कापथिक माणवकके चित्त-वितर्कको जानकर, जिधर कापथिक माणवक था, उधर (अपनी) आंख फेरी। तब कापथिक माणवकको हुआ-'श्रमण गौतम मुझे देख रहा है, क्यों न मैं श्रमण गौतमको प्रश्न पूछूँ?' तब कापथिक माणवकने भगवान्से कहा—

"हे गौतम! जो यह ब्राह्मणोंका पुराना मंत्रपद (=वेद) इस परम्परासे, [1]पिटक (=वचन समूह)-सम्प्रदायसे है। उसमें ब्राह्मण पूर्णरूपसे निष्ठा (=श्रद्धा) रखते हैं—'यही सत्य है, और सब झूठा'। इस विषयमें आप गौतम क्या कहते हैं?"

"क्या भारद्वाज! ब्राह्मणोंमें एकभी ब्राह्मण है, जो कहे—मैं इसे जानता हूँ, इसे देखता हूँ, यही सच है, और झूठ है?' "नहीं, हे गौतम!"

"क्या भारद्वाज! ब्राह्मणोंका एक आचार्य भी०, एक आचार्य-प्राचार्य भी, परमाचार्यों की सात पीढ़ी तकभी०। ब्राह्मणोंके पूर्वज ऋषि, ०अट्टक, वामक०, उन्होंने भी क्या कहा—'हम इसको जानते हैं, हम इसको देखते हैं, यही सच है और झूठ है?'

१ अ. क. "(अट्टक आदि ऋषियोंने) दिव्य-चक्षुसे देखकर भगवान् काश्यप सम्यक्-संबुद्धके वचनके साथ मिलाकर, मंत्रोंको पर-हिंसा-शून्य, ग्रथित किया था। उसमें दूसरे ब्राह्मणोंने प्राणि-हिंसा आदि डालकर तीन वेद बना, बुद्ध-वचनसे विरुद्ध कर दिया।"

"नहीं, हे गौतम !"

"इस प्रकार भारद्वाज ! ब्राह्मणोंमें एकभी ब्राह्मण नहीं है, जो कहे०।०। जैसे भारद्वाज ! अंध-वेणु-परंपरा (=अंधोंकी लकड़ीका तांता) लगी हो, पहिलेवाला भी नहीं देखता, बीचका भी नहीं देखता, पिछला भी नहीं देखता। ऐसेही भारद्वाज ! ब्राह्मणोंका कथन अंध-वेणु (=अंधेकी लकड़ी) के समान है, पहिलेवालाभी नहीं देखता, बीचका भी नहीं देखता, पिछला भी नहीं देखता। तो क्या मानते हो, भारद्वाज ! क्या ऐसा होनेपर ब्राह्मणों की श्रद्धा अ-मूलक नहीं होजाती ?"

"हे गौतम ! नहीं, ब्राह्मण श्रद्धाहीकी उपासना नहीं करते, अनुश्रव (=श्रुति) की भी उपासना करते हैं।"

"पहिले भारद्वाज ! तू श्रद्धा (=निष्ठ) पर पहुँचा था, अब अनुश्रव कहता है। भारद्वाज ! यह पांच धर्म इसी जन्ममें दो प्रकारके विपाक (=फल) देनेवाले हैं। कौनसे पांच ? । (१) श्रद्धा, (२) रुचि, (३) अनुश्रव, (४) आकार-परिवितर्क, (५) दृष्टि-निध्यानाक्ष (=दिट्ठिनिज्झानक्खन्ति)। भारद्वाज ! यह पांच धर्म इसी जन्ममें दो प्रकारके विपाक देनेवाले हैं। भारद्वाज ! सुंदर-तौरसे श्रद्धा किया भी रिक्त=तुच्छ और मृषा हो सकता है, सुश्रद्धा न किया भी यथार्थ=तथ्य=अन्-अन्यथा हो सकता है। सुरुचि कियाभी०। सु-अनुश्रुत किया भी०। सु-परिवितर्क किया भी०।. सु-निध्यान किया भी० रिक्त=तुच्छ और मृषा हो सकता है। सु-निध्यान न किया भी यथार्थ=तथ्य=अनन्यथा हो सकता है। भारद्वाज ! सत्यानुरक्षक विज्ञ पुरुषको यहां एकांशसे (सोलहो आना) निष्ठा करना योग्य नहीं है, कि—'यही सत्य है, और बाकी मिथ्या है।"

"हे गौतम ! सत्यानुरक्षा (=सत्यकी रक्षा) कैसे होती है ? सत्यका अनुरक्षण कैसे किया जाता है, हम आप गौतमको सत्यानुरक्षण पूछते हैं ?"

"भारद्वाज ! पुरुषको यदि श्रद्धा होती है 'यह मेरी श्रद्धा है', कहते सत्यकी अनुरक्षा करता है। किन्तु यहां एकांशसे निष्ठा नहीं करता—'यही सत्य है और (सब) झूठा।' भारद्वाज ! यदि पुरुषको रुचि होती है। 'यह मेरी रुचि है' कहते सत्यकी अनुरक्षा करता है। किन्तु यहां एकांशसे निष्ठा नहीं करता—'यहि सत्य है, और झूठा।'

"भारद्वाज ! यदि पुरुषको अनुश्रव होता है। 'यह मेरा अनुश्रव है, कहते सत्यकी अनुरक्षा करता है। किंतु यहां एकांशसे निष्ठा नहीं करता—'यही सत्य है, और झूठा।' भारद्वाज ! यदि पुरुषको आकार-परिवितर्क होता है। 'यह मेरा आकार-वितर्क है' कहते सत्यकी अनुरक्षा करता है; किन्तु यहां एकांशसे निष्ठा नहीं करता—'यही सत्य है, और झूठ।' भारद्वाज ! यदि पुरुषको दृष्टि-निध्यायनाक्ष होता है; 'यह मेरा दृष्टि-निध्यायनाक्ष', कहते सत्यकी अनुरक्षा करता है। किंतु यहां एकांशसे निष्ठा नहीं करता 'यही सत्य है और झूठा'। इतने से भारद्वाज सत्य-अनुरक्षण होता है। इतनेसे सत्यकी अनुरक्षाकी जाती है। इतनेसे हम सत्यका अनुरक्षण (=रक्षण) प्रज्ञापित करते हैं; किंतु (इतनेसे) सत्यका अनुबोध (=बोध) नहीं होता।"

"हे गौतम ! इतनेसे सत्यानुरक्षण होता है, इतनेसे सत्यकी अनुरक्षाकी जाती है; इतनेसे सत्यका रक्षण हम भी देखते हैं । हे गौतम ! सत्यका बोध कितनेसे होता है, कितनेसे (नर) सच बूझता है । हे गौतम ! हम इसे आपसे पूछते हैं ।"

"भारद्वाज ! भिक्षु किसी ग्राम या निगमको आश्रयकर विहरता है । (कोई) गृहपति (=गृहस्थ) या गृहपति-पुत्र जाकर लोभ, द्वेष, मोह (इन) तीन धर्मोंके विषयमें उसकी परीक्षा करता है–'क्या इस आयुष्मानको वैसा लोभनीय धर्म (=बात)है, जिस प्रकारके लोभ-सम्बन्धी धर्मके कारण न जानते 'जानता हूँ' कहैं; न देखते 'देखता हूँ' कहैं । या वैसा उपदेश करें, जो दूसरोंके लिये दीर्घकाल तक अहित और दुःखके लिये हो । इन आयुष्मान्का काय-समाचार (=कायिक-आचरण) (और) वचन-समाचार (=वाचिक-आचरण) वैसा है, जैसा कि आलोभीका । (या) यह आयुष्मान् जिस धर्मका उपदेश करते हैं (क्या) वह धर्म गंभीर, दुर्दश=दुर्बोध, शांत, प्रणीत (=उत्तम), अतर्कावचर (=तर्कसे अप्राप्य) निपुण=पंडित वेदनीय है ? वह धर्म लोभी-द्वारा उपदेश करना सुगम (तो) नहीं है ?"

"जब खोजते हुये लोभ-संबंधी धर्मोंसे (उसे) विशुद्ध पाता है । तब आगे द्वेष-सम्बन्धी धर्मोंके विषयमें उसकी परीक्षा करता है–'क्या इस आयुष्मान्को वैसा द्वेष-सम्बन्धी धर्म है० ; वह धर्म, द्वेषी द्वारा उपदेश करना (तो) सुगम नहीं ?"

"जब परीक्षा करते हुये, द्वेष-सम्बन्धी धर्मोंसे उसे विशुद्ध पाता है । तब आगे मोह-संबन्धी धर्मोंके विषयमें उसको टटोलता है—'क्या इस आयुष्मान्को वैसा मोह-संबन्धी धर्म तो है०, वह धर्म०, मोही (=मूढ) द्वारा उपदेश करना सुगम (तो) नहीं ?

"जब टटोलते हुये उसे लोभनीय, द्वेषनीय, मोहनीय धर्मोंसे विशुद्ध पाता है; तब उसमें श्रद्धा स्थापित करता है । श्रद्धावान् हो पास जाता है, पास जाके परि-उपासन (=सेवन) करता है । पर्युपासना करके कान लगाता है, कान लगाके धर्म सुनता है । सुनकर धर्मको धारण करता है । धारण किये हुये धर्मोंके अर्थकी परीक्षा करता है । अर्थकी परीक्षा करके धर्म ध्यान करने लायक होते हैं । धर्मके निध्यान(=ध्यान) योग्य होनेसे स्मृति रुचि (=छन्द) उत्पन्न होती है । छन्दवाला (=रुचिवाला) उत्साह (=प्रयत्न) करता है । उत्साह करते उत्थान (=तोलन) करता है । तोलन करते पराक्रम (=पदहन) करता है । पराक्रमी हो, इसी कायामें ही परम-सत्यका साक्षात्कार (=दर्शन) करता है, प्रज्ञासे उसे वेधकर देखता है । इतनेसे भारद्वाज ! सत्य-बोध होता है, इतनेसे सच बूझता है । इतनेसे हम सत्य-अनुबोध बतलाते हैं, किन्तु (इतने हीसे) सत्य-अनुपत्ति नहीं होती ।'

"हे गौतम ! इतनेसे सत्यानुबोध होता है, इतनेसे सच बूझता है, इतनेसे हम भी सत्यानुबोध देखते हैं । परन्तु हे गौतम ! सत्य-अनुपत्ति कितनेसे होती है, कितनेसे सचको पाता है, हम आप गौतमसे सत्यानुपत्ति (=सत्य-प्राप्ति) पूछते हैं ?"

"भारद्वाज ! उन्हीं धर्मोंके सेवने, भावना करने, बढ़ानेसे सत्य-प्राप्ति होती है । इतनेसे भारद्वाज सत्य-प्राप्ति होती है, सचको पाता है, इतनेसे हम सत्य-प्राप्ति बतलाते हैं ।"

"इतनेसे हे गौतम ! सत्य-प्राप्ति होती है० हम भी इतनेसे सत्य-प्राप्ति देखते हैं ।

हे गौतम! सत्य-प्राप्तिका कौन धर्म अधिक उपकारी (=बहुकार) है, सत्य-प्राप्तिके लिये अधिक उपकारी धर्मको हम आप गौतमसे पूछते हैं।"

"भारद्वाज! सत्य-प्राप्तिका बहुकारी धर्म 'प्रधान' है। यदि प्रधान (=प्रयत्न) न करै, तो सत्यको (भी) प्राप्त न करे। चूँकि 'प्रधान' करता है, इसीलिये सचको पाता है, इसलिये सत्य-प्राप्तिके लिये बहुकारी धर्म 'प्रधान' है।"

"प्रधानके लिये हे गौतम! कौन धर्म बहुकारी है। प्रधानके बहुकारी धर्मको हम आप गौतमसे पूछते हैं?"

"भारद्वाज! प्रधानका बहुकारी उत्थान है, यदि उत्थान (=उद्योग) न करै, तो प्रधान नहीं कर सकता। चूँकि उत्थान करता है, इसलिये प्रधान करता है। इसलिये उत्थान प्रधानका बहुकारी है।"

"०।० उत्साह उत्थान(=तुलना)का बहुकारी।" "०।० छन्द उत्साहका०।" "०।० धम्म-निज्झानक्ख (=धर्म-निध्यानाक्ष) छन्दका०।" "अर्थ-उपपरीक्षा (=अर्थका परीक्षण) धर्म-निध्यानाक्षका०।" "०।० धर्म-धारणा०।" "धर्म-श्रवण०।" "०।० कान-लगाना (=श्रोत्र-अवधान) ०।" 'पर्युपासन (=सेवा) ०।" "०।० पास जाना०।" "०।० श्रद्धा०।"

"सत्य-अनुरक्षणको हमने आप गौतमसे पूछा। आप गौतमने सत्यानुरक्षण हमें बतलाया, वह हमें रुचता भी है,=खमता भी है। उससे हम सन्तुष्ट हैं। सत्य-अनुबोध (=सचको बूझना)को हमने आप गौतमसे पूछा।०। सत्य-प्राप्ति०।०। सत्य-प्राप्तिके बहुकारी धर्मको हमने आप गौतमसे पूछा। सत्य-प्राप्तिके बहुकारी धर्मको आप गौतमने बतलाया। वह हमें रुचता भी है=खमता भी है। उससे हम सन्तुष्ट हैं। जिस जिसीको हमने आप गौतमसे पूछा, उस उसीको आप गौतमने (हमें) बतलाया। और वह हमको रुचता भी है=खमता भी है। उससे हम सन्तुष्ट हैं।

"हे गौतम! पहिले हम ऐसा जानते थे, कहाँ इभ्य (=नीच), काले, ब्रह्माके पैरसे उत्पन्न (=शूद्र), मुंडक-श्रमण, और कहाँ धर्मका जानना। आप गौतमने मुझमें "श्रमण-प्रेम,=श्रमण-प्रसाद०। आजसे आप गौतम मुझे अंजलिबद्ध शरणागत उपासक धारण करें।"

(४)

चूल-दुक्ख-क्खन्ध-सुत्त (वि. पू. ४५७) ।

[१]ऐसा मैंने सुना—एक समय भगवान् शाक्य (देश) में कपिलवस्तुके न्यग्रोधाराममें विहार करते थे ।

तब महानाम शाक्य जहां भगवान् थे, वहाँ आया । आकर भगवान्को अभिवादनकर एक ओर बैठा । एक ओर बैठे महानाम शाक्यने भगवान्को कहा—

"भन्ते! दीर्घ-रात्र (=बहुत समय) से भगवान्के उपदिष्ट धर्मकोमें इस प्रकार जानता हूँ—लोभ चित्तका उपक्लेश (=मल) है, द्वेष चित्तका उपक्लेश है, मोह चित्तका उपक्लेश है। तो भी एक समय लोभ-वाले धर्म मेरे चित्तको चिपट रहते हैं । तब मुझे भन्ते! ऐसा होता है—कौन सा धर्म (=बात) मेरे भीतर (=अध्यात्म) से नहीं छूटा है, जिससे कि एक समय लोभधर्म० ?"

"महानाम! तेरा वही धर्म भीतरसे नहीं छूटा, जिससे कि एक समय लोभ-धर्म तेरे चित्तको० । महानाम! यदि वह धर्म भीतरसे छूटा हुआ होता, तो तू घरमें वास न करता, कामोपभोग न करता । चूंकि महानाम! वह धर्म तेरे भीतरसे नहीं छूटा, इसलिये तू गृहस्थ है, कामोपभोग करता है । काम (=भोग) अ-प्रसन्न करनेवाले, बहुत दुःख देनेवाले, बहुत उपायास (=परेशानी) देनेवाले हैं । इनमें आदिनव (=दुष्परिणाम) बहुत हैं । महानाम! जब आर्य-श्रावक यथार्थतः अच्छी प्रकार जानकर इसे देख लेता है । तो वह कामोंसे अकुशल (=बुरे)-धर्मोंसे, अलगहीमें प्रीति-सुख या उससे भी अधिक शांततर (सुखको) नहीं पाता, तब वह कामोंमें 'लौटने वाला' होता है । महानाम! आर्यश्रावकको जब काम (=भोग) अ-प्रसन्न करनेवाले, बहुत दुःख देनेवाले, बहुत परेशानी करनेवाले मालूम होते हैं । 'इनमें आदिनव बहुत हैं' इसे महानाम! जब आर्य-श्रावक यथार्थतः अच्छी प्रकार जानकर इसे देख लेता है; तो वह कामोंसे अलग, अ-कुशल धर्मोंसे पृथक् ही, प्रीति सुख या उससे शांततर (वस्तु) पाता है, तब वह कामोंकी ओर 'न-फिरने वाला' होता है ।

"मुझे भी महानाम! संबोधि (प्राप्त करने)से पूर्व बुद्ध न हुये, बोधिसत्त्व होनेके समय, यह अप्रसन्न करने वाले, बहुदुःखद, बहुत परेशानी करनेवाले काम (होते थे), तब 'इनमें दुष्परिणाम बहुत हैं'—यह ऐसा यथार्थतः अच्छी प्रकार जानकर मैंने देखा, किंतु कामोंसे अलग अकुशल धर्मोंसे अलग प्रीति-सुख, या उनसे शांततर (वस्तु) नहीं पासका । इसलिये मैंने उतनेसे कामोंकी ओर 'न लौटने वाला' (अपने को) नहीं जाना । जब महानाम! काम अप्रसन्नकर बहुत बहुदुःखद, बहु-आयासकर हैं; इनमें दुष्परिणाम बहुत हैं' यह ऐसा० । तो कामोंसे, अकुशलधर्मोंसे अलग ही प्रीति-सुख (तथा) उससे भी शांत-तर (वस्तु) पाई; तब मैंने (अपने को) कामोंकी ओर 'न लौटने वाला' जाना ।

"महानाम! कामोंका आस्वाद (=स्वाद) क्या है? महानाम! यह पाँच काम-गुण० । कौनसे पाँच? (१) इष्ट, कांत, रुचि, प्रिय-रूप, काम-युक्त, (चित्त को) रञ्जन करनेवाला,

---

१. म. नि. १:२:४ ।

चक्षुसे विज्ञेय (=जानने योग्य) रूप । (२) इष्ट कान्त० श्रोत्र-विज्ञेय शब्द । (३) ०घ्राण-विज्ञेय गंध । (४) ०जिह्वा-विज्ञेय रस । (५) ०काय-विज्ञेय स्पर्श । महानाम ! यह पांच काम-गुण हैं । महानाम ! इन पांच काम गुणोंके कारण जो सुख या सौमनस्य (=दिलकी खुशी) उत्पन्न होता है, यही कामोंका अस्वाद है ।

"महानाम ! कामोंका आदिनव (=दुष्परिणाम) क्या है ? महानाम ! कुल-पुत्र जिस किसी शिल्पसे—चाहे मुद्रासे, या गणनासे, या संख्यानसे, या कृषिसे, या वाणिज्यसे, गोपालनसे, या वाण-अस्त्रसे, या राजाकी नौकरी (=राज-पोरिस) से, या किसी (अन्य) शिल्पसे; शीतउष्ण-पीडित (=पुरस्कृत), डंस-मच्छर-हवा-धूप-सरीसृप(=सांप विच्छू आदि) के स्पर्शसे उत्पीड़ित होता, भूख प्याससे मरता, जीविका करता है । महानाम ! यह कामोंका दुष्परिणाम है । इसी जन्ममें (यह) दुःखोंका पुंज (=दुःख-स्कंध) काम-हेतु=काम-निदान, काम-अधिकरण (=वासस्थान, विषय) कामोंहीके कारण है । महानाम ! उस कुल-पुत्रको यदि इस प्रकार उद्योग करते=उत्थान करते, मेहनत करते, वह भोग नहीं उत्पन्न होते (तो) वह शोक करता है, दुःखी होता है, चिल्लाता है, छाती पीटकर क्रंदन करता है, मूर्छित होता है—'हाय ! मेरा प्रयत्न व्यर्थ हुआ, मेरी मेहनत निष्फल हुई !!' महानाम ! यह भी कामोंका दुष्परिणाम०, इसी जन्ममें दुःख-स्कंध० । यदि महानाम ! उस कुलपुत्रको इस प्रकार उद्योग करते० वह भोग उत्पन्न होते हैं । तो वह उन भोगोंकी रक्षाके विषयमें दुःख=दौर्मनस्य झेलता है—कहीं मेरे भोगको राजा न हर लेजायें, चोर न हर लेजायें, आग न डाहे, पानी न बहाये, अ-प्रिय-दायाद न लेजांये । उसके इस प्रकार रक्षा-गोपन करते उन भोगोंको राजा लेजाते हैं०; वह शोक करता है०—'जोभी मेरा था, वह भी मेरा नहीं है' । महानाम ! यह भी कामोंका दुष्परिणाम० ।

"और फिर महानाम ! कामोंके हेतु=कामनिदान, कामोंके झगड़े (=अधिकरण) से कामोंके लिये, राजा भी राजाओंसे झगड़ते हैं, क्षत्रिय लोग क्षत्रियोंसे०, ब्राह्मण ब्राह्मणोंसे०, गृहपति (=वैश्य) गृह पतियोंसे०, माता पुत्रके साथ०, पुत्रभी माताके साथ०, पिताभी पुत्रके साथ०, पुत्रभी पिताके साथ०, भाई भाईके साथ०, भाई भगिनीके साथ०, भगिनी भाईके साथ०, मित्र मित्रके साथ झगड़ते हैं । वह वहां कलह=विग्रह=विवाद करते, एक दूसरे पर हाथोंसे भी आक्रमण करते हैं, डलों से भी०, डंडोंसे भी०, शस्त्रोंसे भी आक्रमण करते हैं । वह वहां मृत्युको प्राप्त होते हैं, या मृत्यु-समान दुःखको । महानाम ! यह भी कामोंका दुष्परिणाम० ।

"और फिर महानाम ! कामोंके हेतु० तलवार (=असिचम्म=तलवारका चमड़ा) लेकर, धनुष (=धनुष-कलाप=धनुषकी लकड़ी) चढ़ा कर, दोनों ओरसे व्यूह रचे, संग्राममें दौड़ते हैं । बाणोंके चलाये जाते में, शक्तियोंके फेंके जातेमें, तलवारोंकी चमकमें, वह बाणोंसे विद्ध होते हैं, शक्तियोंसे ताड़ित होते हैं, तलवार से शिर-च्छिन्न होते हैं । वह वहां मृत्युको प्राप्त होते हैं, या मृत्यु-समान दुःखको । यह भी महानाम ! कामोंका दुष्परिणाम० ।

"और फिर महानाम ! कामोंके हेतु०, तलवार लेकर, धनुष चढ़ाकर, भीगे-लिपे

हुये प्राकारों (=उपकारी=शहर-पनाह) को दौड़ते हैं। बाणोंके चलाये जाते में०। वह वहाँ मृत्युको प्राप्त होते हैं०। यह भी महानाम! कामोंका दुष्परिणाम०।

"और फिर महानाम! कामोंके हेतु० सेंधभी लगाते हैं, (गांव) उजाड़कर लेजाते हैं, चोरी (=एकागारिक=एक घरको घेरकर चुराना) भी करते हैं, रहजनी (=परिपन्थ) भी करते हैं, परस्त्री-गमन भी करते हैं। तब उसको राजा लोग पकड़ कर नाना प्रकारकी सजा (=कम्मकरण) कराते हैं—चाबुकसे भी पिटवाते हैं, बेंतसे भी०, जुर्माना भी करते हैं, हाथभी काटते हैं, पैरभी काटते हैं, हाथ-पैरभी काटते हैं, कानभी०, नाकभी०, कान-नाकभी०, बिलंग-थालिक भी करते हैं, शंख-मूर्धिका भी०, राहुमुख भी०, ज्योतिमालिका भी०, हस्त-प्रज्योतिका भी०, एरक-वर्तिका भी०, चीरक-वासिका भी०, ऐणेयक भी०, बडिश-मांसिका भ०, कार्षापणक भी०, खारापतच्छिक भी०, परिघ-परिवर्तिक भी०, पलाल-पीठक भी०, तपाये तेलसे भी नहलाते हैं, कुत्तोंसे भी कटवाते हैं, जीतेजी शूलीपर चढ़वाते हैं, तलवारसे शीश कटवाते हैं। वह वहाँ मरणको प्राप्त होते हैं, मरण-समान दुःखकों भी। यह भी महानाम! कामों का दुष्परिणाम०।

"और फिर महानाम! कामके हेतु० कायासे दुश्चरित (=पाप) करते हैं, वचनसे०, मनसे० वह काय०-वचन०-मनसे दुश्चरित करके, शरीर छोड़नेपर मरनेके बाद, अपाय=दुर्गति=विनिपात, निरय (नर्क)में उत्पन्न होते हैं। महानाम! जन्मान्तरमें यह कामोंका दुष्परिणाम दुःख-पुंज काम-हेतु=काम-निदान, कामोंका झगड़ा कामों हीके लिये होता है।

एक समय महानाम! मैं राजगृहमें गृध्रकूट पर्वतपर विहार करता था। उस समय बहुतसे निगंठ (=जैन-साधु) ऋषिगिरिकी कालशिलापर खड़े रहने (की व्रत) ले, आसन छोड़, उपक्रम करते, दुःख, कटु, तीव्र, वेदना झेल रहे थे। तब मैं महानाम! सायंकाल ध्यानसे उठकर, जहाँ ऋषिगिरिके पास कालशिला थी, जहाँपर कि वह निगंठ थे; वहाँ गया। जाकर उन निगंठोंको बोला—'क्यों आवुसो! निगंठो! तुम खड़े, आसन छोड़े···दुःख, कटुक, तीव्र वेदना झेल रहे हो?' ऐसा कहनेपर उन निगंठोंने कहा—'आवुस! निगंठ नाथपुत्त (=जैनतीर्थंकर महावीर) सर्वज्ञ=सर्वदर्शी, आप अखिल (=अपरिशेष) ज्ञान=दर्शनको जानते हैं—'चलते, खड़े, सोते, जागते, सदा निरंतर (उनको) ज्ञान=दर्शन उपस्थित रहता है'। वह ऐसा कहते हैं—निगंठो! जो तुम्हारा पहिलेका किया हुआ कर्म है, उसे इस कड़वी दुष्कर-क्रिया (=तपस्या)से नाश करो, और जो इस वक्त यहाँ काय-वचन-मनसे संवृत (=पाप न करनेके कारण रक्षित, गुप्त) हो, यह भविष्यके लिये पापका न करना हुआ। इस प्रकार पुराने कर्मोंका तपस्यासे अन्त होनेसे, और नये कर्मोंके न करनेसे, भविष्यमें चित्त अन्-आस्रव (=निर्मल) होंगे। भविष्यमें आस्रव न होनेसे, कर्मका क्षय (होगा), कर्म-क्षयसे दुःखका क्षय; दुःख-क्षयसे वेदना (=झेलना)का क्षय, वेदना-क्षयसे सभी दुःख नष्ट होंगे। हमें यह (विचार) रुचता है=खमता है, इससे हम संतुष्ट हैं।'

"ऐसा कहनेपर मैंने महानाम! उन निगंठोंको कहा—'क्या तुम आवुसो! निगंठो! जानते हो 'हम पहिले थे ही, हम नहीं न थे?' 'नहीं आवुस!' 'क्या तुम आवुसो! निगंठो! जानते हो—हमने पूर्वमें पापकर्म किये ही हैं, नहीं नहीं किये?' 'नहीं आवुस!' 'क्या तुम आवुसो! निगंठो! यह जानते हो—अमुक अमुक पाप कर्म किया है'। 'नहीं

आवुस !' 'क्या तुम आवुसो ! निगंठो ! जानते हो, इतना दुःख नाश होगया, इतना दुःख नाश करना है, इतना दुःखनाश होनेपर सब दुःख नाश हो जायेगा ?' 'नहीं आवुस !' 'क्या तुम आवुसो ! निगंठो ! जानते हो—इसी जन्ममें अकुशल (=बुरे) धर्मोंका प्रहाण (=विनाश), और कुशल (=अच्छे) धर्मोंका लाभ (होना है) ?' 'नहीं आवुस !' 'इस प्रकार ०निगंठो ! तुम नहीं जानते—हम पहिले थे, या नहीं० । इसी जन्ममें अकुशल धर्मोंका प्रहाण, और कुशल धर्मोंका लाभ (होना है) । ऐसा ही होनेसे तो आवुस ! निगंठो ! जो लोकमें रुद्र (=भयंकर) खून-रँगे-हाथवाले, क्रूर-कर्मा, मनुष्योंमें नीच जातिवाले (=पछा जाता) हैं, वह निगंठोंमें साधु बनते हैं ।' 'आवुस ! गौतम ! सुखसे सुख प्राप्य नहीं है, दुःखसे सुख प्राप्य है । आवुस ! गौतम ! यदि सुखसे सुख प्राप्य होता, तो राजा मागध श्रेणिक बिंबसार सुख पाता । राजा मागध श्रेणिक बिंबसार आयुष्मान् (=आप)के साथ बहुत सुख-विहारी है ।' 'आयुष्मान निगंठोंने अवश्य, बिना विचारे जल्दीमें यह बात कही ।' 'आवुस ! गौतम ! सुखसे सुख नहीं प्राप्य है, दुःखसे सुख प्राप्य है । सुखसे यदि आवुस ! गौतम ! सुख प्राप्त होता, तो राजा मागध श्रेणिक बिंबसार सुख प्राप्त करता ; राजा मागध श्रेणिक बिंबसार आयुष्मान् गौतमके साथ बहुत सुख-विहारी है ।' 'तो मुझे ही पूछना चाहिये—आयुष्मानोंके लिये कौन अधिक सुख-विहारी है, राजा० बिंबसार या आयुष्मान् गौतम ?' 'अवश्य आवुस ! गौतम ! हमने बिना विचारे जल्दीमें बात कही । नहीं आवुस ! गौतम ! सुखसे सुख प्राप्य है० । जाने दीजिये इसे, अब हम आयुष्मान् गौतमको पूछते हैं—आयुष्मानोंके लिये कौन अधिक सुख-विहारी है, राजा० बिंबसार या आयुष्मान् गौतम ?' 'तो आवुसो ! निगंठो ! तुमको ही पूछते हैं, जैसा तुम्हें जँचे, वैसा उत्तर दो ।' तो क्या मानते हो आवुसो ! निगंठो ! क्या राजा० बिंबसार कायासे बिना हिले, वचनसे बिना बोले, सात रात-दिन केवल (=एकांत) सुख अनुभव करते विहार कर सकता है ?' 'नहीं आवुस !' 'तो क्या मानते हो, आवुस ! निगंठो ! ० छः रात-दिन केवल सुख अनुभव करते विहारकर सकता है ?' 'नहीं आवुस !' '०पांच रात-दिन०' '०चार रात-दि० ।' '०तीन रात-दिन० ।' '०दो रात-दिन० ।' '०एक रात-दिन० ।' 'नहीं आवुस !' 'आवुसो ! निगंठो ! मैं कायासे बिना हिले, वचनसे बिना बोले एक रात-दिन०, दो रात-दिन०, तीन रात-दिन०, चार०, पांच०, छः०, सात रात-दिन केवल-सुख अनुभव करता विहार-कर सकता हूँ, तो क्या मानते हो आवुसो ! निगंठो ! ऐसा होनेपर कौन अधिक सुख-विहारी है, राजा मागध श्रेणिक बिंबसार, या मैं ?' 'ऐसा होनेपर तो राजा मागध श्रेणिक बिंबसारसे आयुष्मान् गौतम ही अधिक सुख-विहारी हैं ।"

भगवान्‌ने, यह कहा—महानाम शाक्यने सन्तुष्ट हो भगवान्‌के भाषणका अभिनन्दन किया ।

---

(९)

कुटदन्त-सुत्त (वि. पू. ४५७) ।

[1]ऐसा मैंने सुना—एक समय पांच सौ भिक्षुओंके महा-भिक्षु-संघके साथ भगवान् ! मगध-देशमें चारिका करते, जहाँ खाणुमत नामक मगधोंका ब्राह्मण-ग्राम था, वहां गये । वहाँ भगवान् खाणुमतमें अम्बलट्ठिका (=आम्रयष्टिका) में विहार करते थे ।

उस समय कुटदंत ब्राह्मण, जनाकीर्ण, तृण-काष्ठ-उदक-धान्य-संपन्न राज-भोग्य राजा मागध श्रेणिक बिंबसार-द्वारा दत्त, राज-दाय, ब्रह्मदेय खाणुमतका स्वामी होकर रहता था । उस समय कुटदन्त ब्राह्मणको महायज्ञ उपस्थित हुआ था । सात सौ बैल, सात सौ बछड़े, सात सौ बछड़ियां, सात सौ बकरियां, सात सौ भेड़ें यज्ञके लिये स्थूण (=खम्भे) पर लाई गई थीं ।

खाणुमत-वासी ब्राह्मण गृहपतियोंने सुना—शाक्य कुलसे प्रव्रजित शाक्य-पुत्र श्रमण गौतम० अम्बलट्ठिकामें विहार करते हैं । उन आप गौतमका ऐसा मंगलकीर्ति-शब्द उठा हुआ[2]० । इस प्रकारके अर्हतोंका दर्शन अच्छा होता है । तब खाणुमतके ब्राह्मण गृहपति खाणु-मतसे निकलकर, झुण्डके झुण्ड जिधर अम्बलट्ठिका थी, उधर जाने लगे । उस समय कुटदंत ब्राह्मण प्रासादके ऊपर, दिनके शयनके लिये गया हुआ था । कुटदन्त ब्राह्मणने झुण्डके झुण्ड खाणुमतके ब्राह्मण गृहस्थोंको खाणुमतसे निकलकर, जिधर अम्बलट्ठिका थी, उधर जाते देखा । देखकर क्षत्ता (=महामात्य) को संबोधित किया—

" क्या है, हे क्षत्ता ! (जो) ०खाणुमतके ब्राह्मण-गृहस्थ० अम्बलट्ठिका ०, जा रहे हैं ?"

"भो ! शाक्यकुल-प्रव्रजित० श्रमण गौतम० अम्बलट्ठिकामें विहार कररहे हैं । उन गौतमका ऐसा मंगल कीर्तिशब्द उठा हुआ है० । उन्ही आप गौतमके दर्शनार्थ जारहे हैं ।"

तब कुट-दन्त ब्राह्मणको हुआ—' मैंने यह सुना है, कि श्रमण गौतम सोलह परिष्कारों-वाली त्रिविध यज्ञ-संपदाको जानता है । मैं महायज्ञ यजन करना चाहता हूँ । क्यों न श्रमण गौतमके पास चलकर, सोलह परिष्कारोंवाली त्रिविध यज्ञ-संपदाको पूछूँ ?' तब कुटदंत ब्राह्मणने क्षत्ताको संबोधित किया=

" तो हे क्षत्ता ! जहाँ खाणुमतके ब्राह्मण गृहपति हैं, वहाँ जाओ । जाकर खाणुमतके ब्राह्मण गृहपतियोंको ऐसा कहो—कुटदन्त ब्राह्मण ऐसा कह रहा है 'थोड़ी देर आप सब ठहरें, कुटदन्त ब्राह्मण भी श्रमण गौतमके दर्शनार्थ जायेगा ।"

" कुटदन्त ब्राह्मणको 'अच्छा भो !' कह क्षत्ता वहाँ गया, जहाँ खाणुमतके ब्राह्मण गृह-पति थे । जाकर० यह कहा—'कुटदन्त०' ।

उस समय कई सौ ब्राह्मण कुटदन्तके महायज्ञको भोगनेके लिये खाणुमतमें वास करते थे । उन ब्रह्मणोंने सुना—कुटदन्त ब्राह्मण श्रमण गौतमके दर्शनार्थ जायेगा । तब वह ब्राह्मण जहाँ कुटदन्त था वहाँ गये । जाकर कुटदन्त ब्राह्मणको बोले—

---

१. दी. नि. १:५ । २. पृष्ठ ३५ ।

"सचमुच आप कुटदन्त श्रमण गौतमके दर्शनार्थ जानेवाले हैं ?"

"हाँ भो! मुझे यह (विचार) हो रहा है (कि) मैं भी श्रमण गौतमके दर्शनार्थ जाऊँ।"

"आप कुटदन्त श्रमण गौतमके दर्शनार्थ मत जायें। आप कुटदन्त श्रमण गौतमके दर्शनार्थ जाने योग्य नहीं हैं। यदि आप कुटदन्त श्रमण गौतमके दर्शनार्थ जायँगे, (तो) आप कुटदन्तका यश क्षीण होगा, श्रमण गौतमका यश बढ़ेगा। क्योंकि आप कुटदन्तका यश क्षीण होगा, श्रमण गौतमका यश बढ़ेगा, इस बात (=अंग) से भी आप कुटदन्त श्रमण गौतमके दर्शनार्थ जाने योग्य नहीं हैं। श्रमण गौतम ही आप कुटदंतके दर्शनार्थ आने योग्य है०[1]। आप कुटदन्त बहुतोंके आचार्य-प्राचार्य हैं, तीन सौ माणवकोंको मंत्र (=वेद) पढ़ाते हैं। नाना दिशाओंसे, नाना देशोंसे बहुतसे माणवक मंत्रके लिये, मंत्र-पढ़नेके लिये, आप कुटदंतके पास आते हैं०। आप कुटदन्त जीर्ण=वृद्ध=महल्लक=अध्वगत=वयः प्राप्त हैं। श्रमण गौतम तरुण है, तरुण साधु है०। आप कुटदंत राजा मागध श्रेणिक बिंबसारसे सत्कृत=गुरुकृत=मानित=पूजित=अपचित हैं०। आप कुटदंत ब्राह्मण पौष्करसातिसे सत्कृत० हैं०। आप कुटदंत ०खाणुमतके स्वामी हैं। इस अंगसे भी आप कुटदन्त श्रमण गौतमके दर्शनार्थ जाने योग्य नहीं हैं, श्रमण गौतम ही आपके दर्शनार्थ आने योग्य है।"

ऐसा कहनेपर कुटन्त ब्राह्मणने, उन ब्राह्मणोंको यह कहा—

"तो भो! मेरी भी सुनो, जैसे हमीं श्रमण गौतमके दर्शनार्थ जाने योग्य हैं, आप श्रमण गौतम हमारे दर्शनार्थ आने योग्य नहीं है। श्रमण गौतम भो! दोनों ओरसे सुजात हैं०; इस अंगसे भी हमीं श्रमण गौतमके दर्शनार्थ जाने योग्य हैं, आप श्रमण गौतम हमारे दर्शनार्थ आने योग्य नहीं हैं। श्रमण गौतम बड़े भारी जाति-संघको छोड़कर प्रव्रजित हुये हैं०[1]। श्रमण गौतम शीलवान् आर्यशील-युक्त कुशल-शीली=अच्छे शीलसे युक्त०। श्रमण गौतम सुवक्ता=कल्याण-वाक्करण०। श्रमण गौतम बहुतोंके आचार्य-प्राचार्य०। ०काम-राग-रहित, चपलता-रहित०। ०कर्मवादी क्रियावादी०। ब्राह्मण संतानके निष्पाप अग्रणी०। ०अमिश्र उच्चकुल क्षत्रियकुलसे प्रव्रजित०। ०आढ्य महाधनी, महाभोगवान्-कुलसे प्रव्रजित०। ०दूसरे राष्ट्रों दूसरे जनपदोंसे पूछनेके लिये आते हैं०। ०अनेक सहस्र देवता प्राणोंसे शरणागत हुये०। श्रमण गौतमके लिये ऐसा मंगल-कीर्ति शब्द उठा हुआ है—कि वह भगवान्०[2]। श्रमण गौतम बत्तीस महापुरुष लक्षणोंसे युक्त हैं०। श्रमण गौतम 'आओ, स्वागत' बोलनेवाले,··· संमोदक, अब्भाकुटिक (=अकुटिलभ्रू), उत्तान-मुख, पूर्वभाषी०। ०चारों परिषदोंसे सत्कृत=गुरुकृत००। श्रमण गौतममें बहुतसे देव और मनुष्य श्रद्धावान् हैं०। श्रमण गौतम जिस ग्राम या नगरमें विहार करते हैं, उसे अ-मनुष्य (=देव, भूत आदि) नहीं सताते०। श्रमण गौतम संघी (=संघाधिपति) गणी, गणाचार्य, बड़े तीर्थंकरों (=संप्रदाय-स्थापकों) में प्रधान कहे जाते हैं०। जैसे किसी किसी श्रमण ब्राह्मणका यश, जैसे कैसे हो जाता है, उस तरह श्रमण गौतमका यश नहीं हुआ है। अनुत्तर (=अनुपम) विद्या-चरण-संपदासे श्रमण गौतमका यश उत्पन्न हुआ। श्रमण गौतमको, भो! पुत्र-सहित, भार्या-सहित, अमात्य-सहित राजा मागध श्रेणिक बिंबसार प्राणोंसे शरणागत हुआ है०। ०राजा प्रसेनजित् कोसल०। ०ब्राह्मण

१. देखो पृष्ठ २२३। २. पृष्ठ ३९।

पौष्करसाति० । श्रमण गौतम राजा० बिंबसारसे सत्कृत०० । ०राजा प्रसेनजित्०० । ०ब्राह्मण पौष्करसाति०० । श्रमण गौतम खाणुमतमें आये हैं । खाणुमतमें अम्बलट्ठिकामें विहार करते हैं । जो कोई श्रमण या ब्राह्मण हमारे गाँव-खेतमें आते हैं, वह (हमारे) अतिथि होते हैं । अतिथि हमारा सत्करणीय = गुरुकरणीय = माननीय = पूजनीय है । चूँकि भो ! श्रमण गौतम खाणुमतमें आये हैं० । श्रमण गौतम हमारे अतिथि हैं । अतिथि हमारा सत्करणीय० है । इस अंगसे भी० । भो ! मैं श्रमण गौतमके इतने ही गुण कहता हूँ । लेकिन वह आप गौतम इतने ही गुणवाले नहीं हैं ; वह आप गौतम अ-परिमाणगुणवाले हैं । "

इतना कहनेपर उन ब्राह्मणोंने कुटदन्त ब्राह्मणको कहा—

" जैसे आप कुटदन्त श्रमण गौतमका गुण कहते हैं, (तबतो) यदि वह आप गौतम यहाँसे सौ योजनपर भी हों, तो भी पाथेय बाँधकर, श्रद्धालु कुलपुत्रको दर्शनार्थ जाना चाहिये । तो भो ! हम सभी श्रमण गौतमके दर्शनार्थ चलेंगे । "

तब कुटदन्त ब्राह्मण महान् ब्राह्मण-गणके साथ, जहाँ अम्बलट्ठिका थी, जहाँ भगवान् थे, वहाँ गया । जाकर भगवान्‌के साथ संमोदन किया····। खाणुमतके ब्राह्मण गृहपतियोंमें भी कोई कोई भगवान्‌को अभिवादनकर एक ओर बैठ गये ; कोई कोई संमोदनकर···० ; ०जिधर भगवान् थे, उधर हाथ जोड़कर० ; ०चुपचाप एक ओर बैठ गये ।

एक ओर बैठे हुये कुटदन्त ब्राह्मणने भगवान्‌को कहा—

" हे गौतम ! मैंने सुना है कि—श्रमण गौतम सोलह परिष्कार-सहित त्रिविध यज्ञ-संपदाको जानते हैं । भो ! मैं सोलह परिष्कार-सहित त्रिविध यज्ञ-संपदाको नहीं जानता । मैं महायज्ञ करना चाहता हूँ । अच्छा हो यदि आप गौतम, सोलह परिष्कार-सहित त्रिविध यज्ञ-संपदा मुझे उपदेश करें । "

" तो ब्राह्मण ! सुन, अच्छी तरह मनमें कर, कहता हूँ । "

" अच्छा भो ! " कुटदन्त ब्राह्मणने भगवान्‌को कहा । भगवान् बोले—

" पूर्व-कालमें ब्राह्मण ! महाधनी, महाभोगवान्, बहुत सोना चाँदीवाला, बहुत वित्त-उपकरण (= साधन) वाला, बहुधन-धान्यवान्, भरे-कोश-कोष्ठागारवाला, महाविजित नामक राजा था । ब्राह्मण ! (उस) राजा महाविजितको एकान्तमें विचारते चित्तमें यह ख्याल उत्पन्न हुआ—' मुझे मनुष्योंके विपुल भोग मिले हैं, (मैं) महान् पृथिवी मंडलको जीतकर, शासन करता हूँ । क्यों न मैं महायज्ञ करूँ, जो कि चिरकालतक मेरे हित-सुखके लिये हो । ' तब ब्राह्मण ! राजा महाविजितने पुरोहित ब्राह्मणको बुलाकर कहा—ब्राह्मण ! यहाँ एकांत मैं बैठ विचारते, मेरे चित्तमें यह ख्याल उत्पन्न हुआ—०क्यों न मैं महायज्ञ करूँ० । ब्राह्मण ! मैं महायज्ञ करना चाहता हूँ । आप मुझे अनुशासन करें, जो चिरकाल तक मेरे हित-सुखके लिये हो । ' ऐसा कहनेपर ब्राह्मण ! पुरोहित ब्राह्मणने राजा महाविजितको कहा—' आप···· का देश सकंटक, उत्पीडा-सहित है । (राज्यमें) ग्राम-घात (= ग्रामोंकी लूट) भी दिखाई पड़ते हैं, बटमारी भी देखी जाती है । आप···ऐसे सकंटक उत्पीडा-सहित जनपदसे बलि (= कर) लेते हैं । इससे आप इस (देश)के अकृत्य-कारी हैं । शायद आप···का

(विचार) हो, दस्यु-(=दुष्ट) कीलको हम वध, बंधन, हानि, निन्दा, निर्वासनसे उखाड़ देंगे। लेकिन इस दस्यु-कील (= लूट-पाट रूपी कील)को, इस प्रकार अच्छी तरह नहीं उखाड़ा जा सकता। जो मारनेसे बच रहेंगे, वह पीछे राजाके जनपदको सतायेंगे। यह दस्युकील इस उपायसे भली प्रकार उन्मूलन होसकता है। राजन्! जो कोई आपके जनपदमें कृषि-गोपालन करनेका उत्साह रखते हैं, उनको आप बीज और भोजन सम्पादित करें। ०वाणिज्य करनेका उत्साह रखते हैं, उन्हें आप···पूँजी (=प्राभृत) दें। जो राज-पुरुषाई (=राजाकी नौकरी) करनेका उत्साह रखते हैं, उन्हें आप भत्ता-वेतन (=भत्त-वेतन) दें। (इस प्रकार) वह लोग अपने काममें लगे, राजाके जनपदको नहीं सतायेंगे। आप···को महान् (धन-धान्यकी) राशि (प्राप्त) होगी, जनपद (=देश) भी पीड़ा-रहित, कंटक-रहित क्षेम-युक्त होगा। मनुष्य भी गोदमें पुत्रोंको नचातेसे, खुले घर विहार करेंगे।' राजा महा-विजितने पुरोहित ब्राह्मणको 'अच्छा भो ब्राह्मण!' कह, जो राजाके जनपदमें कृषि-गोरक्षामें उत्साही थे, उन्हें राजाने बीज-भत्ता संपादित किया। जो राजाके जनपदमें वाणिज्यमें उत्साही थे, उन्हें पूँजी सम्पादितकी। जो राजाके जनपदमें राज-पुरुषाईमें उत्साही हुये, उनको भत्ता-वेतन ठीककर दिया। उन मनुष्योंने अपने २ काममें लग, राजाके जनपदको नहीं सताया। राजाको महाराशि मिली। जनपद अकंटक अपीडित क्षेम-स्थित होगया। मनुष्य हर्षित, मोदित, गोदमें पुत्रोंको नचातेसे खुले घर विहार करने लगे।

"ब्राह्मण! तब राजा महाविजितने पुरोहित ब्राह्मणको बुलाकर कहा—'भो! मैंने दस्यु-कील उखाड़ दिया। मेरे पास महाराशि है०। हे ब्राह्मण! मैं महायज्ञ करना चाहता हूँ। आप मुझे अनुशासन करें, जो कि चिरकाल तक मेरे हित-सुखके लिये हो'। 'तो आप!··· जो आपके जनपदमें जानपद (= ग्राम के), नैगम (= शहर-कस्बेके) अनुयुक्त क्षत्रिय हैं, आप उन्हें कहें—' मैं भो! महायज्ञ करना चाहता हूँ, आप लोग मुझे अनुज्ञा (=आज्ञा) करें, जो कि मेरे चिरकालतक हित-सुखके लिये हो'। जो आपके जनपदमें जानपद या नैगम अमात्य (=अधिकारी) पारिषद्य (= सभासद्) ०। जनपद में जानपद या नैगम ब्राह्मण महाशाल (=प्रतिष्ठित-धनी)०। ०जानपद या नैगम गृहपति (=वैश्य) नेचयिक०। राजा महा-विजितने ब्राह्मण पुरोहितको 'अच्छा भो' कहकर, जो राजाके जनपदमें० अनुयुक्त क्षत्रिय०, अमात्य पारिषद्य०,०ब्राह्मण महाशाल०, ०गृहपति नेचयिक (=धनी) थे, उन्हें राजा महाविजित ने आमंत्रित किया—'भो! मैं महायज्ञ करना चाहता हूँ, आप लोग मुझे अनुज्ञा करें, जो कि चिरकाल तक मेरे हित-सुखके लिये हो'। 'राजा! आप यज्ञ करें महाराज यह यज्ञका काल है।' यह चारों अनुमति-पक्ष उसी यज्ञके (चार) परिष्कार होते हैं।

"(वह) राजा महाविजित आठ अंगोंसे युक्त था। (१) दोनों ओरसे सुजात० (२) अभिरूप=दर्शनीय० ब्रह्मवर्णी=ब्रह्मवृद्धि, दर्शनके लिये अवकाश न रखने वाला। (३)०शील-वान्०। (४) आढ्य महाधनवान् महाभोग-वान्, बहुत चांदी सोना वाला, बहुत वित्त-उपकरण वाला, बहुत धन-धान्यवाला, परिपूर्ण कोश-कोष्ठागारवाला, (५) बलवती चतुरंगिनी सेनासे युक्त, अस्सव (=आश्रव)के लिये अववाद-प्रतिकार (=ओवाद-पतिकार)के लिये यशसे मानो शत्रुओंको तपातासा था। (६) श्रद्धालु दायक=दानपति श्रमण-ब्राह्मण दरिद्र-अर्थिक

(=संगता) बन्दीजन (=वणिब्बक) याचकोंके लिये खुले-द्वार-वाला प्याउ-सा हो, पुण्य करता था। (७) बहुश्रुत, सुने हुओं, कहे हुओं का अर्थ जानता था-'इस कथन का यह अर्थ है, इस कथनका यह अर्थ है'। (८) पंडित=व्यक्त मेधावी, भूत, भविष्य, वर्तमान संबंधी बातोंको सोचनेमें समर्थ। राजा महाविजित, इन आठ अंगोंसे युक्त (था)। यह आठ अंग उसी यज्ञके आठ परिष्कार हैं।

"पुरोहित ब्राह्मण चार अंगोंसे युक्त (था)।—(१) दोनों ओरसे सुजात०। (२) अध्यापक मंत्र-धर०। त्रिवेद-पारंगत० (३) शीलवान्०। (४) पंडित=व्यक्त मेधावी० सुजा (=दक्षिणा) ग्रहण करने वालोंमें प्रथम या द्वितीय था। पुरोहित ब्राह्मण इन चार अंगों से युक्त (था)। यह चार अंग भी उसी यज्ञके परिष्कार होते हैं।

"तब ब्राह्मण! पुरोहित ब्राह्मणने पहिले राजा महाविजितको तीन विधोंका उपदेश किया (१) यज्ञकरनेकी इच्छा वाले आप ·· को शायद कहीं अफसोस हो—'बड़ी धन-राशि चली जायेगी, सो आप राजाको यह अफसोस न करना चाहिये। (२) यज्ञ करते हुये आप राजाको शायद कहीं अफसोस हो-०चलीजा रही है०। (३) यज्ञ कर चुकने पर आप राजाको शायद कहीं अफसोस हो-'बड़ी धन-राशि चली गई, सो यह अफसोस आपको न करना चाहिये' ब्राह्मण! इस प्रकार पुरोहित ब्राह्मणने राजामहाविजितको यज्ञसे पहिले तीन विध, बतलाये।

"तब ब्राह्मण! पुरोहित ब्राह्मणने यज्ञसे पूर्वही राजा महाविजितके (हृदयसे) प्रतिग्राहकों के प्रति (उत्पन्न होनेकी सम्भावना वाले) दश प्रकारके विप्रतिसार (=चित्तको बुरा करना) हटाये-(१) आपके यज्ञमें प्राणातिपाती (=हिंसारत) भी आवेंगे, प्राणातिपात-विरत(=अ-हिंसारत) भी। जो प्राणातिपाती हैं, (उनका प्राणातिपात) उन्हींके लिये है, जो वह प्राणातिपात विरत हैं, उनके प्रति आप यजन करें, मोदन करें, आप अपने चित्तको भीतरसे प्रसन्न (=स्वच्छ) करें। (२) आपके यज्ञमें अदिन्नादायी (=चोर) भी आवेंगे, अदिन्नादान-विरत (=अ-चोर) भी। जो वहाँ चोर हैं, वह अपने लिये हैं, जो वहाँ अ-चोर हैं, उनके प्रति आप यजन करें मोदन करें, आप अपने चित्तको भीतरसे प्रसन्न करें। (३)० काम-मिथ्याचारी (=व्यभिचारी)०, अ-व्यभिचारी भी०। (५)० मृषावादी (=झूठे)०, मृषावाद-विरत भी०। (५)० पिशुन-वाची (=चुगुल-खोर)०, पिशुन-वचन-विरत भी०। (६)० परुष वाची (=कटुवचन-वाले)०, परुष-वचन-विरत भी०। (७) ० संप्रलापी (=बकवादी)०, संप्रलाप--विरत भी०। (८) ० अभिध्यालु (=लोभी)०, अभिध्या-विरत भी०। (९)०-व्यापन्न-चित्त (=द्रोही)० अ-व्यापन्न-चित्त-भी०। (१०)० मिथ्यादृष्टि (=झूठे सिद्धांत वादी)०, सम्यग्-दृष्टि (=सत्य-सिद्धांतवादी) भी। जो वहां मिथ्यादृष्टि हैं, अपनेही लिये हैं, जो वहां सम्यग्-दृष्टि हैं, उनके प्रति आप यजन करें, मोदन करें। आप अपने चित्तको भीतर से प्रसन्न करें, ब्राह्मण! पुरोहित ब्राह्मणने यज्ञसे पूर्वही राजा महाविजितके (हृदयसे) प्रतिग्राहकों (=दानलेने वालों) के प्रति (उत्पन्न होने वाले), इन दस प्रकार के विप्रतिसार (=चित-मलिनता) अलग कराये।

"तब ब्राह्मण! पुरोहित ब्राह्मणने यज्ञ करते वक्त राजा महाविजितके चित्तका सोलह-प्रकारसे सन्दर्शन=समादपन=समुत्तेजन=संप्रहर्षण किया—(१) शायद यज्ञ करतेहुये आप राजाको कोई बोलनेवाला हो—राजा महाविजित महायज्ञ कर रहा है, किंतु उसने नैगम-जानपद

अनुयुक्त-क्षत्रियों=मांडलिक या जागीरदार राजाओंको आमंत्रित नहीं किया; तो भी यज्ञ कररहा है। ऐसा भी आपको धर्मसे बोलनेवाला कोई नहीं है। आप···नैगम (=शहरी) जानपद (=दीहाती) अनुयुक्त-क्षत्रियोंको आमंत्रित कर चुके हैं। इससे भी आप इसको जानें। आप यजन करें, आप मोदन करें, आप अपने चित्तको भीतरसे प्रसन्न करें। (२) शायद० कोई बोलनेवाला हो—०नैगम जानपद अमात्यों (=अधिकारी अफसर), पार्षदों (=सभासद्) को आमंत्रित नहीं किया०। (३)०० ब्राह्मण महाशालों०। (४)०० नैचयिक गृहपतियों (=धनी, वैश्यों) को०। (५) कोई बोलनेवाला हो—राजा महाविजित यज्ञ कर रहा है, किंतु वह दोनों ओरसे सुजात नहीं है०। तो भी महायज्ञ यजन कर रहाहै। ऐसा भी आपको धर्मसे कोई बोलने वाला नहीं है। आप दोनों ओरसे सुजात हैं। इससे भी आप राजा इसको जानें। आप यजन करें, आप मोदन करें, आप अपने चित्तको भीतरसे प्रसन्न करें। (६)००अभिरूप=दर्श-नीय०।०। (७)०० शीलवान्००। (८)०० आढ्य महाभोगवान् बहुत सोना-चांदीवाले, बहुत वित्त-उपकरण-वान्, बहु-धन-धान्य-वान्, कोश-कोष्ठागार-परिपूर्ण००। (९)०० बलवती चतु-रंगिनी सेनासे०" (१०)०० श्रद्धालु दायक००। (११)०० बहुश्रुत००। (१२)०० पंडित=व्यक्त मेधावी००। (१३)०० पुरोहित दोनों ओरसे सुजात००। (१४)००पुरोहित० अध्यायक मंत्रधर००। (१५)००पुरोहित० शीलवान००। (१६) पुरोहित० पंडित=व्यक्त००। ब्राह्मण! महायज्ञ यजन करतेहुये, राजा महाविजितके चित्तको पुरोहित ब्राह्मणने-इन सोलह विधोंसे समुत्तेजित किया।

"ब्राह्मण! उस यज्ञमें गायें नहीं मारी गईं, बकरे-भेड़े नहीं मारे गये, मुर्गे सुअर नहीं मारे गये, न नाना प्रकारके प्राणी मारे गये। न [1]यूपके लिये वृक्ष काटे गये। न पर-हिंसाके लिये दर्भ काटे गये। जो भी उसके दास, प्रेष्य (=नौकर), कर्मकर थे, उन्होंने भी दंड-तर्जित, भय-तर्जित हो, अश्रुमुख, रोतेहुये सेवा नहीं की। जिन्होंने चाहा उन्होंने किया, जिन्होंने नहीं चाहा उन्होंने नहीं किया। जो चाहा उसे किया, जो नहीं चाहा उसे नहीं किया। घी, तेल, मक्खन, दही, मधु, गुड़ (=फाणित,)से ही वह यज्ञ समाप्तिको प्राप्त हुआ।

"तब ब्राह्मण! नैगम-जानपद अनुयुक्त-क्षत्रिय,०अमात्य-पार्षद,०महाशाल (=धनी) ब्राह्मण,० नैचयिक-गृहपति (=धनी वैश्य) बहुतसा धन-धान्यले, राजा महाविजितके पास जा कर, ऐसा बोले—'यह देव! बहुतसा धन-धान्य (=सापतेय्य) देवके लिये लाये हैं, इसे देव स्वीकार करें'। 'नहीं भो! मेरे पास भी यह बहुतसा सापतेय्य, धर्मसे उपार्जित है। वह तुम्हाराही रहे, यहांसे भी और लेजाओ'। राजाके इन्कार करनेपर एकओर जाकर, उन्होंने सलाह की—'यह हमारे लिये उचित नहीं, कि हम इस धन-धान्यको फिर अपने घरको लौटा लेजांय। राजा महाविजित महायज्ञ कर रहा है, हन्त! हमभी इसके अनुयागी (=पीछे पीछे यज्ञ करने-वाले) होंव।

"तब ब्राह्मण! यज्ञवाट (=यज्ञस्थान)के पूर्वओर नैगम जानपद अनुयुक्त-क्षत्रियोंने अपना दान स्थापित किया। यज्ञवाटके दक्षिण ओर० अमात्य-पार्षदोंने०। पश्चिमओर०

---

१. अ-क- "यूप नामक महा-स्तम्भ खड़ा कर—'अमुक राजा, अमुक अमात्य, अमुक ब्राह्मणने इस प्रकारके नामवाले यागको किया' नाम लिखाकर रखते हैं।"

ब्राह्मण महाशालोंने० । ०उत्तर ओर० नैचयिक-वैश्यों ने० । ब्राह्मण ! उन (अनु)-यज्ञोंमें भी गायें नहीं मारी गईं०। घी, तेल, मक्खन, दही, मधु, खाँड़से ही वह यज्ञ समाप्तिको प्राप्त हुये ।

" इस प्रकार चार अनुमति-पक्ष, आठ अंगों से युक्त राजा महाविजित, चार अंगोंसे युक्त पुरोहित ब्राह्मण, यह सोलह परिष्कार और तीन विधें हुईं । ब्राह्मण ! इसेही त्रिविध यज्ञ-संपदा और सोलह-परिष्कार कहा जाता है ।

ऐसा कहनेपर वह ब्राह्मण उन्नाद = उच्चशब्द = महाशब्द करने लगे— ' अहो यज्ञ ! अहो ! यज्ञ-सम्पदा !! ' कुटदन्त ब्राह्मण चुपचापही बैठा रहा । तब उन ब्राह्मणोंने कुटदन्त ब्राह्मणको यह कहा—

" आप कुटदन्त किसलिये श्रमण गौतमके सुभाषितको सुभाषितके तौर पर अनुमोदित नहीं करते ? "

" भो ! मैं श्रमण गौतमके सुभाषितको सुभाषितके तौर पर अन्-अनुमोदन नहीं कर रहा हूँ । शिर भी उसका फट जायगा, जो श्रमण गौतमके सुभाषितको सुभाषितके तौर पर अनुमोदन नहीं करेगा। मुझे यह (विचार) होता है, कि श्रमण गौतम यह नहीं कहते —'ऐसा मैंने सुना', या ' ऐसा हो सकता है ' । बल्कि श्रमण गौतमने- ' ऐसा तब था, इसप्रकार तब था', कहा है । तब मुझे ऐसा होता है— ' अवश्य श्रमण गौतम उस समय (या तो) यज्ञ-स्वामी राजा महविजित थे, या यज्ञके याजयिता पुरोहित ब्राह्मण थे । क्या जानते हैं, आप गौतम ! इसप्रकार के यज्ञको करके या कराके, (मनुष्य) काया छोड़ मरने के बाद सुगति स्वर्ग-लोक में उत्पन्न होता है ? '

" ब्राह्मण ! जानता हूँ इस प्रकारके यज्ञ० । मैं उस समय उस यज्ञ का याजयिता पुरोहित ब्राह्मण था "

" हे गौतम ! इस सोलह परिष्कार त्रिविध यज्ञ-संपदासे भी कम सामग्री (= अर्थ) वाला, कम क्रिया (= समारंभ)-वाला, किंतु महाफल-दायी यज्ञ है ? "

"हे ब्राह्मण ! इस० से भी० महाफलदायी । "

"हे गौतम ! वह इस० से भी० महाफलदायी यज्ञ कौन है ?"

"ब्राह्मण ! वह जो प्रत्येक कुलमें शीलवान् (= सदाचारी) प्रव्रजितोंके लिये नित्य-दान दिये जाते हैं । ब्राह्मण ! वह यज्ञ इस० से भी० महाफल-दायी है ।"

"हे गौतम ! क्या हेतु है, क्या प्रत्यय है, जो वह नित्यदान अनु-कुल-यज्ञ इस० से भी० महाफलदायी है ?"

"ब्राह्मण ! इस प्रकारके (महा) यागोंमें अर्हत् (= मुक्तपुरुष), या अर्हत्-मार्गारूढ नहीं आते । सो किस हेतु ? ब्राह्मण ! यहां दंड-प्रहार और गल-ग्रह (= गला पकड़ना) भी देखा जाता है । इसलिये इस प्रकारके यागोंमें अर्हत्० नहीं आते । जोकि वह नित्यदान० है, इस प्रकारके यज्ञमें ब्राह्मण ! अर्हत्० आते हैं । सो किस हेतु ? यहाँ ब्राह्मण ! दंड-प्रहार, गल-ग्रह नहीं देखे जाते । इसलिये इस प्रकारके यज्ञमें० । ब्राह्मण ! यह हेतु है, यह प्रत्यय है, जिससे कि नित्यदान० उस० से भी० महाफलदायी है ।"

" हे गौतम ! क्या कोई दूसरा यज्ञ, इस सोलह-परिष्कार-त्रिविध-यज्ञसे भी अधिक फलदायी, इस नित्यदान अनु-कुल-यज्ञसे भी अल्प-सामग्री-वाला अल्प-समारम्भवाला और महा फलदायी, महामाहात्म्यवाला, है ? "

" है, ब्राह्मण ! ० । "

" हे गौतम ! वह यज्ञ कौनसा है, (जो कि) इस सोलह ० ? "

" ब्राह्मण ! यह जो चारों दिशाओंके संघके लिये (=चातुद्दिसं संघं उद्दिस्स) विहार बनवाना है । यह ब्राह्मण ! यज्ञ, इस सोलह० । "

" हे गौतम ! क्या कोई दूसरा यज्ञ, इस ० त्रिविध यज्ञसे भी०, इस नित्यदान ० से भी, इस विहार-दानसे भी अल्प-सामग्रीक अल्प-क्रियावाला, और महाफलदायी महामाहात्म्यवाला है ? "

" है, ब्राह्मण ! ० । "

" हे गौतम ! कौनसा है ० ? "

" ब्राह्मण ! यह जो प्रसन्न-चित्तहो बुद्ध (=परमतत्वज्ञ)की शरण जाना है, धर्म (=परम-तत्व) की शरण जाना है, संघ (=परमतत्त्व-रक्षक-समुदाय)की शरण जाना है, ब्राह्मण ! यह यज्ञ, इस ० त्रिविध यज्ञसे भी० ० । "

" हे गौतम ! क्या कोई दूसरा यज्ञ ० ० इन शरण-गमनोंसे भी अल्प-सामग्रीक, अल्प-क्रियावान्, और महाफलदायी महा-माहात्म्यवान् है ? "

" है, ब्राह्मण ! ० । "

" हे गौतम ! कौनसा है, ० ? "

" ब्राह्मण ! वह जो प्रसन्न (=स्वच्छ)-चित्त (हो) शिक्षापद (=यम-नियम) ग्रहण करना है—(१) प्राणातिपात-विरमण (=अ-हिंसा) (२) अदिन्नादान-विरमण (=अ-चोरी), (३) काम-मिथ्याचार विरमण (=अव्यभिचार), (४) मृषावाद-विरमण, (=झूठ त्याग), (५) सुरा-मेरय-मद्य-प्रमाद-स्थान-विरमण (=नशात्याग) । यह यज्ञ ब्राह्मण ! ० ० इन शरण-गमनोंसे भी० महा-माहात्म्यवान् है ।"

" हे गौतम ! क्या कोई दूसरा यज्ञ ० ० इन शिक्षापदोंसे भी० महा-माहात्म्य-वान् है ? "

" है, ब्राह्मण ! ० । "

" हे गौतम ! कौनसा है ० ? "

" ब्राह्मण ! यहां लोकमें तथागत उत्पन्न होते हैं [१] ० । इस प्रकार ब्राह्मण शील-संपन्न होता है ० । प्रथमध्यानको प्राप्तहो विहरता है । ब्राह्मण ! यह यज्ञ पूर्वके यज्ञोंसे अल्प-साम-ग्रीक० और महामाहात्म्यवान् है ।"

" क्या है हे गौतम ! ० ० इस प्रथमध्यानसे भी० ? "

" है ० । " " कौन है ० ?"

---

१. पृष्ठ ३९ ।

"० ० द्वितीय-ध्यान ० ० ।" "तृतीय-ध्यान ० ० ।" "० ० चतुर्थ-ध्यान ० ० ।" "ज्ञान दर्शनके लिये ।चत्तको लगाता, चित्तको झुकाता है ० ० ।' "० ० ० नहीं अब दूसरा यहां केलिये है' जानता है ० ० । यह भी ब्राह्मण! यज्ञ पूर्वके यज्ञोंसे अल्प-सामग्रीक ० और ० महामाहात्म्यवान् है । ब्राह्मण! इस यज्ञ-संपदासे उत्तरितर (=उत्तम)=प्रणीततर दूसरी यज्ञ-संपदा नहीं है ।"

ऐसा कहने पर कुटदन्त ब्राह्मणने भगवान्को कहा—

"हे गौतम! आश्चर्य! हे गौतम! आश्चर्य! ० । मैं भगवान् गौतमकी शरण जाता हूँ, धर्म और भिक्षु संघकी भी । आप गौतम आजसे मुझे अंजलि-बद्ध उपासक धारण करें । हे गौतम! यह मैं सातसौ बैलों, सातसौ बछड़ों, सातसौ बछड़ियों, सातसौ बकरों, सातसौ भेड़ोंको छोड़वा देता हूं, जीवन-दान देता हूँ; (वह) हरी घासें खावें, ठंडा पानी पीवें, ठंडी हवा उनके (लिये) चलै ।"

तब भगवान्ने कुटदंत ब्राह्मणको आनुपूर्वी-कथा कही०[१] । कुटदन्त ब्रह्माणको उसी आसनपर विरज=विमल धर्म-चक्षु उत्पन्न हुआ—"जो कुछ उत्पत्ति-धर्म है, वह विनाश-धर्म है' । तब कुटदन्त ब्राह्मणने दृष्टधर्म० हो भगवान्को कहा—

"भिक्षु-संघके साथ आप गौतम मेरा कलका भोजन स्वीकार करें ।"

भगवान्ने मौनसे स्वीकार किया । तब कुटदन्त ब्राह्मण भगवान्की स्वीकृति जान, आसनसे उठकर, भगवान्को अभिवादनकर, प्रदक्षिणाकर चला गया ।

तब कुटदन्त ब्राह्मणने उस रातके बीतनेपर, यज्ञवाटमें उत्तम खाद्य-भोज्य तैयारकरा, भगवान्को काल सूचित कराया० । भगवान् पूर्वाह्न-समय पहिनकर पात्र-चीवर ले, भिक्षुसंघके साथ, जहाँ कुटदंत ब्राह्मणका यज्ञवाट था, वहाँ गये । जाकर बिछे आसनपर बैठे । कुटदंत ब्राह्मणने बुद्ध-प्रमुख भिक्षु-संघको अपनेहाथसे उत्तम खाद्य-भोज्यसे संतर्पित=संप्रवारित किया । भगवान्के भोजनकर पात्रसे हाथ हटा लेनेपर; कुटदन्त ब्राह्मण एक छोटा आसन ले, एक ओर बैठ गया । एक ओर बैठे हुये, कुटदन्त ब्राह्मणको भगवान्, धार्मिक कथासे संदर्शन-समादपन, समुत्तेजन, संप्रहर्षणकर, आसनसे उठकर चल दिये ।

सोणदंड-सुत्त। महालि-सुत्त। तेविज्ज-वच्छगोत्त-सुत्त। (वि॰ पू॰ ४५७)।

[1]ऐसा मैंने सुना—एक समय पांच सौ भिक्षुओंके महाभिक्षु-संघके साथ भगवान् [2]अंग (देश)में चारिका करते, जहां [3]चम्पा है, वहां पहुँचे। वहां चम्पामें भगवान् गग्गरा पुष्करिणीके तीरपर विहार करते थे।

उस समय सोणदंड (=स्वर्णदंड) ब्राह्मण, जनाकीर्ण, तृण-काष्ठ-उदक-धान्य-सहित राज-भोग्य राजा मागध श्रेणिक बिंबसार-द्वारा दत्त, राज-दाय, ब्रह्मदेय, चम्पाका स्वामी था।

चम्पानिवासी ब्राह्मण गृहपतियोंने सुना—शाक्यकुल-प्रव्रजित॰ श्रमण गौतम चम्पामें गग्गरा पुष्करिणीके तीर विहारकर रहे हैं। उन भगवान् गौतमका ऐसा मंगल-कीर्ति-शब्द उठा हुआ है—॰[4]। इस प्रकारके अर्हतोंका दर्शन अच्छा होता है। तब चम्पा-वासी ब्राह्मण-गृहपति चम्पासे निकलकर झुण्डके झुण्ड जिधर गग्गरा पुष्करिणी है, उधर जाने लगे। उस समय सोणदण्ड ब्राह्मण, दिनके शयनके लिये प्रासादपर गया हुआ था। सोणदंड ब्राह्मणने चम्पा-निवासी ब्राह्मण-गृहस्थोंको॰ जिधर गग्गरा पुष्करिणी है, उधर॰ जाते देखा। देखकर क्षत्ताको संबोधित किया—॰[5]॰।

उस समय चम्पामें नाना देशोंके पांच-सौ ब्राह्मण किसी कामसे वास करते थे। उन ब्राह्मणोंने सुना—सोणदण्ड ब्राह्मण श्रमण गौतमके दर्शनार्थ जायेगा। तब वह ब्राह्मण जहां सोणदण्ड ब्राह्मण था, वहां गये। जाकर सोणदण्ड ब्राह्मणको बोले—॰[5]॰।

तब सोणदंड ब्राह्मण महान् ब्राह्मण-गणके साथ, जहां गग्गरा-पुष्करिणी थी, वहां गया। तब वन-खंडकी आड़में जानेपर, सोणदंड ब्राह्मणके चित्तमें वितर्क उत्पन्न हुआ—'यदि मैं ही श्रमण गौतमको प्रश्न पूछूं, तब यदि श्रमण गौतम मुझे ऐसा कहें—ब्राह्मण! यह प्रश्न इस तरह नहीं पूछा जाना चाहिये, ब्राह्मण! इस प्रकारसे, यह प्रश्न पूछा जाना चाहिये। तब मुझे यह परिषद् तिरस्कार करेगी—अज्ञ (=बाल)=अव्यक्त है, सोणदण्ड ब्राह्मण; श्रमण गौतमसे ठीकसे (=योनिसो) प्रश्न भी नहीं पूछ सकता। जिसको यह परिषद् तिरस्कार करेगी, उसका यश भी क्षीण होगा। जिसका यश क्षीण होगा, उसके भोग भी क्षीण होंगे। यशसे ही भोग मिलते हैं। और यदि मुझे श्रमण गौतम प्रश्न पूछें, यदि मैं प्रश्नके उत्तरद्वारा उनका चित्त सन्तुष्ट न कर सकूँ। तब मुझे यदि श्रमण गौतम ऐसा कहें—ब्राह्मण! यह प्रश्न ऐसे नहीं उत्तर देना चाहिये; ब्राह्मण! यह प्रश्न इस प्रकारसे व्याकरण (=उत्तर, व्याख्यान) करना चाहिये। तो यह परिषद् मुझे तिरस्कार करेगी॰। मैं यदि इतना समीप आकर भी श्रमण गौतमको बिना देखे ही लौट जाऊँ, तो इससे भी यह परिषद् मुझे तिरस्कार करेगी—बाल=अव्यक्त है, सोणदण्ड ब्राह्मण, मानी है, भयभीत है; श्रमण गौतमके दर्शनार्थ जानेमें समर्थ नहीं हुआ। इतना समीप आकर भी श्रमण गौतमको बिना देखे ही, कैसे लौट गया। जिसको यह परिषद् तिरस्कार करेगी॰।"

---

१. दी॰ नि॰ १:४। २. विहारप्रांतमें भागलपुर मुंगेर जिलोंका, गंगाके दक्षिणका भाग। ३. चंपा-नगर (जि॰ भागलपुर, विहार)। ४. पृष्ठ ३९। ५. देखो कूटदंत-सुत्त (यज्ञकी बात छोड़कर)।

तब सोणदण्ड ब्राह्मण जहाँ भगवान् थे, वहाँ गया, जाकर भगवान्‌के साथ ०संमोदन कर० एक ओर बैठ गया । चंपा-निवासी ब्राह्मण-गृहपति भी—कोई कोई भगवान्‌को अभिवादनकर एक ओर बैठ गये, कोई कोई संमोदनकर०, कोई कोई जिधर भगवान् थे, उधर हाथ जोड़कर०, कोई कोई नामगोत्र सुनाकर०, कोई कोई चुपचाप एक ओर बैठ गये ।

वहाँ भी कुट-दन्त ब्राह्मण (चित्तमें) बहुतसा वितर्क करते हुये बैठा था—'यदि मैं ही श्रमण गौतमको प्रश्न पूछूं० । अहोवत ! यदि श्रमण गौतम (मेरी) अपनी त्रैविद्यक पंडिताई में (प्रश्न) पूछते, तो मैं प्रश्नोत्तर देकर उनके चित्तको सन्तुष्ट करता ।'

तब सोणदण्ड ब्राह्मणके चित्तके वितर्कको भगवान्‌ने (अपने) चित्तसे जानकर सोचा—यह सोणदण्ड ब्राह्मण अपने चित्तसे मारा जा रहा है । क्यों न मैं सोणदण्ड ब्राह्मणको (उसकी) अपनी त्रैविद्यक पंडिताईमें ही प्रश्न पूछूं । तब भगवान्‌ने सोणदंड ब्राह्मणको कहा—

"ब्राह्मण ! ब्राह्मण लोग कितने अंगों (=गुणों)से युक्तको ब्राह्मण कहते हैं, वह 'मैं ब्राह्मण हूं' कहते हुये सच कहता है, झूठ बोलने वाला नहीं होता ?"

तब सोणदण्ड ब्राह्मण को हुआ—'अहो ! जो मेरा इच्छित=आकांक्षित=अभिप्रेत=प्रार्थित था—अहोवत ! यदि श्रमण गौतम मेरी अपनी त्रैविद्यक पंडिताईमें प्रश्न पूछते० । सो श्रमण गौतम मुझे अपनी त्रैविद्यक पंडिताईमेंही पूछ रहे हैं । मैं अवश्य प्रश्नोत्तरसे उनके चित्तको सन्तुष्ट करूँगा । तब सोणदण्ड ब्राह्मण शरीरको उठा कर, परिषद् की ओर विलोकनकर भगवान्‌से बोला—

"हे गौतम ! ब्राह्मण लोग पांच अंगोंसे युक्तको, ब्राह्मण बतलाते हैं० । कौनसे पाँच ? (१) ब्राह्मण दोनों ओरसे सुजात हो० । (२) अध्यायक मंत्रधर० त्रिवेदपारंगत० । (३) अभिरूप=दर्शनीय० वर्णपुष्कलतासे युक्त हो । (४) शीलवान्० । (५) पंडित, मेधावी, यज्ञ-दक्षिणा (=स्रुजा) ग्रहण करनेवालोंमें प्रथम या द्वितीय हो । इन पांच अंगोंसे युक्तको० ।"

"ब्राह्मण इन पांच अंगोंमेंसे एकको छोड़ चार अंगोंसे युक्तको भी ब्राह्मण कहा जा सकता है० ?"

"कहा जा सकता है, हे गौतम ! इन पाँचों अंगोंमेंसे हे गौतम ! वर्ग (३) को छोड़ते हैं । वर्ण (=रूप) क्या करेगा, यदि भो ! ब्राह्मण दोनों ओरसे सुजात हो० । अध्यायक मंत्रधर० ०हो । शीलवान्० हो० । पंडित मेधावी० हो । इन चार अंगोंसे युक्तको, हे गौतम ! ब्राह्मण लोग ब्राह्मण कहते हैं० ।"

"ब्राह्मण ! इन चार अङ्गोंमेंसे एक अंगको छोड़, तीन अंगोंसे युक्तको भी ब्राह्मण कहा जा सकता है० ?"

'कहा जा सकता है, हे गौतम ! इन चारोंमेंसे हे गौतम ! मन्त्रों (=वेद)को छोड़ता हूँ । मंत्र क्या करेंगे, यदि भो ! ब्राह्मण दोनों ओरसे सुजात० हो । शीलवान्० हो । पंडित मेधावी० हो । इन तीन अंगोंसे युक्तको हे गौतम ! .... ब्राह्मण कहते हैं० ।'

" ब्राह्मण ! इन तीन अंगोंमेंसे एक अंगको छोड़, दो अङ्गोंसे युक्तको भी ब्राह्मण कहा जा सकता है० ?"

" कहा जा सकता है, हे गौतम ! इन तीनोंमेंसे हे गौतम ! जाति (१) को छोड़ते हैं, जाति (=जन्म) क्या करेगी, यदि भो ! ब्राह्मण शीलवान्० हो । पंडित मेधावी० हो । इन दो अङ्गोंसे युक्तको,...ब्राह्मण कहते हैं० ।'

ऐसा कहनेपर उन ब्राह्मणोंने सोणदंड ब्राह्मणको कहा—

" आप सोणदंड ! ऐसा मत कहें, आप सोणदंड ऐसा मत कहें । आप सोणदंड वर्ण (=रंग) का प्रत्याख्यान (=अपवाद) करते हैं, मंत्र (=वेद) का प्रत्याख्यान करते हैं, जाति (=जन्म) का प्रत्याख्यान करते हैं, एक अंशसे आप सोणदण्ड श्रमण गौतमकेही वादको स्वीकार कर रहे हैं । "

तब भगवान्ने उन ब्राह्मणोंको कहा —

" यदि ब्राह्मणो ! तुमको यह हो रहा है—सोणदण्ड ब्राह्मण अल्प-श्रुत है, ०अ-सुवक्ता है, ०दुष्प्रज्ञ है । सोणदण्ड ब्राह्मण इस बातमें श्रमण गौतमके साथ वाद नहीं कर सकता । तो सोणदंड ब्राह्मण ठहरे, तुम्हीं मेरे साथ बात करो । यदि ब्राह्मणो ! तुमको ऐसा होता है—सोण-दण्ड ब्राह्मण बहुश्रुत है; ०सुवक्ता है, ०पंडित है, सोणदंड ब्राह्मण इस बातमें श्रमण गौतमके साथ वाद कर सकता है, तो तुम ठहरो, सोणदंड ब्राह्मणको मेरे साथ बात करने दो ।"

ऐसा कहनेपर सोणदंड ब्राह्मणने भगवान्को कहा—

" आप गौतम ठहरें, आप गौतम मौन धारण करें, मैं ही धर्मके साथ इनका उत्तर दूंगा ।"

तब सोणदंड ब्राह्मणने उन ब्राह्मणोंको कहा—

" आप लोग ऐसा मत कहें, आप लोग ऐसा मत कहें—आप सोणदंड वर्णका प्रत्याख्यान करते हैं ० । मैं वर्ण या मन्त्र (=वेद) या जाति (=जन्म) का प्रत्याख्यान नहीं करता ।"

उस समय सोणदंड ब्राह्मणका भागिनेय अङ्गक नामका माणवक उस परिषद्में बैठा था । तब सोणदंड ब्राह्मणने उन ब्राह्मणोंको कहा—

" आप सब हमारे भागिनेय (=भांजे) अङ्गक माणवकको देखते हैं ? "

" हां, भो ! "

" भो ! (१) अङ्गक माणवक अभिरूप=दर्शनीय=प्रासादिक, परमवर्ण (=रूप-रङ्ग)-पुष्कलता से युक्त ० है । इस परिषद् में श्रमण गौतमको छोड़कर, वर्णमें इसके बराबरका (दूसरा) कोई नहीं है, (२) अङ्गक माणवक अध्यायक मंत्र-धर (=वेद-पाठी) निघंटु-कल्प-अक्षरप्रभेद-सहित तीनों वेद और पांचवें इतिहासका पारंगत है; पदक (=कवि) वैयाकरण लोकायत-महापुरुष-लक्षण-(शास्त्रों) में पूर्ण है । मैं ही इसका मन्त्रों (=वेद) का पढ़ानेवाला हूं । (३) अङ्गक माणवक दोनों ओरसे सुजात है ० । मैं इसके माता पिताको

जानता हूँ। (यदि) अङ्गक माणवक प्राणोंको भी मारे, चोरी भी करे, परस्त्रीगमन भी करे, मृपा (=झूठ) भी बोले, मद्य भी पीवे। यहां पर अब भो! वर्ण क्या करेगा? मंत्र और जाति क्या (करेगी)? जब कि ब्राह्मण (१) शीलवान् (=सदाचारी) वृद्ध-शीली (=बड़े शीलवाला), वृद्धशीलसे युक्त होता है। (२) पंडित और मेधावी होता है, सुजा (=यज्ञ-दक्षिणा)-ग्रहण करनेवालोंमें प्रथम या द्वितीय होता है। इन दोनों अङ्गोंसे युक्तको ब्राह्मण लोग ब्राह्मण कहते हैं। (वह) ' मैं ब्राह्मण हूं ' कहते, सच कहता है, झूठ बोलनेवाला नहीं होता।"

"ब्राह्मण इन दो अङ्गोंमेंसे एक अङ्गको छोड़, एक अङ्गसे युक्तको भी ब्राह्मण कहा-जा सकता है? ० "

"नहीं हे गौतम! शीलसे प्रक्षालित है प्रज्ञा (=ज्ञान)। प्रज्ञासे प्रक्षालित है शील (=आचार)। जहां शील है, वहां प्रज्ञा है; जहां प्रज्ञा है, वहां शील है। शीलवान्को प्रज्ञा (होती है), प्रज्ञावान्को शील। किन्तु शील लोकमें प्रज्ञाओंका अगुआ (=अग्र) कहा जाता है। जैसे हे गौतम! हाथसे हाथ धोवे, पैरसे पैर धोवे; ऐसे ही हे गौतम! शील-प्रक्षालित प्रज्ञा है ०।"

"यह ऐसा ही है, ब्राह्मण! शील-प्रक्षालित प्रज्ञा है, प्रज्ञा-प्रक्षालित शील है। जहां शील है, वहां प्रज्ञा; जहां प्रज्ञा है, वहां शील। शीलवान्को प्रज्ञा होती है, प्रज्ञावान्को शील। किन्तु लोकमें शील प्रज्ञाओंका सर्दार कहा जाता है। ब्राह्मण! शील क्या है? प्रज्ञा क्या है?"

"हे गौतम! इस विषय में हम इतना ही भर जानते हैं। अच्छा हो यदि आप गौतम ही ·····(इसे कहें)।"

"तो ब्राह्मण! सुनो, अच्छी तरह मनमें करो, कहता हूं।"

"अच्छा भो!" (कह) सोणदंड ब्राह्मणने भगवान्को उत्तर दिया। भगवान्ने कहा—

"ब्राह्मण! तथागत लोकमें उत्पन्न होते हैं०[१]। इस प्रकार भिक्षु शील-संपन्न होता है। यह भी ब्राह्मण वह शील है।

"०[१] प्रथमध्यान०। ० द्वितीयध्यान०। ० तृतीयध्यान०। ० चतुर्थध्यान०। ० ज्ञान-दर्शन के लिये चित्तको लगाताहै०। '०अब कुछ यहां करनेको नहीं है' यह जानताहै। यह भी उसकी प्रज्ञामें है। ब्राह्मण! यह है प्रज्ञा।"

ऐसा कहने पर सोण-दण्ड ब्राह्मणने भगवान्को यह कहा—

"आश्चर्य! हे गौतम!! आश्चर्य! हे गौतम!!०। आजसे आप गौतम मुझे अंजलि-बद्ध शरणागत उपासक धारण करें। भिक्षु-संघ सहित आप मेरा कलका भोजन स्वीकार करें।"

भगवान्ने मौनसे स्वीकार किया। तब सोण-दण्ड ब्राह्मण भगवान्की स्वीकृति जान, आसनसे उठ कर, भगवान्को अभिवादन कर प्रदक्षिणा कर चला गया। ०।

---

१. पृष्ठ १७२-७४।

तब सोण-दण्ड ब्राह्मण० भगवान्‌के भोजन कर पात्रसे हाथ हटा लेनेपर, एक छोटा आसन ले, एक ओर बैठ गया। एक ओर बैठे हुये सोण-दंड ब्राह्मणने भगवान्‌को कहा—

" यदि हे गौतम! परिषद्‌में बैठे हुये मैं आसनसे उठ कर, आप गौतमको अभिवादन करूँ, तो मुझे वह परिषद् तिरस्कृत करेगी। वह परिषद् जिसका तिरस्कार करेगी, उसका यश भी क्षीण होगा। जिसका यश क्षीण होगा, उसका भोग भी क्षीण होगा। यशसे ही तो हमारे भोग मिले हैं। मैं यदि हे गौतम! परिषद्‌में बैठे हाथ जोड़ूँ, उसे आप गौतम मेरा प्रत्युप-स्थान समझें। मैं यदि हे गौतम! परिषद्‌में बैठा साफा (=वेष्टन) हटाऊँ, उसे आप गौतम मेरा शिरसे अभिवादन समझें। मैं यदि हे गौतम! यानमें बैठा हुआ, यानसे उतर कर, आप गौतमको अभिवादन करूँ, उससे वह परिषद् मेरा तिरस्कार करेगी०। मैं यदि हे गौतम! यानमें बैठा ही पतोद-लट्ठी (=कोड़ेका डंडा) ऊपर उठाऊँ। उसे आप गौतम मेरा यानसे उतरना धारण करें। यदि मैं हे गौतम! यानमें बैठा हाथ उठाऊँ, उसे आप गौतम मेरा शिरसे अभि-वादन स्वीकार करें।"

तब भगवान् सोण-दंड ब्राह्मणको धार्मिक-कथासे० समुत्तेजित० कर, आसनसे उठ कर चल दिये।

महालि-सुत्त ।

[1] ऐसा मैंने सुना—एक समय भगवान् वैशालीमें महावनकी कूटागारशालामें विहार करते थे।

उस समय बहुतसे कोसलके ब्राह्मण-दूत, मगधके ब्राह्मण-दूत वैशालीमें किसी कामसे वास करते थे। उन कोसल-मगधके ब्राह्मण-दूतोंने सुना—शाक्यकुल-प्रव्रजित शाक्यपुत्र श्रमण-गौतम वैशालीमें महावनकी कूटागारशालामें विहार करते हैं। उन आप गौतमके लिये ऐसा मंगल कीर्ति-शब्द सुनाई पड़ता है—[2]०। इस प्रकारके अर्हतोंका दर्शन अच्छा होता है।

तब वह कोसल-मागध-ब्राह्मणदूत जहां महावनकी कूटागारशाला थी, वहां गये। उस समय आयुष्मान् नागित भगवान्‌के उपस्थाक (=हजूरी) थे। तब वह० ब्राह्मणदूत जहां आयुष्मान् नागित थे, वहां गये। जाकर आयुष्यमान् नागित से बोले।—

" हे नागित! इस वक्त आप गौतम कहां विहरते हैं? हम उन आप गौतमका दर्शन करना चाहते हैं। "

" आवुसो! भगवान्‌के दर्शनका यह समय नहीं है। भगवान् ध्यान में हैं। "

तब वह ०ब्राह्मणदूत वहीं एक ओर बैठ गये—'हम उन आप गौतमके दर्शन करकेही जावेंगे'। ओट्ठद्ध (=आधे ओठवाला) लिच्छवि भी, बड़ी भारी लिच्छवि-परिषद्‌के साथ, जहां आयुष्मान् नागित थे, वहां गया। जाकर आयुष्मान् नागितको अभिवादन कर, एक ओर खड़ा होगया। एक ओर खड़े हुये ओट्ठद्ध लिच्छविने आयुष्मान् नागितको कहा—

" भन्ते नागित! इस समय वह भगवान् अर्हत् सम्यक्-संबुद्ध कहां विहार कर रहे हैं। उन भगवान् अर्हत् सम्यक्-संबुद्धका हम दर्शन करना चाहते हैं। "

१. दी. नि. १ : ६ । २. पृष्ठ ३९ ।

" महालि ! भगवान्‌के दर्शनका यह समय नहीं है । भगवान् ध्यानमें हैं । "

ओट्ठद्ध लिच्छवि भी वहीं एक ओर बैठ गया ।—' उन भगवान् अर्हत् सम्यक्-संबुद्धका दर्शन करकेही जाऊंगा' ।

तब सिंह श्रमणोद्देश जहां आयुष्मान् नागित थे, वहाँ आया । आकर आयुष्मान् नागितको अभिवादनकर, एक ओर खड़ा होगया । ० यह कहा—

" भन्ते काश्यप ! यह बहुतसे० ब्राह्मण-दूत भगवान्‌के दर्शनके लिये यहां आये हैं । ओट्ठद्ध लिच्छवि भी महती लिच्छवि-परिषद्‌के साथ भगवान्‌के दर्शनके लिये यहां आया है । भन्ते काश्यप ! अच्छा हो, यदि यह जनता भगवान्‌का दर्शन पाये । "

" तो सिंह ! तूही जाकर भगवान्‌से कह । "

आयुष्मान् नागितको " अच्छा भन्ते ! " कह, सिंह श्रमणोद्देश जहां भगवान् थे, वहां गया । जाकर भगवान्‌को अभिवादन कर और खड़ा हो० भगवान्‌को कहा—

" भन्ते ! यह बहुतसे०, अच्छा हो यदि यह परिषद् भगवान्‌का दर्शन पाये । "

" तो सिंह ! विहारकी छायामें आसन बिछा । "

" अच्छा भन्ते ! " कह, विहारकी छायामें आसन बिछाया । तब भगवान् विहारसे निकलकर, विहारकी छायामें बिछे आसनपर बैठे ।

तब वह ०ब्राह्मण-दूत जहाँ भगवान् थे, वहाँ गये । जाकर भगवान्‌के साथ संमोदन कर···। ओट्ठद्ध लिच्छवि भी लिच्छवि-परिषद्‌के साथ, जहां भगवान् थे वहां गया । जाकर भगवान्‌को अभिवादनकर एक ओर बैठ गया । एक ओर बैठे हुये, ओट्ठद्ध लिच्छविने भगवान्‌को कहा—

" पिछले दिनों (=पुरिमानि दिवसानि पुरिमतराणि) सुनक्खत्त लिच्छविपुत्त जहां मैं था, वहाँ आया । आकर मुझे बोला—महालि ! जिसके लिये मैं भगवान्‌के पास अनू-अधिक तीन वर्ष तक रहा—प्रिय कमनीय रंजनीय० दिव्य-शब्द सुनूंगा ; किंतु प्रिय कमनीय रंजनीय दिव्य-शब्द मैंने नहीं सुना ।' भन्ते ! क्या सुनक्खत्त लिच्छवि-पुत्रने विद्यमानही ०दिव्यशब्द नहीं सुने, या अविद्यमान ?'

" महालि ! विद्यमान ही ०दिव्यशब्दोंको सुनक्खत्त०ने नहीं सुना, अ-विद्यमान नहीं । "

" भन्ते ! क्या हेतु है, क्या प्रत्यय है, जिससे कि विद्यमानही० दिव्यशब्दोंको सुनक्खत्त० ने नहीं सुना० ?"

" महालि ! भिक्षुको पूर्वदिशामें ०दिव्य रूपोंके दर्शनार्थ एकांश-समाधि भावित होती है, किन्तु ०दिव्य-शब्दोंके श्रवणार्थ नहीं ।···वह पूर्व-दिशामें० दिव्य-रूपको देखता है, किन्तु ०दिव्य-शब्दोंको नहीं सुनता । सो किस हेतु ? महालि ! पूर्व-दिशामें एकांश भावित समाधि होनेसे ०दिव्य-रूपोंके दर्शनके लिये होती है,० दिव्य शब्दोंके श्रवणके लिये नहीं । और फिर महालि ! भिक्षुको दक्षिण-दिशामें०, ०पश्चिम-दिशामें, ०उत्तर-दिशामें०, ०ऊपर०, ०नीचे०, ०तिर्छे रूपोंके दर्शनार्थ एकांश-भावित समाधि होती है० ।

" महालि ! भिक्षुको पूर्व-दिशामें० दिव्य-शब्दोंके श्रवणार्थ० । ०दक्षिण-दिशा० । ०पश्चिम-दिशा० । ०उत्तर-दिशा० ।

" महालि ! भिक्षुको पूर्व-दिशामें ०दिव्य-रूपोंके दर्शनार्थ, और दिव्य-शब्दोंके श्रवणार्थ उभयांश (=दो-तरफी) समाधि भावित होती है।···वह उभयांश समाधिके भावित होनेसे पूर्व-दिशामें ०दिव्य-रूपोंको देखता है, ०दिव्य-शब्दोंको सुनता है···। ०दक्षिण-दिशामें० । ०पश्चिम-दिशामें० ०उत्तर-दिशामें० । ०ऊपर० । ०नीचे० । ०तिर्छे०···।"

" भन्ते ! इन समाधि भावनाओंके साक्षात्कार (=अनुभव)के लियेही, भगवान्‌के पास भिक्षु ब्रह्मचर्य-पालन करते हैं ?"

" नहीं महालि ! इन्हीं०के लिये (नहीं)० । महालि ! दूसरे इनसे बढ़कर, तथा अधिक उत्तम धर्म हैं, जिनके साक्षात्कारके लिये भिक्षु मेरे पास ब्रह्मचर्य-पालन करते हैं । "

" भन्ते ! कौनसे इनसे बढ़कर तथा अधिक उत्तम धर्म हैं, जिनके० लिये० ब्रह्मचर्य-पालन करते हैं ?"

" महालि ! भिक्षु तीन संयोजनों (=बंधनों)के क्षयसे, न पतित होनेवाला, नियत, संबोधि (=परमज्ञान)की ओर जानेवाला, स्रोत-आपन्न होता है । महालि ! ०यह भी धर्म है० । और फिर महालि ! तीनों संयोजनोंके क्षय होनेपर, राग, द्वेष, मोहके निर्बल (=तनु) पड़नेपर, सकृदागामी होता है,=एक ही बार (=सकृद् एव) इस लोकमें फिर आ (=जन्म) कर, दुःखका अन्त करता (=निर्वाण-प्राप्त होता) है । ०यह भी महालि ! ०धर्म है० । और फिर महालि भिक्षु पाँचो अवर-भागीय (=ओरंभागिय=यहीं आवागमनमें रखनेवाले) संयोजनोंके क्षय होनेसे औपपातिक=वहाँ (=स्वर्गलोकमें) निर्वाण पानेवाला =(फिर यहाँ) न लौटकर आनेवाला होता है । ०यह भी महालि ! ०धर्म है० । और फिर महालि ! आस्रवों (=चित्तमलों)के क्षय होनेसे, आस्रव-रहित चित्तकी मुक्तिको ज्ञानद्वारा इसी जन्ममें स्वयं जानकर=साक्षात्कारकर=प्राप्तकर विहार करता है । ०यह भी महालि ! ०धर्म है० । यह हैं महालि ! ०अधिक उत्तम धर्म, जिनके साक्षात् करनेके लिये, भिक्षु मेरे पास ब्रह्मचर्य-पालन करते हैं । "

" क्या भन्ते ! इन धर्मोंके साक्षात् करनेके लिये मार्ग=प्रतिपद् है ? "

" है, महालि ! मार्ग=प्रतिपद्० ।

" भन्ते ! कौन मार्ग है, कौन प्रतिपद् है० । "

" यही आर्य-[1]अष्टांगिक-मार्ग, जैसे कि—(१) सम्यग्-दृष्टि, (२) सम्यग्-संकल्प, (३) सम्यग्-वचन, (४) सम्यग्-कर्मान्त, (५) सम्यग्-आजीव, (६) सम्यग्-व्यायाम, (७) सम्यग्-स्मृति (८) सम्यग्-समाधि । महालि ! यह मार्ग है, यह प्रतिपद् है; इन धर्मोंके साक्षात् करनेके लिये । "

" एक बार मैं महालि ! कौशाम्बीमें घोषितारामम‍ें विहार करता था । तब दो प्रव्रजित (=साधु)-मंडिस्स परिव्राजक, तथा दारु-पात्रिकका शिष्य जालिय—जहाँ मैं था, वहाँ आये । आकर मेरे साथ···संमोदनकर···एक ओर खड़े हो गये । एक ओर खड़े हुये उन दोनों प्रव्रजितोंने

[1] पृष्ठ १२५-१२६ ।

मुझे कहा—'आवुस ! गौतम ! क्या वही जीव है, वही शरीर है, अथवा जीव दूसरा है, शरीर दूसरा है ?' 'तो आवुसो ! सुनो, अच्छी तरह मनमें करो, कहता हूँ ।' 'अच्छा आवुस !' यह उन दोनों प्रव्रजितोंने मुझे कहा । तब मैंने कहा—'आवुसो ! लोकमें तथागत उत्पन्न होता है०[1] इस प्रकार आवुसो भिक्षु शील-सम्पन्न होता है । [1]०प्रथम-ध्यानको प्राप्त हो विहरता है । आवुसो ! जो भिक्षु ऐसा जानता=ऐसा देखता है, उसको क्या यह कहनेकी जरूरत है—'वही जीव है, वही शरीर है, या जीव दूसरा है, शरीर दूसरा है ?' आवुसो ! जो भिक्षु ऐसा जानता है, ऐसा देखता है, क्या उसको यह कहनेकी जरूरत है—वही जीव है० ? मैं आवुसो ! इसे ऐसे जानता हूँ०, तो भी मैं नहीं कहता—वही जीव है, वही शरीर है, या०' । द्वितीय ध्यानको प्राप्त हो विहरता है । ०[1]तृतीय ध्यानको प्राप्त हो विहरता है । [1]चतुर्थ-ध्यानको० प्राप्त हो विहरता है । आवुसो ! जो भिक्षु ऐसा जानता=ऐसा देखता है० । [1]ज्ञान=दर्शनके लिये चित्तको लगाता=झुकाता है० । आवुसो ! जो भिक्षु ऐसा जानता=ऐसा देखता है० । [1]०और अबयहाँ नहीं है'—जानता है । आवुसो ! जो भिक्षु ऐसा जानता=ऐसा देखता है० । क्या उसको यह कहनेकी जरूरत है—'वही जीव है, वही शरीर है, या जीव दूसरा है, शरीर दूसरा है ?' आवुसो ! जो० ऐसा देखता है, उसे यह कहनेकी जरूरत नहीं है—० । मैं आवुसो ! ऐसे जानता हूँ०, तो भी मैं नहीं कहता—'वही जीव है, वही शरीर है, अथवा जीव दूसरा है, शरीर दूसरा' ।"

भगवान्‌ने यह कहा—ओट्ठद्ध लिच्छविने सन्तुष्ट हो, भगवान्‌के भाषणको अनुमोदित किया ।

तेविज्ज वच्छगोत्त-सुत्त ।

[2]ऐसा मैंने सुना—एक समय भगवान् वैशालीमें महावनकी कूटागार-शालामें विहार करते थे ।

उस समय वच्छ-गोत्त (=वत्सगोत्र) परिव्राजक एक-पुण्डरीक परिव्राजकारामर्में वास करता था । भगवान् पूर्वाह्ण-समय पहिनकर, पात्रचीवर ले, वैशालीमें पिंड-चारके लिये प्रविष्ट हुये । तब भगवान्‌को ऐसा हुआ—अभी वैशालीमें पिंडचार करनेके लिये बहुत सवेरा है । क्यों न मैं जहाँ एक-पुण्डरीक परिव्राजकाराम है, जहाँ वच्छ-गोत्त परिव्राजक है, वहाँ चलूँ । तब भगवान्० वहाँ गये ।

वच्छ-गोत्त परिव्राजकने दूरसे ही भगवान्‌को आते देखा । देखकर भगवान्‌को बोला—

"आइये भन्ते ! भगवान् ! स्वागत भन्ते ! भगवान् ! बहुत दिन होगया भन्ते ! भगवान्‌को यहाँ आये । बैठिये भन्ते ! भगवान् !, यह आसन बिछा है ।"

भगवान् बिछे आसनपर बैठ गये । वत्स गोत्र परिव्राजक भी एक नीचा आसन लेकर, एक ओर बैठ गया । एक ओर बैठे वत्स-गोत्र परिव्राजकने भगवान्‌को कहा—

"सुना है भन्ते !—'श्रमण गौतम सर्वज्ञ=सर्वदर्शी हैं, निखिल ज्ञान-दर्शन (=ज्ञानको अनुब करने)का दावा करते हैं । चलते, खड़े, सोते, जागते (भी उनको) निरंतर सदा ज्ञान-

१. पृष्ठ १७२-१७४ । २. म. नि. १:३:१ ।

दर्शन उपस्थित रहता है'। क्या भन्ते ! (ऐसा कहनेवाले) भगवान्‌के प्रति यथार्थ कहने-वाले हैं, और भगवान्‌को असत्य=आभूतसे निन्दा (=अभ्याख्यान) तो नहीं करते ? धर्मके अनुकूल (तो) वर्णन करते हैं, ? कोई सह-धार्मिक (=धर्मानुकूल) वादका अ-ग्रहण, गर्हा (=निंदा) तो नहीं होती।"

"वत्स ! जो कोई मुझे ऐसा कहते हैं—'श्रमण गौतम सर्वज्ञ है०।' वह मेरे बारेमें यथार्थ कहनेवाले नहीं हैं। अ-सत्य (=अभूत)से मेरी निंदा करते हैं।"

"कैसे कहते हुये भन्ते ! हम भगवान्‌के यथार्थवादी होंगे, भगवान्‌को अभूत (=असत्य) से नहीं निन्दित करेंगे० ?"

"वत्स !-'श्रमण गौतम त्रैविद्य (=तीन विद्याओंका जाननेवाला) है,—ऐसा कहते हुये, मेरे बारेमें यथार्थवादी होगा०। (१) वत्स ! मैं जब चाहता हूँ, अनेक किये पूर्वनिवासों (=पूर्वजन्मों)को स्मरणकर सकता हूँ, जैसे कि—एक जाति (=जन्म)०[1]। इस प्रकार आकार (=शरीर आकृति आदि), नाम (=उद्देश)के सहित अनेक पूर्वजन्मोंको स्मरण करता हूँ। (२) वत्स ! मैं जब चाहता हूँ, अ-मानुष विशुद्ध दिव्य-चक्षुसे मरते, उत्पन्न होते, नीच-ऊँच, सुवर्ण-दुर्वर्ण, सुगत-दुर्गत० कर्मानुसार (गतिको) प्राप्त सत्त्वोंको जानता हूँ। (३) वत्स ! मैं आस्रवों (=राग-द्वेष आदि)के क्षयसे आस्रव-रहित चित्तकी विमुक्ति (=मुक्ति) प्रज्ञा द्वारा विमुक्तिको इसी जन्ममें स्वयं साक्षात्कर=प्राप्तकर विहरता हूँ।

ऐसा कहनेपर वत्स गोत्र परिव्राजकने भगवान्‌को कहा—

"हे गौतम ! क्या कोई गृहस्थ है, जो गृहस्थके संयोजनों (=बंधनों)को बिना छोड़े, कायाको छोड़ दुःखका अन्त करनेवाला (=निर्वाण प्राप्त करनेवाला) हो ?"

"नहीं वत्स ! ऐसा कोई गृहस्थ नहीं०।

"हे गौतम ! है कोई गृहस्थ, जो गृहस्थके संयोजनोंको बिना छोड़े, काया छोड़ने (=मरने) पर, स्वर्गको प्राप्त होने वाला हो ?"

"वत्स ! एक ही नहीं सौ, सौ नहीं दोसौ, ०तीनसौ, ०चारसौ, ०पांचसौ, और भी बहुतसे गृहस्थ हैं, (जो) गृहस्थके संयोजनोंको बिना छोड़े, मरनेपर स्वर्गगामी होते हैं।"

"हे गौतम ! है कोई आजीवक, जो मरनेपर दुःखका अन्त करनेवाला हो ?"

"नहीं, वत्स !०।"

"हे गौतम ! है कोई आजीवक जो मरनेपर स्वर्गगामी हो ?"

"वत्स ! यहांसे एकानवे कल्प तक मैं स्मरण करता हूँ, किसीको भी स्वर्ग जानेवाला नहीं जानता, सिवाय एकके; और वह भी कर्म-वादी=क्रियावादी था।"

"हे गौतम ! यदि ऐसा है तो यह तीर्थायतन (='पंथ') शून्य ही है, यहां तक कि स्वर्ग-गामियोंसे भी।"

"वत्स ! ऐसा होते यह 'पंथ' शून्य ही है०।

भगवान्‌ने यह कहा ! वत्स-गोत्र परिव्राजकने सन्तुष्ट हो, भगवान्‌के भाषणको अनु-मोदन किया।

---

१. पृष्ठ १७४-७५।

१५ वां वर्षावास । भरंडु-सुत्त । शाक्य-कोलिय-विवाद । महानाम-सुत्त । कीटागिरिमें । कीटागिरि-सुत्त । (वि. पू. ४५७-५६) ।

[1]पंद्रहवीं वर्षा (भगवान्ने) कपिल वस्तुमें बिताई ।...

भरंडु-सुत्त ।

[2]ऐसा मैंने सुना—एक समय भगवान् कोसलमें चारिका करते जहाँ कपिल-वस्तु था, वहाँ पहुँचे ।

महानाम शाक्यने सुना—भगवान् कपिलवस्तुमें आ पहुँचे हैं । तब महानाम शाक्य जहाँ भगवान्थे, वहाँ गया । जाकर भगवान्को अभिवादन कर, एक ओर खड़ा हो गया । एक ओर खड़े हुये, महानाम शाक्यको भगवान्ने कहा—

"जा महानाम ! कपिलवस्तुमें ऐसा स्थान देख, जहाँ हम आज एक-रात विहार करें ।"

महानाम०ने भगवान्को "भन्ते अच्छा, कह" कपिलवस्तुमें प्रवेशकर, सारे कपिलवस्तु को ढींडते हुये, ऐसा स्थान नहीं देखा, जिसमें भगवान् एक-रात विहार करते । तब महानाम शाक्य, जहाँ भगवान् थे, वहाँ गया । जाकर भगवान्से बोला—

"भन्ते ! कपिलवस्तुमें ऐसा आवसथ (=अतिथिशाला) नहीं है, जहाँ भगवान् एक-रात विहार करें । भन्ते ! यह भरंडुकालाम भगवान्का पुराना स-ब्रह्मचारी (= गुरुभाई) है, आज भगवान् एक रात उनके आश्रममें ही विहार करें ।"

"महानाम ! जा आसन (=संथार) ० बिछा ।"

"अच्छा भन्ते" ०कह महानाम, जहाँ भरंडु-कालामका आश्रम था, वहाँ गया । जाकर आसन बिछा, पैर धोनेके लिये जल रख कर, जहाँ भगवान् थे, वहाँ आया । आकर भगवान् से बोला—

"भन्ते ! आसन बिछ गया । पैर धोनेको जल रख दिया । (अब) भगवान् जो उचित समझें (करें) ।"

तब भगवान् जहाँ भरंडु-कालामका आश्रम था, वहाँ गये । जाकर बिछे आसन पर बैठ कर भगवान्ने पैर पखारा । तब महानाम शाक्यको हुआ—आज भगवान्की परि-उपासनाका समय नहीं है, भगवान् थके हुयेहैं । कलमैं भगवान्की परि-उपासना (=सत्संग) करूँगा । यह (सोच) भगवान्को अभिवादनकर, प्रदक्षिणा कर, चला गया ।

तब महानाम शाक्य उस रातके बीतने पर जहाँ भगवान् थे, वहाँ आया । आकर भगवान्को अभिवादन कर एक ओर बैठा । एक ओर बैठे महानाम शाक्यको भगवान्ने कहा—

"महानाम ! लोक में तीन प्रकारके शास्ता (=गुरु) विद्यमान...हैं । कौनसे तीन ? (१) यहाँ एक शास्ता महानाम ! कामोंकी परिज्ञा (=त्याग)का उपदेश करतेहैं, (लेकिन) रूपोंकी परिज्ञा०, वेदनाओंकी परिज्ञाको नहीं प्रज्ञापित करते । (२)० कामोंकी परिज्ञा० रूपोंकी

---

१. अ. नि. अ. क. २: ४: ९ । २. अ. नि. ३. ३. ३. ४ ।

परिज्ञाको प्रज्ञापित करते हैं, (किंतु) वेदनाओंकी परिज्ञाको नहीं०। (३) ० कामोंकी परिज्ञाको भी०, रूपोंकी परिज्ञाको भी०, वेदनाओंकी परिज्ञाकोभी प्रज्ञापन (=उपदेश) करते हैं। महानाम! लोकमें यह तीन प्रकारके शास्ता···हैं। इन तीनों शास्ताओंकी महानाम! क्या एक निष्ठा (=धारणा) है, या अलग अलग निष्ठा है?"

ऐसा कहने पर भरंडु-कालामने महानाम शाक्यको कहा—

महानाम! कह—'एक है'"

ऐसा कहने पर भगवान्‌ने महानाम शाक्यको कहा—

"महानाम! कह—'नाना है'"

दूसरी बारभी भरंडु-कालामने०। ०। ०।

तीसरी बारभी०। ०। ०। ०।

तब भरण्डु-कालामको हुआ—महेसक (=महासमर्थवान्) महानाम शाक्यके सामने श्रमण गौतमको मैंने तीनबार अ-प्रसन्न किया। (अब) मुझे कपिलवस्तुसे चला जाना चाहिये। तब भरंडु-कालाम कपिलवस्तुसे चला गया। जो वह कपिलवस्तुसे निकला, तो वैसे चलाही गया कि फिर लौटकर न आया।

शाक्य-कोलिय-विवाद।

"[1]शाक्य और कोलिय, कपिलवस्तु और कोलिय नगरके बीचकी रोहिणी नदीको एकही बाँधसे बाँधकर खेती करते थे। तब जेठ महीनेमें खेतीको सूखती देख, दोनों नगरोंके वासी कर्मकर (=मजदूर) एकत्रित हुये। वहाँ कोलिय नगर वासियोंने कहा—'यह पानी दोनों ओर लेजानेपर न तुम्हारा ही पूरा होगा, न हमारा ही। हमारी खेती एक पानीसे ही पूरी होजायेगी, यह पानी हमें लेनेदो'। दूसरोंने भी कहा—'तुम्हें कोठियाँ भरकर खड़े देख; रत्न, सुवर्ण, नीलमणि, काले-कार्षापण (=ताँबेके पैसे) लेकर पच्छि (=टोकरा) पसिब्बक (=बोरा) आदि लेकर तुम्हारे द्वारोंपर हम नहीं घूमेंगे। हमारी भी खेती एकही पानीसे होजायेगी, यह पानी हमको लेनेदो।' 'हम नहीं देंगे।' 'हम भी नहीं देंगे।' ऐसे बात बढ़ाकर, एकने उठकर एकपर हाथ छोड़ दिया। उसने भी दूसरेपर। इस प्रकार एक दूसरेको मारकर राज-कुलों (शाक्य कोलिय वंशों) की जातिको बीचमें डाल कलहको बढ़ा दिया। कोलिय कर्मकर कहते थे—

"तुम कपिलवस्तु वासियोंको हटाओ! जिन्होंने कुत्ते स्यारकी भाँति अपनी बहिनोंके साथ संवास किया; उनके हाथी, घोड़े, ढाल हथियार हमारा क्या कर सकते हैं?"

शाक्य-कर्मकर बोलते—

"तुम कोढ़ियोंके लड़कोंको हटाओ, जोकि अनाथ निःशरण चिड़ियोंकी भाँति कोल (=बैर) के वृक्षपर वास करते रहे। इनके हाथी घोड़े ढाल-हथियार हमारा क्या कर सकते हैं?"

उन्होंने जाकर इस काममें नियुक्त अमात्योंको कहा। अमात्योंने राज-कुलोंको कहा।

---

१. धम्मपद अ. क. १९:१।

तब शाक्य···(और) कोलिय युद्धके लिये तैय्यार होकर निकले। शास्ताभी सबेरेके वक्त लोकको देखते, जातिवालोंको देखकर,·········अकेलेही आकाशसे जाकर, रोहिणी नदीके बीचमें आकाशमें आसन मारकर बैठे। जातिवालों (=ज्ञातकों)ने शास्ताको देख, आयुध रखकर वन्दना की।

तब शास्ता (=बुद्ध) ने कहा।
"किस बातकी कलह है महाराजो?" "भन्ते! हम नहीं जानते।"
"तब कौन जानता है?" "सेनापति जानता है।"
सेनापति ने—"उपराज जानता है।"

इस प्रकार (एकके बाद एकको पूछते) दासों, कर्मकरोंने पूछने पर कहा—"भन्ते! पानीका झगड़ा है।"

"महाराजो! उदकका क्या मोल है?" "भन्ते! कुछ नहीं।"
"क्षत्रियोंका क्या मोल है?" "भन्ते! अनमोल।"
"तुम लोगोंको मुफ्तके पानीके लिये अनमोल क्षत्रियोंका नाश न करना चाहिये।"
वह चुप हो गये। तब शास्ताने·········यह गाथायें कहीं—
"हम वैरियोंमें अवैरी हो बहुत सुखसे जीते हैं।
वैरी मनुष्योंमें हम अवैरी हो विहरते हैं॥"

महानाम-सुत्त।

[1]ऐसा मैंने सुना—एक समय भगवान् शाक्य (देश)में कपिलवस्तुके न्यग्रोधाराम में विहार करते थे।

उस समय महानाम शाक्य बीमारीसे अभी अभी उठा था। उस समय बहुतसे भिक्षु भगवान्‌का चीवर बना रहे थे—'चीवर बनजाने पर तीन मास बाद भगवान् चारिकाके लिये जायेंगे'।····। तब महानाम शाक्य जहां भगवान् थे, वहां गया। जाकर भगवान्‌को अभिवादन कर···· एक ओर बैठ, महानाम शाक्यने भगवान्‌को कहा—

"भन्ते! सुना है—बहुतसे भिक्षु० चीवर बना रहे हैं,० भगवान् चारिका (=रामत) को जायेंगे। सो भन्ते! नाना विहारों (=ध्यान आदि)से विहरते, हमलोगोंको किस विहारसे विहरना चाहिये?"

"साधु, साधु, महानाम! तुम्हारे जैसे कुलपुत्रोंको यह योग्यही है, जो तुम तथागत के पास आकर पूछते हो—'०हमलोगोंको किस विहार०'। महानाम! आराधक (=साधक =मुमुक्षु) श्रद्धालु होवे, अश्रद्धालु नहीं,०उद्योगी (=आरद्धविरिय) होवे, अन्-उद्योगी नहीं। ०(सर्वदा) उपस्थित-स्मृतिवाला होवे, नष्ट-स्मृतिवाला नहीं। ०समाहित (=एकाग्रचित्त) होवे, अ-समा-हित नहीं। ०प्रज्ञावान् होवे, दुष्प्रज्ञ नहीं। महानाम! तुम इन पांच धर्मों में स्थित होकर; छः उत्तर-धर्मों की भावना करो।

---

१. अ. नि. ११: २: २।

" और फिर-महानाम ! तुम अपने त्याग (=दानको) स्मरण करो—मुझे लाभ है, मुझे बड़ा लाभ हुआ, जो मैं मल-मत्सर-लिप्त जनतामें मल-मत्सर विरहित चित्त हो, मुक्त-दानी, प्रयत-पाणि (=खुले हाथ)···दान-विभाजन-रत हो, गृहस्थमें वासकर रहा हूँ । जिस समय महानाम !···

" महानाम ! तुम तथागतका स्मरण करो—' ऐसे वह भगवान् अर्हत सम्यक्संबुद्ध, विद्याचरण-सम्पन्न, सुगत, लोकविद्, अनुपम पुरुष-दम्य-सारथी, देव-मनुष्योंके शास्ता हैं' । जिस समय महानाम ! आर्य-श्रावक तथागतको अनुस्मरण करता है, उस समय उसका चित्त न राग-लिप्त होता है,० न द्वेष-लिप्त (=द्वेष पीर-उत्थित),० न मोह-लिप्त० । उस समय उसका चित्त अ-कुटिल(=ऋजुगत=सीधा) होता है । तथागतके प्रति अ-कुटिल-चित्त हो आर्य-श्रावक अर्थ-वेद (=परमार्थ-ज्ञान)को प्राप्त होता है, धर्म-वेद (=धर्म-ज्ञान) को प्राप्त होता है, धर्म-संयुक्त प्रमोद (=चित्तके आनंद) को प्राप्त होता होता है । प्रमुदित पुरुषको प्रीति उत्पन्न होती है, प्रीतिमान्का शरीर स्थिर होता है । स्थिर-काय सुख अनुभव करता है । सुखितका चित्त समाहित (=एकाग्र) होताहै । महानाम ! तुम इस बुद्ध-अनुस्मृतिको प्राप्त कर यह भावना करो । बैठेभी भावना करो, लेटे भी० । कर्मान्त (=खेती) की देख-रेख (=अधिष्ठान) करते भी० । पुत्रोंसे घिरी शय्यापर भी० ।

" और फिर महानाम ! तुम धर्मका अनुस्मरण करो—'भगवान्का धर्म स्वाख्यात है तत्काल फलदायक है समयान्तरमें नहीं, यहीं दिखाई देनेवाला, विज्ञोंसे अपने आपहीमें जानने योग्य है' । जिस समय महानाम ! ०धर्मको अनुस्मरण करता है०।

"और फिर महानाम ! तुम संघको अनुस्मरण करो—'भगवान्का श्रावक-संघ सुप्रतिपन्न है । भगवान्का संघ ऋजु-प्रतिपन्न (=सीधे मार्गपर आरूढ़) है,० ठीकसे प्रतिपन्न है, यही भगवान्का श्रावक-संघ है, जोकि चार पुरुष-युगल, आठ पुरुष-व्यक्ति । यह आहुणेय=पाहुणेय (=निमन्त्रित करने योग्य) (भिक्षा-) दान देने योग्य (=दक्षिणेय), अञ्जलि जोड़ने योग्य, और लोकके पुण्य (करने)का क्षेत्र है ।

" और फिर महानाम ! तू अ-खंड=अ-छिद्र,अ-शबल=कल्मप-रहित (=निष्पाप) उचित (=भुजिस्स), विज्ञोंसे प्रशंसित, अ-निंदित, अपने शीलों (=सदाचारों) को अनुस्मरण करो ! जिस समय० शीलका अनुस्मरण करता है ।०

" और फिर महानाम ! तुम देवताओंको अनुस्मरण करो—(१) चातुर्महाराजिक देवता हैं, (२) त्रयस्त्रिंश देवता हैं, (३) याम०, (४) तुषित०, (५) निर्माणरति०, (६) परिनिर्मित-वशवर्ती०, (७) ब्रह्मकायिक०, (८) उनसे ऊपरके देवता हैं । जिस प्रकारकी श्रद्धासे युक्त हो, वह देवता यहांसे मरकर वहां उत्पन्न हुये; मेरे पास भी वैसी श्रद्धा है ।० शील० । ० श्रुत० । ०मेरे पास भी वैसा त्याग (=दान) है० । ०मेरे पास भी वैसी प्रज्ञा (=ज्ञान) है । जिस समय महानाम ! आर्य-श्रावक अपने और उन देवताओंकी श्रद्धा, शील, श्रुत, त्याग और प्रज्ञाको स्मरण करता है० । ०सुखितका चित्त समाहित (=एकाग्र) होताहै । इसे कहते हैं महानाम ! कि 'आर्य श्रावक वि-षम (=उल्टी) प्रजामें समता (=सीधापन)को प्राप्त हो, विहर रहा है।

द्रोह-युक्त प्रजामें अ-द्रोह-युक्त विहर रहा है । धर्म-स्रोत (=धर्म-प्रवाह)में प्रवृत्तहो, देवता-अनुस्मृतिकी भावना कर रहा है । महानाम ! इस देवतानुस्मृतिको तुम चलते भी भावना करो, खड़े भी०, लेटे भी०, कर्मान्तकका अधिष्ठान करते भी०, पुत्रोंसे घिरी शय्यापर भी० ।

+ + + + +

कीटागिरिमें ।

[1]तब श्रावस्तीमें इच्छानुसार विहारकर, भगवान् सारिपुत्त, मोग्गलान और पांच सौ भिक्षुओंके महासङ्घके साथ जहां [2]कीटागिरि है, वहां चारिकाके लिये चले । अश्वजित् और पुनर्वसु भिक्षुओंने सुना—भगवान् पांच सौ भिक्षुओंके महाभिक्षु-संघ तथा सारिपुत्र, मौद्गल्यायनके साथ कीटागिरि आ रहे हैं ।···

" तो आवुसो ! (आवो) हम सब संघके शयन-आसनको बांट लें । सारिपुत्र मौद्गल्यायन पाप(=बुरी)-इच्छाओंसे युक्त हैं । हम उन्हें शयन-आसन न देंगे ।" यह सोच उन्होंने सभी [3]सांघिक शयन-आसनोंको बांट लिया ।

तब भगवान् क्रमशः चारिका करते, जहां कीटागिरि है, वहां पहुँचे । तब भगवान्‌ने बहुतसे भिक्षुओंको कहा—

" जाओ भिक्षुओ ! अश्वजित् पुनर्वसु भिक्षुओंके पास जाकर ऐसा कहो—'आवुसो !० भगवान् आ रहे हैं । आवुसो ! भगवान्‌के लिये शयन-आसन ठीक करो, संघके लिये भी, और सारिपुत्र मौद्गल्यायनके लिये भी' ।"

" अच्छा भन्ते !" कह···उन भिक्षुओंने जाकर अश्वजित् पुनर्वसु भिक्षुओंको यह कहा—"०" । (उन्होंने कहा)—

" आवुसो ! (यहां) सांघिक शयन-आसन नहीं है ; हमने सभी बांट लिया । स्वागत है आवुसो ! भगवान्‌का । जिस विहारमें भगवान् चाहें, उस विहारमें वास करें । (किंतु) पापेच्छु हैं सारिपुत्र मौद्गल्यायन०, हम उन्हें शयनासन नहीं देंगे ।"

" क्या आवुसो ! तुमने सांघिक शयनासन (=घर, सामान) बांट लिया ?"

" हां आवुस ! "

तब उन भिक्षुओंने जाकर यह बात भगवान्‌को कही । भगवान्‌ने धिक्कार कर—भिक्षुओंसे कहा—

" भिक्षुओ ! यह पांच अ-विभाज्य हैं, संघ-गण या पुद्गल (=व्यक्ति) द्वारा न बांटने योग्य हैं । बांटनेपर भी यह अविभक्त (=बिना बँटे) ही रहते हैं ; जो बांटताहै, उसे स्थूल-अत्ययका अपराध लगता है । कौनसे पांच ? (१) आराम या आराम-वस्तु (=आरामका घर)··· । (२) विहार या विहार-वस्तु··· । (३) मंच, पीठ, गद्दा, तकिया··· । (४) लोह-कुंभ,

---

१. विनय चुल्लवग्ग ६ । २. बनारससे अयोध्या (=साकेत)के रास्तेपर वर्तमान केराकत (जौनपुर) या उसके आसपास कोई स्थान रहा होगा । ३. सारे संघकी सम्पत्ति, एक व्यक्तिकी नहीं ।

लोह-भाणक, लोह-वारक, लोह-कटाह, वासी (=बँसूला), फरसा, कुल्हाड़ी, कुदाल, निखादन (=खननेका औज़ार)···। (९) वल्ली, बांस, मूँज, बल्बज, तृण, मिट्टी, लकड़ीका बर्तन, मिट्टीका बर्तन···।"

[1]कीटागिरि-सुत्त ।

[1]ऐसा मैंने सुना—एक समय बड़े भारी भिक्षु संघके साथ भगवान् [2]काशी-देशमें चारिका करतेथे। वहां भगवान्‌ने भिक्षुओंको आमंत्रित किया—

"भिक्षुओ! मैं रात्रि-भोजनसे विरतहो भोजन करताहूँ।···रात्रि-भोजन छोड़कर भोजन करनेसे···आरोग्य, उत्साह, बल, सुख-पूर्वक विहार अनुभव करताहूँ। आओ, भिक्षुओ! तुम भी रात्रि-भोजन विरतहो भोजन करो,···रात्रिभोजन छोड़कर भोजन करनेसे तुमभी···अनुभव करोगे।

"अच्छा भन्ते!" उन भिक्षुओंने भगवान्‌को कहा।

तब भगवान् काशी (देश)में क्रमशः चारिका करते, जहां काशियोंका निगम (=कस्वा) कीटागिरि था, वहां पहुँचे। वहां काशियोंके निगम कीटागिरिमें भगवान् विहार करतेथे।

उस समय अश्वजित्, और पुनर्वसु नामक (दो) आवासिक भिक्षु कीटागिरिमें रहतेथे। तब बहुतसे भिक्षु जहां अश्वजित् पुनर्वसु थे, वहां गये। जाकर··· बोले—

"आवुसो! भगवान् रात्रि-भोजन-विरतहो भोजन करते हैं, और भिक्षु-संघ भी। रात्रि-भोजन-विरतहो भोजन करनेसे आरोग्य०। आओ, तुमभी आवुसो! रात्रि-भोजन-विरतहो भोजन करो···।"

ऐसा कहनेपर अश्व-जित्-पुनर्वसुओंने उन भिक्षुओंको कहा—

"हम आवुसो! शामको भी खाते हैं, प्रातः, दिन (=मध्याह्न) और विकालको (=दोपहरबाद) भी। सो हम सायं, प्रातः, मध्याह्न विकालको भोजन करते भी आरोग्य० हो विहरतेहैं। सो हम क्यों प्रत्यक्ष (=सांदृष्टिक) को छोड़कर, कालान्तरके (=कालिक) लिये दौड़ें। हम सायंभी खायेंगे, प्रातःभी, दिनमेंभी, विकालमेंभी।"

जब वह भिक्षु अश्वजित् पुनर्वसु···को न समझा सके, तो जहां भगवान् थे वहां गये। जाकर भगवान्‌को अभिवादन कर एक ओर बैठ गये। एक ओर बैठकर उन भिक्षुओंने भगवान् से कहा—

"भन्ते! हमने···अश्वजित् पुनर्वसु···के पास···जा···यह कहा—'भगवान् रात्रि-भोजन-विरत०'। ऐसा कहने पर भन्ते! अश्वजित्, पुनर्वसु भिक्षुओंने कहा—'हम आवुसो! शामको भी खाते हैं०।' जब हम भन्ते! अश्वजित् पुनर्वसु भिक्षुओंको न समझा सके, तब हम यह बात भगवान्‌को कह रहेहैं।"

तब भगवान्‌ने एक भिक्षुको आमंत्रित किया—

"आ भिक्षु! तू मेरी बातसे अश्वजित् पुनर्वसु भिक्षुओंको कह-'शास्ता आयुष्मानों को बुलातेहैं'।"

---

१. म. नि. २: २: १०। २. प्रायः वर्तमान बनारस कमिश्नरी और आज़मगढ़ जिला।

"अच्छा भन्ते !" कह""उस भिक्षुने अश्वजित् पुनर्वसु भिक्षुओंके पास""जाकर कहा—"शास्ता आयुष्मानोंको बुलाते हैं" ।"

"अच्छा आवुस !" कह""अश्वजित पुनर्वसु भिक्षु"" जहाँ भगवान् थे, वहाँ गये । जाकर भगवान्को अभिवादन कर एक ओर बैठ गये । एक ओर बैठे अश्वजित, पुनर्वसु भिक्षुओंको भगवान्ने कहा—

"सच-मुच भिक्षुओ ! बहुतसे भिक्षु तुम्हारे पास जाकर बोले (थे)—आवुसो ! भगवान् रात्रि-भोजन-विरतहो०? ऐसा कहने पर भिक्षुओ ! तुमने""कहा० ?"

"हाँ भन्ते !"

"क्या भिक्षुओ ! तुम मुझे ऐसा धर्म उपदेश करते जानतेहो—जो कुछ यह पुरुष-पुद्गल (=मनुष्य) सुख, दुःख, या असुख-अदुःख अनुभव करता है, (उससे) उसके अकुशल (=बुरे) धर्म नष्ट होजातेहैं, और कुशल धर्म बढ़ते हैं ?"

"नहीं भन्ते !"

"क्या भिक्षुओ ! तुम मुझे ऐसा धर्म उपदेश करते जानतेहो—एकको इस प्रकारकी सुख वेदना (=अनुभव) अनुभव करते अकुशल-धर्म बढ़तेहैं, कुशल-धर्म नष्ट होतेहैं । किंतु एक को इस प्रकारको सुख-वेदनाको अनुभव करते अ-कुशल-धर्म नष्ट होतेहैं, कुशल-धर्म बढ़तेहैं ।० दुःख वेदनाको अनुभव करते अ-कुशल धर्म बढ़तेहैं, कुशल-धर्म नष्ट होतेहैं । अकुशल-धर्म नष्ट होतेहैं०। एकको इस प्रकारकी असुख-अदुःखवेदनाको अनुभव करते० ? ० ?

"हाँ, भन्ते !"

"साधु, भिक्षुओ ! यदि मैं अ-ज्ञात, अदृष्ट, अ-विदित = असाक्षात्-कृत = अ-स्पर्शितको (कहता)—यहाँ किसीको इस प्रकारकी सुख-वेदनाको अनुभव करते अकुशल धर्म बढ़ते हैं, और कुशल-धर्म नष्ट होतेहैं० । ऐसा न जानते, यदि मैं 'इस प्रकारकी सुख-वेदनाको छोड़ो' बोलता । तो क्या भिक्षुओ ! यह मेरे लिये उचित होता ?"

"नहीं, भन्ते !"

"चूँकि भिक्षुओ ! मैंने इसको देखा, जाना साक्षात्-किया, स्पर्श किया;-जानकर (कहता हूँ), इस लिये मैं कहता हूँ-'इस प्रकारकी सुख-वेदनाको छोड़ो' । और यदि मुझे यह अज्ञात, अदृष्ट० होता, ऐसा न जाने यदिमैं कहता—इस प्रकारकी सुख-वेदनाको प्राप्तकर विहार करो, तो क्या भिक्षुओ ! यह मेरे लिये उचित होता ?"

"नहीं, भन्ते !"

"चूँकि भिक्षुओ ! यह मुझे ज्ञात, दृष्ट, विदित, साक्षात्कृत, प्रज्ञासे स्पर्शित (है)-यहाँ एकके० अकुशल-धर्म नष्ट होते हैं, कुशल-धर्म बढ़तेहैं' । इस लिये मैं कहताहूँ 'इस प्रकारकी सुख-वेदनाको प्राप्तकर विहार करो' ।"'

"भिक्षुओ ! मैं सभी भिक्षुओंको नहीं कहता कि-'प्रमादरहितहो करो' । और न मैं सभी भिक्षुओंको 'अप्रमाद रहितहो न करो' कहताहूँ । भिक्षुओ ! जो भिक्षु अर्हत् = क्षीण-आस्रव

(ब्रह्मचर्य) पूरा कर चुके, कृत-कृत्य, भार-मुक्त, सच्चे अर्थको प्राप्त, भव-संयोजन (=बंधन)-रहित, अच्छी तरह जानकर मुक्त (=सम्यक्-आज्ञा-विमुक्त) हैं। भिक्षुओ! वैसोंको मैं 'प्रमाद रहितहो करो' नहीं कहता। सो किस हेतु? उन्होंने प्रमाद-रहितहो (करणीय) कर लिया, वह प्रमाद (=आलस्य, भूल) कर नहीं सकते। भिक्षुओ! जो शैक्ष्य=न-प्राप्त-चित्त हैं, अनुपम योग-क्षेम (=निर्वाण)के इच्छुकहो विहरते हैं। भिक्षुओ! वैसेही भिक्षुओंको मैं 'प्रमाद रहितहो करो' कहताहूँ। सो किस हेतु? शायद यह आयुष्मान् अनुकूल शयन-आसनको सेवन करते, कल्याण-मित्रों (=सुमित्रों)को सेवन करते, इन्द्रियोंको संयम करते; जिसके लिये कुल-पुत्र अच्छी तरह घरसे बेघरहो प्रव्रजित होते हैं, उस अनुत्तर (=सर्वोत्तम) ब्रह्मचर्य-फलको इसी जन्ममें स्वयं जानकर, साक्षात्कर, प्राप्तकर विहरें। भिक्षुओ! उन भिक्षुओंको अप्रमादका यह फल देखते हुये मैं 'प्रमाद-रहित हो' करो, कहता हूं।

"भिक्षुओ! सात पुद्गल (=पुरुष) लोकमें···विद्यमान हैं। कौनसे सात? (१) उभय-तो-भाग-विमुक्त (२) प्रज्ञाविमुक्त, (३) काय-साक्षी, (४) दृष्टि-प्राप्त, (५) श्रद्धा-विमुक्त, (६) धर्म-अनुसारी, (७) श्रद्धा-अनुसारी।

"भिक्षुओ! कौन पुद्गल (=पुरुष) उभयतो-भाग-विमुक्त हैं? भिक्षुओ! जो प्राणीकि विमोक्षको अतिक्रमणकर रूप (-धातु)में आरूप्य (धातु)को प्राप्त हैं, उन्हें कोई पुद्गल कायासे स्पर्शकर विहार करता है। (उन्हें) प्रज्ञासे देखकर उसके आस्रव (=चित्तमल) नष्ट होजाते हैं। भिक्षुओ! यह पुद्गल उभयतो-भाग-विमुक्त कहा जाता है। भिक्षुओ! इस भिक्षुको 'अप्रमादसे करो' मैं नहीं कहता। किस हेतु? क्योंकि वह प्रमाद-रहितहो (करणीय) कर चुका। वह प्रमाद नहीं कर सकता!

"भिक्षुओ! कौन पुद्गल प्रज्ञा-विमुक्त हैं? भिक्षुओ! जो प्राणीकि विमोक्षको पार कर, रूप(धातु)में आरूप्यको प्राप्त हैं, उन्हें कोई पुद्गल कायासे छूकर नहीं विहरते, (किंतु) प्रज्ञासे देखकर उनके आस्रव नाश होजाते हैं।० यह पुद्गल प्रज्ञा-विमुक्त कहे जाते हैं।० ऐसे भिक्षुको भी 'अप्रमादसे करो' मैं नहीं कहता।०।

"भिक्षुओ! कौन पुद्गल काय-साक्षी हैं? भिक्षुओ! जो एक पुद्गल उन्हें कायासे छूकर नहीं विहरता, प्रज्ञासे देखकर उसके कोई कोई आस्रव नष्ट होजाते हैं।०यह०काय-साक्षी हैं। इस भिक्षुको भिक्षुओ! 'अप्रमादसे करो', मैं कहता हूं। सो किस हेतु? शायद यह आयुष्मान्० प्राप्त कर विहार करें०।

"भिक्षुओ! कौन पुद्गल दृष्टि-प्राप्त है? भिक्षुओ!० कायासे छूकर नहीं विहरता,० कोई कोई आस्रव नष्ट होगये हैं। प्रज्ञाद्वारा तथागतके बतलाये धर्म उसके जाने···होते हैं।० यह दृष्टि-प्राप्त० है।०।०।

"भिक्षुओ! कौन पुद्गल श्रद्धाविमुक्त है? ०, ०प्रज्ञासे कोई कोई आस्रव उसके नष्ट होगये हैं, तथागतमें उसकी श्रद्धा प्रतिष्ठित=जड़-पकड़ी=निविष्ट होती है।० यह श्रद्धा-विमुक्त० ।०।०।

"भिक्षुओ! कौन पुद्गल धर्मानुसारी है?०,०, प्रज्ञाद्वारा तथागतके बतलाये धर्म उसकेलिये मात्रशः(=कुछ मात्रामें) निध्यान (=निदिध्यासन)के योग्य होगये हैं। और उसको

यह धर्म प्राप्त हैं, जैसे कि—श्रद्धा-इन्द्रिय, वीर्य-इन्द्रिय, स्मृति-इन्द्रिय, समाधि-इन्द्रिय प्रज्ञा इन्द्रिय । ०यह धर्मानुसारी० है ।०।०।

"भिक्षुओ ! कौन पुद्गल श्रद्धानुसारी है ?०,०, तथागतमें उसकी श्रद्धा-मात्र=प्रेम-मात्र होता है । और उसको यह धर्म (प्राप्त) होते हैं, जैसे कि—श्रद्धा-इन्द्रिय० प्रज्ञा-इन्द्रिय ।० यह श्रद्धानुसारी०।०।०।

"भिक्षुओ ! मैं आदिसेही 'आज्ञा' (=अञ्ञा)की आराधना नहीं कहता, बल्कि भिक्षुओ ! क्रमशः शिक्षासे, क्रमशः क्रियासे, क्रमशः प्रतिपद्से आज्ञाकी आराधना होती है । भिक्षुओ !० क्रमशः प्रतिपद्से कैसे आज्ञाकी आराधना होती है ? भिक्षुओ ! श्रद्धावान् हो (नेसे ज्ञानीके) समीप जाता है, समीप जानेसे, परि-उपासना करता है । परि-उपासना करनेसे कान लगाता है । कान लगानेसे धर्म सुनता है । धर्म सुनकर धारण करता है । धारण किये धर्मों की परीक्षा करता है । अर्थकी उप-परीक्षा करने पर धर्म निध्यायन (=निदिध्यासन)के योग्य होते हैं । धर्मके निध्यायन योग्य होनेपर, छन्द (=रुचि) उत्पन्न होता है । छंद होनेपर उत्साह करता है । उत्साह करनेपर उत्थान करता है (=तुलेति) । उत्थानकर प्रधान (=समाधि) करता है । प्रधानात्म (=समाहित-चित्त) हो, (इस) कायासेही परम-सत्यका साक्षात्कार करता है । प्रज्ञासे उसे वेधता है । भिक्षुओ ! वह श्रद्धा भी यदि न हुई । ०वह पास जानाभी (=उप-संक्रमण) न हुआ० ।०।०वह प्रधानभी न हुआ । (तो) विप्रतिपन्न (=अमार्गारूढ) हो भिक्षुओ ! मिथ्या-प्रतिपन्न०, भिक्षुओ ! यह मोघपुरुष (=नालायक) इस धर्म-विनयसे बहुत दूर चले गये हैं ।

"भिक्षुओ ! चतुष्पद व्याकरण होता है, जिसके अर्थको करने पर विज्ञपुरुष जल्दही (उसे) प्रज्ञासे जानता है । ……भिक्षुओ ! तुम इसे समझते हो ?

"भन्ते ! कहां हम और कहाँ धर्मका जानना ?"

"भिक्षुओ ! जो वह शास्ता (=गुरु) आमिष-गुरु (=धन,भोगमें बड़ा), आमिष-दायाद (भोगोंका लेनेवाला), आमिषोंसे लिप्तहो विहरता है; वह भी इसप्रकारकी बाजी (=पण) नहीं लगाता—'यदि हमें ऐसा हो, तो इसे करेंगे, यदि हमें ऐसा न हो, तो नहीं करेंगे ।' फिर भिक्षुओ तथागतका तो क्या (कहना है), (जो कि) सर्वथा आमिष (=धन, भोग)से अ-लिप्तहो विहार करते हैं । भिक्षुओ ! श्रद्धालु श्रावकको शास्ताके शासन (=धर्म)में परियोग (=योग)के लिये बर्ताव करते हुये यह अनु-धर्म होता है—'भगवान् शास्ता (=गुरु) हैं, मैं श्रावक (=शिष्य) हूँ', 'भगवान् जानते हैं, मैं नहीं जानता' । भिक्षुओ ! श्रद्धालु श्रावक के लिये शास्ताके शासनमें परियोगके लिये वर्तते समय, शास्ता का शासन…ओज-वान् होता है ;, श्रद्धालु श्रावकको० यह दृढ़ता होती है ।—'चाहे चमड़ा, नस, और हड्डी ही बच रहे, शरीरका रक्त-मांस सूख (क्यों न) जाये, (किंतु), पुरुषके स्थाम=पुरुष-वीर्य=पुरुष-पराक्रम से जो (कुछ)प्राप्य है, उसे बिना पाये (मेरा) उद्योग न रुकेगा ।' भिक्षुओ ! श्रद्धालु श्रावक को शास्ताके शासनमें परियोगके लिये वर्तते समय, दो फलोंमेंसे एक फलकी उमेद (अवश्य) रखनी चाहिये—इसी जन्ममें (परम-ज्ञान) जानूंगा, या उपाधि (=मल) रखनेपर अनागामिपन (पाऊंगा) ।"

भगवान्‌ने यह कहा । संतुष्ट हो, उन भिक्षुओंने भगवान्‌के भाषणका अनुमोदन किया

हत्थक-सुत्त । सन्दक-सुत्त । महासकुलुदायि-सुत्त । सिगालोवाद-सुत्त ।
(वि.पू.४५६-५५) ।

[1]तब भगवान् कीटागिरिमें इच्छानुसार विहार कर जहां [2]आलवी थी, वहां चारिका के लिये चले । क्रमशः चारिका करते जहां आलवी थी, वहां पहुंचे । वहां भगवान आलवीमें अग्गालव (=अग्रालव) चैत्यमें विहार करते थे ।

+ + + +

[3](भगवान्ने) सोलहवीं वर्षा आलवकको दमन कर, आलवीमें (बिताई) ।

हत्थक-सुत्त ।

ऐसा[4] मैंने सुना—एक समय भगवान् आलवीमें अग्गालव चैत्यमें विहार करतेथे ।

तब हत्थक-आलवक पांचसौ उपासकोंके साथ जहां भगवान्थे, वहां गया । जाकर भगवान्को अभिवादनकर,एक ओर बैठ गया । एक ओर बैठे हुये,हत्थक-आलवकको भगवान्ने कहा—

"हत्थक (=हस्तक) ! यह तेरी परिषद् बड़ी भारी है । कैसे हत्थक ! तू इस महती परिषद्को मिला रखता (=संग्रह करता) है ?"

"भन्ते ! आपने जो चार संग्रह-वस्तुओंका उपदेश कियाहै, उसीसे मैं इस महती परिषद्को धारण करता हूँ । (१) भन्ते ! मैं जिसको जानता हूँ, यह दान(=देना)से संग्रह योग्य है, उसे दानसे संग्रह करता हूँ । (२) जिसको जानता हूँ, यह 'पेय्यावज्ज' (=खातिर) से संग्रह-योग्य है, उसे पेय्या-वचसे संग्रह करता हूं । (३) जिसे जानता हूं, यह अर्थ-चर्या (=प्रयोजन पूरा करने)से संग्रह-योग्य है, उसे अर्थ-चर्यासे संग्रह करता हूं । (४) जिसको जानता हूं, यह समान-आत्म तासे संग्रह योग्य है, उसे समानात्मता (=बराबरी)से संग्रह करता हूं । भन्ते ! मेरे कुलमें भोग (=संपत्ति) हैं । दरिद्र होने पर तो वह हमारी नहीं सुनना चाहते ।"

"साधु, साधु, हस्तक ! महती परिषद् धारण करनेका यही उपाय है । हस्तक ! जिन्होंने पूर्वकालमें महती परिषद् संग्रह की, उन सबोंने इन्हीं चार संग्रह-वस्तुओंसे महती परिषद्को धारण किया । हस्तक ! जो कोई भविष्य-कालमें० करेंगे, वह सभी इन्हीं० । हस्तक ! जो कोई आज-कल० ।०।

तब हस्तक-आलवक भगवान्से धार्मिक-कथा-द्वारा संदर्शित=समादपित=समुत्तेजित संप्रशंसित हो आसनसे उठ, भगवान्को अभिवादन कर प्रदक्षिणा कर चला गया । तब भगवान् ने हत्थक-आलवकके जानेके थोड़ीही देर बाद, भिक्षुओंको संबोधित किया—

---

१. चुल्लवग्ग ६ । २. 'पंचाल चंडो आलवको' (दी. नि. ३: ९) कहनेसे आलवी (=आलंभिकापुरी) पंचाल-देशमें थी । यह वर्तमान अवेंल (जि० कानपुर) हो सक्ता है । ३. अ. नि. अ. क. २:४:९ । ४. अ. नि. ८: १: ३: ४ ।

" भिक्षुओ ! हत्थक-आलवकको आठ आश्चर्य=अद्भुत धर्मोंसे युक्त जाना। कौनसे आठ ? भिक्षुओ ! हत्थक-आलवक (१) श्रद्धालु है।० (२) शीलवान् है।० (३) ह्रीमान् (=लज्जाशील) है।० (४) अवत्रपी (=धर्म-भीरु) है। ० (५) बहुश्रुत है। ० (६) त्यागवान् (=दानी) है। ० (७) प्रज्ञावान् है। ० (८) अल्प-इच्छुक (=अनिच्छुक) है। इन० आठ० अद्भुत धर्मोंसे युक्त जानो।"

[1]तब भगवान् आलवीमें इच्छानुसार विहार कर जहाँ राजगृह है, उधर चारिका को चले।

+ + + +

सन्दक-सुत्त।

[2]ऐसा मैंने सुना—एक समय भगवान् कौशाम्बीके घोषितारामर्में विहार करते थे। उस समय पाँचसौ परिव्राजकोंकी महापरिव्राजक-परिषद्के साथ, सन्दक परिव्राजक [3]प्लक्षगुहामें वास करता था।

आयुष्मान् आनन्दने सायंकाल ध्यानसे उठकर, भिक्षुओंको संबोधित किया—

"आवुसो ! आओ जहाँ [4]देवकट-सोब्भ (=देवकृत-श्वभ्र=स्वाभाविक अगम-कूप) है, वहाँ देखनेके लिये चलें।"

"अच्छा आवुस !" कह उन भिक्षुओंने आयुष्मान् आनन्दको उत्तर दिया। तब आयुष्मान् आनन्द बहुतसे भिक्षुओंके साथ, जहाँ देवकट-सोब्भ था, वहाँ गये। उस समय सन्दक परिव्राजक राजकथा [5]०आदि निरर्थक कथा कहती, नादकरती, शोरमचाती, बड़ीभारी परिव्राजक-परिषद्के साथ, बैठा था। सन्दक परिव्राजकने दूरहीसे आयुष्मान् आनन्दको आते देखा। देखकर अपनी परिषद्को कहा—'आप सब चुप हों। मत···शब्द करें। यह श्रमण गौतमका श्रावक श्रमण आनंद आरहा है। श्रमण गौतमके जितने श्रावक कौशाम्बीमें वास करते हैं, उनमें एक, यह श्रमण आनन्द है। यह आयुष्मान् लोग निःशब्द-प्रेमी, अल्प-शब्द-प्रशंसक होते हैं। परिषद्को अल्पशब्द देख, संभव है, (इधर) भी आये।" तब वह परिव्राजक चुप होगये।

तब आयुष्मान् आनंद जहाँ संदक परिव्राजक था, वहाँ गये। संदक परिव्राजकने आयुष्मान् आनन्दको कहा—

"आइये आप आनन्द। स्वागत है आप आनन्दका। चिरकाल-बाद आप आनन्द यहाँ आये। बैठिये आप आनन्द, यह आसन बिछा है।"

आयुष्मान् आनन्द बिछे आसनपर बैठे। संदक परिव्राजक भी एक नीचा आसनले, एक ओर बैठ गया। एक ओर बैठे, संदक परिव्राजकको आयुष्मान् आनन्दने कहा—

"संदक ! किस कथामें बैठेथे, बीचमें क्या कथा होरही थी ?"

"जाने दीजिये इस कथाको, हे आनन्द ! जिस कथामें कि हम इस समय बैठे थे।

---

१. चुल्लवग्ग ६। २. मज्झिम नि. २:३:६। ३. कोसमके पास पभोसा (जि० इलाहाबाद)। ४. पभोसामें कोई प्राकृतिक जल-कुंड था,। ५. पृष्ठ १८९।

ऐसी कथा आप आनन्दको पीछे भी सुननेको दुर्लभ न होगी । अच्छा हो, आप आनन्द ही अपने आचार्यक (=धर्म)-विषयक धार्मिक-कथा कहें ।"

"तो सन्दक ! सुनो, अच्छी तरह मनमें करो, कहता हूं ।"

"अच्छा भो !" (कह) संदक परिव्राजकने आयुष्मान् आनन्दको उत्तर दिया । आयुष्मान् आनन्दने कहा—

"सन्दक ! उन जानकार, देखनहार, सम्यक्-संबुद्ध भगवान्ने चार अ-ब्रह्मचर्य-वास कहे हैं, और चार आश्वासन न देनेवाले ब्रह्मचर्य-वास (=संन्यास) कहे हैं: जिनमें विज्ञ-पुरुष अपनी शक्तिभर ब्रह्मचर्य-वास न करे । वास करनेपर न्याय (=निर्वाण), कुशल (=अच्छे)-धर्मको न पा सकेगा ।

"हे आनन्द ! उन० भगवान्ने कौनसे चार अ-ब्रह्मचर्य वास० कहे हैं० ?"

"सन्दक ! यहां एक शास्ता (=गुरु, पंथ चलाने वाला) ऐसा वाद (=दृष्टि) रखने वाला होता है—'नहीं है दान (का फल), नहीं है यज्ञ (का फल), नहीं है हवन (का फल) नहीं है सुकृत दुष्कृत कर्मोंका फल=विपाक; यह लोक नहीं है, पर-लोक नहीं है, माता नहीं पिता नहीं । औपपातिक (=अयोनिज, देव आदि) प्राणी नहीं हैं । लोकमें (ऐसे) सत्यको प्राप्त (=सम्यग्-गत) सत्यारूढ़ श्रमण ब्राह्मण नहीं हैं, जोकि इस लोक परलोकको स्वयं जान कर, साक्षात्कर, (दूसरोंको) जतलावेंगे । यह पुरुष चातुर्महाभूतिक (=चार भूतोंका बना) है । जब मरता है, पृथिवी पृथिवी-काय (=पृथिवी)में मिल जाती है, चली जाती है । आप (=पानी) आप-कायमें मिल जाता० है । तेज (=अग्नि) तेज-कायमें मिल जाता० है । वायु वायु-कायमें मिल जाता० है । इन्द्रियां आकाशमें (चली) जाती हैं । पुरुष मृत (शरीर) को खाटपर ले जाते हैं । जलाने तक पद (=चिह्न) जान पड़ते हैं । (फिर) हड्डियां कबूतरके (पंखे) सी (सफेद) हो जाती हैं । (पूर्वकृत) आहुतियां राख (हो) रह जाती हैं । यह दान मूर्खोंका प्रज्ञापन (=उपदेश) है । जो कोई आस्तिक-वाद कहते हैं, वह उनका तुच्छ=झूठ है । मूर्ख या पंडित (सभी) शरीर छोड़ने पर उच्छिन्न हो जाते हैं, विनष्ट हो जाते हैं, मरनेके बाद (कोई) नहीं रहता । इस विषयमें विज्ञपुरुष ऐसे विचारता है—'यह आप शास्ता इस वाद (=दृष्टि) वाले हैं—नहीं है दान०' । यदि इन आप शास्ताका वचन सत्य है, तो (पुण्य) बिना किये भी, मैंने करलिया, (ब्रह्मचर्य) बिना वास किये भी, वास कर लिया । नास्तिक गुरु और मैं—हम दोनोंही यहां बराबर श्रामण्य (=संन्यास)को प्राप्त हैं; जोकि मैं नहीं कहता, (हम) दोनों काया छोड़ उच्छिन्न=विनष्ट होंगे, मरनेके बाद नहीं रह जायेंगे । (फिर) यह आप शास्ता की (यह) नग्नता, मुँडता, उकडूँ-तप (=उक्कुटिकप्पधान) केश-श्मश्रु-नोचना फ़जूल है" और जो मैं पुत्राकीर्णहो, घर (=शयन) में वास करते, काशीके चंदनका मजा लेते, माला सुगंध-लेप धारण करते, सोना-चांदीका रसलेते, मरने पर इन आप शास्ताके समान गति पाऊँगा । सो मैं क्या समझकर, क्या देखकर, इन (नास्तिक-वादी) शास्ताके पास ब्रह्मचर्य पालन करूँ ।' (इस प्रकार) वह, 'यह अ-ब्रह्मचर्य-वास है' समझ, उस ब्रह्मचर्य (=साधुपन) से उदास हो, हट जाता है । यह सन्दक ! उन० भगवान्ने प्रथम अ-ब्रह्मचर्य-वास कहा है, जिसमें विज्ञ-पुरुष० ।

"और फिर सन्दक ! यहाँ एक शास्ता ऐसे वाद (=मत) वाला होता है—'करते करवाते, काटते कटवाते, पकाते पकवाते, शोक कराते, परेशान कराते, मथते मथाते, प्राण मारते, चोरी करते, सेंध लगाते, गाँव लूटते, घर लूटते, रहजनी करते पर-स्त्री-गमन-करते, झूठ बोलते, भी पाप नहीं किया जाता। छुरेसे तेज चक्र-द्वारा जो इस पृथिवीके प्राणियोंका (कोई) एक माँसका खलियान, एक माँसका पुंज बनादे, तो इसके कारण उसे पाप नहीं होगा; पापका आगम नहीं होगा। यदि घात करते-कराते, काटते-कटाते, पकाते-पकवाते, गंगाके दाहिने तीर पर भी जाये;, तो भी इसके कारण उसको पाप नहीं, पापका आगम नहीं होगा। दान देते दान दिलाते, यज्ञ करते यज्ञकराते, गंगाके उत्तर तीर भी जाये, तो इसके कारण उसको पुण्य नहीं, पुण्यका आगम नहीं होता। दान, (इन्द्रिय-)दम, संयम, सत्यवचन (=सच-वक्त)से पुण्य नहीं, पुण्यका आगम नहीं होता'। सन्दक! विज्ञ-पुरुष ऐसा विचारता है—यह आप शास्ता इस वाद=दृष्टि-वाले हैं—करते करवाते०। यदि इन आप शास्ताका वचन सच है०। तो हम दोनोंही बराबर श्रामण्य (=संन्यास) को प्राप्त हैं.···'दोनोंहीके करते पाप नहीं किया जाता'। यह आप शास्ताकी नग्नता०। ०। यह सन्दक! उन० भगवान्ने द्वितीय अ-ब्रह्मचर्य-वास कहा है०।

"और फिर संदक! यहां एक शास्ता ऐसे वाद (=दृष्टि)वाला होता है—'सत्वोंके संक्लेशका कोई हेतु=कोई प्रत्यय नहीं। विना हेतु, विना प्रत्ययके प्राणी संक्लेश (=चित्तमा-लिन्य)को प्राप्त होते हैं। प्राणियोंकी (चित्त-)विशुद्धिका कोई हेतु=प्रत्यय नहीं है। विना हेतु=प्रत्ययके प्राणी विशुद्ध होते हैं। बल नहीं (चाहिये), वीर्य नहीं, पुरुषका स्थाम (=दृढ़ता) नहीं=पुरुष-पराक्रम नहीं (चाहिये), सभी सत्व=सभी प्राणी=सभी भूत=सभी जीव अ-वश=अ-बल=अ-वीर्य नियति (=भवितव्यता)के वशमें हो, छओं अभिजातियोंमें सुख दुःख अनुभव करते हैं।० यदि० इन आप शास्ताका वचन सत्य है०। तो हम दोनोंहो हेतु=प्रत्यय विनाही शुद्ध हो जायेंगे।०। यह सन्दक! भगवान्ने तृतीय अ-ब्रह्मचर्यवास कहा है०।

"और फिर सन्दक! यहाँ एक शास्ता ऐसा दृष्टि-वाला होता है—'यह सात अकृत =अकृतविध=अ-निर्मित=निर्माता-रहित, अवध्य=कूटस्थ, स्तम्भवत् (अचल) हैं। यह चल नहीं होते, विकारको प्राप्त नहीं होते; न एक दूसरेको हानि पहुंचाते हैं; न एक दूसरेके सुख, दुःख, या सुख-दुःखके लिये पर्याप्त हैं। कौनसे सात? पृथिवी-काय, आप-काय, तेज-काय, वायु-काय, सुख, दुःख, और जीव—यह सात। यह सात काय अकृत० सुख-दुःखके योग्य नहीं हैं। यहां न हन्ता (=मारनेवाला) है, न घातयिता (=हनन करानेवाला), न सुननेवाला, न सुनानेवाला, न जाननेवाला न जतलानेवाला। जो तीक्ष्ण-शस्त्रसे शीश भी छेदते हैं, (तो भी) कोई किसीको प्राणसे नहीं मारता। सातो कायोंसे अलग, विवर (=खाली जगह)में शस्त्र (=हथियार) गिरता है। यह प्रधान-योनि—चौदहसौ-हजार, (दूसरी) साठ-सौ, छियासठ-सौ, और पांचसौ कर्म, और पांच कर्म और तीन कर्म, (एक)कर्म, और आधा कर्म, बासठ प्रतिपद्, बासठ अन्तर्-कल्प, छः अभिजाति, आठ पुरुषकी भूमियाँ, उंचास सौ आजीवक, उंचास सौ परिव्राजक, उंचास नागोंके आवास, बीससौ इन्द्रिय, तीससौ नरक, छत्तिस रजो-धातु, सात

संज्ञावान् गर्भ, सात असंज्ञी गर्भ, सात निर्ग्रंथी गर्भ, सात देव, सात मनुष्य, सात पिशाच, सात सरोवर, सात गांठ (=पमुट), सात प्रपात, सातसौ प्रपात, सात स्वप्न, सातसौ स्वप्न—(इनमें) चौरासी हजार महाकल्पों तक दौड़कर=आवागमनमें पड़कर, मूर्ख और पंडित (सभी) दुःखका अंत (=निर्वाण-प्राप्ति) करेंगे। वहां (यह) नहीं है—इस शील या व्रत, या तप, ब्रह्मचर्यसे मैं अपरिपक्व कर्मको पचाऊंगा, परिपक्व कर्मको भोग कर अन्त करूंगा। सुख, दुःख, द्रोण (-नाप) से नपे तुले हुये हैं, संसारमें घटाना बढ़ाना, उत्कर्ष-अपकर्ष नहीं होता। जैसे कि सूतकी गोली फेंकनेपर उघरती हुई गिरती है, ऐसेही मूर्ख (=बाल) और पण्डित दौड़कर=आवागमनमें पड़कर, दुःखका अंत करेंगे।' वहां सन्दक! विज्ञ-पुरुष ऐसे विचारता है। —यह आप शास्ता ऐसे वाद=दृष्टिवाले हैं०। जैसे कि सूतकी गोली०। यदि इन आप शास्ताका वचन सत्य है, तो बिना किये भी मैंने कर लिया। ० यह आप शास्ताकी नग्नता०। यह सन्दक! उन० भगवान्ने चतुर्थ अ-ब्रह्मचर्य-वास कहा है०।

"सन्दक! उन० भगवान्ने यह चार अ-ब्रह्मचर्य-वास कहे हैं०।"

"आश्चर्य! हे आनन्द!! अद्भुत! हे आनन्द!! जो यह उन० भगवान्ने यह चार अ-ब्रह्मचर्य-वास कहे हैं०। किन्तु, हे आनन्द! उन० भगवान्ने कौनसे चार अनाश्वासिक ब्रह्मचर्य कहे हैं० ?"

"सन्दक! यहां एक शास्ता सर्वज्ञ, सर्वदर्शी, अशेष-ज्ञान-दर्शन वाला होनेका दावा करता है—'चलते, खड़े होते, सोते, जागते, सदा सर्वदा मुझे ज्ञान-दर्शन मौजूद (=प्रत्यु-पस्थित) रहता है।' (तो भी) वह सूने घरमें जाता है, (वहां) भिक्षा भी नहीं पाता, कुक्कुर भी काट खाता है, चंड-हाथीसे भी सामना पड़ जाता है, चंड घोड़ेसे भी सामना पड़ जाता है, चंड-बैलसे भी०। (सर्वज्ञ होनेपर भी) स्त्री-पुरुषोंके नाम-गोत्रको पूछता है। ग्राम-निगमका नाम और रास्ता पूछता है। '(आप सर्वज्ञ होकर) यह क्या (पूछते हैं)'—पूछनेपर कहता है—'सूने घरमें हमारा जाना बदा था, इसलिये गये। भिक्षा न मिलनी बदी थी, इसलिये न मिली। कुक्कुरका काटना बदा था०। ०हाथीसे मिलना बदा था०। ०। वहां सन्दक! विज्ञ-पुरुष यह सोचता है—यह आप शास्ता० दावा करते हैं० (तब) वह—'यह ब्रह्मचर्य (=पंथ) अनाश्वासिक (=मनको संतोष न देने वाला) है' —यह जान, उस ब्रह्मचर्यसे उदास हो हट जाता है। यह सन्दक! उन० भगवान्ने प्रथम अनाश्वासिक ब्रह्मचर्य कहा है०।

"और फिर सन्दक! यहां एक शास्ता आनुश्रविक=अनुश्रव (=श्रुति) को सत्य मानने वाला होता है,। '(श्रुतिमें) ऐसा', '(स्मृतिमें) ऐसा', परम्परासे, पिटकसं-प्रदाय (=ग्रन्थ-प्रमाण) से, धर्मका उपदेश करता है। सन्दक! आनुश्रविक=अनुश्रवको सच मानने वाले शास्ताका अनुश्रव सुश्रुत (=ठीक सुना) भी होसकता है, दुःश्रुत भी; वैसा (=यथार्थ) भी हो सकता है, उलटा भी हो सकता है। यहां सन्दक! विज्ञ-पुरुष यह सोचता है—यह आप शास्ता आनुश्रविक हैं०। वह-'यह ब्रह्मचर्य अनाश्वासिक है'०। ०द्वितीय अनाश्वासिक ब्रह्मचर्य कहा है०।

"और फिर सन्दक! यहां एक शास्ता तार्किक=विमर्शी होता है। वह तर्कसे=विमर्शसे प्राप्त, अपनी प्रतिभासे ज्ञात, धर्मका उपदेश करता है। सन्दक! तार्किक=विमर्शक

(=वीमांसक) शास्ताका (विचार) सुतर्कित भी हो सकता है, दुः-तर्कित भी। वैसे (=यथार्थ) भी हो सकता है, उलटा भी हो सकता है०।०।०।० तृतीय अनाश्वासिक ब्रह्मचर्य कहा है०।

"और फिर सन्दक! यहां एक शास्ता मन्द=अति-मूढ़ (=मोमुह) होता है। वह मन्द होनेसे, अति-मूढ़ होनेसे वैसे वैसे प्रश्न पूछनेपर, वचनसे विक्षेपको=अमरा-विक्षेपको प्राप्त होता है—'ऐसा भी मेरा (मत) नहीं, वैसा (=तथा) भी मेरा नहीं, अन्यथा भी मेरा (मत) नहीं, नहीं भी मेरा (मत) नहीं, न नहीं भी मेरा (मत) नहीं।' यहां सन्दक! विज्ञ-पुरुष यह सोचता है ०।०।०।० चतुर्थ अनाश्वासिक ब्रह्मचर्य कहा है०।

"सन्दक! उन० भगवान्ने यह चार अश्वनासिक ब्रह्मचर्य कहे हैं०।"

"आश्चर्य! हे आनन्द!! अद्भुत! हे आनन्द!! जो यह उन० भगवान्ने चार अनाश्वासिक ब्रह्मचर्य कहे हैं०। किन्तु हे आनन्द! वह शास्ता किस वाद=किस दृष्टि वाला होना चाहिये, जहां विज्ञ-पुरुष स्व-शक्ति भर ब्रह्मचर्य-वास करें, वास कर न्याय=कुशल-धर्मकी आराधना करें० ?"

"सन्दक! यहां तथागत लोकमें उत्पन्न होते [1]हैं ०। उस धर्मको गृहपति या गृह-पति-पुत्र सुनता है०। वह संशयको छोड़ संशय-रहित होता है। वह इन पांच नीवरणोंको हटा चित्तके दुर्बल करनेवाले उपक्लेशों (=चित्तमलों) को जान, कामोंसे अलगहो, अकुशल-धर्मोंसे अलग हो, प्रथम ध्यानको प्राप्तहो विहरता। सन्दक? जिस शास्ताके पास श्रावक इस प्रकार के बड़े (=उदार) विशेषको पावे, वहां विज्ञ-पुरुष स्वशक्तिभर ब्रह्मचर्य-वास करे०।

"और फिर सन्दक! ० द्वितीय ध्यानको प्राप्त हो विहरता है० ।०। ०तृतीय ध्यान० ।०। ०चतुर्थ ध्यान० ।०। ०पूर्व-जन्मोंको स्मरण करता है० ।०। ०कर्मानुसार जन्मते सत्त्वोंको जानता है० ।०। ० 'अब यहां दूसरा कुछ करना नहीं रहा'-जानता है० ।०।"

'हे आनन्द! वहजो भिक्षु० अर्हत् (=मुक्त) है, क्या वह कामोंका भोग करेगा ?"

"सन्दक! जो वह भिक्षु० अर्हत् है, वह (इन) पांच बातोंमें असमर्थ है। क्षीण-आस्रव (=अर्हत्, मुक्त) भिक्षु (१) जानकर प्राण नहीं मार सकता। (२)० चोरी नहीं कर सकता। (३ ० मैथुन···सेवन नहीं कर सकता। (४) जानकर झूठ नहीं बोल सकत। (५) क्षीणास्रव भिक्षु एकत्रित कर (अन्न पान आदि,)काम-भोगोंको भोगकरनेके अयोग्य है; जैसेकि वह पहिले गृही होते भोगता था)।०।"

'हे आनन्द! जो वह अर्हत्=क्षीणास्रव भिक्षु है, क्या उसे चलते बैठते, सोते जागते निरन्तर···(यह) ज्ञान दर्शन मौजूद रहता है—'मेरे आस्रव (=चित्तमल) क्षीण होगये'।

"तो सन्दक! तेरे लिये एक उपमा देता हूँ। उपमासे भी कोई कोई विज्ञ-पुरुष कहनेका मतलब समझ लेते हैं। सन्दक! जैसे पुरुषके हाथ-पैर कटे हों, उसको चलते बैठते, सोते जागते निरंतर (होता है), मेरे हाथ-पैर कटे हैं। इसी प्रकार सन्दक! जो वह अर्हत्=क्षीणस्रव भिक्षु है, उसके ०निरंतर···आस्रव क्षीण ही हैं, वह उसकी प्रत्यवेक्षा करके जानता है—'मेरे-आस्रव क्षीण हैं।"

---

१. पृष्ट. १७२-१७४।

"हे आनन्द ! इस धर्म-विनय (=धर्म)में कितने मार्गदर्शक (=निर्याता) हैं ?"

"सन्दक ! एक सौ ही नहीं, दो सौही नहीं, तीनसौं०, चारसौं०, पांचसौं०, बल्कि और भी अधिक निर्याता इस धर्म-विनयमें हैं ।"

"आश्चर्य ! हे आनन्द !! अद्भुत ! हे आनन्द !! न अपने धर्मका उत्कर्ष (=तारीफ) करना, न पर-धर्मकी निन्दा करना, (ठीक) जगह (=आयतन) पर धर्म-देशना !! इतने अधिक मार्ग-दर्शक जान पड़ते हैं !! यह आजीवक पुत्र-मरेके पूत तो अपनी बड़ाई करते हैं । तीनको ही मार्गदर्शक (=निर्याता) बतलाते हैं, जैसेकि—नन्द वात्स, कृश सांकृत्य, और मक्खली गोसाल"

तब सन्दक परिव्राजकने अपनी परिषद्को संबोधित किया—

"आप सब श्रमण गौतमके पास ब्रह्मचर्य-वास करें । हमारे लिये तो लाभ-सत्कार प्रशंसा छोड़ना, इस वक्त सुकर नहीं है ।'

ऐसे सन्दक परिव्राजकने अपनी परिषद्को भगवान्के पास ब्रह्मचर्य-वास करनेके लिये प्रेरित किया ।

[1](भगवान् आलावीसे चलकर) क्रमशः चारिका करते जहां राजगृह है, वहां पहुँचे । वहां भगवान् राजगृहमें वेणुवन कलन्दक-निवापमें विहार करते थे । उस समय राजगृहमें दुर्भिक्ष था ।.......

+ + + +

[2]सत्रहवीं (वर्षा भगवान्ने) राजगृहमें (बिताई) ।...

+ + + +

महासकुलुदायि-सुत्त ।

[3]ऐसा मैंने सुना—एक समय भगवान् राजगृहमें वेणुवन कलन्दक-निवापमें विहार करते थे । उस समय बहुतसे प्रसिद्ध प्रसिद्ध (=अभिज्ञात) परिव्राजक मोर-निवाप परिव्राजकाराममें वास करते थे; जैसे कि—अनुगार-वरचर और सकुल-उदायी परिव्राजक तथा दूसरे अभिज्ञात अभिज्ञात परिव्राजक ।

तब भगवान् पूर्वाह्न-समय पहिनकर पात्र-चीवर ले, राजगृहमें पिंड-चारके लिये प्रविष्ट हुये । तब भगवान्को यह हुआ—'राजगृहमें पिंड-चारके लिये अभी बहुत सवेरा है, क्यों न मैं जहां मोर-निवाप परिव्राजकाराम है, जहां सकुल-उदायि परिव्राजक है, वहां चलूं' । तब भगवान् जहां मोर-निवाप परिव्राजकाराम था, वहां गये । उस समय सकुल-उदायी परिव्राजक ०[4] बहुत भारी परिव्राजक-परिषद्के साथ बैठा था । सकुल-उदायी परिव्राजकने दूरसे ही भगवानको आते देखा । देखकर अपनी परिषद्को कहा—०[2] ।

भगवान् जहां सकुल-उदायी परिव्राजक था, वहां गये । सकुल-उदायी परिव्राजकने भगवान्को कहा :—

---

१. चुल्लवग्ग ६ । २. अ.नि.अ क. २: ४: ९ । ३. म.नि. २ : ३ : ७ । ४. पृष्ठ १८९ ।

" आइये भन्ते ! भगवान् ! स्वागत है, भन्ते ! भगवान् ! चिरकालपर भगवान् यहाँ आये । भन्ते ! भगवान् ! बैठिये, यह आसन बिछा है ।"

भगवान् बिछे आसन पर बैठे । सकुल-उदायी परिव्राजक भी एक नीचा आसन लेकर, एक ओर बैठ गया । एक ओर बैठे सकुल-उदायी परिव्राजकको भगवान्ने कहा :—

" उदायी ! किस कथामें बैठे थे, क्या कथा बीचमें हो रही थी ?"

" जाने दीजिये, भन्ते ! इस कथाको, जिस कथामें हम इस समय बैठे थे । ऐसी कथा भन्ते ! आपको पीछेभी सुननी दुर्लभ न होगी । पिछले दिनों भन्ते ! कुतूहल-शालामें बैठे, एकत्रित हुए, नाना तीर्थों (=पन्थों)के श्रमण ब्राह्मणोंके बीचमें यह कथा उत्पन्न हुई । अङ्ग-मगधोंका लाभ है, अङ्ग-मगधोंको अच्छा लाभ मिला; जहाँ पर कि राजगृहमें (ऐसे २) संघपति=गणी=गणाचार्य ज्ञात=यशस्वी बहुतजनोंके सुसम्मानित, तीर्थंकर (=पंथ-स्थापक) वर्षावासके लिये आये हैं । यह पूर्ण काश्यप संघी, गणी, गणाचार्य, ज्ञात, यशस्वी बहुजन-सुसम्मानित तीर्थंकर हैं, सो भी राजगृहमें वर्षावासके लिये आये हैं । ० यह मक्खली गोसाल ० । ० अजित केश-कम्बली ० । ० प्रकुध कात्यायन ० । ० संजय बेलट्ठि-पुत्त ० । ० निगंठ नाथपुत्त ० । यह श्रमण गौतम भी संघी ० । वहभी राजगृहमें वर्षावासके लिये आये हैं । इन संघी ० भगवान् श्रमण ब्राह्मणोंमें कौन श्रावकों (=शिष्यों)से (अधिक) सत्कृत=गुरुकृत=मानित=पूजित हैं ? किसको श्रावक सत्कार, गौरव, मान, पूजाकर विहरते हैं ?'

"वहाँ किन्हींने ऐसा कहा—यह जो पूर्ण काश्यप संघी ० हैं, ० सो श्रावकोंसे न सत्कृत ० न पूजित हैं । पूर्ण काश्यपको श्रावक सत्कार, गौरव, मान पूजा करके नहीं विहरते । पहिले (एक समय) पूर्ण काश्यप अनेक-सौकी सभाको धर्म उपदेश कर रहे थे । वहाँ पूर्ण काश्यपके एक श्रावकने शब्द किया—आप लोग इस बातको पूर्ण काश्यपसे मत पूछें । यह इसे नहीं जानते । हम इसे जानते हैं । हमें यह बात पूछें । हम इसे आप लोगोंको बतलायेंगे ।' उस वक्त पूर्ण काश्यप बाँह पकड़कर, चिल्लाते थे—'आप सब चुप रहें, शब्द मत करें । यह लोग आप सबको नहीं पूछते । हमको······ पूछते हैं । हम इन्हें बतलायेंगे' ।—(किन्तु) नहीं (चुपकरा) पाते थे । पूर्ण काश्यपके बहुतसे श्रावक विवाद करके निकल गये—' तू इस धर्म-विनयको नहीं जानता, मैं इस धर्म-विनयको जानता हूँ' । ' तू क्या इस धर्मको जानेगा' ? ' तू मिथ्या-आरूढ़ है, मैं सत्य-आरूढ़ (=सम्यक् प्रतिपन्न) हूँ' । 'मेरा (वचन) सहित (=सार्थक) है, तेरा अ-सहित है' । ' पहिले कहनेकी (बात तूने) पीछे कही, पीछे कहनेकी (बात) पहिले कही' । ' न किये (=अविचीर्ण) को तूने उलट दिया' । ' तेरा वाद निग्रहमें आगया' । ' वाद छोड़ाने केलिये (यत्न) करो' । ' यदि सकते हो तो खोल लो' । इस प्रकार पूर्ण काश्यप श्रावकोंसे न सत्कृत ० न पूजित हैं ० । बल्कि पूर्ण काश्यप सभाकी धिक्कार (=धम्मक्कोस)से धिक्कारे गये हैं ।

" किसी किसीने कहा—यह मक्खली गोसाल संघी० भी श्रावकोंसे न सत्कृत० न पूजित हैं० ।०।०। ०यह अजित केश-कम्बली० भी० ।०।०यह प्रकुध कात्यायन० भी०।०।० ०यह संजय बेलट्ठिपुत्त० भी० ।०। ०यह निगंठ नाथपुत्त० भी० ।०।

" किसी किसीने कहा—यह श्रमण गौतम संघी०हैं । और यह श्रावकोंसे ०पूजित हैं । श्रमण-गौतमका श्रावक सत्कार=गौरवकर, आलंबले, विहरते हैं । पहिले एक समय श्रमण गौतम अनेक सौकी सभाको धर्म उपदेश कर रहे थे । वहां श्रमण गौतमके एक शिष्यने खांसा । दूसरे सब्रह्मचारी (=गुरुभाई)ने उसका पैर दबाया-'आयुष्मान् ! चुप रहें, आयुष्मान् ! शब्द मत करें । शास्ता हमें धर्म-उपदेश कर रहे हैं ।' जिस समय श्रमण गौतम अनेकशत परिषद्को धर्म उपदेश देते हैं, उस समय श्रमण गौतमके श्रावकों का थूकने खांसनेका (भी) शब्द नहीं होता । उनकी जनता प्रशंसा करती, प्रत्युत्थान करती है—जो हमें भगवान् धर्मउपदेश करेंगे, उसे सुनेंगे । श्रमण गौतमके जो श्रावक सब्रह्मचारियोंके साथ विवाद करके (भिक्षु-) शिक्षा (=नियम) को छोड, हीन(गृहस्थ-आश्रम) को लौट जाते हैं, वह भी शास्ताके प्रशंसक होते हैं, धर्मके प्रशंसक होते हैं, संघके प्रशंसक होते हैं । दूसरेकी नहीं, अपनीही निन्दा करते हैं—'हमही ···भाग्यहीन हैं, जो कि ऐसे स्वाख्यात धर्ममें प्रव्रजित हो, परिपूर्ण परिशुद्ध ब्रह्मचर्यको जीवनभर पालन नहीं करसके', (और) वह आराम-सेवक (=आरामिक)हो या गृहस्थ (=उपासक)हो, पांच शिक्षापदोंको ग्रहण कर रहते हैं । इस प्रकार श्रमण गौतम श्रावकोंसे० पूजित हैं । श्रमण गौतमको श्रावक सत्कार= गौरव कर, आलम्बले विहरते हैं ।"

" उदायी ! तू किन किन कितने धर्मोंको देखता है, जिनसे मुझे श्रावक० पूजते हैं०? "

" भन्ते ! भगवान्में मैं पांच धर्मोंको देखता हूं, जिनसे भगवान्को श्रावक० पूजते हैं० । कौनसे पांच ? भन्ते ! भगवान् (१) अल्पाहारी अल्पाहारके प्रशंसक हैं, जो कि भन्ते ! भगवान् अल्पाहारी, अल्पाहार-प्रशंसक हैं ; इसको मैं भन्ते ! भगवान्में प्रथम धर्म देखता हूं, जिससे भगवान्को श्रावक० पूजते हैं० ।० (२) जैसे तैसे चीवर (=वस्त्र)से सन्तुष्ट रहते हैं, जैसे तैसे चीवरसे संतुष्टताके प्रशंसक० ।० (३) जैसे तैसे पिंडपात (=भिक्षाभोजन) से संतुष्ट०, ०संतुष्टता-प्रशंसक० ।० (४) शयनासन (=घर, बिस्तरा)से संतुष्ट,० संतुष्टता-प्रशंसक० ।० (५) एकान्तवासी, ०एकान्त-वास-प्रशंसक० । भन्ते ! भगवान्में मैं इन पांच धर्मोंको देखता हूँ० ।"

" उदायी ! 'श्रमण गौतम अल्पाहारी, अल्पाहार-प्रशंसक हैं' इससे यदि मुझे श्रावक० पूजते, ०आलम्बले विहरते; तो उदायी ! मेरे श्रावक कोसक (=पुरवा)भर आहार करनेवाले, अर्द्ध-कोसक आहारी, वांस (=वांस काटकर बनाया छोटा वर्तन)भर आहार करनेवाले, आधा-वांस-आहारी भी हैं । मैं उदायि ! कभी कभी इस पात्रभर खाता हूं, अधिक भी खाता हूं । यदि '०अल्पाहारी, अल्पाहार-प्रशंसक हैं' इससे ०पूजते० तो उदायी ! जो मेरे श्रावक० आधा-वांसआहारी हैं, वह मुझे इस धर्मसे न सत्कार करते० ।

" उदायी ! '०जैसे तैसे चीवरसे सन्तुष्ट० संतुष्टता-प्रशंसक०' इससे यदि मुझे श्रावक० पूजते०; तो उदायी ! मेरे श्रावक पांसु-कूलिक = रूक्ष चीवर-धारी भी हैं । वह श्मशानसे कूड़ेके ढेरसे लत्ते-चीथड़े बटोरकर संघाटी (=भिक्षुका ऊपरका दोहरा वस्त्र) बना, धारण करते हैं । मैं उदायी ! किसी किसी समय दृढ़ शस्त्र-रूक्ष, लौका जैसे रोम वाले (=मखमल) गृहपतियोंके वस्त्रको भी धारण करता हूं ।०।

" उदायी ! '०जैसे तैसे पिंड-पातसे सन्तुष्ट, ०संतुष्टता-प्रशंसक०' इससे यदि मुझे श्रावक० पूजते०; तो उदायी ! मेरे श्रावक पिंड-पातिक (=मधुकरी-वाले), सपदानचारी (=निरन्तर चलते रह, भिक्षा मांगने वाले) उंछ-व्रतमें रत भी हैं। वह गांवमें आसनके लिये निमंत्रित होनेपर भी, (निमन्त्रण) नहीं स्वीकार करते। मैं तो उदायी! कभी कभी निमंत्रणोंमें धानका भात, कालिमा-रहित अनेक सूप, अनेक व्यञ्जन (=तर्कारी) भी भोजन करता हूं।०।

" उदायी ! '०जैसे तैसे शयनासनसे सन्तुष्ट, ०संतुष्टता-प्रशंसक०' इससे यदि मुझे श्रावक० पूजते०; तो उदायी ! मेरे श्रावक वृक्ष-मूलिक (=पेड़के नीचे सदा रहने वाले), अब्भोकासिक (=अभ्यवकाशिक=सदा चौड़ेमें रहनेवाले) भी हैं, वह आठ मास (वर्षाके चार मास छोड़) छतके नीचे नहीं आते। मैं तो उदायी ! कभी कभी लिपे-पोते वायु-रहित, किवाड़-खिड़की-बन्द कोठों (=कूटागारों)में भी विहरता हूं।०।

" उदायी ! '०एकान्तवासी एकान्तवास-प्रशंसक हैं०' इससे यदि ०पूजते; तो उदायी ! मेरे श्रावक आरण्यक (=सदा अरण्यमें रहने वाले), प्रान्त-शयनासन (=बस्तीसे दूर कुटी वाले) हैं; (वह) अरण्यमें वनप्रस्थ=प्रान्तके शयनासनोंमें रहकर विहरते हैं। वह प्रत्येक अर्द्धमास प्रातिमोक्ष-उद्देश (=अपराध-स्वीकार)के लिये, संघके मध्यमें आते हैं। मैं तो उदायी ! कभी कभी भिक्षुओं, भिक्षुनियों, उपासकों, उपासिकाओं, राजा, राज-महामात्यों, तैर्थिकों, तैर्थिक-श्रावकोंसे आकीर्ण हो विहरता हूं।०। इस प्रकार उदायी ! मुझे श्रावक इन पांच धर्मोंसे नहीं ०पूजते०।

" उदायी ! दूसरे पांच धर्म हैं, जिनसे श्रावक मुझे ०पूजते हैं०। कौनसे पांच ? यहां उदायी ! (१) श्रावक मेरे शील (=आचार)से सन्मान करते हैं—श्रमण गौतम शीलवान् हैं, परम शील-स्कन्ध (=आचार-समुदाय)से संयुक्त हैं। जो कि उदायी ! श्रावक मेरे शीलमें विश्वास करते हैं—०; यह उदायी ! प्रथम धर्म है, जिससे०।

" और फिर उदायी ! (२) श्रावक मुझे अभिक्रान्त (=सुन्दर) ज्ञान-दर्शन (=ज्ञान का मनसे प्रत्यक्ष करने) में संमानित करते हैं—जानकर, ही श्रमण गौतम कहते हैं—'जानता हूं', देखकरही श्रमण गौतम कहते हैं—'देखता हूं'। अनुभवकर (=अभिज्ञाय) ही श्रमण गौतम धर्म उपदेश करते हैं, विना अनुभव किये नहीं। स-निदान (=कारण-सहित) श्रमण गौतम धर्म उपदेश करते हैं, अ-निदान नहीं। स-प्रातिहार्य (=सकारण)०, अ-प्रतिहार्य नहीं।०।

"और फिर उदायी ! (३) श्रावक मुझे प्रज्ञामें संमानित करते हैं—श्रमण गौतम परम-प्रज्ञा-स्कंध (=उत्तम-ज्ञान-समुदाय)से युक्त हैं। उनके लिये 'अनागत (=भविष्य) के वाद-विवादका मार्ग अन्-देखा है, (वह वर्तमानमें) उत्पन्न दूसरेके प्रवाद (=खंडन) को धर्मके साथ न रोक सकेंगे' यह संभव नहीं। तो क्या मानते हो उदायी ! क्या मेरे श्रावक ऐसा जानते हुये ऐसा देखते हुये, बीच बीचमें बात टोकेंगे ?"

" नहीं भन्ते ! "

"उदायी ! मैं श्रावकोंके अनुशासनकी अकांक्षा नहीं रखता, बल्कि श्रावक मेरेही अनु-शासन को दोहराते हैं । ० ।

"और फिर उदायी ! (४) दुःखसे उत्तीर्ण, विगत-दुःख हो, श्रावक, मुझे आकर, दुःख आर्य-सत्यको पूछते हैं । पूछे जानेपर उनको मैं दुःख आर्य-सत्य व्याख्यान करता हूं । प्रश्नके उत्तरसे मैं उनके चित्तको सन्तुष्ट करता हूँ । वह आकर मुझे दुःख-समुदय आर्य-सत्य पूछतेहैं०।० दुःख-निरोध० । ० दुःख-निरोध-गामिनी-प्रतिपद् आर्य-सत्य पूछते हैं० । ० ।

"और फिर उदायी ! (५) मैंने श्रावकोंको प्रतिपद् (=मार्ग) बतला दियाहै । जिस पर आरूढ़हो श्रावक चारों स्मृतिप्रस्थानोंकी भावना करते हैं— भिक्षु कायामें कायानुपश्यी हो विहरते हैं०[1],० वेदनानुपश्यी०[2],० चित्तानुपश्यी०, धर्ममें धर्मकी अनुपश्यना (=अनुभव) करते, तत्पर, स्मृति-संप्रजन्य युक्त हो, द्रोह =दौर्मनस्यको हटाकर लोकमें विहरते हैं । तिसमें बहुतसे मेरे श्रावक अभिज्ञा-व्यवसान-प्राप्त =अभिज्ञा-पारमिता-प्राप्त (=अर्हत-पद-प्राप्त) हो विहरते हैं ।

"और फिर उदायी ! मैंने श्रावकोंको (वह) प्रतिपद् बतला दिया है; जिस पर आरूढ़हो मेरे श्रावक चारो सम्यक्-प्रधानोंकी भावना करते हैं । उदायी ! भिक्षु, (१) (वर्तमानमें) अन्-उत्पन्न पाप =अ-कुशल (=बुरे) धर्मोंको न उत्पन्न होने देनेके लिये, छन्द (=रुचि) उत्पन्न करते हैं, कोशिश करते हैं =वीर्य-आरम्भ करते हैं, चित्तको निग्रह =प्रधान करते हैं । (२) उत्पन्न पाप=अ-कुशल-धर्मोंके विनाशके लिये० । (३) अनुत्पन्न कुशल-धर्मोंकी उत्पत्तिके लिये० । (४) उत्पन्न कुशल-धर्मोंकी स्थिति=असंमोष, वृद्धि=विपुलताके लिये, भावना-पूर्णकर छन्द उत्पन्न करते हैं० । यहां भी बहुतसे मेरे श्रावक (अर्हत्-पद) प्राप्त हैं ।

"और फिर उदायी ! मैंने श्रावकोंको प्रतिपद् बतलादी है, जिस पर आरूढ़हो मेरे श्रावक चारों ऋद्धि-पादोंकी भावना करते हैं । यहां उदायी ! भिक्षु (१) छन्द-समाधि-प्रधान-संस्कार-युक्त ऋद्धि-पादकी भावना कहते हैं । (२) वीर्य-समाधि-प्रधान-संस्कार-युक्त ऋद्धि-पादकी भावना करते हैं । (३) चित्त-समाधि० । (४) विमर्ष-समाधि० । यहां भी० ।

"और फिर उदायी ! ० जिस पर आरूढ़हो मेरे श्रावक पांच इन्द्रियोंकी भावना करतेहैं । उदायी ! यहां भिक्षु (१) उपशम =संबोधिकी ओर जाने वाली, श्रद्धा-इन्द्रियकी भावना करते हैं । (२) वीर्य-इन्द्रिय०, (३) स्मृति-इन्द्रिय० (४) समाधि-इन्द्रिय० । ० ।

"० । ० पांच बलोंको भावना करते हैं ।—० श्रद्धाबल०, वीर्य-बल०, स्मृति-बल०, समाधि-बल०, प्रज्ञाबल० ।

"० । ० सात बोधि-अंगोंकी भावना करते हैं ।—यहां उदायी ! भिक्षु विवेक-आश्रित, विराग-आश्रित, निरोध-आश्रित व्यवसर्ग-फलवाले (१) स्मृति-संबोधि-अंगकी भाव-ना करते हैं,० (२) धर्म-विचय-संबोध्यंगकी भावना कहते हैं । ० (३) वीर्य-संबोध्यंग०। (४) प्रीति-संबोध्यंग० । ० (५) प्रश्रब्धि-संबोध्यंग० । ० (६) समाधि-संबोध्यंग ० । ० (७) उपेक्षा-संबोध्यंग० । ० ।

---

१. देखो पृष्ठ ११८ ।

"और फिर० आर्य अष्टांगिक मार्गकी भावना करते हैं। उदायी! यहाँ भिक्षु (१) सम्यग्-दृष्टिकी भावना करते हैं।० (२) सम्यक्-संकल्प०।०(३) सम्यग्-वाक्० सम्यक्-कर्मान्त०।०(५) सम्यक्-आजीव० ।०(६) सम्यग्-व्यायाम०।०(७) सम्यक्-स्मृति०। (८) सम्यक्-समाधि० ।०।

"आठ विमोक्षोंकी भावना करते हैं। (१) रूपी (=रूपवाला) रूपोंको देखते हैं, यह प्रथम विमोक्ष है। (२) शरीरके भीतर (=अध्यात्म) अ-रूप-संज्ञी (=रूप नहीं है-के ज्ञान वाले), बाहर रूपोंको देखते हैं०। (३) शुभ ही अधिमुक्त (=मुक्त) होते हैं०। (४) सर्वथा रूपसंज्ञा (=रूपके ख्याल)को अतिक्रमण कर, प्रतिहिंसाके ख्यालके लुप्त होनेसे, नाना-पनके ख्यालको मनमें न करनेसे 'आकाश अनंत है' इस आकाश-आनन्त्यायतनको प्राप्त हो विहरते हैं०। (५) सर्वथा आकाशानन्त्यायतनको अतिक्रमण कर 'विज्ञान (=चेतना) अनन्त है' इस विज्ञान-आनन्त्य-आयतको प्राप्त हो विहरते हैं०। (६) सर्वथा विज्ञानानन्त्या-यतनको अतिक्रमण कर 'कुछ नहीं है' इस आकिंचन्य-आयतनको प्राप्त हो०। (७) सर्वथा आकिंचन्यायतनको अतिक्रमण कर, नैवसंज्ञा-न-असंज्ञा-आयतन (=जिस समाधिका आभास न चेतनाही कहा जा सकता है, न अचेतना ही) को प्राप्त हो०। (८) सर्वथा नैव-संज्ञाना-संज्ञायतनको अतिक्रमण कर प्रज्ञा-वेदित-निरोध (पञ्ञावेदयित-निरोध)को प्राप्त हो विहरते हैं, यह आठवाँ विमोक्ष हैं। इससे और इसमें मेरे बहुतसे श्रावक···(अर्हत्-पद प्राप्त हैं)।

"और फिर उदायी! ०आठ अभिभू-आयतनोंकी भावना करते हैं। (१) एक (भिक्षु) शरीरके भीतर (=अध्यात्म) रूपका ख्यालवाला (=रूपसंज्ञी), बाहर सु-वर्ण दुर्वर्ण क्षुद्र-रूपों को देखता है। उन्हें अभिभूत कर विहरता है, यह प्रथम अभिभ्वायतन है। (२) अध्यात्ममें रूप-संज्ञी, बाहर सु-वर्ण, दुर्वर्ण अ-प्रमाण (=बहुत भारी) रूपोंको देखता है। 'उन्हें अभिभूतकर जानता हूँ देखता हूँ' इस ख्यालवाला होता है।०। (३) अध्यात्ममें अ-रूप-संज्ञी (='रूप नहीं हैं' इस ख्यालवाला), बाहर सुवर्ण दुर्वर्ण क्षुद्र-रूपोंका देखता है—०। (४) अध्यात्ममें अरूप-संज्ञी, बाहर सुवर्ण दुर्वण अ-प्रमाण रूपोंको देखता है—०। (५) अध्यात्ममें अरूप संज्ञी बाहर नील=नीलवर्ण=नील-निदर्शन नील-निभास रूपोंको देखता है। जैसेकि अलसीका फूल नील=नील-वर्ण=नील-निदर्शन=नील-निभास; जैसेकि दोनों ओर से विमृष्ट (कोमल, चिकना) नील०[1] बनारसी (वाराणसेयक) वस्त्र; ऐसेही अध्यात्ममें अरूप-संज्ञी एक (भिक्षु) बाहर नील० रूपोंको देखता है—'उनको अभिभूतकर जानता हूँ देखता हूँ' इसे जानता है०। (६) अध्यात्ममें अरूप-संज्ञी एक (भिक्षु) बाहर पीत (=पीला)=पीतवर्ण पीत-निदर्शन= पीत-निभास रूपोंको देखता है। जैसेकि पीत० कर्णिकार फूल या जैसे वह० पीत० बनारसी वस्त्र०।०। (७) अध्यात्ममें अरूप-संज्ञी····(पुरुष) लोहित (=लाल)=लोहितवर्ण= लोहित-निदर्शन=लोहित-निभास रूपोंको देखता है। जैसेकि लोहित० बंधुजीवक (=अंड-हुल)का फूल, या जैसे लाल० बनारसी वस्त्र०।०। (८) अध्यात्ममें अरूप-संज्ञी···अवदात

---

१. अ. क. "वहाँ (बनारसमें) कपासभी कोमल, सूतकातनेवाली तथा जुलाहे भी चतुर, जलभी सु-वि-स्निग्ध (है)। वहाँका वस्त्र दोनों ही ओरसे कोमल और स्निग्ध होता है।

(=सफेद)० रूपोंको देखता है। जैसेकि अवदात० शुक्रतारा (=ओसधी-तारका), या जैसेकि सफेद० बनारसी वस्त्र० ।०।

"और फिर उदायी ! ०दश कृत्स्न-आयतन (=कसिणायतन)की भावना करते हैं। (१) एक पुरुष ऊपर, नीचे, तिर्छे, अद्वितीय, अप्रमाण पृथ्वी-कृत्स्न (=पृथ्वी-कसिण=सारी पृथिवी ही) जानता है। (२) ०आप-कृत्स्न (=सारा पानी)०। (३) ०तेजः-कृत्स्न (=सारा तेज)०। (४) ० ०वायु-कृत्स्न (=सारी हवा ही)०। (५) ०नील-कृत्स्न (=सारा नीला रंग)०। (६) ०पीत-कृत्स्न०। (७) लोहित-कृत्स्न०। (८) ०अवदात-कृत्स्न (=सारा सफेद)०। (९) ०आकाश-कृत्स्न०। (१०) ०विज्ञान-कृत्स्न (=चेतनामय, चिन्मात्र)०।

"और फिर उदायी ! ०चार ध्यानोंकी भावना करते हैं। उदायी ! भिक्षु, कामोंसे अलग हो, अकुशल धर्मों(=बुरी बातों)से अलग हो वितर्क-विचार-सहित विवेकसे उत्पन्न प्रीति-सुख-रूप) प्रथम ध्यानको प्राप्त हो विहरता है। वह इसी कायाको, विवेकसे उत्पन्न प्रीति-सुख-द्वारा प्लावित, परिप्लावित करता हैं, परिपूर्ण=परिस्फरण करता है। (उसकी) इस सारी कायाका कुछ भी (अंश) विवेक-ज प्रीति सुखसे अछूता नहीं होता। जैसे कि उदायी ! दक्ष (=चतुर) नहापित (=नहलाने वाला), या नहापितका चेला (=अन्तेवासी) काँसेके थालमें स्नानीय-चूर्णको डालकर, पानी सुना सुना हिलावे। सो इसकी नहान-पिंडी शुभ (=स्वच्छता)-अनुगत, शुभ-परिगत शुभसे अन्दर-बाहर लिप्त हो पिघलती है। ऐसेही उदायी ! भिक्षु इसी कायाको विवेकज प्रीति सुखसे प्लावित आप्लावित करता है, परिपूरण=परिस्फरण करता है।०।

"और फिर उदायी ! भिक्षु वितर्क विचारोंके उपशांत होनेसे०[१] द्वितीय-ध्यानको प्राप्त हो विहरता है। वह इसी कायाको समाधिज प्रीति-सुखसे प्लावित=आप्लावित करता है०। जैसे उदायी ! पाताल फोड़कर निकला पानीका दह हो। उसके न पूर्व-दिशामें पानीके आनेका मार्ग हो, न पश्चिम-दिशामें, न उत्तर-दिशामें, न दक्षिण-दिशामें०। देव भी समय समयपर अच्छी तरह धार न बरसावे। तो भी उस पानीके दह (=उदक-ह्रद)से शीतल वारिधारा फूटकर उस उदक-ह्रदको शीतल जलसे प्लावित, आप्लावित करे, परिपूरण-परिस्फरण करे; इस सारे उदक-ह्रदका कुछ भी (अंश) शीतल जलसे अछूता न हो। ऐसे उदायी ! इसी कायाको समाधिज प्रीति-सुखसे०।

"और फिर उदायी ! भिक्षु०[१] तृतीय-ध्यानको प्राप्त हो विहरता है। वह इसी काया को निष्प्रीतिक (=प्रीति-रहित) सुखसे प्लावित० करता है०। जैसे उदायी ! उत्पलिनी (=उत्पल-समूह), पद्मिनी, पुण्डरीकिनीमें, कोई कोई उत्पल, पद्म, पुण्डरीक, पानीमें उत्पन्न, पानीमें बढ़े, पानीसे (बाहर) न निकले, भीतर डूबेही पोषित, मूलसे शिखा तक शीतल जलसे प्लावित० होते हैं०। ऐसेही उदायी ! भिक्षु इसी कायाको निष्प्रीतिक०।

"और फिर उदायी !०[१]चतुर्थ ध्यानको प्राप्त हो विहरता है। वह इसी कायाको, परिशुद्ध=परि-अवदात चित्तसे प्लावितकर बैठा होता है।०। जैसे कि उदायी ! पुरुष अवदात

---

१. देखो पृष्ठ १७४।

(=श्वेत)-वस्त्रसे शिर तक लपेटकर बैठा हो । उसकी सारी कायाका कुछ भी (भाग) श्वेत वस्त्रसे अनाच्छादित न हो । ऐसे ही उदायी ! भिक्षु इसी कायाको० । तहाँ भी मेरे बहुतसे श्रावक अभिज्ञा-व्यवसान-प्राप्त, अभिज्ञा-पारमि-प्राप्त हैं ।

" और फिर उदायि ! मैंने श्रावकोंको वह मार्ग बतला दिया है, जिस (मार्ग-)पर आरूढ़हो, मेरे श्रावक ऐसा जानते है— यह मेरा शरीर रूपवान्, चातुर्महाभूतिक, मातापितासे उत्पन्न, भात-दालसे बढ़ा, अनित्य=उच्छेद=परिमर्दन=भेदन=विध्वंसन धर्मवाला है। यह मेरा विज्ञान (=चेतना) यहाँ बंधा=प्रतिबद्ध है । जैसे उदायी शुभ्र सुन्दरजाति की, अठकोनी, सुंदर पालिशकी (=सुपरिकर्मकृत), स्वच्छ=विप्रसन्न, सर्व-आकार-युक्त वैदुर्य-मणि (=हीरा)हो । उसमें नील, पीत, लोहित, अवदात या पांडु सूत पिरोया हो । उसको आँखवाला पुरुष हाथमें लेकर देखे—' यह शुभ्र० वैदुर्यमणि है, ०सूत पिरोया है ' । ऐसेही उदायी ! मैंने० बतला दिया है० । तहां भी मेरे बहुतसे श्रावक० ।

" और फिर उदायी ! ० मार्ग बतला दिया है, जिस मार्गपर आरूढ़ हो मेरे श्रावक, इस कायासे रूपवान् (=साकार), मनोमय, सर्वांग-प्रत्यंग-युक्त अखंडित-इन्द्रियोंयुक्त दूसरी कायाको निर्माण करते हैं । जैसे उदायी ! पुरुष मूंजमेंसे सींक निकाले । उसको ऐसा हो— ' यह मूँज है, यह सींक । मूँज अलग है, सींक अलग है । मूँजसे ही सींक निकली है । ' जैसे कि उदायी ! पुरुष म्यानसे तलवार निकाले । उसको ऐसाहो—यह तलवार है, ' यह म्यान है । तलवार अलग है, म्यान अलग । म्यानसेही तलवार निकली है । ' जैसे उदायी ! पुरुष सांपको पिटारीसे निकाले० । ऐसेही उदायी !० मार्ग बतला दिया है० ।

"और फिर उदायी ! ० मार्ग बतला दिया है, जिस मार्गपर आरूढ़ हो, मेरे श्रावक अनेक प्रकारके ऋद्धि-विध (=योग-चमत्कार)को अनुभव करते हैं । एक होकर बहुत होजाते हैं । बहुत होकर एक होते हैं । आविर्भाव, तिरोभाव (करते हैं) । जैसे भीत-पार प्राकार-पार पर्वत-पार । आकाशमें जैसे बिनालेप (पार) होजाते हैं । पृथिवीमें भी डूबना उतराना करते हैं, जैसे कि जलमें । पानीमें भी बिना भीगे चलते हैं, जैसे कि पृथिवीमें । पक्षि (=शकुनी)की भांति आसन-बांधे आकाशमें चलते हैं । इतने महर्द्धिक=महानुभाव (=तेजस्वी) इन चांद-सूर्यको भीहाथसे छूते हैं । ब्रह्मलोक तक कायासे वशमें रखते हैं । जैसे उदायी ! चतुर कुंभकार, या कुंभकारका चेला, सिझाई मिट्टीसे जो जो विशेष भाजन चाहे, उसी उसीको बनावे= निष्पादन करे । या जैसे उदायी ! चतुर दन्तकार (—हाथीके दांतका काम करनेवाला) या दंतकारका चेला, सिझाये दांतसे जो जो दंत-विकृति (=दांतकी चीज) चाहे, उसे बनावे, =निष्पादन करे । या जैसे उदायी ! चतुर सुवर्ण-कार या सुवर्णकारका चेला, सिझाये सुवर्णसे जिस जिस सुवर्ण-विकृतिको चाहे उसे बनावे० । ऐसेही उदायी ! ० ।

"और फिर उदायी ! ० जिस मार्ग पर आरूढ़हो मेरे श्रावक दिव्य, विशुद्ध, अमानुष, श्रोत्र-धातु (=कान)से दिव्य और मानुष, दूरवर्ती और समीपवर्ती, दोनोंही तरहके शब्दोंको सुनते हैं । जैसे कि उदायी ! बलवान् शंख-धमक (=शंख-बजानेवाला) अल्प-प्रयाससे चारों दिशाओंको जतलादे । ऐसेही उदायी० ।

"और फिर उदायी ! ० जैसे मार्ग पर आरूढ़हो, मेरे श्रावक दूसरे सत्त्वों=दूसरे पुद्गलों के चित्तको (अपने) चित्तद्वारा जानते हैं। सराग चित्तको 'राग सहित (यह) चित्त है' जानते हैं। वीतराग चित्तको 'वीत-राग चित्त है' जानते हैं। सद्वेष चित्तको 'स-द्वेष चित्त है' जानते हैं। वीत-द्वेष चित्तको०। स-मोह चित्तको०। वीत-मोह चित्तको०। संक्षिप्त चित्तको०। विक्षिप्त चित्तको०। महद्गत (=विशाल) चित्तको०। अ-महद्गत चित्तको०। स-उत्तर (=जिससे बढ़कर भी है) चित्तको०। अन्-उत्तर चित्तको०। समाहित (=एकाग्र) चित्तको०। अ-समाहित चित्तको०। विमुक्त (=मुक्त) चित्तको०। अ-विमुक्त चित्तको०। जैसे उदायी ! कोई शौकीन स्त्री या पुरुष, बालक या तरुण, परिशुद्ध=परि-अवदात दर्पण (=आदर्श) या स्वच्छ जलभरे पात्रमें अपने मुख-निमित्त (=मुखकी शकल)को देखते हुये, स-कणिक अंग होने पर स-कणिकांग (=सदोष अंग) जाने, अ-कणिकांग होनेपर अ-कणिकांग जाने। ऐसेही उदायी०। ०।

"और फिर उदायी ! जिस मार्ग पर आरूढ़हो, मेरे श्रावक अनेक प्रकारके पूर्व-निवासों (=पूर्व जन्मों)को जानते हैं। जैसे कि, एक जाति (=जन्म) भी, दो जातिभी०, तीन जातिभी, चार जातिभी, पांच जातिभी, बीस जातिभी, तीस जातिभी, चालीस जातिभी, पचास जातिभी, सौ जातिभी, हजार जातिभी, सौहजार जातिभी, अनेक संवर्त-कल्पों (=महाप्रलयों) को भी, अनेक विवर्त-कल्पों (=सृष्टियों) को भी, अनेक संवर्त-विवर्त-कल्पोंको भी, 'मैं वहां इस नाम, इस गोत्र, इस वर्ण, इस आहार-वाला, ऐसे सुख-दुःखको अनुभव करने-वाला इतनी आयु-पर्यन्त था। सो मैं वहांसे च्युतहो, वहां उत्पन्न हुआ। वहां भी मैं० इतनी आयुपर्यन्त रहा। सो वहां च्युत (=मृत) हो, यहां उत्पन्न हुआ'। इस प्रकार स-आकार (=आकृति-सहित) स-उद्देश (=नाम-सहित) अनेक प्रकारके पूर्व-निवासोंको अनुस्मरण करते हैं। जैसे उदायी ! पुरुष अपने ग्रामसे दूसरे ग्राममें जाये। उस ग्रामसे भी दूसरे ग्रामको जाये। वह उस ग्रामसे अपनेही ग्रामको लौट जाये। उसको ऐसाहो—मैं अपने ग्रामसे उस गांवको गया, वहां ऐसे खड़ा हुआ, ऐसे बैठा, ऐसे बोला, ऐसे चुप रहा। उस ग्रामसे भी उस ग्रामको गया। वहां भी ऐसे खड़ा हुआ०।

"और फिर उदायी। ०जैसे मार्ग पर आरूढ़ हो मेरे श्रावक दिव्य, विशुद्ध, अ-मानुष चक्षुसे, हीन, प्रणीत (=उत्पन्न), सुवर्ण दुर्वर्ण, सु-गत दुर्गत सत्त्वोंको च्युत होते, उत्पन्न होते देखते हैं। कर्मानुसार (गतिको) प्राप्त सत्त्वोंको जानते हैं—यह आप सत्त्व काय-दुश्चरितसे युक्त, वाग्-दुश्चरितसे युक्त, मन-दुश्चरितसे युक्त, आर्यों के निन्दक, मिथ्या-दृष्टि, मिथ्या-दृष्टि कर्मको स्वीकार करनेवाले (थे), वह काया छोड़ मरनेके बाद अपाय-दुर्गति=विनिपात नर्कमें उत्पन्न हुये। और यह आप सत्त्व काय-सुचरितसे युक्त० आर्योंके अन्-उपवादक (=अनिन्दक) सम्यग्-दृष्टि, सम्यक्-दृष्टिकर्मको स्वीकार करनेवाले (थे), वह० सुगति=स्वर्गलोकमें उत्पन्न हुये हैं'। इसप्रकार दिव्य०चक्षुसे० देखते हैं। जैसे उदायी ! समान-द्वारवाले दो घर (हों), वहां आंखवाला पुरुष बीचमें खड़ा, मनुष्योंको घरमें प्रवेश करते भी, निकलते भी, अनुसंचरण विचरण करते भी देखे। ऐसे ही उदायी ! ०।

"और फिर उदायी ! ०जिस मार्गपर आरूढ़हो मेरे श्रावक आस्रवोंके विनाशसे अन्-आस्रव (=निर्मल) चित्तकी विमुक्ति, प्रज्ञा-विमुक्तिको इसी जन्ममें स्वयं जानकर, साक्षात

कर, प्रासकर, विहरते हैं। जैसे कि उदायी ! पर्वतसे घिरा स्वच्छ=विप्रसन्न=अन्-आविल उदक-ह्रद (=जलाशय) हो। वहां आंखवाला पुरुष तीरपर खड़ा सीपको...कंकड़-पत्थरको भी, चलते खड़े, मत्स्य-झुंडको भी देखे। ऐसेही उदायी ! ०।

"यह हैं उदायी ! पांच धर्म जिनसे मुझे श्रावक० पूजते हैं। ०।"

भगवान्‌ने यह कहा, सकुल-उदायी परिव्राजकने भगवान्‌के भाषणका अनुमोदन किया।

सिगालोवाद-सुत्त ।

ऐसा मैंने सुना—एक समय भगवान् राजगृहमें वेणुवन कलन्दक-निवापमें विहार करते थे।

उस समय सिगाल (=शृगाल) नामक गृहपति-पुत्र सवेरेही उठकर, राजगृहसे निकल कर, भीगे-वस्त्र, भीगे-केश, हाथ-जोड़े, पूर्व-दिशा, दक्षिण-दिशा, पश्चिम-दिशा, उत्तर-दिशा, नीचेकी दिशा, ऊपरकी दिशा—नाना दिशाओं को नमस्कार कर रहा था।

तब भगवान् पूर्वाह्न-समय चीवर पहिनकर पात्र-चीवर ले, राजगृहमें भिक्षाके लिये प्रविष्ट हुये। भगवान्‌ने सिगालको० नाना दिशाओंको नमस्कार करते देखा। देखकर सिगाल गृहपति-पुत्रको यह कहा—

"गृहपति-पुत्र ! तू क्या, सवेरेही उठकर० नमस्कार कर रहा है ?"

"भन्ते ! मेरे पिताने मरते वक्त मुझे यह कहा है—तात ! दिशाओंको नमस्कार करना। सो मैं भन्ते ! पिताके वचनका सत्कार करते=गुरुकार करते, मान करते=पूजा करते, सवेरे ही उठकर० नमस्कार कर रहा हूं।"

"गृहपति-पुत्र ! आर्य-विनय (=आर्यधर्म)में इस तरह छः दिशायें नहीं नमस्कार की जातीं ?"

"फिर कैसे भन्ते ! आर्य-विनयमें छः दिशायें नमस्कार की जाती हैं ? भन्ते ! अच्छा हो, जैसे आर्य-विनयमें दिशायें नमस्कार की जाती हैं, वैसे भगवान् मुझे धर्म-उपदेश करें।"

"तो गृहपति-पुत्र ! सुनो, अच्छी तरह मनमें करो, कहता हूं।"

"अच्छा भन्ते !"—कह सिगाल गृहपति-पुत्रने भगवान्‌को उत्तर दिया।

भगवान्‌ने यह कहा—

"गृहपति-पुत्र ! जब आर्य-श्रावकके चार कर्म-क्लेश छूट जाते हैं। चार स्थानोंसे (वह) पाप-कर्म नहीं करता। भोगों (=धन)के विनाशके छः कारणोंको नहीं सेवन करता। (तब) वह इस प्रकार चौदह पापों (-बुराइयों) से रहित हो, छः दिशाओंको आच्छादित कर, दोनों लोकोंके विजयमें संलग्न होता है। उसका यह लोक भी आराधित होता है, परलोक भी। वह काया छोड़नेपर, मरनेके बाद, सुगति स्वर्गलोकमें उत्पन्न होता है।

"कैसे इसके चार कर्म-क्लेश छूटते हैं ? गृहपति-पुत्र ! (१) प्राणातिपात (=हिंसा) कर्म-क्लेश है। (२) अदत्तादान (=चोरी)०। (३) मृषावाद (=झूठ)०। (४) काम-मिथ्याचार०। उसके यह चारों क्लेश छूट जाते हैं।"

भगवान्‌ने यह कहा। यह कहकर सुगत शास्ताने यह भी कहा—

"प्राणातिपात, अदत्तादान, मृषावाद (जो) कहा जाता है।
और परदार-गमन (इनकी) पंडित प्रशंसा नहीं करते॥

"किन चार स्थानोंसे पापकर्मको नहीं करता? (१) छन्द (=स्वेच्छाचार) के रास्ते में जाकर पाप-कर्म करता है। (२) द्वेषके रास्तेमें जाकर०। (३) मोहके०। (४) भय के०। चूंकि गृहपति-पुत्र! आर्य श्रावक न छन्दके रास्ते जाता है। न द्वेषके०, न मोहके०, न भयके०। (अतः) इन चार स्थानोंसे पाप-कर्म नहीं करता।—भगवान्‌ने यह कहा। यह कहकर शास्ता सुगतने फिर यह भी कहा—

"छन्द, द्वेष, भय और मोहसे जो धर्मको अतिक्रमण करता है।
कृष्णपक्षके चन्द्रमाकी भांति, उसका यश क्षीण होता है॥
छन्द, द्वेष, भय और मोहसे जो धर्मको अतिक्रमण नहीं करता।
शुक्लपक्षके चन्द्रमाकी भांति, उसका यश बढ़ता है॥

"कौनसे छः भोगोंके अपायमुख (=विनाशके कारण) हैं। (१) शराब नशा आदिका सेवन ···। (२) विकाल (=संध्या) में चौरस्तेकी सैर (=विसिखा-चरिया) में तत्पर होना···। (३) समज्या (=समाज=नाच-तमाशा) का सेवन ···। (४) जूआ, (और दूसरे) दिमाग-बिगाड़नेकी चीजें···। (५) बुरे मित्र (=पाप-मित्र) की मिताई ···। (६) आलस्यमें फँसना ···।

"गृहपति-पुत्र! शराब-नशा आदिके सेवनमें छः दुष्परिणाम हैं। (१) तत्काल धनकी हानि। (२) कलहका बढ़ना। (३) (यह) रोगोंका घर है। (४) अयश उत्पन्न करनेवाला है। (५) लज्जा नाश करनेवाला है। और छठे (६) बुद्धि (=प्रज्ञा) को दुर्बल करता हैं।···

"गृहपति-पुत्र! विकालमें चौरस्तेकी सैरके चार दुष्परिणाम हैं। (१) स्वयं भी वह अ-गुप्त=अ-रक्षित होता है। (२) उसके स्त्री-पुत्र भी अ-गुप्त=अरक्षित होते हैं। (४) उसकी धन संपत्ति भी ०अरक्षित होती है। (४) बुरी बातोंकी शंका होती है। (५) झूठी बात उसपर लागू होती है। (६) बहुतसे दुःख-कारक कामोंका करनेवाला होता है।···।

"गृहपति-पुत्र! समज्याभिचरणमें छः दोष (=आदिनव) हैं। (१) (आज) कहां नाच है (इसकी परेशानी)। (२) कहाँ वाद्य है? (३) कहाँ आख्यान है? (४) कहां पाणिस्वर (हाथसे ताल देकर नृत्य-गीत) है? (५) कहाँ कुम्भ-थूण (वादन-विशेष) है?···

"गृहपति-पुत्र! द्यूत-प्रमाद स्थानके व्यसनमें छः दोष हैं। (१) जय (होनेपर) वैर उत्पन्न करता है। (२) पराजित होनेपर (हारे) धनकी सोच करता है। (३) तत्काल धनका नुकसान। (४) सभामें जानेपर वचनका विश्वास नहीं रहता। (५) मित्रों और अमात्यों द्वारा तिरस्कृत होता है। (६) शादी-विवाह करनेवाले—यह जुवारी आदमी है, स्त्री का भरण-पोषण नहीं कर सकता—सोच, (कन्या देनेमें) आपत्ति करते हैं।···

" गृहपति-पुत्र ! दुष्ट-मित्रकी मिताईके छः दोष होते हैं । जो (१) धूर्त, (२) शौण्ड, (३) पियक्कड़ (=पिपासु), (४) कृतघ्न, (५) वंचक और (६) गुन्डे (=साहसिक, खूनी) होते हैं, वही इसके मित्र होते हैं ।

" गृहपति-पुत्र ! आलस्यमें पड़नेमें यह छः दोष हैं—(१) '(इस समय) बहुत ठंडा है' (सोच) काम नहीं करता । (२) 'बहुत गर्म है'—(सोच) काम नहीं करता । (३) 'बहुत शाम हो गई' (सोच)० । (४) 'बहुत सबेरा है'० । (५) 'बहुत भूखा हूँ'० । (६) 'बहुत खाया हूँ'० इस प्रकार बहुतसे करणीय बातोंको (न करके)···, अनुत्पन्न भोग उत्पन्न नहीं होते, और उत्पन्न भोग नष्ट हो जाते हैं ।···।" भगवान्‌ने यह कहा । यह कहकर शास्ता सुगतने फिर यह भी कहा—

'जो (मद्य-)पानमें सखा होता है, (सामने) प्रिय प्रिय बनता है, (वह मित्र नहीं) ।
जो काम हो जानेपर भी, मित्र रहता है, वही सखा है ॥
अति-निद्रा, पर-स्त्री-गमन, वैर उत्पन्न करना, और अनर्थ करना ।
बुरेकी मित्रता, और बहुत कंजूसी, यह छः मनुष्यको बर्बाद कर देते हैं ॥
पाप-मित्र (=बुरे मित्र वाला), पाप-सखा और पापाचारमें अनुरक्त ।
मनुष्य इस लोक और पर(लोक) दोनोंही से नष्ट-भ्रष्ट होता है ॥
जूआ, स्त्री, वारुणी, नृत्य-गीत, दिनकी निद्रा और अ-समयकी सेवा ।
बुरे मित्रोंका होना, और बहुत कंजूसी, यह छः मनुष्यको बर्बाद कर देते हैं ॥
(जो) जूआ खेलते हैं, सुरा पीते हैं, पराई प्राण-प्यारी स्त्रियों (का गमन करते हैं) ।
नीचका सेवन करते हैं, पंडितका सेवन नहीं, (वह) कृष्ण-पक्षकी चन्द्रमासे क्षीण होते हैं ॥
जो वारुणी(-रत), निर्धन, मुहताज, पियक्कड़, प्रमादी (होता है) ।
(जो) पानीकी तरह ऋणमें अवगाहन करता है, (वह) शीघ्रही अपनेको व्याकुल करता है ।
दिनमें निद्राशील, रातके उठनेको बुरा मानने वाला ।
सदा (नशामें) मस्त-शौंड गृहस्थी (=घर-आवास) नहीं कर सकता ॥
'बहुत शीत है', 'बहुत उष्ण है', 'अब बहुत संध्या होगई',
इस तरह करते मनुष्य धन-हीन हो जाते हैं ॥
जो पुरुष काम करते शीत-उष्णको तृणसे अधिक नहीं मानता ।
वह सुखसे वंचित होने वाला नहीं होता ॥

" गृहपति-पुत्र ! इन चारोंको मित्रके रूपमें अमित्र (=शत्रु) जानना चाहिये । (१) पर-धन-हारकको मित्र-रूपमें अमित्र जानना चाहिये । (२) केवल बात बनाने वालेको० । (३) (सदा) प्रिय वचन बोलने वालेको० । (४) अपाय (=हानिकर कृत्योंमें)-सहायकको० । गृहपति-पुत्र ! चार बातोंसे पर-धन-हारकको० ।—

'(१) पर-धन-हारक होता है । (२) थोड़े (धन) द्वारा बहुत (पाना) चाहता है । (३) भय (=विपत्ति) का काम करता है । (४) और स्वार्थके लिये सेवा करता है ॥

" गृहपति-पुत्र ! चार बातोंसे वचीपरम (=केवल बात बनाने वाले) को० ।—

(१) भूत (कालिक वस्तु) को प्रशंसा करता है । (२) भविष्यकी प्रशंसा करता है । (३) निरर्थक (बात) की प्रशंसा करता है ! (४) वर्तमानके काममें विपत्ति प्रदर्शन करता है ॥

" गृहपति-पुत्र ! चार बातोंसे प्रियभाणी (=प्रिय वचन बोलने वाले) को० ।—

'(१) बुरे काममें भी अनुमति देता है (२) अच्छे काममें भी अनुमति देता है। (३) सामने तारीफ करता है । और (४) पीठ-पीछे निन्दा करता है ॥····

" गृहपति-पुत्र ! चार बातोंसे अपाय-सहायकको० ।—

'(१) सुरा, मेरय, मद्य-पान (जैसे) प्रमादके काममें फंसनेमें साथी होता है । (२) बेवक्त चौरस्ता घूमनेमें साथी होता है (३) समज्या देखनेमें साथी होता है । (४) जूआ खेलने (जैसे) प्रमादके काममें साथी होता है ।···

भगवान्‌ने यह···कहकर, फिर...यह भी कहा—

'पर-धन-हारी मित्र, और जो वचीपरम मित्र है ।
प्रिय-भाणी मित्र और जो अपायोंमें सखा है ॥
यह चारो अमित्र हैं, ऐसा जानकर पंडित (पुरुष) ।
खतरे-वाले रास्तेकी भांति (उन्हें) दूरसे ही छोड़ दे ॥

" गृहपति-पुत्र ! इन चार मित्रोंको सुहृद् जानना चाहिये ।—

(१) उपकारी मित्रको सुहृद् जानना चाहिये । (२) सुख दुःखको समान भोगनेवाले मित्रको० । (३) अर्थ (की प्राप्तिके उपायको) कहनेवाले मित्रको० । (४) अनुकंपक मित्रको०।

" गृहपति-पुत्र चार बातोंसे उपकारी मित्रको सुहृद् जानना चाहिये—

(१) प्रमत्त (=भूल करने वाले) की रक्षा करता है । (२) प्रमत्तकी संपत्तिकी रक्षा करता है। (३) भयभीतका रक्षक (=शरण) होता है । (४) काम पड़ जाने पर, उसे दुगना फल उत्पन्न करवाता है ।···

" गृहपति-पुत्र ! चार बातोंसे समान-सुख-दुःख मित्रको सुहृद् जानना चाहिये—(१) इसे गुह्य (बात) बतलाता है । (२) इसकी गुह्य-बातको गुह्य रखता है । (३) आपद्‌में इसे नहीं छोड़ता (४) इसके लिये प्राण भी देनेको तैयार रहता है ।···

" गृहपति-पुत्र ! चार बातोंसे अर्थ-आख्यायी मित्रको सुहृद् जानना चाहिये—

(१) पापका निवारण करता है । (२) पुण्यका प्रवेश कराता है । (३) अ-श्रुत (विद्या) को श्रुत करता है । (४) स्वर्गका मार्ग बतलाता है ।····

" गृहपति-पुत्र ! चार बातोंसे अनुकंपक मित्रको सुहृद जानना चाहिये—

(१) मित्रके (धन-संपत्ति)होनेपर खुश नहीं होता । (२) होनेपर भी खुश नहीं होता । (३) (मित्रकी) निन्दा करनेवालेको रोकता है । (४) प्रशंसा करनेपर प्रशंसा करता है ॥...। यह कहकर...फिर यह भी कहा—

'जो मित्र उपकारक होता है, सुख-दुःखमें जो सखा (बना) रहता है ।
जो मित्र अर्थ-आख्यायी होता है, और जो मित्र अनुकंपक होता है ॥

यही चार मित्र हैं, बुद्धिमान् ऐसा जानकर ।
सत्कार-पूर्वक माता-पिता और पुत्रकी भाँति उनकी सेवा करें ।
सदाचारी पंडित मधुमक्खीकी भाँति भोगोंको संचय करते ।
प्रज्वलित अग्निकी भाँति प्रकाशमान होता है ॥
(उसको) भोग (=संपत्ति) जैसे वल्मीक बढ़ता है, वैसे बढ़ते हैं ॥
इस प्रकार भोगोंका संचयकर अर्थ-संपन्न कुलवाला (जो) गृहस्थ ।
चार भागमें भोगोंको विभाजित करे, वही मित्रोंको पावेगा ॥
एक भागको स्वयं भोगे, दोभागोंको काममें लगावे ।
चौथे भागको अपत्कालमें काम आनेके लिये रखछोड़े ॥

"गृहपति-पुत्र ! यह दिशायें जाननी चाहियें । माता-पिताको पूर्व-दिशा जानना चाहिये । आचार्योंको दक्षिण-दिशा जाननी चाहिये । पुत्र-स्त्रीको पश्चिम-दिशा० । मित्र-अमात्योंको उत्तर-दिशा० । दास-कमकरको नीचेकी दिशा० । श्रमण-ब्राह्मणोंको ऊपरकी दिशा० ।

"गृहपति-पुत्र ! पांच तरहसे माता-पिताका प्रत्युपस्थापन (=सेवा) करना चाहिये । (१) (इन्होंने मेरा) भरण-पोषण किया है, अतः मुझे (इनका) भरण-पोषण करना चाहिये । (२) (मेरा काम किया है, अतः) इनका काम मुझे करना चाहिये । (३) (इन्होंने कुल-वंश कायम रक्खा, अतः) मुझे कुल-वंश कायम रखना चाहिये । (४) (इन्होंने मुझे दायज्ज (=वरासत दिया, अतः) मुझे दायज्ज प्रतिपादन करना चाहिये । मृत प्रेतोंके निमित्त श्राद्ध-दान देना चाहिये ।...इन पांच तरहसे सेवित (माता-पिता) पुत्र पर पांच प्रकारसे अनुकंपा करते हैं—(१) पापसे निवारण करते हैं । (२) पुण्यमें लगाते हैं । (३) शिल्प सिखलाते हैं । (४) योग्य स्त्रीसे संबंध कराते हैं । (५) समय पाकर दायज्ज निष्पादन करते हैं । गृहपति-पुत्र ! इन पांच बातोंसे पुत्रद्वारा माता-पिता-रूपी पूर्वदिशा प्रत्युपस्थानकी जाती है ।...इस प्रकार इस (पुत्र) की पूर्वदिशा प्रतिच्छन्न (=ढंकी, रक्षायुक्त) क्षेम-युक्त, भय-रहित होती है ।

"गृहपति-पुत्र ! पांच बातोंसे शिष्यद्वारा आचार्य-रूपी दक्षिण-दिशा प्रत्युपस्थान (=उपासना) की जाती है । (१) उत्थान (=तत्परता) से, (२) उपस्थान (=हाजिरी =सेवा) से, (३) सुश्रूषासे, (४) परिचर्या = सत्संग से, सत्कार-पूर्वक शिल्प सीखनेसे ।

"गृहपति-पुत्र ! इस प्रकार पांच बातोंसे शिष्यद्वारा आचार्य सेवित हो, पांच प्रकार से शिष्यपर अनुकंपा करते हैं—(१) सु-विनयसे युक्त करते हैं । (२) सुन्दर शिक्षाको भली-प्रकार सिखलाते हैं । (३) 'हमारी परिपूर्ण रहेंगी' सोच सभी शिल्प सभी श्रुत (=विद्या) को सिखलाते हैं । (४) मित्र-अमात्योंको सुप्रतिपादन करते हैं । (५) दिशाकी सुरक्षा करते हैं ।

"गृहपति-पुत्र ! पांच प्रकारसे स्वामि-द्वारा भार्या-रूपी पश्चिम-दिशाका प्रत्युपस्थान करना चाहिये । (१) सम्मानसे, (२) अपमान न करनेसे, (३) अतिचार (पर-स्त्री-गमन आदि) न करनेसे, (४) ऐश्वर्य-प्रदानसे, (५) अलंकार-प्रदानसे । गृहपति-पुत्र ! इन पांच

प्रकारोंसे स्वामिद्वारा भार्यारूपी पश्चिम-दिशा प्रत्युपस्थानकी जानेपर, स्वामिपर पांच प्रकारसे अनुकंपा करती है— (१) (भार्याद्वारा) कर्मान्त (=काम-काज) भली प्रकार होते हैं। (२) परिजन (=नौकर-चाकर) वशमें रहते हैं। (३) (स्वयं) अतिचारिणी नहीं होती। (४) अर्जितकी रक्षा करती है। (५) सब कामोंमें निरालस और दक्ष होती है।...

"गृहपति-पुत्र! पांच प्रकारसे मित्र-अमात्य-रूपी उत्तर-दिशाका प्रत्युपस्थान करना चाहिये—(१) दानसे, (२) प्रिय-वचनसे, (३) अर्थ-चर्या (=काम कर देने)से, (४) समानता (प्रदर्शन)से, (५) विश्वास-प्रदानसे। गृहपति-पुत्र! इन पांच प्रकारोंसे प्रत्युपस्थानकी गई मित्र-अमात्यरूपी उत्तर-दिशा, पांच प्रकारसे (उस) कुल-पुत्रपर अनुकंपा करती है—(१) प्रमाद (=भूल, आलस्य) कर देनेपर रक्षा करते हैं। (२) प्रमत्तकी संपत्तिकी रक्षा करते हैं। (३) भयभीत होनेपर शरण (=रक्षक) होते हैं। (४) आपत्कालमें नहीं छोड़ते। (५) दूसरी प्रजा (=लोग) भी (ऐसे मित्र-अमात्यवाले) इस पुरुषका सत्कार करती है।...

"गृहपपति-पुत्र! पांच प्रकारोंसे आर्यक (=मालिक) द्वारा दास-कर्मकर रूपी निचली-दिशाका प्रत्युपस्थान करना चाहिये—(१) बलके अनुसार कर्मान्त (=काम) देनेसे, (२) भोजन-वेतन (भत्त-वेतन)-प्रदानसे, (३) रोगि-सुश्रूषासे, (४) उत्तम रसों (वाले पदार्थों) को प्रदान करनेसे, (५) समयपर छुट्टी (=वोसग्ग) देनेसे। गृहपति-पुत्र! इन पांचों प्रकारोंसे... प्रत्युपस्थान किये जानेपर दास-कर्म-कर...पांच प्रकारसे मालिकपर अनुकंपा करते हैं—(१) (मालिकसे) पहिले, (बिस्तरसे) उठ जानेवाले होते हैं। (२) पीछे सोनेवाले होते हैं। (३) दियेको (ही) लेनेवाले होते हैं। (४) कामोंको अच्छी तरह करनेवाले होते हैं। (५) कीर्ति-प्रशंसा फैलानेवाले होते हैं।

"गृहपति-पुत्र! पांच प्रकारसे कुल-पुत्रको श्रमण-ब्राह्मण-रूपी उपरली-दिशाका प्रत्युपस्थान करना चाहिये। (१) मैत्री-भाव-युक्त कायिक-कर्मसे, (२) मैत्री-भाव-युक्त वाचिक-कर्मसे, (३) ० मानसिक-कर्मसे, (४) (याचकों-भिक्षुकोंकेलिये) खुले-द्वार-वाला होनेसे, (५) आमिष (खान-पान आदिकी वस्तु)के प्रदान करनेसे। गृहपति-पुत्र! इन पांच प्रकारोंसे प्रत्युपस्थान किये गये श्रमण-ब्राह्मण......इन छः प्रकारोंसे कुल-पुत्रपर अनुकंपा करते हैं—(१) पाप(=बुराई)से निवारण करते हैं। (२) कल्याण (=भलाई) में प्रवेश कराते हैं। (३) कल्याण (-प्रदान)-द्वारा इनपर अनुकंपा करते हैं। (४) अ-श्रुत (विद्या) को सुनाते हैं। (५) श्रुत (विद्या) को दृढ़ करते हैं। (६) स्वर्गका रास्ता बतलाते हैं।......" ....

ऐसा कहनेपर सिगाल गृहपति-पुत्रने भगवान्‌को यह कहा—"आश्चर्य! भन्ते!! अद्भुत! भन्ते!! ० आजसे मुझे भगवान् अंजलि-बद्ध शरणागत उपासक धारण करें।"

---

(९)

चूल-सुकुलदायि-सुत्त (वि. पू. ४५५) ।

[1]ऐसा मैंने सुना—एक समय भगवान् राजगृहमें वेणुवन कलन्दक-निवापमें विहार करते थे। उस समय सकुल-उदायी परिव्राजक महती परिषद्के साथ परिव्राजकाराममें वास करता था।

"भगवान् पूर्वाह्न समय ०[2]। ०जहाँ सकुल उदायी परिव्राजक था, वहाँ गये। तब सकुल-उदायी परिव्राजकने भगवान्को कहा—"आइये भन्ते०।"

०! "जाने दीजिये भन्ते! इस कथाको०। जब मैं भन्ते! इस परिषद्के पास नहीं होता। तब यह परिषद् अनेक प्रकारकी व्यर्थकी कथायें (=तिरच्छाण-कथा) कहती बैठती है। और जब भन्ते! मैं इस परिषद्के पास होता हूँ, तब यह परिषद् मेरा ही मुख देखती बैठी होती है—'हमें श्रमण उदायी जो कहेगा, उसे सुनेंगे'। जब भन्ते! भगवान् इस परिषद्के पास होते हैं; तब मैं और यह परिषद् भगवान्का मुख ताकती बैठी होती है—'भगवान् हमें जो धर्म उपदेश करेंगे, उसे हम सुनेंगे।'"

"उदायी! तुझे ही जो मालूम पड़े, मुझे कह।"

"पिछले दिनों भन्ते! (जो वह) सर्वज्ञ=सर्वदर्शी, निखिल-ज्ञान-दर्शन (-ज्ञाता) होनेका दावा करते हैं—'चलते, खड़े, सोते, जागते भी (मुझे) निरन्तर ज्ञान-दर्शन उपस्थित रहता है'। वह मेरे शुरूसे लेकर प्रश्न पूछनेपर, इधर उधर जाने लगे, बाहरकी कथामें जाने लगे। उन्होंने कोप, द्वेष और अविश्वास प्रकट किया। तब भन्ते! मुझे भगवान्के ही प्रति प्रीति उत्पन्न हुई—'अहो! निश्चय भगवान् (हैं), अहो! निश्चय सुगत (हैं), जो इन धर्मोंमें पंडित (=कुशल) हैं।'"

"कौन हैं यह उदायी! सर्वज्ञ=सर्वदर्शी०, जो कि तेरे शुरूसे लेकर प्रश्न पूछनेपर इधर उधर जाने लगे० अविश्वास प्रकट किये?"

"भन्ते! निगंठ नाथ-पुत्त।"

"उदायी! जो अनेक प्रकारके पूर्व-जन्मोंको जानता है०[3], वह मुझे आरम्भ (=पूर्व-अन्त)के विषयमें प्रश्न पूछे, और उसको मैं पूर्वान्तके विषयमें प्रश्न पूछूँ। वह मेरे पूर्वान्त-विषयक प्रश्नका उत्तर देकर, मेरे चित्तको प्रसन्न करे; और मैं उसके पूर्वान्त-विषयक प्रश्नका उत्तर देकर, उसके चित्तको प्रसन्न करूँ। जो उदायी! [4]दिव्य० चक्षुसे ०सत्वोंको च्युत होते, उत्पन्न होते। देखता है। वह मुझे दूसरे छोर (=अपर-अन्त)के विषयमें प्रश्न पूछे। मैं उसे दूसरे छोरके विषयमें प्रश्न पूछूँ। वह मेरे० प्रश्नका उत्तर दे, मेरे चित्तको प्रसन्न करे; और० मैं उसके चित्तको०। या उदायी! जाने दो पूर्व-अन्त, जाने दो अपर-अन्त। तुझे धर्म बतलाता हूँ—'ऐसा होनेपर, यह होता है, इसके उत्पन्न होनेसे, यह उत्पन्न होता है। इसके न होनेपर, यह नहीं होता। इसके निरोध (=विनाश) होनेपर, यह निरुद्ध होता है।'

१. म. नि. २ : ३ : ९। २. पृष्ठ २६९। ३. पृष्ठ १७४। ४. पृष्ठ १७५।

" भन्ते ! मैं, जो कुछ कि इसी शरीरमें अनुभव किया है, उसे भी आकार-उद्देश-सहित स्मरण नहीं कर सकता, कहाँसे भन्ते ! मैं अनेक-विहित पूर्व-निवासों (=पूर्व-जन्मों)को स्मरण करूँगा—०, जैसे कि भगवान् ? भन्ते ! मैं इस वक्त पांसु-पिशाचक (=चुड़ैल) को भी नहीं देखता, कहाँसे फिर मैं दिव्य०चक्षुसे० सत्वोंको च्युत० उत्पन्न होते० देखूँगा०, जैसे कि भगवान् ? भन्ते ! भगवानने जो मुझे कहा—' उदायी ! जाने दो पूर्वान्त० इसके निरोध होनेपर यह निरुद्ध होता है ।' यह मेरे लिये अधिक पसन्द जान पड़ता है । क्या भन्ते ! मैं अपने मत (=आचार्यक)के अनुसार प्रश्नोत्तर दे, भगवानके चित्तको प्रसन्न करूँ ।"

" उदायी ! तेरे (अपने) मतमें क्या होता है ?"

" हमारे मत (=आचार्यक)में भन्ते ! ऐसा होता है—' यह परम-वर्ण (है), यह परम-वर्ण (है) ।'

" उदायी ! जो यह तेरे आचार्यकमें ऐसा होता है—' यह परम-वर्ण, यह परम-वर्ण ' वह कौन सा परम-वर्ण है ?"

" भन्ते ! जिस वर्णसे उत्तर-तर=या प्रणीततर (=उत्तमतर) दूसरा वर्ण नहीं है, वह परम-वर्ण है ।"

" कौन है उदायी ! वह वर्ण; जिससे ० प्रणीततर दूसरा वर्ण नहीं है ?"

" भन्ते ! जिस वर्ण (=रङ्ग)से ० प्रणीततर (=अधिक, उत्तम) दूसरा वर्ण नहीं है; वह परम-वर्ण है ।"

" उदायी ! यह तेरी (बात) दीर्घ-(कालतक) भी चले—' जिस वर्णसे ० प्रणीततर दूसरा वर्ण नहीं ० ' तोभी तू उस वर्णको नहीं बतला सकता । जैसे कि उदायी ! (कोई) पुरुष ऐसा कहे—मैं जो इस जनपद (=देश)में जनपद-कल्याणी (=सुन्दरियोंकी रानी) है, उसको चाहता हूँ[1]० तो क्या मानते हो उदायी ! क्या ऐसा होनेपर उस पुरुषका कथन अ-प्रामाणिक नहीं होता ?"

" अवश्य भन्ते ! ऐसा होनेपर उस पुरुषका कथन अप्रामाणिक होता है ।"

" इसी प्रकार तू उदायी !-' जिस वर्णसे ० प्रणीत-तर दूसरा वर्ण नहीं, वह परम वर्ण है ' कहता है; और उस वर्णको नहीं बतलाता ।"

" जैसे भन्ते ! शुभ्र, उत्तम जातिकी अठकोणी, पालिशकी हुई वैदुर्य-मणि (=हीरा), पांडु-कंबल (=लाल-दोशाले)में रखी, भासित होती है, चमकती है, विरोचित होती है; मरनेके बादमी आत्मा इसी प्रकारके वर्णवाला हो, अरोग (=अ-विनाशी) होता है ।"

" तो क्या मानते हो, उदायी ! शुभ्र० वैदुर्य-मणि ० विरोचित होती है, और जो वह रातके अन्धकारमें जुगनू कीड़ा है, इन दोनों वर्णों (=रङ्गों)में कौन अधिक चमकीला (=अभिक्रांततर) और प्रणीततर है ?"

" जो यह भन्ते ! रातके अन्धकारमें जुगनू कीड़ा है, यही इन दोनों वर्णोंमें अधिक चमकीला ० है ।"

१. देखो पृष्ठ १९६ ।

"तो क्या मानते हो, उदायी ! जो वह रातके अंधकारमें जुगनू कीड़ा है और जो वह रातके अंधकारमें तेलका प्रदीप (है); इन दोनों वर्णोंमें कौनसा अधिक चमकीला या प्रणीततर है ?"

"भन्ते ! यह जो रातके अंधकारमें तेल-प्रदीप है० ।"

"तो क्या मानते हो उदायी ! जो वह रातके अंधकारमें तेल-प्रदीप है, और जो वह रातके अंधकारमें महान् अग्नि-स्कंध (=आगका ढेर) है। इन दोनों वर्णोंमें कौनसा अधिक चमकीला० है ?"

"भन्ते जो यह० अग्नि-स्कंध० ।"

"तो० उदायी ! जो वह रातके अंधकारमें महान् अग्निस्कंध है, और जो वह रातके भिनसारमें मेघ-रहित स्वच्छ आकाशमें ओषधि-तारा (=शुक्र[1]) है, इन दोनों वर्णोंमें कौनसा अधिक चमकीला० है ? "

"भन्ते जो यह !० ओषधि-तारा० ।"

"तो० उदायी ! जो वह० ओषधि-तारा है, जो वह आधीरातको मेघ-रहित स्वच्छ आकाशमें उस दिनके उपवासकी पूर्णिमाका चन्द्र है; इन दोनों वर्णोंमें कौनसा अधिक चमकीला० है ?"

"भन्ते० जो वह चन्द्र० ।"

"तो० उदायी ! जो वह० चन्द्र है, और जो वह वर्षाके पिछले मास, शरद्के समय मेघ-रहित स्वच्छ आकाशमें मध्याह्नके समय सूर्य है; इन दोनों वर्णोंमें कौनसा अधिक चमकीला० है ?"

"भन्ते ! जो यह० सूर्य० ।"

"उदायी ! मैं ऐसे बहुतसे देवताओंको जानता हूँ, जिनमें इन चन्द्र-सूर्यका प्रकाश नहीं लगता । तबभी मैं नहीं कहता—'जिस वर्णसे प्रणीत-तर० दूसरा वर्ण नहीं०' । और तू तो उदायी ! जो यह जुगनू कीड़ेसे भी हीन-तर निकृष्ट-तर वर्ण है, वही परम-वर्ण है, उसीका वर्ण (=तारीफ) बखानता है ।"

"कैसा यह अच्छा भगवान् ! कैसा यह अच्छा सुगत !"

"उदायी ! क्या तू ऐसे कह रहा है—'कैसा यह अच्छा० ।"

"भन्ते ! हमारे आचार्यक (=मत)में ऐसा होता है—'यह परम-वर्ण है', 'यह परम-वर्ण है' । सो हम भन्ते ! भगवान्के साथ अपने आचार्यकके विषयमें पूछने = अवगाहन करने = सम्-अनुभाषण करनेपर रिक्त=तुच्छ=अपराधी (से) हैं ।"

"क्या उदायी ! लोक एकान्त-सुख (=सुख-मय) है ? एकांत-सुखवाले लोकके साक्षात्कारके लिये क्या (कोई) आकारवती (=सविस्तर) प्रतिपद् (=मार्ग) है ?"

१. अ. क. "ओसधी-तारका=सुक-तारका (=शुक्रतारा) चूंकि उसके उदय-आरम्भसे औषध ग्रहण करते भी हैं, पीते भी हैं, इसलिये ओसधीतारा कहा जाता है"।

" भन्ते ! हमारे आचार्यकमें ऐसा होता है—एकांत-सुखवाला लोक है, एकांत-सुखवाले लोकके साक्षात्कारके लिये आकार-वती प्रति-पद् भी है ।"

" कौन सी है उदायी !० आकारवती प्रतिपद् ?"

" यहाँ भन्ते ! कोई (पुरुष) प्राणातिपातको छोड़, प्राण-हिंसासे विरत होता है । अदत्तादान (=बिनादिया लेना=चोरी) छोड़, अदत्तादानसे विरत होता है, ०काम-मिथ्याचार (=व्यभिचार)से विरत होता है । ०मृषावाद (=झूठ बोलने)से विरत होता है । किसी एक तपोगुणको लेकर रहता है । यह है भन्ते !० आकारवती प्रतिपद् ।"

" तो ०उदायी ! जिस समय प्राणातिपात-विरत होता है, क्या उस समय आत्मा एकांत-सुखी (=केवल सुख अनुभव करने वाला) होता है, या सुख-दुःखी ?"

" सुख-दुःखी, भन्ते ! "

" तो ० उदायी ! जिस समय ० अदत्तादान-विरत होता है, क्या उस समय आत्मा एकांत सुखी होता है, या [1] सुख-दुःखी ? "

" सुख-दुःखी, भन्ते ! "

" तो ० उदायी ! जिस समय ० काम-मिथ्याचार-विरत० । ० । मृषावाद ० । ० । ० किसी एक तपो-गुणसे युक्त होता है । क्या उस समय आत्मा एकांत-सुखी होता है, या सुख-दुःखी ? "

" सुख-दुःखी भन्ते ! "

" तो क्या मानते हो, उदायी ! क्या व्यवकीर्ण (=मिश्रित) (पुरुष)को सुख-दुःख (मिश्रित) मार्ग (=प्रतिपद्)को पाकर, एकांत-सुखवाले लोकका साक्षात्कार होता है ?"

" कैसा यह अच्छा ! भगवान् ! ! कैसा यह अच्छा ! सुगत !! "

" उदायी ! क्या तू यह ऐसे कहरहा है—'कैसा यह अच्छा ० । "

" भन्ते ! हमारे आचार्यक (=मत)में ऐसा होता है—एकांत-सुखवाला लोक है, एकांत-सुखवाले लोकके साक्षात्कारकेलिये आकार-वती प्रति-पद् है । सो भन्ते ! हम भगवान्‌के ०भाषण करने पर तुच्छ ० हैं । क्या भन्ते ! एकांत-सुखवाला लोक है ? एकांत-सुखवाले लोकके साक्षात्कारकेलिये आकारवती प्रतिपद् है ? "

" है उदायी ! एकांत-सुख लोक, है आकारवती प्रतिपद् । "

" भन्ते ! एकांत-सुखवाले लोकके साक्षात्कारकेलिये आकार-वती प्रतिपद् कौनसी है ?"

" यहां उदायी ! भिक्षु ०[1] प्रथम-ध्यानको प्राप्त हो विहरता है । ० द्वितीय-ध्यानको ० । ० तृतीय-ध्यानको ० । यह है उदायी ! ० आकारवती प्रतिपद् । '

" भन्ते ! एकांत-सुखवाले लोकके साक्षात्कारकेलिये यही आकारवती प्रतिपद् है ? इतने हीसे भन्ते ! उसको एकांत-सुखलोकका साक्षात्कार होगया रहता है ? "

---

१. पृष्ठ १७४, २७१-७४ ।

"नहीं, उदायी ! इतनेसे एकांत-सुखवाले लोकका साक्षात्कार (नहीं) होगया रहता ; यह तो एकांत-सुखलोकके साक्षात्कारकी आकारवती प्रतिपद् है ।"

ऐसा कहनेपर सकुल-उदायी परिव्राजककी परिषद् उन्नादिनी=उच्चशब्द—महाशब्द (=कोलाहल) करनेवाली हुई—यहाँ हम अपने मतसे नष्ट होंगे, यहाँ हम भ्रष्ट (=प्रणष्ट) होंगे । इससे अधिक उत्तम हम नहीं जानते । तब सकुल-उदायी परिव्राजकने, उन परिव्राजकोंको चुपकरा, भगवान्‌को कहा—

"भन्ते ! कितनेसे इस (पुरुष)को एकान्त-सुखवाले लोकका साक्षात्कार होता है ?"

"यहाँ उदायी ! भिक्षु सुखको भी छोड़०[1] चतुर्थ ध्यानको प्राप्त हो विहरता है, (तब) जितने देवता एकान्त-सुखलोकमें उत्पन्न हैं, उन देवताओंके साथ ठहरता है, संलाप करता है, साक्षात्कार करता है । इतनेसे उदायी ! इसको एकांत-सुखवाला लोक साक्षात्कृत (=प्रत्यक्ष) होता है ।

"उदायी ! इसी०के लिये मेरे पास ब्रह्मचर्य नहीं पालन करते । उदायी ! दूसरे उत्तर-तर=प्रणीततर (=इससे भी उत्तम) धर्म हैं, जिनके साक्षात्कारके लिये भिक्षु मेरे पास ब्रह्मचर्य पालन करते हैं ।"

"भन्ते ! वह धर्म० कौनसे हैं ?"

"उदायी ! यहाँ लोकमें तथागत उत्पन्न होते हैं०[2] बुद्ध भगवान्० । वह इन पाँच नीवरणोंको छोड़ चित्तके उपक्लेशों (=मलों)को ०प्रथम-ध्यान०, ०द्वितीय-ध्यान०, ०तृतीय-ध्यान०, ०चतुर्थ-ध्यानको प्राप्त हो विहरते हैं । यह भी उदायी ! धर्म उत्तर-तर=प्रणीत-तर है, जिसके साक्षात्कारके लिये भिक्षु मेरे पास ब्रह्मचर्य-पालन करते हैं । वह०[3]अनेक प्रकारके पूर्व निवासको अनुस्मरण करते हैं० ।०। च्युत और उत्पन्न होते प्राणियोंको जानते हैं० ।०। ०दुःखनिरोध-गामिनी-प्रतिपद्० आस्रव-निरोध-गामिनी-प्रतिपद्‌को यथार्थतः जानते हैं '० यहाँ कुछ नहीं है', जानते हैं, यह उदायी ! उत्तरि-तर० धर्म है, जिसके० लिये० मेरे पास ब्रह्मचर्य-पालन करते हैं ।"

ऐसा कहनेपर उदायी परिव्राजकने भगवान्...(सेप्रव्रज्या माँगी, तब उसकी परिषद्‌ने) कहा—

"उदायी ! आप श्रमण गौतमके पास मत ब्रह्मचर्यवास करें (=मत शिष्य हों), मत आप उदायी आचार्य होकर अन्तेवासी (=शिष्य)की तरह वास करें, जैसे करका (=मटकी) होकर पुरवा होवे, इसी प्रकारकी यह सम्पत् (=अवस्था) आप उदायीकी होगी। आप उदायी ! श्रमण गौतम० ।"

इस प्रकार सकुल-उदायी०की परिषद्‌ने सकुल-उदायी०को भगवान्‌के पास ब्रह्मचर्य-पालन करनेमें विघ्न डाला ।

---

१. पृष्ठ २७१-२७२ । २. पृष्ठ १७२-१७४ । ३. पृष्ठ १७४-१७५ ।

१८वाँ वर्षा चालिय-पर्वतमें । दिट्ठिवज्ज-सुत्त । चूलि-अस्सपुर-सुत्त । कजंगला-सुत्त । (वि. पू. ४५४) ।

(भगवान्ने) [1]अठारहवाँ (वर्षा) चालिय-पर्वतमें (बिताई) ।

\+ + + +

दिट्ठिवज्ज-सुत्त ।

[2]ऐसा मैंने सुना—एक समय भगवान् चम्पामें गग्गरा पुष्करिणीके तीर विहार करते थे ।

तब वज्जिय-महित गृहपति भगवान्के दर्शनको चम्पासे निकला । वज्जिय-महित गृहपतिको यह हुआ—यह भगवान्के दर्शनका काल नहीं है, भगवान् ध्यानमें होंगे । मन-भावना करनेवाले भिक्षुओंके भी दर्शनका यह काल नहीं, वह मन-भावना वाले भिक्षु भी (इस समय) ध्यानस्थ होंगे । क्यों न मैं जहाँ अन्य-तैर्थिक (=दूसरे पंथ वाले) परिव्राजकोंका आराम है, वहाँ चलूँ ।

तब वज्जिय-महित गृहपति, जहाँ अन्य-तैर्थिक परिव्राजकोंका आराम था, वहाँ गया । उस समय अन्य-तैर्थिक परिव्राजक एकत्रित···हो···हल्ला करते,···नाना प्रकारकी व्यर्थ-कथा कहते, बैठे थे । उन अन्य-तैर्थिक परिव्राजकोंने दूरसे ही वज्जिय-महित गृह-पतिको आते देखा । देखकर एकने दूसरेको कहा—आप सब चुप हों, मत आप सब शब्द करें । यह श्रमण गौतमका श्रावक वज्जिय-महित गृह-पति आ रहा है । श्रमण गौतमके जितने गृहस्थ सफेद-वस्त्रधारी श्रावक चंपामें वसते हैं, यह वज्जिय-महित (=वज्जि देशमें संमानित) गृहपति उनमेंसे एक है । यह आयुष्मान् अल्प-शब्द (=निःशब्द)-आकांक्षी, अल्प शब्द-प्रशंसक होते हैं । अल्प-शब्द परिषद्को देखकर, क्या जाने (इधर) आना चाहें ।"

तब वह परिव्राजक चुप हुये । वज्जिय-महित गृह-पति जहाँ वह परिव्राजक थे, वहाँ गया । पास जाकर उन अन्य तैर्थिक परिव्राजकोंके साथ संमोदन···कर, ···एक ओर बैठ गया । एक ओर बैठे वज्जिय-महित गृहपतिको उन परिव्राजकोंने कहा—

" सचमुच गृहपति ! (क्या) श्रमण गौतम सभी तपोंकी निन्दा करते हैं ? (क्या) सभी रूक्ष-आजीवी (=रूखा जीवन बिताने वाले) तपस्वियोंको भला-बुरा (=उपक्रोश)··· कहते हैं ।

"भन्ते ! भगवान् सभी तपोंकी निंदा नहीं करते, न सभी० तपस्वियोंको भला-बुरा कहते हैं । निंदनीयकी भगवान् निन्दा करते हैं, प्रशंसनीयकी प्रशंसा करते हैं । निंदनीयकी निन्दा करते, प्रशंसनीयकी प्रशंसा करते हुये, वह भगवान् यहाँ विभज्यवादी (=विभाग कर प्रशंसनीय अंशके प्रशंसक और निंदनीय अंशके निंदक) हैं ।"

---

१. अ. नि. अ. क. २:४:६ । २. अ. नि. १०:२:५:४: ।

ऐसा कहनेपर एक परिव्राजकने वज्जिय-महित गृह-पतिको कहा—

"रहने दे तू गृहपति ! जिस श्रमण गोतमकी तू प्रशंसा कर रहा है, वह श्रमण गोतम वैनयिक (=खंडन करनेवाला) अ-प्रज्ञप्तिक (=किसीका प्रतिपादन न करनेवाला) है।"

"भन्ते ! मैं आयुष्मानोंको धर्मके साथ कहता हूँ। भगवान्ने 'यह कुशल (=अच्छा) है, प्रतिपादन किया है, भगवान्ने 'यह अ-कुशल (=बुरा) है' प्रतिपादन किया है। इस प्रकार कुशल, अ-कुशलको प्रतिपादन करते हुये, भगवान् स-प्रज्ञप्तिक (=सिद्धान्त-प्रतिपादक) हैं, वैनयिक=अ-प्रज्ञप्तिक नहीं।"

ऐसा कहने पर वह परिव्राजक चुप हो, मूक हो, कन्धा झुकाये, अधोमुख सोच करते प्रतिभा-हीन हो बैठे। तब वज्जिय-महित गृहपति उन परिव्राजकोंको ० प्रतिभाहीनहो बैठे देख, आसनसे उठ, जहाँ भगवान् थे, वहाँ गया। जाकर भगवान्को अभिवादनकर एक ओर बैठा। एक ओर बैठे वज्जिय-महित गृहपतिने जो कुछ कथा-संलाप अन्य-तैर्थिक परिव्राजकोंके साथ हुआ था, सब भगवान्से कह दिया।

"साधु, साधु, गृहपति ! उन मोघ-पुरुषोंको समय समय पर इस प्रकारसे परास्त करना चाहिये। गृहपति ! मैं नहीं कहता—'सब तप तपना चाहिये,' न मैं कहता हूँ—'सब तप नहीं तपना चाहिये'। गृहपति ! मैं नहीं कहता हूँ—'सब·········(व्रत) धारण करना चाहिये'। न मैं कहता हूँ—'सब ·· ···(व्रत) न धारण करना चाहिये'। गृहपति ! मैं नहीं कहता—'सब प्रधानों (निर्वाणसंबंधी प्रयत्नों)में लगना चाहिये,' न मैं कहता हूँ—'सब प्रधानों में न लगना चाहिये।' गृहपति ! मैं नहीं कहता—'सभी वर्जन वर्जित करना चाहिये,' ०। गृहपति ! मैं नहीं कहता—'सभी विमुक्तियाँ छोड़नी चाहियें,' ०।

"गृहपति ! जिस तपको तपते इसके अकुशल-धर्म (=पाप) बढ़ते हैं, कुशल-धर्म (=पुण्य) क्षीण होते हैं, 'ऐसा तप न करना चाहिये'-कहता हूँ। जिस तपको तपते इसके अकुशल-धर्म क्षीण होते हैं, कुशल-धर्म बढ़ते हैं, 'ऐसा तप तपना चाहिये'—कहता हूँ। जिस व्रत-ग्रहणसे ०। जिस प्रधानमें लगनेसे ०। जिस प्रति-निस्सर्ग (=वर्जन)के वर्जित करने से ०। जिस विमुक्तिके छोड़नेसे ०।"

तब वज्जि-महित गृहपति भगवान्से धार्मिक-कथा द्वारा० समुत्तेजित, संप्रशंसित हो, आसनसे उठ, भगवान्को अभिवादनकर प्रदक्षिणाकर, चला गया।

तब वज्जि-महित गृह-पतिके चले जानेके थोड़ीही देर बाद, भगवान्ने भिक्षुओंको संबोधित किया।

"भिक्षुओ ! जो भिक्षु इस धर्म-विनयमें अल्प-मल-वाला है, वह भी अन्य-तैर्थिक परिव्राजकोंको धर्मके साथ, इसी प्रकार सुनिग्रहके साथ, सुनिगृहीत (=सुपराजित) करे; जैसेकि वज्जि-महित गृहपतिने निगृहीत किया।

चूल-अस्सपुर-सुत्त ।

[1]ऐसा मैंने सुना—एक समय भगवान् अंग(देश)में अंगोंके कस्बे अश्वपुरमें विहार करते थे। वहाँ भगवान्ने भिक्षुओंको संबोधित किया—"भिक्षुओ !"

१- म. नि. १ : ४ : १० ।

"भदन्त ! " कह उन भिक्षुओंने भगवान्‌को उत्तर दिया । भगवान् ने कहा—

"भिक्षुओ ! 'श्रमण' 'श्रमण' लोग नाम धरते हैं । तुमलोग भी, 'तुम कौन' हो पूछनेपर '(हम) श्रमण हैं' उत्तर देते हो । ऐसी संज्ञा ऐसी प्रतिज्ञावाले तुम लोगोंको ऐसा सीखना चाहिये—जो यह श्रमणको सच करनेवाला मार्ग है, हम उस मार्गपर आरूढ़ होंगे, इस प्रकार यह हमारी संज्ञा सच होगी, हमारी प्रतिज्ञा (=दावा) यथार्थ होगी । (और) जिनके (दिये) चीवर (=वस्त्र), पिंड-पात (=भिक्षा) , शयनासन (=निवास), ग्लान-प्रत्यय-भैषज्य (=रोगीका औषध-पथ्य) सामग्रीका हम उपभोग करते हैं । (तब) उनके (किये) हमारे प्रति वह (दान-) कार्यभी महाफलवाले महामाहात्म्यवाले होंगे; और हमारी भी यह प्रव्रज्या निर्मल सफल=स-उदय होगी ।

" भिक्षुओ ! भिक्षु श्रमणको सच करनेवाले मार्ग(=श्रमण-सामीची प्रतिपदा)पर कैसे आरूढ़ नहीं होता ? भिक्षुओ ! जिस किसी अभिध्यालु (=लोभी) भिक्षुको अभिध्या नष्ट नहीं होती, द्रोह-सहित चित्तवाले(=व्यापन्नचित्त)का व्यापाद (=द्रोह) नष्ट नहीं हुआ रहता, क्रोधीका क्रोध०, पाखंडी (=उपनाही) का पाखंड०, मर्षीकी कल्क (=आमर्ष=अमरख) ० , पलासी(=प्रदाशी=निष्ठुर)का पलास०, ईर्ष्यालुओंकी ईर्ष्या०, मत्सरीका मत्सर (=कृपणता) ०, शठकी शठता०, मायावी(=वंचक)की माया०, पापेच्छु (=बद-नीयत)की पापेच्छा०, मिथ्या-दृष्टि (=झूठे सिद्धान्तवाले) की मिथ्या दृष्टि (=झूठी धारणा) नष्ट नहीं हुई रहती । वह इन श्रमण-मलों=श्रमण-दोषों=श्रमण-कसटों, अपायको ले जानेवाले, दुर्गतिको अनुभव करानेवाले कारणोंके, अ-विनाशसे 'श्रमण-सामीचि-प्रतिपद्‌पर आरूढ़ नहीं हुआ,' (ऐसा) मैं कहता हूँ । जैसे भिक्षुओ ! मटज नामक ··· तेज, दुधारा आयुध (=हथियार) होता है, वह संघाटीसे ढँका लिपटा हो; उसके ही समान भिक्षुओ ! मैं इस भिक्षुकी प्रव्रज्या कहता हूँ ।

" भिक्षुओ ! मैं संघाटी(=भिक्षु-वस्त्र)वालेके संघाटी-धारण मात्रसे, श्रमणता (=श्रामण्य) नहीं कहता । अचेलक(=वस्त्र-रहित)के नंगे रहने मात्रसे श्रामण्य (=साधुपन) नहीं कहता । भिक्षुओ ! रजोजल्लिक(=कीचड-वासी साधु)की रजोजल्लिकता मात्रसे श्रामण्य नहीं कहता ।···उदकावरोहक(=जल-वासी)के जलवास मात्रसे० । ०वृक्ष-मूलिक(=सदा वृक्षके नीचे रहने वाले)के वृक्षके नीचे वास मात्रसे० । ०अभ्यवकाशिक (=चौड़ेमें रहने वाले)० । ०उब्भट्ठक(=सदा खड़ा रहने वाले)० । ०पर्याय-भत्तिक (बीच बीचमें निराहार रह, भोजन करने वाले)० । ०मंत्र-अध्यायक(=वेद-पाठी)के मंत्र-अध्ययन मात्रसे मैं श्रामण्य नहीं कहता । ०जटिलकके जटा-धारण मात्रसे० ।

" भिक्षुओ ! यदि संघाटिकके संघाटी-धारण मात्रसे, अभिध्यालुका लोभ हट जाता, ०व्यापाद हट जाता, ०क्रोध०, ०उपनाह०, ०मर्ष०, ०पलास०, ०ईर्ष्या०, ०मात्सर्य०, ०शठता०, ०माया०, ०पापेच्छा०, मिथ्या-दृष्टिकी मिथ्या दृष्टि हट जाती; तो उसको मित्र-अमात्य जाति-बन्धु पैदा होते ही, संघाटिक बना देते, संघाटिकताका ही उपदेश करते— 'आ भद्रमुख ! तू संघाटिक होजा । संघाटिक होनेपर संघाटी-धारण मात्रसे, तुझ अभिध्यालुका

लोभ नष्ट हो जायगा ।०। मिथ्या-दृष्टिकी मिथ्या-दृष्टि नष्ट हो जायगी ।' क्योंकि भिक्षुओ ! मैं किसी किसी संघाटिकको भी अभिध्यालु, व्यापन्न-चित्त, क्रोधी, उपनाही, मर्षी, पलासी, ईर्ष्यालु, मत्सरी, शठ, मायावी, पापेच्छु, मिथ्या-दृष्टि देखता हूँ, इसलिये संघाटिकके संघाटी-धारण मात्रसे श्रामण्य नहीं कहता ।

" भिक्षुओ ! यदि अचेलककी अचेलकता-मात्र से ० । ० रजोजल्लिककी रजोजल्लिकता मात्रसे ० । ० उदकावरोहकके उदकावरोहण मात्रसे ० । वृक्ष-मूलिककी वृक्ष-मूलिकता मात्रसे ० । ० अभ्यवकाशिक ० । ० उब्भट्ठिक० । ० पर्याय-भक्तिक ० । ० मंत्र-अध्यायक० । ० जटिलकके जटा-धारण मात्रसे ० अभिध्या ०—० मिथ्या-दृष्टि नष्ट होती ० ।

" भिक्षुओ ! भिक्षु श्रमण-सामीची-प्रतिपद्(=सच्चा श्रमण बनानेवाले मार्ग)पर कैसे मार्गारूढ़ होता है ? भिक्षुओ ! जिस किसी अभिध्यालु भिक्षुकी अभिध्या (=लोभ) नष्ट होती है, ०—० मिथ्यादृष्टि नष्ट होती है; (वह) इन श्रमण-मलों०केविनाशसे श्रमण-सामीची-प्रतिपद्पर मार्गारूढ़ होनेहीसे कहता हूँ । (फिर) वह इन सभी पापक अ-कुशल धर्मोंसे, अपनेको विशुद्ध देखता है, अपनेको विमुक्त देखता है । (फिर) इन सभी पापक० धर्मोंसे अपनेको विशुद्ध० विमुक्त देखनेवाले उस(पुरुष)को, प्रमोद उत्पन्न होता है । प्रमुदितको प्रीति उत्पन्न होती है । प्रीतिमान्की काया स्थिर होती है । स्थिर-शरीर सुख अनुभव करता है । सुखितका चित्त समाहित (=एकाग्र) होता है । वह (१) मैत्रीयुक्त चित्तसे एकदिशाको प्लावितकर विहरता है, और दूसरी दिशा०, और तीसरी०, और चौथी० इसी प्रकार ऊपर, नीचे, तिर्छे, सबकी इच्छासे, सबके अर्थ, सभी लोकको विपुल, महान्, अ-प्रमाण, अ-वैर, द्वेष-रहित मैत्री-पूर्ण चित्तसे प्लावितकर विहरता है। (२) करुणा-युक्त चित्तसे ० । (३) मुदिता-युक्त चित्तसे० । (३) उपेक्षा-युक्त चित्तसे ० ।

" जैसे भिक्षुओ ! स्वच्छ, मधुर, शीतल जलवाली ' रमणीय सुन्दर घाटोंवाली पुष्करणी हो । यदि पूर्वदिशासे भी घाममें तपा (=घर्म-अभितप्त)=घर्म-परेत, थका, तृषित =पिपासित पुरुष आवे; वह उस पुष्करिणीको पाकर उदक-पिपासाको दूर करे, घामके तापको दूर करे । पश्चिम-दिशासे भी० । उत्तर-दिशासे भी० । दक्षिण-दिशासे भी० । जहाँ कहींसे भी० । ऐसे ही भिक्षुओ ! यदि क्षत्रिय-कुलसे घरसे बेघर प्रव्रजित होवे, और वह तथागतके उपदेश किये धर्मको प्राप्तकर, इस प्रकार मैत्री, करुणा, मुदिता, उपेक्षाकी भावना करे, (तो वह) आध्यात्मिक शांतिको प्राप्त करता है । अध्यात्मिक शान्ति(=उपशम)से ही 'श्रमण-सामीची-पतिपद्पर मार्गारूढ है' कहता हूँ । ०यदि ब्राह्मण-कुलसे० । ०यदि वैश्यकुलसे० । ०जिस किसी कुलसे भी घरसे बेघर प्रव्रजित० ।

" क्षत्रिय-कुलसे भी घरसे बेघर प्रव्रजित हो । और वह आस्रवों (=चित्त-दोषों)के क्षयसे, [1]आस्रव-रहित चित्त-विमुक्ति प्रज्ञा-विमुक्तिको, इसी जन्ममें स्वयं जानकर=साक्षात्कर =प्राप्तकर विहरता है । आस्रवोंके क्षयसे श्रमण होता है । ब्राह्मण-कुलसे भी० । वैश्य-कुलसे भी० । शूद्र-कुलसे भी० । जिस किसी कुलसे भी० ।"

भगवान्ने यह कहा, उन भिक्षुओंने सन्तुष्ट हो भगवान्के भाषणको अनुमोदित किया।

कजंगला-सुत्त ।

[1]ऐसा मैंने सुना—एक समय भगवान् [2]कजंगलामें वेणुवनमें विहार करते थे ।

तब बहुतसे कजंगलाके उपासक जहां कजंगला भिक्षुणी थी, वहां गये । जाकर कजंगला भिक्षुणीको अभिवादनकर, एक ओर बैठे । एक ओर बैठे वे उपासक कजंगला भिक्षुणी को बोले—

" अय्या ! भगवान्ने यह कहा है—'महाप्रश्नोंमें एक प्रश्न, एक उद्देश=एक उत्तर, दो०, तीन०, चार०, पांच०, छः०, सात०, आठ०, नव०, दस प्रश्न, दस उद्देश दस उत्तर (=व्याकरण)' हैं । अय्या ! भगवान्के इस संक्षिप्त कथनका विस्तारसे कैसे अर्थ समझना चाहिये ?"

" आवुसो ! मैंने इसे भगवान्के मुखसे नहीं सुना, ०नहीं ग्रहण किया; और मनकी भावना करने वाले भिक्षुओंके मुखसे भी नहीं सुना, ०नहीं ग्रहण किया; बल्कि यहां जो मुझे समझ पड़ता है, उसको सुनो, अच्छी तरह मनमें करो, कहती हूं ।"

" अच्छा अय्या ! " कह उपसकोंने···उत्तर दिया । कजंगला भिक्षुणीने कहा—

" 'एक प्रश्न, एक उद्देश, एक व्याकरण (=उत्तर)' ऐसा जो भगवान्ने कहा । सो किस कारण ऐसा कहा ? आवुसो ! एक वस्तुमें भिक्षु भली प्रकार निर्वेद (=उदासीनता) को प्राप्त हो, भलीप्रकार विरागको प्राप्त हो, भलीप्रकार विरक्त हो, अच्छी प्रकार अन्त-दर्शी हो, समानताके अर्थको प्राप्त हो, इसी जन्ममें दुःखका अन्त करनेवाला होता है। किस एक धर्ममें ? 'सभी सत्त्व (=प्राणी) आहार-स्थितिक (=आहारपर निर्भर) हैं ।' आवुसो ! इस एक वस्तुमें भिक्षु० । जो भगवान्ने 'एक प्रश्न, एक उद्देश, एक व्याकरण' कहा, सो इसी कारणसे कहा । सो किस कारणसे ऐसा कहा ? आवुसो ! दो धर्मोंमें भिक्षु भली प्रकार निर्वेदको प्राप्त० । किन दो धर्मोंमें ? नाम और रूपमें ।०। 'तीन प्रश्न तीन उद्देश तीन व्याकरण' जो भगवान्ने ऐसा कहा ; (सो) किस कारणसे ऐसा कहा ? आवुसो ! तीन धर्मोंमें भिक्षु भली प्रकार निर्वेदको प्राप्त० । किन तीन धर्मोंमें ? तीनों वेदनाओं (=सुख, दुःख, न सुख-न दुःख) में ।०।

" चार प्रश्न, चार उद्देश, चार व्याकरण' ऐसा जो भगवान्ने कहा ; सो किस कारणसे ऐसा कहा ? आवुसो ! चार धर्मोंमें भिक्षु अच्छी प्रकार (=सम्यक्) चित्तको भावना कर (=सुभावित-चित्त) अच्छी तरह अन्त-दर्शी, समानताके अर्थको प्राप्त हो, इसी जन्ममें दुःख का अन्त करने वाला होता है । किन चार धर्मोंमें ? चार [3]स्मृति प्रस्थान० । पांच धर्मोंमें··· सुभावित-चित्त० । किन पांच धर्मोंमें ? पांच [4]इन्द्रियोंसे० । छः धर्मोंमें···सुभावित-चित्त० । किन छः धर्मोंमें । छः निःसरणीय धातुओंमें० । ०सात धर्मोंमें···सुभावित-चित्त० । ०सात [3]बोध्यङ्गोंमें० । ०आठ धर्मोंमें सम्यक् निर्वेदको प्राप्त० । ०नव [5]सत्त्वावास (=प्राणियोंके देव मानुष आदि नव आवास)० । ०दस धर्मोंमें सम्यक् सुभावित-चित्त० । ०दश [5]कुशल कर्म-पथोंमें० । 'दस प्रश्न, दस उद्देश, दस व्याकरण' ऐसा जो भगवान्ने कहा सो इसी

---

१. अ. नि. १:१:३:८ । २. कंकजोल (जि० संथाल-पर्गना) । ३. पृष्ठ ११८-२७ । ४. पृष्ठ २६९ । ५. देखो संगीत-परियाय सुत्त ।

कारणसे कहा । इस प्रकार आवुसो ! भगवान्ने 'महाप्रश्नोंमें, एक प्रश्न, एक उद्देश, एक व्याकरण०—०दश प्रश्न, दश उद्देश, दश व्याकरण' कहा । आवुसो ! भगवान्के इस संक्षिप्त कथनका में ऐसा अर्थ जानती हूँ । आवुसो ! यदि चाहो, तो तुम भगवान्के पास जाकर इस बात को पूछो, जैसा भगवान् व्याकरण, (=उत्तर) करें, वैसा धारण करो ।"

"अच्छा अय्या !" कह, कजंगलाके उपासक कजंगला भिक्षुणीके भाषणको अभिनन्दितकर, कजंगला भिक्षुणीको अभिवादनकर प्रदक्षिणाकर, जहाँ भगवान् थे, वहाँ गये । जाकर भगवान्को अभिवादनकर एक ओर बैठ गये । एक ओर बैठे कजंगला-निवासी उपासकोंने कजंगला भिक्षुणीके साथ जितना कथा-संलाप हुआ था, उस सबको भगवान्को कह दिया ।

"साधु साधु, गृहपतियो ! कजंगला भिक्षुणी पंडिता है । कजंगला भिक्षुणी महापंडिता है । कजंगला भिक्षुणी महाप्रज्ञा है । यदि गृहपतियो ! तुमने मेरे पास आकर इस बातको पूछा होता ; तो मैं भी इसे वैसे ही व्याकरण करता, जैसे कजंगला भिक्षुणीने व्याकरण किया । यही उसका अर्थ (है,) इसीको धारण करना ।

(११)

इन्द्रिय-भावना-सुत्त । सम्बहुल-सुत्त । उद्दायि-सुत्त । गोधिय-सुत्त ।
(वि. पू. ४५४-५३) ।

[1]ऐसा मैंने सुना—एक समय भगवान् कजंगलामें सुवेणुवन (=[2]सुवेलुवन)में विहार करते थे ।

तब पारासिवियका अन्तेवासी (=शिष्य) उत्तर-माणवक जहां भगवान् थे, वहां गया । जाकर भगवान्‌के साथ संमोदन कर··· एक ओर बैठगया । एक ओर बैठे पारासिवियके अन्तेवासी उत्तर माणवकको भगवान्‌ने कहा —

"उत्तर! क्या पारासिविय ब्राह्मण शिष्योंको इन्द्रिय-भावना (-सम्बन्धी) उपदेश करता है ?"

"हे गौतम! पारासिविय ब्राह्मण शिष्योंको इन्द्रिय भावनाका उपदेश करता है ।"

"तो उत्तर! कैसे ०इन्द्रिय-भावनाका उपदेश करता है ?"

"हे गौतम! आंखसे रूप नहीं देखना, कानसे शब्द नहीं सुनना । इस प्रकार हे गौतम! पारासिविय ब्राह्मण शिष्योंको इन्द्रिय-भावनाका उपदेश करता है ।"

"जैसा पारासविय ब्राह्मणका वचन है, वैसा होनेपर, उत्तर! अन्धा इन्द्रिय-भावना करनेवाला (=भावितेन्द्रिय) होगा, बधिर भावितेन्द्रिय होगा । क्योंकि उत्तर! अन्धा आंखसे रूप नहीं देखता, बहिरा कानसे शब्द नहीं सुनता ।"

ऐसा कहनेपर पारासवियका अन्तेवासी उत्तर माणवक चुप, मूक, गर्दन झुकाये, अधो-मुख, सोचता, प्रतिभाहीन, हो बैठा । तब भगवान्‌ने ०उत्तर माणवकको चुप० जानकर आयु-ष्मान् आनन्दको संबोधित किया—

"आनन्द! पारासविय ब्राह्मण श्रावकों (=शिष्यों)को दूसरी तरह (=अन्यथा) इन्द्रिय-भावना उपदेश करता है, और आर्योंके विनयमें दूसरी तरह अनुत्तर (=सर्वोत्कृष्ट) भावना होती है ।"

"भगवान् इसीका काल है, सुगत! इसीका काल है, कि भगवान् आर्य-विनय (=बौद्ध-धर्म) के अनुत्तर इन्द्रिय-भावनाका उपदेश करें । भगवान्‌से सुनकर भिक्षु धारण करेंगे ।"

"तो आनन्द! सुनो, अच्छी तरह मनमें करो, कहता हूँ ।" "अच्छा भन्ते!"···

भगवान्‌ने यह कहा—

"कैसे आनन्द! आर्य-विनयमें अनुत्तर इन्द्रिय-भावना होती है ? यहां आनन्द! चक्षु (=आंख)से रूपको देखकर भिक्षुको मनाप (=पसन्द मालूम) होता है, अ-मनाप होता है, मनाप-अमनाप होता है । वह ऐसा जानता है—'यह मुझे मनाप उत्पन्न हुआ, अ-मनाप०,

---

१. म. नि । ३ : ५ : १० । २. 'वेलुवन', 'सुखेलुवन' भी पाठ है ।

मनाप-अ-मनाप ० । किन्तु यह संस्कृत (=कृत, कृत्रिम)=औदारिक=प्रतीत्य-समुत्पन्न (=हेतु-जनित) है । यही शान्त, यही प्रणीत (=उत्तम) है, जो कि यह (रूप आदिसे) उपेक्षा । (तव) उसका वह उत्पन्न मनाप, उत्पन्न अ-मनाप, ० मनाप-अ-मनाप निरुद्ध (=नष्ट) होजाता है । उपेक्षा ठहरती है । जैसे आनन्द ! आंखवाला पुरुष पलक चढ़ाकर गिरादे, पलक गिराकर चढ़ादे; इसो तरह आनन्द ! जिस किसीको इतना शीघ्र, इतनी जल्दी, इतनी आसानीसे, उत्पन्न मनाप, उत्पन्न अ-मनाप, उत्पन्न मनाप-अमनाप दूर होजाते हैं, उपेक्षा ठहरती है । यह आनन्द ! आर्य-विनयमें चक्षुसे जाने जानेवाले (=चक्षुर्विज्ञेय) रूपोंके विपयकी अनुत्तर इन्द्रिय-भावना कही जाती है । और फिर आनन्द ! श्रोत्रसे शब्दको सुनकर ० । ० उपेक्षा ठहरती है । जैसेकि आनन्द ! बलवान् पुरुप अप्रयास चुटकी बजावे; ऐसेही आनन्द ! जिस किसीको इतना शीघ्र ० । यह आनन्द ! आर्य-विनयमें श्रोत्र-विज्ञेय शब्दोंके विपयकी अनुत्तर इन्द्रिय-भावना कही जाती है । और फिर आनन्द ! घ्राणसे गंधको सूँघकर ० । ० उपेक्षा ठहरती है । जैसे कि आनन्द ! पद्म पत्रमें थोड़ीसी हवासे पानीके बुल-बुले उठते हैं, ठहरते नहीं; ऐसेही आनन्द ! ० । ० यह ० घ्राण-विज्ञेय गंधोंके विपयकी अनुत्तर इन्द्रिय-भावना है । और फिर आनन्द ! जिह्वासे रस चखकर ० । ० उपेक्षा ठहरती है । जैसे कि आनन्द ! बलवान् पुरुप जिह्वाके नोकपर खेल-पिंड (=थूक-कफ) जमाकर, अप्रयास ही फेंकदे; ऐसे ही आनन्द ! ० । यह ० जिह्वा-विज्ञेय रसोंके विपयकी अनुत्तर इन्द्रिय-भावना है। और फिर आनन्द ! काया (=त्वक्)से स्प्रष्टव्यके स्पर्शसे ० । ० उपेक्षा ठहरती है । जैसे कि आनन्द ! बलवान् पुरुष समेटी बांहको फैलावे, फैलाई बांहको समेटे; ऐसेही आनन्द ! ० । यह ० काय-विज्ञेय स्प्रष्टव्योंके विपयकी अनुत्तर इन्द्रिय-भावना है । और फिर आनन्द ! मनसे धर्मको जानकर ० । ० उपेक्षा ठहरती है । जैसे कि आनन्द ! बलवान् पुरुप दिनमें तपे लोहेके कडाहपर दो-तीन पानीकी बूँद डाले;…आनन्द ! पानीकी बूँद पड़कर…तुरन्त ही… क्षयको प्राप्तहो जाये । ऐसेही आनन्द ! ० । यह मन-विज्ञेय धर्मोके विपयकी अनुत्तर इन्द्रिय-भावना है ।

"यहाँ आनन्द ! चक्षुसे रूपको देखकर, भिक्षुको मनाप (=प्रिय) उत्पन्न होता है, अ-मनाप उत्पन्न होता है, मनाप-अमनाप उत्पन्न होता है । वह उस उत्पन्न मनाप, ०अमनाप, मनाप-अमनाप से दुःखित होता है, घबराता है, घिना करता है । श्रोत्रसे शब्द सुनकर० । घ्राणसे गंध सूँघकर० । जिह्वासे रस चखकर० । कायासे स्प्रष्टव्य छूकर ० । मनसे धर्म जानकर, भिक्षुको मनाप०, अमनाप०, मनाप-अमनाप उत्पन्न होता है । वह उस उत्पन्न मनाप, अ-मनाप, मनाप-अमनापसे दुःखित होता है, घबराता है, घृणा करता है । इस प्रकार आनन्द ! शैक्ष्य (=जिसको अभी सीखना है, सेख;-प्रतिपद् (=पटिपदा) होती है ।

"कैसे आनन्द ! भावितेंद्रिय हो, आर्य (अर्हत, अशैक्ष्य=अ-सेख) होता है ?
यहाँ आनन्द ! चक्षुसे रूपको देखकर० श्रोत्रसे०, घ्राणसे०, जिह्वासे०, कायासे०, मनसे धर्म जानकर, मनाप०, ०अ-मनाप, ०मनाप-अमनाप उत्पन्न होता है । वह यदि चाहता है, कि प्रतिकूलमें अ-प्रतिकूल जान विहार करूँ, अ-प्रतिकूल जानतेही वहां विहार करता है । यदि चाहता है, कि अ-प्रतिकूलमें प्रतिकूल जान विहार करूँ; प्रतिकूल जानतेही वहाँ विहार करता है ।

यदि चाहता है,—प्रतिकूल, अ-प्रतिकूल दोनों वर्जित कर, स्मृति-सम्प्रजन्य-युक्त उपेक्षक हो विहार करूँ; वह स्मृति सम्प्रजन्य-युक्त उपेक्षक हो विहरता है। इस प्रकार आनन्द! भावितेन्द्रिय आर्य (=मुक्त) होता है।

"इस प्रकार आनन्द! मैंने आर्य-विनयकी अनुत्तर इन्द्रिय-भावना उपदेश करदी; शैक्ष्य-प्रतिपद् भी उपदेश कर दी; भावितेन्द्रिय आर्य भी उपदेश कर दिया। हितैषी, अनुकम्पक शास्ता (=गुरु) को अनुकम्पा (=दया) करके, श्रावकोंके लिये जैसे करना चाहिये, वैसा मैंने तुम लोगोंके लिये कर दिया। आनन्द! यह वृक्षमूल (=वृक्षके नीचेकी भूमि) हैं, यह शून्य घर हैं, ध्यान करो आनन्द! मत प्रमाद करो : पीछे अफसोस मत करना। यह तुम्हारे लिये हमारे अनुशासन हैं।"

भगवान्‌ने यह कहा, आयुष्मान् आनन्दने सन्तुष्ट हो, भगवान्‌के भाषणको अनुमोदित किया।

संबहुल-सुत्त ।

[1]ऐसा मैंने सुना—एक समय भगवान् सुम्ह[2] (देश) में शिलावती में विहार करते थे।

उस समय भगवान्‌से थोड़ी दूर पर बहुतसे प्रमाद-रहित, उद्योगी, संयमी भिक्षु विहार करते थे। तब पापी मार, बड़ी जटा बढ़ाये, मृग-चर्म पहिने, टोड़े(=गोपानसी) की तरह कमरवाला बूढ़ा बन, टुकुर टुकुर ताकते, गूलरका दंड लिये, ब्राह्मणका रूप बना, जहां वह भिक्षु थे, वहां गया। जाकर उन भिक्षुओंको बोला—

"आप सब प्रव्रजित! अति-तरुण, बहुत काले-केश-वाले, भद्र (=सुन्दर) प्रथम यौवनसे युक्त,....कामोंमें (अभी) न खेले हुये हैं। आप सब मानुष-कामोंका भोग करें। वर्तमानको छोड़कर मत कालान्तरकी (चीज) के पीछे दौड़ें।"

"ब्राह्मण! हम वर्तमान छोड़कर कालान्तर की (चीज) के पीछे नहीं दौड़ रहे हैं। कालान्तरकी (चीज) छोड़कर ब्राह्मण! हम वर्तमानके पीछे दौड़ रहे हैं। ब्राह्मण! भगवान्‌ने कामोंको बहुत दुःख-वाले, बहुत प्रयास-वाले, दुष्परिणाम-वाले, कालिक (कालांतरका) कहा है। यह धर्म सांदृष्टिक (=वर्तमानमें फलप्रद), न-कालिक, यहीं देखा जानेवाला, पार पहुँचाने वाला, पंडितोंद्वारा प्रतिशरीरमें अनुभव करने योग्य है"

ऐसा कहनेपर पापी मार सिर हिला, जीभ निकाल, डंडा टेकते चला गया।

उदायि-सुत्त ।

[3]ऐसा मैंने सुना—एक समय भगवान् सुम्ह (देश) में सुम्होंके कस्बे सेतकण्णिकमें विहार करते थे।

तब आयुष्मान् उदायी जहां भगवान् थे, वहां गये। जाकर भगवान्‌को अभिवादन-कर, एक ओर बैठ गये। एक ओर बैठे आयुष्मान् उदायीने भगवान्‌को कहा—

---

१. सं. नि. ४: ३: १। २. हजारीबाग और संथाल-पर्गना जिलोंका कितनाही अंश।
३. सं. नि. ४५:३:१०।

"भन्ते ! आश्चर्य !! भन्ते ! अद्भुत !! भगवान्‌के विषयमें प्रेम, गौरव, लज्जा, भय मेरे लिये कितना है । भन्ते ! पहिले गृहस्थ होते मुझे धर्मसे बहुत लाभ न मिला था । ०संघसे० । सो मैं भगवान्‌में प्रेम, गौरव, लज्जा, भयके कारण, घरसे बेघर हो प्रव्रजित हुआ । तब मुझे भगवान्‌ने धर्म उपदेश किया—ऐसे रूप हैं, ऐसे रूपोंकी उत्पत्ति (=समुदय) है, ऐसे रूपोंका विनाश है । ऐसी वेदना है, ऐसे वेदनाकी उत्पत्ति है, ऐसे वेदनाका अस्तगमन (=विनाश) है । ऐसे संज्ञा है० । ऐसे संस्कार० । ऐसे विज्ञान० । सो मैंने भन्ते ! शून्य-आगारमें रहते, इन पांच [1]उपादान-स्कंधोंको उल्टा सीधाकर दोहराते—'[2]यह दुःख है' इसे यथार्थसे जाना, 'यह दुःख समुदय है'०, 'यह दुःख-निरोध है'०, 'यह दुःख-निरोध-गामिनी प्रतिपद् है'० । धर्मको मैंने भन्ते ! देख लिया, मार्ग मिल गया । वह मेरे द्वारा भावित=बहुली कृत (हो) वैसा विहार करते—मुझे वैसे भावको ले जायगा; जिससे कि मैं जानूँगा—'जाति (=जन्म) क्षय होगई, ब्रह्मचर्यवास पूरा होचुका, करना था, सो कर लिया, (अब) दूसरा यहांके लिये (कुछ करना) नहीं (है)'—[2]स्मृति संबोध्यंग भन्ते ! मुझे मिल गया । वह मेरे द्वारा भावित बहुलीकृत हो० । उपेक्षा संबोध्यंग भन्ते ! मुझे वह मार्ग मिल गया; वह मेरे द्वारा भावित० हो० ।

"साधु, साधु, उदायी ! उदायी ! तुझे वह मार्ग मिल गया । जो तेरे द्वारा भावित=बहुलीकृत हो, वैसे वैसे विहार करते, वैसे भावको ले जायगा, जिससे कि तू जानेगा—'जाति क्षय होगई, ब्रह्मचर्य-वास पूरा होचुका, करना था सो कर लिया (अब) दूसरा यहां (करनेको) नहीं है ।'

[3]भगवान्‌ने उन्नीसवीं (वर्षा) भी चालिय-पर्वतमें (बिताई) ।

\+ \+ \+ \+ \+

मेघिय-सुत्त ।

[4]ऐसा मैंने सुना—एक समय भगवान् चालिका (=चालिय)में चालिकापर्वतपर विहार करते थे ।

उस समय आयुष्मान् मेघिय भगवान्‌के उपस्थाक (=हजूरी) थे । तब आयुष्मान् मेघिय जहां भगवान् थे, वहां गये । जाकर भगवान्‌को अभिवादनकर एक ओर खड़े हो गये । एक ओर खड़े आयुष्मान् मेघियने भगवान्‌को कहा—

"भन्ते ! मैं जन्तु-ग्राममें पिंडके (=भिक्षा)के लिए जाना चाहता हूँ ।"

"मेघिय ! जिसका तू काल समझता है, (वैसाकर) ।"

तब आयुष्मान् मेघियने पूर्वाह्ण-समय पहिनकर पात्र-चीवर ले, जन्तु-ग्राममें पिंड-पातके लिये प्रवेश किया । जन्तु-ग्राममें पिंड-चारकर, भोजनके बाद…कृमि-काला नदीके तीरपर गये । जाकर कृमि-काला नदीके तीर चहल-कदमी (=जंघा-विहार) करते, विचरते उन्होंने सुन्दर रमणीय आम्रवन देखा—

---

१. पृष्ठ १२४-२६ । २. पृष्ठ २६९ । ३. अ. नि. अ. क. २:४:९ । ४. उदान ४:१ ।

" ओहो ! यह योगाभिलाषी कुलपुत्रके अभ्यास (=प्रधान)के योग्य स्थान है। यदि भगवान् मुझे आज्ञा दें, तो मैं योगके लिये इस आम्रवनमें जाऊँ ।"

तब आयुष्मान् मेघिय जहाँ भगवान् थे, वहाँ गये । जाकर भगवानको अभिवादनकर एक ओर बैठे । एक ओर बैठे आयुष्मान् मेघियने भगवान्को कहा—

" भन्ते ! मैं पूर्वाह्ण-समय पहिनकर पात्र-चीवर ले, जन्तु-ग्राममें पिंडके लिये गया ।० भोजनके बाद'''कृमिकाला नदीके तीरपर गया । ०सुन्दर रमणीय आम्र-वन देखा । देखकर मुझे ऐसा हुआ—ओहो ! यह० । यदि भन्ते ! भगवान् मुझे अनुज्ञा दें, तो उस आम्र-वनमें प्रधान (=योग-प्रयत्न) के लिये जाऊँ ।"

ऐसा कहनेपर भगवान्ने आयुष्मान् मेघियको कहा—

" मेघिय ! तब तक ठहरो; जब तक कि दूसरा कोई भिक्षु आ जाये। मैं अकेला हूँ ।"

दूसरी बार भी आयुष्मान् मेघियने भगवान्को यह कहा—

" भन्ते ! भगवान्को (अब) आगे कुछ करनेको नहीं है । कियेका लोप करना (=प्रतिचय) नहीं है । मुझे भन्ते ! आगे करनेको है, कियेका लोप करना है । यदि भन्ते ! भगवान् मुझे आज्ञा दें ० ।"

दूसरी बारभी भगवान्ने आ० मेघियको कहा—" मेघिय ! तब तक ठहरो ० ।"

तीसरी बारभी ० मेघियने ० यह कहा—" भन्ते ! भगवान्को आगे कुछ करनेको नहीं है ० ।"

" मेघिय ! 'प्रधान (=योग)' करनेवालेको क्या कहें ? मेघिय ! जिसका तू काल समझे (वैसा कर) ।"

तब आयुष्मान् मेघिय आसनसे उठकर, भगवान्को अभिवादनकर प्रदक्षिणाकर, जहाँ वह आमका बाग था, वहाँ गये । जाकर उस आम्रवनके भीतर घुसकर, एक वृक्षके नीचे दिनके विहारको बैठे । तब आयुष्मान् मेघियको उस आम्रवनमें विहार करते, अधिकतर तीन पाप=अ-कुशल वितर्क (मनमें) पैदा होते थे। जैसेकि काम-वितर्क (=काम भोग संबन्धी-विचार), व्यापाद (=द्वेष)-वितर्क, विहिंसा-(=हिंसा)-वितर्क । तब आयुष्मान् मेघियको हुआ—

' आश्चर्य ! भो ! ! अद्भुत ! भो ! ! श्रद्धासे मैं घरसे बेघर हो प्रव्रजित हुआ हूँ । तो भी मैं तीन पाप ० वितर्कों में—काम-वितर्क, व्यापाद-वितर्क, विहिंसा-वितर्कसे युक्त हूँ ।

तब आयुष्मान् मेघिय सायंकाल भावनासे उठकर जहाँ भगवान् थे, वहाँ गये । जाकर भगवान्को अभिवादनकर एक ओर बैठ गये । एक ओर बैठे आयुष्मान् मेघियने कहा—

"आश्चर्य ! भो !!० ।"

"मेघिय ! अ-परिपक्व चित्त-विमुक्तिको परिपक्व करनेके लिये पाँच धर्म (=बातें) हैं । कौनसे पाँच ? (१) मेघिय ! भिक्षु कल्याण-मित्र (=अच्छे मित्रों वाला)=कल्याण-सहाय होना, अपरिपक्वचित्त-विमुक्तिके परिपक्व करनेके लिये यह प्रथम धर्म है। (२) फिर मेघिय ।

भिक्षु शीलवान् होता है, प्रातिमोक्ष (रूपी) संवर (=रक्षा) से रक्षित, आचारगोचरसे संयुक्त, छोटे दोषोंमें भी भय खानेवाला होता है। शिक्षापदों (=सदाचार-नियमों) को ग्रहण कर अभ्यास करता है। मेघिय! अपरिपक्व चित्त-विमुक्तिके परिपक्व करनेके लिये यह द्वितीयधर्म है। और फिर मेघिय! जो यह कथायें चुभनेवाली, चित्तको खोलनेमेंसहायक; केवल-निर्वेद (उदासीनता), विराग, निरोध=उपशम, अभिज्ञा=संबोध, निर्वाणके लिये हैं, जैसेकि— अल्पेच्छ-कथा, सन्तुष्टि-कथा, प्रविवेक-कथा, अ-संसर्ग-कथा, वीर्यारम्भ(=उद्योग)-कथा, शील-कथा, समाधि-कथा, प्रज्ञा-कथा, विमुक्ति(=मुक्ति)-कथा, विमुक्ति-ज्ञान-दर्शन-कथा। ऐसी कथाओंको बिना कठिनाईके (सुनने) पाता है। मेघिय! ० यह तृतीय धर्म है। (४) और फिर मेघिय! भिक्षु अकुशल-धर्मोंके हटानेके लिये, कुशल धर्मोंकी प्राप्तिके लिये उद्योगी (=आरब्ध-वीर्य) = स्थामवान् = दृढ़-पराक्रम होता है। कुशल-धर्मों=अच्छे-कामों) में जुआ न फेंकनेवाला०। मेघिय! यह चतुर्थ धर्म है। (५) और फिर मेघिय! भिक्षु प्रज्ञावान् हो=उदय-अस्तको जानेवाली, आर्य निर्वेधिक, भली प्रकार दुःख-क्षयकी ओर ले जानेवाली प्रज्ञासे युक्त होता है। मेघिय!० यह पंचम धर्म है।०।

"मेघिय! कल्याण-मित्र, =कल्याण-सहाय "भिक्षुके लिये यह आवश्यक है, कि वह शीलवान्० हो। ०यह आवश्यक है, कि कथा चुभनेवाली०। ०यह आवश्यक है, कि कि कुशल-धर्मोंके हटानेके लिये०। ०यह आवश्यक है, कि प्रज्ञावान् हो०।

"मेघिय! उस भिक्षुको इन पांच धर्मोंमें स्थित हो, ऊपरके (इन) चार धर्मोंकी भावना करनी चाहिये—(१) रागके प्रहाण (=नाश)के लिये अशुभा (-भावना) भावना करनी चाहिये, (२) व्यापाद (=द्वेष)के प्रहाणके लिये-मैत्री (भावना) भावना करनी चाहिये। (३) वितर्कके नाशके लिये आनापान-स्मृति (=प्राणायाम) करनी चाहिये। (४) अहंकार (=अस्मिमान)के विनाशके लिये अनित्य-संज्ञा (=सब क्षणिक अनित्य है, यह ज्ञान)०। अनित्य-संज्ञी (=सबको अनित्य समझनेवाले)को मेघिय! अन्-आत्म संज्ञा ठहरती है। अनात्म-संज्ञी अस्मिमानके नाशको प्राप्त होता है, इसी जन्ममें निर्वाणको (प्राप्त होता है)।"

तब भगवान् इस अर्थको जानकर उसी समय यह उदान बोले—

"मनके उत्पीडक, ऊपर न निकले, जो क्षुद्र वितर्क, सूक्ष्म वितर्क हैं। इन मनके वितर्कोंको न जानकर भ्रांत-चित्त (पुरुष) आवागमनमें दौड़ता है। इन मनके वितर्कोंको जानकर स्मृतिमान् (पुरुष), तत्पर हो संयम करता है। बुद्धने मनके इन अशेष-उद्गत उत्पीडाओंका विनाशकर दिया।"

---

(१२)

(जीवक-चरित्र । ई. पू. ४५२) ।

चौंतीसवाँ वर्षामें (भगवान्) राजगृह ही में वसे ।

\+ + + +

जीवक-चरित ।

…[1]उस समाय वैशाली ऋद्ध=स्फीत (=समृद्धिशाली), बहुजना=मनुष्योंसे आकीर्ण, सुभिक्षा (=अन्नपान-संपन्न) थी । उसमें ७७७७ प्रासाद, ७७७७ कूटागार, ७७७७ आराम, ७७७७ पुष्करिणियां थीं । गणिका अम्बापाली अभिरूप=दर्शनीय=प्रासादिक, परम-रूपवती, नाच, गीत और वाद्यमें चतुर थी । …चाहनेवाले मनुष्योंके पास पचास [2]कार्षापण रातभर जाया करती थी । उससे वैशाली और भी प्रसन्न शोभित थी । तब राजगृहका नैगम किसी कामसे वैशाली गया । राजगृहके नैगमने वैशालीको देखा—ऋद्ध० । राजगृहका नैगम वैशालीमें उस कामको खतम कर, फिर राजगृह लौट गया । लौटकर जहां राजा मागध श्रेणिक बिंबसार था, वहां गया । जाकर राजा० बिंबसारको बोला—

"देव ! वैशाली ऋद्ध=स्फीत० और० भी शोभित है । अच्छा हो देव ! हम भी गणिका खड़ी करें ?"

"तो भणे ! वैसी कुमारी ढूँढो, जिसको तुम गणिका खड़ी कर सको ।"

उस समय राजगृहमें सालवती नामक कुमारी अभिरूप दर्शनीय० थी । तब राजगृहके नैगमने सालवती कुमारीको गणिका खड़ीकी । सालवती गणिका थोड़े कालमें ही नाच, गीत और वाद्यमें चतुर हो गई । चाहनेवाले मनुष्योंके पास सौ (कार्षापण) में रातभर जाया करती थी । तब वह गणिका न-चिरमें ही गर्भवती होगई । तब सालवती गणिकाको यह हुआ—गर्भिणी स्त्री पुरुषोंको नापसंद (=अ-मनाप) होती है, यदि मुझे कोई जानेगा—सालवती गणिका गर्भिणी है, तो मेरा सब सत्कार चला जायेगा । क्यों न मैं बीमार बन जाऊं । तब सालवती गणिकाने दौवारिक (=दर्वान)को आज्ञा दिया :—

" भणे ! दौवारिक ! ! कोई पुरुष आवे और मुझे पूछे, तो कहदेना—बीमार है ।"

" अच्छा आर्ये ! (=अय्ये !) " उस दौवारिकने सालवती गणिकाको कहा ।

" सालवती गणिकाने उस गर्भके परिपक्व होनेपर एक पुत्र जना । तब सालवती…ने दासीको हुकुम दिया :—

" हन्द ! जे ! इस बच्चेको कचरेके सूपमें रखकर कूड़ेके ऊपर छोड़ आ ।"

दासी सालवती गणिकाको " अच्छा आर्ये !" कह, उस बच्चेको कचरेके सूपमें रख, लेजाकर कूड़ेके ऊपर रख आई ।

---

१. अ. नि. अ. क. २: ४: ९ । २. महावग्ग ८ । ३. उस समयका एक तांबेका चौकोर सिक्का, जिसकी क्रय-शक्ति आजकलके बारह आनेके बराबर थी ।

उस समय अभय-राजकुमारने सकालमेंही राजाकी हाजिरीको जाते (समय), कौओंसे घिरे उस बच्चेको देखा । देखकर मनुष्योंको पूछा :—

"भणे ! (=रे !) यह कौओंसे घिरा क्या है ।" "देव ! बच्चा है"

"भणे जीता है ?" "देव जीता है !"

"तो भणे ! इस बच्चेको ले जाकर, हमारे अन्तःपुरमें दासियोंको पोसनेके लिये दे आओ ।"

"अच्छा देव !".....उस बच्चेको अभय-राजकुमारके अन्तःपुरमें दासियोंको पोसनेके लिये दे आये । 'जीता है (जीवति)' करके उसका नाम भी जीवक रक्खा । कुमारने पोसा था, इसलिये कौमार-भृत्य नाम हुआ । जीवक कौमार-भृत्य न-चिरही में विज्ञ हो गया । तब जीवक कौमार-भृत्य जहां अभय-राजकुमार था, वहां गया ; जाकर अभय-राजकुमारको बोला—

"देव ! मेरी माता कौन है, मेरा पिता कौन है ?"

"भणे जीवक ! मैं तेरी मांको नहीं जानता, और मैं तेरा पिता हूं, मैंने तुझे पोसा है ।"

तब जीवक कौमार-भृत्यको यह हुआ—

"राजकुल (=राजदर्बार) मानी होता है, विना शिल्पके जीविका करना मुश्किल है । क्यों न मैं शिल्प सीखूं ।"

उस समय तक्ष-शिलामें (एक) दिशा-प्रमुख (=दिगंत-प्रसिद्ध) वैद्य रहता था । तब जीवक अभय-राजकुमारको विना पूछे, जिधर [2]तक्ष-शिला थी, उधर चला । क्रमशः जहां तक्ष-शिला थी, जहां वह वैद्य था, वहां गया । जाकर उस वैद्यको बोला—

"आचार्य ! मैं शिल्प सीखना चाहता हूं ।"

"तो भणे जीवक ! [1]सीखो ।"

जीवक कौमार-भृत्य बहुत पढ़ता था, जल्दी धारणकर लेता था, अच्छी तरह समझता था, पढ़ा हुआ इसको भूलता न था । सात वर्ष बीतनेपर जीवक०को यह हुआ—'बहुत पढ़ता हूं०, पढ़ते हुये सात वर्ष हो गये, लेकिन इस शिल्पका अन्त नहीं मालूम होता ; कब इस शिल्पका अन्त जान पड़ेगा ?' तब जीवक० जहां वह वैद्य था, वहां गया, जाकर उस वैद्यको बोला—

"आचार्य ! मैं बहुत पढ़ता हूं० । कब इस शिल्पका अन्त जान पड़ेगा ?"

"तो भणे जीवक ! खनती (=खनित्र) लेकर तक्ष-शिलाके योजन योजन चारों ओर घूमकर जो अ-भैषज्य (=दवाके अयोग्य) देखो उसे ले आओ ।"

---

१. अ. क. "जैसे दूसरे क्षत्रिय आदिके लड़के आचार्यको धन देकर कुछ काम न कर विद्या सीखते हैं, उसने वैसे नहीं (किया) । वह कुछ भी धन न दे धर्म-अन्तेवासी हो, एक समय उपाध्याय का काम करता, एक समय पढ़ता था ।" २. शाहजीकी ढेरी, स्टेशन तक्सिला, जि० रावलपिंडी ।

"अच्छा आचार्य !" ···जीवक ··ने···कुछ भी अ-भैषज्य न देखा,···(और) आकर उस वैद्यसे कहा—

"आचार्य ! तक्षशिलाके योजन योजन चारों ओर मैं घूम आया, (किंतु) मैंने कुछ भी अ-भैषज्य नहीं देखा ।"

"सीख चुके, भणे जीवक ! यह तुम्हारी जीविकाके लिये पर्याप्त है ।" (कह) उसने जीवक कौमार-भृत्यको थोड़ा पाथेय दिया । तब जीवक उस स्वल्प-पाथेय (=राह-खर्च)को ले, जिधर राजगृह था, उधर चला । जीवक०का वह स्वल्प पाथेय रास्तेमें साकेत (=अयोध्या)में खतम होगया । तब जीवक कौमार-भृत्यको यह हुआ—'अन्न-पान-रहित जंगली रास्ते हैं, बिना पाथेयके जाना सुकर नहीं है : क्यों न मैं पाथेय ढूँढ़ूँ ।"

उस समय साकेतमें श्रेष्ठि (=नगर-सेठ)की भार्याको सात वर्षसे शिर-दर्द था । बहुतसे बड़े बड़े दिगंत-विख्यात वैद्य आकर नहीं अ-रोगकर सके, (और) बहुत हिरण्य (=अशर्फी) सुवर्ण लेकर चले गये । तब जीवकने साकेतमें प्रवेशकर आदमियोंको पूछा—

"भणे ! कोई रोगी है, जिसकी मैं चिकित्सा करूँ ?"

"आचार्य ! इस श्रेष्ठि-भार्याको सात वर्षका शिर-दर्द है, आचार्य ! जाओ श्रेष्ठि-भार्याकी चिकित्सा करो ।"

तब जीवक०ने जहाँ श्रेष्ठि गृहपतिका मकान था, वहाँ···जाकर दौवारिकको हुकुम दिया—

"भणे ! दौवारिक ! श्रेष्ठि भार्याको कह—'आर्ये ! वैद्य आया है, वह तुम्हें देखना चाहता है ।"

'अच्छा आर्य !'···कह दौवारिक···जाकर श्रेष्ठि-भार्याको बोला—

"आर्ये ! वैद्य आया है, वह तुम्हें देखना चाहता है ।"

"भणे दौवारिक ! कैसा वैद्य है ?"

"आर्ये ! तरुण (=दहरक) है ?"

"बस भणे दौवारिक ! तरुण वैद्य मेरा क्या करेगा ? बहुतसे बड़े बड़े दिगन्त-विख्यात वैद्य० ।"

तब वह दौवारिक जहाँ जीवक कौमार-भृत्य था, वहाँ गया । जाकर·········बोला—

"आचार्य ! श्रेष्ठि-भार्या (=सेठानी) ऐसे कहती है—बस भणे दौवारिक !० ।

"जा भणे दौवारिक ! सेठानीको कह—आर्ये ! वैद्य ऐसे कहता है—अय्या ! पहिले कुछ मतदो, जब आरोग होजाना, तो जो चाहना सो देना ।"

"अच्छा आचार्य !"···दौवारिकने······श्रेष्ठि-भार्याको कहा—आर्ये ! वैद्य ऐसे कहता है ० ।"

"तो भणे ! दौवारिक ! वैद्य आवे ।"

"अच्छा अय्या !"······जीवकको···कहा—"आचार्य ! सेठानी तुम्हें बुलाती है ।"

जीवक० सेठानीके पास जाकर,…रोगको पहिचान, सेठानीको बोला—

" अय्या ! मुझे पसर-भर घी चाहिये ।"

सेठानीने जीवक०को पसरभर घी दिलवाया । जीवक०ने उस पसरभर घीको नाना दवाइयोंसे पकाकर, सेठानीको चारपाईपर उतान लेटवाकर नथनोंमें देदिया । नाक से दिया वह घी मुखसे निकल पड़ा । सेठानीने पीकदानमें थूककर, दासीको हुक्म दिया—

" हन्दजे ! इस घीको बर्तनमें रख ले ।"

तब जीवक कौमार-भृत्यको हुआ—' आश्चर्य ! यह घरनी कितनी कृपण है, जो कि इस फेंकने लायक घीको वर्तनमें रखवाती है । मेरे बहुतसे महार्घ औषध इसमें पड़े हैं, इसके लिये यह क्या देगी ?' तब सेठानीने जीवक०के भावको ताड़कर, जीवक० को कहा :—

" आचार्य ! तू किसलिये उदास है ।"

" मुझे ऐसा हुआ—आश्चर्य !० ।"

" आचार्य ! हम गृहस्थिनें (=आगारिका) हैं, इस संयमको जानती हैं । यह घी दासों कमकरोंके पैरमें मलने, और दीपकमें डालनेको अच्छा है । आचार्य ! तुम उदास मत होओ । तुम्हें जो देना है, उसमें कमी नहीं होगी ।"

तब जीवकने सेठानीके सात वर्षके शिर-दर्दको, एकही नाससे निकाल दिया । सेठानीने अरोग हो जीवकको० चार हजार दिया । पुत्रने 'मेरी माताको निरोग कर दिया' (सोच) चार हजार दिया । बहूने 'मेरी सासको निरोग कर दिया' (सोच) चार हजार दिया । श्रेष्ठि गृहपतिने ' मेरी भार्याको निरोग कर दिया ' (सोच) चार हजार, एक दास, एक दासी, और एक घोड़ेका रथ दिया । तब जीवक उन सोलह हजार, दास, दासी और अश्वरथ को ले जहाँ राजगृह था, उधर चला । क्रमशः जहां राजगृह, जहां अभय-राजकुमार था, वहां गया । जाकर अभय-राजकुमारको बोला—

" देव ! यह—सोलह हजार, दास, दासी और अश्व-रथ मेरे प्रथम कामका फल है । इसे देव ! पोसाई (=पोसावनिक) में स्वीकार करें ।"

" नहीं, भणे जीवक ; (यह) तेरा ही रहे । हमारे ही अन्तःपुर (=हवेलीकी सीमा) में मकान बनवा ।"

" अच्छा देव !' …कह…जीवक…ने अभय-राजकुमारके अन्तःपुरमें मकान बनवाया ।"

उस समय राजा मागध श्रेणिक बिंबसारको भगंदरका रोग था । धोतियां (=साटक) खूनसे सन जाती थीं । देवियां देखकर परिहास करती थीं—' इस समय देव ऋतुमती हैं, देवको फूल उत्पन्न हुआ है, जल्दी ही देव प्रसव करेंगे ।' इससे राजा मूक होता था । तब राजा…बिंबसारने अभय-राजकुमारको कहा—

" भणे अभय ! मुझे ऐसा रोग है, जिससे धोतियाँ खूनसे सन जाती हैं । देवियाँ देखकर परिहास करती हैं० । तो भणे अभय ! ऐसे वैद्यको ढूँढो, जो मेरी चिकित्सा करे ।"

"देव ! यह हमारा तरुण वैद्य जीवक अच्छा है, वह देवकी चिकित्सा करेगा ।"

"तो भणे अभय ! जीवक वैद्यको आज्ञा दो, वह मेरी चिकित्सा करे ।"

तब अभय-राजकुमारने जीवकको हुकुम दिया—

"भणे जीवक ! जा राजाकी चिकित्सा कर ।"

"अच्छा देव !" कह…जीवक कौमार-भृत्य नखमें दवाले जहां राजा…बिंबसार था, वहां गया । जाकर राजा…बिंबसारको बोला—

"देव ! रोगको देखें ।"

तब जीवकने राजा…बिंबसारके भगंदर रोगको एक ही लेपसे निकाल दिया । तब राजा…बिंबसारने निरोग हो, पांचसौ स्त्रियोंको सब अलंकारोंसे अलंकृत=भूषितकर, (फिर उस आभूषणको) छोड़वा पुंज बनवा, जीवक…को कहा—

"भणे ! जीवक ! यह पांचसौ स्त्रियोंका आभूषण तुम्हारा है ।"

"यही बस है कि देव मेरे उपकारको स्मरण करें ।"

"तो भणे जीवक ! मेरा उपस्थान (=सेवा चिकित्साद्वारा) करो, रनवास और बुद्ध-प्रमुख भिक्षु-संघका भी (उपस्थान करो) ।"

"अच्छा, देव !" (कह) जीवकने…राजा…बिंबसारको उत्तर दिया ।

उस समय राजगृहके श्रेष्ठीको सातवर्षका शिरदर्द था । बहुतसे बड़े बड़े दिगन्त-विख्यात (=दिसा-पामोक्ख) वैद्य आकर निरोग न कर सके, (और) बहुत सा हिरण्य (=अशर्फी) लेकर चले गये । वैद्योंने उसे (दवा करनेसे) जवाब दे दिया था । किन्हीं वैद्योंने कहा—पाँचवें दिन श्रेष्ठी गृहपति मरेगा । कोन्हीं वैद्योंने कहा—सातवें दिन० । तब राजगृहके नैगमको यह हुआ—'यह श्रेष्ठी गृहपति राजाका और नैगमका भी बहुत काम करनेवाला है, लेकिन वैद्योंने इसे जवाब दे दिया है० । यह राजाका तरुण वैद्य जीवक अच्छा है । क्यों न हम श्रेष्ठी गृहपतिकी चिकित्साके लिये राजासे जीवक वैद्यको मांगे । तब राज-गृहके नैगमने राजा…बिंबसारके पास…जा…कहा—

"देव ! यह श्रेष्ठी गृहपति देवका भी, नैगमका भी बहुत काम करने वाला है । लेकिन वैद्योंने जवाब दे दिया है० । अच्छा हो, देव जीवक वैद्यको श्रेष्ठी गृहपति की चिकित्साके लिये आज्ञा दें ।"

तब राजा…बिंबसारने जीवक कौमार-भृत्यको आज्ञा दी—

"जाओ, भणे जीवक ! श्रेष्ठी गृहपति की चिकित्सा करो ।"

"अच्छा देव !" कह, जीवक…श्रेष्ठी गृहपतिके विकारको पहिचान कर, श्रेष्ठी गृहपति को बोला—

"यदि मैं गृहपति ! तुझे निरोग करदूं, तो मुझे क्या दोगे ?"

"आचार्य ! सब धन तुम्हारा हो, और मैं तुम्हारा दास ।"

"क्यों गृहपति ! तुम एक करवटसे सातमास लेटे रह सकते हो ?"

"आचार्य ! मैं एक करवटसे सातमास लेटा रह सकता हूँ ।"

"क्या गृहपति ! तुम दूसरी करवटसे सात मास लेटे रह सकते हो ?"

"आचार्य !···सकता हूँ ।"

"क्या···उतान सात मास लेटे रह सकते हो ?" "आचार्य !···सकता हूँ ।"

तब जीवक ने श्रेष्ठी गृहपतिको चारपाई पर लिटाकर, चारपाईसे बांधकर, शिरके चमड़ेको फाड़कर खोपड़ी खोल, दो जन्तु निकाल लोगोंको दिखलाये—

"देखो यह दो जन्तु हैं—एक बड़ा है, एक छोटा । जो वह आचार्य यह कहते थे—पांचवें दिन श्रेष्ठी गृहपति मरेगा, उन्होंने इस बड़े जन्तु को देखा था, पांच दिनमें यह श्रेष्ठी गृहपति की गुद्दी चाट लेता, गुद्दीके चाट लेनेपर श्रेष्ठी गृहपति मर जाता । उन आचार्योंने ठीक देखा था । जो वह आचार्य यह कहते थे—सातवेंदिन श्रेष्ठी गृहपति मरेगा, उन्होंने इस छोटे जन्तु को देखा था०।"

खोपड़ी(=सिब्बनी) जोड़कर, शिरके चमड़ेको सीकर, लेप कर दिया । तब श्रेष्ठी गृहपतिने सप्ताह बीतने पर जीवक···को कहा—

"आचार्य ! मैं, एक करवटसे सातमास नहीं लेट सकता ।"

"गृहपति ! तुमने मुझे क्यों कहा था–०सकता हूँ ।"

"आचार्य ! यदि मैंने कहा था, तो मर भले ही जाऊँ, किंतु मैं एक करवटसे सात मास लेटा नहीं रह सकता ।"

"तो गृहपति । दूसरी करवट सात मास लेटो ।"

तब श्रेष्ठि गृहपतिने सप्ताह बीतने पर जीवक···को कहा—

"आचार्य ! मैं दूसरी करवटसे सातमास नहीं लेट सकता ।"०।०।

"तो गृहपति ! उतान सात मास लेटो ।"

तब श्रेष्ठी गृहपतिने सप्ताह बीतनेपर···कहा—

"आचार्य ! मैं उतान सात मास नहीं लेट सकता ।"

"गृहपति ! तुमने मुझे क्यों कहा था—'०सकता हूँ' ।"

"आचार्य ! यदि मैंने कहा था, तो मर भले ही जाऊं, किंतु मैं उतान सात मास लेटा नहीं रह सकता ।"

"गृहपति ! यदि मैंने यह न कहा होता, तो इतना भी तू न लेटता । मैं तो···जानता था, तीन सप्ताहोंमें श्रेष्ठी गृहपति निरोग हो जायेगा । उठो गृहपति ! निरोग हो गये । जानते हो, मुझे क्या देना है ?

"आचार्य ! सब धन तुम्हारा और मैं तुम्हारा दास ।"

"बस गृहपति ! सब धन मेरा मत हो, और न तुम मेरे दास । राजाको सौहजार देदो और सौहजार मुझे ।"

तब गृहपतिने निरोगहो सौहजार राजाको दिया, और सौहजार जीवक कौमार-भृत्यको ।

उस समय बनारसके श्रेष्ठी (=नगर-सेठ) के पुत्रको मक्खचिका (=सिरके बल घुमरी काटना) खेलते अँतड़ीमें गाँठ पड़जाने का रोग (होगया) था; जिससे पीई जाउर (=यागु=यवागू) भी अच्छी तरह नहीं पचती थी, खाया भातभी अच्छी तरह न पचता था। पेशाब, पाखानाभी ठीकसे न होता था। वह उससे कृश, रूक्ष=दुर्वर्ण पीला ठठरी (=धमनि-सन्थत-गत्त) भर रह गयाथा। तब बनारसके श्रेष्ठीको यह हुआ— 'मेरे पुत्रको वैसा रोग है, जिससे जाउर भी०। क्यों न मैं राजगृह जाकर अपने पुत्रकी चिकित्साके लिये, राजासे जीवक वैद्यको मांगू।' तब बनारसका श्रेष्ठी राजगृह जाकर···राजा··· बिम्बसारको यह बोला—

"देव! मेरे पुत्रको वैसा रोग है०। अच्छा हो यदि देव मेरे पुत्रकी चिकित्साके लिये वैद्यको आज्ञा दें।"

तब राजा···बिम्बसारने जीवक···को आज्ञा दी—

"भणे जीवक! बनारस जाओ, और बनारसके श्रेष्ठीके पुत्रकी चिकित्सा करो।"

"अच्छा देव!" कह····बनारस जाकर, जहां बनारसके श्रेष्ठीका पुत्र था, वहां गया। जाकर·· श्रेष्ठी-पुत्रके विकारको पहिचान, लोगोंको हटाकर, कनात घेरवा, खंभोंको बँधवा, भार्याको सामने रख, पेटके चमड़ेको फाड़, आंतकी गांठको निकाल, भार्याको दिखलाया—

"देखो अपने स्वामीका रोग, इसीसे जाउर पीनाभी अच्छी तरह नहीं पचता था०।"

गांठको सुलझाकर अँतड़ियोंको (भीतर) डालकर, पेटके चमड़ेको सीकर, लेप लगा दिया। बनारसके श्रेष्ठीका पुत्र थोड़ी ही देरमें निरोग हो गया। बनारसके श्रेष्ठीने 'मेरा पुत्र निरोग कर दिया' (सोच) जीवक कौमार-भृत्यको सोलह हजार दिया। तब जीवक·····उन सोलह हजारको ले फिर राजगृह लौट गया।

उस समय राजा प्रद्योतको पांडु-रोगकी बीमारी थी। बहुतसे बड़े बड़े दिगंत-विख्यात वैद्य आकर निरोग न कर सके; बहुत सा हिरण्य (=अशर्फी) लेकर चले गये। तब राजा प्रद्योतने राजा मागध श्रेणिक बिम्बसारके पास दूत भेजा—

"मुझे देव! ऐसा रोग है, अच्छा हो यदि देव जीवक-वैद्यको आज्ञा दें, कि वह मेरी चिकित्सा करें।"

तब राजा ··बिम्बसारने जीवक···को हुकुम दिया—

"जाओ भणे जीवक! उज्जैन (=उज्जेनी) जाकर, राजा प्रद्योतकी चिकित्सा करो।"

"अच्छा देव!"····कह···जीवक···उज्जैन जाकर, जहां राजा प्रद्योत (=पज्जोत) था, वहां गया। जाकर राजा प्रद्योतके विकारको पहिचानकर···बोला—

"देव! घी पकाता हूँ, उसे देव पीयें।"

"भणे जीवक! बस, घी के बिना (और) जिससे तुम निरोग कर सको, उसे करो। घी से मुझे घृणा=प्रतिकूलता है।"

" भणे काक ! डर मत, तू भी निरोग होगा, राजा भी । वह राजा चंड है, मुझे मरवा न डाले, इसलिये मैं नहीं लौटूँगा ।" (-कह) भद्रवतिका हथिनी काकको दे, जहाँ राजगृह था, वहाँको चला । क्रमशः जहाँ राजगृह था, जहाँ राजा" बिंबसार था, वहाँ पहुँचा । पहुँचकर राजा"' बिंबसारको यह (सब) बात कह डाली ।

" भणे जीवक ! अच्छा किया, जो नहीं लौटा । वह राजा चंड है, तुझे मरवा भी डालता ।"

तब राजा प्रद्योतने निरोग हो, जीवक कौमार-भृत्यके पास दूत भेजा—' जीवक आवें, वर (= इनाम) दूँगा ' 'बस आर्य ! देव मेरा उपकार (= अधिकार) याद रक्खें ।' उस समय राजा प्रद्योतको बहुत सौ हजार दुशालेके जोड़ोंमें अग्र = श्रेष्ठ = मुख्य = उत्तम = प्रवर [1]शिवि (देश) के दुशालोंका एक जोड़ा प्राप्त हुआ था । राजा प्रद्योतने उस शिविके दुशालेको, जीवकके लिये भेजा । तब जीवक कौमार-भृत्यको यह हुआ—

"राजा प्रद्योतने मुझे० यह शिविका दुशाला जोड़ा भेजा है । उन भगवान् अर्हत् सम्यक् संबुद्धके विना या राजा मागध श्रेणिक बिंबसारके बिना, दूसरा कोई इसके योग्य नहीं है ।"

उस समय भगवान्‌का शरीर दोष-ग्रस्त था । तब भगवान्‌ने आयुष्मान् आनन्दको संबोधित किया—

" आनन्द तथागतका शरीर दोष-ग्रस्त है, तथागत जुलाब (=विरेचन) लेना चाहते हैं ।"

आयुष्मान् आनन्द जहाँ जीवक · था, वहाँ··· जाकर बोले—

" आवुस जीवक ! तथागतका शरीर दोष-ग्रस्त हैं' · जुलाब लेना चाहते हैं ।"

" तो भन्ते ! आनन्द ! भगवान्‌के शरीरको कुछ दिन स्निग्ध करें (=चिकना करें)।"

तब आयुष्मान् आनन्द भगवान्‌के शरीरको कुछ दिन स्नेहित कर···जाकर जीवक · को बोले—

" आवुस जीवक ! तथागतका शरीर अब स्निग्ध है, अब जिसका समय समझो (वैसा करो) ।"

तब जीवक कौमार-भृत्यको यह हुआ—

'यह मेरे लिये योग्य नहीं, कि मैं भगवान्‌को मामूली जुलाब दूँ ।' (इसलिये) तीन = उत्पल-हस्तको नाना औषधोंसे भावितकर,···जाकर भगवान्‌को एक उत्पलहस्त (=चम्मच) दिया—

" भन्ते ! इस पहिले उत्पल हस्तको भगवान् सूँघें, यह भगवान्‌को दस बार जुलाब लगायेगा । ·· इस दूसरे उत्पल-हस्तको ०सूँघें० ।···इस तीसरे उत्पलहस्तको भगवान् सूँघें० । इस प्रकार भगवान्‌को तीस जुलाब होंगे ।"

---

१. वर्तमान सीवी (बिलोचिस्तानके आस पासका प्रदेश) या शोरकट (पंजाब)के आस पासका प्रदेश ।

जीवक'''भगवान्‌को तीस जुलावके लिये औषध दे, अभिवादनकर प्रदक्षिणाकर चल दिया। तब जीवकको बड़े दर्वाजेसे निकलनेपर यह हुआ—'मैंने भगवान्‌को तीस जुलाब दिया। तथागतका शरीर दोष-ग्रस्त है, भगवान्‌को तीस जुलाब न होगा, एक कम तीस जुलाब होगा। जब भगवान् जुलाब होजानेपर नहायेंगे, तब भगवान्‌को एक और विरेचन होगा।' तब भगवान्‌ने जीवकके चित्तके वितर्कको'''जानकर, आयुष्मान् आनन्दको कहा—

"आनंद! जीवकको बड़े दर्वाजे से निकलनेपर ०। इसलिए आनन्द! गर्म जल तय्यार करो।"

"अच्छा भन्ते!" कह'''आयुष्मान् आनन्दने जल तय्यार किया। तब जीवक''' जाकर'''भगवान्‌से बोला—

"मुझे भन्ते! बड़े दर्वाजेसे निकलने पर०। भन्ते! स्नान करें सुगत! स्नान करें।"

तब भगवान्‌ने गर्म जलसे स्नान किया। नहाने पर भगवान्‌को एक (और) विरेचन हुआ। इस प्रकार भगवान्‌को पूरे तीस विरेचन हुये। तब जीवक'''ने भगवान् को यह कहा—

"जब तक भन्ते! भगवान्‌का शरीर स्वस्थ नहीं होता, तब तक मैं जूस पिंड-पात (दूँगा)।"

भगवान् का शरीर थोड़े समयमें ही स्वस्थ हो गया। तब जीवक'''''उस शिविके दुशाले''''''को ले, जहां भगवान् थे, वहां गया। जाकर भगवान्‌को अभिवादनकर एक ओर बैठा। एक ओर बैठे जीवक'''''ने भगवान्‌को यह कहा—

"मैं भन्ते! भगवान्‌से एक वर मांगता हूं।"

"जीवक! तथागत वरके परे होगये हैं।"

"भन्ते! जो युक्त है, जो निर्दोष है।"

"बोलो, जीवक!"

"भन्ते! भगवान् पांसुकूलिक (=लत्ताधारी) हैं, और भिक्षु-संघ भी। भन्ते ०मुझे यह शिविका दुशाला जोड़ा, राजा प्रद्योतने भेजा है। भन्ते! भगवान् मेरे इस शिविके दुशाले जोड़ेको स्वीकार करें, और भिक्षु-संघको गृहस्थोंके-दिये चीवर (=[1]गृहपति-चीवर) की आज्ञा दें।"

भगवान्‌ने शिविके दुशाले'''को स्वीकार किया।'''भिक्षुसंघको आमंत्रित किया—

"भिक्षुओ! गृहपति-चीवर (के उपयोग की) अनुज्ञा देता हूँ। जो चाहे पांसुकूलिक रहे, जो चाहे गृहपति-चीवर धारण करे। (दोनोंमें) किसीसे भी मैं संतुष्टि कहता हूं।"।

उस समय काशि-राजने जीवक कौमार-भृत्यको पांचसौका कंबल'''भेजा। जीवकने '''भगवान्‌को कहा—

---

१. अ. क. "भगवान्‌के बुद्धत्व-प्राप्तिसे'''बीस वर्षतक किसीने गृह-पति-चीवर धारण नहीं किया। सब पांसुकूलिक ही रहे।"

"भन्ते ! मुझे [1]काशि-राजने···यह पाँचसौका कंबल भेजा है। भन्ते ! भगवान् कम्बलको स्वीकार करें, जो कि दीर्घ-रात तक मेरे हित-सुखके लिये हो।"

भगवान्ने स्वीकार किया··· ।

"भिक्षुओ ! छः प्रकारके चीवरोंकी अनुज्ञा देता हूँ, (१) क्षौम (२) कार्पासिक (=कपासका), (३) कौषेय (=रेशम), (४) कम्बल, (५) सान (=सनका), (६) भंग।

उस समय भिक्षु अच्छिन्नक (=बिना काटकर जोड़े) ही ·····कषाय (वस्त्रों) को धारण करते थे। तब भगवान् राजगृहमें यथेच्छ विहारकर जहाँ दक्षिणागिरि है, वहाँ चारिकाको गये। भगवान्ने मगधके खेतको अर्चि(=क्यारी)-बद्ध, पालि(=मेंड)-बद्ध=मर्यादाबद्ध, शृङ्गाटक-(=कोनोंका मेल)-बद्ध देखा। देखकर आयुष्मान् आनन्दको संबोधित किया—

"आनन्द ! देखते हो मगधके खेतोंको—अर्चि-बद्ध०?" "भन्ते ! हाँ"

"आनन्द ! भिक्षुओं केलिये इस प्रकारका चीवर बना सकते हो?"

"भगवान् ! (बना) सकता हूँ।"

दक्षिणागिरिमें इच्छानुसार विहारकर भगवान् पुनः राजगृहमें लौट आये। तब आयुष्मान् आनन्द बहुतसे भिक्षुओंके चीवरोंको बनाकर, जहाँ भगवान् थे वहाँ गये, जाकर भगवान्को यह बोले—

"भन्ते ! भगवान् देखें, मैंने चीवर बनाये हैं।"

भगवान्ने इसी निदान=इसी प्रकरणमें धार्मिक कथा कहकर भिक्षुओंको आमंत्रित किया—

"भिक्षुओ ! आनन्द पंडित हैं, भिक्षुओ ! आनन्द महाप्रज्ञ है, इसने मेरे संक्षेपसे कहे का विस्तारसे अर्थ जान लिया। कुसी भी बनाई, आधी कुसी भी बनाई। मंडल भी बनाया, आधा मंडल भी बनाया। विवर्त भी बनाया, अनु-विवर्त भी बनाया। ग्रैवेयक भी बनाया, जांघेयक भी०। बाहन्त भी०। छिन्नक(=खंडखंडकर जोड़ा चीवर) सत्थ-लूख (=शस्त्र-रूक्ष) चीवर, श्रमणोंके योग्य, प्रत्यर्थियों (=चोर आदि)के (लिये) बेकामका होगा।"

"भिक्षुओ ! छिन्नक-संघाटी, छिन्नक-उत्तरासंग, छिन्नक-अन्तरवासकी अनुज्ञा करता हूँ।"

---

१. अ. क. "काशीदेशका राजा (=कासिनं राजा) प्रसेनजित्‌का एक पितासे भाई।"

चोरीकी (२) पाराजिका । त्रिचीवर-विधान । मैथुन (१) पाराजिका । (वि॰ पृ॰ ४५१) ।

[1]उस समय भगवान् राजगृहमें गृध्रकूट पर्वतपर विहार करते थे ।

बहुतसे संभ्रान्त = संदृष्ट भिक्षु ऋषिगिरि (= इसिगिलि)की बगलमें तृण-कुटी बना वर्षावास करते थे । आयुष्मान् धनिय कुंभकार-पुत्त भी तृणकुटी बना वर्षावास करते थे । तब वह भिक्षु वर्षावासकर तीन मासके बाद तृण-कुटियोंको उजाड़, तृण और काष्ट सपुर्दकर, जनपद-चारिका (= रामत)को चले गये । किन्तु आयुष्मान् धनिय कुंभकार-पुत्त, जहाँ वर्षामें बसे, वहीं हेमन्तमें, वहीं ग्रीष्ममें भी। आयुष्मान् धनिय कुम्भकार-पुत्रके गाँवमें पिंडपात (= भिक्षा)के लिये जानेपर, तृण-हारिणियाँ, काष्ट-हारिणियाँ तृण-कुटीको उजाड़कर, तृण और काष्ट लेकर चली गईं । दूसरीवार भी आयुष्मान् धनिय कुम्भकार-पुत्रने तृण और काष्ट जमाकर तृण-कुटी बनाई । दूसरीवार भी आ॰ धनिय॰के गाँवमें॰ । तीसरीवार भी॰ । तब आयुष्मान् धनिय कुम्भकार-पुत्रको यह हुआ—तीनवार भी मेरे गाँवमें पिण्डपातके लिये जानेपर ०तृण और काष्ट लेकर चली गईं । मैं अपने आचार्यक (= पेशा) कुम्भकार-कर्ममें सु-शिक्षित…हूँ । क्यों न मैं स्वयं कीचड़ मर्द्दनकर सारी मट्टी होकी कुटी बनाऊँ । तब आयुष्मान् धनिय कुम्भकार-पुत्तने स्वयं कीचड़ मर्द्दनकर सर्व-मृत्तिका-मय कुटी बना, तृण, गोबर लकड़ी इकट्ठाकर उस कुटीको पकाया । वह अभिरूप = दर्शनीय = प्रासादिक लालरंगकी हुई, जैसे कि वीर-बहूटी (= इन्द्र-गोपक) । जैसे किंकिणीका शब्द, वैसे ही उस कुटीका शब्द होता था ।

भगवान्ने बहुतसे भिक्षुओंके साथ गृध्रकूट पर्वतसे उतरते उस अभिरूप॰ लाल कुटिकाको देखा । देखकर भिक्षुओंको आमंत्रित किया—

"भिक्षुओ ! यह अभिरूप॰ लाल वीर-बहूटी जैसी क्या है ?" तब भगवान्को उन भिक्षुओंने वह (सब) बात कही । भगवान्ने धिक्कारा—

"भिक्षुओ ! उस नालायकको यह अन्-अनुच्छविक = अन्-अनुलोम = अ-प्रतिरूप (= अयोग्य), श्रमण-आचारके विरुद्ध, अ-कल्प्य = अ-करणीय है । कैसे भिक्षुओ ! उस मोघ पुरुषने सर्व-मृत्तिकामयी कुटी बनाई ? भिक्षुओ ! मोघ-पुरुषको प्राणियोंपर दया = अनुकंपा = अ-विहिंसा न होगी । जाओ भिक्षुओ इसे तोड़ डालो, जिसमें आनेवाली जनता प्राणातिपातमें न पड़े । और भिक्षुओ ! सर्वमृत्तिकामयी कुटी न बनाना चाहिये । जो बनावे उसको दुष्कृत की आपत्ति ।

"अच्छा भन्ते !" भगवान्को कह, वह भिक्षु जहाँ वह कुटिका थी, वहाँ गये; जाकर (उन्होंने) उस कुटिकाको फोड़ डाला । तब आयुष्मान् धनिय कुम्भकार-पुत्तने उन भिक्षुओंको कहा—

"आवुसो ! तुम मेरी कुटिकाको क्यों फोड़ते हो ?"

---

१. पाराजिका २ ।

" आवुस ! भगवान् फोड़वा रहे हैं ।"

" आवुसो ! फोड़ो यदि धर्म-स्वामी फोड़वाते हैं ।"

तब आयुष्मान् धनिय कुम्भकार-पुत्रको यह हुआ—'तीन तीन वार मेरे गांवमें पिंड-पातके लिये जानेपर, तृण-हारिणियां० तृण, काष्ट उठा ले गईं । जो मैंने सर्वमृत्तिकामयी कुटी बनाई, वह भी भगवान्ने फोड़वा दी । दारु-गृहमें (=काठ-गोदाम)में गणक (=क्लार्क) मेरा परिचित (=संदिट्ठ) है । क्यों न मैं दारुगृहमें गणकसे लकड़ी मांगकर लकड़ीके भीतवाली कुटी बनाऊँ । तब आयुष्मान् धनिय० जहाँ दारुगृह का गणक था, वहाँ गये । जाकर दारुगृहके गणकको बोले—

"आवुस ! तीन वार गांवमें मेरे पिंडपातके लिये जानेपर० । आवुस ! मुझे लकड़ी दो, लकड़ीके भीतवाली कुटी बनाना चाहता हूँ ।"

'भन्ते ! वैसे काष्ट नहीं हैं, जिन्हें मैं आर्यको दूँ । भन्ते ! यह राजकीय (=देवगृह) काष्ट [1]नगरकी मरम्मतके लिये रक्खे हैं । यदि राजा दिलवावे, तो भन्ते ! उसे लेजाओ ।'

"आवुस ! राजाने (दे) दिया है ।"

तब दारुगृहके गणकने—' यह शाक्यपुत्रीय श्रमण (=संन्यासी) धर्म-चारी, समचारी, ब्रह्मचारी, सत्य-वादी, शील-वान् कल्याण-धर्मा होते हैं । राजाभी इनपर अभिप्रसन्न है । अदिन्न (=न दिये) को दिन्न (=दिया) नहीं कह सकते '—सोच, आयुष्मान् धनिय० को यह कहा—

' भन्ते ! ले जाओ'

आयुष्मान् धनिय० ने उन काष्टोंको खंडाखंडा कराकर, गाड़ीमें ढुलवाकर लकड़ीके भीतकी कुटी बनाई ।

तब मगधका महामात्य वर्षकार ब्राह्मण राजगृहमें कर्मान्तों (=कामों) का निरीक्षण (=अनुसन्धान) करते, जहां दारु-गृहका गणक था, वहां गया । जाकर दारु-गृह-गणक को बोला—

" भणे ! जो वह राजकीय काष्ट नगरकी मरम्मतकेलिये=आपत्के लिये रक्खे थे, वह कहां हैं ? "

" स्वामी ! देवने उन काष्टोंको आर्य धनिय कुम्भकार-पुत्रको देदिया !"

तब वर्षकार ब्राह्मण मगध-महामात्य रंज हुआ—' कैसे देवने नगरकी मरम्मत केलिये, आपत्केलियेर क्खे राजकीय काष्टको धनिय कुम्भकार (=पुत्रको) कैसे दे दिया ?" तब वर्षकार मगध-महामात्य जहाँ राजा बिंबसार था, वहां गया, जाकर राजा·····बिम्बसार को बोला—

---

१. अ. क. "नगरकी मरम्मतके उपकरण । 'आपत् के लिये०' आगलगने या पुराना होनेसे, या शत्रुराजाके घेरादेनेसे, या गोपुर, अट्टालक, राजाका अन्तःपुर, हथ-सार आदिकी विपत्ति ।

" क्या सच-मुच देवने नगरकी मरम्मतकेलिये, आपतकेलिये. रक्खे राजकीय काष्ठको धनिय कुम्भकार-पुत्रको देदिया ? "

" किसने ऐसा कहा ? "

" देव ! दारु-गृहके गणक ने । "

" तो दारु-गृह-गणकको आज्ञा दो ।"

तब वर्षकार ब्राह्मण मगध-महामात्यने दारु-गृह-गणकको बांधनेका हुकुम दिया । आयुष्मान् धनिय कुम्भकार-पुत्रने दारुगृह-गणकको बांधकर ले जाते देखा । देखकर दारु-गृह-गणकको ···पूछा—

" आवुस ! (तुम्हें) क्यों बांधकर ले जारहे हैं "

" भन्ते ! उन लकड़ियोंके लिये ? "

" चलो आवुस ! मैं भी आता हूँ । "

" भन्ते ! मेरे मारे जानेसे पहिले आना । "

तब आयुष्मान् धनिय कुम्भकार-पुत्त जहां राजा ··बिंबसारका निवास था, वहां गये । जाकर बिछे आसनपर बैठे । तब राजा····बिंबसार जहां आयुष्मान् धनिय···थे, वहां गया । जाकर आयुष्मान् धनिय ··को अभिवादनकर, एक ओर बैठ गया । एक ओर बैठे राजा··· बिंबसारने आयुष्मान् धनिय···को कहा—

" भन्ते ! क्या मैंने सचमुच ०राजकीय काष्ट आर्यको दिये ? "

" हां, महाराज ! "

" भन्ते ! हम राजा लोग बहुकृत्य=बहुकरणीय (=बहुत कामवाले) होते हैं, देकर भी नहीं स्मरण करते । अच्छा तो (=इंघ) भन्ते ! स्मरण करावें । '

" महाराज ! याद है, प्रथम अभिषेक होनेपर यह वचन बोले थे—श्रमण ब्राह्मणोंको तृण-काष्ट-उदक दे दिया, (उनका) परिभोग करें । '

" भन्ते ! याद करता हूँ, श्रमण-ब्राह्मण लज्जावान्, संदेहवान्, संयम-आकांक्षी (होते हैं) उन्हें थोड़ी सी (बात)में भी सन्देह उत्पन्न होता है । उनके ख्यालसे मैंने कहा (था) और वह तो जंगलमें बेमालिकके (तृण-काष्ट-उदक)के विषयमें (था) । सो भन्ते ! तुमने उस बातसे अदिन्न (=बिना दिये) दारु (=काष्ट)को ले जाना मान लिया । भन्ते ! जैसा (आदमी) राज्यमें बसते कैसे कोई श्रमण या ब्राह्मणका हनन करे, या बंधन करे, य देशसे निकाले (=पब्बाजेय्य) । भन्ते ! जाओ [1]लोम (=रोयें)से बँच गये । ऐसा मत करना । '

---

१. अ. क. " जैसे (कुछ) धूर्त मांस खानेके लिये महार्घ-लोमवाली भेड़को पकड़ ले जांय तब उसको दूसरा विज्ञ-पुरुष देखकर, 'इस भेड़का मांस एक कार्षापण मूल्यका है । लोम (=बाल तो हर कटाईके समय अनेक कार्षापण मूल्यके हैं ' (सोच), दो लोम-रहित भेड़ दे, ले जाये । प्रकार वह भेड़ विज्ञ-पुरुषको पा लोमके कारण मुक्त हो जाय । ऐसे ही तुम···इस प्रव्रज्या चिह्न रूपी लोमसे, भेड़की तरह विज्ञ पुरुषको प्राप्त हो, मुक्त हो गये ।"

मनुष्य (इसे सुनकर) सोचते, कुढ़ते धिक्कारते थे—'शाक्य-पुत्रीय श्रमण निर्लज्ज हैं, दुःशील (=दुराचारी) मृषावादी हैं। यह (अपने लिये) धर्म-चारी सम-चारी ब्रह्मचारी, सत्यवादी, शीलवान्, कल्याण-धर्मा (होनेका) दावा करते हैं। इनमें श्रमण-पन (=श्रामण्य) नहीं है, इनमें ब्राह्मण्य नहीं है। इनका श्रामण्य नष्ट हो गया, इनका ब्राह्मण्य नष्ट हो गया। कहां है इनको श्रामण्य ? कहां है इनको ब्राह्मण्य ? श्रामण्यसे यह दूर हैं। राजाको भी यह ठगते हैं, और मनुष्योंकी तो बात क्या ?' भिक्षुओंने उन मनुष्योंको सोचते कुढ़ते, धिक्कारते सुना। तब जो अल्पेच्छ, संतुष्ट, लज्जावान्, चिंतावान् (=कौकृत्यक) संयम-इच्छुक भिक्षु थे, वह सोचने कुढ़ने, धिक्कारने लगे—'कैसे आयुष्मान् धनिय कुम्भकार-पुत्रने विना दिये राजाके दारु ले लिये।' तब उन भिक्षुओंने भगवान्‌को यह बात कही। भगवान्‌ने इसी निदान=इसी प्रकरणमें भिक्षु-संघको एकत्रितकर आयुष्मान् धनिय कुंभकार-पुत्तको पूछा—

"धनिय ! क्या तूने सचमुच राजाके अदत्त काष्ठका आदान (=ग्रहण) किया ?"

"भगवान् सच-मुच।"

भगवान्‌ने धिक्कारा—"मोघ-पुरुष ! (तूने यह) अन्-अनुच्छविक=अन्-अनुलोमिक =अ-प्रतिरूप (=अयोग्य), अ-श्रामण्य = अ-कल्प्य = अ-करणीय (किया)। मोघ-पुरुष ! राजाके अदत्त-काष्ठको तूने कैसे आदान किया ? मोघ-पुरुष ! यह अ-प्रसन्नोंको प्रसन्न करनेके लिये नहीं, प्रसन्नों (की प्रसन्नता) को बढ़ानेके लिये नहीं। बल्कि-मोघ-पुरुष ! अ-प्रसन्नोंको अप्रसन्न करनेके लिये, प्रसन्नोंमें भी कितनोंको अन्यथा (=उलटा) कर देनेके लिये है।"

उस समय भिक्षुओंमें प्रव्रजित हुआ, एक भूत-पूर्व व्यवहार-आमात्य (=जज, न्यायाधीश) भगवान्‌से अ-विदूर (=समीप) बैठा था। भगवान्‌ने उस भिक्षुको पूछा—

"भिक्षु ! राजा मागध श्रेणिक बिंबसार कितने (के अपराध) मे चोरको पकड़ कर मारता है, बांधता है, या देश-निकाल देता है ?"

"पादसे भगवान् ! या पादके बराबर मूल्य होने से।"

उस समय राजगृहमें पांच [1]मापक (=मासा) का पाद होता था। तब भगवान्‌ने आयुष्मान् धनिय कुम्भकार-पुत्रको धिक्कार कर—

'जो कोई भिक्षु ग्राम या अरण्यसे चोरी मानी जानेवाली अदत्त (वस्तु) ग्रहण करे; जितनेके अदत्तादानसे राजालोग चोरको पकड़कर—(तू) चोर है, बाल है, मूढ़ है, स्तेन है (कह) मारें, बांधें या देश-निकाला दें। उतनेके अदत्त-आदान (=विना दिया लेने) से भिक्षु पाराजिक होता है, (भिक्षुओंके साथ) न वास करने लायक।'''

'पाराजिक होता है'=जैसे डेंपसे टूटा पीला पत्ता (फिर) हरा होने लायक नहीं होता, ऐसेही भिक्षु पाद या पाद-मूल्यक या पादसे अधिक चोरी माने जानेवाले अदत्तको आदानकर, अ-श्रमण अ-शाक्य-पुत्रीय होता है, इस लिये कहा 'पाराजिक होता है'।

---

१. अ. क. "पांच मापका पाद होता था। उस समये राजगृहमें बीस मासेका कार्षापण (=कहापण) होता था, इसलिये पांच मासेका पाद। इस लक्षणसे सब जनपदोंमें कहापणका चतुर्थ भाग पाद जानना चाहिये। यह पुराने।नील-कहापणके बारेमें है, दूसरे रुद्रदामक आदिके (कहापणोंके बारेमें) नहीं।"

त्रिचीवर-विधान ।

राजगृहमें यथेच्छ विहारकर भगवान् जहां वैशाली है, वहां चारिका के लिये चले । राजगृह और वैशालीके बीचके मार्गमें जाते, भगवान्ने बहुतसे भिक्षुओंको चीवरोंकी गठरी—शिरपरभी चीवरकी गठरी, कन्धेपरभी चीवरकी गठरी, कमरमेंभी चीवरकी गठरी—लेकर आते देखा । देखकर भगवान्को हुआ—'बड़ी जल्दी यह नालायक (=मोघ-पुरुष) बटोरने लग-पड़े । क्यों न मैं भिक्षुओं के लिये चीवर-सीमा=चीवर-मर्य्यादा । स्थापित करूँ । क्रमशः चारिका करते भगवान् जहां वैशाली है, वहां पहुँचे । वहां वैशालीमें भगवान् गौतम-चैत्यमें विहार करते थे । उस समय भगवान् ठण्डी अन्तरष्टका(माघ और फागुनके बीचकी आठ अ. क.) हेमन्तकी रातोंमें हिम-पातके समय खुली जगहमें एक चीवर ले बैठे । भगवान्को ठंडक न मालूम हुई । प्रथम-याम बीतजाने पर (=१० बजनेके बाद) भगवान्को ठंडक मालूम हुई; भगवान्ने दूसरा चीवर ओढ़ा, भगवान्को ठंडक न मालूम हुई । मध्यम-याम बीत जानेपर (=२ बजेके बाद) भगवान्को ठंडक मालूम हुई, भगवान्ने, एक और चीवर ओढ़ा, भगवान्को ठंडक न मालूम हुई । पश्चिम (=पिछले) याम (=पहर)के बीतजानेपर, लाली फैलते, रात्रिके नन्दिमुखी होते समय, भगवान्को ठंडक मालूम हुई; भगवान्ने चौथा चीवर ओढा, भगवान्को ठंडक न मालूम हुई । तब भगवान्को यह हुआ—जोभी वह शीतालु भी कुल-पुत्र इस धर्ममें प्रव्रजित हुये हैं, वह भी तीन चीवरसे गुजारा कर सकते हैं, क्यों न मैं भिक्षुओंके चीवर की सीमा बांधं, मर्यादा स्थापित करूँ, त्रि-चीवरकी अनुज्ञा (=आज्ञा) दूँ । तब भगवान्ने···भिक्षुओंको आमंत्रित किया ··

"भिक्षुओ ! तीन चीवरकी अनुज्ञा देता हूँ—दोहरी संघाटी, एकहरा उत्तरासंघ (=ऊपरकी चादर), एकहरा अन्तर्वासक (=लुंगी) ।"

मैथुन-(१) पाराजिका ।

उस समय [1]वज्जीमें दुर्भिक्ष···था ।···। तब आयुष्मान् सुदिन्नको यह हुआ—'इस समय वज्जीमें दुर्भिक्ष···है, उंछ-परिग्रहसे (जीवन) यापन करना मुश्किल है । और वैशालीमें मेरी जातिवाले बहुत आढय=महाधनी=महाभोगवाले बहुत-सोना-चांदीवाले, बहुत वित्त-उपकरणवाले, बहुत धन-धान्य-वाले हैं । क्यों न मैं जातिवालोंका आश्रय ले विहार करूं । जातिवाले मुझे दान देंगे, पुण्य करेंगे, भिक्षुओंका लाभ पायेंगे, मैं भी पिंडसे तकलीफ न पाऊँगा ।' तब आयुष्मान् सुदिन्न शयनासन सँभालकर, पात्रचीवर ले, जिधर वैशाली थी, उधर चले । क्रमशः जहां वैशाली थी, वहां पहुँचे । वैशालीमें आ० सुदिन्न महावनमें विहार करते थे । आयुष्मान् सुदिन्नके जातिवालों (=ज्ञातक)ने सुना—सुदिन्न कलन्द-पुत्त वैशालीमें आये हैं । तब वह आयुष्मान् सुदिन्नके लिये साठ स्थालिपाक भोजनार्थ ले आये। आयुष्मान् सुदिन्न उन साठ स्थालि-पाकोंको भिक्षुओंको देकर, पूर्वाह्न समय (चीवर) पहिनकर, पात्र-चीवर हाथमें ले, कलन्द-ग्राममें पिण्ड-चार करते जहां अपने पिताका घर था, वहां गये ।

उस समय आयुष्मान् सुदिन्नकी गृहदासी (=ज्ञाति-दासी) वासी (=अभि-दोषिक)

---

१. पाराजिका १ ।

दाल (=कुम्मास, कुल्माष)को फेंकना चाहती थी। आयुष्मान् सुदिन्नने उस ज्ञाति-दासीको कहा—

"भगिनी! यदि वह फेंकनेको है, तो यहां मेरे पात्रमें डाल दे।"

आयुष्मान् सुदिन्नकी [1]ज्ञाति-दासी, उस बासी कुल्माषको...पात्रमें डालते वक्त, हाथ, पैर और स्वरकी अनुहारको पहिचान गई। तब...ज्ञाति-दासी...जाकर आयुष्मान् सुदिन्नकी माताको बोली—

"अरे अय्या! जानती हो, आर्य-पुत्र सुदिन्न आ पहुँचे हैं।"

"यदि जे! (=मगही गे!) सच बोलती है, तो तुझे अ-दासी करती हूँ।"

"आयुष्मान् सुदिन्न उस बासी कुल्माषको एक भीतकी जड़में बैठकर खाते थे। आयुष्मान् सुदिन्नके पिताने कर्मान्त (=काम) परसे आते, आयुष्मान् सुदिन्नको उस बासी कुल्माषको ० खाते देखा। देखकर जहां आयुष्मान् सुदिन्न थे, वहां गया। जाकर बोला—

"अरे! तात सुदिन्न! बासी कुल्माष खा रहे हो? क्या तात सुदिन्न! अपने घर नहीं चलना है?"

"गया था गृहपति! तेरे घर, वहीं से यह बासी कुल्माष (मिला) है।"

तब आयुष्मान् सुदिन्नका पिता...हाथसे पकड़कर...यह बोला—

"आओ तात सुदिन्न! घर चलें।"

तब आयुष्मान् सुदिन्न जहां उनके पिताका घर था, वहां गये। जाकर बिछे आसनपर बैठे। तब आयुष्मान् सुदिन्नके पिताने...कहा—

"तात! सुदिन्न भोजन करो।"

"बस गृहपति! आज मैं भोजन कर चुका।"

"तात सुदिन्न! कलका भोजन स्वीकार करो।"

आयुष्मान् सुदिन्नने मौनसे स्वीकार किया। तब आयुष्मान् सुदिन्न आसनसे उठकर चले गये।

आयुष्मान् सुदिन्नकी माताने उस रातके बीतनेपर, हरे गोबरसे पृथिवीको लिपाकर, दो ढेर लगवाये, एक हिरण्य (=अशर्फी) का, और एक सुवर्ण (=सोना) का। इतने बड़े पुंज हुये, कि इधर खड़ा पुरुष, उधर खड़े पुरुषको नहीं देख सकता था; न उधर खड़ा पुरुष इधर खड़े पुरुषको देख सकता था। उन पुंजोंको चटाईसे ढकवा, बीचमें आसन बिछवा, कनात घिरवा, आयुष्मान् सुदिन्न की पुरानी स्त्रीको संबोधित किया—

"तो बहू! जिस अलंकारसे अलंकृत हो, मेरे पुत्र सुदिन्नको प्रिय=मनाप लगा करती थी, उस अलंकार से अलंकृत हो।"

---

१. अ. क. "भगवान् (के बुद्धत्व)के बारहवें वर्षमें सुदिन्न प्रव्रजित हुये, बीसवें वर्ष ज्ञातिकुलमें पिंडके लिये प्रविष्ट हुये, स्वयं प्रव्रज्यामें आठ वर्षके थे इसलिये उसे वह ज्ञाति-दासी देखकर भी नहीं पहिचानती थी।"

"अच्छा, अय्या !"···

तब आयुष्मान् सुदिन्न पूर्वाह्न समय (चीवर) पहिनकर पात्र-चीवर ले, जहां उनके पिता-का घर था, वहां गये। जाकर बिछे आसनपर बैठे। तब आयुष्मान् सुदिन्नका पिता जहां आयुष्मान् सुदिन्न थे, वहां आया। आकर उन पूंजोंको खोलवा कर, आयुष्मान् सुदिन्नको बोला—

"तात सुदिन्न ! यह केवल तेरी माताका स्त्रीधन है; पिताका, पितामहका अलग है। तात सुदिन्न ! गृहस्थ बनकर भोगभी भोगनेको मिल सकता है' पुण्यभी करने को। आओ तात सुदिन्न ! फिर गृही बनकर भोगोंको भोगो, और पुण्योंको करो।"

"तात ! (मैं) नहीं चाहता, (मैं) नहीं (कर) सकता, अभिरत (=अनुरक्त) हो ब्रह्मचर्य पालन कर रहा हूँ।"

दूसरी बारभी···बोला०। तीसरी बारभी···तात सुदिन्न ! यह तेरा०।

"गृहपति ! यदि बहुत रंज न हो, तो तुझे बोलूं।"

"तात सुदिन्न ! बोलो।"

'तो तू गृहपति ! बड़े बड़े बोरे बनवाकर, हिरण्य सुवर्ण भरकर, इसे गाड़ियोंसे ढुलवा, गंगाकी धाराके बीचमें डाल दे। सो किस हेतु ? गृहपति ! जो तुझे इसके कारण भय, जड़ता, रोमांच, रखवाली करनी, पड़ेगी वह इससे न होगी।"

ऐसा कहने पर आयुष्मान् सुदिन्नका पिता दुःखी हुआ—' पुत्र सुदिन्न ऐसा कैसे करेगा ? ' आयुष्मान् सुदिन्नके पिताने आयुष्मान् सुदिन्न की······स्त्रीको बुलाया—

" तो बहू, तू भी कह, क्या जाने पुत्र सुदिन्न तेरा वचन ही माने "

आयुष्मान् सुदिन्न की···स्त्री आयुष्मान् सुदिन्नका पैर पकड़कर, आयुष्मान् सुदिन्न को बोली—

" आर्यपुत्र ! वह कैसी अप्सरायें हैं ; जिनकेलिये तुम ब्रह्मचर्य चर रहे हो ? "

" भगिनी ! मैं अप्सराओंकेलिये ब्रह्मचर्य नहीं कर रहा हूँ ? "

तब आयुष्मान् सुदिन्न की···स्त्री—' आज आर्यपुत्र सुदिन्न मुझे भगिनी कहकर पुकारते हैं', (सोच) वहीं मूर्छित हो गिर पड़ी। तब आयुष्मान् सुदिन्नने पिताको कहा—

" गृहपति ! यदि मुझे भोजन देनाहो, तो दो, तकलीफ मत दो।

" तात सुदिन्न ! खाओ " तब आयुष्मान् सुदिन्नको माता और पिताने······उत्तम खाद्य भोज्यसे अपने हाथ संतर्पित=संप्रवारित किया। आयुष्मान् सुदिन्नकी माता, सुदिन्नके खाकर पात्रसे हाथ हटा लेनेपर बोली—

" तात सुदिन्न ! यह आढ्य० कुल है ; तात सुदिन्न ! गृहीबनकर भी भोग भोगनेको तथा पुण्य करनेको मिल सकता है। आओ तात सुदिन्न ! गृही बन, भोग भोगो और पुण्य करो। "

"अम्मा ! मैं नहीं चाहता, नहीं सकता; अभिरत हो ब्रह्मचर्य चर रहा हूँ ।"

दूसरी बार भी० । तीसरी बार भी····माताने···सुदिन्नको कहा—

"तात सुदिन्न ! यह हमारा आढ्य०कुल है । (अच्छा) तात सुदिन्न ! बीजक (=वीर्यसे उत्पन्न पुत्र) ही दो, ऐसा न हो कि हमारी अ-पुत्रक संपत्ति लिच्छवी ले जायें ।"

"अम्मा ! (यह) मुझसे किया जा सकता है ।"

"तात सुदिन्न ! कहां इस वक्त तुम विहार करते हो ।"

"अम्मा ! महावनमें ।" तब आयुष्मान् सुदिन्न आसनसे उठ चले गये ।

आयुष्मान् सुदिन्नकी माताने आयुष्मान् सुदिन्नकी···स्त्रीको आमंत्रित किया—

"(अच्छा) तो बहू ! जब ऋतुनी होना, जब तुझे पुष्प उत्पन्न हो, तो मुझे कहना ।"

"अच्छा अय्या !"···।

तब आयुष्मान् सुदिन्नकी पुराण दुतीयिका (=स्त्री) ऋतुनी हुई, उसे पुष्प उत्पन्न हुआ । तब····माताको कहा—

"मैं ऋतुनी हूँ अय्या ! मुझे पुष्प उत्पन्न हुआ है ।"

"तो बहू ! जिस अलंकारसे अलंकृत हो मेरे पुत्र सुदिन्नको प्रिय=मनाप लगती थी, उस अलंकारसे अलंकृत होओ ।"

"अच्छा अय्या !"···

आयुष्मान् सुदिन्नकी माता० सुदिन्नकी स्त्रीको लेकर जहां महावन था, जहां आयुष्मान् सुदिन्न थे, वहां गई; जाकर आयुष्मान् सुदिन्नको बोली—

"तात सुदिन्न ! यह हमारा आढ्य०कुल है ।"

दूसरीवार भी० । तीसरीवार यह बोली—

"तात सुदिन्न ! ०तात सुदिन्न ! बीजक ही दो, ऐसा न हो, कि हमारी अ-पुत्रक संपत्ति [1] लिच्छवी ले जायें ।"

"अम्मा ! यह मुझसे किया जा सकता है ।"

(कह आ० सुदिन्नने) स्त्री की बांह पकड़कर महावनके भीतर घुसकर, शिक्षापद (=भिक्षु-नियम)के प्रज्ञापित न होनेके समय, दुष्परिणामको न देख···स्त्रीके साथ तीनवार मैथुन-धर्म सेवन किया । उससे वह गर्भवती हुई ।···।

तब आयुष्मान् सुदिन्नकी स्त्रीने उस गर्भके परिपक्व होनेपर पुत्र प्रसव किया । आयुष्मान् सुदिन्नके मित्रोंने उस पुत्रका नाम बीजक रक्खा । आयुष्मान् सुदिन्नकी स्त्रीका नाम बीजक-माता०, और आयुष्मान् सुदिन्नका नाम बीजक-पिता । पिछले समयमें वह दोनों घरसे बेघर प्रव्रजित हो अर्हत्-पद (=मुक्ति)को प्राप्त हुये ।

---

१. अ. क. "हमलोग लिच्छवी गण-राजाओंके राज्यमें बसते हैं । वह तेरे पिताके मरने-पर इस सम्पत्ति, इस महान् विभवको, रक्षक पुत्र न होनेसे, अ-पुत्रक कुलधनको अपने राज-अन्तः-पुरमें ले जायँगे ।"

तब उन भिक्षुओंने आयुष्मान् सुदिन्नको अनेक प्रकारसे धिक्कारकर, भगवान्‌को यह बात कही । ' ''। तब भगवान्‌ने'''उसके अनुच्छविक=उसके अनुकूल धर्म-कथा कह, भिक्षुओंको संबोधित किया—

"अच्छा तो भिक्षुओ ! दस बातोंका ख्यालकर भिक्षुओंके लिये शिक्षापद (=नियम) प्रज्ञापन करता हूँ—(१) संघकी अच्छाई (=सुष्ठुता)के लिये (२) संघकी फासता (=आसानी)के लिये । (३) उच्छृङ्खल-पुरुषोंके निग्रहके लिये । (४) अच्छे (=पेशल) भिक्षुओंके आसानीसे विहार करनेके लिये । (५) इस जन्मके आस्रवों (=चित्तमलों)के निवारणके लिये । (६) जन्मान्तर (=संपरायिक)के आस्रवोंके नाशके लिये । (७) अप्रसन्नों (=समल-चित्तों)के प्रसन्न (=निर्मल-चित्त) होनेके लिये । (८) प्रसन्नोंकी और बढ़तीके लिये । (९) सद्धर्मकी चिरस्थितिके लिये । (१०) विनय (=संयम)की सहायता (=अनुग्रह)के लिये ।'''।'''

"जो भिक्षु भिक्षुओंकी शिक्षा (=कायदा) और साजीव (=नियम)से युक्त हो, शिक्षाको बिना प्रत्याख्यान (=परित्याग) किये, दुर्बलताको बिना प्रकट किये, अन्ततः (=यहां तक कि) पशुमें भी मैथुन-धर्मका सेवन करे, वह पाराजिक होता है, (भिक्षुओंके साथ) सहवासके अयोग्य होता है ।''

मनुष्य-हत्या (३) पाराजिका । उत्तर-मनुष्य-धर्म(४)-पाराजिका। (वि॰ पृ॰ ४५१) ।

[1]उस समय बुद्ध भगवान् वैशालीमें महावनकी कूटागार शालामें विहार करते थे ।

भगवान् भिक्षुओंको अनेक प्रकारसे अ-शुभ (=पदार्थोंकी जघन्यता)-कथा कहते थे, अशुभ (भावना करने) की तारीफ करते थे, आदि आदि अशुभ-समापत्तियों (ध्यानों) की तारिफ करते थे । तब भगवान्ने भिक्षुओंको आमंत्रित किया—

"भिक्षुओ ! मैं आध-महीना एकान्त-ध्यान (=पटिसल्लान) में रहना चाहता हूँ । पिंड-पात (=भिक्षा) लानेवालेको छोड़कर (और) किसीको (मेरे पास) न आना चाहिये ।"

"उन भिक्षुओंने भगवान्को अच्छा भन्ते ! कहा । एक पिंड-पात-हारक भिक्षुको छोड़ दूसरा कोई वहां नहीं जाता था । भिक्षुओंने (सोचा)—भगवान्ने अनेक प्रकारसे अशुभ॰ की तारीफ की है, (इस लिये वह भिक्षु अनेक, आकार प्रकारकी अशुभ भावनाओंसे युक्त हो, विहार करने लगे । वह कायामें घिन करते, हैरान होते, जुगुप्सा करते थे; जैसे शिरसे नहाया शौकीन तरुण स्त्री या पुरुष मरे सांप, या मरे कुत्ता, या मनुष्य-शवके कंठसे लगने पर घिनाता॰ है । ऐसेही वह भिक्षु अपनी कायासे घृणा " जुगुप्सा करते, अपनेको अपनेसे मारते थे, एक दूसरे को भी जानसे मारते थे । मृगलंडिक समण-कुत्तकके पास जाकर भी कहते थे—

"आवुस ! अच्छा हो (यदि) हमें जानसे मारदो, यह पात्र-चीवर तुम्हारा होगा ।"

तब मिगलंडिक समण-कुत्तक पात्र-चीवरके लोभमें, बहुतसे भिक्षुओंको जानसे मारकर, खूनी तलवारको लेकर जहां वग्गुमुदा नदी थी, वहां गया ।

तब मिगलंडिक समण-कुत्तकको खून-सनी तलवार धोते मनमें पश्चात्ताप हुआ, खेद हुआ—अलाभ है मुझे, लाभ नहीं हुआ मुझे । दुर्लभ है मुझे, सुलाभ नहीं हुआ । मैंने बड़ा ही पाप (=अ-पुण्य) कमाया, जो मैंने शीलवान्, कल्याण-धर्मा भिक्षुओंको प्राणसे मार डाला । तब मार-लोकके किसी देवताने, बिना डूबते पानीपर खड़े होकर॰ समण-कुत्तकको कहा—

" साधु, साधु सत्पुरुष ! लाभ है तुझे सत्पुरुष, सुलाभ हुआ, तुझे सत्पुरुष । तूने सत्पुरुष ! बहुत पुण्य कमाया, जो तूने अ-तीर्णों (= न उतरों) को उतार दिया । "

तब ० समण-कुत्तकने (सोचा) ' लाभ है मुझे ० '; (और) तीक्ष्ण तलवार लेकर एक विहारसे दूसरे विहार, एक परिवेण (=चौक)से दूसरे परिवेणमें जाकर ऐसा कहता—कौन अतीर्ण है, किसको तारूँ ? वहां जो वह अ-वीत राग भिक्षु थे, उन्हें उस समय भय होता था, जडता ०, रोमांच होता था । किन्तु जो भिक्षु वीतराग थे, उनको उस समय भय॰, जडता ०, रोमांच न होता था । तब ० समण-कुत्तकने एक दिनमें एक भिक्षुको भी जानसे मारा, ०दो भिक्षुको भी०, ० तीन ० , ० चार ०, ० पांच ०, ० दस ०, ० बीस ०, ० तीस ०, ० चालीस ०, ० पचास ०, ० साठ ० ।

---

१. पाराजिका ३ ।

भगवान्‌ने आध मासके बीतनेपर पटिसल्लानसे उठकर, आयुष्मान् आनन्दको आमंत्रित किया—

"क्या है आनन्द ! भिक्षुसंघ बहुत कम होगया है ?"

"चूँकि भन्ते ! भगवान्‌ने भिक्षुओंको अनेक प्रकारसे अशुभ-भावना० की तारीफ की । सो भिक्षु० ।०। ०समण कुत्तकने भी० साठ भिक्षुकोभी एक दिनमें मारा । अच्छा हो । भन्ते ! दूसरे पर्याय (=प्रकारान्तर, उपदेश) को भगवान् कहें, जिसमें यह भिक्षुसंघ आज्ञा (=परम-ज्ञान) में स्थित हो ।"

"तो आनन्द ! जितने भिक्षु वैशालीमें विहार करते हैं, उन सबको उपस्थान शालामें एकत्रित करो ।"

"अच्छा भन्ते !"···आयुष्मान् आनन्दने "एकत्रित कर," जाकर, भगवान्‌को कहा—

"भन्ते ! भिक्षु-संघ एकत्रित होगया । अब भन्ते ! भगवान् जिसका काल समझें (वैसा करें) ।" तब भगवान् जहाँ उपस्थान-शाला थी, वहाँ गये । जाकर बिछे आसन पर बैठ । बैठकर भगवान्‌ने भिक्षुओंको आमंत्रित किया—

"भिक्षुओ ! यह आणापान-सति (=प्राणायाम) समाधि भावना करनेसे, बढ़ानेसे, शान्त=प्रणीत आसेचनक (=सुंदर) और सुख-विहारवाली है, पैदा होनेवाले पापक=अकुशल (=बुरे) धर्मोंको स्थानपर अन्तर्ध्यान करती है, उपशमन करती है । जैसे भिक्षुओ ! ग्रीष्मके पिछले मासमें उठी बड़ी धूलीको, महा-अकाल-मेघ स्थानही पर (=ठांवही) अन्तर्ध्यान कर देता है, उपशमन कर देता है ; ऐसेही भिक्षुओ ! यह प्राणायाम० । भिक्षुओ ! कैसे आणापान- (=प्राणायाम) सति समाधि भावना करने पर बढ़ाने पर शान्त० ? भिक्षुओ ! भिक्षु जंगलमें, या वृक्षके नीचे, या शून्य-आगारमें आसनमार, शरीरको सीधा रख, स्मृतिको संमुख रखकर, बैठता है । वह स्मरण रखते श्वास छोड़ता है, स्मरण रखते श्वास लेता है । लम्बी सांसलेते 'लम्बीसांस लेता हूँ' जानता है०[1] विरागकी अनुपश्यना करते (=विरागानु-पस्सी) ०, निरोध-अनुपश्यी०, 'प्रतिनिस्सर्ग (=परित्याग) अनुपश्यी श्वास छोड़ूं' सीखता है,० 'प्रति-निस्सर्ग-अनुपश्यी श्वास लूं' सीखता है । इस प्रकार भिक्षुओ ! भावना की गई आणापान-सति-समाधि, इस प्रकार बढ़ाई गई० ।'

तब भगवान्‌ने इसी निदान=इसी प्रकरणमें भिक्षुओंको···पूछा—

"भिक्षुओ ! क्या भिक्षुओंने सचमुच अपनेको अपनेसे मारा० ?"

"सचमुच भगवान् !"

भगवान्‌ने धिक्कारा ।···।

"इस प्रकार भिक्षुओ ! इस शिक्षापदको उद्देश (=पाठ, धारण)करना चाहिये ।—

"जो पुरुष जानकर मनुष्य-शरीरको प्राणसे मारे, या शस्त्रसे मारे, या मरनेकी तारीफ

---

१. पृष्ठ. ११८ ।

करें, मरनेके लिये प्रेरित करें—अरे आदमी ! तुझे क्या (है) इस पापी दुर्जीवनसे, जीनेसे मरना अच्छा है। इस प्रकारके चित्त-विचारसे, इस प्रकारके चित्त-संकल्पसे अनेक प्रकारसे जो मरनेकी तारीफ करें, या मरनेके लिये प्रेरित करें। यह भी पाराजिक होता है, अ-संवास (होता है)।

उत्तर-मनुष्य-धर्म (४) पाराजिका।

[1]उस समय भगवान् वैशालीमें महावनकी कूटागार-शालामें विहार करते थे।

उस समय बहुतसे संदृष्ट=संभ्रान्त भिक्षु वग्गुमुदा नदीके तीरपर वर्षा-वासके लिये गये। उस समय वज्जीमें दुर्भिक्ष० था०। तब उन भिक्षुओंको यह हुआ—इस समय वज्जीमें दुर्भिक्ष० है०। किस उपायसे एकत्र हो ··सुख (पूर्वक) वर्षावास किया जाये····। किसी किसीने ऐसा कहा—हन्त आवुसो! हम गृहस्थोंकी खेतीकी देख-भाल करें, इस प्रकार वह हमें (भोजन) देना पसन्द करेंगे, इस प्रकार हम एकत्र····हो सुखसे वर्षावास करेंगे। किसी किसीने ऐसा कहा—नहीं आवुसो! क्या गृहस्थोंकी खेती (=कर्मान्त)की देख-भाल करना? आवुसो! हम गृहस्थोंका दूतका काम करें, इस प्रकार०। ०क्या गृहस्थोंके दूत-कर्मसे? हन्त आवुसो! हम गृहस्थोंके (सम्मुख) एक दूसरेके उत्तर-मनुष्य-धर्म (= दिव्य-शक्ति)की तारीफ करें—अमुक भिक्षु प्रथम-ध्यानका लाभी (=पानेवाला) है, अमुक भिक्षु द्वितीय-ध्यानका०, ०तृतीय०, ०चतुर्थ०। अमुक भिक्षु स्रोत आपन्न है, ०सकृदागामी०, ०अनागामी०, अर्हत् है। अमुक भिक्षु त्रैविद्य है, अमुक भिक्षु षड्-अभिज्ञ (=छः अभिज्ञाओंवाला)। इस प्रकार वह०। आवुसो! यही सबसे अच्छा है, जो हम एक दूसरेके उत्तर-मनुष्य-धर्मकी तारीफ करें०।

मनुष्य (सोचते—) हमें लाभ है, हमें सुलाभ हुआ, जो हमारे पास ऐसे शीलवान् भिक्षु वर्षावासके लिये आये। जैसे यह शीलवान् कल्याण-धर्म हैं, ऐसे भिक्षु पहिले हमारे पास वर्षावासके लिये न आये। इसलिये वह वैसा भोजन न अपने खाते, न माता-पिताको देते, न स्त्री बच्चोंको देते, न दास कर्मकर पुरुषोंको०, न मित्र अमात्योंको०, न जाति-बिरादरीको०। जैसा कि भिक्षुओंको देते थे। वह वैसा ० पान न अपने पीते० ; जैसा कि भिक्षुओंको देते। तब वह भिक्षु रूपवान् मोटे (=पीण-इन्द्रिय), प्रसन्न-मुख-वर्ण, विप्रसन्न-छविवर्ण (=सुन्दर चमड़ेके रूपवाले) होगये। वर्षावासकी समाप्तिपर भगवान्‌के दर्शनके लिये जाना, भिक्षुओंका आचार था। तब वह भिक्षु वर्षावास समाप्तकर तीनमास बाद, शयनासन सँभालकर, पात्र-चीवर ले जिधर वैशाली थी, उधर चले। क्रमशः जहां वैशाली महावन कूटागार-शाला थी, जहां भगवान् थे, वहां पहुँचे। पहुँचकर भगवान्‌को अभिवादनकर एक ओर बैठ गये। उस समय (और) दिशाओंसे वर्षावास करके आये भिक्षु कृश, रूक्ष, दुर्वर्ण, पीले ठठरी-मात्र रह गये थे। किंतु वग्गुमुदा तीरवाले भिक्षु रूपवान्, मोटे०। बुद्ध भगवानोंका आचार है कि आगन्तुक भिक्षुओंके साथ प्रतिसम्मोदन (=कुशल-प्रश्न) करें। तब भगवान् वग्गुमुदा तीरके भिक्षुओंको बोले—

"भिक्षुओ! अनुकूल (=खमनीय) तो था, शरीर-यात्रा-योग्य (=यापनीय) तो था? संमोदन करते अ-विवाद करते अच्छी तरह एकत्र वर्षावास तो बसे; और भिक्षासे तकलीफ तो नहीं पाये?"

कंठमें कापाय डाले बहुतसे ऐसे असंयमी पाप-धर्मी हैं;
वह पापी पाप कर्मोंसे नर्कमें उत्पन्न होते हैं ?

जो दुःशील असंयमी (मनुष्य) राष्ट्र-पिंडको खाये, इससे आगकी लौकी तरह दहकते लोहेके गोलेका खाना अच्छा है।' तब भगवान् वग्गुमुदा तीरके भिक्षुओंको अनेक प्रकारसे धिक्कार कर ··· । ···

" इस प्रकार भिक्षुओ ! इस शिक्षापदको उद्देश (=पठन,धारण,) करना—

'जो भिक्षु अविद्यमान (=अन्-अभिजाने) उत्तर-मनुष्य-धर्म=अलम्-आर्य-ज्ञान-दर्शनको अपनेमें वर्तमान कहता है—'ऐसा-जानता हूँ' ='ऐसा देखता हूँ' । तब दूसरे समय पूछे जाने पर या न पूछे जाने पर, बद्-नीयत (=पापेच्छु) हो, या विशुद्धापेक्षी हो (कहे)—आवुस ! न जानते 'जानता हूँ' कहा, न देखते 'देखता हूँ' कहा, तुच्छ=मृषा (=झूठ) मैंने कहा । वह पाराजिक अ-संवास होता है, [1] अधिमानसे यदि न (कहा) हो । '···

उत्तर-मनुष्य-धर्म=(१) ध्यान, (२) विमोक्ष, (३) समाधि, (४) समापत्ति, (५) ज्ञान-दर्शन, (६) मार्ग-भावना, (७) फल-साक्षात्कार, (८) क्लेश-प्रहाण (९) विनीवरणता, (१०) चित्तका शून्यागारमें अभिरति (=अनुराग) ।···अलम्-आर्य-ज्ञान=तीन विद्यायें=दर्शन । जो ज्ञान है वही दर्शन है, जो दर्शन है वही ज्ञान है । ···

विशुद्धापेक्षी = गृही होनेकी इच्छासे, या उपासक होनेकी इच्छासे, या आरामिक (=आराम-सेवक) होनेकी इच्छासे, या श्रामणेर होनेकी इच्छासे ।···

ध्यान=(१) प्रथमध्यान, (२) द्वितीयध्यान (३) तृतीयध्यान, (४) चतुर्थध्यान ।
विमोक्ष=(१) शून्यता-विमोक्ष, (२) अनिमित्त-विमोक्ष, (३) अ-प्रणिहित-विमोक्ष ।
समाधि=(१) शून्यता-समाधि, (२) अनिमित्त०, (३) अप्रणिहित० ।
समापत्ति=(१) शून्यता-समापत्ति, (२) अनिमित्त० (३) अप्रणिहित० ।
ज्ञान=तीन विद्यायें ।

मार्ग-भावना=(१) चार स्मृति-प्रस्थान, (२) चार सम्यक्-प्रधान (३) चार ऋद्धिपाद, (४) पाँच इन्द्रिय, (५) पाँच बल, (६) सात बोध्यंग, (७) आर्य-अष्टांगिक-मार्ग ।

फल-साक्षात्कार=(१) स्रोत आपत्ति फलका साक्षात् करना, (२) सकृद् आगामी०, (३) अनागामी०, (४) अर्हत्० ।

क्लेश-प्रहाण=(१) रागका प्रहाण (=विनाश) (२) द्वेष-प्रहाण, (३) मोह-प्रहाण ।

विनीवरणता=(१) रागसे चित्तकी विनीवरणता (=मुक्ति) (२) द्वेषसे चित्त-विनीवरणता, (३) मोहसे चित्त-विनीवरणता ।

शून्यागारमें अभिरति=(१) प्रथमध्यानसे शून्य स्थानमें संतोष (२) द्वितीयध्यानसे० (३) तृतीयध्यानसे०, (४) चतुर्थध्यानसे०,

---

१ वस्तु प्राप्त कर लेने पर 'मैंने पालिया' समझना, कहना, अधिमान कहा जाता है ।

चतुर्थ—खण्ड ।

आयु-वर्ष ५५—७५

(वि. पू. ४५१—४३१) ।

चतुर्थ खंड ।

(१)

चीवर-विषय । विशाखा-चरित । विशाखाको आठ वर । (त्रि. पृ. ४५१ .)

तब वैशालीमें यथेच्छ विहारकर भगवान् जिधर वाराणसी (=बनारस) थी, उधर चारिकाके लिये चले । क्रमशः चारिका करते जहां वाराणसी थी, वहां पहुँचे । वहां वाराणसी में भगवान् ऋषिपतन मृगदावमें विहार करते थे ।

उस समय एक भिक्षुके-अन्तर्वासक (=लुंगी)में छिद्र था । तब उस भिक्षुको यह हुआ—भगवान्ने तीन चीवरोंकी अनुज्ञादी है (१) दोहरी संघाटी, (२) एकहरा उत्तरासंग, (३) एकहरा अन्तर्वासक । यह मेरा अन्तर्वासक छेदवाला है, क्यों न मैं पेवँद (=अग्गल) लगाऊँ, चारों ओर दोहरा होगा, बीचमें एकहरा । तब वह भिक्षु पेवँद लगाने लगा । भगवान्ने शयनासन-चारिका (=मठ देखनेके लिये घूमना) करते, उस भिक्षुको पेवँद लगाते देखा । देखकर जहां वह भिक्षु था, वहां गये । जाकर उस भिक्षुसे यह बोले—

" भिक्षु ! तू क्या कर रहा है ? "

" भगवान् ! पेवँद लगा रहा हूँ ।"

" साधु, साधु भिक्षु ! अच्छा है, भिक्षु ! तू पेवँद लगा रहा है । "

तब भगवान्ने इसी निदान=इसी प्रकरणमें, धार्मिक-कथा कह, भिक्षुओंको संबोधित किया—

" अनुज्ञा करता हूँ भिक्षुओ ! नये कपड़े या नये जैसे कपड़ेकी दोहरी संघाटी, एकहरे उत्तरासंग, एकहरे अन्तर्वासक की । पुराने कपड़ेकी चौहरी संघाटी, दोहरे उत्तरासंग और दोहरे अन्तर्वासक; पांसुकूल (=फेंके चीथड़े) में यथेच्छ । बाजारी टुकड़ोंको खोजना चाहिये । भिक्षुओ ! बटे या बुने पेवँद, (सीनेकी) मुंदरी, और दढ़ीकर्म (=रफ़ू) करनेकी अनुज्ञा करता हूँ ।"

तब वाराणसीमें इच्छानुसार विहारकर भगवान् जहां श्रावस्ती थी, वहां चारिकाके लिये चले । क्रमशः चारिका करते जहां श्रावस्ती थी, वहां पहुँचे । वहां भगवान् श्रावस्तीमें अनाथ पिंडकके आराम जेतवनमें विहार करते थे ।

तब [१]विशाखा मिगारमाता जहां भगवान् थे वहां आई, आकर, भगवान्को अभिवादनकर एक ओर बैठ गई । एक ओर बैठी विशाखा मिगार-माताको भगवान्ने धार्मिक-कथा

---

१. अ. नि. अ. क.१: ७: २ । (देखो टिप्पणी पृष्ठ १९२-१९३) ।—

विशाखा-चरित ।

"श्रावस्तीमें कोशल राजाने बिंबसारके पास (पत्र) भेजा—'मेरे आज्ञावर्ती देशमें

से····समुत्तेजित, संप्रहर्षित किया । तब···विशाखा मृगार-माताने भगवान्‌को यह कहा—

अमित-भोग-वाला कुल नहीं है, हमारे लिये एक अमित-भोग कुल भेजो'। राजाने अमात्योंके साथ सलाह की । अमात्योंने कहा—

"महाकुलको नहीं भेजा जा सकता, एक श्रेष्ठि-पुत्रको भेजें ।" कह, मेंडक श्रेष्ठिके पुत्र धनंजय सेठका (नाम) लिया । राजाने उनके वचनको सुनकर, उसे (धनंजय सेठको) भेजा । तब कोसल-राजाने श्रावस्तीसे सात योजनके ऊपर, साकेत नगरमें उसे श्रेष्ठीका पद देकर बसा दिया ।

श्रावस्तीमें मृगार श्रेष्ठीका पुत्र पूर्ण-वर्द्धन कुमार वयःप्राप्त (=जवान) था, तब उसके पिताने—मेरापुत्र वयःप्राप्त है, अब इसे गृहस्थके बंधनसे बांधनेका समय है—जान, —हमारे समान जाति कुलकी कन्या खोजो—(कह), कारण-अकारण जाननेमें कुशल पुरुषोंको भेजा । वह श्रवस्तीमें अपनी रुचिको कन्याको न देख, साकेत (=अयोध्या) को गये । उस दिन विशाखा, अपनी समवयस्का पांच सौ कुमारियोंके साथ, उत्सव मनानेके लिये एक महावापी पर गई थीं । वह पुरुष भी नगरके भीतर अपनी रुचिकी कन्या न देख, बाहर, नगरके द्वारपर खड़े थे । उसी समय पानी बरसना शुरू हुआ । तब विशाखाके साथ गई कन्यायें, भीगनेके डरसे वेगसे दौड़कर शालामें घुस गईं । उन पुरुषोंने उन (कन्याओं) में भी किसीको अपनी रुचिके अनुसार न देखा । उन सबके पीछे विशाखा, मेघ बरसनेकी, पर्वाह न कर, मन्दगतिसे भीगती हुई, शालामें प्रविष्ट हुई । उन पुरुषोंने उसे देख सोचा—दूसरी भी इतनी ही रूपवतियां होंगी । रूप किसी किसीका पके नारियल (=करक पक) की तरहभी होता है । बात चलाकर जानें, कि मधुर-वचना है या नहीं । तब उसको बोले—

"अम्म ! तू बड़ी बूढ़ी स्त्रीकी तरह मालूम होती है ?"

"तातो ! क्या देखकर (ऐसा) कहते हो ।"

"तेरे साथ खेलनेवाली दूसरी कुमारियां भीगनेके भयसे जल्दीसे आकर शालामें घुस गईं, और तू बुढियाकी तरह चलना छोड़कर नहीं आती, साड़ी भीगनेकी भी पर्वाह नहीं करती । यदि हाथी या घोड़ा पीछा करे, तो भी क्या ऐसा ही करेगी ?"

"तातो ! साड़ियां दुर्लभ नहीं हैं, मेरे कुलमें साड़ियां सुलभ हैं । तरुण स्त्री (=वयःप्राप्त मातृग्राम) बिकाऊ वर्तनकी तरह है । हाथ या पैर टूटनेपर, विकल-अंगवाली स्त्रीसे (लोग) घृणा करते (हैं), (और) नहीं ग्रहण करते । इसलिये धीरे धीरे आई हूँ ।"

उन्होंने—जम्बूद्वीपमें इसके समान स्त्री नहीं है । रूपमें जैसी, मधुर-अलापमें भी वैसीही है । कारण-अकारणको जानकर कहती है ।—(सोच) उसके ऊपर गूँदिरकर माला फेंकी । तब विशाखा—मैं पहिले अपरिगृहीत (=सगाई विना) थी; अब परिगृहीत हूँ—(सोच) विनय-सहित भूमिपर बैठ गई । तब उसे वहीं कनातसे घेर दिया ।···दासीगण-सहित घर गई ।

मृगार श्रेष्ठीके आदमी भी उसीके साथ धनंजय श्रेष्ठीके घर गये ।

"तातो ! तुम किस गांवके रहनेवाले हो ?"

" हम श्रावस्ती नगरके मृगार-श्रेष्ठीके आदमी हैं ।" तुम्हारे घरमें वयःप्राप्त कन्या है, सुनकर हमारे सेठने हमें भेजा है ।"

" अच्छा, तातो ! तुम्हारा श्रेष्ठी धनमें हमसे थोड़ा ही असमान है, किंतु जातिमें बराबर है । सब तरहसे समान तो मिलना मुश्किल है । जाओ सेठको हमारी स्वीकृतिकी बात कहो ।"

उन्होंने उसकी बात सुनकर, श्रावस्ती जा. मृगार श्रेष्ठीको तुष्टि और वृद्धि निवेदनकर— 'स्वामी ! हमें साकेतमें धनंजय श्रेष्ठीके घरमें कन्या मिली है'—कहा । उसको सुनकर मृगार सेठने—' महाकुल-घरमें हमें कन्या मिली ' (जान), संतुष्ट चित्त हो उसी समय धनंजय श्रेष्ठीको पत्र (=शासन)भेजा— " इसी समय हम कन्याको लायेंगे, प्रबन्ध करना हो सो करें ।" उसने भी उत्तर (=प्रतिशासन) भेजा-" यह हमारे लिये भारी नहीं है, श्रेष्ठी अपना प्रबंध करना हो सो करें ।"

उसने (=मृगार सेठ)ने कोसल-राजाके पास जाकर कहा—

" देव ! मेरे यहां एक मंगल काम है । आपके दास पुण्ड्र-वर्धनके लिये धनंजय-श्रेष्ठीकी कन्या विशाखाको लाने जाना है, मुझे साकेत नगर जानेकी आज्ञा दें ।"

" अच्छा महाश्रेष्ठी ! क्या हमें भी चलना है ?"

" देव ! तुम्हारे जैसोंका जाना कहां मिल सकता है ?' राजा, महाकुल-पुत्रको संतुष्ट करनेकी इच्छासे ' श्रेष्ठी ! मैं भी चलूँगा '-स्वीकारकर मृगार सेठके साथ साकेत-नगर गया । धनंजय सेठने—' मृगार सेठ कोशल राजाको लेकर आता है' सुन, अगवानीकर, राजाको अपने घर ले गया । उसी समय राजा प्रसेनजित् कोसल, राज-बल (=राजाके नौकर चाकर आदि) और मृगार सेठके लिये वास-स्थान और माला, गंध, वस्त्र, आदि उपस्थित किये । ' यह इसको मिलना चाहिये' ' यह इसको मिलना चाहिये ', यह श्रेष्ठी सब स्वयं जानता था । प्रत्येक आदमी सोचता था—श्रेष्ठी हमाराही सत्कार कर रहा है ।"

तब एक दिन राजाने धनंजय सेठको शासन (=पत्र) भेजा—

" चिरकाल तक श्रेष्ठी हमारा भरण पोषण नहीं कर सकते, कन्याकी बिदाईका समय बतलावें ।"

उसने भी राजाको शासन भेजा—

" इस समय वर्षाकाल आगया, चार मास चलना नहीं हो सकता । आपके बल-काय (=लोग-बाग) को जो जो चाहिये, वह सब भार मेरे ऊपर है, देव ! मेरे भेजनेपर जांये ।"

तबसे साकेत नगर, नित्य महोत्सववाला गांव होगया । इस प्रकार तीन मास व्यतीत हुये । धनंजय सेठकी लड़कीका महालता आभूषण तब तक भी तय्यार न हुआ था । उसके कारपर्दाज (=कम्मन्ताधिट्ठायक) आकर बोले—

" और तो किसी की कमी नहीं है, किन्तु बलकायके भोजन बनानेकेलिये लकड़ी पूरी नहीं है ।"

" तातो जाओ ! हस्तिशाला, अश्वशाला, गोशाला उजाड़कर भोजन पकाओ ? "

ऐसे पकाते भी आध महीना बीता । उन्होंने फिर कहा—

" स्वामी ! लकड़ी पूरी नहीं पड़ती । "

" तातो ! इस समय लकड़ी नहीं मिल सकती । कपड़ेके गोदाम (=दुस्स-कोट्ठागार) खोलकर, मोटी मोटी साड़ियों (=साटक)को लेकर बत्ती बना, तेलमें भिगा, भोजन पकाओ ।"

इस प्रकार पकाते हुये, चार मास पूरा हुआ । तब धनंजय सेठने कन्याके महालता प्रसाधनको तय्यार जानकर—'कल कन्याको भेजूँगा—(सोच) कन्याको पासमें बैठा—'अम्म ! पतिकुलमें वास करनेके लिये यह यह आचार सीखना चाहिये—उपदेश दिया । मृगार सेठने भी घरके भीतर लेटे धनंजय सेठके उपदेशको सुना । धनंजय सेठ कन्याको बोला—

" अम्म ! श्वशुर-कुलमें वास करते (१) भीतरकी आग बाहर न ले जानी चाहिये, (२) बाहरकी आग भीतर न ले जानी चाहिये । (३) देतेहुयेको देना चाहिये, (४) न देते हुये को न देना चाहिये । (५) देते हुये, न देतेहुयेको भी देना चाहिये । (६) सुखसे बैठना चाहिये । (७) सुखसे खाना चाहिये । (८) सुखसे लेटना चाहिये (९) अग्नि-परिचरण करना चाहिये । (१०) भीतरके देवताओंको नमस्कार करना चाहिये"

इन दश प्रकारके उपदेशोंको दे, सभी श्रेणियों(=वणिक्-सभाओं)को जमाकर राज-सेनाके बीचमें आठ कुटुम्बियों (=पंचों) को जामिन (=प्रातिभोग) लेकर—'यदि गये स्थान पर मेरी कन्याका अपराधहो तो तुम परिशोध करना"—कह नव करोड़ मूल्यके महालता आभूषणसे कन्याको आभूषित कर, स्नान-चूर्णके मूल्यके लिये चौवन सौ (=५४००) गाड़ी धन देकर, कन्याके साथ अनुरक्त पाँच सौ दासियां, पाँच सौ उत्तम (=आजन्य) रथ, और सब सत्कार सौ सौ दे, कोसल राजा और मृगार-सेठको विसर्जित (किया) ।···· ।

विशाखाने (श्रावस्ती) नगरके द्वार पर पहुंचनेके समय सोचा—ढँके यानमें बैठ कर, नगरमें प्रवेश करूँ, या रथ पर खड़ी हो कर । तब उसको यह हुआ—ढँके यानमें बैठ कर, प्रवेश करने पर महालता-प्रसाधनकी विशेषता न जान पड़ेगी । इस लिये वह सारे नगरको अपनेको दिखाती, रथपर बैठ, नगरमें प्रविष्ट हुई । श्रावस्ती-वासियोंने विशाखाकी संपत्तिको देखकर कहा-

" यह विशाखा है । यह रूप और यह संपत्ति इसीके योग्य है ।"

इस प्रकार वह महान् ऐश्वर्यके साथ मृगार सेठके घरमें प्रविष्ट हुई ।

आनेके दिनही सारे नगरवासियोंने—'धनंजय सेठने अपने नगरमें जानेपर, हमारा बड़ा सत्कार किया—(सोच) यथाशक्ति=यथाबल भेंट भेजी । विशाखाने भेजी हुई सभी भेंटें उसी नगरमें, एक दूसरे कुलोंमें बयना (=सर्वार्थक) दे दिया । तब उसके आनेकी रातके ही भागमें, एक आजन्य (=उत्तम खेतकी) घोड़ीको गर्भ-वेदना हुई । तब वह दासियोंसे दंड-दीपिका (=मशाल) ग्रहण करवा वहां जा, घोड़ीको गर्म पानीसे नहलवा, तेलसे मालिश करवा, अपने वासस्थानको गई ।

मृगार सेठने भी एक सप्ताह (तक) पुत्रका विवाह-सत्कार (=उत्सव) करते, धुर-विहार (=निरन्तर विहार करनेके स्थान)में बसते हुये तथागतको, मनमें न कर, सातवें दिन सब घरको भरते नंगे श्रमणोंको बैठाकर विशाखाके पास शासन भेजा—

" आवे मेरी कन्या, अर्हत् लोगोंकी वन्दना करे ।"

वह स्रोत-आपन्न आर्य-श्राविका 'अर्हत्' शब्द सुन, हृष्ट तुष्ट हो, उनके बैठनेकी जगह जा, उन्हें देख—'ऐसे ही अर्हत् होते हैं । मेरे श्वशुरने इन लज्जा-भय-विवर्जितोंके पास मुझे क्यों बुलवाया ?' (कह), 'धिक्-धिक् !' से धिक्कारकर, अपने वास-स्थानको चली गई । नग्न श्रमणोंने उसे देखकर, एक बारगी सेठको धिक्कारा—

" गृहपति ! क्या तुझे दूसरी कन्या नहीं मिली ? श्रमण गौतम की श्राविका (इस) महाकुलक्षणां (=महाकालकर्णी) को क्यों इस घरमें प्रविष्ट किया ? इसे इस घरसे जल्दी निकाल । "

तब सेठने—' इनकी बातसे इसे घरसे नहीं निकाल सकते, महाकुलकी यह कन्या है '—सोच, " आचार्यो ! बच्चे जो जान या बेजान करें, तो आप लोग क्षमा करें ।" कह नंगोंको विदाकर, बड़े आसन पर बैठ, सोनेकी करछी ले सोनेकी थालीमें परोसा जाता निर्जल मधुर खीर भोजन करने लगा । उसी समय एक पिंडचारी स्थविर (भिक्षु) पिंड-चार करते, सेठके गृहद्वारपर पहुँचा । विशाखा उसे देख, ' श्वशुरको कहना उचित नहीं ' सोच, जैसे वह स्थविरको देखसके, वैसे हटकर खड़ीहो गई । वह बाल (=मूर्ख) स्थविरको देखकरभी, नहीं देखता हुआ सा हो, नीचे मुंहकर, पायसको खाता था । विशाखाने—मेरा श्वशुर स्थविरको देखकर भी इशारा नहीं करता है—जान, स्थविरके पास जा—' आगे जाइये भन्ते ! मेरा ससुर पुराना खा रहा है '—बोली ।

" वह तो ' निगंठों ' (=जैन साधुओं)के कहनेके समयहीसे (बुरा) मान गया था; ' पुराना खा रहा है ' सुनते ही भोजनपरसे हाथ खींचकर बोला—

" इस पायसको यहांसे ले जाओ, इसे भी इस घरसे निकालो । यह मुझे ऐसे मंगल घरमें अशुचि-खादक बना रही है ।"

उस घरमें सभी दास कर्म-कर विशाखाके अधिकारमें थे, हाथ और पैरसे कौन पकड़ैगा, मुखसे भी कोई न बोल सकता था । तब विशाखा ससुरको बात सुनकर बोली—

" तात ! इतने वचनसे नहीं निकलती । तुम मुझे पनघटसे कुम्भदासी (=पनभरनी दासी) की तरह नहीं लाये हो । जीते माता पिता की कन्यायें इतने से नहीं निकला करतीं । इसी कारण मेरे पिताने यहां आनेके दिन आठ कुटुम्बिकोंको बुलाकर—यदि मेरी कन्याका अपराध हो तो तुम शोध करना' कहकर, उनके हाथमें सौंपा था । उनको बुलवाकर मेरे दोषा-दोष की शोध करो ।"

सेठने-'यह अच्छा कह रही है,—(सोच), आठों कुटुंबिकों (पंचों) को बुलवाकर—

'यह लड़की सातवें दिनके पूरा होनेसे भी पहले, मंगल-घरमें बैठे मुझे, अशुचि-खादक कहती है ?'—कहा ।

"अम्म ! क्या ऐसा (कहा) ?"

"तातो ! मेरा ससुर अशुचि-खादक (होना) चाहता होगा, मैंने तो इस प्रकार नहीं कहा । एक पिंडपातिक (मधूकरी मांगने वाले) स्थविरके घरके द्वारपर खड़े होनेपर (भी) यह निर्जल पायस खाते थे; उसका ख्याल न करते थे । मैंने इस कारण—भन्ते ! आगे जांय, मेरा ससुर इस शरीरमें पुण्य नहीं करता, पुराने पुण्यको खा रहा है—इतना मात्र कहा ।"

"आर्य्य ! यह दोष नहीं है, हमारी बेटी कारण बतलाती है, कि तुम दिलसे खाते हो ।"

"आर्यो ! यह दोष न सही, यह लड़की आनेके दिन ही, मेरे पुत्रका ख्याल न कर अपनी रुचिके स्थानपर चली गई ।"

"अम्म ! क्या ऐसा है ?"

"तातो ! अपनी रुचिके स्थानपर मैं नहीं गई । इसी घरमें आजन्य घोड़ीके जननेका ख्याल न कर, बैठे रहना अनुचित था, इसलिये मशाल लिवाकर, दासियोंके साथ वहां जाकर मैंने घोड़ी का प्रसव-उपचार करवाया ।"

"आर्य ! हमारी बेटीने तुम्हारे घरमें दासियोंके भी न करनेका काम किया, तुम यहां क्या दोष देखते हो ?"

" आर्यो ! यह चाहे गुण हो, इसके पिताने यहां आनेके दिन, उपदेश देते 'घरकी आग बाहर न ले जानी चाहिये' कहा । क्या दोनों ओर पड़ोसियोंके घर विना आगके रह सकते हैं ?"

" अम्म ! ऐसा है ?"

" तातो ! मेरे पिताने इस आगको लेकर नहीं कहा था । बल्कि जो घरके भीतर सासु आदि स्त्रियोंकी गुप्त बात पैदा होती है, वह दास दासियोंको नहीं कहनी चाहिये । ऐसी बात बढ़कर कलह कराती है । इसका ख्यालकर, तातो ! मेरे पिताने कहा था ।"

" आर्यो ! यह भी चाहे (दोष न) हो; इसके पिताने—'बाहरसे आग भीतर न लानी चाहिये'—कहा, क्या भीतर आग बुझ जानेपर, बाहरसे आग लाये विना (काम) हो सकता है ?"

" अम्म ! ऐसा ?"

" तातो ! मेरे पिताने इस आगको लेकर नहीं कहा था । बल्कि जो दोष दास कर्म-कर कहते हैं, उसे भीतरके आदमियोंको नहीं कहना चाहिये !"

" ···'देते हैं उन्हींको देना चाहिये'—यह जो कहा वह मँगनीकी चीजका ख्याल करके···कहा ।"

" ...जो नहीं देते हैं, यह भी मँगनीको लेकर, 'जो नहीं लौटाते उन्हें न देना चाहिये' ख्यालकर कहा ।"

"देनेवालेको भी न देनेवालेको भी देना चाहिये' यह गरीब, अमीर जाति-मित्रोंको, चाहें वह प्रतिदान (=बदलेमें देना) कर सकें या नहीं, देनाही चाहिये' इसका ख्याल करके कहा ।"

" 'सुखसे बैठना चाहिये' यह भी सास-ससुरको देखकर उठनेके स्थानपर बैठना नहीं चाहिये', ख्याल करके कहा ।"

"सुखसे खाना चाहिये'—यह भी सास-ससुर-स्वामीके भोजन करनेसे पहिले ही भोजन न कर, उनको परोसकर, सबको मिलने न मिलनेकी बात जानकर, पीछे स्वयं भोजन करना चाहिये' ख्याल करके कहा ।"

" ...सुखसे लेटना चाहिये'—यह भी सास-ससुर-स्वामीके पहिले बिस्तर पर न लेटना चाहिये, उनके लिये करने योग्य सेवा-टहल (=व्रत-प्रव्रत) करके, तब स्वयं लेटना उचित है, यह ख्यालकर कहा ।"

" 'अग्नि-परिचरण करना चाहिये'—यह 'अम्म ! सास-ससुर-स्वामीको अग्नि-पुञ्जकी भांति, नाग-राजकी भांति देखना चाहिये'—यह ख्यालकर कहा ।'

"यह इतने सब चाहे गुण होवें ; इसका पिता 'भीतरके देवताओंको नमस्कार' करवाता है, इसका क्या अर्थ है ?"

"ऐसा, अम्म ?"

"हां, तातो ! यह भी मेरे पिताने यही ख्यालकर कहा—'अम्म ! परम्परागत गृहस्थ (आश्रम)-वाससे लेकर अपने घर-द्वारपर आये, प्रव्रजितको देखकर, जो घरमें खाद्य-भोज्य हो, उसमेंसे प्रव्रजितों (=सन्यासियों)को देकर ही खाना चाहिये ।"

तब उन्होंने उस (=मृगार सेठ)को कहा—

"महाश्रेष्ठी ! तुझे मालूम होता है, प्रव्रजितको देखकर न देना ही पसन्द है ?'

वह दूसरा उत्तर न देख, नीचे मुखकर बैठ रहा । तब कुटुम्बिकोंने पूछा—

"क्या श्रेष्ठी ! और भी हमारी बेटीका कोई दोष है ?"

"आर्यो नहीं !"

"तो क्यों इसे निर्दोष अ-कारण घरसे निकलवाते थे ?"

"उस समय विशाखाने कहा—पहिले अपने ससुरके कहनेसे मेरा जाना उचित न था । मेरे आनेके दिन मेरे पिताने दोषादोष शोधने के लिये (मुझे) तुम्हारे हाथ सौंपा था । लेकिन अब मेरा जाना उचित है" कह, दासी दासोंको "सवारियां तय्यार करो" कहा ।

तब सेठने उन कुटुम्बिकोंको लेकर कहा—"अम्म ! मैंने अनजाने कहा था मुझे क्षमा कर ।"

"तात ! क्षमा करती हूँ, तुम्हारा क्षंतव्य (दोष) क्षमा करती हूँ । परन्तु मैं बुद्ध-धर्ममें

"भन्ते ! भिक्षु-संघके साथ भगवान् मेरा कलका भोजन स्वीकार करें ।"

भगवान्‌ने मौनसे स्वीकार किया । तब विशाखा मृगार-माता भगवान्‌की स्वीकृतिको जान, आसनसे उठ भगवान्‌को अभिवादन कर प्रदक्षिणा कर चली गई । उस समय उस रातके बीतने पर, चारों द्वीपवाला महामेघ बरसा । तब भगवान्‌ने भिक्षुओंको आमंत्रित किया—

"भिक्षुओं ! यह जैसे जेत-वनमें बरस रहा है, वैसेही (यह) चारों द्वीपोंमें बरस रहा है, भिक्षुओ ! वर्षा स्नान करो यह अंतिम चातुर्द्वीपिक महामेघ है ।"

"अच्छा भन्ते !" कह भिक्षु भगवान्‌को उत्तर दे, चीवरको अलग कर, शरीरसे वर्षा-स्नान करने लगे । तब विशाखा मृगार-माताने उत्तम खाद्य भोज्य तैयार कर, दासीको आज्ञा दिया—

"जे ! जा, आराममें जाकर काल सूचित कर—(भोजनका) काल है, भन्ते ! भोजन तय्यार होगया ।"

"अच्छा आर्ये !" कह...उस दासीने आराममें जा, उन भिक्षुओंको चीवर फेंक, वर्षा-स्नान-करते देखा । देखकर—'आराममें भिक्षु नहीं हैं, आजीवक वर्षा-स्नानकर रहे हैं' (सोच) जहाँ विशाखा मृगार-माता थी, वहाँ गई; जाकर विशाखाको कहा—

"आर्ये ! आराममें भिक्षु नहीं है, आजीवक वर्षा-स्नान कर रहे हैं ।"

तब पंडिता=व्यक्ता मेधाविनी विशाखाको यह हुआ—'निःसंशय आर्य चीवरको छोड़ वर्षा-स्नान कर रहे हैं, सो इस बाला(=मूर्ख)ने समझा—आराममें भिक्षु नहीं हैं० ।"

अत्यन्त अनुरक्त कुलकी कन्या हूँ, हम भिक्षु-संघ (की सेवा)के विना नहीं रह सकते । यदि अपनी रुचिके अनुसार भिक्षु-संघकी सेवा करने पाऊँ, तो रहूंगी ।'

"अम्म ! तू यथा-रुचि अपने श्रमणों की सेवा कर ।"

तब विशाखाने दश-बल (=बुद्ध) को निमंत्रित कर, दूसरे दिन घरको भरते हुये, बुद्ध-प्रमुख भिक्षु-संघको बैठाया । नंगोंकी जमात (=नग्न-परिषद्) भी, भगवान्‌के मृगारसेठके घर जानेकी बात सुन, वहाँ जाकर घरको घेर कर बैठी । विशाखाने दानका जल (=दक्षिणोदक) दे, शासन (=संदेश) भेजा—'सब सत्कार होगया, मेरे ससुर आकर दश-बलको परोसें' । उसने—'निगंठोंकी बात सुनकर मेरी बेटी 'सम्यक् संबुद्धको परोसें' कह रही है । विशाखाने भोजन समाप्त हो जाने पर, फिर शासन भेजा—'मेरे ससुर आकर दश-बलका धर्म-उपदेश सुनें ।' तब 'अब न जाना बहुतही अनुचित होगा', (सोचकर) जाते हुये उसे नग्न श्रमणों ने कहा—'श्रमण गौतमका धर्म-उपदेश कनातके बाहरही रहकर सुनो' । मृगारसेठ जाकर, कनातके बाहरही बैठा । तथागतने—'तू (चाहे) कनातके बाहर बैठे' (चाहे) भीतकी आड़में या पहाड़की आड़में या चक्रवालके पार बैठे ; मैं बुद्ध हूं, तुझे अपना शब्द सुना सकता हूं । (सोच) सुनहले, पके, फलों वाले आम्रवृक्षकी डाली पकड़ कर हिलातेकी भाँति, धर्म-उपदेश किया । उपदेश के समाप्त होने पर सेठने स्रोतआपत्तिफलमें स्थितहो, कनातको हटा, पाँचों (अंगों)को (भूतलमें) प्रतिष्ठित कर, शास्ताके पैरोंकी वन्दनाकर, शास्ताके सामने ही—'अम्म ! तू आजसे मेरी माता है' कह, विशाखाको माताके स्थानपर प्रतिष्ठित किया । तबसे विशाखा 'मृगार-माता' नामवाली हुई ।

फिर दासीको कहा—'जे जा० ।' तब वह भिक्षु गात्रको ठंडाकर ···चीवरले, अपने अपने विहारों (=कोठरियों) में चले गये थे। तब उस दासीने आराममें जा, भिक्षुओंको न देख—'आराममें भिक्षु नहीं हैं, आराम सूना है।' (सोच) ···जाकर विशाखा···को कहा—

"आर्ये! आराममें भिक्षु नहीं हैं, आराम शून्य है।"

तब पंडिता=व्यक्ता मेधाविनी विशाखाको यह हुआ—'निःसंशय आर्य गात्रको ठंडाकर···चीवरले अपने अपने विहारमें चले गये। सो इस बालाने समझा—'आराममें भिक्षु नहीं हैं'। फिर दासीको कहा—"जे! जा० ।"

तब भगवान्‌ने भिक्षुओंको कहा—

"भिक्षुओ! पात्र-चीवर तय्यार करो, भोजनका समय है।"

"अच्छा भन्ते!"·········

तब भगवान् पूर्वाह्ण समय पहिनकर पात्र-चीवरले, जैसे बलवान् पुरुष बटोरी बांहको फैलावे, फैली बांहको बटोरे, वैसे ही (अप्रयास) जेतवनमें अन्तर्धान हो, विशाखा मृगारमाताके कोठेपर प्रादुर्भूत हुये। भिक्षु-संघके साथ भगवान् बिछे आसनपर बैठे। तब विशाखा मृगारमाताने—'आश्चर्य रे! अद्भुत रे!! तथागतकी महाऋद्धिमत्ता=महानुभावता, जो जांघभर···, कमर भर पानीकी बाढ़ होनेपर भी एक भिक्षुका पैर या चीवरभी नहीं भीगा है।—हृष्ट=उदग्र हो बुद्ध-प्रमुख भिक्षुसंघको, उत्तम खाद्य भोज्यसे अपने हाथ सन्तर्पित संप्रवारितकर, भगवान्‌को भोजन करा, भगवान्‌के भोजनकर, पात्रसे हाथ हटा लेनेपर, एक ओर बैठ गई। एक ओर बैठी हुई विशाखा मृगार-माताने भगवान्‌से कहा—

"भन्ते! मैं भगवान्‌से (कुछ) वरोंको मांगती हूँ।"

"विशाखे! तथागत वरोंसे परे हैं।"

"जो भन्ते! कल्प्य हैं=निर्दोष हैं।"

"बोल, विशाखे!"

"भन्ते! मैं संघको यावत्-जीवन वर्षाकी लुंगी (=वस्सिक-साटी) देना चाहती हूँ, आगन्तुक (=नवागत)को भोजन देना०, यात्रापर जानेवाले (=गमिक)को भोजन०, रोगीको भोजन०, रोगी-परिचारकको भोजन०, रोगीको औषध०, सर्वदा यागू (=खिचड़ी)०, और भिक्षुणी-संघको उदक-साटी (=ऋतुमतीका कपड़ा) देना०।"

"विशाखे! तू किस कारणसे तथागतसे आठ वर मांगती है?"

"भन्ते! मैंने दासीको आज्ञा दी—'जे! आराम जाकर कालकी सूचना दे, काल है भन्ते! भोजन तय्यार है'। तब भन्ते! वह आकर मुझसे बोली—'आर्ये! आराममें भिक्षु नहीं हैं, आजीवक शरीरसे वर्षा-स्नानकर रहे हैं।' भन्ते! नंगापन गंदा, घृणित, विरुद्ध (बात) है, इस कारणको देख, भन्ते! संघको यावज्जीवन वर्षिक-शाटी देना चाहती हूँ। और फिर भन्ते! आगन्तुक (=नवागत) भिक्षु गली, और गन्तव्य स्थानसे अपरिचितहो थके-मांदे पिंडचार करते हैं। वह मेरा आगन्तुक-भोजन ग्रहणकर वीथि-कुशल, गोचर-कुशल, थकावट-रहित हो पिंडचार करेंगे०। और फिर भन्ते! गमिक भिक्षु अपने भोजनकी

तलाशमें भगवान्‌का साथ छोड़ देते हैं, या जहां मंजिल करना है, वहां विकालमें थके रास्ता जाते हैं। वह मेरा गमिक-भात भोजनकर भगवान्‌को न छोड़ेंगे, या जहां टिकान करना है। वहां कालसे पहुँचेंगे, अ-क्लान्त हो रास्तेमें जायेंगे० । और फिर भन्ते! रोगीको अनुकूल भोजन न मिलनेसे रोग बढ़ता है, या मरण होता है, मेरे ग्लान-भक्त (=रोगि-भोजन)को भोजन करनेसे न उसका रोग बढ़ेगा, न मरण होगा० । और फिर भन्ते! रोगि-परिचारक भिक्षु अपने भोजनके प्रबंधमें रोगी को देरसे भात लाते हैं (या) उपवास (=भक्त-च्छेद) पड़ जाते हैं० । और फिर भन्ते! रोगी भिक्षुको अनुकूल औषध न पानेसे रोग बढ़ता है, या मरण होता है० । और फिर भन्ते! भगवान्‌ने [1]अन्धकविन्दमें दस गुण देख यवागू (=पतली खिचड़ी) की अनुज्ञाकी थी। उन गुणोंको देखती हुई, मैं जीवन भर संघको निरन्तर (=ध्रुव) यवागू देना चाहती हूँ। भन्ते! (एक समय) भिक्षुणिया अचिरवती नदीमें वेश्याओंके साथ नंगी एक घाट (=तीर्थ) पर नहाती थीं। भन्ते! वेश्यायें भिक्षुणियोंको बात मारती थीं—'क्या है, अय्या! तरुणी तरुणी तुम लोगोंको ब्रह्मचर्य-सेवनमें । (अभी) कामोंको भोगो, जब बुड्ढी होना तो ब्रह्मचर्य-सेवन करना । इस प्रकार तुम्हें (दोनों) अर्थ प्राप्त होंगे।' सो वह भिक्षुणियां वेश्याओंके बात मारनेसे मूक होगईं। स्त्रियोंकी नग्नता भन्ते! अशुचि, जुगुप्सित और विरुद्ध (=प्रतिकूल) है० ।······

\+ \+ \+ \+

(२)

आनन्द-चरित । चिंचाकांड । रोगि-सुश्रूषक बुद्ध । पूर्वाराम-निर्माण (वि. पू. ४५०) ।

[1]···(आनन्द) हमारे बोधिसत्त्वके साथ तुषित(स्वर्ग)-पुरमें उत्पन्न हो, वहांसे च्युत हो, अमृतौदन शाक्यके घरमें पैदा हुये। सब ज्ञातिको आनन्दित , प्रमुदित करते हुये उत्पन्न होनेसे नाम आनन्द रक्खा गया । वह क्रमशः भगवान्‌के अभिनिष्क्रमण (=गृहत्याग) कर, संबोधि प्राप्त हो, पहिली वार कपिलवस्तु आकर, फिर वहांसे चले जानेपर; भगवान्‌के पास, भगवान्‌के अनुचर होनेके लिये जब शाक्य राजकुमार लोग प्रव्रजित हो रहे थे, तो [2]भद्दिय आदिके साथ निकलकर, भगवान्‌के पास प्रव्रजित हो, आयुष्मान् मैत्रायणी-पुत्र (=मंतानी-पुत्त) के धर्म-उपदेशको सुन, थोड़ीही देरमें, स्रोतआपत्ति फलमें स्थित हुये । उस समय बुद्धत्त्व-प्राप्ति (=बोधि)के प्रथम बीस वर्षोंमें भगवान्‌के उपस्थाक (=परिचारक) नियत न थे । कभी नागसमाल पात्र-चीवर लेकर चलते थे; कभी नागित, कभी उपवाण, कभी सुनक्षत्र, कभी चुन्द श्रमणोद्देश, कभी स्वागत, कभी राध, कभी मेघिय । एक समय भगवान् नागसमाल स्थविरके साथ रास्तेमें जा रहे थे । जहां (रास्ता) दो (ओर) कटा था; (वहां) स्थविर मार्गसे हटकर, भगवान्‌से बोले—"भगवान् ! मैं इस मार्गसे जाऊँगा ।" तब भगवान्‌ने उन्हें कहा—'आ, भिक्षु ! इस रास्ते से चलें ।' उन्होंने—'हन्त ! भगवान् ! अपना पात्र-चीवर लें, मैं इस मार्गसे जाता हूं'—कह, पात्र-चीवर भूमिपर रखना चाहा । तब भगवान्—" लाओ भिक्षु ! "—कह, पात्र-चीवर लेकर चले । इधर उधरके रास्तेसे जाते समय, चोरोंने स्थविरका चीवर भी छीन लिया, और पात्रभी फोड़ दिया । तब —'भगवान्‌ही अब मेरे शरण हैं, दूसरा नहीं' सोच, खून बहते भगवान्‌के पास आये । 'यह क्या भिक्षु !' पूछनेपर, उन्होंने सब हाल कह दिया ।····एक समय भगवान् मेघिय[3] स्थविरके साथ प्राचीन वंशदायमें जंतु-ग्रामको गये । वहां मेघियने जंतु-ग्राममें पिंडचार करके, नदीके तटपर सुन्दर आम्र-वन देख—' भगवान् ! अपना पात्र चीवर लें, मैं उस आमके बागमें श्रमण-धर्म करूँगा'—कह, भगवान्‌के तीन वार मना करनेपर भी जाकर, बुरे विचारोंसे तंग होनेपर, लौटकर उस बातको भगवान्‌से कहा ।—'यही कारण देखकर मैंने मना किया था'—कहकर, भगवान् क्रमशः श्रावस्ती पहुँचे ।

वहां भिक्षु-संघसे घिरे (भगवान्‌ने) गंध-कुटीके परिवेण (=चौक)में बिछे उत्तम बुद्धासनपर बैठ, भिक्षुओंको आमंत्रित किया—

" भिक्षुओं ! अब मैं वृद्ध (५६ वर्षका) हूँ । कोई कोई भिक्षु, ' इस मार्गसे चलो ' कहनेपर दूसरेसे जाते हैं, कोई कोई मेरा पात्र-चीवर भूमिपर रख-देते हैं । मेरे लिये एक नियत उपस्थाक (=परिचारक) भिक्षु खोजो । "

(सुननेपर) भिक्षुओंको खेद हुआ । तब आयुष्मान् सारिपुत्रने उठकर, भगवान्‌को वन्दनाकर कहा—

---

१. अ. नि. अ. क. १:४:१ । २. देखो पृष्ठ ५९, ६३ । ३. देखो पृष्ठ २९४-९५ ।

"भन्ते! मैंने तुम्हारी ही चाहसे सौहजार कल्पोंसे भी अधिक (समय तक), अ-संख्य पारमितायें पूरी कीं। मेरे ऐसा महाप्राज्ञ सेवक (=उपस्थाक) मौजूद है, मैं सेवा करूँगा।"

उन्हें भगवान्‌ने कहा—"नहीं सारिपुत्र! जिस दिशामें तू विहरता है, वह दिशा मुझसे अ-शून्य होती है। तेरा धर्म-उपदेश बुद्धोंके धर्म-उपदेशके समान है। इसलिये मुझे तेरे उपस्थाक (बनने)से काम नहीं है।"

इसी प्रकारसे महामौद्गल्यायन आदि अस्सी महाश्रावक खड़े हुये। सबको भगवान्‌ने इन्कार कर दिया। आनन्द स्थविर चुप-चाप ही बैठे रहे। तब उन्हें भिक्षुओंने कहा—'आवुस! भिक्षु-संघ उपस्थाक-पद मांग रहा है, तुम भी मांगो'। 'आवुसो! मांगकर स्थान पाया तो क्या पाया? क्या भगवान् मुझे देख नहीं, रहे हैं? यदि रुचैगा तो—'आनन्द मेरा उपस्थान करे' बोलेंगे'। भगवान्‌ने कहा—'भिक्षुओ! आनन्दको दूसरा कोई उत्साहित मत करे, स्वयं जानकर वह मेरा उपस्थान करेगा।' तब भिक्षुओंने कहा—"उठो आवुस! आनन्द! दश-बलसे उपस्थाक-स्थान मांगो।' तब स्थविर (आनन्द)ने उठकर, चार प्रतिक्षेप (=इन्कार) और चार याचनायें—आठ वर मांगे। चार प्रतिक्षेप यह हैं—यदि भगवान् अपने पाये उत्तम, (१) चीवरको मुझे न दें, (२) पिंडपातको न दें, (३) एक गंधकुटीमें निवास न दें, (४) निमंत्रणमें लेकर न जायें; तो मैं भगवान्‌का उपस्थान करूँगा।"

"आनन्द! इनमें तूने क्या दोष देखा?"

"भन्ते! यदि मैं इन वस्तुओंको पाऊँगा, तो (इस बातके) कहनेवाले होंगे—आनन्द दशबलको मिले उत्तम चीवर परिभोग करता है०। इस प्रकारके लाभके लियेही तथागतकी सेवा करता है।"···। चार आयाचनायें यह हैं—यदि भन्ते! भगवान् (१) मेरे स्वीकार किये, निमंत्रणमें जायँ, (२) दूसरे राष्ट्र (या) दूसरे जनपदसे भगवान्‌के दर्शनको आई परिषद्‌को आनेके समय ही भगवान्‌का दर्शन करा पाऊँ, (३) जब मुझे इच्छा हो, उसी समय भगवान्‌के पास आने पाऊँ, (४) और जो भगवान् मेरे परोक्षमें धर्म-उपदेश करें, उसे आकर मुझे भी उपदेश कर दें। तब मैं भगवान्‌का उपस्थान करूँगा।"

भगवान्‌ने (इन आठ वरोंको) दिया। इस प्रकार आठ वरोंको लेकर (आनन्द) नियत उपट्ठाक हुये।······

[1]बीस वर्ष (भगवान्) अ-नियत (वर्षा-) वास करते, जहां जहां ठीक हुआ, वहीं बसे। इससे आगे दो ही शयनासन (=निवास-स्थान) ध्रुव-परिभोग (=सदा रहनेके) किये। कौनसे दो? जेतवन और पूर्वाराम।

चिंचा-कांड।

[2]प्रथम बोधिमें (=बोधिके बादके बीस वर्षोंमें) दश-बलको···महालाभ सत्कार उत्पन्न हुआ। सूर्योदय होनेपर जुगनूकी भांति, तैर्थिक लोग लाभ-सत्कार-विरहित-हुये।······। (तब वह) एकांत में एकत्रित हो सोचने लगे—श्रमण गौतमका लाभ सत्कार किस उपायसे

१. अ. नि. अ. क. २ : ४ : ६। २. ध. प. अ. क. १३ : १९।

नाश किया जाय ? उस समय श्रावस्तीमें चिंचा माणविका नामक एक परिव्राजिका, उत्तम रूपवती, सौभाग्य-प्राप्ता देवी अप्सराकी भांति (थी)। उसके शरीरसे किरणें निकलती थीं। तब उनमें एक तेज मंत्रीने"'कहा—' चिंचा माणविकाके द्वारा श्रमण गौतमकी अपकीर्ति करा, लाभ-सत्कार-नाश करावें'; उन्होंने ' यह उपाय है ' करके स्वीकार किया। उस समय वह (माणविका) तैर्थिक आराममें जाकर वन्दनाकर खड़ी हुई। तैर्थिकोंने उसके साथ बात न की। वह—' मेरा क्या दोष है ? तीन बार आर्यो ! वन्दना करती हूं '—कह—' आर्यो ! मेरा क्या दोष है, क्यों मेरे साथ नहीं बोलते ?' बोली। " भगिनी ! (क्या तू) श्रमण गौतम को हमारा लाभ-सत्कार विनाशकर विचरते, नहीं देख रही है ? "

" आर्यो ! नहीं जानती। फिर यहां मुझे क्या करना है ? "

" यदि भगिनी ! तू हम लोगोंका सुख चाहती है, तो अपने कारणसे श्रमण गौतमकी अपकीर्ति कर, श्रमण गौतमके लाभ-सत्कारको विनाश कर।"

"आर्यो ! अच्छा यह भार मुझपर है, चिंता मत करो।"

बोलकर, स्त्रीमायामें चतुर होनेसे, तबसे, लेकर; जब श्रावस्ती-वासी धर्म-कथा सुनकर जेतवनसे निकलने लगते, तब वीर-बहूटीके रंगका वस्त्र पहिन, गंध, माला आदि हाथमें ले, जेतवनकी ओर जाती थी। 'इस समय कहां जा रही है ?' पूछने पर—'तुम्हें मेरे जानेकी जगहसे क्या काम ?' कह जेतवनके समीप तैर्थिकाराममें वासकर, सवेरे प्रथम वन्दनाकी इच्छासे नगरसे निकलते उपासकोंको, जेतवनके भीतर निवास करके आई हुई सी दिखा नगरमें प्रवेश करती थी। '(रातको) कहां रही ?' पूछनेपर,—'तुम्हें मेरे (रात्रि) वास, स्थानसे क्या काम ?' कहती। मास आधामास बीत जानेपर पूछनेसे—'जेतवनमें श्रमण गौतमके साथ एकही गंधकुटीमें रही' (कह), पृथग्जनोंमें 'यह सच है, या नहीं'—इस प्रकारका संशय उत्पन्न कर, तीनमास चारमास बाद कपड़ेसे पेटको बांध, गर्भिणी जैसा दिखला, ऊपरसे लाल कपड़ा पहिन—'श्रमण गौतमसे गर्भ उत्पन्न हुआ'"'आठ नव मास बाद पेटपर लकड़ीकी मंडलिका बांध, ऊपरसे कपड़ा लपेट, गायके जबड़ेसे हाथ, पैर, पीठ, कुटवा कर, फूलासा बना, शिथिल-इंद्रिय हो, सायंकाल धर्मासनपर बैठ कर धर्म-उपदेश करते समय, धर्म-सभामें जा, तथागतके सामने खड़ी हो—

'महाश्रमण ! लोगोंको धर्म-उपदेश करते हो ? तुम्हारा शब्द मधुर है। श्रेष्ठ सुन्दर स्पर्शयुक्त है अब मैं तुमसे गर्भप्राप्त हो, परिपूर्ण-गर्भा होगई हूं। न मुझे प्रसूति-घर बतलाते (हो)। न स्वयं(ही) घी तेल आदिका प्रबंध करते हो। उपासकोंमें से—कोसल-राज, अनाथ-पिंडक या विशाखा महा-उपासिका कोही बोल्देते—इस माणविकाके लिये करने योग्य करो। अभिरमण ही जानते हो, गर्भ-उपचार नहीं जानते ?'—इस प्रकार गूथ-पिंड (=पाखानेका पिंड) ले, चंद्रमंडलको दूषित करनेके लिये कोशिश करती सी उसने, परिषद्‌के बीचमें तथागतपर आक्षेप किया। तथागतने धर्म-कथाको रोककर सिंहकी भांति गर्जते (अभिनंदन करते)—'भगिनी ! तेरे कहनेकी सचाई झुठाईको मैं या तूही जानते हैं'—कहा। "हां, महाश्रमण ! तेरे और मेरे जानेको कौन नहीं जानते ?" उसी समय इन्द्रका आसन गर्म जान पड़ा। वह सोचते हुये—'चिंचा माणविका तथागतपर झूठा दोष लगा रही है' जान, इसबातका

शोध करेंगे (सोच), चार देवपुत्रोंके साथ आया। देवपुत्रोंने चूहेके बच्चोंका रूप धारणकर एकही बेरमें दारु-मंडलिकाके बांधनेकी रस्सीको काट दिया, ओढ़नेके कपड़ेको हवाने उड़ा दिया। दारु-मंडलिका गिरते वक्त उसके पैरपर गिरी। दोनों पैरोंके पंजे कट गये। मनुष्योंने— 'धिक्! धिक्!! कलमुखी (=कालकर्णी), सम्यक् संबुद्धपर दोप लगा रही थी', (कह), शिरपर थूक, ढेला-डंडा हाथमें ले, जेतवनसे बाहर निकाल दिया। तब तथागतके लोचन-पथसे बाहर जाते ही धरतीने फटकर उसे जगह दी।...

रोगि-सुश्रूषक बुद्ध।

× × × ×

उस समय एक भिक्षुको पेटकी बीमारी थी। वह अपने पेशाव पाखानेमें पड़ा हुआ था। तब भगवान् आयुष्मान् आनन्दको पीछे लिये घूमते, जहां उस भिक्षुका विहार था, वहां पहुचे।...। जहां वह भिक्षु था, वहां गये। जाकर उस भिक्षुको पूछा—'भिक्षु! तुझे क्या रोग है?'। 'पेटकी बिमारी है, भगवान्!' 'भिक्षु तेरा कोई परिचारक है।' 'नहीं भगवान्!' 'क्यों तेरी सेवा नहीं करते?' 'भन्ते! मैं भिक्षुओंका कुछ न करने वाला हूं, इसलिये०....।' तब भगवान्ने आयुष्मान् आनन्दको कहा—'जा आनन्द! पानी ला, इस भिक्षुको नहला-देंगे।'...आनन्द पानी लाये। भगवान्ने पानी डाला, आयुष्मान् आनन्दने धोया। भगवान्ने शिरसे पकड़ा, आयुष्मान् आनन्दने पैरसे। उठाकर चारपाईपर लिटाया। तब भगवान्ने... इसी प्रकरणमें भिक्षुओंको इकट्ठाकर...।...'भिक्षुओ! तुम्हारी माता नहीं, पिता नहीं, जोकि तुम्हारी सेवा करेंगे। यदि तुम एक दूसरेकी सेवा न करोगे, तो कौन सेवा करेगा? जो रोगीकी सेवा करता है, वह मेरी सेवा करता है। यदि उपाध्याय हो, उपाध्यायको जीवनभर उपस्थान (=सेवा) करना चाहिये।...यदि आचार्य...।...शिष्य...।...गुरु-भाई...यदि न उपाध्याय है न आचार्य..., तो संघको सेवा करनी चाहिये। सेवा न करे तो दुष्कृतकी आपत्ति है।[1]

पूर्वाराम-निर्माण।

....एक[2] उत्सवके दिन लोगोंको मंडित=प्रसाधित हो, धर्म-श्रवणके लिये विहार जाते देख, विशाखाने भी निमंत्रित स्थानपर भोजनकर, महालता-प्रसाधनसे अलंकृत हो, लोगोंके साथ विहार जा, आभरणोंको उतार दासीको दिया।...।—

'अम्म! इन प्रसाधनों (=जेवरों)को रख, शास्ताके पाससे लौटते समय इन्हें पहनूँगी।' उसको देकर ...शास्ताके पास जा धर्म-उपदेश सुना। धर्म-श्रवणके बाद भगवान्को वन्दना कर, उठ कर चल पड़ी। वह उसकी दासी भी भूषणोंको भूल गई। धर्म सुनकर परिषद्के चले जाने पर जो कुछ भूला होता, उसे आनन्द स्थविर संभालते थे। इस प्रकार उन्होंने उस दिन महालता-प्रसाधनको देख शास्ताको कहा—

"भन्ते! विशाखाका प्रसाधन छूट गया है।"

"एक ओर रखदो आनन्द!"

---

१. महावग्ग। २. ध. प. अ. क. ४:४४।

स्थविरने उसे उठाकर सीढ़ीके पास लगाकर रख दिया । विशाखा भी सुप्रिया (दासी)के साथ, आगन्तुक, गमिक, रोगी आदिके कामको जाननेके लिये विहारके भीतर विचरती रही।··· दूसरे द्वारसे निकलकर विहारके पास खड़ी हो—'अम्म ! प्रसाधन, ला, पहिनूँगी ।' उस समय वह दासी भूल आनेकी बात जान—'आर्ये ! भूल आई हूँ'—बोली । 'तो जाकर ले आ, लेकिन यदि मेरे आर्य आनन्द स्थविरने उठाकर दूसरे स्थानपर रक्खा हो, तो मत लाना, आर्यहीको मैंने उसे दिया' ।···। स्थविर भी दासीको देखकर—'किसलिये आई'—पूछकर, 'अपनी आर्याका जेवर भूल गई हूँ'—बोलनेपर, 'मैंने इस सीढ़ीके पास रख दिया है, जा उसे लेजा' बोले । उसने—'आर्य ! तुम्हारे हाथके छूने ने उसे मेरी आर्याके पहिननेके अयोग्य बना दिया'—कहकर, खाली हाथही जा, 'अम्म, क्या है ?' विशाखाके यह पूछनेपर, उस बातको कह दिया । 'अम्म ! मैं अपने आर्यकी छूई चीजको नहीं पहनूँगी, मैंने आर्योंको दे दिया । किन्तु आर्योंको रखवालीमें तकलीफ होगी, उसको देकर योग्य (=कल्प्य) चीज लाऊँगी । जा उसे ले आ ।' वह जाकर ले आई ।

विशाखाने उसे न पहिन कर्मारों (=सुनारों)को बुलाकर दाम करवाया । 'नव करोड़ मूल्यका हुआ, और बनवाई सौ हजार ।'—कहने पर···'तो इसको बेंच दो' बोली । उतना धन देकर कोई खरीद न सकेगा । ···तब विशाखाने स्वयं उसका दाम दे, नवकरोड़ सौहजार गाड़ियों पर लदवा, विहारमें लाकर शास्ताको वन्दना कर—

"भन्ते ! मेरे आर्य आनन्द स्थविरने मेरा आभूषण हाथसे छू दिया, उनके छूनेके समयहीसे मैं उसे नहीं पहिन सकती थी, 'उसको बेचकर कल्प्य (=भिक्षुओंको ग्राह्य) लाऊँगी, (सोचा) उसे बेंचने वक्त दूसरेको उसके लेनेमें समर्थ न देख, मैंही उसका दाम उठाकर लाई हूँ । भन्ते ! भिक्षुओंके चारो पत्ययों (=ग्राह्य वस्तुओं) में से किसको लाऊँ ।"

"विशाखे ! संघके लिये पूर्व दर्वाजे पर वास-स्थान बनवाना युक्त है"

"भन्ते ! ठीक" (कह) सन्तुष्टहो विशाखाने नव करोड़में भूमिही खरीदा । दूसरे नवकरोड़ से [1]विहार बनाना आरंभ किया ।

तब एक दिन शास्ता प्रत्यूष समय लोकावलोकन करते, देवलोकसे च्युत हो भद्दिय (=मुँगेर) नगरमें श्रेष्ठी-कुलमें उत्पन्न हुये, भद्दिय श्रेष्ठी-पुत्रको···(आगत) देख, अनाथ-पिंडकके घर भोजनकर, उत्तरद्वारकी ओर हुये । स्वभावतः शास्ता विशाखाके घर भिक्षा ग्रहणकर, दक्षिणद्वारसे निकल, जेतवनमें वास करते थे, अनाथ-पिंडकके घर भिक्षा ग्रहणकर, पूर्वद्वारसे निकलकर, पूर्वाराममें वास करते थे । उत्तर-द्वारको ओर भगवान्‌को जाते देखकर ही (लोग) जान जाते (कि) चारिकाके लिये जा रहे हैं । विशाखा भी उस दिन 'उत्तरद्वारकी ओर गये' यह सुनकर जल्दीसे जाकर वन्दनाकर बोली—

---

१. चुल वग्ग. ६ । "उस समय विशाखा मृगार माता संघके लिये आलिंद (=बरांडा) सहित हस्तिनख (=हाथीके नख या खर्पूजेकी आकृतिका) प्रासाद बनवाना चाहती थी । तब भिक्षुओंको यह हुआ—क्यों भगवान्‌ने प्रासादका परिभोग (=ग्रहण, सेवन) अनुज्ञात किया है ? भगवान्‌से इस बातको पूछा ।—'भिक्षुओ ! सभी (प्रकार)के प्रासादोंके परिभोगकी अनुज्ञा करता हूँ ।"

"भन्ते ! चारिकाके लिये जाना चाहते हैं ?"

"हां, विशाखे !"

"भन्ते ! आपके लिये इतना धन देकर विहार बनवाती हूं ; भन्ते ! लौट चलें ।"

"विशाखे ! यह गमन लौटनेका नहीं है ।"

"तो भन्ते ! मेरे लिये कृत-अकृतका जानकार एक भिक्षु लौटाकर जांयें ।"……

"विशाखे ! उस (भिक्षु) का पात्र ग्रहणकर" । उसके दिलमें कुछ तो आनन्द स्थविर की इच्छा हुई । (फिर)—'महामौद्गल्यायन स्थविर ऋद्धिमान् हैं, उनके द्वारा मेरा काम जल्दी समाप्त हो जायगा'—सोचकर, स्थविरके पात्रको ग्रहण किया । स्थविरने शास्ताकी ओर देखा । शास्ताने—'अपने परिवारके पांच सौ भिक्षुले, मोग्गलान ! लौट जाओ'—कहा उन्होंने ऐसाही किय उनकी महिमासे, पचास साठ योजनपर वृक्ष या पाषाण केलिये गये (मनुष्य) बड़े बड़े वृक्षों और पाषाणोंको लेकर उसी दिन लौट आते थे । गाड़ियोंपर वृक्षों और पाषाणोंको रखनेमें, तकलीफ नहीं पाते थे, न धुरा टूटता था । उन्होंने जल्दी ही दो-तलका प्रासाद बना डाला । नीचेके तलपर पांच सौ गर्भ (=कोठरियां) और ऊपरके तलपर पांच सौ गर्भ,—एक हजार गर्भसे मंडित (वह) प्रासाद था ।

(३)

देवदह-सुत्त (त्रि. पू. ४५०)

ऐसा मैंने सुना—एक समय भगवान् शाक्य(देश)में, शाक्योंके[1] निगम देव-दहमें विहार करते थे।

वहां भगवान्ने भिक्षुओंको आमंत्रित किया—

"भिक्षुओ !" "भदन्त !"।...

भगवान्ने कहा—"भिक्षुओ ! कोई कोई श्रमण ब्राह्मण इस वाद=इस दृष्टिवाले हैं—'जो[2] कुछभी यह पुरुष=पुद्गल सुख, दुःख, या अदुःख असुख अनुभव करता है, वह सब पहिले किये हेतुसे। इस प्रकार पुराने कर्मोंका तपस्यासे अन्त करनेसे, नये कर्मोंके न करनेसे, भविष्य में परिणाम-रहित (=अन्-अवस्रव) (होताहै)। परिणाम-रहित होनेसे कर्मक्षय, कर्मक्षयसे दुःख-क्षय, दुःख-क्षयसे वेदना-क्षय, वेदना-क्षयसे सभी दुःख जीर्ण हो जाते हैं।'

"भिक्षुओ ! वह निगंठ मेरे ऐसा पूछने पर 'हां' कहते हैं। उनको मैं यह कहता हूं—'आवुसो निगंठो ! क्या तुम जानतेहो—हम पहिले थेही, हम नहीं न थे ?' 'नहीं आवुस !' 'क्या तुम आवुसो निगंठो ! जानतेहो-हमने पूर्वमें पाप कर्म कियाही है, नहीं नहीं किया है ?' 'नहीं आवुस !' 'क्या तुम आवुसो निगंठो ! जानतेहो—ऐसा ऐसा पाप-कर्म किया है ?' 'नहीं आवुस !' 'क्या० जानते हो—इतना दुःख नाश हो गया, इतना दुःख नाश करना है, इतना दुःख नाश हो जानेपर, सब दुःख नाश हो जायेगा ?' 'नहीं आवुस !' 'क्या० जानते हो—इसी जन्ममें अकुशल (बुरे) धर्मोंका प्रहाण (=विनाश) और कुशल धर्मोंका लाभ (होनाहै) ?' 'नहीं आवुस !' 'इस प्रकार आवुसो निगंठो ! तुम नहीं जानते—हम पहिले थे, या नहीं० इसी जन्ममें अकुशल धर्मोंका प्रहाण होना है, और कुशल धर्मोंका लाभ। ऐसा होनेपर आयुष्मान् निगंठोंका यह कथन युक्त नहीं—'जो कुछ भी यह पुरुष=पुद्गल० अनुभव करता है०। यदि आवुसो निगंठो ! तुम जानते होते—'हम पहिले थे ही०।' ऐसा होनेपर आयुष्मान् निगंठोंका यह कथन युक्त होता—'जो कुछ भी यह पुरुष०। आवुसो निगंठो ! जैसे (कोई) पुरुष विषसे उपलिप्त गाढ़ शल्य (=शरके-फल) से विद्ध हो। वह शल्यके कारण दुःखद, कटु, तीव्र वेदना अनुभव करता हो। उसके मित्र=अमात्य जाति-बिरादरी उसे शल्य-चिकित्सकके पास ले जायँ। वह शल्य-चिकित्सक शस्त्रसे उसके व्रण (=घाव)के मुखको काटे। वह शस्त्रसे व्रण-मुख काटनेसे भी दुःखद, कटु, तीव्र वेदनाको अनुभव करे। शल्य-चिकित्सक खोजनेकी शलाकासे शल्यको खोजे। वह ०शलाकासे शल्यके खोजनेके कारण भी दुःखद० वेदना अनुभव करे। वह शल्य-चिकित्सक उसके शल्यको निकाले; वह शल्यके निकालनेके कारण भी० वेदना अनुभव करे। शल्य-चिकित्सक उसके व्रण-मुखपर दवाई रखे,०।

---

[1] म. नि. ३ : १ : १। अ.क. "...देव कहते हैं, राजाओं को। वहां शाक्य राजाओंकी सुंदर मंगल-पुष्करिणी थी, जिस पर पहरा रहता था। वह देवोंका दह (=पुष्करिणी) होनेके कारण देव-दह कही जाती थी। उसीको लेकर वह निगम (=कस्बा) भी देवदह कहा जाता था। भगवान् उस निगमके सहारे लुम्बिनी वनमें वास करते थे।" [2] निगंठ नाथ-पुत्तका वाद।

वह दूसरे समय घावके पुर जानेसे निरोग, सुखी⋯स्वयंवशी, इच्छानुसार फिरनेवाला, हो जाये। उसको यह हो—मैं पहिले ०शल्यसे विद्ध था० दवाई रखनेके कारण भी दुःखद० वेदना अनुभव करता था। सो मैं अब ०निरोग, सुखी० हूँ। ऐसे ही आवुसो निगंठो! यदि तुम जानते हो—'हम पहिले थे ही, नहीं नहीं थे०। ऐसा होनेपर आयुष्मान् निगंठोंका यह कथन युक्त होता—'जो कुछ भी०'। चूँकि आवुसो निगंठो! तुम नहीं जानते—'हम पहिले थे०'; इसलिये आयुष्मान् निगंठोंका यह कथन युक्त नहीं—'जो कुछ भी०'।

"ऐसा कहने पर भिक्षुओ! उन निगंठोंने मुझे कहा—'आवुस! निगंठ नाथपुत्र सर्वज्ञ=सर्वदर्शी, अखिल ज्ञान=दर्शनको जानते हैं। चलते, खड़े, सोते, जागते, सदा निरंतर (उन्हें) ज्ञान=दर्शन उपस्थित रहता है; वह ऐसा कहते हैं—' आवुसो निगंठो! जो तुम्हारा पहिलेका किया हुआ कर्म है, उसे इस कड़वी दुष्कर कारिका (=तपस्या)से नाश करो, और जो इस वक्त यहां काय-वचन-मनसे रक्षित (=संवृत) हो, यह भविष्यकेलिये पापका न करना हुआ। इस प्रकार पुराने कर्मोका तपस्यासे अन्त होनेसे, और नये कर्मोंके न करनेसे, भविष्यमें (तुम) अन्-अवस्रव (होगे)। भविष्यमें अवस्रव न होनेसे, कर्मका क्षय; कर्मके क्षयसे दुःख-क्षय; दुःख-क्षयसे वेदना-क्षय; वेदना-क्षयसे सभी दुःख नष्ट=निर्जीर्ण होजायेंगे'। यह हमको रुचता है=खमता है। इससे हम संतुष्ट हैं।"

"ऐसा कहनेपर भिक्षुओ! मैंने उन निगंठोंको यह कहा—आवुसो निगंठो! यह पाँच धर्म इसी जन्ममें दो प्रकारके विपाक वाले हैं। कौनसे पांच? (१) श्रद्धा, (२) रुचि, (३) अनुश्रव, (४) आकार-परिवर्तक, (५) दृष्टि-निध्यान-क्षान्ति। आवुसो निगंठो! यह पांच धर्म इसी जन्ममें दो प्रकारके विपाक-वाले हैं। यहां आयुष्मान् निगंठोंके अतीत-अंश-वादी शास्ता (=निगंठ नाथपुत्र)में आपकी क्या श्रद्धा, क्या रुचि, क्या अनुश्रव, क्या आकार-परिवितर्क, क्या दृष्टि-निध्यान-क्षान्ति है?' भिक्षुओ! निगंठोंके पास ऐसा कहकर भी मैं धर्मसे कोई भी वाद-परिहार(=उत्तर) नहीं देखता।"

"और फिर भिक्षुओ! मैं उन निगंठोंको यह कहता हूँ—तो क्या मानते हो, आवुसो निगंठो! जिस समय तुम्हारा उपक्रम (=आरम्भ) तीव्र होता है,=प्रधान तीव्र (होता है)। उस समय (उस) उपक्रम-संबन्धी दुःखद, तीव्र, कटुक, वेदना अनुभव करते हो, जिस समय तुम्हारा उपक्रम तीव्र नहीं होता=प्रधान तीव्र नहीं (होता), उस समय ०वेदना अनुभव नहीं करते?' 'जिस समय आवुस! हमारा उपक्रम तीव्र होता है०, उस समय ०तीव्र० वेदना अनुभव करते हैं। जिस समय० उपक्रम तीव्र नहीं होता०, ०तीव्र० वेदना अनुभव नहीं करते।'

"इस प्रकार आवुसो निगंठो! जिस समय तुम्हारा उपक्रम=प्रधान तीव्र होता है, उस समय, तीव्र वेदना अनुभव करते हो; जिस समय तुम्हारा उपक्रम० तीव्र नहीं होता, ०तीव्र वेदना अनुभव नहीं करते। ऐसा होनेपर आयुष्मान् निगंठोंका यह कथन युक्त नहीं—'जो कुछ भी यह पुरुष=पुद्गल०। यदि आवुसो निगंठो! जिस समय तुम्हारा उपक्रम तीव्र० होता है, उस समय दुःखद० वेदना रहती ही है; जिस समय तुम्हारा उपक्रम तीव्र० नहीं होता, उस समय दुःखद० वेदना नहीं रहती; ऐसा होनेपर० यह कथन युक्त नहीं—जो कुछ भी०।

"चूँकि आवुसो ! जिस समय तुम्हारा उपक्रम तीव्र० होता है, उस समय दुःखद० वेदना अनुभव करते हो; जिस समय ०उपक्रम ०तीव्र नहीं होता, ०तीव्र वेदना अनुभव नहीं करते; सो तुम स्वयंही उपक्रम-संबन्धी दुःखद० वेदना अनुभव करते: अविद्यासे, अज्ञानसे, मोहसे उल्टा समझ रहे हो—'जो कुछ भी०'। भिक्षुओ ! निगंठोंके पास ऐसा कहकर भी मैं धर्मसे कोई भी वाद-परिहार (उनकी ओरसे) नहीं देखता।

"और फिर भिक्षुओ ! मैं उन निगंठोंसे ऐसा कहता हूँ—तो क्या मानते हो आवुसो निगंठो ! जो यह इसी जन्ममें वेदनीय (=भोगा जानेवाला) कर्म है, वह उपक्रमसे=या प्रधानसे संपराय (=दूसरे जन्ममें) वेदनीय किया जा सकता है ?' 'नहीं, आवुस !' 'और जो यह जन्मान्तर (=संपराय)-वेदनीय कर्म है, वह—उपक्रमसे० इस जन्ममें वेदनीय'—किया जा सकता है ?' 'नहीं आवुस !' 'तो क्या मानते हो आवुसो ! निगंठो ! जो यह सुख-वेदनीय (=सुख भोग करानेवाला) कर्म है, क्या वह उपक्रमसे=या प्रधानसे दुःख-वेदनीय किया जा सकता है ?' 'नहीं आवुस'। '०जो यह दुःखवेदनीय कर्म है, क्या वह उपक्रमसे० सुख-वेदनीय किया जा सकता है ?' 'नहीं आवुस !'। 'तो क्या मानते हो आवुसो निगंठो ! जो यह परिपक्व (-अवस्था=बुढ़ापा)में वेदनीय कर्म है, क्या वह उपक्रमसे० अपरिपक्व-वेदनीय किया जा सकता है ?' 'नहीं आवुस !' '०जो यह अ-परिपक्व (=शैशव, जवानी)-वेदनीय कर्म है, क्या वह० परिपक्व-वेदनीय किया जा सकता है ?' 'नहीं आवुस !' 'तो क्या मानते हो, आवुसो निगंठो ! जो यह बहु-वेदनीय कर्म है, क्या वह० अल्प-वेदनीय किया जा सकता है ?' 'नहीं आवुस !' '०जो यह अल्प-वेदनीय कर्म है० ?' 'नहीं आवुस !' 'तो क्या मानते हो आवुसो निगंठो ! जो यह वेदनीय (=भोगानेवाला) कर्म है, क्या वह० उपक्रमसे० अ-वेदनीय किया जा सकता है ?' 'नहीं आवुस !' '०अवेदनीय कर्म० वेदनीय किया जा सकता है ?' 'नहीं०'। 'इस प्रकार आवुसो निगंठो ! जो यह इसी जन्ममें वेदनीय कर्म है०। ०अवेदनीय कर्म है, वह भी वेदनीय नहीं किया जा सकता। ऐसा होनेपर आयुष्मान् निगंठोंका उपक्रम निष्फल हो जाता है, प्रधान निष्फल हो जाता है।

"भिक्षुओ ! निगंठ लोग इस वाद (के मानने) वाले हैं। ऐसे वादवाले निगंठोंके वाद=अनुवाद धर्मानुसार दस स्थानोंमें निंदनीय (=अयुक्त) होते हैं। यदि भिक्षुओ ! प्राणी पहिले किये (कर्मों)के कारण सुख-दुःख भोगते हैं, तो भिक्षुओ ! निगंठ लोग अवश्य पहिले बुरे काम करनेवाले थे, जो इस वक्त इस प्रकार दुःखद, तीव्र, कटु वेदनायें भोग रहे हैं। यदि भिक्षुओ ! प्राणी ईश्वरके बनानेके कारण (=ईश्वर-निर्माण-हेतु) सुख दुःख भोगते हैं, तो अवश्य भिक्षुओ ! निगंठ लोग पापी (=बुरे) ईश्वर द्वारा बनाये गये हैं, जोकि इस वक्त०, दुःखद० वेदनायें भोग रहे हैं। यदि भिक्षुओ ! प्राणी संगति (=भावी)के कारण सुख-दुःख भोगते हैं, तो अवश्य भिक्षुओ ! निगंठ लोग पाप (=बुरी) संगति (=भावी) वाले थे, जो इसवक्त०। यदि भिक्षुओ ! प्राणी अभिजातिके कारण०। यदि० इसी जन्मके उपक्रमके कारण सुख दुःख भोगते हैं, तो अवश्य भिक्षुओ ! निगंठोंका इस जन्मका उपक्रम बुरा (=पाप) है, जोकि इसवक्त० दुःखद० वेदनायें भोग रहे हैं।

"यदि भिक्षुओ ! प्राणी पूर्व किये (कर्मों)के कारण सुख दुःख भोग रहे हैं, तो निगंठ गर्हणीय हैं, यदि० ईश्वरके निर्माणके कारण०, भवितव्यता(=संगति)के कारण०, ०अभिजातिके कारण०, ०इसी जन्मके उपक्रमके कारण सुख दुःख भोगते हैं, तो निगंठ गर्हणीय हैं। भिक्षुओ ! निगंठ ऐसा मत (=वाद) रखते हैं। ऐसे वादवाले निगंठोंके वाद= अनुवाद धर्मानुसार दस स्थानोंमें निन्दनीय होते हैं। दस प्रकार भिक्षुओ ! (उनका) उपक्रम निष्फल होता है, प्रधान निष्फल होता है।

"भिक्षुओ ! पाँच उपक्रम सफल हैं, प्रधान सफल हैं। भिक्षुओ ! (१) भिक्षु दुःखसे अन्-अभिभूत (=अ-पीडित) शरीरको दुःखसे अभिभूत नहीं करता । (२) धार्मिक सुखका परित्याग नहीं करता। (३) उस सुखमें अधिक डूब (=मूर्छित) नहीं होजाता। (४) वह ऐसा जानता है—इस दुःख-कारणके संस्कारके अभ्यास करने वालेको, संस्कारके अभ्यास से, विराग होता है, (५) इस दुःख-निदानकी उपेक्षा करने वालेको उपेक्षाकी भावना करनेसे, विराग होता है। वह जिस दुःख-निदानके संस्कारके अभ्यास करनेसे संस्कारके अभ्याससे विराग होता है, उस संस्कारको अभ्यास करता है। जिस दुःखनिदानकी उपेक्षा करने से, उपेक्षाकी भावना करनेसे, विराग होता है, उस उपेक्षाकी भावना करता है। उस उस दुःख-निदानके···संस्कारके अभ्याससे विराग होता है; इस प्रकार भी इसका वह दुःख जीर्ण होता है। उस उस दुःख-निदानकी उपेक्षकी भावना करने वालेको विराग होता है; इस प्रकार भी इसका वह दुःख जीर्ण होता है।

"भिक्षुओ ! जैसे पुरुष (किसी) स्त्रीमें अनुरक्तहो, प्रतिबद्धचित्त तीव्र-रागी=तीव्र-अपेक्षी हो। वह उस स्त्रीको दूसरे पुरुषके साथ खड़ा, बात करती, जग्घन करती=हँसती देखे। तो क्या मानते हो, भिक्षुओ ! उस स्त्रीको दूसरे पुरुषके साथ० हँसती देख क्या, उस पुरुषको शोक=परिदेव, दुःख=दौर्मनस्य=उपायास उत्पन्न नहीं होंगे ?"

"हाँ, भन्ते ?"

"सो किसलिये ?

"वह पुरुष भन्ते ! उस स्त्रीमें अनुरक्त० है। इस लिये उस स्त्रीको दूसरे पुरुषके साथ० हँसती देख, उस पुरुषको शोक० उत्पन्नहोंगे।"

"तब भिक्षुओ ! उस पुरुषको ऐसाहो—मैं इस स्त्रीमें अनुरक्त० हूँ। सो इस स्त्रीको दूसरे पुरुषके साथ० हँसते देख शोक० उत्पन्न होते हैं। क्यों न मैं जो मेरा इस स्त्रीमें छन्द= राग है, उसको छोड़ दूँ। वह (फिर) जो उस स्त्रीमें उसका छन्द=राग है, उसे छोड़ दे। फिर दूसरे समय वह उस स्त्रीको दूसरे पुरुषके साथ० हँसते देखे; तो क्या मानते हो भिक्षुओ ! क्या उस स्त्रीको दूसरे पुरुसके साथ० हँसते देख, उस पुरुषको शोक० उत्पन्न होंगे ?"

"नहीं भन्ते !"

"सो किस लिये ?"

"वह पुरुष भन्ते ! उस स्त्रीसे वीत-राग है, इसलिये उस स्त्रीको ० हँसते देख, उस पुरुषको शोक ० उत्पन्न नहीं होते।"

"ऐसे ही भिक्षुओ ! भिक्षु दुःखसे अन्-अभिभूत शरीरको दुःखसे अभिभूत नहीं करता ० इस प्रकारभी इसका वह दुःख जीर्ण होता है । इस प्रकार भिक्षुओ ! उपक्रम सफल होता है, प्रधान सफल होता है ।

"और फिर भिक्षुओ ! भिक्षु ऐसा सोचता है—सुख-पूर्वक विहार करतेभी मेरे अ-कुशल धर्म बढ़ते हैं, कुशल-धर्म क्षीण होते हैं; (लेकिन) अपनेको दुःखमें लगाते अकुशल-धर्म क्षीण होते हैं, कुशल-धर्म बढ़ते हैं, क्यों न मैं दुःखमें अपनेको लगाऊँ । इस प्रकार वह अपनेको दुःखमें लगाता है; दुःखमें अपनेको लगाते हुये उसके अकुशल-धर्म क्षीण होते हैं, कुशल-धर्म बढ़ते हैं । वह उसके बाद दुःखमें अपनेको नहीं लगाता । सो किस लिये ? भिक्षुओ ! वह भिक्षु जिसके लिये दुःखमें अपनेको लगाता था, वह उसका मतलब पूरा होगया; इसलिये दूसरे समय दुःख में अपनेको नहीं लगाता । जैसे भिक्षुओ ! इषुकार (=बाण बनानेवाला लोहार) दो अंगारों (=अलात) पर तेजन (=बाण-फल) को तपाता...है, सीधा करता है...। जब भिक्षुओ ! इषुकारका तेजन दो अङ्गारोंपर आतापित=परितापित (हो चुका) होता है, सीधा (हो गया)...होता है । तो फिर दूसरी वार वह इषुकार तेजनको दो अङ्गारोंपर आतापित परितापित नहीं करता, (नहीं) सीधा करता......। सो किसलिये ? भिक्षुओ ! जिस मतलबसे इषुकार...आतापित परितापित कर रहा था...। वह उसका मतलब पूरा होगया । इसलिये दूसरी वार ० । ऐसे ही भिक्षुओ ! भिक्षु ऐसा सोचता है—सुख-पूर्वक विहार करते मेरे अकुशल-धर्म बढ़ते हैं, कुशल-धर्म क्षीण होते हैं ० इसलिये दूसरे समय दुःखमें अपनेको नहीं लगाता । इस प्रकारभी भिक्षुओ ! उपक्रम सफल होता है, प्रधान सफल होता है ।

"और फिर भिक्षुओ ! यहाँ लोकमें तथागत अर्हत, सम्यक् संबुद्ध विद्या-आचरण-युक्त सुगत० [1]उत्पन्न होते हैं । ०धर्म-उपदेश करते हैं ।०। घर छोड़ बेघर हो प्रव्रजित होता है ।०। वह इस आर्य-शील-स्कंधसे संयुक्त हो, अपनेमें निर्दोष सुख अनुभव करता है ।० वह इस आर्य-इन्द्रिय-संवरसे युक्त होता है ।०। वह इस आर्य-शील-स्कंधसे युक्त हो, इस आर्य इन्द्रिय-संवरसे०, इस आर्य स्मृति-संप्रजन्यसे युक्त हो, एकान्त-वास-स्थान, वृक्षके नीचे, पर्वत, कंदरा, गिरिगुहा, श्मशान वन-प्रस्थ, मैदान, पयालका ढेर, सेवन करता है । वह भोजनके बाद... आसन मार शरीरको सीधा रख, स्मृतिको संमुख उपस्थितकर, बैठता है । वह लोकमें लोभ (=अभिध्या) को छोड़, अभिध्या-रहित चित्तसे विहरता है, अभिध्यासे चित्तको परिशुद्ध करता है । व्यापाद=प्रद्वेष(=द्वेष)को छोड़, अ-व्यापन्न चित्त हो, सब प्राणियोंका हित=अनुकम्पक हो विहरता है० । स्त्यान-मृद्ध छोड़०, औद्धत्य-कौकृत्य छोड़०, विचिकित्सा छोड़० । वह इन पाँच चित्तके नीवरणोंको छोड़०[1] प्रथम ध्यानको प्राप्त हो विहरता है । उसका भिक्षुओ ! उपक्रम सफल होता है० ।

"और फिर भिक्षुओ ! ०द्वितीय ध्यानको प्राप्त हो० ।० उपक्रम सफल होता है० ।

"और फिर० । ०तृतीय ध्यानको प्राप्त हो० । इस प्रकार भी० ।

"और फिर० । ०चतुर्थ-ध्यानको प्राप्त हो० । इस प्रकार भी० ।

---

१. पृष्ठ १७२-७४ ।

" वह इस प्रकार समहित चित्त०[१] अनेक प्रकारके पूर्व-निवासोंको अनुस्मरण करता है । इस प्रकार भी० ।

" वह इस प्रकार समाहित चित्त० दिव्य चक्षुसे प्राणियोंको च्युत होते, उत्पन्न होते० जानता है । इस प्रकार भी० ।

" वह इस प्रकार समाहित चित्त० 'जन्म खतम होगया०' जानता है । इस प्रकार भी० ।

" भिक्षुओ ! तथागत ऐसे वाद (के मानने) वाले हैं । ऐसे वादवाले तथागतकी धर्मानुसार (= न्यायानुसार) प्रशंसाके दस स्थान होते हैं । (१) यदि भिक्षुओ ! प्राणी पूर्व किये कर्मोंके कारण सुख-दुःख भोगते हैं, तो अवश्य भिक्षुओ ! तथागत पहिलेके पुण्य करनेवाले रहे हैं, जो कि इस समय आस्रव (= मल)-विहीन सुख-वेदनाको अनुभव करते हैं । (२) यदि भिक्षुओ ! ०ईश्वर-निर्माणके कारण० ; तो अवश्य भिक्षुओ ! तथागत अच्छे ईश्वरसे निर्मित हैं, जो कि इस समय० । (३) ०भवितव्यताके कारण० ; ०तथागत उत्तम भवितव्यता वाले हैं० । (४) ०अभिजातिके कारण०; ०तथागत उत्तम अभिजातिवाले० । (५) ०इसी जन्मके उपक्रमके कारण० ; ०तथागत इस जन्मके सुन्दर उपक्रमवाले० । (६) यदि भिक्षुओ ! प्राणी पूर्वकृत (कर्मों)के कारण सुख-दुःख अनुभव करते हैं, तो तथागत प्रशंसनीय हैं ; यदि पूर्वकृत (कर्मों)के कारण सुख-दुःख नहीं अनुभव करते, तो (भी) तथागत प्रशंसनीय हैं । (७) यदि भिक्षुओ ! प्राणी ईश्वर-निर्माणके कारण०, ०ईश्वर निर्माणके कारण नहीं० । (८) भवितव्यताके कारण० ; भवितव्यताके कारण नहीं० । (९) ०अभिजातिके कारण नहीं० । (१०) ०इस जन्मके उपक्रमके कारण० ; इस जन्मके उपक्रमके कारण नहीं० । भिक्षुओ ! तथागत इस वाद (के मानने) वाले हैं ।०।'

भगवान्‌ने यह कहा । संतुष्ट हो उन भिक्षुओंने भगवान्‌के भाषणका अभिनन्दन किया ।

(९)

केसपुत्तिय-सुत्त । पूर्वाराममें प्रथम वर्षावास । आलवक-सुत्त (वि. पू. ४५०-४९)।

ऐसा[1] मैंने सुना—एक समय भगवान् कोसलमें चारिका करते बड़े भारी भिक्षु-संघके साथ जहाँ [2]कालामों का केस-पुत्त नामक निगम था, वहाँ पहुँचे।

केसपुत्तिय (=केस-पुत्रीय) कालामों ने सुना—शाक्य-पुत्र०श्रमण गौतम केसपुत्तमें प्राप्त हुये हैं। उन भगवान् गौतमका ऐसा मंगल कीर्ति-शब्द फैला हुआ—[3]०। इस प्रकारके अर्हतोंका दर्शन अच्छा होता है। तब केसपुत्तिय कालाम जहाँ भगवान्थे वहाँ आये। आकर कोई कोई भगवान्को अभिवादन कर एक ओर बैठ गये, कोई कोई भगवान्को सम्मोदन कर··· एक ओर बैठ गये। कोई कोई जिधर भगवान्थे उधर हाथ जोड़ कर०। कोई कोई नाम-गोत्र सुनाकर एक ओर बैठ गये। कोई कोई चुपचाप एक ओर बैठ गये। एक ओर बैठे केसपुत्तिय कालामोंने भगवान्को यह कहा—

"भन्ते! कोई कोई श्रमण ब्राह्मण केस-पुत्तमें आते हैं, अपने ही वाद (=मत) को प्रकाशित करते हैं, द्योतित करते हैं, दूसरेके वाद पर नाराज होते हैं (=खुंसेन्ति) निन्दा करते हैं, परित्यक्त कराते हैं। भन्ते! दूसरे भी कोई कोई श्रमण ब्राह्मण केस-पुत्तमें आते हैं, वह भी अपनेही वादको०। तब भन्ते! हमको कांक्षा=विचिकित्सा (=संशय) होती है—कौन इन आप श्रमण-ब्राह्मणोंमें सच कहता है; कौन झूठ?"

"कालामो! तुम्हारी कांक्षा=विचिकित्सा ठीक है, कांक्षनीय स्थानमें ही तुम्हें सन्देह उत्पन्न हुआ है। आओ कालामो! मत तुम अनुश्रव (=श्रुत) से, मत परम्परासे, मत 'ऐसाही है' से, मत पिटक-संप्रदान (=अपने मान्य शास्त्रकी अनुकूलता) से, मत तर्कके कारणसे, मत नय (=न्याय) हेतुसे, मत (वक्ताके) आकारके विचारसे, मत अपने चिर-विचारित मतके अनुकूल होनेसे, मत (वक्ताके) भव्य-रूप होनेसे, मत 'श्रमण हमारा गुरु (=बड़ा) है' से, (विश्वास करो)। जब कालामों तुम अपनेही जानो—यह धर्म अकुशल, यह धर्म सदोष, यह धर्म विज्ञ-निंदित (हैं), यह लेने, ग्रहण करनेपर अहित=दुःखकेलिये होते हैं, तब कालामो! तुम (उसे) छोड़ देना। तो क्या मानते हो कालामो! पुरुषके भीतर उत्पन्न हुआ लोभ हितकेलिये होता है, या अहित केलिये?" "अहितके लिये, भन्ते!"

"कालामो! यह लुब्ध (=लोभमें पड़ा) पुरुष=पुद्गल, लोभसे अभिभूत (=लिप्त) =परिगृहीत-चित्त, प्राण भी मारता है, चोरी भी करता है, पर-स्त्री-गमन भी करता है, झूठ भी बोलता है, दूसरेको भी वैसा करनेको प्रेरित करता है; जो कि चिरकाल तक उसके अहित=दुःखके लिये होता है।" "हाँ, भन्ते!"

"तो क्या मानते हो कालामो! पुरुषके भीतर उत्पन्न हुआ···द्वेष हितके लिये होता है, या अहितके लिये?" "अहितके लिये भन्ते!"

---

१. अ. नि ३:७:५। २. अ. क. 'कालाम नामक क्षत्रिय'। ३. पृष्ठ ३९।

" कालामो ! द्वेष-युक्त पुरुष० ।" " हां भन्ते ! "

" ०मोह० ।" " हां भन्ते ! "

" तो क्या मानते हो कालामो ! यह धर्म कुशल हैं, या अकुशल ?"

" अकुशल, भन्ते ! "

" सावद्य (=सदोष) हैं, या निरवद्य (=निर्दोष) ? "

" सावद्य, भन्ते ! "

" विज्ञ-गर्हित या विज्ञ-प्रशंसित ? " " विज्ञ-गर्हित, भन्ते ! "

" प्राप्त करनेपर=ग्रहण करनेपर अहितकेलिये=दुःखकेलिये हैं, या नहीं ? "

" ० ग्रहण करनेपर भन्ते ! अहित ० के लिये हैं, ऐसा हमें होता है ।"

" इस प्रकार कालामो ! जो वह मैंने कहा—'आओ कालामो ! मत तुम अनुश्रवसे०' । वह जो मैंने कहा, वह इसी कारण कहा । इसलिये कालामो ! मत तुम अनुश्रवसे० । जब तुम कालामो ! अपनेही समझो,—'यह धर्म कुशल (=अच्छे), यह धर्म अनवद्य (=निर्दोष), यह धर्म विज्ञ-प्रशंसित, यह धर्म प्राप्त करनेपर=ग्रहण करनेपर, हित=सुखके लिये हैं', तब तुम कालामो ! (उन्हें) प्राप्तकर विहरो । तो क्या मानते हो कालामो ! पुरुषके भीतर उत्पन्न हुआ अ-लोभ हितके लिये होता है, या अहितके लिये ?"

" हितके लिये, भन्ते !"

" कालामो ! लोभ-रहित पुरुष=पुद्गल लोभसे अन्-अभिभूत=अ-गृहीत-चित्त हो, प्राण नहीं मारता है० ? " " हां भन्ते !"

" ०अद्वेष० ?" ० । ० । " ०अमोह० ?" ० । ० ।

" तो क्या मानते हो कालामो ! यह धर्म कुशल (= अच्छे) हैं, या अकुशल ?"० । ० ।

" सो कालामो ! आर्य-श्रावक इस प्रकार अभिध्या (=लोभ)-रहित व्यापाद (=द्वेष)-रहित, अ-संमूढ (=मोहरहित) स्मृति और संप्रजन्यके साथ मैत्री-युक्त-चित्तसे[1]०, करुणायुक्त चित्तसे०, मुदिता-युक्त-चित्तसे०, उपेक्षा-युक्त चित्तसे, एक दिशा प्लावितकर विहरता है, वैसेही दूसरी, वैसेही तीसरी, वैसेही चौथी, इसी तरह ऊपर, नीचे, टेढ़े, सबके ख्यालसे, सबके अर्थ, सभी लोकको ' उपेक्षायुक्त विपुल=महद्गत=अप्रमाण, अ-वैर=अ-व्यापन्न चित्तसे प्लावितकर विहरता है । कालामो ! (जो) वह आर्य-श्रावक, ऐसा अ-वैर-चित्त= ऐसा अ-व्यापन्न चित्त, ऐसा अ-संक्लिष्ट चित्त=ऐसा विशुद्ध चित्त है, उसको इसी जन्ममें चार आश्वास (=आश्वासन) मिले होते हैं ।—(१) 'यदि पर-लोक है, यदि सुकृत दुष्कृत कर्मोंका फल=विपाक है, तो निश्चयही मैं काया छोड़ मरनेके बाद सुगति=स्वर्गलोकमें उत्पन्न होऊँगा, यह उसे प्रथम आश्वास प्राप्त हुआ रहता है । (२) यदि परलोक नहीं है, यदि सुकृत दुष्कृत कर्मोंका फल=विपाक, नहीं है तो इसी जन्ममें इस वक्तमें अ-वैर= अ-व्यापन्न······सुखपूर्वक अपनेको रखता हूं, यह उसको दूसरा आश्वास० ० । (३) यदि

---

१. पृष्ठ २०८ ।

(काम) करते पाप (=बुरा) किया जाये, तोभी मैं किसीका बुरा नहीं चाहता, बिना किये फिर पापकर्म मुझे क्यों दुःख पहुँचायेगा । यह उसे तीसरा ० । (४) यदि करते हुये पाप न किया जाय, (तो) इस समय में दोनोंसेही शुद्ध अपनेको देखता हूँ ' यह उसे चौथा ० । सो कालामो ! वह आर्य-श्रावक ऐसा अ-वैर-चित्त ० है, उसको इसी जन्ममें यह चार आश्वास मिले होते हैं । ''

" यह ऐसाही है, भगवान् ! यह ऐसाही है, सुगत ! भन्ते ! वह आर्य श्रावक ऐसा अवैर-चित्त ० चार आश्वास ० । ० प्रथम आश्वास ० । ० द्वितीय आश्वास ० । ० तृतीय आश्वास ० । ० चतुर्थ आश्वास ० । ० उसको इसी जन्ममें यह चार आश्वास ० । आश्चर्य ! भन्ते ! ! अद्भुत ! भन्ते ! ! ० आजसे भन्ते ! भगवान् हमें अञ्जलिबद्ध शरणागत उपासक धारण करें । ''

पूर्वाराममें प्रथम वर्षावास ।

[1]भगवान् (=शास्ता) नव मासमें चारिका करके पुनः श्रावस्ती आये । विशाखाके प्रासादका काम भी नवमासमें समाप्त हुआ ।...। 'शास्ता जेतवन जाते हैं'—सुनकर अगवानी कर शास्ताको अपने विहारमें ले जाकर वचन लिया—' भन्ते ! इस चातुर्मासमें भिक्षु-संघको लेकर यहीं वास करें, मैं प्रासादका उत्सव करूँगी ।' शास्ताने स्वीकार किया । वह (विशाखा) तबसे बुद्ध-प्रमुख भिक्षु-संघको विहारमें ही (भिक्षा-) दान देती थी । तब उसकी सखी (=सहायिका) सहस्रके मूल्यका एक वस्त्र ले आकर बोली—" सहायिके ! मैं इस वस्त्रको तेरे प्रासादमें...फर्श बिछाना चाहती हूँ, बिछानेका स्थान मुझे बतला ।"

" सहायिके ! यदि मैं तुझे कहूँ—'अवकाश नहीं है', तो तू समझेगी—'तू मुझे अवकाश देना नहीं चाहती ।' स्वयंही प्रासादके दोनों तल, और हजार कोठरियोंको देखकर बिछानेका स्थान ढूँढले ।"

वह सहस्र मूल्यके वस्त्रको लेकर वहां विचरण करती, उससे अल्प-मूल्यका वस्त्र न देख—' मैं इस प्रासादमें पुण्य-भाग नहीं पा रही हूँ' (सोच) दुःखित हो, एक जगह रोती खड़ी थी । तब आनन्द स्थविरने उसे देख पूछा—" क्यों रोती है ?" उसने यह बात कहदी । स्थविरने 'सोच मत कर, मैं तुझे बिछानेका स्थान बताऊँगा' कह, 'सीढ़ी और पैर धोनेके बीच पाद-पोंछनक बनाकर बिछा दे, भिक्षु पैर धोकर पहिले वहां पोंछकर भीतर जायेंगे, इस प्रकार तुझे महाफल होगा' कहा । विशाखाने उस स्थानका ख्याल न किया था । विशाखाने चतुर्मास भर विहारके भीतर बुद्ध-प्रमुख भिक्षु-संघको दान (=भोजन) दिया । अन्तिम दिन भिक्षु-संघको चीवर-शाटक दिये । संघमें सबसे नये भिक्षुको दिये चीवर सहस्र मूल्यके थे । सबके पात्रोंको भरकर भैषज्य (=घी गुड़ आदि) दिया । दान देनेमें नव करोड़ खर्च हुये । इस प्रकार विहारकी भूमि लेनेमें नव करोड़, विहार बनवाने में नव करोड़, विहार-उत्सवमें नव (करोड़), सब सत्ताईस करोड़ उसने बुद्ध-शासनमें दान दिये । स्त्रीहो, मिथ्यादृष्टिके घरमें वास करते किसी दूसरेका ऐसा दान नहीं है...।

---

१. धम्मपद अ. क. ४:४४ ।

आलवक-सुत्त ।

[1]ऐसा मैंने सुना—एक समय भगवान् आलवीमें गायोंके मार्ग (=गो-मग्ग)में सिरस-वन (=सिंसपा-वन)में पत्तोंके बिछौनेपर विहार करते थे ।

तब हत्तक आलवकने जंघाविहार (=चहलकदमी)के लिये टहलते विचरते हुये, भगवान्‌को गोमार्ग शिंशपा-वनमें पर्ण-संस्तरपर बैठे देखा । देखकर जहां भगवान् थे, वहां पहुंचकर भगवान्‌को अभिवादनकर, एक ओर बैठा । एक ओर बैठे हत्तक आलवकने भगवान्‌को कहा—

" भन्ते ! भगवान् सुखसे तो सोये ? "

" हां कुमार ! सुखसे सोया, जो लोकमें सुखसे सोते हैं, मैं उनमेंसे एक हूं । "

" भन्ते ! (यह) हेमन्तकी शीतल रात, हिम-पातका समय [2]अन्तराष्टक है । [3]गो-कंटक-हत कड़ी भूमि है, पर्णासन पतला है, वृक्षके पत्र विरल हैं, काषाय-वस्त्र शीतल हैं, चौबाई वायु शीतल है, तब भी भगवान् ऐसा कहते हैं—' हां कुमार ! सुखसे सोया० । "

" तो कुमार ! तुझे हीं पूछता हूं, जैसा तुझे ठीक लगे, वैसा मुझे उत्तर दे । तो क्या ···कुमार ! (किसी) गृहपति (=वैश्य) या गृहपति-पुत्रका लीपा पोता, वायु-रहित, द्वारबंद, खिड़की-बन्द कूटागार (=कोठा) हो, वहां चार अंगुल पोस्तीनका बिछा (=गोणकत्थत), पट्टी-बिछा, कालीन-बिछा, उत्तम कादली मृगचर्म बिछा, दोनों (=सिरहाने-पैरहने) ओर लाल तकियोंवाला, ऊपर वितानवाला पलंग हो ; तेल-प्रदीप भी जल रहा हो । चार भार्यायें सुन्दर सुन्दर (सेवाओं)के साथ हाजिर हों, तो क्या मानते हो, कुमार ! वह सुखसे सोयेगा या नहीं ; यहां तुम्हें कैसा होता है ? "

" भन्ते ! वह सुखसे सोयेगा । जो लोकमें सुखसे सोते हैं, वह उनमें से एक होगा ।"

" तो क्या मानते हो कुमार ! ० यदि उस गृहपति या गृहपति-पुत्रको, रागसे उत्पन्न होनेवाले कायिक या मानसिक परिदाह (=जलन) उत्पन्नहों; तो उन रागज परिदाहोंसे जलते हुये क्या वह दुःखसे सोयेगा ? "

" हां, भन्ते ! "

" कुमार ! वह गृहपति या गृहपति-पुत्र जिस रागज परिदाहसे=जलनसे दुःखसे सोते हैं, तथागतका वह (रागज परिदाह) नष्ट=उच्छिन्न-मूल=मस्तक-च्छिन्न तालकी तरह किया=अभाव-प्राप्त, भविष्यमें न उत्पन्नहोने लायक (होगया है) ; इसलिये मैं सुखसे सोया । तो क्या मानते हो, कुमार ! यदि उन गृहपति ० को द्वेषसे उत्पन्न (=द्वेषज) ० । ० । ० मोहसे उत्पन्न (=मोहज) कायिक या मानसिक परिदाह उत्पन्न हों ० ? "

---

१. अ. नि. ३ : ४ : ५ । २. अ. क. " माघके अन्तके चार दिन, और फागुनके आदिके चार दिन अंतराष्टक कहे जाते हैं । " ३. अ. क. "···पानी बरसनेपर गायोंके जाने आनेके स्थानपर खुरोंसे कीचड़ उभड़ आता है, वह धूप-हवासे सूखकर आरेके दांतकी तरह दुःख-स्पर्श होता है, उसीको ख्यालकर गोकंटक-हत···कहा । "

"हां, भन्ते !"

"कुमार ! ० इसलिये मैं सुखसे सोया ।

"परिनिर्वृत्त (=मुक्त) ब्राह्मण सर्वदा सुखसे सोता है ।
जो कि शीतल स्वभाव, उपाधि (=राग आदि)-रहित, कामोंमें लिप्त नहीं है ।
सब आसक्तियोंको छिन्नकर हृदयसे भय को हटाकर ।
मनमें शांति प्राप्तकर, उपशान्तहो (वह) सुखसे सोता है ।"

(९)

रट्ठपाल-सुत्त (वि. पू. ४४९) ।

ऐसा मैंने सुना—एक समय भगवान् कुरु (देश)में महाभिक्षु-संघके साथ चारिका करते, जहाँ थुल्लकोट्ठित नामक कुरुओंका निगम (=कस्बा) था, वहाँ पहुँचे ।

थुल्लकोट्ठित (=स्थूलकोष्ठित) वासी ब्राह्मण गृहपतियोंने सुना—शाक्यपुत्र०[1] श्रमण गौतम थुल्ल-कोट्ठितमें प्राप्त हुये हैं० । ०[1]इस प्रकारके अर्हतोंका दर्शन अच्छा होता है । तब थुल्लकोट्ठितके ब्राह्मण-गृहपति जहाँ भगवान् थे, वहाँ गये । जाकर कोई कोई अभिवादनकर एक ओर बैठ गये । ०कोई कोई चुपचाप एक ओर बैठ गये । एक ओर बैठे थुल्ल-कोट्ठित-वासी ब्राह्मण गृहपतियोंको भगवान्ने धार्मिक कथासे संदर्शित, प्रेरित, समुत्तेजित, संप्रशंसित किया ।

उस समय उसी थुल्लकोट्ठितके अग्र-कुलिकका पुत्र राष्ट्र-पाल उस परिषद्में बैठा था । तब राष्ट्र-पाल को ऐसा हुआ जैसे भगवान् धर्म उपदेश कर रहे हैं, यह अत्यन्त परिशुद्ध शंख-सा धुला ब्रह्मचर्य-पालन गृहमें वास करते सुकर नहीं है । क्यों न मैं केश-श्मश्रु मुंडाकर, काषाय वस्त्र पहिनकर, घरसे बेघर हो प्रव्रजित होजाऊं । तब थुल्लकोट्ठित-वासी ब्राह्मण-गृहपति भगवान्से धार्मिक कथा द्वारा ०समुत्तेजित संप्रशंसित हो, भगवान्के भाषणको अभिनंदन, अनुमोदन कर, आसनसे उठ; भगवान्को अभिवादन कर, प्रदक्षिणाकर, चले-गये । तब राष्ट्र-पाल कुलपुत्र ०ब्राह्मणोंके चले-जानेके थोड़ी ही देर बाद जहाँ भगवान् थे, वहाँ गया, जाकर भगवान्को अभिवादन कर एक ओर बैठ गया । एक ओर बैठे राष्ट्रपाल कुल-पुत्रने भगवान्को कहा—

"भन्ते ! जैसे जैसे मैं भगवान्के उपदेश किये धर्मको समझता हूँ, यह० शंख-लिखित ब्रह्मचर्य-पालन गृहमें वास करते सुकर नहीं है । भन्ते ! मैं भगवान्के पास प्रव्रज्या पाऊँ उपसंपदा पाऊँ ।"

"राष्ट्र-पाल ! क्या तूने मातापितासे घरसे बेघर प्रव्रज्याके लिये आज्ञा पाई है ?"

"भन्ते ! ० आज्ञा नहीं पाई ।"

"राष्ट्रपाल ! माता-पितासे विना आज्ञा पायेको तथागत प्रव्रजित नहीं करते ।"

"भन्ते ! सो मैं वैसा करूँगा, जिसमें माता-पिता मुझे ० प्रव्रज्याके लिये आज्ञा दें ।"

"तब राष्ट्रपाल कुल-पुत्र आसनसे उठकर, भगवान्को अभिवादनकर प्रदक्षिणाकर जहाँ माता-पिता थे, वहाँ गया । जाकर माता-पिताको कहा—

"अम्मा ! तात ! जैसे जैसे मैं भगवान्के उपदेश किये धर्मको समझता हूँ, यह ० शंख-लिखित (=छिले शंखकी तरह निर्मल श्वेत) ब्रह्मचर्य-पालन, गृहमें वास करते सुकर नहीं है । मैं ० प्रव्रजित होना चाहता हूँ । घरसे बेघर हो प्रव्रजित होनेके लिये मुझे आज्ञा दो ।"

---

१. म. नि. २: ४: २ । २. पृष्ठ ३५ ।

ऐसा कहने पर राष्ट्रपाल कुल-पुत्रके माता-पिताने राष्ट्र-पाल ० को कहा—

" तात राष्ट्रपाल ! तुम हमारे [1]प्रिय=मनाप, सुखमें पले, सुखमें पले एक पुत्रहो । तात राष्ट्रपाल ! तुम दुःख कुछभी नहीं जानते । आओ तात राष्ट्रपाल ! खाओ, पियो, विचरो । खाते पीते विचरते, कामोंका परिभोग करते, पुण्य करते रमण करो । हम तुम्हें ० प्रव्रज्याकेलिये आज्ञा न देंगे । मरने परभी हम तुमसे बे-चाह न होंगे, तो फिर कैसे हम तुम्हें जीते जी ० प्रव्रजित होनेकी आज्ञा देंगे । "

दूसरी वार भी ० । तीसरी वार भी ० ।

तब राष्ट्रपाल कुलपुत्र माता पिताके पास प्रव्रज्या(की आज्ञा)को न पा, वहीं नंगी धरतीपर पड़ गया ।—' यहीं ' मेरा मरण होगा, या प्रव्रज्या ' । तब ०माता-पिताने राष्ट्रपाल ० को कहा—

" तात राष्ट्रपाल ! तुम हमारे प्रिय० एक पुत्र हो० । "

ऐसा कहनेपर राष्ट्रपाल कुल-पुत्र चुप रहा ।

०दूसरीवार भी० । ० । ०तीसरीवार भी राष्ट्र-पाल कुल-पुत्र चुप रहा ।

तब राष्ट्र पाल०के माता-पिता जहां राष्ट्रपाल कुलपुत्रके मित्र थे, वहां गये । जाकर···कहा—

" तातो ! यह राष्ट्रपाल कुलपुत्र नंगी धरतीपर पड़ा है—' यहीं मरण होगा या प्रव्रज्या ' । आओ तातो ! जहां राष्ट्रपाल है, वहां जाओ । जाकर राष्ट्रपाल०को कहो—सौम्य राष्ट्रपाल ! तुम माता-पिताके प्रिय० एक पुत्र हो० । "

तब राष्ट्रपाल०के मित्र राष्ट्रपाल०के माता-पिता(की बात)को सुनकर, जहां राष्ट्र-पाल० था, वहां गये ; जाकर० कहा—

" सौम्य राष्ट्रपाल ! तुम माता-पिताके प्रिय० एक पुत्र हो० । "

ऐसा कहनेपर राष्ट्रपाल० चुप रहा । दूसरीवार भी० । ० । तीसरीवार भी० ।०।

तब राष्ट्रपाल०के मित्रों (=सहायक)ने० राष्ट्रपाल०के माता-पिताको कहा—

" अम्मा ! तात ! यह राष्ट्रपाल० वहीं नंगी धरतीपर पड़ा है—' यहीं मेरा मरण होगा, या प्रव्रज्या । ' यदि तुम राष्ट्रपाल०को ०अनुज्ञा न दोगे, तो वहीं उसका मरण होगा ; यदि तुम ०आज्ञा दोगे, प्रव्रजित हुये भी उसे देखोगे ; यदि राष्ट्रपाल० प्रव्रज्यामें मन न लगा सका, तो, उसकी और दूसरी क्या गति होगी ? यहीं लौट आयेगा । (अतः) राष्ट्रपाल०को प्रव्रज्याकी अनुज्ञा दो । "

" तातो ! हम राष्ट्रपाल० की ०प्रव्रज्याकी अनुज्ञा (=स्वीकृति) देते हैं; लेकिन प्रव्रजित हो, माता पिताको दर्शन-देना होगा ।'

तब राष्ट्रपाल कुल-पुत्रके सहायक०, जाकर राष्ट्रपाल० को बोले—

" सौम्य राष्ट्रपाल ! तू माता-पिताका प्रिय० एक पुत्र है० । माता पितासे ०प्रव्रज्या केलिये तू अनुज्ञात है । लेकिन प्रव्रजित हो माता-पिताको दर्शन देना होगा ।'

---

१. तुलना करो—पृष्ठ १४६—४७ ।

तब राष्ट्रपाल० उठकर, बल ग्रहणकर जहाँ भगवान् थे, वहाँ गया । जाकर० एक ओर बैठे हुये० भगवान्‌को कहा—

" भन्ते ! मैं माता पितासे० प्रव्रज्याके लिये अनुज्ञात हूँ । मुझे भगवान् प्रव्रजित करें ।"

राष्ट्रपाल०ने भगवान्‌के पास प्रव्रज्या और उपसम्पदा प्राप्त की । तब आयुष्मान् राष्ट्रपालके उपसम्पन्न (=भिक्षु होना) होनेके थोड़ीही देरके बाद, आधामास उपसम्पन्न होनेपर, भगवान् थुल्लकोट्ठितमें यथेच्छ विहारकर जिधर श्रावस्ती थी, उधर चारिकाके लिये चल पड़े । क्रमशः चारिका करते जहाँ श्रावस्ती थी, वहाँ पहुँचे । वहाँ भगवान श्रावस्तीमें अनाथ-पिंडकके आराम जेतवनमें विहार करते थे । तब आयुष्मान् राष्ट्रपाल…० आत्म-संयमी हो [1]विहरते जल्दी ही, जिसके लिये कुल-पुत्र ठीकसे घरसे बेघर हो प्रव्रजित होते हैं, उस सर्वोत्तम ब्रह्मचर्य-फलको इसी जन्ममें स्वयं अभिज्ञानकर, साक्षात्कारकर, प्राप्तकर विहरनेलगे । 'जाति (=जन्म) क्षीण हो गई, ब्रह्मचर्य-पालन हो चुका, करना था सो कर लिया, और यहाँ करनेको नहीं है'—जान लिया । आयुष्मान् राष्ट्रपाल अर्हतोंमें एक हुये ।

तब आयुष्मान् राष्ट्रपाल जहाँ भगवान् थे,…जाकर, भगवान्‌को अभिवादनकर…एक ओर बैठे…भगवान्‌को बोले—

"भन्ते ! यदि भगवान् अनुज्ञा दें, तो मैं माता-पिताको दर्शन देना चाहता हूँ ।'

तब भगवान्‌ने मनसे राष्ट्रपालके मनके विचारको जाना । जब भगवान्‌ने जानलिया, राष्ट्रपाल कुल-पुत्र (भिक्षु-) शिक्षाको छोड़, गृहस्थ बननेके अयोग्य है, तब भगवान्‌ने आयुष्मान् राष्ट्रपालको कहा—

"राष्ट्रपाल ! जिसका इसवक्त समय समझे, (वैसाकर) ।'

तब आयुष्मान् राष्ट्रपाल आसनसे उठकर भगवान्‌को अभिवादन कर प्रदक्षिणा कर, शयनासन संभाल (=जिम्मे लगा), पात्र-चीवर ले, जिधर थुल्लकोट्ठित था, उधर चारिकाके लिये चल पड़े । क्रमशः चारिका करते जहाँ थुल्ल-कोट्ठित था, वहाँ पहुँचे । वहाँ आयुष्मान् राष्ट्रपाल थुल्लकोट्ठितमें राजा कौरव्यके मिगाचीर (नामक उद्यान)में विहार करते थे ।

तब आयुष्मान् राष्ट्रपाल पूर्वाह्न-समय पहन कर पात्र चीवर ले, थुल्ल-कोट्ठितमें पिंडके लिये प्रविष्ट हुये । थुल्लकोट्ठितमें बिना ठहरे पिंडचार करते, जहाँ अपने पिताका घर था, वहाँ पहुँचे । उस समय आयुष्मान् राष्ट्रपालका पिता बिचली द्वारशालामें बाल बनवा रहा था । पिताने दूरसे ही आयुष्मान् राष्ट्रपालको आते देखा । देखकर कहा—'इन मुंडकों श्रमणोंने मेरे प्रिय=मनाप एकलौते पुत्रको प्रव्रजित कर लिया ।' तब आयुष्मान् राष्ट्रपालने अपने पिताके घरमें न दान पाया, न प्रत्याख्यान (=इन्कार), बल्कि फट्कार ही पाई । उस समय आयुष्मान् राष्ट्रपालकी ज्ञाति-दासी बासी कुल्माप (=दाल) फेंकना चाहती थी । तब आयुष्मान् राष्ट्रपालने उस ज्ञाति-दासी (=जातिवालोंकी दासी)को कहा—

" भगिनी ! यदि बासी कुल्मापको फेंकना चाहती है, तो यहाँ मेरे पात्रमें डाल दे ।"

---

१. अ. क. " बारह वर्ष विहरते ।'

तब ०ज्ञातिदासीने उस बासी कुल्मापको आयुष्मान् राष्ट्रपालके पात्रमें डालते समय, हाथों, पैरों, और स्वरको पहिचान लिया। तब ०ज्ञाति-दासी जहां आयुष्मान् राष्ट्रपालकी माता थी, वहां गई; जाकर आयुष्मान् राष्ट्रपालकी माताको बोली—

"अरे! अय्या!! जानती हो, आर्यपुत्र राष्ट्रपाल आये हैं?"

"जे! यदि सच बोलती है, तो अदासी होगी।"

तब आयुष्मान् राष्ट्रपालकी माता जहां आयुष्मान् राष्ट्रपालका पिता था, वहां··· जाकर···बोली—

"अरे! गृहपति!! जानते हो, राष्ट्रपाल कुल-पुत्र आया है?"

उस समय आयुष्मान् राष्ट्रपाल उस बासी कुल्मापको किसी भीतके सहारे (बैठ कर) खा रहे थे। आयुष्मान् राष्ट्रपालका पिता जहां आयुष्मान् राष्ट्रपाल थे, वहां गया, जाकर आयुष्मान् राष्ट्रपालको बोला—

"तात राष्ट्रपाल! बासी दाल खाते हो। तो तात राष्ट्रपाल! घर चलना चाहिये।"

"गृहपति! घर छोड़ बेघर हुये हम प्रव्रजितोंका घर कहां? गृहपति! हम बेघरके हैं। तुम्हारे घर गया था, वहां न दान पाया न प्रत्याख्यान, बल्कि फट्कार ही पाई।"

"आओ, तात राष्ट्रपाल! घर चलें।"

"बस गृहपति! आज मैं भोजन कर चुका।"

"तो तात राष्ट्रपाल! कलका भोजन स्वीकार करो।"

आयुष्मान् राष्ट्रपालने मौनसे स्वीकार किया।

तब आयुष्मान् राष्ट्रपालका पिता, आयुष्मान् राष्ट्रपालकी स्वीकृतिको जानकर, जहां अपना घर था, वहां···जाकर, हिरण्य (=अशर्फी), सुवर्णकी बड़ी राशि करवा, चटाईसे ढँकवाकर, आयुष्मान् राष्ट्रपालकी स्त्रियोंको आमंत्रित किया—

"आओ बहुओ! जिस अलंकारसे अलंकृत हो पहिले, राष्ट्रपाल कुल-पुत्रको तुम प्रिय=मनाप होती थीं, उन अलंकारोंसे अलंकृत होओ" तब आयुष्मान् राष्ट्रपालके पिताने उस रातके बीत जाने पर, अपने घरमें उत्तम खाद्य भोज्य तय्यार कर, आयुष्मान् राष्ट्रपालको काल सूचित किया—'काल है तात राष्ट्रपाल! भोजन तय्यार है'। तब आयुष्मान् राष्ट्रपाल पूर्वाह्न समय पहिन कर पात्र चीवर ले जहाँ उनके पिताका घर था, वहाँ गये। जाकर बिछे आसन पर बैठे। तब आयुष्मान् राष्ट्रपाल का पिता हिरण्य, सुवर्णकी राशिको खोल कर आयुष्मान् राष्ट्रपालसे बोला—

"तात राष्ट्रपाल! यह तेरी माताका (=मातृक) धन है, पिताका पितामहका अलग है। तात राष्ट्रपाल! भोग भी भोग सकते हो, पुण्य भी कर सकते हो। आओ तुम तात राष्ट्रपाल! (भिक्षु-)शिक्षा (=दीक्षा) को छोड़ गृहस्थ बन, भोगोंको भोगो, और पुण्योंको करो।"

"यदि गृहपति! तू मेरी बात करे, तो इस हिरण्य-सुवर्ण-पुंजको गाड़ियोंपर रखवा,

डुलवाकर गंगा नदीकी बीच धारमें डाल दे । सो किसलिये ? गृहपति ! इसके कारण तुझे शोक =परिदेव, दुःख=दौर्मनस्य=उपायास न उत्पन्न होंगे ।"

तब आयुष्मान् राष्ट्रपालकी प्रत्येक भार्यायें पैर पकड़ आयुष्मान् राष्ट्रपालको बोलीं—

" आर्यपुत्र ! कैसी वह अप्सरायें हैं, जिनके लिये तुम ब्रह्मचर्य्य पालन कर रहे हो ?"

" बहिनो ! हम अप्सराओंके लिये ब्रह्मचर्य नहीं पालन कर रहे हैं । "

भगिनी (=बहिन) कहकर हमें आर्य-पुत्र राष्ट्रपाल पुकारते हैं (सोच), वह वहीं मूर्छित हो गिर पड़ीं । तब आयुष्मान् राष्ट्र-पालने पिताको कहा—

" गृहपति ! यदि भोजन देना है, तो दे । हमें कष्ट मत दे ।"

" भोजन करो तात राष्ट्रपाल ! भोजन तय्यार है ।"

तब आयुष्मान् राष्ट्रपालके पिताने उत्तम खाद्य भोज्यसे अपने हाथ आयुष्मान् राष्ट्रपालको संतर्पित-संप्रवारित किया । तब आयुष्मान् राष्ट्रपालने भोजनकर पात्रसे हाथ हटा, खड़े खड़े यह गाथायें कहीं—

" देखो (इस) विचित्र बने बिंब(=आकार)को, (जो) व्रणपूर्ण, सज्जित ।
आतुर, बहु-संकल्प (है); जिसकी स्थिति स्थिर (=ध्रुव) नहीं है ॥
देखो विचित्र बने रूपको, (जो) मणि और कुंडलके साथ ।
हड्डी चमड़ेसे बँधा, वस्त्रके साथ शोभता है ॥
महावर लगे पैर, चूर्णक (=पौडर) पोता मुँह ।
बालक (=मूर्ख) को मोहनेमें समर्थ है, पार-गवेषीको नहीं ।
बल पड़े केश, अंजन-अंजित नेत्र ।
बालकको मोहनमें समर्थ हैं, पार-गवेषीको नहीं ।
नई विचित्र अंजन-नालीकी भांति अलंकृत (यह) सड़ा शरीर ।
बालकको० ।
व्याधाने जाल फैलाया, (किंतु) मृग जालमें नहीं आया ।
चाराको खाकर व्याधोंके रोते (छोड़) जा रहा हूं ॥ "

तब आयुष्मान् राष्ट्रपालने खड़े खड़े इन गाथाओंको कहकर, जहां कौरव्यका मिगाचीर (उद्यान) था, वहां गये । जाकर एक वृक्षके नीचे दिनके विहारके लिये बैठे ।

तब राजा कौरव्यने मिगव(नामक माली)को संबोधित किया—

" सौम्य मिगव (=मृगयु) ! मिगाचीरको साफ करो, उद्यान-भूमि=सुभूमि देखनेके लिये जाऊँगा ।"

मिगवने राजा कौरव्य को " अच्छा देव ! " कह कर, मिगाचीरको साफ करते, एक वृक्षके-नीचे दिनके विहारकेलिये बैठे आयुष्मान् राष्ट्रपालको देखा । देखकर जहां राजा कौरव्य था, वहां गया; जाकर कौरव्यको बोला—

"देव ! मिगाचीर साफ है, और वहां इसी थुल्लकोट्ठितके अग्रकुलिकका राष्ट्रपाल नामक

कुल-पुत्र, जिसकी कि आप हमेशा तारीफ करते रहते हैं, एक वृक्षके नीचे दिनके विहारके लिये बैठा है।"

"तो सौम्य मिगव ! आज अब उद्यान-भूमि जाने दो, आज उन्हीं आप राष्ट्रपालकी उपासना (=सत्संग) करेंगे।"

तब राजा कौरव्य, जो कुछ खाद्य भोज्य तय्यार था, सबको 'छोड़दो !' कह, अच्छे अच्छे यान जुड़वा, (एक) अच्छे यानपर चढ़, अच्छे अच्छे यानोंके साथ बड़े राजसी ठाठसे आयुष्मान् राष्ट्रपालके दर्शनके लिये, थुल्लकोट्ठितसे निकला। जितनी यानकी भूमि थी, उतना यानसे जा, (फिर) यानसे उतर पैदलही छोटी मंडलीके साथ जहाँ आयुष्मान् राष्ट्रपाल थे, वहाँ गया, जाकर आयुष्मान् राष्ट्रपालके साथ···संमोदन किया···(और) एक ओर खड़ा हो गया। एक ओर खड़े हुये राजा कौरव्यने आयुष्मान् राष्ट्रपालको कहा—

"आप राष्ट्रपाल यहाँ गलीचे (=हत्थत्थर)पर बैठें।"

"नहीं महाराज ! तुम बैठो, मैं अपने आसनपर बैठा हूँ।"

राजा कौरव्य बिछे आसनपर बैठ गया। बैठकर राजा कौरव्यने आयुष्मान् राष्ट्रपालको कहा—

"हे राष्ट्रपाल ! यह चार हानियाँ (=पारिजुञ्ज) हैं, जिन हानियों से युक्त कोई कोई पुरुष केश-श्मश्रु मुंड़वा, काषाय वस्त्र पहिन, घरसे बेघर हो प्रव्रजित होते हैं। कौनसे चार ? जरा-हानि, व्याधि-हानि, भोग-हानि, ज्ञाति-हानि। कौन है हे राष्ट्रपाल ! जराहानि ? (१) हे राष्ट्रपाल ! कोई (पुरुष) जीर्ण=वृद्ध=महल्लक=अंगगत=वयःप्राप्त होता है। वह ऐसा सोचता है, मैं इस समय जीर्ण=वृद्ध० हूँ, अब मेरे लिये अप्राप्त भोगोंका प्राप्त करना या प्राप्त भोगोंको भोगना सुकर नहीं है। क्यों न मैं केश-श्मश्रु मुँड़ाकर काषाय वस्त्र पहिन ०प्रव्रजित हो जाउँ। वह उस जरा-हानिसे युक्त हो० प्रव्रजित होता है। हे राष्ट्र-पाल ! यह जराहानि कही जाती है। लेकिन आप राष्ट्रपाल तरुण, बहुत काले केशोंवाले, सुन्दर यौवनसे युक्त, प्रथम वयसके हैं। सो आप राष्ट्रपालको जराहानि नहीं है। आप राष्ट्रपाल क्या जानकर, देखकर, सुनकर, घरसे बेघर हो प्रव्रजित हुये ? (२) हे राष्ट्रपाल ! व्याधि-हानि क्या है ? हे राष्ट्रपाल ! कोई (पुरुष) रोगी दुःखी सख्त बीमार होता है, वह ऐसा सोचता है—'मैं अब रोगी दुःखी सख्त बीमार हूँ, अब मेरे लिये अप्राप्त भोगोंका प्राप्त०। यह व्याधि-हानि कही जाती है। लेकिन आप राष्ट्रपाल इस समय, व्याधि-रहित आतंक-रहित, न-अति-शीत, न-अति-उष्ण, सम-विपाकवाली पाचनशक्ति (=ग्रहणी) से युक्त हैं, सो आप राष्ट्रपालको व्याधि-हानि नहीं है० ? (३) हे राष्ट्रपाल ! भोग-हानि क्या है ? हे राष्ट्रपाल ! कोई (पुरुष) आढ्य, महाधनी महाभोग-वान् होता है, उसके वह भोग-क्रमशः क्षय हो जाते हैं। वह ऐसा सोचता है—मैं पहिले आढय० था, सो मेरे वह भोग क्रमशः क्षय होगये; अब मेरे लिये अप्राप्त भोगोंका प्राप्त करना०। आप राष्ट्रपाल तो इसी थुल्लकोट्ठितमें अग्रकुलिकके पुत्र हैं। सो आप राष्ट्रपालको भोग-हानि नहीं है० ?

"(४) हे राष्ट्रपाल ! ज्ञाति-हानि क्या है ? हे राष्ट्रपाल ! किसी (पुरुष) के बहुतसे मित्र, अमात्य, ज्ञाति (=जाति), सालोहित (=रक्तसंबंधी) होते हैं, उसके वह जातिवाले

क्रमशः क्षयको प्राप्त होते हैं । वह ऐसा सोचता है—पहिले मेरे बहुतसे मित्र-अमात्य जाति-बिरादरी थीं, वह मेरी जातिवाले क्रमशः क्षय हो गये; अब मेरे लिये अप्राप्त भोगोंका प्राप्त करना० । लेकिन आप राष्ट्रपालके तो इसी थुल्लकोट्टितमें बहुतसे मित्र-अमात्य, जाति-बिरादरी हैं । सो आप राष्ट्रपालको ज्ञाति-हानि नहीं है । आप राष्ट्रपाल क्या जानकर, देखकर, सुनकर, घरसे बेघर हो प्रव्रजित हुये ? हे राष्ट्रपाल ! यह चार हानियां हैं, जिन हानियोंसे युक्त कोई कोई (पुरुष) केश-श्मश्रु मुँडा काषाय-वस्त्र पहिन घरसे बेघर हो प्रव्रजित होते हैं, वह आप राष्ट्रपालको नहीं हैं । आप राष्ट्रपाल क्या जानकर, देखकर, सुनकर घरसे बेघर हो प्रव्रजित हुये ?"

"महाराज ! उन भगवान्, जाननहार, देखनहार, अर्हत् सम्यक्-संबुद्धने चार धर्म-उद्देश कहे हैं, जिनको जानकर, देखकर, सुनकर मैं घरसे बेघर हो प्रव्रजित हुआ । कौनसे चार ? (१) (यह) लोक (=संसार) अध्रुव (है), उपनीत हो रहा है, यह उस भगवान्०ने प्रथम धर्म-उद्देश कहा है, जिसको देखकर० प्रव्रजित हुआ । (२) लोक त्राण रहित, आश्वासन-रहित है० । (३) लोक अपना नहीं है, सब छोड़कर जाना है० । (४) लोक कमतीवाला तृष्णाका दास है० । यह महाराज ! उन भगवान्०ने चार धर्म-उद्देश कहे हैं, जिनको जानकर० मैं ०प्रव्रजित हुआ ।"

"'उपनीत हो रहा (=ले जाया जा रहा) है, लोक अध्रुव है' आप राष्ट्रपालके इस कथनका अर्थ कैसे जानना चाहिये ?"

"तो क्या मानते हो, महाराज ! ये तुम (कभी) बीस-वर्षके, पचीस-वर्षके ? (जब तुम) संग्राममें हाथीकी सवारीमें होशियार, घोड़ेकी सवारीमें होशियार, रथकी सवारीमें होशियार, धनुषमें होशियार, तलवारमें होशियार, उरुसे बलिष्ट, बाहुसे बलिष्ट थे ?"

"बल्कि हे राष्ट्रपाल ! मानों एक समय ऋद्धिमान् हो मैं अपने बलके समान (किसीको) देखता ही न था ।"

"तो क्या मानते हो महाराज ! आज भी संग्राममें तुम वैसे ही० उरु-बली, बाहु-बली, सामर्थ्य-युक्त हो ?"

"नहीं हे राष्ट्रपाल ! इस वक्त मैं जीर्ण-वृद्ध० हूं, अस्सी-वर्षकी मेरी उम्र है । बल्कि एक समय हे राष्ट्रपाल ! मैं 'यहां तक पैर (=पाद) रक्खूँ' (विचार) दूसरे (समय) चौथाई ही (दूर तक) रख सकता हूं ।"

"महाराज ! उन भगवान्०ने इसीको सोचकर कहा—'उपनीत हो रहा है, लोक अध्रुव है, जिसको जानकर० मैं० प्रव्रजित हुआ ।"

"आश्चर्य ! हे राष्ट्रपाल !! अद्भुत ! हे राष्ट्रपाल !! जो यह उन भगवान्०का सुभाषित—'उपनीत हो रहा है०' (=ले जाया जा रहा है), लोक अध्रुव है ।" हे राष्ट्रपाल ! इस राज-कुलमें हस्ति-काय (काय=समुदाय) भी हैं, अश्व-काय भी, रथ-काय भी, पदाति-काय भी, जो हमारी आपत्तियोंमें युद्धके लिये हैं । 'लोक त्राण-रहित, आश्वासन-रहित है' यह (जो) आप राष्ट्रपालने कहा ? हे राष्ट्रपाल ! इस कथनका अर्थ कैसे जानना चाहिये ?"

" तो क्या मानते हो महाराज ! है तुम्हें कोई आनुशायिक (=साथ रहनेवाली) बीमारी ?"

" हे राष्ट्रपाल ! मुझे आनुशयिक वायुरोग है। बल्कि एकबार तो मित्र-अमात्य जाति-बिरादरी घेरकर खड़ी थी,—'अब राजा कौरव्य मरैगा'। 'अब राजा कौरव्य मरैगा'।

" तो क्या मानते हो महाराज ! क्या तुमने मित्र-अमात्यों जाति-बिरादरीको पाया— 'आवें आप मेरे मित्र-अमात्य०, सभी सत्व (=प्राणी), इस पीड़ाको बांट लें, जिसमें मैं हल्की पीड़ा पाऊं', या तुमनेही उस वेदनाको सहा ?

" राष्ट्रपाल ! उन मित्र अमात्यों० को मैंने नहीं पाया०, बल्कि मैं ही उस वेदनाको सहता था।"

" महाराज ! इसीको सोचकर उन भगवान्०ने ०।

" आश्चर्य ! हे राष्ट्रपाल !! अद्भुत ! हे राष्ट्रपाल !! ०। हे राष्ट्रपाल ! इस राजकुल में बहुतसा हिरण्य (=अशर्फी) सुवर्ण भूमि और आकाशमें है। 'लोक अपना नहीं (=अ-स्वक) है, सब छोड़कर जाना है' यह आप राष्ट्रपालने कहा। हे राष्ट्र-पाल ! इस कथनका अर्थ कैसे जानना चाहिये ?"

" तो क्या मानते हो महाराज ! जैसे तुम आज कल पांच कामगुणोंसे युक्त=समंगी-भूत विचरते हो, बाद (जन्मान्तर)में भी तुम (उन्हें)पाओगे— 'ऐसेही मैं पांच काम-गुणोंसे युक्त० विचरूं, या दूसरे इस भोगको पायेंगे; और तुम अपने कर्मानुसार जाओगे ?

" राष्ट्रपाल ! जैसे मैं इस वक्त पांच काम-गुणोंसे युक्त० विचरता हूं, बाद (=जन्मान्तर) में भी ऐसेही मैं इन काम-गुणोंसे युक्त० विचरने न पाउँगा। बल्कि दूसरे इस भोगको लेंगे, मैं अपने कर्मानुसार जाऊँगा।"

" महाराज इसीको सोचकर उन भगवान्० ने०।"

" आश्चर्य ! हे राष्ट्रपाल !! अद्भुत ! हे राष्ट्रपाल !! ०। 'लोक कमतीवाला तृष्णाका दास है' यह आप राष्ट्र-पालने जो कहा। हे राष्ट्रपाल ! इस कथनका कैसे अर्थ समझना चाहिये ?'

" तो क्या मानते हो महाराज ! समृद्ध कुरु(देश)का स्वामित्व कर रहे हो ?"

" हां, हे राष्ट्रपाल ! समृद्ध कुरुका स्वामित्व कर रहा हूं।"

" तो क्या मानते हो महाराज ! तुम्हारा एक श्रद्धेय विश्वास-पात्र पुरुष पूर्व दिशासे आवे, वह तुम्हारे पास आकर ऐसा बोले—हे महाराज ! जानते हो, मैं पूर्व-दिशासे आ रहा हूं। वहां मैंने बहुत समृद्ध=स्फीत बहुत जनोंवाला, मनुष्योंसे आकीर्ण जनपद (=देश) देखा। वहां बहुत हस्तिकाय, अश्वकाय, रथकाय, पत्ति (=पैदल)-काय हैं। वहां बहुत दांत, मृगचर्म हैं। वहां बहुत सा कृत्रिम अकृत्रिम हिरण्य, सुवर्ण है। वहां बहुत सी स्त्रियां प्राप्त होती हैं। वह इतनी ही सेनासे जीता जा सकता है; जीतिये महाराज !' तो क्या करोगे ?"

" हे राष्ट्रपाल ! उसे भी जीतकर मैं स्वामित्व करूँगा।"

" तो क्या मानते हो महाराज ! ०विश्वासपात्र पुरुप पश्चिम-दिशासे आवे० ।" ०।

" ०उत्तर दिशासे० ।" ०। " दक्षिण दिशासे० ।" ०।

" महाराज ! इसीको सोचकर उन भगवान् ० ने ० ० । "

" आश्चर्य ! हे राष्ट्रपाल !! अद्भुत ! हे राष्ट्रपाल !! "

आयुष्मान् राष्ट्रपालने यह कहा । यह कहकर फिर यह भी कहा—

" लोकमें धनवान् मनुष्योंको देखता हूँ, (जो) वित्त पाकर मोहसे दान नहीं करते । लोभी हो धनका संचय करते हैं, और भी अधिक कामों (=भोगों) की चाह करते हैं ॥ १ ॥

" राजा बलपूर्वक पृथ्वीको जीत, सागर-पर्यन्त महीपर शासन करते । समुद्रके इस पारसे तृप्त न हो, समुद्रके उस पारकोभी चाहता है ॥ २ ॥

" राजाही की भांति दूसरे बहुतसे पुरुषभी तृष्णा-रहित न हो मरण पाते हैं । कमतीवाले होकरही शरीर छोड़ते हैं, लोकमें (किसी की) कामोंसे तृप्ति नहीं है ॥ ३ ॥

" जाति बाल बिखेरकर क्रन्दन करती है, और कहती है ' हाय हमारा मर गया ' वस्त्रसे ढांककर उसे लेजाकर, चितापर रखकर फिर जला देते हैं ॥ ४ ॥

" वह शूलसे कूँचा जाता, भोगोंको छोड़ एक वस्त्रके साथ जलाया जाता है । मरनेवालेके ज्ञाति-मित्र=सहाय रक्षक नहीं होते ॥ ५ ॥

" दायाद उसके धनको हरते हैं, प्राणी तो जहां कर्म है (वहां) जाता है । मरने हुयेके पीछे, पुत्र, दारा, धन, और राज्य नहीं जाता ॥ ६ ॥

" धन द्वारा लम्बी आयु नहीं पा सकता है, और न वित्त द्वारा जराको नाशकर सकता है । धीरोंने इस जीवनको स्वल्प, अ-शाश्वत, भंगुर कहा है ॥ ७ ॥

" धनी और दरिद्र (काम)-स्पर्शोंको छूते हैं, बाल और धीर (=पंडित)भी वैसेही हैं । बाल (=मूर्ख) मूर्खतासे विचलित हो पड़ता है, किंतु धीर स्पर्श-स्पृष्ट हो नहीं विचलित होता ॥ ॥ ८ ॥

" इसलिये धनसे प्रज्ञाही श्रेष्ठ है, जिससे कि (तत्त्व-)निश्चयको प्राप्त होता है । मुक्त न होनेसे वह मोहवश आवागमनमें (पड़े) पाप कर्मोंको करते हैं ॥ ९ ॥

" (वह) लगातार संसार (=भवसागर)में पड़कर गर्भ और परलोकको पाता है । अल्प-प्रज्ञावान् उसपर विश्वास कर गर्भ और परलोकको पाता रहता है ॥ १० ॥

" सेंध के ऊपर पकड़ा गया पापी चोर, जैसे अपने कामसे मारा जाता है। इसी प्रकार पापी जनता मरकर दूसरे लोकमें अपने कामसे मारी जाती है ॥ ११ ॥

" विचित्र मधुर मनोरम काम (=भोग) नाना रूपसे चित्तको मथते हैं । इसलिये काम भोगोंके दुष्परिणामको देखकर, हे राजन् ! मैं प्रव्रजित हुआ हूँ ॥ १२ ॥

" वृक्षके फलकी भांति तरुण और वृद्ध मनुष्य शरीर छोड़कर गिरते हैं। ऐसे भी देखकर प्रव्रजित हुआ ; (क्योंकि)न गिरनेवाला भिक्षुपन(=श्रामण्य) ही श्रेष्ठ है ॥ १३ ॥

सुन्दरी-सुत्त। कृशागौतमी-चरित। ब्राह्मण-धम्मिय-सुत्त। (वि.पू. ४४८-४७)।

[१] ऐसा मैंने सुना—एक समय भगवान् श्रावस्तीमें अनाथ पिंडकके आराम जेतवनमें विहार करते थे।

उस समय भगवान् सत्कृत=गुरुकृत=मानित=पूजित=अपचित थे, चीवर पिंड-पात शयनासन ग्लान-प्रत्यय-भैषज्यके लाभी (=पानेवाले) थे। भिक्षु-संघ भी० पूजित० चीवर० का लाभी था। दूसरे तीर्थ (=पंथ) वाले परिव्राजक असत्कृत=अ-गुरुकृत=अ-मानित= =अ-पूजित=अन्-अपचित थे, चीवर०के अ-लाभी थे। तब वह तैर्थिक भगवान् और भिक्षु-संघके सत्कारको न सहन कर, जहां सुन्दरी परिव्राजिकाथी वहां गये। जाकर सुन्दरी परिव्राजिकाको बोले—

"भगिनी! क्या ज्ञातिकी भलाई करना चाहती हो?"

"आर्यो! क्या मैं करूँ? मैं क्या नहीं कर सकती? ज्ञातिके लिये मैंने तो जीवन ही दे दिया है।"

"तो भगिनी! बराबर जेतवन जाया करो।"

"अच्छा आर्यो!" कह...सुन्दरी परिव्राजिका...बराबर जेतवन जाने लगी। जब उन अन्य-तैर्थिक परिव्राजकोंने जाना—'बहुत लोगोंने सुन्दरी परिव्राजिका को बराबर जेतवन जाते देख लिया।' तब उसे जानसे मारकर, वहीं जेतवनकी खाईमें कुआं खोदकर दबा दिया; और जहां राजा प्रसेन-जित् कोसल था, वहां गये। जाकर प्रसेनजित् कोसलको बोले—

"महाराज! जो वह सुन्दरी परिव्राजिका थी, वह हमें दिखाई नहीं पड़ रही है।"
"तुम्हें कहां सन्देह है?"
"जेतवनमें, महाराज!"
"तो जेतवनमें तलाश करो।"

तब वह अन्य-तैर्थिक परिव्राजक जेतवनमें तलाश करते, खोदे परिखा-कूपसे निकालकर चारपाई पर रख, श्रावस्तीमें लेजा, (एक) सड़कसे (दूसरी) सड़कपर, चौरास्तेसे चौरास्ते पर जाकर लोगोंको कहने लगे—

"देखो आर्यो! शाक्य-पुत्रीय श्रमणोंका कर्म!! यह शाक्यपुत्रीय श्रमण निर्लज्ज, दुःशील, पापी, मिथ्या-वादी, अब्रह्मचारी हैं। यह धर्म-चारी, सम-चारी, ब्रह्मचारी, सत्यवादी शीलवान्, पुण्यात्मा होनेका दावा करते हैं। इनको श्रामण्य नहीं, ब्राह्मण्य नहीं। कहांसे इन्हें श्रामण्य, कहांसे इन्हें ब्राह्मण्य? यह श्रामण्य (=संन्यासीके धर्म)से पतित हैं, यह ब्राह्मण्य (=ब्राह्मण-पन)से पतित हैं। कैसे पुरुष पुरुषका काम करके, स्त्रीको जानसे मार डालेगा?"

---

१. उदान ४:८।

उस समय श्रावस्तीमें लोग भिक्षुओं को देखकर अ-सभ्य, परुष (=कड़ी) वचनोंसे धिक्कारते, फटकारते, कोप करते, पीड़ित करते थे ।—

" यह शाक्यपुत्रीय श्रमण निर्लज्ज० ।"

तब बहुतसे भिक्षु पूर्वाह्ण समय पहिनकर पात्र-चीवर ले, श्रावस्तीमें पिंडके लिये गये । श्रावस्तीमें पिंड-चार करके भोजनके बाद···जहां भगवान् थे, वहां गये । जाकर भगवान्‌को अभिवादन कर···, एक ओर बैठ···बोले—

" भन्ते ! इस समय श्रावस्तीमें लोग भिक्षुओंको देखकर अ-सभ्य, परुष वचनोंसे धिक्कारते हैं० —'यह शाक्य-पुत्रीय श्रमण निर्लज्ज० ।'"

" भिक्षुओ ! यह शब्द देर तक नहीं रहेगा, [1]सप्ताहहीभर रहेगा, सप्ताह बीतनेपर अन्तर्ध्यान हो जायगा । तो भिक्षुओ ! जो लोग भिक्षुओंको देखकर असभ्य०वचनोंसे धिक्कारते० हैं, उन्हें इस गाथासे तुम जवाब दो—

' अ-भूत (=अ-यथार्थ)-वादी नरकको जाता है, और वह भी जो कि करके 'नहीं किया' कहता है । दोनोंही नीचकर्मवाले मनुष्य मरकर परलोकमें समान होते हैं ।'

तब भिक्षु भगवान्‌के पाससे इस गाथाको सीखकर, जो मनुष्य भिक्षुओंको देखकर अ-सभ्य० वचनोंसे० धिक्कारते थे, उन मनुष्योंको इस गाथासे जवाब देते थे–"अभूत-वादी०" ।

लोगोंको हुआ—

" यह शाक्य-पुत्रीय श्रमण अ-कारक हैं, इन्होंने नहीं किया । यह शाक्य-पुत्रीय श्रमण शपथ कर रहे हैं । "

वह शब्द देर तक न रहा, सप्ताह भर रहा, सप्ताह बीतनेपर अन्तर्ध्यान [2]होगया । तब बहुतसे भिक्षु जहां भगवान् थे वहां गये । जाकर भगवान्‌को अभिवादनकर, एक ओर···बैठ भगवान्‌को बोले—

---

१. तुलना करो पृष्ठ ९० ।

२. अ. क. " राजाने···जिनने सुन्दरीको मारा, उनके पता लगानेको आदमियोंको हुकुम दिया । तब वह (मारनेवाले) बदमाश (=धूर्त) उन कार्षापणोंसे शराब पीते आपसमें झगड़ बैठे । उनमेंसे एकने एकको कहा—

" तू सुन्दरीको एकही प्रहारसे मारकर मालाके कूड़ेके भीतर फेंक, उससे मिले पैसेसे सुरा पीता है ? हो ! हो !! "

राज-पुरुषोंने उसे सुन उन बदमाशोंको पकड़कर राजाको दिखलाया । राजाने पूछा—"तुमने उसे मारा ?" "हां, देव !" "किनने मरवाया ?" "देव ! दूसरे तैर्थिकोंने" राजाने तैर्थिकोंको बुलवाकर उस बातको स्वीकार करवा, आज्ञा दी—" जाओ नगरमें यह कहते घूमो—' उन श्रमण गौतमकी बदनामी करनेके लिये यह सुन्दरी हमने मरवाई, गौतम या गौतम श्रावकोंका दोष नहीं है; हमाराही दोष है ।'"

उन्होंने वैसा किया ।

"आश्चर्य! भन्ते!! अद्भुत! भन्ते!! भन्ते! भगवान्का सुभाषित (=ठीक कहना) कैसा है—'भिक्षुओ यह शब्द देर तक नहीं होगा०।' भन्ते! वह शब्द अन्तर्ध्यान हो गया।"

तब भगवान्ने इस बातको जान उसी समय यह उदान कहा—
"अ-संयमी जन वचनसे बेधते हैं, जैसे संग्राममें शत्रुओं द्वारा कुंजर।
अ-दुष्ट-चित्त भिक्षुको कटु वाक्य सुनकर भी मनमें न लाना चाहिये॥"

कृशा गौतमी-चरित।

[1]इस अंतिम जन्ममें (कृशा गौतमी) दुर्गत निर्धन नष्ट श्रेष्ठि-कुलमें उत्पन्न हुई, और सधन कुलमें गई॥१॥

'निर्धन (समझकर) सभी मेरा तिरस्कार करते थे।
जब मैंने (पुत्र) प्रसव किया, तो सबको प्रिय हुई॥२॥
वह बच्चा सुन्दर, कोमलांग सुखमें पला था।
वह प्राण-समान मुझे प्रिय था, तब वह यमलोकको सिधारा॥३॥
सो मैं कृश दीन-वदन अश्रु-नेत्र रोती हुई।
मरे मुर्देको लेकर विलाप करती घूम रही थी॥४॥
तब एकके कहनेसे उत्तम-भिषग् (=बुद्ध)के पास जा।
कहा—'पुत्र-संजीवन औषध मुझे दो'॥५॥
"जिस घरमें मरे नहीं हैं, वहांसे सिद्धार्थक (=पीली सरसों) ला।"
रास्तापर लगानेमें चतुर जिन (बुद्ध)ने यह कहा॥६॥
तब मैंने श्रावस्तीमें जाकर वैसा घर न पाया।
कहांसे फिर सिद्धार्थक (लाती)? तब मुझे होश आया॥७॥
मुर्देको छोड़कर मैं लोक-नायकके पास गई।
दूरसे ही मुझे देखकर, मधुर-स्वरवाले (भगवान्)ने कहा॥८॥
"हानि-लाभ (=उदय-व्यय)को न देख जो सौ वर्ष जीवे।
(उससे) हानि-लाभको देखकर एक दिनका जीना ही उत्तम है॥९॥
(यह) न ग्रामका धर्म न निगमका धर्म नहीं एक कुलका धर्म है।
देवों सहित सारे लोकका यही धर्म है, जो कि यह अनित्यता"॥१०॥
इन गाथाओंको सुनते ही मेरी धर्मकी आंख खुल गई।
तब मैं धर्मको जानकर बेघर हो प्रव्रजित हुई॥११॥
इस प्रकार प्रव्रजित हुई जिन (=बुद्ध)के शासनको पालन करती।
न चिरकाल ही में अर्हत्पदको प्राप्त हुई॥१२॥

\+ \+ \+ \+

१. थेरी-अपदान, तृतीय भाणवार।

ब्राह्मण-धम्मिय-सुत्त ।

[1]ऐसा मैंने सुना—एक समय भगवान् श्रावस्तीमें विहार करते थे ।

तब बहुतसे [2]कोसलवासी जीर्ण=वृद्ध=महल्लक=अध्वगत=वयःप्राप्त ब्राह्मण महाशाल (=महावैभव-सम्पन्न) जहाँ भगवान् थे, वहाँ गये । जाकर भगवान्के साथ··· संमोदन कर···एक ओर बैठ गये । एक ओर बैठे उन ब्राह्मण महाशालोंने भगवान्को कहा—

"हे गौतम ! इस समय ब्राह्मण पुराने ब्राह्मणोंके ब्राह्मण-धर्म पर (आरूढ़) दिखाई पड़ते हैं न ?"

"ब्राह्मणो! इस समय ब्राह्मण० ब्राह्मण-धर्मपर (आरूढ़) नहीं दिखाई पड़ते ।"

"अच्छा हो, आप गौतम हमें पुराने ब्राह्मणोंके ब्राह्मण-धर्मको भाषण करें, यदि आप गौतमको कष्ट न हो ।"

"तो ब्राह्मणो ! सुनो, अच्छी तरह मनमें करो, कहता हूँ ।"

"अच्छा भो ! "····

भगवान्ने यह कहा—"पुराने ऋषि संयमी (=संयतात्मा) और तपस्वी होते थे ।

"पाँच काम-गुणों (=भोगों)को छोड़कर (वह) अपना अर्थ (=ज्ञानध्यान) करते थे ॥१॥

(उस समय) ब्राह्मणोंको पशु न थे, न हिरण्य (=अशर्फी) न अनाज ।

वह स्वाध्याय (रूपी) धन-धान्य वालेथे, वह ब्रह्म-निधिको पालन करते थे ॥२॥

उनके लिये जो तय्यार करके द्वारपर श्रद्धादेय भोजन रखा रहता था ।

(दायक लोग) उसको खोजनेपर देनेके योग्य समझते थे ॥३॥

नाना रंगके वस्त्रों, शयन और आवसथों (=अतिथि-शालाओं) से ।

समृद्ध जनपद, राष्ट्र उन ब्राह्मणोंको नमस्कार करते थे ॥४॥

ब्राह्मण अ-वध्य, अ-जेय, धर्मसे रक्षित थे ।

कुल-द्वारोंपर उन्हें कोई कभी नहीं रोकता था ॥५॥

वह अड़तालीस वर्ष तक कौमार-ब्रह्मचर्य पालन करते थे ।

पूर्वकालमें ब्राह्मण विद्या और आचरणकी खोज करते थे ॥६॥

न ब्राह्मण दूसरी (स्त्री)के पास जाते थे, न भार्या खरीदते थे ।

परस्पर प्रेम वालीके साथ ही संगमसहवास करनेको कहते थे ॥७॥

ऋतुकालको छोड़कर, बीचके निषिद्ध (समय)में

ब्राह्मण कभी मैथुन-धर्म नहीं सेवन करते थे ॥८॥

(वह) ब्रह्मचर्य, शील, अ-कुटिलता, मृदुता, तप,

सुरति, अहिंसा और क्षांति (=क्षमा) की प्रशंसा करते थे ॥९॥

जो उनमें सर्वोत्तम दृढ़-पराक्रमी ब्रह्मा था ।

उसने स्वप्नमें भी मैथुन-धर्मको सेवन नहीं किया ॥१०॥

---

१. सुत्तनिपात २: ७ । २. फैजाबाद, गोंडा, बहराइच, बाराबंकीके जिले, तथा आस पासके जिलोंके कुछ भाग ।

उसके व्रतके पीछे चलते हुए पंडितजन ।
ब्रह्मचर्य, शील और शान्तिकी प्रशंसा करते थे ॥११॥
वह तंडुल, शयन, वस्त्र, घी और तेलको मांगकर ।
धर्मके साथ निकालकर, तब यज्ञ करते थे ॥
यज्ञ उपस्थित होनेपर वह गायको नहीं मारते थे ॥१२॥
जैसे माता पिता भ्राता और दूसरे बंधु हैं ।
(वैसेही) गायें हमारी परम-मित्र हैं, जिनमें कि औषध उत्पन्न होते हैं ॥१३॥
यह अन्न-दा, बल-दा, वर्ण-दा तथा सुख-दा (हैं) ।
इस बातको जानकर, वह गायको नहीं मारते थे ॥१४॥
सुकुमार, महाकाय, [1]वर्ण-वान् यशस्वी ।
ब्राह्मणन इन धर्मोंके साथ, कर्त्तव्य-अकर्त्तव्यमें तत्पर हो ।
जब तक लोकमें वर्तमान थे, (तब तक) यह प्रजा सुखसे रही ॥१५॥
शनैः २ राजाकी सम्पत्ति—समलंकृत स्त्रियों,
उत्तम घोड़े जुते सुन्दर रचना-वाले विचित्र सिलाईयुक्त रथों,
खण्डोंमें बंटे मकानों और कोठों—को देखकर उनमें उलटापन आया ॥१६,॥१७॥
गोमंडलसे आकीर्ण सुन्दर स्त्री-गण-सहित ।
बड़े मानुष-भोगोंका ब्राह्मणोंने लोभ किया ॥ १८ ॥
तब वह मंत्रोंको रचकर इक्ष्वाकु (=ओक्काक)के पास गये ।
' तू बहुत धन-धान्यवाला है, तेरे पास वित्त बहुत है, यज्ञ कर' ॥ १९ ॥
ब्राह्मणोंसे चिताये जानेपर तब रथर्षभ राजाने
' अश्व-मेध', 'पुरुष-मेध', 'वाजपेय', 'निरर्गल' (=सर्वमेध)'
एक एक यज्ञको करके ब्राह्मणोंको धन दिया ॥ २० ॥
गायें, शयन, वस्त्र, अलंकृत स्त्रियां ।
उत्तम-घोड़े-जुते, सुन्दर रचना-वाले विचित्र सिलाईयुक्त रथ, खंडोंमें बंटे मकान और कोठे,
—नाना धान्योंसे भरकर ब्राह्मणोंको दान दिया ॥ २१, २२ ॥
उन्होंने धन-संग्रह करना पसन्द किया'
लोभमें पड़े उन (ब्राह्मणों)की [2]तृष्णा और भी बढ़ी ।
वह मंत्र रचकर फिर इक्ष्वाकुके पास गये ॥ २३ ॥
जैसे पानी, पृथिवी, हिरण्य, धन, धान्य हैं ।
ऐसेही गायें मनुष्योंके लिये हैं, वह प्राणियोंकी परिष्कार (=उपभोग-वस्तु) हैं,
तेरे पास बहुत धन है, यज्ञ कर,० बहुत वित्त है, यज्ञ कर ॥ २४ ॥

---

१. अ. क. " सुवर्ण-वर्ण " ।

२. अ-क- " दूध आदि पांच गोरस·····गायोंके स्वादिष्ट हैं, इनका मांस निश्चय और भी स्वादिष्ट होगा । इसप्रकार मांसके लिये 'तृष्णा और भी बढ़ी; । (तब उन्होंने) सोचा,—यदि हम मारकर खायेंगे, तो निन्दाके पात्र होंगे, क्यों न मंत्र रचें' । तब फिर वेदको तोड़ मोड़ कर उसके अनुरूप मंत्र बनाकर, वह इक्ष्वाकु राजाके पास फिर गये'' ।

तब ब्राह्मणोंसे प्रेरित होकर रथर्षभ राजाने ।
अनेक सौ हजार गायें यज्ञमें हनन कीं ॥२५॥
(जो) न पैरसे न सींगसे न किसी (अंग)से ही मारती हैं ।
(जो) गायें भेड़के समान प्रिय और घड़े भर दूध देनेवाली हैं ।
उन्हें सींगसे पकड़कर राजाने शस्त्रसे मारा ॥२६॥
तब देवता, पितर, इन्द्र, असुर, राक्षस,
चिल्ला उठे 'अधर्म (हुआ) जो गायके ऊपर शस्त्र गिरा'॥ २७॥
पहिले तीन ही रोग थे—इच्छा, क्षुधा, और जरा ।
पशुकी हिंसा(=समारंभ)से (वह) अट्ठानवे होगये ॥२८॥
यह अधर्म पुराने (धर्म-) दंडोंसे रहित था ।
याजक (=पुरोहित) निर्दोषको मारते हैं, धर्मका ध्वंस करते हैं ॥२९॥
इस प्रकार यह पुराने विज्ञोंसे निन्दित नीच-कर्म है ।
लोग जहां ऐसे याजकको पाते हैं, निन्दा करते हैं ॥३०॥
इस प्रकार धर्मके बिगड़नेपर शूद्र और वैश्य फूट गये ।
क्षत्रिय भी छिन्न भिन्न होगये ; भार्या पतिका अपमान करने लगी ॥३१॥
क्षत्रिय, ब्रह्म-बंधु (=ब्राह्मण-जातिके) और दूसरे जो गोत्रसे रक्षित थे ।
जातिवादका नाशकर, (सभी) स्वेच्छचारी हो गये ॥३२॥'
ऐसा कहनेपर ब्राह्मण महाशालोंने भगवान्‌को यह कहा—

"आश्चर्य ! हे गौतम !! अद्भुत ! हे गौतम !! ०यह हम आप गौतमकी शरण जाते हैं, धर्म और भिक्षु-संघकी भी । आजसे आप गौतम हमें अंजलि-बद्ध शरणागत उपासक समझें ॥

(७)

अंगुलिमाल-सुत्त (वि. पू. ४४७) ।

" [1]ऐसा मैंने [2]सुना—एक समय भगवान् श्रावस्तीमें अनाथ-पिंडकके आराम जेत-वनमें विहार करते थे ।

उस समय राजा प्रसेनजित्के राज्यमें रुद्र लोहित-पाणि मार-काट संलग्न, प्राणि-भूतोंमें दया-रहित अंगुलिमाल नामक डाकू (=चोर) था । उसने ग्रामोंकोभी अ-ग्रामकर दिया था, निगमोंकोभी अ-निगम ०, जन-पदोंकोभी अ-जनपद ० । तब भगवान् पूर्वाह्ण समय पहिनकर पात्र-चीवरले श्रावस्तीमें पिंडकेलिये प्रविष्ट हुए । श्रावस्तीमें पिंड-चार करके भोजन बाद .... शयनासन संभाल, पात्र-चीवरले जहां, डाकू अंगुलि-माल रहता था, उसी रास्ते चले । गोपालकों, पशुपालकों, कृषकों, राहगीरोंने भगवान्को, जिधर डाकू अंगुलि-माल था, उसी रास्तेपर (जाते) हुये देखा । देखकर भगवान्को यह कहा—

"मत श्रमण ! इस रास्ते जाओ । इस मार्गमें श्रमण ! ०अंगुली-माल नामक डाकू रहता है । उसने ग्रामोंको भी अ-ग्राम० । वह मनुष्योंको मार मारकर अंगुलियोंकी माला पहनता है । इस मार्गपर श्रमण ! बीस पुरुष, तीस पुरुष चालीस०, पचास पुरुष तक इकट्ठा होकर जाते हैं, वह भी अंगुलिमालके हाथमें पड़ जाते हैं ।"

ऐसा कहनेपर भगवान् मौन धारणकर चलते रहे ।

दूसरी बारभी गोपालकों० । तीसरी बार भी गोपालकों० ।

डाकू अंगुलि-मालने दूरसे ही भगवान्को आते देखा । देखकर उसको यह हुआ—'आश्चर्य है जी ! अद्भुत है जी (=भो) !! इस रास्ते दस पुरुष भी,० पचास पुरुष भी इकट्ठा होकर चलते हैं, वह भी मेरे हाथमें पड़ जाते हैं । और यह श्रमण अकेला=अद्वितीय मानो मेरा तिरस्कार करता आ रहा है । क्यों न मैं इस श्रमणको जानसे मार दूँ ।' तब डाकू अंगुलि-माल ढाल-तलवार (=असि-चर्म) लेकर तीर-धनुष चढ़ा, भगवान्के पीछे चला । तब भगवान्ने इस प्रकारका योग-बल प्रकट किया, कि डाकू अंगुलिमाल मामूली चालसे चलते भगवान्को सारे वेगसे दौड़कर भी न पा सकता था । तब डाकू अंगुलिमालको यह हुआ—'आश्चर्य है जी ! अद्भुत है जी !! मैं पहिले दौड़ते हुये हाथीको भी पीछा करके पकड़ लेता था, ०घोड़ेको भी०, ०रथको भी०, ०मृगको भी पीछा करके पकड़ लेता था । किन्तु, मामूली चालसे चलते इस श्रमणको, सारे वेगसे दौड़कर भी नहीं पा सकता हूँ ।' खड़ा होकर भगवान्को बोला—

"खड़ा रह, श्रमण !"

"मैं स्थित (=खड़ा) हूं अंगुलिमाल ! तू भी स्थित हो ।"

तब डाकू अंगुलि-मालको यह हुआ—'यह शाक्य-पुत्रीय श्रमण सत्यवादी सत्य-प्रतिज्ञ (होते हैं); किन्तु यह श्रमण जाते हुये भी ऐसा कहता है—'मैं स्थित हूं० ।' क्यों न मैं इस श्रमणको पूछूँ । तब ०अंगुलिमालने गाथाओंमें भगवान्को कहा—

---

१. चौबीसवां वर्षावास पूर्वाराममें, पचीसवां जेतवनमें । २. म. नि. २: ४: ६ ।

"श्रमण ! जाते हुये 'स्थित हूं०।' कहता है, मुझ खड़े-हुयेको अस्थित कहता है।
श्रमण ! तुझे यह बात पूछता हूं 'कैसे तू स्थित और मैं अस्थित हूं ?' ॥१॥
"अंगुलिमाल ! सारे प्राणियोंके प्रतिने दंड छोड़नेसे मैं सर्वदा स्थित हूं।
तू प्राणियोंमें अ-संयमी है, इसलिये मैं स्थित हूं, और तू अ-स्थित है ॥२॥"
"मुझे महर्षिका पूजन किये देर हुई, यह श्रमण महावनमें मिल गया।
सो मैं धर्मयुक्त गाथाको सुनकर चिरकालके पापको छोडूंगा" ॥३॥
इस प्रकार डाकूने तलवार और हथियार खोह, प्रपात और नालेमें फेंक दिये।
डाकूने सुगतके पैरोंकी वन्दनाकी, और वहीं उनसे प्रव्रज्या मांगी ॥४॥
बुद्ध करुणामय महर्षि, जो देवोंसहित लोकके शास्ता (=गुरु) हैं।
उसको 'आ भिक्षु' बोले, यही उसका संन्यास हुआ ॥५॥

तब भगवान् आयुष्मान् अंगुलिमालको अनुगामी-श्रमण बना जहां श्रावस्ती थी वहां, चारिकाके लिये चले। क्रमशः चारिका करते जहां श्रावस्ती थी, वहां पहुँचे। श्रावस्तीमें भगवान् अनाथ-पिंडकके आराम जेतवनमें विहार करते थे। उस समय राजा प्रसेनजित् कोसलके [1]अन्तःपुरके द्वार पर बड़ा जन-समूह एकत्रित था। कोलाहल (=उच्च शब्द, महा शब्द) हो रहा था—'देव! तेरे राज्यमें ०अंगुलि-माल नामक डाकू है। उसने ग्रामोंको भी अ-ग्राम०। वह मनुष्योंको मारकर अंगुलियोंकी माला पहनता है। देव! उसको रोक।"

तब राजा प्रसेनजित् कोसल पांच सौ घोड़-सवारोंके साथ मध्याह्नको श्रावस्तीसे निकल (और) जिधर आराम था, उधर गया। जितनी यानकी भूमि थी, उतनी यानसे जा, यानसे उतर पैदल जहां भगवान् थे, वहां गया। जाकर भगवान्को अभिवादनकर एक ओर बैठा। एक ओर बैठे राजा प्रसेनजित् कोसलको भगवान्ने कहा—

"क्या महाराज तुझपर राजा मागध श्रेणिक बिंबसार बिगड़ा है, या वैशालिक लिच्छवि, या दूसरे विरोधी राजा ?"

"भन्ते! न मुझपर राजा मागध० बिगड़ा है०। भन्ते! मेरे राज्यमें० अंगुलि-माल नामक डाकू०। भन्ते! मैं उसीको निवारण करने जा रहाहूं।"

"यदि महाराज! तू अंगुलि-मालको केश-श्मश्रु मुँड़ा काषाय-वस्त्र पहिन, घरसे बेघर प्रव्रजित हुआ, प्राण-हिंसा-विरत, अदत्तादान-विरत, मृषावाद-विरत, एकाहारी, ब्रह्मचारी, शीलवान्, धर्मात्मा देखे, तो उसको क्या करे ?"

"हम भन्ते! प्रत्युत्थान करेंगे, आसनके लिये निमंत्रित करेंगे, चीवर, पिंड-पात शयनासन ग्लान-प्रत्यय भेषज्य परिष्कारोंसे निमंत्रित करेंगे; और उनकी धर्म धार्मिक रक्षा= आवरण=गुप्ति करेंगे। किंतु भन्ते! उस दुःशील पापीको ऐसा शील-संयम कहांसे होगा।"

उस समय आयुष्मान् अंगुलि-माल भगवान्के अ-विदूर बैठे थे। तब भगवान्ने दाहिनी बांहको पकड़ कर राजा प्रसेनजित् कोसलको कहा—

---

१. नगरके भीतरी भागमें राजाके महल आदि होते थे, इसीको अन्तःपुर, या राजकुल कहाजाता था।

"महाराज ! यह है अंगुलि-माल ।"

तब राजा प्रसेनजित कोसलको, भय हुआ, स्तब्धता हुई, रोमांच हुआ । तब भगवान्‌ने राजा प्रसेनजित्‌कोसलको यह कहा—

"मत डरो, महाराज ! मत डरो महाराज ! (अब) इससे तुझे भय नहीं है ।"

तब राजा प्रसेनजित् कोसलको जो भय० था, वह विलीन होगया ।

तब राजा प्रसेन-जित कोसल जहाँ आयुष्मान् अंगुलि-माल थे, वहाँ गया । जाकर आयुष्मान् अंगुलि-मालको बोला—

"आर्य अंगुलि-माल हैं ?"

"हाँ, महाराज !"

"आर्यके पिता किस गोत्रके, और माता किस गोत्रकी ?"

"महाराज ! पिता गार्ग्य, माता मैत्रायणी ।"

"आर्य गार्ग्य मैत्रायणीपुत्र अभिरमण करें । मैं आर्य गार्ग्य मैत्रायणी-पुत्रकी चीवर, पिंड-पात, शयनासन, ग्लान-प्रत्यय-भैषज्य परिष्कारोंसे सेवा करूँगा ।"

उस समय आयुष्मान् अंगुलिमाल आरण्यक, पिंडपातिक, पांसु-कूलिक, त्रैचीवरिक थे । तब आयुष्मान् अंगुलि-मालने राजा प्रसेनजित् कोसलको कहा—

"महाराज ! मेरे तीनों चीवर पूरे हैं ।"

तब राजा प्रसेनजित् कोसल जहां भगवान् थे, वहां गया । जाकर भगवान्‌को अभिवादनकर एक ओर बैठा । एक ओर बैठ···भगवान्‌को यह बोला—

"आश्चर्य भन्ते ! अद्भुत भन्ते !! कैसे भन्ते ! भगवान् अदान्तोंको दमन करते, अशांतोंको शमन करते, अ-परिनिर्वृतोंको परिनिर्वाण कराते हैं । भन्ते ! जिनको हम दंडसे भी, शस्त्रसे भी दमन न कर सके, उसको भन्ते ! भगवान्‌ने विना दंडके, विना शस्त्रके दमन कर दिया । अच्छा, भन्ते ! हम जाते हैं, हम बहु-कृत्य=बहु-करणीय (=बहुत कामवाले) हैं ।"

"जिसका महाराज ! तू काल समझता है (वैसा कर) ।"

तब राजा प्रसेनजित् कोसल आसनसे उठकर भगवान्‌को अभिवादनकर प्रदक्षिणाकर चला गया ।

तब आयुष्मान् अंगुलिमाल पूर्वाह्ण समय पहिनकर पात्र-चीवर ले श्रावस्तीमें पिंडके लिये प्रविष्ट हुये । श्रावस्तीमें विना ठहरे पिंड-चार करते आयुष्मान् अंगुलिमालने एक स्त्रीको मूढ-गर्भा=विघात-गर्भा (=मरे गर्भवाली) देखा । देखकर उनको यह हुआ—'हा ! प्राणी दुःख पा रहे हैं !! हा ! प्राणी दुःख पा रहे हैं ।' तब आयुष्मान् अंगुलिमाल श्रावस्तीमें पिंड-चार करके भोजनोपरान्त···जहां भगवान् थे, वहां गये । जाकर भगवान्‌को अभिवादन-कर एक ओर बैठ गये । एक ओर बैठे आयुष्मान् अंगुलिमालने भगवान्‌को कहा—

"मैं भन्ते ! पूर्वाह्ण समय पहिनकर पात्रचीवर ले श्रावस्तीमें पिंडके लिये प्रविष्ट हुआ । श्रावस्तीमें० मैंने एक स्त्रीको मूढ-गर्भा० देखा । '०हा ! प्राणी दुःख पा रहे हैं' ।"

" तो अंगुलिमाल ! जहां वह स्त्री है, वहां जा । जाकर उस स्त्रीको कह—भगिनी ! यदि मैं जन्मसे, जानकर प्राणि-वध करना नहीं जानता, (तो) उस सत्यसे तेरा मंगल हो; गर्भका मंगल हो । "

"भन्ते ! यह तो निश्चय मेरा जानकर झूठ बोलना होगा । भन्ते मैंने जानकर बहुतसे प्राणि-वध किये हैं । "

" अंगुलिमाल ! तू जहां वह स्त्री है वहां···जाकर यह कह—' भगिनी ! यदि मैंने आर्य-जन्ममें पैदा हो (कर) जानकर प्राणि-वध करना नहीं जाना, (तो) इस सत्य से० ।"

" अच्छा भन्ते ! "·· आयुष्मान् अंगुलिमालने·· जाकर उस स्त्रीको कहा—

" भगिनि ! यदि मैंने आर्य जन्ममें पैदा हो, जानकर प्राणि-वध० । "

तब स्त्रीका मंगल होगया, गर्भका भी मंगल होगया ।

आयुष्मान् अंगुलिमाल एकाकी·· अप्रमत्त = उद्योगी संयमी हो विहार करते न-चिरमें ही, जिसके लिये कुल-पुत्र···प्रव्रजित होते हैं, उस सर्वोत्तम ब्रह्मचर्य-फलको इसी जन्ममें स्वयं जानकर = साक्षात्कारकर = प्राप्तकर विहार करने लगे । ' जन्म क्षय होगया ब्रह्मचर्य-पालन हो चुका, करना था सोकर लिया, अब और करनेको यहां नहीं है ' (इसे) जान लिया । आयुष्मान् अंगुलिमाल अर्हतोंमें एक हुये ।

आयुष्मान् अंगुलि-माल पूर्वाह्न समय पहिनकर पात्र-चीवर ले, श्रावस्तीमें भिक्षाके लिये प्रविष्ट हुये । किसी दूसरेका फेंका ढेला आयुष्मान्के शरीरपर लगा; दूसरेका फेंका डंडा०; दूसरेका फेंका कंकड़० । तब आयुष्मान् अंगुलि-माल बहते-खून, फटे-शिर, टूटे-पात्र, फटी संघाटीके साथ जहां भगवान् थे, वहां गये । भगवान्ने दूरसे ही आयुष्मान् अंगुलिमालको आते देखा । देखकर आयुष्मान् अंगुलिमालको कहा—

" ब्राह्मण ! तूने कबूल कर लिया । ब्राह्मण ! तूने कबूल कर लिया । जिस कर्म-फलके लिये अनेक सौ वर्ष, अनेक हजार वर्ष, नर्कमें पचना पड़ता, उस कर्म-विपाकको ब्राह्मण ! तू इसी जन्ममें भोग रहा है ।"

तब आयुष्मान् अंगुलि-मालने एकान्तमें ध्यानावस्थित हो विमुक्ति-सुखको अनुभव करते, उसी समय यह उदान कहा—

" जो पहिले अर्जितकर पीछे, उसे मार्जित करता है ।
वह मेघसे मुक्त चन्द्रमाकी भांति इस लोकको प्रभासित करता है ॥१॥
जिसका किया पाप-कर्म पुण्य (= कुशल)से ढंका जाता है ।
वह मेघसे मुक्त० ॥२॥
जो संसारमें तरुण भिक्षु बुद्ध-शासनमें जुटता है । वह० ॥३॥
दिशायें मेरी धर्म-कथाको सुनें, दिशायें मेरे बुद्ध-शासनमें जुड़ें ।
वह संत पुरुष दिशाओंको सेवन करें, जो धर्मके लियेही प्रेरित करते हैं ॥४॥
दिशायें मेरे क्षांति-वादियों, मैत्री-प्रशंसकोंके धर्मको;
समयपर सुनें, और उसके अनुसार चलें ॥५॥

पहिले मैं अंगुलि-माल नामसे प्रसिद्ध खून-रंगे हाथवाला(=लोहित-पाणि) था ।
देखो शरणागति को ? भव-जाल सिमट गया ॥११॥
बहुत दुर्गतिमें ले जानेवाले कर्मोंको करके ।
कर्म-विपाकसे स्पृष्ट(=लगा) (था) (जिन)से उऋण हो भोजन करता हूँ ॥१२॥
बाल=दुर्बुद्धि जन, प्रमाद (=आलस्य)में लगे रहते हैं ।
मेधावी (पुरुष) अ-प्रमादको, श्रेष्ठ धनकी भांति रक्षा करते हैं ॥१३॥
मत प्रमादमें जुड़ो, मत काम-रतिका संग करो ।
अप्रमाद-युक्त हो ध्यान करते (मनुष्य) विपुल सुखको पाता है ॥१४॥
(यहां मेरा आना) स्वागत है, अप-गत (=दुरागत) नहीं,
यह मेरा (मंत्रणा) दुर्मंत्रण नहीं ।
प्रतिभान(=ज्ञान)होनेवाले धर्मोंमें जो श्रेष्ठ है, उस (निर्वाण)को मैंने पा लिया ॥१५॥
स्वागत है, अपगत नहीं, यह मेरा दुर्मंत्रण नहीं ।
तीनों विद्याओंको पालिया, बुद्धके शासनको कर लिया ॥१६॥

"तात ! दक्षिणा दिये विना विद्या फल नहीं देती"

(तब) वह पांच हथियारले आचार्यको वन्दनाकर, जंगलमें घुस गया। वह अटवी (=जंगल)में घुसनेके स्थानपर, अटवीके मध्यमें, अटवीसे निकलनेके स्थानपर खड़ा होकर, मनुष्योंको मारता था, (किंतु) वस्त्र या वेष्टनको नहीं लेता था। एक दो गिनती मात्र करता जाता था। ...क्रमशः गिनती भी नहीं याद रख सकता था। तब एक एक अंगुली काट कर रख छोड़ता था। रखे स्थानपर अंगुलियां खोजाती थीं। तब छेदकर अंगुलियोंकी माला बनाकर धारण करने लगा। इसीसे उसका नाम अंगुलिमाल प्रसिद्ध हुआ। उसने सारे जंगलको निस्संचार कर दिया। लकड़ी आदि लानेके लिये जंगलमें जानेमें कोई समर्थ न था। रातमें गांवमें भी आकर, पैरसे मारकर दर्वाजा खोल, सोतोंही को मार एक एक गिनकर चला जाता। गांव भागकर निगममेंजा खड़ा हुआ, निगम नगरमें। तीन योजन तकके मनुष्य घर छोड़ स्त्री बच्चे हाथसे पकड़े, आकर श्रावस्तीके चारो ओर डेरा लगा, राजाके आंगनमें इकट्ठे हो बोले 'देव ! तेरे राज्यमें चोर अंगुलिमाल उत्पन्न हुआ है ।"

(८)

अट्ठक (=पारायण) वग्ग (त्रि. पृ. ४४६)।

[1]मंत्र-पारंगत [2]ब्राह्मण कोसलोंके रमणीय पुरसे,
आकिंचन्य (स्वर्ग)की कामनासे दक्षिणापथ गया ॥१॥

उसने [3]अस्मकके राज्यमें अलक[3]की सीमापर।
गोदावरी नदीके तीरपर उंछ और फलके सहारे वास किया ॥ २ ॥

उसीके समीप एक विपुल गांव था।
जिससे पैदा हुई आयसे उसने महायज्ञ रचा ॥ ३ ॥

---

१. सुत्त निपात ५: १-१६।

२. प्रसेनजितके पिताके पुरोहितके घर (उक्त) आचार्य पैदा हुआ। नामसे बावरी, महा-पुरुषके तीन लक्षणोंसे युक्त, तीनों वेदोंमें पारंगत पिताके मरने पर पुरोहित-पदपर प्रतिष्ठित हुआ।...सोलह ज्येष्ठ-अन्तेवासियों (=प्रधान शिष्यों)ने बावरीके पास विद्या पढ़ी।... कोसल-राजाभी मर गया। तब प्रसेनजित्को (लोगोंने) अभिषिक्त किया। बावरी उसकाभी पुरोहित हुआ। राजाने पिताके दिये तथा और भी भोग बावरीको दिये। बालकपनमें उसने उसके ही पास विद्या पढ़ी थी। तब बावरीने राजाको कहा—

"मैं महाराज! प्रव्रजित होऊँगा।"

"आचार्य! तुम्हारी उपस्थितिमें मेरा पिता मानो उपस्थित है। प्रव्रजित मत हो।"

"महाराज! नहीं, प्रव्रजित होऊँगा।"

राजाने रोकनेमें असमर्थ हो प्रार्थनाकी—

"सायं प्रातः मेरे दर्शन लायक स्थान राज-उद्यानमें प्रव्रजित हो।"

आचार्य सोलह हजार परिवार (=अनुयायी) वाले सोलह शिष्योंके साथ तापस-प्रव्रज्यामें प्रव्रजित हो राज-उद्यानमें वास करने लगा।

राजा चारों अवश्यकताओंको अर्पण करता, और सायं प्रातः सेवामें जाता था। तब एक दिन अन्तेवासियोंने आचार्यको कहा—'आचार्य! नगरके समीप बसनेमें बड़ा विघ्न है, निर्जन स्थानमें चलें, प्रव्रजितोंके लिये एकान्त-आश्रम-वास बड़ा उपकारी होता है।"

उसने 'अच्छा' (कह) स्वीकारकर राजाको कहा। राजाने तीनबार मना करनेपरभी असमर्थ हो, दोलाख दे, दो अमात्योंको हुकुम दिया—"जहां ऋषिगण वास करना चाहें, वहां आश्रम बनवादो।" तब आचार्य सोलह हजार जटिलोंके साथ, अमात्योंसे अनुगामी हो, उत्तर-देशसे दक्षिण-देशकी ओर गया।'

[3]अ-क. "अस्सक (=अश्मक) और अलक (=आर्यक)'...दोनों अन्धक (=आन्ध्र)राजाओंके...समीप-वर्ती राज्यमें।...दोनों राजाओंके बीचमें..., गोदावरी नदीके तीरपर,......जहां गोदावरी दोधारमें फटकर भीतर तीन योजनका द्वीप बनाती है।...। जहां पहिले शरभंग आदिने वास किया था।...।' अस्सक अलक आजकल हैदराबाद राज्यके औरंगाबाद और बीरके दो जिले तथा आस पासके भाग हो सकते हैं।

महायज्ञ करके फिर वह आश्रमके भीतर चलागया ।
उसके भीतर चले जानेपर दूसरा ब्राह्मण आया ॥ ४ ॥
घिसे-पैर प्यासा, दांतमें-पंक-लगा धूसर-शिर ।
वह उसके पासजा पांचसौ मांगने लगा ॥ ५ ॥
उसको देखकर बावरीने आसनसे निमंत्रित किया ।
कुशल आनंद, पूछा, (और) यह बात कही ॥ ६ ॥—
" जो कुछ मुझे देना था, वह सब मैंने देडाला ।
हे ब्राह्मण ! जानो, कि मेरे पास पांच सौ नहीं हैं ॥ ७ ॥
" यदि मांगते हुये मुझे तुम न दोगे ।"
तो सातवें दिन तुम्हारा शिर (=मूर्धा) सात टुकड़े होजाये "॥ ८ ॥
अभिसंस्कार (=मंत्रविधि) करके उस पाखंडीने (यह) भीषण शब्द कहा ।
उसके उस वचनको सुनकर बावरी दुःखित हुआ ।। ९ ॥
शोक-शल्यसे युक्त हो निराहार सूखने लगा ।
तथापि चित्तके ध्यानसे मन रमित होता था ॥ १० ॥
भयभीत और दुःखित देख हिताकांक्षी एक देवताने ।
बावरीके पास जाकर यह वचन कहा ॥ ११ ॥—
" वह पाखंडी धन-लोभी मूर्धा नहीं जानता ।
मूर्धा या मूर्धा-पातके विषयमें उसको ज्ञान नहीं है ॥ १२ ॥"
" तो तुम जानती होंगी, सो मुझे इस मूर्धा, मूर्धापातको ।
बतलाओ, (मैं) तुम्हारे इस वचनको सुनना चाहता हूं । ॥ १३ ॥"
"मैंभी उसे नहीं जानती, मुझे भी उस विषयका ज्ञान नहीं है ।
मूर्धा और मूर्धा-पात यह बुद्धोंका ही दर्शन (=ज्ञान) है" ॥१४॥
" तो फिर इस वक्त इस पृथिवी-मंडलमें (जो) मूर्धापातको,
जानता है, हे देवता ! उसे मुझे बतलाओ ?" ।।१५॥
" पूर्व समय जो कपिल-वस्तुसे लोकनायक,
इक्ष्वाकु-राजाकी संतान, प्रभाकर, शाक्य-पुत्र (प्रव्रजित हुये)॥१६।।
ब्राह्मण ! वही संबुद्ध, सर्व-धर्म-पारंगत,
सब अभिज्ञाओंके बलको प्राप्त, (राग आदि) उपधिके क्षय होनेसे विमुक्त हैं ।।१७।।
वह चक्षु-मान् भगवान् बुद्ध, धर्म-उपदेश करते हैं ।
उनके पास जाकर पूछो, वह इसे तुम्हें बतलायेंगे ।।१८।।"
" बुद्ध " यह वचन सुन बावरी बहुत हर्षित हुआ ।
उसका शोक कम होगया, और (उसे) विपुल प्रीति (=खुशी) उत्पन्न हुई ।।१९।।
वह बावरी सन्तुष्ट, हर्षित, प्रफुल्लित हो उस देवताको पूछने लगा ।—
" किस गांव, किस निगम या किस जनपदमें लोकनाथ (वास करते) हैं,
जहां जाकर, पुरुषोत्तम बुद्धको नमस्कार करें ? ॥२०॥"

" वह जिन बहु-प्रज्ञ, वर-भूरि-मेधावान् शाक्यपुत्र;
अ-संग, अन्-आस्रव, नरर्षभ, मूर्धा-पातज्ञ कोसल-मंदिर श्रावस्तीमें (वास करते) हैं॥२१॥"
तब मंत्र (=वेद) पारंगतने शिष्य ब्राह्मणोंको संबोधित किया—
" आओ माणवको ! कहता हूँ, मेरा वचन सुनो ॥२२॥
जिसका सदा प्रादुर्भाव लोकमें दुर्लभ है ।
वह प्रसिद्ध 'बुद्ध' आज लोकमें पैदा हुये हैं ॥
शीघ्र श्रावस्ती जाकर पुरुषोत्तमका दर्शन करो ॥२३॥"
" हे ब्राह्मण ! तो कैसे हम देखकर जानेंगे—यह 'बुद्ध हैं' ।
न जानते हम जैसे उन्हें जानें, वह हमें बतलाओ ॥२४॥"
" हमारे मंत्रोंमें महापुरुष-लक्षण आये हैं ।
(वह) बत्तीस कहे गये हैं; चारो ओर क्रमशः ॥२५॥
जिसके शरीरमें यह महापुरुष-लक्षण हों ।
दो ही उसकी गतियां हैं, तीसरी नहीं ॥२६॥
यदि घरमें वास करता है, (तो) इस पृथिवीको
विना दंड, विना शस्त्रके जीतकर, धर्मके साथ शासन करता है ॥२७॥
यदि वह घरसे बेघर हो, प्रव्रजित होता है ।
तो पट-खुला, बुद्ध, सर्वोत्तम अर्हत् होता है ॥२८॥
(वहाँ जाकर) जाति, गोत्र, लक्षण, मंत्र, शिष्य तथा ।
मूर्धा, और मूर्धापातको मनसे ही पूछना ॥२९॥
यदि छिपेको खोलकर देखनेवाले बुद्ध होंगे ।
तो मनसे पूछे प्रश्नोंको वचनसे उत्तर देंगे ॥३०॥"
बावरीका वचन सुनकर सोलह ब्राह्मण शिष्य—
अजित, तिष्य मैत्रेय, पूर्ण और मैत्रगु ॥३१॥

धवनक, उपशिव, नन्द और हेमक ।
तोदेय-कप्प (=तोदेय कल्प), दूभय, और पंडित जातुकर्णी ॥ ३२ ॥
भद्रायुध, उदय, और ब्राह्मण पोसाल ।
और मेधावी मोघराज और महाऋषि पिंगिय ॥ ३३ ॥
सभी अलग अलग गणी (=जमात-वाले), सर्वलोकप्रसिद्ध ।
ध्यायी=ध्यान-रत, धीर पूर्वकालसे (आश्रम) वासके वासी ॥ ३४ ॥
बावरीको अभिवादनकर, और उसकी प्रदक्षिणाकर ।
सभी जटा-मृग-चर्म-धारी, उत्तरकी ओर चले ॥ ३५ ॥
अलकसे प्रतिष्ठान[1], तब प्रथम [2]माहिष्मती ।

[1] गोदावरीके उत्तर किनारे पर औरङ्गाबादसे अट्ठाईस मील दक्षिण, वर्त्तमान पैठन जिला औरङ्गाबाद (हैदराबाद राज्य)। [2] इन्दौरसे चालीस मील दक्खिन नर्मदाके उत्तर तटपर, वर्तमान महेश्वर या महेश।

[1]उज्जयिनी और फिर गोनद्ध[2], [3]विदिशा [4]वनसाह्वय ॥ ३६ ॥
[5]कौशाम्बी और [6]साकेत, और पुरोंमें उत्तम [7]श्रावस्ती ।
[8]सेतव्या, [9]कपिलवस्तु, [10]कुसीनारा और मन्दिर ॥ ३७ ॥
[11]पावा और भोगनगर, वैशाली, और मगध-पुर (=[12]राजगृह) ।
और रमणीय मनोरम पाषाणक[13]चैत्य (में पहुँचे) ॥ ३८ ॥
जैसे प्यासा ठण्डे पानीको, जैसे बनिया लाभको ।
धूपमें तपा जैसे छायाको, (वैसेही वह) जल्दीसे पर्वतपर चढ़गये ॥ ३९ ॥

भगवान् उस समय भिक्षु-संघको सामने किये,
भिक्षुओंको धर्म उपदेश कर रहे थे, वनमें सिंह जैसे गर्ज रहे थे ॥४०॥
अजितने बुद्धको शत-रश्मि सूर्य जैसा,
पूर्णता-प्राप्त पूर्णिमाके चन्द्रमा जैसा देखा ॥४१॥
तब उनके शरीरमें पूरे व्यञ्जनों (=लक्षणों) को देखकर,
हर्षित हो एक ओर खड़े हुये मनसे प्रश्न पूछा ॥४२॥
"(हमारे आचार्यके) जन्म आदिको बतलाओ, और लक्षणके साथ गोत्र बतलाओ।
मंत्रोंमें पारंगत-पन बतलाओ, और कितने ब्राह्मणोंको पढ़ाता है (इसे भी)?" ॥४३॥
"एक सौ बीस वर्ष आयु है, और वह गोत्रसे बावरि है ।
उसके शरीरमें तीन लक्षण, और तीनो वेदोंमें पारंगत है ॥४४॥
निघण्टु-सहित कैटुभ (=कल्प,-सहित लक्षणको, इतिहासको,
पांच सौको पढ़ाता है, अपने धर्ममें पारंगत है ॥४५॥"
"हे नरोत्तम ! हे तृष्णा-छेदक ! बावरीके लक्षणोंका विस्तार,
करो, (जिसमें) हम लोगोंको शंका न रह जाये ? ॥४६॥"

---

१. वर्तमान उज्जैन, ग्वालियर राज्य ।
२. वर्तमान भोपालके पास कोई स्थान । "गोधपुर भी" (अ. क.)
३. वर्तमान भिलसा (ग्वालियर राज्य) ।
४. अ. क. "तुम्बवनगर (=पवननगर)·········वन-श्रावस्ती भी··········।" वांसा (जिला सागर ?) ।
५. इलाहाबादसे प्रायः ३० मील पश्चिम, जमुनाके बांयें किनारे । वर्तमान कोसम (जिला इलाहाबाद, यु. प्रा.) ।
६. वर्तमान अयोध्या (जिला फैजाबाद, यु. प्रान्त) ।
७. बलरामपुरसे १० मील वर्तमान सहेट-महेट (जिला गोंडा, यु. प्रान्त) ।
८. जैन श्वेताम्बी ।
९. तौलिहवा बाजारसे प्रायः दो मील उत्तर वर्तमान तिलौरा (नैपाल तराई) ।
१०. गोरखपुरसे सैंतीस मील पूर्व वर्तमान कसया (जिला गोरखपुर यु. प्रा.) ।
११. पडरौना (=कसयासे १२ मील उत्तर-पूर्व) या पासका पपउर गांव ।
१२. राजगिर (जिला पटना, विहार) ।
१३. संभवतः गिर्यक् पर्वत (राजगिरिसे छः मील) ।

" ऊर्णा (उसकी) भौंके बीचमें (है) मुँहको जिह्वा ढाँक लेती है।
कोषसे ढँका वस्त्र-गुह्य (=लिंग) है, यह जानो हे माणवक! ॥४७॥"
प्रश्न कुछ भी न सुनते, और प्रश्नोंका उत्तर देते;
(देख), आश्चर्यान्वित हो, हाथ जोड़ लोग सोचते थे ॥४८॥
कौन देवता है, ब्रह्मा, या इन्द्र सुजाम्पति है।
मनसे पूछे प्रश्नोंका (उत्तर) किसे भासित हो रहा है? ॥४९॥
" बावरि मूर्धा (=शिर) और मूर्धा-पातको पूछता है।
हे भगवन्! उसे व्याख्यान करें, हे ऋषि! हमारे संशयका मिटावें ॥५०॥"
" अविद्याको मूर्धा जानो, और मूर्धा-पातिनी,
श्रद्धा, स्मृति, समाधि, छन्द, (आर) वीर्यके साथ विद्याको (जानो) ॥५१॥"
तब अत्यन्त प्रसन्नतासे स्तंभित हो माणवक,
मृगचर्मको एक कंधेपर कर शिरसे पैरोंमें पड़ गया ॥५२॥
" हे मार्ष, हे चक्षु-मान्! शिष्योंसहित बावरि ब्राह्मण,
हृष्ट-चित्त, सुमन हो, आपके पैरोंमें वन्दना करता है ॥५३॥"
" ब्राह्मण! शिष्यों-सहित बावरि सुखी होवे।
हे माणवक! तू भी सुखी हो, चिरंजीवी हो ॥५४॥"
संबुद्धके अवकाश देनेपर बैठकर हाथ जोड़।
वहां अजितने तथागतको प्रथम प्रश्न पूछा ॥५५॥

अजित-माणव-पुच्छा ॥१॥

(अजित)—" लोक किससे ढँका है? किससे प्रकाशित नहीं होता?
किसे इसका अभिलेपन कहते हो? क्या इसका महाभय है"? ॥५६॥
(भगवान्)-" अविद्यासे लोक ढँका है, प्रमाद (=आलस्य) से नहीं प्रकाशित होता।
तृष्णाको अभिलेपन कहता हूँ, (जन्म आदि) दुःख इसका महाभय है ॥५७॥"
(अजित)—" चारों ओर सोते बह रहे हैं, सोतोंका क्या निवारण है?
सोतोंका संवर (=ढकना) बतलाओ, किससे सोते ढांके जा सकते हैं? ॥५८॥"
(भगवान्)-" जितने लोकमें सोते हैं, स्मृति उनकी निवारक है।
सोतोंका संवर प्रज्ञा है, प्रज्ञासे यह ढांके जाते हैं ॥५९॥"
(अजित)—" हे मार्ष! प्रज्ञा और स्मृति नाम-रूप ही हैं।
यह पूछता हूँ। बतलाओ, कहां यह (=नाम-रूप) निरुद्ध होता है? ॥६०॥"
(भगवान्)-" अजित! जो तूने यह प्रश्न पूछा, उसे तुझे बतलाता हूँ,
जहांपर कि सारा नाम-रूप निरुद्ध होता है।
विज्ञानके निरोधसे यह निरुद्ध होजाता है ॥६१॥

(अजित)—"हे मार्ष ! जो यहां संख्यात (=विज्ञात)-धर्म हैं, और जो भिन्न शैक्ष्य (धर्म) हैं ।
पंडित ! तुम उनकी प्रतिपद्को पूछनेपर बताओ ? ॥६२॥"

(भगवान्)—"कामोंकी लोभ न करे, मनसे मलिन न होवे ।
सब धर्मोंमें कुशल हो भिक्षु प्रव्रजित होवे ॥६३॥"

तिस्स-मेत्तेय्य-माणव-पुच्छा ॥३॥

(तिस्स)—"यहां लोकमें कौन संतुष्ट है, किसको तृष्णायें नहीं हैं ?
कौन दोनों अन्तोंको जानकर मध्यमें (स्थित) हो, प्रज्ञासे लिप्त नहीं होता ?
किसको 'महापुरुष' कहते हो, कौन यहां बीचमें सीनेवाला है ? ॥६४॥"

(भगवान्)—"(जो) कामों या ब्रह्मचर्यमें सदा तृष्णा रहित हो,
जो भिक्षु समझ कर निर्वृत (मुक्त) हुआ है ; उसको तृष्णायें नहीं होतीं ॥६५॥
वह दोनों अन्तोंको प्रज्ञासे जानकर मध्य(-स्थ हो) लिप्त नहीं होता ।
उसको महापुरुष कहता हूं, वह यहां बीचमें सीनेवाला है ॥६६॥"

पुण्णक-माणव-पुच्छा ॥३॥

(पुण्णक)—"तृष्णा-रहित मूल-दर्शी ! (आपके पास)में प्रश्नके साथ आया हूं ।
किस कारण ऋषियों, मनुष्यों, क्षत्रियों ब्राह्मणोंने यहां लोकमें देवताओंको पृथक् २ यज्ञ कल्पितकिया; यह पूछता हूं; भगवान् बतलावें ॥६७॥"

(भगवान्)—"जिन किन्हीं ऋषियों, मनुष्यों, क्षत्रियों, ब्राह्मणोंने यहां लोकमें देवताओंके लिये पृथक् २ यज्ञ कल्पित किये, उन्होंने इस जन्मकी चाह रखते हुयेही, जरा (आदि) से अ-मुक्तहो ही कल्पित किया ॥ ६८ ॥

(पुण्णक)—"जिन किन्हींने० यज्ञ कल्पित किया ।
भगवान् ! क्या वह यज्ञ-पथमें अ-प्रमादी थे ?
हे मार्ष ! (क्या) वह जन्म-जराको पार हुये ?
हे भगवान् ! तुम्हें यह पूछता हूं बताओ ? ॥६९॥"

(भगवान्)-"(वह जो) आशंसन करते=स्तोम करते=अभिजल्प करते, हवन करते हैं, (सो) लाभके लिये कामोंको ही जपते हैं ।
वह यज्ञके योगसे भवके रागसे रक्त हो, जन्म-जराको नहीं पार हुये, (ऐसा) मैं कहता हूं ॥७०॥"

(पुण्णक)—"हे मार्ष ! यदि यज्ञके योग(=संबन्ध)से यज्ञोंद्वारा जन्म-जराको नहीं पार हुये । तो हे मार्ष ! फिर लोकमें कौन देव, मनुष्य जन्म-जराको पार हुये ?—तुम्हें पूछता हूं, हे भगवान् ! इसे बतलाओ ॥७१॥"

(भगवान्)—"लोकमें वार-पारको जानकर, जिसको लोकमें कहीं भी तृष्णा नहीं, (जो) शान्त (दुश्चरित-) धूम-रहित, रागादि-विरत, आशा-रहित (है), 'वह जन्म-जराको पार होगया'—कहता हूं ॥७२॥"

मेत्तगू-माणव-पुच्छा ॥ ४ ॥

(मेत्तगू)—"हे भगवान् ! मैं तुम्हें पूछता हूं, मुझे यह बतलाओ, तुम्हें मैं ज्ञानी (=वेदगू) और भावितात्मा समझता हूं, जो भी लोकमें अनेक प्रकारके दुःख हैं, वह कहांसे आये हैं ? ॥७३॥"

(भगवान्)—"दुःखकी इस उत्पत्तिको पूछते हो ? प्रज्ञानुसार मैं उसे तुम्हें कहता हूँ (तृष्णा आदि) उपधिके कारण, जो लोकमें अनेक प्रकारके दुःख हैं, (वह) उत्पन्न होते हैं ॥ ७४ ॥ जो कि अविद्या उपधिको उत्पन्न करता है, वह मन्द (पुरुष) पुनः पुनः दुःखको प्राप्त होता है। इसलिये जानते हुये, दुःखके-उत्पत्तिका कारण जान, उपधि न उत्पन्न करें" ॥ ७५ ॥

(मेत्तगू)—"जो तुम्हें पूछा, वह हमें बतला दिया; और तुम्हें पूछता हूँ, उसे बतलाओ। धीर लोग कैसे ओघ (=भवसागर)को, जन्म, जरा, शोक, रोने पीटनेको पारकरते हैं ? इसे हे मुनि ! मुझे अच्छी तरह बतलाओ, क्योंकि तुम्हें यह धर्म विदित है ।७६।

(भगवान्)—"इसी शरीरमें प्रत्यक्ष धर्मको बतलाता हूं, जिसको जानकर स्मरणकर आचरण कर, (पुरुष) लोकमें अ-शांतिको तर जाता है ॥७७॥"

(मेत्तगू)—"हे महर्षि ! उस उत्तम धर्मका मैं अभिनन्दन करता हूं, जिसको जानने, स्मरण करने (और) आचरण करनेसे (मनुष्य) लोकसे···तर जाता है ॥७८॥"

(भगवान्)—"जो कुछ ऊपर नीचे, आड़े, बीचमें जानता (दिखाई देता) है, उनमें तृष्णा, अभिनिवेश (=आग्रह), और (=संस्कार-) विज्ञानको हटाकर, भव (=संसार) में न ठहरे ॥७९॥ इस प्रकार स्मरणकर अप्रमादी हो विहार करते, ममता छोड़, विचरण करते; विद्वान् (भिक्षु) यहीं जन्म, जरा, शोक परिदेवन (=क्रन्दन) दुःखको छोड़ देता है ॥८०॥'

(मेत्तगू)—"हे गौतम ! महर्षिके सुभाषित, उपधि-रहित इन वचनोंका मैं अभिनन्दन करता हूँ। अवश्य भगवान् ! दुःख नाश करनेहीसे यह धर्म आपको विदित है ॥८१॥ और अवश्य वह भी दुःखोंसे छूटेंगे, जिनको हे मुनि ! तुम इच्छित धर्मका उपदेश करते हो। हे नाग ! ऐसे तुम्हें मैं आकर नमस्कार करता हूं, मुझे भी भगवान् ! इच्छित हीको उपदेश करें ॥८२॥'

(भगवान्)—"जिस ब्राह्मणको तू ज्ञानी, अकिंचन (=परिग्रह-रहित), काम-भवमें अ-सक्त जाने। अवश्य ही वह इस भव-सागरको पार हो गया है, पार हो वह सबसे निरपेक्ष है ॥८३॥ जो नर यहां विद्वान्=वेदगू, भव-अभवमें संगको छोड़कर विचरता है; वह तृष्णा-रहित, राग-आदि-रहित, आशा-रहित है। 'वह जन्म जरा पार हो गया'—कहता हूँ ॥८४॥"

धोतक-माणव-पुच्छा ॥ ५ ॥

(धोतक)—"हे भगवान् ! तुम्हें यह पूछता हूँ, महर्षि ! तुम्हारा वचन (सुनना) चाहता हूँ। तुम्हारे निर्घोष (=वचन)को सुनकर अपने निर्वाण (=मुक्ति)को सीखूंगा ॥८५॥"

(भगवान्)—"तो तत्पर हो, पंडित (हो), स्मृति-मान् हो; यहांसे वचन सुन अपने निर्वाणको सीखो ॥ ८६ ॥"

(धोतक)—" मैं (तुम्हें) देव-मनुष्य लोकमें अ-किंचन (=निर्लोभ) विहरनेवाला ब्राह्मण देखता हूं । हे समन्त-चक्षु (=चारों ओर आंखवाले) ! ऐसे तुम्हें नमस्कार करता हूँ । हे शक्र ! मुझे कथंकथा(वाद-विवाद)से छुड़ाओ ॥ ८७ ॥

(भगवान्)—" हे धोतक ! लोकमें मैं किसी कथंकथीको छुड़ाने नहीं जाऊंगा । इस प्रकार श्रेष्ठ धर्मको जानकर, तुम इस ओघ (=भवसागर)को तर जाओगे ॥ ८८ ॥

(धोतक)—" हे ब्रह्म ! करुणा कर, विवेक-धर्मको मुझे उपदेश करो । जिसे मैं जानूँ । जिसके अनुसार……न लिप्त हो, यहीं शांत, अ-बद्ध हो विचरण करूँ ॥ ८९ ॥"

(भगवान्)—" धोतक ! इसी शरीरमें प्रत्यक्ष धर्मको बतलाता हूँ; जिसको जानकर, स्मरणकर, आचरणकर, तू लोकमें अशांतिसे तर जायेगा ॥ ९० ॥"

(धोतक)—" हे महर्षि ! मैं उस उत्तम धर्मका अभिनन्दन करता हूँ, जिसको जानकर, स्मरण कर, आचरणकर लोकमें अ-शांतिको तर जाये ॥ ९१ ॥"

"जो कुछ ऊपर, नीचे, आड़े, या बीचमें, जानता है; लोकमें इसे 'संग है' समझकर, भव-अभवमें तृष्णा मत करो ॥९२॥"

उपसीव-माणव-पुच्छा ॥ ६ ॥

(उपसीव)—" हे शक्र ! मैं अकेले महान् ओघ (=संसारप्रवाह)को निराश्रित हो तरनेकी हिम्मत नहीं रखता । हे समन्त-चक्षु ! आलम्ब बतलाओ, जिसका आश्रयले मैं इस ओघको तरूँ ॥९३॥"

(भगवान्)—"आकिंचन्य (=कुछ नहीं) को देख, स्मृतिमान् हो, '(कुछ) नहीं है' को आलंबनकर ओघको पार करो । कामोंको छोड़, कथाओं से विरत हो, रात-दिन तृष्णा-क्षयको देखो ॥ ९४ ॥"

(उपसीव)—"जो सब कामों(=भोगों)में विरागी, और (सब) छोड़, 'कुछ नहीं' (=आ-किंचन्य)को अवलम्बन किये, (सात) परम संज्ञा-विमोक्षोंमें विमुक्त (रहे), वह वहाँ (=आकिंचन्य) अचल हो ठहरेगा न ?" ॥९५॥

(भगवान्)—"जो सब कामोंमें विरागी०, वह वहाँ अचल हो ठहरता है ॥ ९६ ॥"

(उपसीव)—"हे समन्त-चक्षु ! यदि वह वहाँ अचल (=अन-अनुयायी) हो बहुत वर्षोंतक ठहरता है; (तो) क्या वह वहीं मुक्त=शीतल हो ठहरता है, या वहांसे उसका विज्ञान(=जीव) च्युत होता है ? ॥ ९७ ॥

(भगवान्)—"वायुके वेगसे क्षिप्त अर्चि (=लौ) जैसे अस्त होजाती है (और इस दिशामें गई आदि) व्यवहारको प्राप्त नहीं होती । इसी प्रकार मुनि नाम-कायसे मुक्तहो अस्तहो जाता है, व्यवहारको प्राप्त नहीं होता ॥ ९८ ॥"

(उपसीव)—" वह अस्तंगत है, या नहीं है, या वह हमेशाके लिये अरोग है ? हे मुनि ! इसे मुझे अच्छी प्रकार बताओ, क्योंकि आपको यह धर्म विदित है ॥९९॥ "

(भगवान्)—" अस्तंगत (=निर्वाण-प्राप्तके रूप आदि)का प्रमाण नहीं है; जिससे इसे कहा जाये,...। सभी धर्मोंके नष्ट हो जानेपर, कथन-मार्गमें भी सब (धर्म) नष्ट होगये ॥१००॥

नन्द-माणव-पुच्छा ॥७॥

(नन्द)—" लोग ' लोकमें मुनि हैं ' कहते हैं, सो यह कैसे ? उत्पन्न-ज्ञानको मुनि कहते हैं, या (=कठिन तपयुक्त) जीवनसे युक्तको ? ॥१०१॥ "

(भगवान्)—" न दृष्टि (=मत)से, न श्रुतिसे, न ज्ञानसे, नन्द ! कुशल (=पंडित) जन (किसीको) ' मुनि ' कहते हैं; जो विपक्षा मानकर लोभ-रहित, आशा-रहित हो विचरते हैं, उन्हें मैं मुनि कहता हूँ ॥१०२॥ "

(नन्द)—" कोई ? श्रमण ब्राह्मण दृष्ट (=मत) या श्रुत (=विद्या)से शुद्धि कहते हैं; शील और व्रतसे भी शुद्धि कहते हैं, अनेक रूपसे शुद्धि कहते हैं। हे मार्ष ! भगवान् ! वैसा आचरण करते, क्या वह जन्म-जरासे तर गये होते हैं ? भगवान् ! तुम्हें पूछता हूँ, इसे मुझे बतलाओ ॥१०३॥ "

(भगवान्)—" जो कोई श्रमण ब्राह्मण० । 'वह जन्म-जरासे नहीं तरे', कहता हूँ ॥१०४॥ "

(नन्द)—" जो कोई श्रमण ब्राह्मण० अनेक रूपसे शुद्धि कहते हैं। यदि मुनि ! (उन्हें) ओघसे अ-तीर्ण (=न पार हुआ) कहते हैं; तो देव-मनुष्य-लोकमें कौन जन्म-जराको पार हुआ ?—हे मार्ष ! भगवान्, तुम्हें पूछता हूँ, इसे मुझे बतलाओ ।।१०४,१०५।।"

(भगवान्)—" मैं सभी श्रमण ब्राह्मणोंको जन्म-जरासे निवृत्त नहीं कहता । जो कि दृष्ट, श्रुत, स्मृत, शील, व्रत सब छोड़; सभी अनेक रूप छोड़, तृष्णाको त्याग अनास्रव (=राग आदि-रहित) हैं, मैं उन नरोंको ' ओघ-पार ' कहता हूँ ।।१०६।।"

(नन्द)—" हे गौतम ! महर्षिके उपधि-रहित, सुभाषित इन वचनोंका मैं अभिनन्दन करता हूँ; जो कि दृष्ट, श्रुत, स्मृत, शील, व्रत सब छोड़, सभी अनेक रूप छोड़, तृष्णाको त्याग अनास्रव हैं, मैं भी उन्हें ओघ-तीर्ण (=भवसागर-पार) कहता हूँ ।।१०७।।"

हेमक-माणव-पुच्छा ॥८॥

(हेमक)—" पहिलोंने जो मुझे गौतम-उपदेशसे पृथक् बतलाया—' ऐसा था,' ' ऐसा होगा,' वह सब ' ऐसा ऐसा (=इतिह इतिह)' है, वह सब तर्क बढ़ानेवाला है ।।१०८।। हे मुनि ! मेरामन उनमें नहीं रमा, हे मुनि ! तुम तृष्णा-विनाशक धर्म मुझे बतलाओ, जिसको जानकर, स्मरणकर, आचरण कर, लोकमें तृष्णाको पार होऊँ ।।१०९।।"

(भगवान्)—हे हेमक ! यहां दृष्ट, श्रुत, स्मृत और विज्ञातमें छन्द=रागका हटाना (ही) अच्युत निर्वाण पद है ।।११०।। इसे जान, स्मरणकर इसी जन्ममें निर्वाण प्राप्त, उपशांत होते हैं, और लोकमें तृष्णाको पार होगये होते हैं ।।१११।।"

तोदेय्य-माणव-पुच्छा ॥९॥

(तोदेय)—" जिसमें काम नहीं बसते, जिसको तृष्णा नहीं है, वाद-विवादसे जो पार होगया, उसका विमोक्ष, कैसा होता है ? ।।११२।।

(भगवान्)—" जिसमें काम नहीं०, उसका विमोक्ष नहीं ॥११३।।"

(तोदेय)—" यह आश्वासन-सहित है या आश्वासन-रहित ? प्रज्ञावान् है, या प्रज्ञ(वान्)-सा है ? हे मुनि ! शक्र ! समन्त-चक्षु ! जैसे मैं इसे जान सकूँ वैसे बतलावें ।।११४।।"

(भगवान्)—" वह आश्वास-रहित है, आश्वास-सहित नहीं, वह प्रज्ञावान् है, प्रज्ञ-(वान्)सा नहीं । हे तोदेय ! जो काम-भव (=कामना और संसार) में अ-सक्त, ऐसे मुनिको अ-किंचन जानो ॥११५॥"

कप्प-माणव-पुच्छा ॥१०॥

(कप्प)—" बड़ी भयानक बाढ़में सरोवरके बीचमें खड़े, मुझे तुम द्वीप (=शरण-स्थान) बतलाओ, जिसमें यह (संसार-दुःख) फिर न हो ॥११६॥"

(भगवान्)—" हे कप्प ! बड़ी भयानक० । तुझे द्वीप बतलाता हूं ॥११७॥

अ-किंचन=अन्-आदान (=न ग्रहण करना), यह सर्वोत्तम द्वीप है ।
इसे मैं जरा-मृत्यु-विनाश (रूप) निर्वाण कहता हूं ॥११८॥
यह जानकर, स्मरणकर इसी जन्ममें जो निर्वाण-प्राप्त हो गये,
वह मारके वशमें नहीं होते, न वह मारके अनुचर (होते हैं) ॥११९॥"

जतुकण्णि-माणव-पुच्छा ॥११॥

(जतुकण्णि)—" भवसागर-पारंगत, कामना-रहित (तुम्हे) सुनकर मैं अकाम (=निर्वाण) पूछनेको आयाहूं, हे सहज-नेत्र ! मुझे शान्तिपद बतलाओ । हे भगवान् ! ठीकसे इसको मुझे कहो ॥१२०॥ भगवान् कामोंको तिरस्कार कर, सूर्य की तरह तेजसे तेजको (तिरस्कृत कर) तुम पृथिवीपर विहरतेहो । हे महा-प्रज्ञ ! मुझ अल्प-प्रज्ञको धर्म बतलाओ, जिसको मैं जानूं, और यहां जन्म, जरा का विनाश (करूं) ॥१२१॥"

(भगवान्)—"कामोंमें लोभको हटा, नैष्काम्य (=निष्कामता) को क्षेत्र समझ, यह कुछ भी मुझे ग्राह्य या त्याज्य न रहजाये ॥१२२॥ जो पहिले का है, उसे सुखादे, पीछे कुछ मत (पैदा) हो; मध्यमें भी यदि ग्रहण न करे, तो वह उपशांत हो विचरैगा ॥१२३॥ हे ब्राह्मण ! (जो) नाम रूपमें सर्वथा लोभ-रहित है, (उसे) आस्रव (=चित्त-मल) नहीं होते, जिनके कारण कि वह मृत्युके वशमें जाये ॥१२४॥"

भद्दावुध-(=भद्रायुध) माणव-पुच्छा ॥ १२ ॥

(भद्रायुध)—"ओघ-त्यागी, तृष्णा-छेदी, इच्छा-रहित=नन्दी-रहित, ओघ-पारंगत, विमुक्त, कल्प-त्यागी ! (आप) सुमेध (को) याचना करता हूँ; नागसे (उसे) सुनकर (हम) यहांसे जायेंगे ॥१२३॥ हे वीर ! तुम्हारे वचन (के सुनने) की इच्छासे हम नाना जन (नाना) देशोंसे इकट्ठे हुये हैं । उन्हें तुम अच्छी प्रकार व्याख्यान करो, क्योंकि तुम्हें यह धर्म विदित है ।। १२४ ।।

(भगवान्)—"ऊपर, नीचे, तिर्यक्, और मध्यमें सारी संग्रह करनेकी तृष्णाको छोड़ दो। लोकमें जो संग्रह करना है, उसीसे मार जंतुओंका पीछा करता है॥ १२५॥ संग्रह करने-वालोंको 'मृत्युके हाथमें फँसी प्रजा' समझ, सारे लोकमें कुछ भी संग्रह न करै॥ १२६॥"

उदय-माणव-पुच्छा॥ १३॥

(उदय)—"ध्यानी, विरज (=विमल), कृत-कृत्य, अनास्रव, सर्व-धर्म-पारंगत, (आप)के पास प्रश्नलेकर आया हूँ, प्रज्ञासे अविद्याको विनाश करनेवाले! प्रज्ञा-विमोक्षको बतलाओ?॥ १२७॥"

(भगवान्)—"कामोंमें छन्द(=राग) और दौर्मनस्यका, प्रहाण (=विनाश) स्त्यान (=चित्त-आलस्य)का हटाना, कौकृत्यका निवारण, उपेक्षा-स्मृति परिशुद्ध, तर्कपूर्वक धर्मको ०आज्ञा-विमोक्ष कहता हूँ॥ १२८,१२९॥"

(उदय)—"लोकमें संयोजन (=बंधन) क्या है, उसकी विचारणा क्या है? कौनसे (धर्म)के प्रहाणसे निर्वाण है?॥ १३०॥"

(भगवान्)—"लोकमें तृष्णा संयोजन है, वितर्क उसकी विचारणा है। तृष्णाका विनाश 'निर्वाण' कहा जाता है॥ १३१॥"

(उदय)—"कैसे (क्या) स्मरणकर विचरते विज्ञान निरुद्ध होता है, यह भगवान्‌को 'पूछने आये हैं, सो (हम) आपके वचनको सुनें॥ १३१॥'

(भगवान्)—"भीतर और बाहरकी वेदनाओंको न अभिनन्दनकर, ऐसा स्मरणकर विचरते इस मुमुक्षुका विज्ञान निरुद्ध होता है॥ १३२॥"

पोसाल-माणव-पुच्छा॥ १४॥

(पोसाल)—"जो अतीतको कहता है, (जो) अचल, संशय-रहित सर्व-धर्म पारंगत है, (उसके पास) प्रश्न लेकर मैं आया हूँ। रूप-संज्ञा-विगतहुये, सर्व कामोंको छोड़नेवाले, 'भीतर और बाहर कुछ नहीं' ऐसा देखनेवाले ज्ञानको, हे शक! पूछता हूँ। उस प्रकारका (पुरुष) कैसे लेजाने लायक (=नेय) है॥ १३२, १३३॥"

(भगवान्)—"सारी विज्ञान-स्थितियोंको जानते हुये, ठहरे हुये, विमुक्त, तथागत, इसे तम-परायण जानते हैं। 'अ-किंचन्य-जनकका उत्पादक (अरूपराग) नन्दि-संयोजन है'—ऐसा इसे जानकर तब वहाँ देखता है। उस चिर-अभ्यास-शील ब्राह्मणका यह ज्ञान तथ्य (=सत्य) है॥ १३३, १३४॥"

मोघराज-माणव-पुच्छा॥ १५॥

(मोघराज)—"मैंने दो वार शक्को प्रश्न पूछे, परन्तु चक्षु-मान्‌ने मुझे व्याख्यान नहीं किया। मैंने सुना है, देव-ऋषि (=बुद्ध) तीनही वारतक व्याकरण (=उत्तर) करते हैं॥ १३५॥ यह लोक, परलोक, देवों सहित ब्रह्मलोक, तुम यशस्वी गौतमकी दृष्टि (=मत) नहीं जान सकता॥ १३६॥ ऐसे अग्रदर्शीके पास प्रश्नके साथ आया हूँ, कैसे लोकको देखने वालेको मृत्यु-राज नहीं देखता॥ १३७॥

(भगवान्)—" मोघराज ! सदा स्मृति रखते, लोकको शून्य समझकर देखो । इस प्रकार आत्माकी दृष्टिको छोड़(ने वाला) मृत्युसे तर जाता है । लोकको ऐसे देखते हुयेकी ओर मृत्यु-राज नहीं ताकता ।। १३८ ।। "

पिंगिय-माणव-पुच्छा ॥ १६ ॥

(पिंगिय)—"मैं जीर्ण, अ-बल, विरूप हूँ । (मेरे) नेत्र शुद्ध नहीं, श्रोत्र ठीक नहीं । मैं मोहमें पड़ा बीचमें ही न नाश होजाऊँ (इस लिये) धर्मको बतलाओ, जिससे मैं यहाँ जन्म-जराके विनाशको जानूं ॥ १३९ ।। "

(भगवान्)—"रूपोंमें (प्राणियोंको) मारे जाते देख, प्रमत्तजन पीड़ित होते हैं । इसलिये पिंगिय ! तू संसारमें न जन्मनेके लिये रूपको छोड़ ।। १४० ।। "

(पिंगिय)—"चार दिशायें; तुम्हें अदृष्ट, अश्रुत, या अस्मृत नहीं, और लोकमें कुछ भी तुम्हें अविज्ञात नहीं है । धर्मको बतलाओ, जिससे मैं···जन्म-जराके विनाशको जानूं ।। १४१ ।।"

(भगवान्)—"तृष्णा-लिप्त मनुजोंको संतप्त, जरा-पीडित, देखते हुये, हे पिंगिय ! तू अ-प्रमत्तहो अ-पुनर्भवके लिये तृष्णाको छोड़ ।। १४२ ।।"

मगधमें पाषाणक चैत्यमें विहार करते भगवान्ने यह कहा···। यह पार लेजानेवाले (=पारंगमनीय) धर्म है, इस लिये इस धर्म-पर्यायका नाम 'पारायण' है ।

\+　　　+　　　+　　　+

(९)

सुनक-सुत्त । दोण-सुत्त । सहस्सभिक्खुनी-सुत्त । सुन्दरिका-भारद्वाज-सुत्त । अत्तदीप-सुत्त । उदान-सुत्त । मल्लिका-सुत्त । (वि. पू. ४४५–४३) ।

[1]ऐसा मैंने [2]सुना—एक समय भगवान् श्रावस्तीमें अनाथ-पिंडकके आराम जेतवनमें विहार करते थे।···

" भिक्षुओ ! यह पांच पुराण ब्राह्मण-धर्म इस समय कुत्तोंमें दिखाई देते हैं। कौनसे पांच ? पहिले भिक्षुओ ! ब्राह्मण ब्राह्मणीके पास जाते थे, अ-ब्राह्मणीके पास नहीं। भिक्षुओ ! इस समय ब्राह्मण ब्राह्मणीके पास भी जाते हैं; अ-ब्राह्मणीके पास भी। (किंतु) भिक्षुओ ! कुत्ते कुत्तियोंके ही पास जाते हैं, अ-कुत्तियोंके पास नहीं। यह भिक्षुओ ! प्रथम पुराण ब्राह्मण-धर्म है, जो इस समय कुत्तोंमें दिखाई देता है।

" पहिले भिक्षुओ ! ब्राह्मण ऋतुमती ब्राह्मणीके पासही जाते थे, अ-ऋतु-मतीके पास नहीं। आजकल···अ-ऋतुमतीके पास भी····।०।

" पहिले भिक्षुओ ! ब्राह्मण ब्राह्मणीको न खरीदते थे, न वेंचते थे, परस्पर प्रेमके साथ ही सहवास···करते थे। आजकल···ब्राह्मण, ब्राह्मणीको खरीदते भी हैं, वेंचते भी हैं, परस्पर प्रेमके साथ भी···अ-प्रेमके साथ भी···।०।

" पहिले···ब्राह्मण, सन्निधि—धनका, धान्यका, चांदी—सोने(=रजत-जातरूप)का संग्रह नहीं करते थे। इस समय ···संग्रह करते हैं।०।

"पहिले भिक्षुओ ! ब्राह्मण सायंकालके भोजनके लिये सायं, प्रातःकालके भोजनके लिये प्रातः, खोज करते थे। इस समय भिक्षुओ ! ब्राह्मण इच्छाभर, पेटभर खा, बाकी (घर) ले जाते हैं। इस समय भिक्षुओ ! कुत्ते संध्याको संध्याके भोजनके लिये०। यह भिक्षुओ ! पांचवा पुराण ब्राह्मण-धर्म इस समय कुत्तोंमें दिखाई देता है, ब्राह्मणोंमें नहीं। भिक्षुओ ! यह पांच पुराण ब्राह्मण-धर्म इस समय कुत्तोंमें दिखाई देते हैं।

दोण-सुत्त ।

ऐसा [3]मैंने सुना—एक समय भगवान् श्रावस्तीमें···जेतवनमें विहार करते थे।

तब द्रोण ब्राह्मण जहां भगवान् थे, वहां गया। जाकर भगवान्‌के साथ···(कुशल-प्रश्नकर)···एक ओर बैठकर, भगवान्‌को बोला—

"हे गौतम ! मैंने सुना है—श्रमण गौतम जीर्ण=वृद्ध=महल्लक=अध्वगत=वयः-प्राप्त ब्रह्मणोंको न अभिवादन करता, न प्रत्युत्थान करता, न आसनसे निमंत्रित करता है। सो हे गौतम ! क्या (यह) ठीक है ? आप गौतम ०ब्राह्मणोंको अभिवादन नहीं करते० ?। सो हे गौतम ! यह ठीक नहीं है।'

१. सत्ताईसवां वर्षावास श्रावस्ती (जेतवन)में। २. अ. नि. ९:४:४१। ३. अ. नि. ९:४:९:२।

"तू भी द्रोण ! ब्राह्मण होनेका दावा करता है ?"

"हे गौतम !···ब्राह्मण (वह है जो) दोनों ओरसे सुजात—मातासे भी विशुद्ध[1] ····, पितामह-मातामहकी सात पीढ़ियों तक जातिसे अ-पतित, अनिन्दित हो। अध्यायी, मंत्र (=वेद)-धर०[1] तीनों वेदोंका पारंगत०। सो वह ठीक बोलते हुये, मुझे ही (ब्राह्मण) बोलेगा। हे गौतम ! मैं ब्राह्मण हूं, दोनों ओरसे सुजात०[२]।"

"द्रोण ! जो तेरे पूर्वके ऋषि, मंत्रोंके कर्ता, मंत्रोंके प्रवक्ता (थे), जिनके पुराने मंत्रपदको इस समय ब्राह्मण गीतके अनुसार गान करते हैं, प्रोक्तके अनुसार प्रवचन करते हैं··· भाषितके अनुसार भाषण करते हैं; स्वाध्यायितके अनुसार स्वाध्याय करते हैं, वाचितके अनुसार वाचन करते हैं; जैसे कि—अट्टक, वामक, वामदेव, विश्वामित्र, यमदग्नि, अंगिरा, भरद्वाज, वशिष्ट, कश्यप, भृगु, उन्होंने पांच तरहके ब्राह्मण बतलाये हैं—(१) ब्रह्म-सम, (२) देव-सम (३) मर्याद, (४) संभिन्न-मर्याद, (५) पांचवां ब्राह्मण-चाण्डाल। उनमें द्रोण ! तू कौन ब्राह्मण है ?"

"हे गौतम ! हम इन पांच ब्राह्मणोंको नहीं जानते; तब 'हम ब्राह्मण हैं' यह जानते हैं। अच्छा हो ! आप गौतम मुझे ऐसा धर्म-उपदेश करें, जिसमें मैं इन पांच ब्राह्मणोंको जानूं।"

"तो ब्राह्मण ! सुनो, और अच्छी तरह धारण करो; कहता हूं।"

"अच्छा भो !"···

···"कैसे द्रोण ! ब्राह्मण ब्रह्म-सम होता है। यहां द्रोण ब्राह्मण दोनों ओरसे सुजात होता है[1]० जातिवादसे० अनिंदित। वह अड़तालीस (वर्ष) तक मंत्रोंको पढ़ते कौमार-ब्रह्मचर्य धारण करता है। अड़तालीस वर्ष तक कौमार ब्रह्मचर्य धारणकर मंत्रोंको पढ़कर आचार्यके लिये आचार्य-धन खोजता है, धर्मसे ही, अधर्मसे नहीं। द्रोण ! धर्म क्या है ? कृषिसे नहीं, वाणिज्यसे नहीं, गोरक्षासे नहीं, इषु-अस्त्रसे नहीं, राज-पुरुषता (=सर्कारी नौकरी)से नहीं, किसी एक शिल्पसे नहीं; कपालको न अधिक मानते हुये केवल भिक्षाचर्यासे। वह आचार्यको आचार्य-धन (=गुरुदक्षिणा) देकर, केश-श्मश्रु मुंड़ा, काषाय-वस्त्र धारणकर, घरसे बेघर हो प्रव्रजित होता है। वह इस प्रकार प्रव्रजित हो (१) मैत्री-युक्त चित्तसे एक दिशाको आप्लावितकर विचरता है, तथा दूसरी[२]०, तीसरी०, चौथी०। इसी प्रकार ऊपर, नीचे, तिर्यग्, सब बुद्धिसे सर्वार्थ, सभी लोकको मैत्री-युक्त विपुल=महद्गत=अ-प्रमाण, अवैर, अ-लोभी चित्तसे प्लावितकर, विहरता है। (२) करुणा-युक्त चित्तसे एक दिशा०। (३) मुदिता-युक्त चित्तसे० (४) उपेक्षा-युक्त चित्तसे० अलोभी चित्तसे० विहरता है। वह इन चार ब्रह्म-विहारोंकी भावनाकर, काया छोड़, मरनेके बाद सुगति ब्रह्मलोकमें उत्पन्न होता है। इस प्रकार द्रोण ! ब्राह्मण ब्रह्म-सम होता है।

"और द्रोण ! कैसे ब्राह्मण देव-सम होता है।····द्रोण ! ब्राह्मण दोनों ओरसे सुजात होता है०[1]। वह अड़तालीस वर्ष कौमार-ब्रह्मचर्य पालन करता है। अड़तालीस वर्ष ब्रह्मचर्य पालनकर मंत्रोंको पढ़०, आचार्य-धन खोजता है०। आचार्यको आचार्य-धन देकर,

---

१. देखो पृष्ठ २२३। २. पृष्ठ २०८।

भी भार्या (=दारा) खोजता है, धर्मसे अधर्मसे नहीं । द्रोण ! क्या धर्म है ? न क्रयसे न विक्रयसे, (केवल) जलसहित दत्त ब्राह्मणी ही को खोजता है । वह ब्राह्मणीहीके पास जाता है, न क्षत्रियाणीके पास, न वैश्यानीके पास, न शूद्राणीके पास, न चांडालिनीके पास, न निषादिनीके पास, न वेणवीके पास, न रथ-कारिणीके पास, न पुक्कसीके पास जाता है । न गर्भिणीके पास०, न (दूध) पिलानेवाली०, न अनृ-ऋतुमती० । द्रोण ! ब्राह्मण गर्भिणीके पास क्यों नहीं जाता ? पिलानेवालीके पास क्यों नहीं जाता ? यदि द्रोण ! ब्राह्मण गर्भिणीके पास जाये तो (पैदा होनेवाला) माणवक, या माणविका, अति-मेहज (=अति शुक्रसे उत्पन्न, होता है । इसलिये द्रोण ! ब्राह्मण गर्भिणीके पास नहीं जाता । द्रोण ! ब्राह्मण पिलानेवालीके पास क्यों नहीं जाता ? यदि द्रोण ! ब्राह्मण० जाये, तो माणवक या माणविका अशुचि-प्रति-पीत नामक होता है० । ०अनृ-ऋतुमतीके पास क्यों नहीं जाता ? ब्राह्मण ऋतुमतीके पास जाता, तो वह ब्राह्मणी उसके लिये न कामार्थ, न दव-अर्थ (=मद-अर्थ), न रति-अर्थ, बल्कि प्रजार्थ ही···होती है । वह मिथुन (=पुत्र या पुत्री) उत्पन्न कर, केश-श्मश्रु मुंडा० प्रव्रजित होता है । वह इस प्रकार प्रव्रजित हो[1]० प्रथमध्यान०, ०द्वितीय ध्यान०, ०तृतीय ध्यान०, चतुर्थ ध्यानको प्राप्तहो विहरता है । वह इन चारों ध्यानोंको भावना करके, शरीर छोड़, मरनेके बाद, सुगति स्वर्गलोकमें उत्पन्न होता है । इस प्रकार द्रोण ! ब्राह्मण देव-सम होता है ।

"कैसे द्रोण ! ब्राह्मण मर्याद होता है ? द्रोण !···ब्राह्मण दोनों ओरसे सुजात होता है० । वह० अड़तालीस वर्ष कौमार-ब्रह्मचर्य पालनकर, मंत्रोंको पढ़०, आचार्यको आचार्य-धन देकर, भार्या खोजता है, धर्मसे ही अधर्मसे नहीं । ०ब्राह्मणीके पासही जाता है० । वह मिथुन उत्पन्नकर, उसी पुत्र-आनन्दकी इच्छासे कुटुम्बमें बस रहता है, ०प्रव्रजित नहीं होता । जितनी पुराने ब्राह्मणोंकी मर्यादा है, वहांही ठहरा रहता है, (उसका) अतिक्रमण नहीं करता,····इसी लिये···(वह) ब्राह्मण मर्याद कहा जाता है ।

"कैसे द्रोण ! ब्राह्मण संभिन्न-मर्याद होता है ? ०ब्राह्मण दोनों ओरसे सुजात होता है०। ०अड़तालीस वर्ष कौमार-ब्रह्मचर्य पालन करता है० । ०आचार्य-धन देकर भार्या खोजता है० । धर्मसे भी अधर्मसे भी, क्रयसे भी विक्रयसे भी । वह ब्राह्मणीके पास भी जाता है०, क्षत्रियाणीके पास भी जाता है । अनृ-ऋतुमतीके पास भी जाता है । उसकी ब्राह्मणी कामार्थ भी होती है, क्रीडार्थ (=दवार्थ) भी० । पुराने ब्राह्मणोंकी जितनी मर्यादा है, वह उनमें···नहीं ठहरता; उसको अतिक्रमण करता है;··· इसलिये (वह) ब्राह्मण संभिन्न-मर्याद कहा जाता है० ।

"कैसे द्रोण ! ब्राह्मण ब्राह्मण-चांडाल होता है ? यहां द्रोण ! ब्राह्मण दोनों ओरसे सुजात होता है० । ०अड़तालीस वर्ष कौमार-ब्रह्मचर्य पालन करता है० । ० आचार्य-धन खोजता है, धर्मसे भी अधर्मसे भी, कृषिसे भी, वाणिज्यसे भी०, किसी एक शिल्पसे भी, केवल भिक्षासे भी···।···आचार्य-धन देकर, भार्या खोजता है, धर्मसे भी अधर्मसे भी० । वह ब्राह्मणीके पास

१. पृष्ठ २७१ ।

भी जाता है० । अनृ-ऋतुमती के पास भी० । उसकी ब्राह्मणी कामार्थ भी होती है०। वह सब कामोंसे जीविका करता है । उसको जब ब्राह्मण ऐसा पूछते हैं—'आप ब्राह्मण होनेका दावा करते, सब कामोंसे जीविका क्यों करते हैं' ? वह ऐसा उत्तर देता है—'जैसे आग शुचि को भी जलाती है, अशुचिको भी जलाती है, और आग उससे लिप्त नहीं होती । ऐसेही भो ! ब्राह्मण सब कामोंसे जीविका करता है, और उससे लिप्त नहीं होता' । द्रोण ! चूंकि सब कामोंसे जीविका करता है, इसलिये···(वह)ब्राह्मण ब्राह्मण-चांडाल कहा जाता है । इसप्रकार द्रोण ! ब्राह्मण ब्राह्मण-चांडाल होता है । द्रोण ! ··· ब्राह्मणोंके पूर्वज ऋषि० अट्टक० भृगु, यह पांच ब्राह्मण वर्णन करते हैं—ब्रह्म-सम० पाचवां ब्राह्मण-चांडाल । उनमें द्रोण ! तू कौन है ? "

" ऐसा होनेपर हे गौतम ! हम ब्राह्मण-चांडाल भी न उतरेंगे । आश्चर्य ! हे गौतम !! आजसे आप गौतम मुझे अंजलिबद्ध शरणागत उपासक स्वीकार करें ।

सहस्स-भिक्खुनी-सुत्त ।

[1]ऐसा मैंने सुना—एक समय भगवान् श्रावस्तीमें [2]राजकाराममें विहार करते थे ।

---

[1]स. नि. ५४ : २ : २ ।

[2]अ. क. " राजकाराम=राजाका बनवाया आराम । किस राजाका ? प्रसेनजित् कोसलका । प्रथम-बोधि (बुद्धत्व से २० वर्ष तक)में शास्ताको उत्तम लाभ-यश प्राप्त देख तैर्थिकोंने सोचा—' श्रमण गौतम उत्तम लाभ-यश-प्राप्त है, वह किसी दूसरे शील, समाधिके कारण उसे ऐसा लाभ-अग्र-प्राप्त नहीं है। उसने भूमिका सीस पकड़ा है । यदि हमभी जेत-वनके पास आराम बनवा सकें, तो लाभ-यश-अग्र-प्राप्त होंगे ।

वह अपने अपने सेवकोंको प्रेरणाकर, सौहज़ार मात्र कार्षापण प्राप्तकर, उन्हें ले राजाके पास गये । राजाने पूछा—" यह क्या है ? " " हम जेत-वनके पासमें तैर्थिकाराम बनाते हैं, यदि श्रमण गौतम या श्रमण गौतमके शिष्य आकर निवारण करें, तो मत निवारण करने दें "—(कह) घूस (=लंचा) दिया । राजाने रिश्वतले—" जाओ बनाओ " कहा । उन्होंने जाकर अपने सेवकोंसे सामान ले खम्भा खड़ा करना आदि करते समय, ऊँचे शब्द से एक कोलाहल किया ।

शास्ता (=बुद्ध)ने गन्धकुटीसे निकलकर, प्रमुख(=देहली) पर खड़े हो, पूछा—" आनन्द यह कौन ऊँचाशब्द=महाशब्द (=कररहे) हैं, जैसेकि केवट मछली मार रहे हैं ।"

" भन्ते ! तैर्थिक जेतवनके समीपमें तैर्थिकाराम बना रहे हैं ।"

" आनन्द ! यह शासनके विरोधी, भिक्षुसंघके प्रतिकूल विहारसे विहरेंगे । राजाको कहकर रुकवाओ । '

स्थविर भिक्षु-संघके साथ जाकर राज-द्वारपर खड़े हुये । (लोगोंने) राजाको जाकर कहा—" देव ! स्थविर आये हैं । " राजा रिश्वत लेनेके कारण बाहर न निकला । स्थविरने

तब एक हजार भिक्षुणियोंका संघ, जहां भगवान् थे, वहां···आकर, भगवान्‌को अभिवादनकर एक ओर खड़ा हुआ। एक ओर खड़ी भिक्षुणियोंको भगवान्‌ने यह कहा—

" भिक्षुणियों ! चार धर्मोंसे युक्त हो आर्य-श्रावक स्रोत-आपन्न=न गिरने लायक स्थिर संबोधिकी ओर जाने वाला—होता है। किन चारसे ?···आर्य श्रावक बुद्धमें अत्यन्त प्रसन्न हो—ऐसे वह भगवान् अर्हत् सम्यक् संबुद्ध०। धर्ममें०। संघमें०। अखंड० कमनीय आर्यशीलोंसे युक्त हो···। भिक्षुणियो ! इन चार धर्मोंसे युक्त हो आर्य-श्रावक स्रोत-आपन्न० होता है।

सुन्दरिका भारद्वाज-सुत्त ।

[2]ऐसा मैंने सुना—एक समय भगवान् कोसलमें सुन्दरिका नदीके तीर विहार करते थे।

उस समय सुन्दरिक भारद्वाज ब्राह्मण सुन्दरिका नदीके तीर अग्निहवन करता था=अग्नि-परिचरण करता था। तब सुन्दरिक भारद्वाज ब्राह्मणने अग्निमें हवनकर अग्निहोत्र-परिचरण कर आसनसे उठकर···चारों दिशाओंकी ओर देखा—'कौन इस हव्य-शेषको भोजन करे'। सुन्दरिक भारद्वाज ब्राह्मणने एक वृक्षके नीचे शिर ढांककर बैठे हुये भगवान्‌को देखा। देखकर बायें हाथसे हव्य-शेष, और दाहिने हाथसे कमंडल ले जहां भगवान् थे, वहां गया। तब भगवान्‌ने सुन्दरिक भारद्वाज०के पद-शब्दसे शिर उघाड़ दिया। तब सुन्दरिक भारद्वाजने—'यह मुंडक है ! यह···मुंडक है !!'-(कह) फिर वहां से लौटना चाहा। तब सुन्दरिक भारद्वाज० को हुआ—'मुंडक भी कोई कोई ···ब्राह्मण होते हैं, क्यों न मैं इसके पास जा जाति पूछूँ'। तब सुन्दरिक भारद्वाज···पास जाकर भगवान्‌को यह बोला—

(भारद्वाज)—"आप कौन जाति हैं ?"

जाकर शास्ताको कह सुनाया। शास्ताने सारिपुत्र, मौद्गल्यायनको भेजा। राजाने उन्हें भी दर्शन न दिया।

···दूसरे दिन (भगवान्) स्वयं भिक्षु-संघके साथ जा राज-द्वारपर खड़े हुये। राजाने 'शास्ता आये हैं' सुन, निकलकर घरमें ले जा आसनपर बैठा, यवागू-खाद्य (=जाउर, तस्मई) दिया। शास्ताने···भोजनकर,···आकर बैठे राजाको, 'तूने महाराज ! ऐसा किया' न कहकर ···अतीत (-घटना)···कही···

" मैंने सुना है, ऋषियोंमें फूट डालकर, वह वैभवशाली कुरु राजा राज्यके साथ उच्छिन्न हो गया।'

इस प्रकार इस अतीत (कथा)को दर्शानेपर,···राजाने अपने कामको समझ··· (आज्ञा दी)—'जाओ भणे ! तैर्थिकोंको निकाल दो।' निकालकर सोचा—'मेरा बनवाया (कोई) विहार नहीं है, उसी स्थानपर विहार बनवाऊँ।' (और) उनके सामानको भी न लौटा, विहार बनवाया।···"

१. देखो पृष्ठ २९३। २. सं. नि. ७: १: ९। (कुछ अन्तरसे सु. निपात ३: ४)

(भगवान्)—"जाति मत पूछ, चरण (=आचरण) पूछ । काष्ठसे आग पैदा होती है । नीच कुलका भी (पुरुष) धृति-मान् जानकार, पाप रहित मुनि होता है ।।१।। (जो) सत्यसे दान्त (=जितेन्द्रिय)=दमन-युक्त, वेद (=ज्ञान)के अन्तको पहुँचा (वेदन्तगु), ब्रह्मचर्यसमाप्त-किया है । उसे यज्ञमें प्राप्त (=यज्ञ-उपनीत) कहो, वह कालसे दक्षिणेय (=दक्षिणाग्नि, दान-पात्र)में होम करता है ।।२।।"

(भारद्वाज)—"निश्चय, यह मेरा (यज्ञ) सु-इष्ट=सु-हुत है, जो ऐसे वेद-पारग (=वेदगू)को मैंने देखा । तुम्हारे ऐसेको न देखनेसे, दूसरे जन हव्य-शेष खाते हैं । हे गौतम ! आप भोजन करें, आप ब्राह्मण हैं ।।३।।"

(भगवान्)—"मैंने इस (भोजन) के विषयमें गाथा कही है, अतः (यह) मेरे लिये अ-भोजनीय है, (ऐसा) जानते हुये ब्राह्मण ! इसे (खाना) धर्म नहीं है; गाथासे गायेको बुद्ध लोग त्यागते हैं । "

(भारद्वाज)—" क्षीणास्रव (=मुक्त), विगत-संदेह महर्षिकी अन्नसे पानसे सेवा करो । क्षेत्रमें रखनेसे पुण्याकांक्षीको (पुण्य), होता है ।।५।।
तो हे गौतम ! इस हव्य-शेषको मैं किसे दूँ ?"

(भगवान्)—"ब्राह्मण ! मैं··· (किसीको) नहीं देखता, जो इस हव्य-शेषको खा ठीकसे पचा सके ;···सिवाय तथागत या तथागत-श्रावकके । तो ब्राह्मण ! इस हव्य-शेपको तृण-रहित स्थानपर छोड़ दे, या प्राणी-रहित पानीमें डाल दे । "

तब सुन्दरिक भारद्वाज ··ने उस हव्य-शेषको प्राणी-रहित पानीमें डाल दिया । तब पानीमें फेंका वह हव्य-शेष, चिट्-चिटाता था···; जैसे कि दिनमें तपा लोहा, पानीमें डालनेसे चिट्-चिटाता है···, धुआं देता है···। तब सुन्दरिक भारद्वाज···, संवेगको प्राप्त हो, रोमांचित हो, जहां भगवान् थे, वहां गया । जाकर एक ओर खड़ा हुआ । एक ओर खड़े सुन्दरिक भारद्वाज···को भगवान्ने गाथामें कहा—

"ब्राह्मण ! लकड़ी जलाकर शुद्धि मत मानो, यह बाहरी (चीज) है । कुशल (=पंडित) लोग उससे शुद्धि नहीं बतलाते, जो कि बाहरसे (भीतरकी) शुद्धि है ।।६।। ब्राह्मण मैं दारु-दाह छोड़, भीतर ही जोति जलाता हूं । नित्य आगवाला, नित्य एकांत-चित्त-वाला हो, मैं ब्रह्मचर्य पालन करता हूं ।।७।। ब्राह्मण ! (यह) तेरा अभिमान खरियाका भार (=खारि-भार) है, क्रोध धुआं है, मिथ्या-भाषण भस्म है, जिह्वा स्रुवा है, और हृदय जोतिका स्थान है । आत्माके दमन करनेपर पुरुषको जोति (प्राप्त)होती है ।।८।। ब्राह्मण ! शील-तीर्थ (=घाट) वाला, संतजनोंसे प्रशंसित निर्मल धर्म-ह्रद (=सरोवर) है···। जिसमें कि वेदगू नहाकर विना भीगे गात्रके पार उतरते हैं ।।९।। ब्रह्म (=श्रेष्ठ) प्राप्ति सत्य, धर्म, संयम, ब्रह्मचर्यपर आश्रित है । सो तू (ऐसे) हवन समाप्त कियों (मुक्तों)को नमस्कारकर, उनको मैं दम्य-सारथी (=चाबुक-सवार) कहता हूं ।।१०।।

ऐसा कहनेपर सुन्दरिक भारद्वाज···ने भगवान्‌को यह कहा—"आश्चर्य ! हे गौतम !! अद्भुत ! हे गौतम !! ०[1]आयुष्मान् भारद्वाज अर्हतोंमें एक हुये ।

अत्तदीप-सुत्त ।

[2]ऐसा मैंने सुना—[3]एक समय भगवान् श्रावस्तीमें···जेतवनमें विहार करते थे ।···

"भिक्षुओ ! आत्म-द्वीप=आत्म-शरण (=स्वावलंबी) धर्म-द्वीप=धर्म-शरण, अन्-अन्य-शरणहो विहार करो । आत्म-द्वीप० अनन्य-शरण हो विहरनेवालोंको कारणके साथ परीक्षा करना चाहिये—'शोक=परिदेव, दुःख=उपायास किस जातिके हैं; किससे उत्पन्न होते हैं ?···।···भिक्षुओ ! आर्योंका अ-दर्शी, आर्य धर्ममें अ-पंडित, आर्य धर्ममें अ-प्रविष्ट= =सत्पुरुषोंका अदर्शी, सत्पुरुष धर्ममें अ-कोविद, सत्पुरुष-धर्ममें अ-प्रविष्ट (=अविनीत) =अशिक्षित, पृथग्जन रूपको आत्माके तौरपर, या रूपवान्‌को आत्मा; या आत्मामें रूप, या रूपमें आत्माको देखता है । उसका वह रूप विकृत होता है, बिगड़ता है । उसका वह रूप विपरिणत =अन्यथा होता है ।···। (तब) उसे शोक, परिदेव० उत्पन्न होते हैं । वेदनाको आत्माके तौरपर० । संज्ञाको० । संस्कारको० । विज्ञानको० । भिक्षुओ ! रूपकी ही तो अनित्यता=विपरिणाम, विराग, निरोधको जानकर, 'पूर्वके और इस समयके सभी रूप अनित्य, दुःख, विपरिणाम-धर्म (=बिगड़नेवाले) हैं' इसप्रकार इसे ठीकठीक अच्छी तरह जानकर देखते हुये जो शोक परिदेव० हैं, वह प्रहीण होजाते हैं । उनके प्रहाण (=विनाश) से त्रासको नहीं प्राप्त होता । अ-परित्रस्त हो वह सुखसे विहरता है । सुख-विहारी भिक्षु इस कारणसे निर्वृत (=मुक्त) कहा जाता है । भिक्षुओ ! वेदनाकीही तो अनित्यता० । ०संज्ञाकी० संस्कारोंकी० । ०विज्ञानकी० ।"

उदान-सुत्त ।

[4]ऐसा मैंने सुना—एक समय भगवान् श्रावस्तीमें······जेतवनमें विहार करते थे । वहां भगवान्‌ने [5]उदान कहा—

"न होता, तो मुझे न होता, न होगा तो मुझे न होगा—इससे मुक्त हो भिक्षु अवरभागीय संयोजनोंका छेदन करता है।' ऐसा कहनेपर एक भिक्षुने भगवान्‌को यह कहा—

"कैसे भन्ते ! 'न होता तो मुझे न होता, न होगा तो मुझे न होगा०' ?"

"यहां भिक्षुओ ! ०[6]अशिक्षित पृथग्जन रूपको आत्माके तौरपर ० ।

---

१. देखो पृष्ठ ३५४ ।

२. अट्ठाईसवां वर्षावास भगवान्‌ने श्रावस्ती (=पूर्वाराम)में बिताया, तीसवां (जेतवनमें) ३. सं. नि. २१ : ५ : १ ।

४. स. नि. २१ : १ : ३ ।

५. आनन्दोल्लासमें निकली वाक्यावली ।

६. देखो ऊपर ।

वेदनाको ० । संज्ञाको ० । संस्कारको ० । विज्ञानको ० । आत्माके तौरपर, या विज्ञानवान् को आत्मा, या आत्मामें विज्ञान, या विज्ञानमें आत्माको देखता है। वह 'रूप अनित्य है' इसे यथार्थसे नहीं जानता। 'वेदना अनित्य है,' इसे यथार्थसे नहीं जानता। संज्ञा अनित्य ०। 'संस्कार अनित्य ०'। 'विज्ञान अनित्य ०'। 'रूप दुःख है, रूप दुःख है' इसे यथार्थसे नहीं जानता। वेदना ०। संज्ञा ०। संस्कार ०। विज्ञान ०। 'रूप अनात्म (=आत्मा नहीं) है, रूप अनात्म है' इसे यथार्थसे नहीं जानता। वेदना ०। संज्ञा ०। संस्कार ०। 'विज्ञान अनात्म है, विज्ञान अनात्म है' इसे यथार्थसे नहीं जानता। 'रूप संस्कृत (=कृत, बनावटी) है, रूप संस्कृत है' इसे यथार्थसे नहीं जानता। वेदना ०। संज्ञा०। संस्कार०। विज्ञान०। 'रूप नाशहो जायेगा, रूप नाशहो जायेगा' इसे यथार्थसे नहीं जानता। वेदना ०। संज्ञा ०। संस्कार ०। विज्ञान ०। भिक्षु! श्रुतवान् आर्य-श्रावक रूपको आत्माके तौरपर ० नहीं देखता। न वेदनाको ०। न संज्ञाको ०। न संस्कारको ०। न विज्ञानको ०। वह 'रूप अनित्य है, रूप अनित्य है', इसे यथार्थसे जानता है ०। 'रूप दुःख है ०' ० जानता है। ०। 'रूप अनात्म है ०' ० जानता है। ०। 'रूप संस्कृत है ०'। ०। 'रूप नाशहो जायेगा०। ०। वह रूपके नाशसे, वेदनाके नाशसे, संज्ञाके नाशसे संस्कारके नाशसे 'न होता तो मुझे न होता, न होगा तो मुझे न होगा' इससे मुक्तहो, भिक्षु अवर-भागीय (=ओरंभागिय) संयोजनोंको छेदन करता है।'

"भन्ते! इस प्रकार मुक्त भिक्षु अवर भागीय संयोजनोंको छेदन करता है। लेकिन भन्ते! कैसे जानने=कैसे देखनेपर आस्रवों (=चित्त मलों) का क्षय होता है?"

"यहाँ भिक्षु! अशिक्षित पृथग्जन अ-त्रासके स्थानमें त्रास (=भय) खाता है। अशिक्षित पृथग्जनको यह त्रास होता है—'न होता तो मुझे न होता; न होगा, तो मुझे न होगा।' "शिक्षित आर्य-श्रावक अत्रासके स्थानमें त्रास नहीं खाता। शिक्षित आर्य-श्रावक को यह त्रास नहीं होता—'न होता तो मुझे न होता; न होगा, तो मुझे न होगा।' भिक्षु! रूपसे युक्त (=उपगत), रूपके आलम्बसे, रूपपर प्रतिष्ठित=ठहरते हुए, विज्ञान ठहरता है। तृष्णाको उपसेचन (=तर्करी) पा, वृद्धि=विरूढ़ि=विपुलताको प्राप्त होता है। भिक्षु! वेदनासे उपगत० वेदनापर प्रतिष्ठित हो, विज्ञान (=चेतना, जीव)० ठहरता है, तृष्णा (=नन्दी) को उपसेचन पा०। ०संज्ञा०। ०संस्कार। भिक्षु! वह ऐसा कहे—'मैं, रूपसे अलग, वेदनासे अलग, संज्ञासे अलग, संस्कारसे अलग, विज्ञानके गमन-आगमन, च्युति (=मरण)-उत्पाद (=जन्म), वृद्धि=विरुढि=विपुलताको बतलाता हूँ'—इसकी जगह=गुंजाइश नहीं। भिक्षु! यदि रूप-धातुसे भिक्षुका राग नष्ट हो गया रहता है (तो) रागके प्रहाण (=नाश) से आलम्बन (=इन्द्रिय-विषय) छिन्न हो जाता है, विज्ञानकी प्रतिष्ठा (=आधार) नहीं रहती।० यदि वेदना धातुसे भिक्षुका राग नष्ट हो गया रहता है०। ०संज्ञा-धातुसे०। ०संस्कार-धातुसे०। यदि विज्ञान-धातुसे भिक्षुका राग नष्ट हो गया रहता है। रागके प्रहाणसे आलम्बन (=आश्रय) छिन्न हो जाता है, विज्ञानका आधार (=प्रतिष्ठा) नहीं रहता। वह अप्रतिष्ठित (=आधार-रहित) विज्ञान न बढ़कर संस्कार-रहित (हो) विमुक्त (हो जाता है)। विमुक्त होनेसे थिर होता है। थिर होनेसे संतुष्ट (=संतुपित)होता है। सन्तुष्ट

होनेसे ग्रास नहीं खाता । ग्रास न खानेपर प्रत्यात्म (=इसी शरीर)में परिनिर्वाणको प्राप्त होता है । 'जातिक्षीण हो गई०' इसे जानता है । भिक्षु इस प्रकार जानने देखनेपर आस्रवोंका क्षय होता है ।"

मल्लिका-सुत्त ।

[1]ऐसा मैंने सुना—एक समय भगवान् श्रावस्ती…जेतवनमें, विहार करते थे ।

तब राजा प्रसेनजित् कोसल जहां भगवान् थे, वहां गया । जाकर भगवान्‌को अभिवादन कर एक ओर बैठ गया । तब एक पुरुष (ने) जहां राजा प्रसेनजित् कोसल था, वहां…जा राजा प्रसेनजित् कोसलके कानमें कहा—'देव ! मल्लिकादेवीने कन्या प्रसव किया ।' (उसके) ऐसा कहने पर राजा प्रसेनजित् कोसल खिन्न हुआ । तब भगवान्‌ने राजा प्रसेनजित् कोसलको खिन्न जान, उसी वेलामें यह गाथायें कहीं—

"हे जनाधिप ! कोई स्त्री भी पुरुषसे श्रेष्ठ होती है, (जोकि) मेधाविनी, शीलवती, श्वशुर-देवा (=ससुरको देववत् माननेवाली), पतिव्रता होती है ॥१॥ उससे जो पुरुष उत्पन्न होता है, वह शूर दिशाओंका पति होता है । वैसी सौभाग्यवतीका पुत्र राज्य पर शासन करता है ॥२॥"

(१०)

सोण-सुत्त। सोणकुटि-कण्ण भगवान्‌के पास। जटिल-सुत्त। पियजातिक-सुत्त। पुण्ण-सुत्त। (वि. पू. ४४२-४१)।

[1]ऐसा मैंने सुना—एक समय भगवान् श्रावस्तीमें, अनाथ-पिंडकके आराम जेतवनमें विहार करते थे।

उस समय आयुष्मान् महाकात्यायन [2]अवन्ती (देश)में कुरर-घरके प्रपात (नामक) पर्वतपर वास करते थे। उस समय सोण-कुटिकण्ण (=स्वर्ण कोटिकर्ण) उपासक आयुष्मान् महाकात्यायनका उपस्थाक (=हजूरी) था। एकान्तमें स्थित, विचारमें डूबे सोण-कुटिकण्ण उपासकके मनमें ऐसा वितर्क उत्पन्न हुआ—

"जैसे जैसे आर्य महाकात्यायन धर्म उपदेश करते थे, (उससे) यह सर्वथा परिपूर्ण सर्वथा परिशुद्ध शंखसा धुला ब्रह्मचर्य, गृहमें बसते पालन करना, सुकर नहीं है। क्यों न मैं० प्रव्रजित होजाऊँ।"

तब सोण-कुटिकण्ण उपासक, जहाँ आयुष्मान् महाकात्यायन थे, वहाँ गया,...जाकर ...अभिवादनकर एक ओर....बैठ...यह बोला—

भन्ते! एकान्तमें स्थित हो विचारमें डूबे मेरे मनमें ऐसा वितर्क उत्पन्न हुआ—०। भन्ते! आर्य महाकात्यायन मुझे प्रव्रजित करें।'

ऐसा कहनेपर आयुष्मान् महाकात्यायनने सोण०को यह कहा—

"सोण! जीवनभर एकाहार, एक शय्यावाला ब्रह्मचर्य दुष्कर है। अच्छा है, सोण! तू गृहस्थ रहते ही बुद्धोंके शासन (=उपदेश)का अनुगमनकर; और काल-युक्त (पर्व-दिनोंमें) एक-आहार, एक-शय्या (=अकेला रहना) रख।"

तब सोण-कुटिकण्ण उपासकका जो प्रव्रज्याका उछाह था, सो ठंडा पड़ गया।

दूसरीबार भी० मनमें ऐसा वितर्क उत्पन्न हुआ—०।०। तीसरीबार भी०। '०भन्ते आर्य महाकात्यायन मुझे प्रव्रजित करें।

तब आयुष्मान् महाकात्यायनने सोण-कुटिकण्ण उपासकको प्रव्रजित किया (=श्रामणेर बनाया)। उस समय अवन्ति-दक्षिणापथमें बहुत थोड़े भिक्षु थे। तब आयुष्मान् महाकात्यायन ने तीन वर्ष बीतनेपर बहुत कठिनाईसे जहाँ तहाँसे दशवर्ग (=दशभिक्षुओंका) भिक्षु-संघ एकत्रितकर, आयुष्मान् सोणको उपसंपन्न किया (=भिक्षु बनाया)। वर्षावास बस, एकान्तमें स्थित, विचारमें डूबे आयुष्मान् सोणके चित्तमें ऐसा परिवितर्क उत्पन्न हुआ—' मैंने उन भगवान्‌को सामने नहीं देखा, बल्कि मैंने सुनाही है,—वह भगवान् ऐसे हैं ऐसे हैं। यदि उपाध्याय मुझे आज्ञा दें, तो मैं भगवान् अर्हत् सम्यक् सम्बुद्धके दर्शनके लिये जाऊं।'

---

१. उदान ५ : ६। २. वर्तमान मालवा।

तब आयुष्मान् सोण सायंकाल ध्यानसे उठ, जहां आयुष्मान् महाकात्यायन थे, वहाँ··· जाकर···अभिवादन कर एक ओर बैठे। एक ओर बैठे···आयुष्मान् महाकात्यायनको कहा—

" भन्ते ! एकांत स्थित विचारमें डूबे मेरे चित्तमें एक ऐसा परिवितर्क उत्पन्न हुआ है– यदि उपाध्याय मुझे आज्ञा दें, तो मैं भगवान्०के दर्शनके लिये जाऊँ ।"

" साधु ! साधु !! सोण ! जाओ सोण ! उन भगवान्, अर्हत्, सम्यक् संबुद्धके दर्शनको। सोण ! उन भगवान्को तुम प्रासादिक (=सुन्दर) प्रसादनीय (=प्रसन्न-कर), शांते-न्द्रिय=शान्त-मानस उत्तम शम-दम-प्राप्त, दान्त, गुप्त, जितेन्द्रिय, नाग देखोगे। देखकर मेरे वचनसे भगवान्के चरणोंको सिरसे वन्दना करना। निरोग ······सुख-विहार (=कुशल-क्षेम) पूछना—भन्ते मेरे उपाध्याय आयुष्मान् महाकात्यायन भगवान्के चरणोंको सिरसे वन्दना करते हैं०।'

"अच्छा भन्ते !" (कह) आयुष्मान् सोण आयुष्मान् महाकात्यायनके भाषणको अभिनंदन कर, आसनसे उठकर····अभिवादन कर, प्रदक्षिणा कर, शयनासन संभाल, पात्र-चीवर ले, जहां श्रावस्ती थी, वहां चारिका करते चले। क्रमशः चारिका करते जहां श्रावस्ती जेतवन अनाथ-पिंडकका आराम था, जहां भगवान् थे, वहां गये।

भगवान्को अभिवादन कर एक ओर बैठे। एक ओर बैठे आयुष्मान् सोणने भगवान्को कहा—

'भन्ते ! मेरे उपाध्याय आयुष्मान् महाकात्यायन भगवान्के चरणोंको सिरसे वन्दना करते हैं०।"

"भिक्षु ! अच्छा (=खमनीय) तो रहा ? यापनीय (=शरीर की अनुकूलता) तो रहा ? अल्प कष्टसे यात्रा तो हुई ? पिंडका कष्ट तो नहीं हुआ ?"

"खमनीय (रहा) भगवान् ! यापनीय (रहा) भगवान् ! यात्रा भन्ते ! अल्प कष्टसे हुई; पिंड(भोजन)का कष्ट नहीं हुआ।'

तब भगवान्ने आयुष्मान् आनन्दको आमंत्रित किया—

"आनन्द ! इस आगंतुक (=नवागत) भिक्षुको शयनासन दो।"

तब आयुष्मान् आनन्दको हुआ—'भगवान् जिसके लिये कहते हैं—'आनन्द ! इस आगंतुक भिक्षुको शयनासन दो।' भगवान् उसे एकही विहारमें साथमें रखना चाहते हैं, (और) जिस विहार(=कोठरी)में भगवान् विहार करते थे, उसी विहारमें आयुष्मान् सोणको शयनासन (=वास-बिछौना) दिया। भगवान्ने बहुत रात खुली जगहमें बिताकर, पैर धो विहारमें प्रवेश किया। तब रातको भिनसार (=प्रत्यूष)में उठकर भगवान्ने आयुष्मान् सोणको कहा—

" भिक्षु ! धर्म भाषण करो।'

"अच्छा भन्ते !" कह···आयुष्मान् सोणने···सभी सोलह [1]अट्ठक-वग्गिकोंको

१. देखो पृष्ठ ३७३-८४ (पारायण-वग्ग)।

स्वर-सहित भणन किया । तब भगवान्‌ने आयुष्मान् सोणके स्वर-सहित भणन (=स्वर-भण्य)के समाप्त होनेपर अनुमोदन किया—

"साधु ! साधु !! भिक्षु ! अच्छी तरह सीखा है । भिक्षु ! तूने सोलह 'अट्टक-वग्गिक', अच्छी तरह मनमें किया है, अच्छी तरह धारण किया है । कल्याणी, विस्पष्ट, अर्थ-विज्ञापन-योग्य वाणीसे तू युक्त है । भिक्षु ! तू कितने वर्ष (=उपसंपदाका वर्ष)का है ?"

"भगवान् ! एक-वर्ष ।"

"भिक्षु ! तूने इतनी देर क्यों लगाई ।"

"भन्ते ! देरसे कामोंके दुष्परिणामको देख पाया । और गृहवास बहु-कार्य =बहु-करणीय संबाध (=बाधायुक्त) होता है ।"

भगवान्‌ने इस अर्थको जानकर उसी समय इस उदानको कहा—

"लोकके दुष्परिणामको देख और उपधि-रहित धर्मको जानकर ; आर्य पापमें नहीं रमता, शुचि (=पवित्रात्मा) पापमें नहीं रमता ।"

सोणकुटिकण्ण भगवान्‌के पास ।

[1]उस समय आयुष्मान् महाकात्यायन अवन्ती (देश)में कुरर-घरके प्रपात पर्वतपर वास करते थे । उस समय सोण कुटिकण्ण [1]उपस्थाक था०।—

"साधु ! साधु ! सोण ! जाओ सोण० भगवान्‌के चरणोंमें वन्दना करना[2]०—'भन्ते ! मेरे उपाध्याय भगवान्‌के चरणोंमें सिरसे वन्दना करते हैं। और यह भी कहना—'भन्ते अवन्ती-दक्षिणा-पथमें बहुत कम भिक्षु हैं । तीन वर्ष व्यतीत कर बड़ी मुश्किलसे जहाँ तहाँसे दशवर्ग भिक्षुसंघ एकत्रितकर मुझे उपसंपदा मिली । अच्छा हो भगवान् अवन्ती-दक्षिणा-पथमें (१) अल्पतर गण (=कमकी जमायत)से उपसंपदा की अनुज्ञा दें । अवन्ती-दक्षिणापथमें भन्ते ! भूमि काली(=कण्हुत्तरा) कड़ी, गोकंटकोंसे भरी है । अच्छा हो भगवान् अवन्ती-दक्षिणापथमें (२) (भिक्षु) गणको गण-वाले उपानह (=पनही)की अनुज्ञा दें । अवन्ती-दक्षिणापदमें भन्ते ! मनुष्य स्नानके प्रेमी, उदकसे शुद्धि माननेवाले हैं; अच्छा हो भन्ते ! अवन्ती-दक्षिणा-पथमें (३) नित्य-स्नानकी अनुज्ञा दे । अवन्ती-दक्षिणापथमें भन्ते ! चर्ममय आस्तरण (=बिछौने) होते हैं;जैसे मेष-चर्म, अज-चर्म, मृग-चर्म।०(४)चर्ममय आस्तरणकी अनुज्ञा दें । भन्ते ! इस समय सीमासे बाहर गये भिक्षुओंको (मनुष्य) चीवर देते हैं—'यह चीवर अमुक नामकको दो।' वह आकर कहते हैं—'आवुस ! इस नामवाले मनुष्यने तुझे चीवर दिया है'। वह सन्देहमें पड़ उपभोग नहीं करते, कहीं हमें निस्सर्गीय (=छोड़नेका प्रायश्चित) न होजाय । अच्छा हो भगवान् (५) चीवर-पर्याय कर दें ।'"

"अच्छा भन्ते!" कह······सोणकुटिकण्ण······आयुष्मान् महाकात्यायनको अभिवादनकर प्रदक्षिणाकर जहाँ श्रावस्ती थी वहांको चले।[3]०। तब भगवान्‌ने इस अर्थको जानकर उसी समय इस उदानको कहा—

१. महावग्ग ५ । २. देखो पृष्ठ ३९४ । ३. देखो पृष्ठ ३९४-९५ ।

" लोकके दुष्परिणाम ०[1] ।"

तब आयुष्मान् सोणने—' भगवान् मेरा अनुमोदन कररहे हैं, यही इसका समय है'......(सोच) आसनसे उठ, उत्तरासंग एक कन्धेपर कर भगवान्‌के चरणोंपर सिरसे पड़कर, भगवान्‌को कहा—

" भन्ते ! मेरे उपाध्याय आयुष्मान् महाकात्यायन भगवान्‌के चरणोंमें सिरसे वन्दना करते हैं, और यह कहते हैं —

' भन्ते ! अवन्ती-दक्षिणा-पथमें वहुत कम भिक्षु हैं[2] ०, अच्छाहो भगवान् चीवर-पर्याय (=विकल्प) कर दें ? "

तब भगवान्‌ने इसी प्रकरणमें धार्मिक-कथा कहकर भिक्षुओंको आमंत्रित किया—

" भिक्षुओ ! अवन्ति-दक्षिणापथमें वहुत कम भिक्षु हैं । भिक्षुओ ! सभी प्रत्यन्त जनपदोंमें विनयधरको लेकर पांच, (कोरमवाले) भिक्षुओं के गणसे उपसंपदा (करने)की अनुज्ञा देता हूँ । यहां यह प्रत्यन्त (=सीमान्त) जनपद (=देश) हैं—पूर्व दिशामें [3]कजंगल नामक निगम (=कसवा) है, उसके बाद वड़े साखू (के जङ्गल) हैं, उसके परे ' इधरसे बीचमें ' प्रत्यन्त जनपद हैं । पूर्व-दक्षिण दिशामें [4]सललवती नामक नदी है, उससे परे, इधरसे बीचमें (=ओर तो मज्झे) प्रत्यन्त जनपद हैं । दक्षिण दिशामें [5]सेतकण्णिक नामक निगम है ० । पश्चिम दिशामें [6]थूण नामक ब्राह्मण-ग्राम०। उत्तरदिशामें[7] उसीरध्वज नामक पर्वत, उससे परे० प्रत्यन्त जनपद हैं । भिक्षुओ ! इस प्रकार के प्रत्यन्त जनपदोंमें अनुज्ञा देता हूँ—विनयधर 'सहित पांच भिक्षुओंके गणसे उपसंपदा करने की ।......। सब सीमान्त-देशोंमें.....गणवाले—उपानह ० । ० नित्य-स्नान ० । ० सब चर्म—मेष-चर्म, अज-चर्म, मृग-चर्म ० ।...अनुज्ञा देता हूँ...(चीवर) उपभोग करनेकी, वह तब तक (तीन चीवरमें)न गिनाजाय, जब तक कि हाथमें न आजाय ।'

जटिल-सुत्त ।

[6]ऐसा [7]मैंने सुना—एक समय भगवान् श्रावस्तीमें मृगार-माताके [8]प्रासाद पूर्वाराममें विहार करते थे ।

उस समय भगवान् सायंकालको ध्यानसे उठकर, फाटक (=द्वारकोष्ठक)के बाहर बैठे थे । तब राजा प्रसेनजित् कोसल जहां भगवान् थे, वहां गया । जाकर भगवान्‌को अभिवादनकर एक ओर बैठ गया । उस समय सात जटिल, सात निगंठ, सात अचेलक, सात एकसाटक, और सात परिव्राजक, कच्छ(=कांख)-नख लोम वढ़ाये, खरिया (=झोरी) वहुत सी लिये,

---

१. देखो पृष्ठ. ३९५. २. देखो पृष्ठ. ३९६. ३. वर्तमान कंकजोल (जिला-संथाल पर्गना, विहार) । ४. वर्तमान सिलई नदी (जिला हजारीबाग और बीरभूम) । ५. हजारीबाग जिलेमें कोई स्थान था । ६. तीसवां वर्षावास श्रावस्ती (पूर्वाराम) में । ७. सं.नि. ३:२:१ । उदान ६:२ । ८. अ.क. "यह प्रासाद लोहप्रासाद (=अनुराधपुर, लंका) की भांति चारों ओर चार फाटकसे युक्त प्राकारसे घिरा था । उनमेंसे पूर्वके फाटकके बाहर प्रासादकी छायामें पूर्व...की ओर देखते, बिछे बुद्धासनपर बैठे थे ।"

भगवान्‌के [1]अविदूरसे जा रहे थे । तब राजा प्रसेन-जित् कोसलने आसनसे उठकर, उत्तरासंग (=चद्दर)को एक (बायें) कंधेपर कर, दाहिने जानु-मंडल (=घुटने) को भूमिपर टेक, जिधर वह सात जटिल० सात परिव्राजक थे, उधर अंजलि जोड़, तीन बार नाम सुनाया— 'भन्ते ! मैं राजा प्रसेनजित् कोसल हूं । भन्ते० । भन्ते० ।"

तब उन सात जटिलों०के चले जानेके थोड़ी देर बाद, राजा प्रसेनजित् कोसल जहां भगवान् थे वहां गया । जाकर भगवान्‌को अभिवादनकर एक ओर बैठ···भगवान्‌को बोला—

" भन्ते ! लोकमें जो अर्हत् या अर्हत्-मार्गपर आरुढ़ हैं, यह उनमेंसे हैं ।"

" महाराज ! गृही, काम-भोगी, पुत्रोंसे घिरे बसते, काशीके चन्दनका रस लेते, माला-गंध-विलेपन धारण करते, सोना-चांदीको भोगते, तुम्हारे लिये यह दुर्ज्ञेय है—' यह अर्हत हैं, या अर्हत्-मार्गपर आरूढ़ हैं' । महाराज ! शील (=आचरण) सहवाससे जाना जाता है; और वह चिरकालमें, उसी दम नहीं; मनमें करनेसे (जाना जाता है), विना मनमें किये नहीं । प्रज्ञावालेको (ज्ञेय है) दुष्प्रज्ञको नहीं । महाराज ! व्यवहारसे (आचार-)शुद्धता जानी जा सकती है; और वह चिरकालमें, उसी दम नहीं; मनमें करनेसे० । महाराज ! साक्षात्कारसे प्रज्ञा जानी जा सकती है; और वह दीर्घकालमें, तुरन्त नहीं, मनमें करनेसे०, प्रज्ञावान्‌को० ।"

"आश्चर्य ! भन्ते !! अद्भुत ! भन्ते !! भगवान्‌का सुभाषित कैसा है !!!—' महाराज० दुर्ज्ञेय है० । यह भन्ते ! मेरे चर, अवचरक (=गुप्तचर) पुरुष, जनपद (=देहात)में (पता लगानेके लिये) घूमकर आते हैं । उनकी प्रथम खोजकी मैं फिरसे सफाई करता हूं । तब भन्ते ! वह धूल जाला धोकर सुस्नात हो, सु-विलिप्त हो, केश-मूछ (नाईसे) ठीक करा, श्वेत वस्त्रधारी, पांच काम गुणोंसे युक्त···हो, विचरते हैं । "

तब भगवान्‌ने इसी अर्थको जानकर, उसी समय यह गाथायें कहीं—

" वर्ण (=रंग)-रूपसे नर सुज्ञेय नहीं होता । तुरंत (=इत्वर) दर्शनसे ही विश्वास न कर लेना चाहिये । रूप-रंगसे सु-संयमी भी (मालूम होते), (वस्तुतः) अ-संयमी हो इस लोकमें विचरते हैं ॥१॥ नकली मिट्टीके कुंडकी तरह, या सुवर्णसे ढँके तांबे (=लोह)के आधे मासे (=अर्ध मापक सिक्का)की तरह, लोकमें (वह) परिवार (=जमात)से ढँके, भीतरसे अशुद्ध (किंतु) बाहरसे शोभायमान हो विचरते हैं ॥२॥

पियजातिक-सुत्त ।

[3]ऐसा [4]मैंने सुना—एक समय भगवान् श्रावस्तीमें···जेतवनमें विहार करते थे ।

उस समय एक गृहपति (=वैश्य)का प्रिय=मनाप एकलौता-पुत्र मर गया था । उसके मरनेसे (उसे) न काम (=कर्मान्त) अच्छा लगता था, न भोजन अच्छा लगता

---

१. अ. क. "अविदूरं (=समीप)के मार्गसे नगरमें प्रवेश कर रहे थे ।" ३. इकतीसवां वर्षा-वास श्रावस्ती (जेतवन)में । ४. म. नि. २ : ४ : ७ ।

था—'कहां हो (मेरे) एकलौते-पुत्रक ? कहां हो (मेरे) एकलौते-पुत्रक ?' तब वह गृहपति जहां भगवान् थे, वहां गया।···अभिवादनकर एक ओर बैठे उस गृहपतिको भगवान्ने कहा—

"गृहपति ! तेरी इन्द्रियां (=चेष्टायें) चित्तमें स्थित नहीं जान पड़तीं; क्या तेरी इन्द्रियोंमें कोई खराबी (=अन्यथात्त्व) तो नहीं है ?"

"भन्ते ! क्यों न मेरी इन्द्रियां अन्यथात्त्वको प्राप्त होंगी ? भन्ते ! मेरा प्रिय=मनाप एकलौता-पुत्र मर गया। उसके मरनेसे न काम अच्छा लगता है, न भोजन अच्छा लगता है। सो मैं आदाहन (=चिता)के पास जाकर क्रंदन करता हूँ—'कहां हो एकलौते-पुत्रक (=पुतवा) !'"

"ऐसा ही है गृहपति ! प्रिय-जातिक=प्रियसे उत्पन्न होनेवाले ही हैं, गृहपति ! (यह) शोक, परिदेव (=क्रंदन), दुःख=दौर्मनस्य, उपायास (=परेशानी) ?"

"भन्ते ! यह ऐसा क्यों होगा—'प्रिय जातिक० हैं शोक० उपायास ?"

वह गृहपति भगवान्के भाषणको न अभिन्दनकर, निंदाकर आसनसे उठकर चला गया।

उस समय बहुतसे जुआरी (=अक्ष-धूर्त) भगवान्के अदूरमें जुआ खेल रहे थे। तब वह गृहपति जहां वह जुआरी थे, वहां गया, जाकर उन जुआरीयोंसे बोला—

"मैं जी ! जहां श्रमण गौतम है, वहां···जाकर···अभिवादन कर एक ओर बैठे मुझे श्रमण गौतम ने कहा—'गृहपति ! तेरी इन्द्रियां (=चेष्टायें) अपने चित्तमें स्थितसी नहीं हैं० प्रिय जातिक० शोक० हैं'। प्रियजातिक=प्रियसे उत्पन्न तो, आनन्द=सौमनस्य हैं। तब मैं श्रमण गौतमके भाषणको न अभिनन्दन कर० चला आया।"

"यह ऐसाही है गृहपति ! प्रिय-जातिक=प्रिय-उत्पन्न तो हैं गृहपति ! आनन्द=सौमनस्य।"

तब वह गृहपति-'जुआरी भी मुझसे सहमत हैं' (सोच) चला गया। यह कथा-वस्तु (=चर्चा) क्रमशः राज-अन्तःपुरमें चली गई। तब राजा प्रसेन-जित् कोसलने मल्लिका देवीको आमंत्रित किया—

"मल्लिका ! तेरे श्रमण गौतमने यह भाषण किया है—'प्रिय-जातिक=प्रिय-उत्पन्न हैं शोक० उपायास'।"

"यदि महाराज ! भगवान्ने ऐसा भाषण किया है, तो यह ऐसा ही है।"

"ऐसाही है मल्लिका ! जो जो श्रमण गौतम भाषण करता है, उस उसको ही तू अनुमोदन करती है—'यदि महाराज ! भगवान्ने०'। जैसेकि आचार्य जो जो अन्तेवासीको कहता है, उस उसको ही उसका अन्तेवासी अनुमोदन करता है—'यह ऐसाही है आचार्य। ०आचार्य !' ऐसेही तू मल्लिका ! जो जो श्रमण०। चल परे हट मल्लिका !"

"तो क्या मानते हो महाराज ! यदि तुम्हारी वजिरी कुमारीको कोई विपरिणाम (=संकट) या अन्यथात्व होवे, तो क्या तुम्हें शोक ०उपयास उत्पन्न होंगे ?"

"मल्लिका ! वजिरी कुमारीके विपरिणाम-अन्यथात्वसे मेरे जीवनका भी अन्यथात्व हो सकता है, 'शोक० उत्पन्न होगा' की तो बात ही क्या ।"

"महाराज ! उन भगवान् जाननहार, देखनहार अर्हत् सम्यक्-संबुद्धने यही सोचकर कहा है—'प्रिय-जातिक० ।' तो क्या मानते हो महाराज ! वासभ क्षत्रिया तुम्हें प्रिय है न ?"

"हां, मल्लिका ! वास्भ-क्षत्रिया मुझे प्रिय है ।"

"तो क्या मानते हो महाराज ! वासभ क्षत्रियाको कोई विपरिणाम=अन्यथात्त्व हो, तो क्या तुम्हें शोक ० उत्पन्न होंगे ?"

"मल्लिका ! ० जीवन का भी अन्यथात्व हो सकता है ० ।"

"महाराज ! ० यही सोच कर० कहा है ० । तो क्या मानते हो महाराज ! विडूडभ सेनापति तुम्हें प्रिय है न ?" ० । ० ।

"० । तो क्या मानते हो महाराज ! मैं तुम्हें प्रिय हूं न ?"

"हां मल्लिके ! तू मुझे प्रिय है ?"

"तो क्या मानते हो, महाराज ! मुझे कोई विपरिणाम, अन्यथात्व हो, तो क्या तुम्हें शोक० उत्पन्न होंगे ?"

"मल्लिका !० जीवनका भी अन्यथात्त्व हो सकता है० ।"

"महाराज ! ०यही सोचकर कहा है० । तो क्या मानते हो महाराज ! काशी और कोसल (के निवासी) तुम्हें प्रिय हैं न ?"

"हां मल्लिके ! काशी-कोसल मेरे प्रिय हैं । काशी-कोसलोंके अनुभाव (=बरकत) से ही तो हम…काशिकचन्दनको भोगते हैं, माला, गंध, विलेपन (=उबटन) धारण करते हैं ।"

"तो ०महाराज ! काशी-कोसलोंके विपरिणाम=अन्यथात्व (=संकट)से, क्या तुम्हें शोक० उत्पन्न होंगे ?"

"०जीवनका भी अन्यथात्त्व हो सकता है० ।"

"महाराज ! उन भगवान्० ने यही सोचकर कहा है—'प्रिय-जातिक=प्रियसे उत्पन्न हैं, शोक० ।"

"आश्चर्य ! मल्लिके !! आश्चर्य ! मल्लिके !! कैसे वह भगवान् हैं !!! मानो प्रज्ञासे वेधकर देखते हैं । आओ, मल्लिके ! हम दोनों…।"

तब राजा प्रसेनजित् कोसलने आसनसे उठकर, उत्तरासंग (=चद्दर) को एक (बायें) कंधे पर रख, जिधर भगवान् थे, उधर अंजली जोड़ तीन बार उदान कहा—

"[1]उन भगवान्, अर्हत्, सम्यक् संबुद्धको नमस्कार है; उन भगवान् अर्हत् सम्यक् संबुद्धको नमस्कार है; उन भगवान् अर्हत्, सम्यक् संबुद्धको नमस्कार है।"

पुराण-सुत्त ।

[2]ऐसा मैंने सुना—एक समय भगवान् श्रावस्ती० जेतवनमें विहार करते थे ।

तब आयुष्मान् [3]पूर्ण जहां भगवान् थे, वहां गये । जाकर भगवान्‌को अभिवादनकर एक ओर बैठे । एक ओर बैठे आयुष्मान् पूर्णने भगवान्‌से कहा—

"अच्छा हो भन्ते ! भगवान् मुझे संक्षिप्तसे धर्म-उपदेश करें, जिस धर्मको भगवान्‌से सुनकर मैं एकाकी, एकान्ती, अप्रमादी, उद्योगी, संयमी हो विहार करूँ।"

"पूर्ण ! चक्षुसे विज्ञेय रूप इष्ट=कान्त=मनाप, प्रियरूप=कामोपसंहित, रंजनीय होते हैं। यदि भिक्षु उन्हें अभिनन्दन करता=स्वागत करता, अध्यवसाय करता है। अभिनन्दन करते, ०अध्यवसाय करते हुये उसको, नन्दी (=तृष्णा) उत्पन्न होती है। पूर्ण ! नन्दीकी उत्पत्ति (=समुदय)से दुःखका समुदय कहता हूँ । पूर्ण ! जिह्वासे विज्ञेय रस इष्ट० । पूर्ण ! चक्षुसे विज्ञेय रूप इष्ट० हैं । यदि भिक्षु उन्हें अभिनन्दन० नहीं करता ।० । उसकी नन्दी (तृष्णा) निरुद्ध (=विलीन) हो जाती है । पूर्ण ! नन्दीके निरोधसे दुःखका निरोध कहता हूँ ।० । पूर्ण ! मनसे विज्ञेय (=ज्ञातव्य) धर्म इष्ट० हैं ।०। पूर्ण मेरे इस संक्षिप्तमें कथित अववाद (=उपदेश)से उपदिष्ट हो, कौनसे जनपदमें तू विहार करेगा ?"

"भन्ते ! सूनापरान्त नामक जनपद है, मैं वहां विहार करूँगा।" "पूर्ण ! सुनपरान्तके मनुष्य चण्ड हैं, ०परुष (=कठोर) हैं । जो पूर्ण ! तुझे सूनापरान्तके मनुष्य आक्रोशन=परिभाषण (=कुवाच्य) करेंगे, तो…तुझे क्या होगा ?"

"यदि भन्ते ! सूनापरान्तके मनुष्य मुझे आक्रोशन=परिभाषण करेंगे, तो मुझे

---

१. "नमो तस्स भगवतो अरहतो सम्मा संबुद्धस्स । २. सं. नि. ३४ : ४: ६ ।

३. अ. क. "सूनापरान्त (=वर्तमान थाना और सूरतके जिले तथा कुछ आस-पासके भाग) राष्ट्रमें एक वणिक्-ग्राममें यह दो भाई (वसते थे)। उनमें कभी बड़ा पांच सौ गाड़ियां ले, जनपद जाकर माल लाता था, कभी छोटा। इस समय कनिष्ठ (भाई)को घरपर छोड़, ज्येष्ठ भ्राता पांच-सौ गाड़ियां ले, घूमते हुये, क्रमशः श्रावस्तीमें प्राप्त हो, जेतवनके नातिदूर शकट-सार्थ (=गाड़ीके कारवां)को ठहराकर; कलेऊकर नौकरोंके साथ अनुकूल स्थानपर बैठा। उसी समय श्रावस्ती-वासी कलेऊकर शुद्ध उत्तरासंग ओढ़े, हाथमें गंध-पुष्प लिये, (श्रावस्तीके) दक्षिण द्वार (=महेटका बाजार-दरवाजा)से निकलकर, जेतवनको जाते थे।…। (पूर्ण)ने भी अपनी मंडलीके साथ, उसी परिषद्‌के संग विहारमें जा…धर्म सुन प्रव्रज्याका संकल्प किया।…। (फिर) भंडारीको बुलाकर…"यह धन मेरे कनिष्ठ (भ्राता)को देना" सब समझा, शास्ताके पास प्रव्रजित हो योग-अभ्यास परायण हुये। तब योगाभ्यास करते वक्त (मन) ठीकसे नहीं ठहरता था। तब सोचा—'यह जनपद मेरे अनुकूल नहीं है, क्यों न मैं शास्ताके पाससे कर्म-स्थान (=योग-विधि) ग्रहणकर, अपने देशमें ही जाऊँ…।"

ऐसा होगा—'सूनापरान्तके मनुष्य भद्र हैं०, सुभद्र हैं; जोकि यह मुझपर हाथसे प्रहार नहीं करते'—मुझे भगवान् ! (ऐसा) होगा सुगत ! ऐसा होगा ।"

"यदि पूर्ण ! सूनापरान्तके मनुष्य तुझपर हाथसे प्रहार करें, तो पूर्ण ! तुझे क्या होगा ?"

"०भन्ते ! मुझे ऐसा होगा—"यह सूनापरान्तके मनुष्य भद्र हैं, ०सुभद्र हैं; जोकि यह मुझे डंडेसे नहीं मारते० ।"

०।०डंडेसे नहीं मारते ।० ०।० शस्त्रसे नहीं मारते ।००।० शस्त्रसे मेरा प्राण नहीं ले ले ।०

"यदि पूर्ण ! सूनापरान्तके मनुष्य तुझे तीक्ष्ण शस्त्रसे मार डालें । तो पूर्ण ! तुझे क्या होगा ? "

"०वहां मुझे भन्ते ! ऐसा होगा—'उन भगवान्के कोई कोई श्रावक (शिष्य) हैं, जो जिन्दगीसे तंग आकर, ऊबकर, घृणाकर, (आत्म-हत्यार्थ) शस्त्र-हारक (=शस्त्र लगालेना) खोजते हैं । सो मुझे यह शस्त्र-हारक विना खोजेही मिल गया । भगवान् ! मुझे ऐसा होगा । सुगत ! मुझे ऐसा होगा । "

"साधु ! साधु ! ! पूर्ण ! ! ! पूर्ण ! तू इस प्रकारके शम, दमसे युक्त हो, सूनापरान्त जनपदमें वास कर सकता है । जिसका तू काल समझे (वैसा कर) । "

तब आयुष्मान् पूर्ण भगवान्के वचन को अभिनन्दनकर अनुमोदन कर, आसनसे उठ, भगवान्को अभिवादनकर, प्रदक्षिणा कर शयनासन संभाल, पात्र-चीवर ले, जिधर सूनापरान्त जनपद था, उधर चारिकाको चल पड़े । क्रमशः चारिका करते जहां सूनापरान्त जनपद था, वहां पहुँचे । आयुष्मान् पूर्ण सूनापरान्त जनपदमें विहार करते थे । तब वहां आयुष्मान् पूर्णने उसी वर्षाके भीतर पांचसौ उपासकोंको ज्ञान कराया । उसी वर्षाके भीतर उन्होंने (स्वयं) भी विद्यायें साक्षात् (=प्रत्यक्ष) कीं । और उसी वर्षाके भीतर [1]परिनिर्वाणको प्राप्त हुये[2] ।

———

१ आवागमनरहित हो मरना ।

२ अ.क. "(पूर्णने) कहां कहां विहार किया ? चार स्थानोंमें···अज्भ-हत्थ पर्वत···,वहांसे समुद्रगिरि-विहार,···वहांसे मातुगिरि,···वहांसे मंकुलकाराम नामक विहारको गये।··· (सूनापरान्तमें स्थान) सच्चवद्ध-पर्वत··· नर्मदा नदीके तीर···पदचैत्य··· ।"

(११)

मखादेव-सुत्त । सारिपुत्त-सुत्त । थपति-सुत्त । विसाखा-सुत्त । पधानीय-सुत्त । जरा-सुत्त । (वि.पू. ४४०-३६) ।

[1]ऐसा मैंने सुना—एक समय भगवान् मिथिलामें मखादेव आम्रवनमें विहार करते थे।

एक जगह पर भगवान् मुस्कुरा उठे। तब आयुष्मान् आनन्दको यह हुआ—'भगवान्के मुस्कुरानेका क्या कारण है? क्या वजह है? तथागत विना कारणके नहीं मुस्कुराते; तब आयुष्मान् आनन्द चीवरको एक कंधेपर कर, जिधर भगवान् थे, उधर हाथजोड़ भगवान्को बोले—

"भन्ते! भगवान्के मुस्कुरानेका क्या कारण है० ?"

"आनन्द! पूर्वकालमें इसी मिथिलामें मखादेव नामक धार्मिक धर्म-राजा राजा हुआ था। (वह) धर्ममें स्थित महाराजा, ब्राह्मणोंमें, गृहपतियोंमें निगमोंमें, (=कस्बों, नगरों)में जनपदों (=दीहातों)में धर्मसे वर्तता था। चतुर्दशी (=अमावास्या) पंचदशी पूर्णिमा, और पक्षकी अष्टमियोंको उपोसथ (=उपवासव्रत) रखता था।···

"(उसने अपने शिरमें पके बाल देख) ज्येष्ठ पुत्र कुमारको···बुलवाकर कहा—

"तात कुमार! मेरे देवदूत प्रकट होगये, शिरमें पके केश दिखाई पड़ रहे हैं। मैंने मानुष-काम (=भोग) भोगलिये, अब दिव्य-भोगोंके खोजनेका समय है। आओ तात! कुमार! इस राज्यको तुम लो। मैं केश-श्मश्रु मुंड़ा, काषाय-वस्त्र पहिन, घरसे बेघर हो प्रव्रजित होऊँगा। सो तात! जब तुमभी सिरमें पके बाल देखना, तो हजामको एक गांव इनाम (=वर) दे, ज्येष्ठ-पुत्र कुमारको अच्छी प्रकार राज्यपर अनुशासन कर, केश-श्मश्रु मुंड़ा, वस्त्र पहिन ०प्रव्रजित होना। जिसमें यह मेरा स्थापित कल्याणवर्त्म (कल्याण-वट्ट) अनु-प्रवर्तित रहे; तुम मेरे अन्तिम पुरुष मत होना। तात कुमार! जिस पुरुषयुगलके वर्तमान रहते इस प्रकारके कल्याण-वर्त्म (=मार्ग)का उच्छेद होता है, वह उनका अन्तिम पुरुष होता है।

"तब आनन्द! राजा मखादेव नाईको एक गांव इनाम दे, ज्येष्ठ-पुत्रकुमारको अच्छी तरह राज्यानुशासनकर, इसी मखादेव-अम्बवनमें शिर-दाढ़ी मुंडा० प्रव्रजित हुआ।···वह चार [2]ब्रह्म-विहारोंकी भावनाकर शरीर छोड़ मरनेके बाद ब्रह्मलोकको प्राप्त हुआ।···

"आनन्द! राजा मखादेवके पुत्रनेभी······,राजा मखादेवकी·····परम्परामें पुत्र पौत्र आदि······इसी मखादेव-अम्बवनमें केश-श्मश्रु मुंडा······प्रव्रजित हुये।······। निमि उन राजाओंका अन्तिम धार्मिक, धर्म-राजा, धर्ममें स्थित महाराजा हुआ।······।

"आनन्द! पूर्व कालमें सुधर्मा नामक सभामें एकत्रित हुये त्रायस्त्रिंश देवोंके बीचमें यह बात उत्पन्न हुई—'लाभ है अहो! विदेहोंको, सुन्दर लाभ हुआ है विदेहोंको; जिनका···

---

१. म. नि. २: ४: ३।

२. मैत्री, करुणा, मुदिता और उपेक्षा नामक चार भावनायें।

निमि जैसा धार्मिक, धर्मराजा, धर्ममें स्थित महाराजा है; ....निमिभी आनन्द !...इसी मखादेव-अम्ब-वनमें......प्रव्रजित हुआ......।

" आनन्द ! राजा [1]निमिका कलार जनक नामक पुत्र हुआ। वह घर छोड़ वेघर प्रव्रजित नहीं हुआ। उसने उस कल्याण वर्त्मको उच्छिन्न कर दिया। वह उनका अन्तिम-पुरुष हुआ।.........

" आनन्द ! इस समय मैंने भी यह कल्याण-वर्त्म स्थापित किया है; (जो कि) एकांतनिर्वेदकेलिये, विरागकेलिये, निरोधकेलिये=उपशमकेलिये, अभिज्ञाकेलिये, संबोधि (=बुद्धज्ञान)केलिये, निर्वाणकेलिये है—(वह) यही आर्य अष्टांगिक मार्ग है—जैसे कि—सम्यग्-दृष्टि, सम्यक्-संकल्प, सम्यक्-वाक् ० कर्मान्त, ० आजीव, ० व्यायाम, ० स्मृति, सम्यक् समाधि। यह आनन्द ! मैंने कल्याण-वर्त्म स्थापित किया है ०। सो आनन्द ! मैं यह कहता हूँ 'जिसमें तुम इस मेरे स्थापित कल्याण-मार्गको अनुप्रवर्तित करना (=चलाते रहना); तुम मेरे अन्तिम-पुरुष मत होना ......।

भगवान्ने यह कहा, संतुष्ट हो आयुष्मान् आनन्दने भगवान्के भाषणका अभिनन्दन किया।

सारिपुत्त-सुत्त ।

[2]ऐसा[3] मैंने सुना—एक समय भगवान् श्रावस्ती ०जेतवनमें विहार करते थे।

तव आयुष्मान् सारिपुत्र जहां भगवान् थे,...वहां जाकर अभिवादनकर एक ओर बैठ गये। एक ओर बैठे आयुष्मान् सारिपुत्रको भगवान्ने यह कहा—

" सारिपुत्त ! 'स्रोत-आपत्ति-अंग स्रोत-आपत्ति-अंग-कहा जाता है। सारिपुत्त ! स्रोत-आपत्ति-अंग क्या है ?"

" सत्पुरुष-सेवा भन्ते ! स्रोत-आपत्तिका अंग है। सद्धर्म-श्रवण स्रोत-आपत्ति-अंग है। [4]योनिशः मनसिकार स्रोत-आपत्तिका अंग है। धर्मानुधर्म प्रतिपत्ति (=धर्मानुसार चलना)०।"

" सारिपुत्त ! 'स्रोत, स्रोत' कहा जाता है। सारिपुत्र ! स्रोत क्या है ?"

" भन्ते ! यही आर्य-अष्टांगिक मार्ग स्रोत है; जैसे —सम्यक् दृष्टि०।"

" साधु ! साधु !! सारिपुत्र !!! सारिपुत्र ! यही आर्य-अष्टांगिक मार्ग स्रोत है; जैसे कि०।"—

"सारिपुत्र ! 'स्रोत-आपन्न, स्रोत-आपन्न' कहा जाता है। सारिपुत्र ! स्रोत-आपन्न क्या है ?"

---

१. गङ्गा, गण्डक, कोसी, हिमालयके बीचका प्रदेश (तिर्हुत)।
२. वत्तीसवां वर्षावास श्रावस्ती (पूर्वाराम)में किया, तैतीसवां जेतवनमें।
३. सं. नि. ५४:१:५।
४. ठीकसे मनमें करना।

" भन्ते ! जो इस आर्य-अष्टांगिक-मार्गसे युक्त है, वही स्रोत-आपन्न कहा जाता है; वही आयुष्मान् इस नामका इस गोत्रका है ।"

" साधु ! साधु !! सारिपुत्र !!! जो इस आर्य-अष्टांगिक-मार्गसे युक्त है० ।"

थपति-सुत्त ।

[1]ऐसा मैंने सुना—एक समय भगवान् श्रावस्तीमें० जेतवनमें विहार करते थे ।

उस समय बहुतसे भिक्षु भगवान्‌का चीवर-कर्म (=चीवर-सीना) करते थे—' चीवर (सीना) समाप्त हो जानेपर, तीनमास बाद भगवान् चारिकाको जायँगे ' । उस समय इसि-दत्त (=ऋषिदत्त) और पुराण (दोनों) स्थपति (=राज) किसी कामसे साधुक (नामक गांव)में वास करते थे । इसिदत्त और पुराण स्थपतियोंने सुना—बहुतसे भिक्षु भगवान्‌का चीवर-कर्म कररहे हैं० । तब ऋषिदत्त और पुराण स्थपतियोंने मार्गमें आदमी बैठा दिया—

' हे पुरुष ! जब तुम भगवान्, अर्हत, सम्यक्-संबुद्धको आते देखना, तो हमें कहना ।' दो-तीन दिन बैठनेके बाद उस पुरुषने दूरसे ही भगवान्‌को आते देखा । देखकर···जाकर··· ऋषिदत्त, पुराण स्थपतियोंको कहा—

" भन्ते ! यह वह भगवान्० आरहे हैं, (अब) जिसका (आप) काल समझें (वैसा करें) ।"

तब ऋषि-दत्त, और पुराण, स्थपति जहां भगवान् थे, वहां गये; जाकर भगवान्‌को अभिवादनकर भगवान्‌के [2]पीछे पीछे चले । तब भगवान् मार्गसे हटकर जहां एक वृक्ष था, वहां गये । जाकर बिछे आसनपर बैठे । ऋषिदत्त, पुराण स्थपति भी भगवान्‌को अभिवादनकर एक ओर बैठ गये । एक ओर बैठे ऋषिदत्त और पुराण०ने भगवान्‌को यह कहा—

" भन्ते ! जब हम सुनते हैं—'भगवान् श्रावस्तीसे कोसलमें चारिकाको जायँगे' । उस समय हमारे मनमें असंतोष होता है, दुर्मनसता (=अप्रसन्नता) होती है-'भगवान् हमसे दूर होजायँगे' । भन्ते ! जब हम सुनते हैं-'भगवान् [3]श्रावस्तीसे कोसलमें चारिकाके लिये चले गये ।' उस समय हमारे मनमें असंतोष होता है, अप्रसन्नता होती है, 'भगवान् हमसे दूर हैं ।' भन्ते ! जब हम सुनते हैं —'भगवान् [4]कोसलसे मल्ल[5] (देश)में चारिकाके लिये जायंगे '; उस समय हमारे मनमें० अप्रसन्नता होती है—'भगवान् हमसे दूर होंगे ।' मल्लमें चारिकाके लिये चले गये, उस समय० अप्रसन्नता होती है—' भगवान् हमसे दूर हैं ।' भन्ते ! जब हम भगवान्

१. सं. नि. ५४ : १ : ६ ।

२. अ. क. " भगवान् गाडीके मार्गके बीचसे जाते थे, दूसरे अगल बगलसे पीछे पीछे चल रहे थे ।"

३. अ. क. " भगवान्‌का चारिका करना और (मध्यदेशमें) सूर्योदय नियत हैं। मध्यमदेश ही में चारिका करते थे । मध्यमदेशमें ही सूर्योदय कराते थे ।"

४. कोसलदेश=प्रायः अवध और बस्ती, गोरखपुर, आजमगढ़, जौनपुर जिलोंके कितने ही भाग ।

५. मल्ल-देश=वर्तमान गोरखपुर और छपरा (सारन) जिलोंका क़रीब २ संपूर्ण प्रदेश ।

को सुनते हैं—'भगवान् मल्लसे [1]वज्जीमें० जायेंगे' ० । ० । ० मल्लसे वज्जीमें० चले गये ० । ० वज्जीसे [2]काशी (देश)में ० । ० । ० काशीसे० [3]मगध (देश) में चले गये । ० उस समय बहुतही असन्तोष होता है, बहुतही अप्रसन्नता० । भन्ते ! जब हम सुनते हैं—'भगवान् मगधसे काशी (देश) में चारिकाको आयेंगे'—उस समय हमें सन्तोष होता है, प्रसन्नता होती है 'भगवान् हमारे समीप' होंगे, । ० काशीमें० चले आये० । ० काशीसे वज्जीमें० आयेंगे ० ।० वज्जीसे मल्लमें० आयेंगे ० । ० मल्लसे कोसलमें० आयेंगे० । जब हम भन्ते ! भगवान्‌को सुनते हैं, कोसलसे श्रावस्तीको चारिकाको आयेंगे ; उस समय हमें सन्तोष होता है, प्रसन्नता होती है—'भगवान् हमारे समीप होंगे' । जब० कोसलसे श्रावस्तीको चल दिये, उस समय हमें सन्तोष होता है, प्रसन्नता होती है । भन्ते ! जब हम सुनते हैं—भगवान् श्रावस्ती में अनाथ पिंडकके आराम जेतवनमें विहार करते हैं । उस समय हमें बहुतही सन्तोष होता है, बहुतही प्रसन्नता होती है—'भगवान् हमारे पास हैं ।'"

"इसलिये स्थपतियो ! गृह-वास (=गृहस्थमें रहना) संबाध (=बाधा-पूर्ण) (रागादि) मल-का-(आगमन-)मार्ग है; प्रव्रज्या खुली जगह है । किन्तु स्थपतियो ! तुम्हारे लिये अप्रमाद (से रहना)ही युक्त है ।"

"भन्ते ! हमें इस संबाध (=कठिनाई)से भी भारी संबाध है ।"

"स्थपतियो ! तुम्हें कौन संबाध है, जो इससे भी भारी संबाध है ?"

"भन्ते ! जब राजा प्रसेनजित् कोसल उद्यान-भूमिको जाना चाहता है (तो) राजा प्रसेनजित् कोसलके सब हाथी अच्छी तरह तय्यार कर ,राजा ०की सुन्दर स्त्रियोंको एक आगे एक पीछेकर बैठाते हैं । भन्ते ! उन भगिनियोंका इस प्रकारका गंध होता है; जैसेकि गंधकी पिटारी तुरंत खोली गई हो; वैसी वह गंध-विभूषित राजकन्यायें (होती हैं) । भन्ते ! उन भगनियोंका शरीर-स्पर्श ऐसा है, जैसे तूल-पिचुका=रूईके फाहेका; वैसाहि सुखमें पली उन राज-कन्याओंका । उस समय भन्ते ! हमें हाथीकी रक्षा करनी होती है, उन भगिनियोंकी भी रक्षा करनी होती है, आत्माकी (=अपनी)भी रक्षा करनी होती है । भन्ते ! हम उन भगिनियोंमें बुरा भाव उत्पन्न नहीं करते । यह भन्ते ! हमें इस संबाधसे भी भारी संबाध है ।"

"इसलिये स्थपतियो ! गृहस्थ संबाध है, रजो-मार्ग है; प्रव्रज्या खुली जगह है । किन्तु, स्थपतियो ! तुम्हारे लिये अप्रमाद ही युक्त है । स्थपतियो ! चार धर्मों (=बातों)से

---

१. वज्जी देश=चम्पारन, मुजफ्फरपुरके संपूर्ण जिले, दर्भङ्गा जिले का अधिकांश, और छपरा जिलामें दिघवाराकी महीनदी (=जोकि गण्डककी बहुत पुरानी धार है, गण्डक पाली में मही के नामसे प्रसिद्ध है) के गंगामें मिलने का पुराना स्थान मान, मही (=ऊपरी भाग में घोबाड़ी) के पूर्व ओर का सारा भाग ।

२. काशीदेश=बनारस, गाजीपुर, मिर्जापुर जिलोंके गंगासे उत्तरके भाग, तथा आजमगढ जौनपुर और प्रताप-गढ जिलोंके अधिकांश भाग, एवं बलिया जिला ।

३. मगध देश=पटना, और गयाके जिले, हजारीबाग जिलेका कुछ उत्तरी भाग ।

युक्त आर्य-श्रावक स्रोत-आपन्न अविनिपात-धर्म (=न पतित होनेलायक), नियत संबोधि-परायण होता है । किन चारोंसे ? (१) ०बुद्धमें अत्यन्त प्रसन्न० । ०धर्ममें० । ०संघमें० । मल-मात्सर्य-रहित चित्तसे गृह-वास करता है, मुक्त-त्याग=प्रयत-पाणि=दान-रत, याचने योग्य होता है, दानदेनेमें रत होता है । स्थपतियो ! इन चार धर्मोंसे युक्त आर्य-श्रावक स्रोत-आपन्न० होता है । तुम स्थपतियो ! बुद्धमें अत्यन्त प्रसन्न हो० ।०। जो कुछभी (तुम्हारे) कुल (=घर)में दातव्य वस्तु है; सभी शील-वान्, कल्याण-धर्मा (=धर्मात्मा) (जनों)केलिये है । तो क्या मानते हो, स्थपतियो ! कोसल (देश)में कितने एक मनुष्य हैं, जो दान देनेमें तुम्हारे समान हैं ।"

"भन्ते ! हमें लाभ है, हमने सुलाभ पा लिया; जिन हमलोगोंको भगवान् ऐसा समझते हैं ।"

(विसाखा)-सुत्त ।

[1]ऐसा [2]मैंने सुना—एक समय भगवान् श्रावस्तीमें मृगार-माताके प्रासाद [3]पूर्वाराममें विहार करते थे ।

उस समय विशाखा मृगार-माताका प्रिय=मनाप नाती मर गया था । तब विशाखा मृगार-माता भीगे वस्त्र, भीगे केश मध्याह्नमें जहां भगवान् थे, वहां गई । जाकर भगवान्को अभिवादन कर एक ओर बैठी । ···विशाखा मृगार-माताको भगवान्ने कहा—

"हन्त (=हैं) ! विशाखे ! तू भीगे वस्त्र, भीगे केश, मध्याह्नमें कहांसे आरही है ?"

"भन्ते ! मेरा प्रिय=मनाप नाती मर गया, इसलिये मैं भीगे-वस्त्र, भीगे-केश मध्याह्नमें आरही हूं ?"

"विशाखा ! श्रावस्तीमें जितने मनुष्य हैं, तू उतने पुत्र, नाती (=पौत्र) चाहेगी ?"

"भन्ते ! श्रावस्तीमें जितने मनुष्य हैं, मैं उतने बेटे-पोते चाहूंगी ।"

"विशाखे ! श्रावस्तीमें प्रतिदिन कितने मनुष्य मरा करते हैं ?"

"भन्ते ! श्रावस्तीमें प्रतिदिन दश मनुष्य भी काल करते हैं । नव भी० । आठ भी० । सात भी० । छः० । पांच० । चार० । तीन० । दो० । एक० । भन्ते ! श्रावस्ती मनुष्योंके मरे विना (एक दिन भी) नहीं रहती ।"

"तो क्या मानती है, विशाखा ! क्या तू विना-भीगे-वस्त्र, विना-भीगे-केश रह सकैगी ?"

"नहीं, भन्ते ! मेरे जितने बेटे-पोते हैं, ···उतने ही बस ।"

"(इसीलिये)विशाखे ! जिनके सौ प्रिय होते हैं, उनके सौ दुःख होते हैं । जिनके नब्बे

१. चौतीसवां वर्षावास भगवान्ने श्रावस्ती (पूर्वाराम)में बिताया ।
२. उदान ८ : ८ ।
३. वर्तमान हनुमनवां (सहेट-महेटके समीप) ।

प्रिय०, उनके नब्बे दुःख० । ०अस्सी० । ०सत्तर० । ०साठ० । ०पचास० । ०चालीस० । ०तीस० । ०बीस० । ०दस० । ०नव० । ०आठ० । ०सात० । ०छः० । ०पांच० । ०चार० । ०तीन० । ०दो० । जिनको एक प्रिय होता है, उनको एक दुःख होता है । जिनको प्रिय नहीं होता, उनको दुःख नहीं होता । वह शोक-रहित रज (=राग आदि)-रहित, उपायास (=परेशानी)-रहित हैं—कहता हूं ।"

तब भगवान्‌ने इस अर्थको जान उसी वेलामें यह उदान कहा—

"लोकमें जो शोक, परिदेव नाना प्रकारके दुःख हैं; वह प्रियके कारण होते हैं; प्रियः (वस्तु) न होनेपर वह नहीं होते ॥१॥

"इसलिये वही सुखी शोक-रहित हैं, जिनको लोकमें कहीं भी प्रिय नहीं । इसलिये जो अ-शोक, विरज होना चाहे, वह लोकमें कहीं प्रिय न बनावे ॥२॥"

पधानीय-सुत्त ।

[1]ऐसा[2] मैंने सुना—एक समय भगवान् श्रावस्तीमें ०जेतवनमें विहार करते थे ।

तब भगवान् सायंकालको प्रतिसंलयन(=ध्यान)से उठकर, जहां उपस्थान-शाला थी, वहां गये; जाकर बिछे आसनपर बैठे । आयुष्मान् सारिपुत्र भी सायंकाल ध्यानसे उठ, जहां उपस्थान-शाला थी वहां गये; जाकर भगवान्‌को अभिवादनकर, एक ओर बैठ गये । आयुष्मान् मौद्गल्यायन भी० । ०महाकाश्यप भी० । ०महाकात्यायन भी० । ०महाकोट्ठित भी० । ०महाचुन्द० । ०महाकप्पिन० । ०अनुरुद्ध० । ०रेवत० । आयुष्मान् आनन्द भी० । तब भगवान् बहुत रात तक बैठकीमें बिता, आसनसे उठ विहारमें चले गये । वह (दूसरे) आयुष्मान् भी भगवान्‌के जानेके थोड़ीही देर बाद, आसनसे उठकर अपने अपने विहार (=यथाविहार)को चले गये । जो कि वहां नये भिक्षु, थोड़ेही दिनके प्रव्रजित, इस धर्म-विनय (=धर्ममें) अभी आये थे, वह सूर्योदय तक खर्राटे ले सोते रहे । भगवान्‌ने दिव्य, विशुद्ध, अमानुष चक्षुसे उन भिक्षुओंको खर्राटे मार सोते देखा । देखकर जहां उपस्थान-शाला थी, वहां गये; जाकर रक्खे आसनपर बैठे । बैठकर भगवान्‌ने उन भिक्षुओंको आमंत्रित किया—

"भिक्षुओ ! सारिपुत्र कहां है ?० आनन्द कहां है ? भिक्षुओ ! वह स्थविर श्रावक कहां गये ?"

"भन्ते ! वह भी भगवान्‌के जानेके थोड़ी ही देर बाद आसनसे उठकर, अपने अपने विहारमें चले गये ।"

"तो भिक्षुओ ! स्थविर (=वृद्ध)से लेकर नये तक, सूर्योदय तक खर्राटे मारकर सोते हो ? तो क्या मानते हो, भिक्षुओ ! क्या तुमने देखा या सुना है, मूर्धाभिषिक्त (=अभिषेक-

---

१. पैंतीसवां वर्षावास (४३७ वि.पू.) श्रावस्ती जेतवनमें बिताया । २. अ.नि. ६:१:२:७ ।

प्राप्त) क्षत्रिय राजाको इच्छानुसार शयन-सुख, स्पर्श-सुख, मृद्ध(=आलस)-सुखके साथ विहार करते, जीवन पर्यन्त राज्य करते, या देशका प्रिय=मनाप होते ?"

"नहीं भन्ते !"

"साधु भिक्षुओ ! भिक्षुओ ! मैंनेभी नहीं देखा, नहीं सुना—राजा=मूर्धाभिषिक्त क्षत्रियको० । तो क्या मानतेहो, भिक्षुओ ! क्या तुमनेदेखा या सुना है [1]राष्ट्रिक (=रट्ठिक) ० । ० [2]पेत्तणक ० । ० सेनापतिक ० । ० [3]ग्राम-ग्रामिक ० । (=गाम-गामिक) ० [4]पूग-गामणिकको इच्छानुसार शयन-सुख०के साथ विहार करते, जीवन-पर्यन्त पूग-ग्रामणिकत्त्व करते, या पूगका प्रिय=मनाप होते ?" "नहीं भन्ते !"

"साधु, भिक्षुओ ! भिक्षुओ ! मैंने भी नहीं देखा ० । तो क्या मानते हो, भिक्षुओ ! क्या तुमने देखा या सुना है, शयन-सुख स्पर्श-सुख, मृद्ध-सुखसे युक्त, इन्द्रियोंके द्वारों-को न रोकनेवाले, भोजनकी मात्राको न जाननेवाले, जागरणमें न तत्पर, श्रमण ब्राह्मणको इच्छानुसार कुशल (=अच्छे) धर्मोकी विपश्यना न करनेवाला हो, पूर्वरात्र (=रातके पहिले भाग) और अपर-रात्र (=रातके पिछले)में बोधि-पक्षीय-धर्मोंकी भावना न करते, आस्रवोंके क्षयसे आस्रव-रहित चित्तकी विमुक्ति (=मुक्ति), प्रज्ञा-विमुक्तिको इसी जन्ममें स्वयं अभिज्ञानकर, साक्षात्कारकर, प्राप्तकर, विहरते ?" "नहीं भन्ते !"

"साधु भिक्षुओ ! मैंनेभी भिक्षुओ ! नहीं देखा ० । इसलिये भिक्षुओ ! ऐसा सीखना चाहिये—इन्द्रिय-द्वारको सुरक्षित रक्खूंगा । भोजनकी मात्रा (=परिमाण)का जाननेवाला होऊँगा । जागनेवाला ० । कुशल-धर्मोका विपश्यक ० । पूर्व-रात्र अपर-रात्रमें बोधि-पक्षीय धर्मोंकी भावनामें लग्न रहकर विहरूँगा । भिक्षुओ ! तुम्हें ऐसा सीखना चाहिये ।"

जरा-सुत्त

[5]ऐसा[6] मैंने सुना—एक समय भगवान् श्रावस्तीमें मृगार-माताके प्रासाद पूर्वाराम में विहार करते थे ।

उस समय भगवान् अपराह्णकालमें (=सायाह्न समय) ध्यानसे उठकर [7]पिछवाड़े धूपमें बैठे थे । तब आयुष्मान् आनंद जहां भगवान् थे, वहां गये । जाकर भगवान्को अभिवादनकर, भगवान् के शरीर को हाथसे मींजते हुये, भगवान्को बोले—

"आश्चर्य ! भन्ते !! अद्भुत ! भन्ते !! भन्ते ! भगवान्के चमड़ेका रंग उतना परि-शुद्ध, उतना पर्यवदात (=उज्ज्वल) नहीं है । गात्र (=अंग) शिथिल हैं । सब झुर्रियां पड़ी

१. गवर्नर=प्रदेशाधिकारी । २. नगराधिकारी. मेयर (?) । ३. ग्रामका अफसर । ४. एक समुदायका अफसर । ५. भगवान्ने छत्तीसवां (वि. पू. ४३६) वर्षावास श्रावस्ती (पूर्वाराम)में किया । ६. स. नि. ४७ : ५ : १ । ७. अ. क. "प्रासादकी छायासे पूर्व दिशामें, ढँके होनेसे प्रासादके पच्छिमवाले भागमें धूप थी" ।

हैं । शरीर आगेकी ओर झुका (=प्राग्भार=सामनेकी ओर लटका) है । इन्द्रियोंमें भी विकार (=अन्यथात्व) दिखाई पड़ता है—चक्षु-इन्द्रियमें, श्रोत्र०, घ्राण०, जिह्वा०, काय-इन्द्रियमें ।"

"आनन्द ! यह ऐसाही होताहै । यौवनमें जरा-धर्म (=बुढापा) है, आरोग्यमें व्याधि-धर्म है, जीवनमें मरण-धर्म है ।···।

भगवान्‌ने यह कहा । सुगतने यह कहकर फिर शास्ता (=बुद्ध) ने यह भी कहा—

"हे दुर्वर्ण करनेवाली जरे ! तुझ जराको धिक्कार है । चाहे सौवर्ष भी जीयें सभी मृत्यु-परायण हैं । (यह जरा) किसी को नहीं छोड़ती, सभीको मर्दन करती है ।"

(१२)

बोधि-राजकुमार-सुत्त (वि॰ पू॰ ४३५)।

[1]ऐसा मैंने सुना—एक समय भगवान् भर्ग (देश) में [2]सुंसुमारगिरिके भेस-कला-वन, मृगदावमें विहार करते थे। उस समय बोधि-राजकुमारने श्रमण या ब्राह्मण या किसी भी मनुष्यसे न भोगे कोक-नाद नामक प्रासादको हालहीमें बनवाया था। तब बोधि-राजकुमारने संजिकापुत्र [3]माणवकको सम्बोधित किया—

"आओ तुम सौम्य! संजिकापुत्र! जहां भगवान् हैं, वहां जाओ। जाकर मेरे वचनसे, भगवान्‌के चरणोंमें शिरसे वन्दनाकर, आरोग्य, अन्-आतंक, लघु-उत्थान (=शरीरकी कार्य-क्षमता) बल, अनुकूल विहार, पूछो—'भन्ते! बोधि-राजकुमार भगवान्‌के चरणोंमें शिरसे वन्दनाकर आरोग्य॰ पूछता है'। और यह भी कहो—'भन्ते! भिक्षु-संघसहित भगवान् बोधि-राजकुमारका कलका भोजन स्वीकार करें।"

"अच्छा हो (=भो)' कह संजिका-पुत्र माणवक जहां भगवान् थे, वहां गया। जाकर भगवान्‌से…(कुशल प्रश्न)…पूछ, एक ओर बैठ गया। एक ओर बैठकर संजिका-पुत्र माणवकने भगवान्‌से कहा—"हे गौतम! बोधि-राजकुमार आपके चरणोंमें॰। ॰बोधिराज-कुमारका कलका भोजन स्वीकार करें।"

भगवान्‌ने मौनद्वारा स्वीकार किया। तब संजिका-पुत्र माणवक भगवान्‌की स्वीकृति जान, आसनसे उठ जहां बोधि-राजकुमार था, वहां गया। जाकर बोधि राजकुमारसे बोला—

"आपके वचनसे मैंने उन गौतमको कहा—'हे गौतम! बोधि-राजकुमार॰। श्रमण गौतमने स्वीकार किया।"

तब बोधि-राजकुमारने उस रातके बीतनेपर अपने घरमें उत्तम खादनीय भोजनीय (पदार्थ) तैयार करवा, कोकनद-प्रासादको सफेद (=अवदात) धुस्सोंसे सीढ़ीके नीचे तक बिछवा, संजिकापुत्र माणवकको संबोधित किया—

"आओ सौम्य! संजिकापुत्र! जहां भगवान् हैं, वहां जाकर भगवान्‌को काल कहो—'भन्ते! काल है, भात (=भोजन) तय्यार होगया।"

"अच्छा भो!"…काल कहा…।

तब भगवान् पूर्वाह्ण समय पहिनकर पात्रचीवर ले, जहां बोधि-राजकुमारका घर (=निवे-सन) था, वहां गये। उस समय बोधि-राजकुमार भगवान्‌की प्रतीक्षा करता हुआ, द्वार-कोष्ठक (=नौबतखाना) के बाहर खड़ा था। बोधि-राजकुमारने दूरसे भगवान्‌को आते देखा। देखते ही अगवानीकर भगवान्‌की वन्दनाकर, आगे आगे करके जहां कोकनद-प्रासाद था, वहां लेगया। तब भगवान् निचली सीढ़ीके पास खड़े होगये। बोधि-राजकुमारने भगवान्

---

१. म. नि. २: ४९ (चुल्लवग्ग ५. में भी)। २. चुनार (? जि मिर्जापुर)। ३. ब्राह्मण-तरुण।

से कहा—"भन्ते ! भगवान् धुस्सोंपर चलें । सुगत ! धुस्सोंपर चलें, ताकि (यह) चिरकाल तक मेरे हित और सुखके लिये हो ।"

ऐसा कहनेपर भगवान् चुप रहे ।

दूसरीवारभी बोधि-राजकुमारने० । तीसरी वारभी ० ।

तब भगवानने आयुष्मान् आनन्दकी ओर देखा । आयुष्मान् आनन्दने बोधि-राजकुमारको कहा—

"राजकुमार ! धुस्सोंको समेट लो । भगवान् पांवड़े (=चैल-पंक्ति)पर न चढ़ेंगे । तथागत आनेवाली जनताका ख्यालकर रहे हैं ।"

बोधि-राजकुमारने धुस्सोंको समेटवाकर, कोकनद-प्रासादके ऊपर आसन बिछवाये । भगवान् कोकनदप्रासादपर चढ़, संघके साथ बिछे आसनपर बैठे । तब बोधि-राजकुमारने बुद्ध-प्रमुख भिक्षुसंघको अपने हाथसे उत्तम खादनीय भोजनीय (पदार्थों)से संतर्पित किया, संतुष्ट किया । भगवान्के भोजनकर पात्रसे हाथ खींच लेनेपर, बोधिराजकुमार एक नीचा आसन ले, एक ओर बैठ गया । एक ओर बैठे हुये बोधिराजकुमारने भगवान्से कहा—

"भन्ते ! मुझे ऐसा होता है, कि सुख सुखमें प्राप्य नहीं, सुख दुःखमें प्राप्य है ।"

"राजकुमार ! बोधिसे पहिले=बुद्ध न हो बोधि-सत्त्व होते समय, मुझे भी यही होता था—'सुख सुखमें प्राप्य नहीं है, सुख दुःखमें प्राप्य है ।' इसलिये राजकुमार ! मैं उस समय दहर (=नव-वयस्क) हो, बहुत काले काले केशवाला, सुन्दर (=भद्र) यौवनके साथ ही, प्रथम वयसमें, माता-पिताके अश्रुमुख होते, घरसे बेघर हो प्रव्रजित हुआ । इस प्रकार प्रव्रजित हो, जहां आलार-कालाम था, वहां गया । जाकर आलार कालामसे कहा—'आवुस कालाम ! इस धर्मविनयमें मैं ब्रह्मचर्य-वास करना चाहता हूं ।' ऐसा कहनेपर राजकुमार ! आलार-कालामने मुझे कहा—'विहरो आयुष्मान् ! यह ऐसा धर्म है, जिसमें विज्ञ (=जानकार) पुरुष जल्द ही अपने आचार्यत्वको स्वयं जानकर=साक्षात्कर,=प्राप्तकर विहार करेगा ।' सो मैंने जल्द ही=क्षिप्र ही उस धर्म (=बात)को पूरा करलिया । तब मैं उतने ही ओठ-छुये मात्र=कहने कहाने मात्रसे, ज्ञानवाद और स्थविरवाद (=वृद्धोंका सिद्धान्त) कहने लगा—'मैं जानता हूं, देखता हूं....' । तब मेरे मनमें ऐसा हुआ—आलार-कालामने 'इस धर्मको केवल श्रद्धासे स्वयं जानकर=साक्षात्कर=प्राप्तकर मैं विहरता हूं' यह मुझे नहीं बतलाया । जरूर आलार-कालाम इस धर्मको जानता देखता विहरता होगा । तब मैं जहां आलार-कालाम था, वहां गया । जाकर आलार-कालामसे पूछा—'आवुस कालाम ! तुम इस धर्मको स्वयं जानकर=साक्षात्कर=प्राप्तकर (=उपसंपद्य) कहां पर्यन्त बतलाते हो ?' ऐसा कहनेपर राजकुमार ! आलारकालामने 'आकिंचन्यायतन' बतलाया ।

तब मुझे ऐसा हुआ—'आलार-कालाम हीके पास श्रद्धा नहीं है, मेरे पास भी श्रद्धा है । आलार-कालाम हीके पास वीर्य नहीं है० । ०स्मृति० । ०समाधि० । ०प्रज्ञा० । क्यों न, जिस धर्मको आलार-कालाम—'स्वयं जानकर=साक्षात्कर=प्राप्तकर विहरता हूं'

कहता है ; उस धर्मको साक्षात्कार करनेके लिये मैं भी उद्योग करूँ । सो मैं विना देर किये= क्षिप्र ही उस धर्मको स्वयं जानकर=साक्षात्कर=प्राप्तकर विहरने लगा । तब मैंने राजकुमार !···आलारकालामको कहा—'आवुस कालाम ! तुम इतना ही इस धर्मको स्वयं जानकर० हमलोगोंको बतलाते हो ?'—'आवुस ! मैं इतना ही इस धर्मको स्वयं जानकर० बतलाता हूँ ।' आवुस ! इतना तो 'मैं भी इस धर्मको स्वयं जानकर० विहरता हूँ ।' आवुस ! हमें लाभ है, आवुस ! हमें सुलाभ मिला, जो हम आयुष्मान् जैसे स-ब्रह्मचारी (=गुरु-भाई)को देखते हैं ।···मैं जिस धर्मको स्वयं जानकर० बतलाता (=उपदेश करता) हूँ ; तुम भी उसी धर्मको स्वयं जान० विहरते हो, तुम जिस धर्मको स्वयं० ; मैं भी उसी धर्म-को० । इस प्रकार मैं जिस धर्मको जानता हूँ, उस धर्मको तुम जानते हो । जिस धर्मको तुम जानते हो, उस धर्मको मैं जानता हूँ । इस प्रकार जैसे तुम, वैसा मैं ; जैसा मैं, वैसे तुम हो । आवुस ! आओ अब हम दोनों ही इस गण (=जमात)को धारण करें ।' इस तरह मेरा आचार्य होते हुये भी, आलार-कालामने मुझ अन्तेवासी (=शिष्य)को अपने बराबरके स्थानपर स्थापित किया ; बड़े सत्कार (=पूजा)से सत्कृत किया । तब मुझे यों हुआ— 'यह धर्म न निर्वेद (=उदासीनता)के लिये है, न वैराग्यके लिये, न निरोधके लिये, न उपशम (=शांति)के लिये, न अभिज्ञा (=दिव्य-शक्ति)के लिये, न सम्बोधि (=परमज्ञान) के लिये, न निर्वाणके लिये है ; 'आकिंचन्यायतन' तक उत्पन्न होने हीके लिये (यह) है। सो मैं राजकुमार ! उस धर्मको अपर्याप्त मान, उस धर्मसे उदास हो चल दिया ।

"सो राजकुमार ! मैं 'क्या कुशल (=अच्छा) है' की गवेषण करता, सर्वोत्तम श्रेष्ठ शांतिपदको खोजता, जहाँ उद्दक राम-पुत्र था, वहाँ गया । जाकर उद्दक (=उद्रक) राम-पुत्रसे बोला—'आवुस ! इस धर्म-विनयमें मैं ब्रह्मचर्य पालन करना चाहता हूँ ।' ऐसा कहनेपर राजकुमार ! उद्दक राम-पुत्र मुझसे बोला—

"विहरो आयुष्मान् ! यह वैसा धर्म है, जिसमें विज्ञ पुरुष जल्दही अपने आचार्यत्वको, स्वयं जानकर=साक्षात् कर=प्राप्तकर विहार करेगा' । सो मैंने तुरन्त क्षिप्रही उस धर्मको पूरा कर लिया । सो मैं उतनेही ओठ-छुये-मात्र=कहने कहाने मात्रसे ज्ञानवाद, और स्थविर-वाद कहने लगा—'मैं जानता हूँ, देखता हूँ···' । तब मुझे ऐसा हुआ—रामने मुझे यह न बतलाया "मैं इस धर्मको केवल श्रद्धासे, स्वयं जानकर=साक्षात्कर=प्राप्तकर विहरता हूँ" । जरूर राम इस धर्मको जानते देखते विहरता होगा । तब···उद्दक रामपुत्रसे मैंने पूछा—'आवुस रामपुत्र ! इस धर्मको स्वयं जान० ०बतलाते हो ?' ऐसा कहने पर ! उद्दक राम-पुत्रने "[1]नैव-संज्ञा-नासंज्ञायतन' बतलाया । तब मेरे (मन)में हुआ—' उद्दक रामपुत्रके पासही श्रद्धा नहीं है, मेर पास भी श्रद्धा है० । क्यों न० । इस तरह मेरा आचार्य होते हुये उद्दक रामपुत्रने मुझ अन्तेवासीको अपने बराबरके स्थानपर स्थापित किया० । ०सो मैं ! उस धर्मसे उदास हो चल दिया ।

"राजकुमार ! 'क्या अच्छा है' की गवेषणा करता (=किंकुसल-गवेसी), सर्वोत्तम,

१. एक ध्यान ।

श्रेष्ठ शांतिपदको खोजते हुए, मगधमें क्रमशः चारिका करते, जहाँ उरुवेला सेनानी-निगम (=क़स्बा) था, वहाँ पहुँचा। वहाँ मैंने रमणीय भूमि-भाग, सुन्दर वन-खंड, वहती नदी, श्वेत⋯सुप्रतिष्ठित, चारों ओर रमणीय [1]गोचर-ग्राम देखा। तव मुझे राजकुमार! ऐसा हुआ—'रमणीय है, हो! यह भूमि-भाग०। प्रधान-इच्छुक कुल-पुत्रके [2]प्रधानके लिये यह वहुत ठीक (स्थान) है'। सो मैं 'प्रधानके लिये यह अलं (=ठीक) है', (सोच), वहीं बैठ गया। मुझे (उस समय) अद्भुत, अ-श्रुत-पूर्व, तीन उपमायें भान हुईं।—

'जैसे! गीला काष्ठ भीगे (=सस्नेह) पानीमें डाला जाये। (कोई) पुरुष 'आग बनाऊँगा,' 'तेज प्रादुर्भूत करूँगा' (सोच), [3]उत्तरारणी लेकर आये। तो क्या वह पुरुष गीले पानीमें पड़ी गीलेकाष्टकी उत्तरारणीको लेकर, मथकर अग्नि बना सकेगा, तेज प्रादुर्भूत कर सकेगा?'

"नहीं भन्ते!"

"सो किस लिये?" "(एक तो वह) स्नेह-युक्त गीला काष्ठ है, फिर वह पानीमें डाला है।⋯ऐसा करनेवाला वह पुरुष सिर्फ थकावट, पीड़ाका ही भागी होगा।"

"ऐसेही राजकुमार! जो ब्राह्मण काया द्वारा काम वासनाओंमें लग्न हो विचरते हैं। जो कुछभी इनका काम (=वासनाओं)में काम-रुचि=काम-स्नेह=काम-मूर्छा=काम-पिपासा =काम-परिदाह है, वह यदि भीतरसे नहीं छूटा है, नहीं शमित हुआ हैं। तो प्रयत्नशील होने पर भी वह श्रमण-ब्राह्मण दुःख(-द) तीव्र कटु, वेदना (मात्र) सह रहे हैं। वह ज्ञान-दर्शन अनुत्तर-संबोध (=परम-ज्ञान)के अयोग्य है।

"राजकुमार! यह मुझे पहिली अद्भुत, अश्रुत-पूर्व उपमा भान हुई।

"और भी राज-कुमार! मुझे दूसरी अद्भुत अ-श्रुत-पूर्व उपमा भान हुई। राजकुमार! जैसे स्नेह-युक्त गीला काष्ठ [जलके पास स्थलपर फेंका हो। और कोई पुरुष उत्तरारणी लेकर आये—'अग्नि बनाऊँगा' 'तेज प्रादुर्भूत करूँगा'। तो क्या समझते हो राजकुमार! क्या वह पुरुष अग्नि बनासकैगा, तेज प्रदुर्भूत कर सगैगा?"

"नहीं भन्ते"

"सो किस लिये?"

"(एक तो) वह काष्ठ स्नेह-युक्त है, और पानीके पास स्थलपर फेंका हुआ भी है। ⋯वह पुरुष सिर्फ थकावट, पीड़ा (मात्र) का ही भागी होगा।"

"ऐसे ही राजकुमार! जो कोई श्रमण या ब्राह्मण कायाके द्वारा वासनाओंसे लग्नहो विहरते हैं। ०अयोग्य हैं। राजकुमार! मुझे यह दूसरी०।

"और भी राजकुमार! तीसरी अद्भुत अ-श्रुत-पूर्व उपमा भान हुई।—जैसे नीरस शुष्क काष्ठ जलसे दूर स्थलपर फेंका है। और कोई पुरुष उत्तरारणी लेकर आये—'आग

---

१. भिक्षाटन-योग्य पार्श्ववर्ती ग्राम। २. निर्वाण-प्राप्ति करानेवाली योग-युक्ति। ३. रगड़कर आग निकालनेकी लकड़ी।

बनाऊँगा', 'तेज प्रादुर्भूत करूँगा ।' तो क्या ... वह पुरुष नीरस-शुष्क, जलसे दूर फेंके काष्ठको, उत्तरारणीसे मथन करके अग्नि बना सकेगा, तेज प्रादुर्भूत कर सकेगा ?

" हां, भन्ते !"

" सो किसलिये ?"

" भन्ते ! वह नीरस, सूखा काष्ठ है, और पानीसे दूर स्थलपर फेंका है ।"

" ऐसेही राजकुमार ! जो कोई श्रमण ब्राह्मण, कायाद्वारा काम-वासनाओंसे अलग हो विहरते हैं । और जो उनका काम-वासनाओंमें ०काम-परिदाह है ; वह भीतरसे भी सुप्रहीण (=अच्छी तरह छूट गया) है, सुशमित है । तो वह प्रयत्नशील श्रमण ब्राह्मण दुःख (-द), तीव्र, कटु वेदना नहीं भोगते । वह ज्ञान-दर्शन=अनुत्तर-संबोधके पात्र हैं । यदि वह प्रयत्नशील श्रमण ब्राह्मण दुःख, तीव्र, कटु वेदनाको भोगें भी, (तो भी) वह ज्ञान-दर्शन=अनुत्तर-संबोधके पात्र हैं । यह राजकुमार तीसरी० ।

"तब राजकुमार ! मेरे (मनमें) हुआ—" क्यों न मैं दांतोंके ऊपर दांत रख, जिह्वा-द्वारा तालूको दबा, मनसे मनको निग्रह करूँ, दबाऊँ, संतापित करूँ । तब मेरे दांतपर दांत रखने, जिह्वासे तालू दबाने, मनसे मनको पकड़ने, दबाने, तपानेमें ; कांखसे पसीना निकलता था ; जैसे कि राजकुमार ! बल-वान् पुरुष सीससे पकड़कर, कंधेसे पकड़कर, दुर्बल-तर पुरुष को पकड़े, दबाये, तपाये ; ऐसेही राजकुमार ! मेरे दांतपर दांत० कांखसे पसीना निकलता था । उस समय मैंने न दबने वाला वीर्य (=उद्योग) आरम्भ किया हुआ था, स्मृति बनी थी, काया भी तत्पर थी ।

" तब मुझे यह हुआ—क्यों न मैं श्वासारहित ध्यान धरूँ ? सो मैंने राजकुमार ! मुख और नासिकासे श्वासका आना जाना रोक दिया । तब राजकुमार ! मेरे मुख और नासिकासे आश्वास-प्रश्वासके रुक जानेपर, कानके छिद्रोंसे निकलते वातों (=हवाओं) का बहुत अधिक शब्द होने लगा । जैसे कि—लोहारकी धौंकनीसे धौंकनेसे बहुत अधिक शब्द होता है ; ऐसेही० । ०न दबनेवाला वीर्य आरम्भ किया हुआ था० ।"

"तब मुझे यह हुआ—क्यों न मैं श्वास-रहित ध्यान धरूँ ? सो मैंने राजकुमार ! मुखसे० । तब मेरे मुख, नासा और कर्णसे आश्वास-प्रश्वासके रुक जानेसे, मूर्धामें बहुत अधिक वात टकराते । जैसे बलवान् पुरुष तीक्ष्ण शिखरसे मूर्धा (=शिर) को मथै, ऐसेही राजकुमार ! मेरे ० ।

" तब मुझे यह हुआ—क्यों न श्वास-रहित ध्यान धरूँ ?—सो मैंने मुख, नासा, कर्णसे आश्वास-प्रश्वास को रोक दिया । तब मुझे मुख, नासा, कर्णसे आश्वास-प्रश्वासके रुक जानेसे सीसमें बहुत अधिक सीस-वेदना (=शिर-दर्द) होती थी । ०न दबाने वाला० ।...

" तब राजकुमार ! मुझे यह हुआ—क्यों न श्वास-रहितही ध्यान धरूँ ?—सो मैंने० । ०रुक जानेपर बहुत अधिक वात पेट (=कुक्षि)को छेदते थे । जैसे कि दक्ष (=चतुर) गो-घातक या गो-घातकका अन्तेवासी तेज गो-विकर्त्तन (=छुरा)से पेटको काटे ; ऐसेही० । न दबने वाला० ।

"तब मुझे यह हुआ, 'क्यों न श्वास-रहितही ध्यान (फिर) धरूँ'०। राजकुमार० । ०कायामें अत्यधिक दाह होता था। जैसे कि दो बलवान् पुरुष दुर्बल-तर पुरुषको अनेक बाहोंमें पकड़कर अंगारोंपर तपावें; चारों ओर तपावें; ऐसेही० । न दबते० ।

"देवता भी मुझे कहते थे—'श्रमण गौतम मर गया।' कोई २ देवता यों कहते थे—'श्रमण गौतम नहीं मरा, न मरेगा : श्रमण गौतम अर्हत् है। अर्हतका तो इस प्रकारका विहार होताही है।

"....मुझे यह हुआ—" क्यों न आहारको बिल्कुलही छोड़ देना स्वीकार करूँ। तब देवताओंने मेरे पास आकर कहा—मार्ष! तुम आहारका बिल्कुल छोड़ना स्वीकार करो। हम तुम्हारे रोम-कूपोंद्वारा दिव्य-ओज डाल देंगे; उसीसे तुम निर्वाह करोगे।....। तब मुझे यह हुआ—मैं (अपनेको) सब तरहसे निराहारी जानूँगा और यह देवता रोमकूपोंद्वारा दिव्य ओज मेरे रोम-कूपोंके भीतर डालेंगे; मैं उसीसे निर्वाह करूँगा। यह मेरा मृषा होगा। सो मैंने उन देवताओंका प्रत्याख्यान किया—'रहने दो'।

"तब मुझे यह हुआ—क्यों न मैं थोड़ा थोड़ा आहार ग्रहण करूँ—पसर भर मूँग का जूस, या कुल्थीका जूस या मटरका जूस, या अरहरका जूस—। सो मैं थोड़ा थोड़ा पसर पसर मूँगका जूस० ग्रहण करने लगा। थोड़ा थोड़ा पसर पसर भर मूँगका जूस ०ग्रहण करते हुये, मेरा शरीर (दुर्बलताकी) चरम सीमाको पहुँच गया। जैसे आसीतिक (=वनस्पति विशेष)की गांठें,... वैसेही उस अल्प आहारसे मेरे अंग प्रत्यङ्ग हो गये। उस अल्प आहारसे जैसे ऊँटका पैर, वैसेही मेरा कूल्हा (=आनिसद) होगया, ०जैसे सूओंकी पांती (=वट्टनावली) वैसेही ऊँचे नीचे मेरे पीठके कांटे होगये। ०जैसे पुरानी शालाकी कड़ियां (=टोड़े=गोपानसी) अहँण-वहंण (=ओलुग्ग-विलुग्गा) होती हैं, ऐसेही मेरी पंसुलिया हो गई थीं। जैसे गहरे कूयें (=उदपान)में पानीका तारा (=उदक-तारा) गहराईमें, बहुत दूर दिखाई देता है, उसी०। जैसे कच्चा तोड़ा कड़वा लौका हवा-धूपसे चिचुक (=संपुटित) जाता है मुर्झा जाता है; ऐसेही मेरे शिरकी खाल चिचुक गई थी, मुर्झा गई थी।... राजकुमार! यदि मैं पेटकी खालको मसलता, तो पीठके कांटोंको पकड़ लेता था, पीठके कांटोंको मसलता तो पेटकी खालको पकड़ लेता था। उस अल्पाहारसे मेरे पीठके कांटे और पेटकी खाल बिल्कुल सट गई थी।...यदि मैं पाखाना या मूत्र करता, वहीं भहराकर (=उपकुज्ज) . . ड़ता था। जब मैं कायाको सहराते (=अस्सासेन्तो) हुये, हाथसे गात्रको मसलता था; तो हाथसे गात्र मसलते वक्त, कायासे सड़ी जड़ वाले (=पूति-मूल) रोम झड़ पड़ते थे।....मनुष्य भी मुझे देखकर कहते थे—'श्रमण गौतम कालाहै'। कोई कोई मनुष्य कहते थे—"श्रमण गौतम काला नहीं है, श्याम है।" कोई कोई मनुष्य यों कहते थे "श्रमण गौतम काला नहीं है, न श्याम ही है, मंगुर-वर्ण (=[1]मंगुरच्छवि) है'। राजकुमार! मेरा वैसा परि-शुद्ध परि-अवदात (=सफेद, गोरा) छवि-वर्ण (=चमड़ेका रङ्ग) नष्ट हो गया था।

"तब मुझे यों हुआ—अतीत कालमें जिन किन्हीं श्रमणों ब्राह्मणोंने घोर दुःख तीव्र और

---

१. मंगुर मछली।

कटु वेदनायें सहीं, इतनेही पर्यन्त, (सही होंगी) इससे अधिक नहीं; भविष्य कालमें जो कोई श्रमण ब्राह्मण घोर दुःख तीव्र और कटु वेदनायें सहेंगे, इतनेही पर्यन्त, इससे अधिक नहीं। आजकलभी जो कोई श्रमण ब्राह्मण घोर दुःख, तीव्र, और कटु वेदना सह रहे हैं ०। लेकिन राजकुमार! मैंने उस दुष्कर कारिकासे उत्तर-मनुष्य-धर्म [1]अलमार्य-ज्ञान-दर्शन-विशेष न पाया। (विचार हुआ) बोधके लिये क्या कोई दूसरा मार्ग है?

"तब राजकुमार! मुझे यों हुआ—"मालूम है मैंने पिता (शुद्धोदन) शाक्यके खेतपर जामुनकी ठंडी छायाके नीचे, बैठ, काम और अकुशल-धर्मोंको हटाकर प्रथम ध्यानको प्राप्त हो, विहार किया था। शायद वह मार्ग बोधिका हो। तब राजकुमार! मुझे यह हुआ-क्या मैं उस सुखसे डरता हूँ, जो सुख काम और अकुशल-धर्मोंसे भिन्नमें है। फिर मुझे राजकुमार यह हुआ—मैं उस सुखसे नहीं डरता हूँ, जो सुख०। तब मुझे राजकुमार यह हुआ—इस प्रकार अत्यन्त कृश, पतले कायासे वह सुख मिलना सुकर नहीं, क्यों न मैं स्थूल आहार—भात-दाल (=कुल्माष) ग्रहण करूँ। सो मैं राजकुमार! स्थूल आहार ओदन-कुल्माष ग्रहण करने लगा। उस समय राजकुमार! मेरे पास पांच भिक्षु (इस आशासे) रहा करते थे; कि श्रमण गौतम जिस धर्मको प्राप्त करेगा, उसे हम लोगोंको (भी) बतलायेगा। लेकिन जब मैं स्थूल आहार ओदन कुल्माष ग्रहण करने लगा; तब वह पांचों, भिक्षु, 'श्रमण गौतम बाहुलिक (=बहुत संग्रह करनेवाला) प्रधानसे विमुख, बाहुल्य परायण हो गया' (समझ)-उदासीन हो, चलेगये।

" तब राजकुमार! मैं स्थूल आहार ग्रहणकर, सबल हो काम और अकुशल-धर्मोंसे वर्जित, वितर्क तथा विचारसहित, एकान्ततासे उत्पन्न (=विवेकज), प्रीति-सुखवाले प्रथम-ध्यानको प्राप्त हो विहरने लगा। वितर्क और विचारके उपशमित होनेपर, भीतरके संप्रसादन (=प्रसन्नता)=चित्तकी एकाग्रता-युक्त, वितर्क-विचार-रहित, समाधिसे उत्पन्न प्रीति-सुख वाले द्वितीय ध्यानको प्राप्तहो विहरने लगा।······प्रीति और विरागकी उपेक्षाकर [2]स्मृति और संप्रजन्यके साथ, कायासे सुखको अनुभव (=प्रतिसंवेदन) करता हुआ, विहरने लगा। जिसको कि आर्यजन उपेक्षक स्मृतिमान् और सुखविहारी कहते हैं; ऐसे तृतीय ध्यानको प्राप्तहो विहार करनेलगा।···।

"सुख और दुःखके विनाश (=प्रहाण)से, पहिलेही, सौमनस्य और दौर्मनस्यके पहिले ही अस्त होजानेसे, दुःख-रहित, सुख-रहित उपेक्षक हो, स्मृतिकी परिशुद्धतासे युक्त चतुर्थ ध्यानको प्राप्त हो विहार करनेलगा।

" तब इसप्रकार चित्तके परिशुद्ध=परि-अवदात,=अंगणरहित=उपक्लेश-रहित, मृदु हुये, काम-लायक, स्थिर=अचलता-प्राप्त=समाधिप्राप्त होजाने पर, पूर्वजन्मों की स्मृतिके ज्ञान (=पूर्वनिवासानुस्मृति-ज्ञान)के लिये चित्तको मैंने झुकाया। फिर मैं पूर्वकृत अनेक पूर्व-निवासों (=जन्मों) को स्मरण करने लगा—जैसे एक जन्म भी, दो जन्म भी, ...।

"आकार-सहित उद्देश्य-सहित पूर्वकृत अनेक पूर्व-निवासोंको स्मरण करने लगा। इस

१. परम-तत्त्व। २. देखो स्मृति-सम्प्रजन्य।

प्रकार प्रमाद-रहित, तत्पर, हो आत्म-संयमयुक्त विहरते हुये, मुझे रात के पहिले याममें प्रथम विद्या प्राप्त हुई; अविद्या गई, विद्या आई; तम नष्ट हुआ, आलोक उत्पन्न हुआ ।

"सो इस प्रकार चित्तके परिशुद्ध० समाहित होनेपर, प्राणियोंके जन्म-मरणके ज्ञान (=च्युति-उत्पाद-ज्ञान)के लिये मैंने चित्तको झुकाया । सो मनुष्य (के नेत्रों)से परेकी दिव्य विशुद्ध चक्षुसे, मैं अच्छे बुरे, सुवर्ण, दुर्वर्ण, सु-गत, दुर्गत, मरते, उत्पन्न होते, प्राणियोंको देखने लगा । सो० ···कर्मानुसार जन्मको प्राप्त प्राणियोंको जानने लगा । रातके बिचले पहर (=याम)में यह द्वितीय विद्या उत्पन्न हुई । अविद्या गई० ।

"सो इस प्रकार चित्तके० । आस्रवों (=मल-दोष)के क्षयके ज्ञानके लिये मैंने चित्तको झुकाया—सो 'यह [1]दुःख है' इसे यथार्थसे जान लिया; 'यह दुःख-समुदय है' इसे यथार्थसे जान लिया; 'यह [2]दुःख-निरोध है' इसे यथार्थसे जान लिया; 'यह दुःख-निरोध-गामिनी प्रतिपद् है' इसे यथार्थसे जान लिया । 'यह आस्रव हैं' इन्हें यथार्थ से जानलिया; 'यह आस्रव-समुदय हैं' इसे०, 'यह आस्रव-निरोध०' 'यह आस्रव-निरोध=गामिनी-प्रतिपद् है' इसे० । सो इस प्रकार जानते, इस प्रकार देखते, मेरा चित्त कामस्रवोंसे मुक्त होगया, भवा-स्रवोंसे मुक्त होगया, अविद्यास्रवसे भी विमुक्त होगया । छूट (=विमुक्त) जानेपर 'छूट गया (विमुक्त)' ऐसा ज्ञान हुआ । 'जन्म खतम होगया, ब्रह्मचर्य पूरा होगया, करना था सो करलिया, अब यहांके लिये कुछ (करणीय) नहीं' इसे जाना । राजकुमार ! रातके पिछले याममें यह तृतीय विद्या प्राप्त हुई । अविद्या चली गई० ।[3]०।

"तब राजकुमार ! पंचवर्गीय भिक्षु मेरे द्वारा इस प्रकार उपदेशित हो, =अनुशासित हो, अचिर ही में जिसके लिये कुल-पुत्र घरसे बेघर हो प्रव्रजित होते हैं, उस उत्तम ब्रह्मचर्य-फलको, इसी जन्ममें स्वयं जानकर=साक्षात् कर=उपलाभकर, विहरने लगे ।'

ऐसा कहनेपर बोधि राजकुमार ने भगवान्‌से कहा—

"भन्ते ! कितनी देरमें तथागत (को) विनायक (=नेता) पा, भिक्षु जिसके लिये कुल-पुत्र घरसे बेघर हो प्रव्रजित होते हैं, उस उत्तम ब्रह्म-चर्य-फलको इसी जन्ममें स्वयं जानकर=साक्षात्कर=उपलाभकर, विहरने लगेगा ?"

"राजकुमार ! तुझसे ही यहां पूछता हूं, जैसा तुझे ठीक लगे, वैसा बतला । हाथीवानी =अंकुशग्रहणके शिल्प (=कला)में तू चतुर है न ?"

"भन्ते ! हां मैं हाथीवानी० में चतुर हूं,"

"तो राजकुमार ! यदि कोई पुरुष—'बोधि-राजकुमार हाथीवानी=अंकुश-ग्रहण शिल्प जानता है, उसके पाससे हाथीवानी=अंकुश-ग्रहण शिल्पको सीखूंगा' (सोचकर) आवे । और वह हो-श्रद्धारहित, (तो क्या) जितना श्रद्धा-सहित (मनुष्य) द्वारा पाया जा सकता है, (उतना) वह पावेगा ? वह हो बहुत-रोगी, (तो क्या) जितना अल्प-रोगी-द्वारा पाया जा सकता है, (उतना) वह पावेगा । ०शठ मायावी०, अशठ अमायावी० ०आलसी०, ०निरालस० ।

---

१. देखो पटिच्च-समुप्पाद-सुत्त । २. देखो पृष्ठ १२३ । ३. पृष्ठ १६—२९ ।

दुष्प्रज्ञ०, प्रज्ञावान्० । तो राजकुमार ! क्या वह पुरुष तेरे पास हाथीवानी = अंकुश-ग्रहण शिल्पको सीखेगा ?"

"एक दोषसे भी युक्त पुरुष मेरे पास हाथीवानी = अंकुश-ग्रहण शिल्प नहीं सीखा सकता, पांचों दोषोंसे युक्तके लिये तो कहना ही क्या ?"

"तो राजकुमार ! यदि कोई मनुष्य 'बोधि-राजकुमार हाथीवानी० जानता है० शिल्पको सीखूँगा' (सोचकर) आवे । वह हो श्रद्धावान्०; ०अल्प-रोगी०; ०अशठ = अमायावी०; निरालस० । तो राजकुमार ! क्या वह पुरुष तेरे पास हाथीवानी = अंकुश-ग्रहण शिल्प सीख सकेगा ?"

"भन्ते ! एक बातसे युक्त भी पुरुष मेरे पास० ।"

"इसी प्रकार राजकुमार ! निर्वाण-साधना (= प्रधान)के भी पांच अंग हैं । कौनसे पांच ?—(१) भिक्षु श्रद्धालु हो, तथागतकी बोधि (= परमज्ञान)पर श्रद्धा करता हो—' कि वह भगवान्, अर्हत्, सम्यक्-संबुद्ध, विद्या-आचरण-संपन्न, सुगत, लोक-विद्, अनुत्तर-पुरुष-दम्य-सारथी, देव-मनुष्यके शास्ता, बुद्ध, भगवान् हैं । (२) अल्प-रोगी = अल्प-आतङ्की, न बहुत शीत, न बहुत उष्ण, साधनायोग्य, सम-विपाकवाली मध्यम प्रकृति (= ग्रहणी)से युक्त हो । (३) अ-शठ = अ-मायावी हो ; शास्ता (= गुरु) और विज्ञ स-ब्रह्मचारियोंमें, कुशल धर्मोंके उत्पादनमें निरालस हो ; कुशल धर्मोंमें कंधेसे जुआ न हटानेवाला, दृढ़-पराक्रमी ०लिष्ट हो । (५) उदय-प्रज्ञावान् हो, उदय-अस्त-गामिनी, आर्यनिर्वेधिक सम्यक् दुःख-क्षय-गामिनी प्रज्ञासे युक्त हो । राजकुमार ! प्रधानके यह पांच अंग हैं ।

"राजकुमार ! इन पांच प्रधानीय अंगोंसे युक्त भिक्षु, तथागतको विनायक (= नेता) पा, अनुत्तर ब्रह्मचर्य-फलको इसी जन्ममें सात वर्षोंमें, स्वयं जानकर = साक्षात्कर = प्राप्तकर विहरेगा ।"

"राजकुमार ! छोड़ो सातवर्ष ; इन पांच प्रधानीय अंगोंसे युक्त भिक्षु०, छः वर्षोंमें । ०पांच वर्षोंमें । ०चार वर्षोंमें । ०तीन वर्षोंमें । ०दो वर्षोंमें । ०एक वर्षमें । ०सात मासमें । ०छः मासमें० । ०पांच मासमें । ०चार मासमें । ०तीन मासमें । ०दो मासमें । ०एक मासमें । ०सात रात-दिनमें । ०छः रात-दिनमें । ०पांच रात-दिनमें । ०चार रात-दिनमें । ०तीन रात-दिनमें । ०दो रात-दिनमें । ०एक रात-दिनमें ।

"छोड़ो राजकुमार ! एक रात-दिन ; इन पांच प्रधानीय अंगोंसे युक्त भिक्षु, तथागतको विनायक पा, सायंकालको अनुशासन किया, प्रातःकाल विशेष (= निर्वाणपद)को प्राप्त कर सकता है, प्रातः अनुशासित सायं विशेष प्राप्त कर सकता है ।"

ऐसा कहनेपर बोधि-राजकुमार बोला—अहो ! बुद्ध !!, अहो ! धर्म !! अहो ! [१]स्वाख्यात-पन !! जहां कि सायं अनुशासित प्रातः विशेषको पा जाये, प्रातः अनुशासित सा विशेषको पा जाये ।"

---

१. उत्तम-वर्णन ।

ऐसा बोलनेपर संजिका-पुत्रने बोधि-राजकुमारको कहा—"ऐसा ही है, हे [1]भवान् बोधि !—'अहो ! बुद्ध !! अहो ! धर्म !!, अहो ! धर्मका स्वाख्यात-पन ।' (यह) तुम कहते हो; तो भी उस धर्म और भिक्षु-संघकी शरण नहीं जाते ?"

"सौम्य ! संजिका-पुत्र ! ऐसा मत कहो । सौम्य ! संजिका-पुत्र ! ऐसा मत कहो । सौम्य संजिका-पुत्र ! मैंने अय्या (=आर्या) के मुंहसे सुना, (उन्हींके) मुखसे ग्रहण किया है । सौम्य ! संजिका-पुत्र एकबार भगवान् कौशाम्बीमें घोषितारामसें विहार करते थे । तब मेरी गर्भवती अय्या जहां भगवान् थे, वहां गई, जाकर भगवान्को अभिवादनकर एक ओर बैठ गई । एक ओर बैठी मेरी अय्याने भगवान्को यों कहा—'भन्ते ! जो मेरी कोखमें यह कुमार या कुमारी है, वह भगवान्की धर्मकी और भिक्षु-संघकी शरण जाता है । आजसे भगवान् इसे सांजलि शरणागत उपासक धारण करें ।

"सौम्य ! संजिका-पुत्र ! एकबार भगवान् यहीं भर्गमें सुंसुमार-गिरिके भेसकलावन मृगदायनमें विहरते थे, तब मेरी धाई (=धात्री) मुझे गोदमें लेकर जहां भगवान् थे, वहां गई । जाकर भगवान्को अभिवादनकर एक ओर खड़ी होगई । एक ओर खड़ी हुई मेरी धाईने भगवान्को कहा—भन्ते ! यह बोधि-राजकुमार भगवान्की, धर्मकी, और भिक्षु-संघकी०

"[2]सौम्य ! संजिकापुत्र ! यह मैं तीसरीबार भी भगवान्की, धर्मकी और भिक्षु-संघकी शरण जाता हूं । आजसे भगवान् मुझे सांजलि शरणागत उपासक धारण करें ।"

---

१. आप ।

२. म. नि. अ. क. २:४:५ ···कौशाम्बीनगरमें परन्तप नामक राजा राज्य करता था । (एकसमय) गर्भिणी राज-महिषी आकाशके नीचे राजाके साथ धूप लेती, लाल कम्बल ओढ़े बैठी थी । एक हाथीकी सूरत (=हत्थि लिङ्ग)का पक्षी (उसे) मांसका टुकड़ा जान लेकर आकाशमें उड़ गया । 'कहीं मुझे छोड़ न दे'—इस डरसे वह चुप रही । उसने उसे पर्वतकी जड़में उगे एक वृक्षके ऊपर रख दिया । तब उसने हाथसे ताली बजाकर बड़ा हल्ला किया । पक्षी भाग गया । उसको वहां प्रसव-वेदना शुरु हुई । दैवके बरसते तीन यामकी सारी रात, कम्बल ओढ़े बैठी रही । वहांसे पास हीमें एक तापस रहता था । वह उसका शब्द सुन, लाली छाते (=अरुणोद्गते) ही वृक्षके नीचे आया । जाति पूछ, सीढ़ी बांध उतारकर अपने स्थानपर ले जा, उसे खिचड़ी (=यागू) पिलायी । बालक मेघ-ऋतु तथा पर्वत-ऋतुको लेकर पैदा हुआ था, इसलिये उसका नाम उदयन रक्खा । तापसने फल-फल लाकर दोनों जनोंको पोसा । उसने एक दिन तापसके आनेके समय अगवानीकर···तापसके व्रतको भंगकर दिया ।

उनके बहुत कालतक एक साथ रहते रहते परंतप राजा मर गया । तापसने रातको नक्षत्र देख राजाकी मृत्युको जान पूछा-"तेरा राजा मर गया (अब) तेरा पुत्र क्या यहां बसना चाहता है, या पैतृक राज्यमें छत्रधारण करना (चाहता है) ?" । उसने पुत्रको आदिसे (अन्त तक) सब कथा कह, उसकी छत्र-धारण करनेकी इच्छा सुन, तापससे कहा । तापस हस्ति-ग्रंथ शिल्प जानता था । (···उसने यह शिल्प) शक्रके पाससे, (पाया था) । पहिले शक्रने इसके पास आकर— 'क्या चीजकी तकलीफ है ?' पूछा । उसने 'हाथियोंका

घेरा है' कहा । उसको शक्रने हस्ति-ग्रन्थ और वीणा दे—"भगानेके लिये वीणा बजा इस श्लोक को बोलना, बुलानेके लिये वीणा बजाकर इस श्लोक को बोलना" कहा । तापसने वह शिल्प कुमारको दिया । कुमारने वर्गदके वृक्षपर चढ़ हाथियोंके आनेपर वीणा बजा श्लोक कहा, हाथी डरकर भाग गये । उसने शिल्पके माहात्म्यको देख, दूसरे दिन बुलानेका शिल्प प्रयोग किया । हाथियोंके सर्दारने आकर कंधेको नवा दिया । वह उसके कंधेपर चढ़, युद्धके लायक तरुण हाथियों को चुन, कम्बल और अंगूठी ले माता पिताको वन्दना कर, निकल क्रमशः···गांवमें प्रवेश कर—'मैं राजाका पुत्र हूं, संपत् चाहनेवाले आवें'—इसप्रकार आदमियोंको जमाकर, नगरको घेरकर,—'मैं राजाका पुत्र हूँ, मुझे छत्रदो' (कहा) । न विश्वास करनेवालोंको कम्बल और अंगूठी दिखा, छत्र धारण किया । वह हाथीका शौकीन, होनेसे—"अमुक स्थानपर सुन्दर हाथी है" कहनेपर जाकर पकड़ता था ।

चण्डप्रद्योत राजाने 'उसके पाससे शिल्प सीखूंगा' (विचार) काठका हाथी भेज, उसके भीतर योधाओंको बैठा, उस हाथीको पकड़नेके लिये आये हुये (उदयन)को पकड़, उसके पास शिल्प सीखनेके लिये अपनी लड़कीको भेजा । वह उसके साथ- (अनुरक्त)हो, उसे ले अपने नगरमें चला गया । उसीकी कोखसे उत्पन्न इस बोधि राजकुमारने अपने पिताके पास (यह) शिल्प सीखा था ।

\+ \+ \+

(१३)

(वि. पू. ४३५-३१) कण्णत्थलक-सुत्त । संघभेदक-खंधक । (देवदत्त)-सुत्त । सकलिक-सुत्त । देवदत्त-विद्रोह । विसाखा-सुत्त । जटिल-सुत्त ।

[1]ऐसा मैंने सुना—एक समय भगवान् उजुका ([2]=उजुञ्ञा=उरुञ्ञा)में कण्णत्थलक (=कर्ण-स्थलक) मृग-दावमें विहार करते थे ।

उस समय राजा प्रसेनजित् कोसल किसी कामसे उजुका (=ऋजुका)में आया हुआ था, राजा प्रसेनजित् कोसलने एक आदमीको आमंत्रित किया—

"आओ हे पुरुष ! जहां भगवान् हैं, वहां जाओ । जाकर मेरे वचनसे भगवान्‌के चरणोंमें शिरसे वन्दना करना । अल्पाबाधा (=आरोग्य)=अल्पातंक लघु-उत्थान (=फुर्ती) बल, प्राशु-विहार (=सुख पूर्वक विहरना) पूछना—'भन्ते ! राजा प्रसेनजित् कोसल भगवान्‌के चरणोंमें शिरसे वन्दना करता है ० । और यहभी कहना—भन्ते ! आज भोजनोप्रान्त, कलेऊ करनेपर, राजा प्रसेनजित् कोसल भगवान्‌के दर्शनार्थ आयेगा ।"

"अच्छा देव !"

सोमा और सुकुला (दोनों) बहिनोंने सुना—'आज राजा···भगवान्‌के दर्शनार्थ जायेगा । तब [3]सोमा, सकुला बहिनोंने राजा प्रसेनजित् ० के पास, परोसनेके समय जाकर कहा—

"तो महाराज ! हमारेभी वचनसे भगवान्‌के चरणोंमें शिरसे वन्दना करना । अल्पाबाध ० पूछना—० ।

तब राजा प्रसेनजित् कोसल कलेऊ करके भोजनोपरान्त जहां भगवान् थे, वहां गया; जाकर भगवान्‌को अभिवादनकर···एक ओर बैठ भगवान्‌को बोला—

"भन्ते ! सोमा और सकुला (दोनों) बहिनें भगवान्‌के चरणोंको शिरसे वन्दना करती हैं ० ।"

"क्या महाराज ! सोमा और सकुला बहिनोंको दूसरा दूत नहीं मिला ?"

"भन्ते ! सोमा और सकुला बहिनोंने सुना, कि आज राजा···भगवान्‌के दर्शनार्थ जायेगा···। आकर मुझे यह कहा···।"

"सुखिनी होवें महाराज ! सोमा और सकुला (दोनों) बहिनें ।"

तब राजा प्रसेनजित् कोसलने भगवान्‌को यह कहा—

---

१. सैंतीसवां वर्षावास (४३५ वि. पू.) भगवान्‌ने श्रावस्ती (जेतवन)में बिताया; और अड़तीसवां (४३४ वि. पू.) पूर्वाराममें । २. म. नि. २ : ४ : १० । ३. अ. क. "उस राष्ट्रका और नगरकाभी यही नाम (था) ।······। उस नगरके अविदूर (=समीप) कण्णत्थलक नामक एक रमणीय भूभाग था······। ४. अ. क. "यह दोनों बहिनें राजाकी स्त्रियां थीं ।"

" भन्ते ! मैंने यह सुना है, कि श्रमण गौतम ऐसा कहता है—'ऐसा (कोई) श्रमण या ब्राह्मण नहीं है, जो सर्वज्ञ सर्वदर्शी (हो), निःशेष ज्ञान दर्शनको जाने, यह संभव नहीं है ।' भन्ते ! जो ऐसा कहते हैं कि श्रमण गौतम ऐसा कहता है—' ऐसा (कोई)० ।' क्या भन्ते ! वह भगवान्‌के वारेमें सच कहते हैं ? भगवान्‌को असत्य=अभूतसे लांछन तो नहीं लगाते ? धर्मके अनुसार कहते हैं, कोई धर्मानुसारी कथन (=वादानुवाद) गर्हणीय(=निंद-नीय) तो नहीं होता ?"

" महाराज ! जो ऐसा कहते हैं कि श्रमण गौतमने ऐसा कहा है—'ऐसा (कोई) श्रमण या ब्राह्मण नहीं है, जो सर्वज्ञ=सर्वदर्शी (होगा); निःशेष ज्ञान-दर्शनको जानैगा, यह संभव नहीं है ।' वह मेरे वारेमें सच नहीं कहते, वह अ-सत्य=अभूतसे मुझे लांछन लगाते हैं ।'

तव राजा प्रसेनजित्० ने विडूडभ सेनापतिको आमंत्रित किया—

" सेनापति ! आज राजान्तःपुरमें किसने वात (=कथावस्तु) कही थी ?"

" महाराज ! आकाश-गोत्र संजय ब्राह्मणने ।"

तव राजा प्रसेनजितने० एक पुरुषको आमंत्रित किया—

" आओ, रे पुरुष ! मेरे वचनसे ०संजय ब्राह्मणको कहो—'भन्ते ! तुम्हें राजा प्रसेनजित् वुलाते हैं' ।"

" अच्छा देव !" ··

तव राजा प्रसेन्जित० ने भगवान्‌को कहा—

" भन्ते ! शायद आपने कुछ और सोच (यह) वचन कहा हो, आदमी अन्यथा··· न कहैगा ।"

" तो भन्ते ! जो वचन कहा कैसे भगवान् जानते हैं ।" " महाराज ! मैं जानता हूँ—जो वचन (मैंने) कहा ।"

"महाराज ! मैंने जो वचन कहा उसे इस प्रकार जानता हूँ—'ऐसा श्रमण ब्राह्मण नहीं, जो एकही वार (=सकृद् एव) सव जानैगा=सव देखैगा, यह संभव नहीं' ।"

" भन्ते ! भगवान्‌ने हेतु-रूप कहा; सहेतु-रूप भन्ते ! भगवान्‌ने कहा—' ऐसा श्रमण ब्राह्मण नहीं जो एकही वार सव जानैगा=सव देखैगा, यह संभव नहीं ।' भन्ते ! यह चार वर्ण हैं—क्षत्रिय, ब्राह्मण, वैश्य, शूद्र । भन्ते ! इन चारो वर्णोंमें है कोई विभेद, है कोई नाना-कारण ?"

" महाराज ! ०इन चार वर्णोंमें अभिवादन, प्रत्युत्थान, हाथ जोड़ने (=अंजलि-कर्म) =सामीची-कर्ममें दो वर्ण अग्र (=श्रेष्ठ) कहे जाते हैं—क्षत्रिय और ब्राह्मण ।"

" भन्ते ! मैं भगवान्‌को इस जन्मके सव धर्मको नहीं पूछता, मैं···परलोकके संवन्ध (=सांपरायिक)में पूछता हूँ···।"

"महाराज ! यह पांच प्रधानीय अंग हैं । कौनसे पांच ? महाराज ! भिक्षु (१) श्रद्धालु होता है । तथागतकी बोधि (=बुद्ध-ज्ञान) पर श्रद्धा करता है—'ऐसे वह भगवान् अर्हत्०।[1] (२) अल्पाबाध (=अरोग)० होता है । (३) शठ=मायावी नहीं होता० । (४) ०आरब्ध-वीर्य (=उद्योगशील) होता है । (५) प्रज्ञावान् होता है० । महाराज ! यह पांच प्रधानीय अंग हैं । महाराज ! चार वर्ण—ब्राह्मण० शूद्र हैं । वह यदि पांच प्रधानीय-अंगोंसे युक्त हों, तो वह उनके दीर्घ-रात्र (=चिरकाल) तक हित-सुखके लिये होगा ।"

"भन्ते ! चार वर्ण० हैं । और यदि वह प्रधानीय-अंगोंसे युक्त हों । तो भन्ते ! क्या उनमें भेद=नानाकरण नहीं होगा ?"

"महाराज ! उनका प्रधान, नानात्व (=भेद) नहीं करता । जैसेकि महाराज ! दो दमनीय हाथी, दमनीय घोड़े, ०बैल, सु-दान्त=सु-विनीत (=अच्छी प्रकार सिखलाये) हों । दो दमनीय हाथी, ०घोड़े, ०बैल अ-दान्त=अ-विनीत (=विना सिखलाये), हों । तो महाराज ! जो वह० सु-दान्त, सु-विनीत हैं, क्या वह दान्त होनेसे दान्त-पदको पाते हैं=दान्त होनेसे दान्त-भूमिको प्राप्त होते हैं ?" "हां भन्ते !"

"और जो महाराज ! अ-दान्त अविनीत हैं, क्या वह अदान्त (विना सिखाये)० ही, दान्त-पदको पाते हैं, अदान्त हो दान्तभूमिको प्राप्त हो सकते हैं ? जैसेकि वह दो० सुदान्त=सुविनीत ?"

"नहीं, भन्ते !"

"ऐसेही महाराज ! जोकि श्रद्धालु, निरोग, अशठ=अमायावी, आरब्ध-वीर्य, प्रज्ञावान् द्वारा प्राप्य (वस्तु) है, उसे अ-श्रद्ध, बहुरोगी, शठ=मायावी, आलसी, दुष्प्रज्ञ पायेगा, यह संभव नहीं है"

"भन्ते ! भगवान्ने हेतु-रूप (=ठीक) कहा० । भन्ते ! चारों वर्ण क्षत्रिय, ब्राह्मण, वैश्य, शूद्र हैं, और वह यदि इन प्रधानीय अंगोंसे युक्त हों=सम्यक् प्रधानवाले हों । तो भन्ते ! क्या उनमें (कुछ) भेद नहीं होगा=कुछ नाना करण नहीं होगा ?"

"महाराज ! मैं उनमें कुछ भी 'यह जोकि विमुक्तिका विमुक्तिसे भेद (=नाना कारण) है' नहीं कहता । जैसे महाराज ! (एक) पुरुष सूखे शाककी लकड़ीको लेकर अग्नि तैयारकरे, तेज प्रादुर्भूत करे, और दूसरा पुरुष सूखे शाल (=साखू)-काष्टसे आग तैयार करे०; और दूसरा पुरुष सूखे आमके काष्टसे०; और दूसरा पुरुष सूखे गूलर-काष्टसे०; तो क्या मानते हो महाराज ! क्या उन नाना काष्टोंसे बनाई आगों का, लौसे लौका, रंगसे रंगका, आभासे आभाका कोई भेद होगा ?" "नहीं, भन्ते !"

"ऐसेही महाराज ! जिस तेज (=मुक्ति)को वीर्य (=उद्योग) तैयार करता है । उसमें, इस विमुक्तिसे दूसरी विमुक्तिमें कुछभी भेद मैं नहीं कहता ।"

---

१. पृष्ठ ३९ ।

"भन्ते ! भगवान्‌ने हेतुरूप (=ठीक) कहा० । क्या भन्ते ! देव (=देवता) हैं ?"

"महाराज ! तू क्या ऐसा कह रहा है—'भन्ते ! क्या देव हैं ।"

"कि भन्ते ! क्या देवता मनुष्यलोकमें आनेवाले होते हैं, या मनुष्यलोकमें आनेवा नहीं होते ?"

"महाराज ! जो वह देवता लोभ-सहित हैं, वह मनुष्यलोक (=इत्थत्त)में आनेवा होते हैं, जो लोभ-रहित हैं, वह० नहीं आनेवाले होते हैं ।"

ऐसा कहने पर विडूडभ सेनापतिने भगवान्‌को कहा—

"भन्ते ! जो वह देवता लोभ-रहित मनुष्य-लोकमें न आनेवाले हैं, क्या वह देवत अपने स्थानसे च्युत होंगे=प्रव्रजित होंगे ?"

तब आयुष्मान् आनन्दको यह हुआ—"यह विडूडभ सेनापति राजा प्रसेनजि कोसलका पुत्र है, मैं भगवान्‌का पुत्र हूँ; यह समय है, जब पुत्र, पुत्रको निमंत्रित करे ।" औ आयुष्मान् आनन्दने विडूडभ सेनापतिको आमंत्रित किया—

"तो सेनापति ! तुम्हें ही पूछता हूँ, जैसा तुम्हें ठीक ऊँचे वैसा कहो । तो सेनापति ! जितना राजा प्रसेनजित् कोसलका राज्य (=विजित) है, जहांपर कि राजा प्रसेनजित्० ऐश्वर्य=आधिपत्य करता है; राजा प्रसेनजित्० श्रमण या ब्राह्मणको, पुण्य-वान् या अपुण्यवान्‌को, ब्रह्मचर्यवान् या अब्रह्मचर्यवान्‌को, क्या उस स्थानसे हटा या निकाल सकता है ?" "०सकता है ।"

"तो क्या मानते हो सेनापति ! जितना राजा प्रसेजित्०का अ-विजित (=राज्यसे बाहर) है, वहां० अधिपत्य नहीं करता है, ०क्या उस स्थानसे हटा या निकाल सकता है ?"

"०नहीं सकता ।"

"तो क्या मानते हो सेनापति ! क्या तुमने त्रयस्त्रिंश देवोंको सुना है ?"

"हां, भो ! मैंने त्रयस्त्रिंश देव सुने हैं, आप राजा-प्रसेनजित् कोसलने भी - देव सुने हैं ।"

"तो क्या मानते हो सेनापति ! क्या राजा-प्रसेनजित् कोसल त्रयस्त्रिंश देवोंको उ स्थानसे हटा या निकाल सकता है ?"

"त्रयात्रिंश देवोंको राजा प्रसेनजित्० देखनेको भी नहीं पा सकता, कहांसे उनको हटाये या निकालेगा ?"

"ऐसे ही सेनापति ! जो देवता लोभ-सहित हैं, वह मनुष्य-लोकमें आते हैं, लोभ-रहित हैं, वह० नहीं आते । वह देखनेको भी नहीं पाये जा सकते, कहांसे उ स्थानसे हटाये या निकाले जायेंगे ?"

तब राजा प्रसेनजित् कोसलने भगवान्‌को कहा—

"भन्ते ! यह कौन नामवाला भिक्षु है ?"

"आनन्द नामक महाराज !"

"ओहो ! आनन्द हैं !! ओहो ! आनन्द-रूप हैं !! भन्ते ! आयुष्मान् आनन्द ठीक कहते हैं । भन्ते ! क्या ब्रह्मा है ?"

"तू क्या महाराज ! ऐसे कहता, है—भन्ते ! क्या ब्रह्मा है ?"

"भन्ते ! क्या वह ब्रह्मा मनुष्यलोकमें आता है, या मनुष्य-लोकमें नहीं आता ?"

"महाराज ! जो···ब्रह्मा लोभ-सहित है० आता है, लोभ-रहित० नहीं आता ।"

तब एक पुरुषने राजा प्रसेनजित्०को कहा—

"महाराज ! आकाश-गोत्र संजय ब्राह्मण आ गया ।"

तब राजा प्रसेनजित्०ने ०संजय ब्राह्मणको कहा—

"ब्राह्मण ! किसने इस बात (=कथा-वस्तु)को राजअन्तः पुरमें कहा था ?"

"महाराज ! विडूडभ सेनापतिने ।"

"विडूडभ सेनापतिने कहा—"महाराज ! आकाश-गोत्र संजय ब्राह्मणने ।"

तब एक पुरुषने राजा प्रसेनजित्को कहा—

"जानेका समय है, महाराज !"

तब राजा प्रसेनजित्० भगवान्को यह बोला—

"हमने भन्ते ! भगवान्को सर्वज्ञता पूछी, भगवान्ने सर्वज्ञता बतलाई, वह हमको रुचती है, पसन्द है, उससे हम सन्तुष्ट हैं । चारों वर्णकी शुद्धि (=चातुवर्णी शुद्धि)० पूछी० । देवोंके विषयमें० पूछा० । ब्रह्माके विषयमें० पूछा० । जो जो ही भन्ते ! हमने भगवान्को पूछा, वही वही भगवान्ने बतलाया; और वह हमको रुचता है, पसन्द है, उससे हम सन्तुष्ट हैं । अच्छा तो भन्ते ! अब हम जायेंगे, हम बहु-कृत्य हैं, बहु-करणीय हैं ।"

"जिसका महाराज ! तू (इस समय) काल समझे ।"

तब राजा प्रसेनजित्० भगवान्के भाषणको अभिनन्दितकर अनुमोदितकर आसनसे उठ भगवान्को अभिवादनकर, प्रदक्षिणाकर चला गया ।

संघभेदक-खंधक ।

[2]वहां भगवान् कौशाम्बीमें घोषितारामसें विहार करते थे । उस समय देवदत्तको एकान्तमें बैठे विचारमें बैठे, चित्तमें ऐसा विचार उत्पन्न हुआ—'किसकोमैं प्रसादित करूँ, जिसके प्रसन्न होनेपर मुझे बड़ा लाभ, सत्कार, पैदा हो' । तब देवदत्तको हुआ—यह अजात-शत्रु कुमार तरुण है, और भविष्यमें उत्तम (=भद्र) है; क्योंन मैं अजात-शत्रु कुमारको प्रसादित करूँ, उसके प्रसन्न होनेपर मुझे बड़ा लाभ, सत्कार पैदा होगा ।' तब देवदत्त शयनासन संभालकर पात्र-चीवरले जिधर राजगृह था, उधर चला । क्रमशः जहां राजगृह था वहां पहुँचा ।

१. उन्तालीसवां वर्षावास (वि. पू. ४३९) भगवान्ने श्रावस्ती जेत वनमें बिताया । २. चुल्लवग्ग (संघ-भेदक खंधक) ७ ।

तब देवदत्त अपने रूप (=वर्ण)को अन्तर्ध्यानकर कुमार, (=बालक)का रूप बना, सांकल मेखला (=तगाड़ी) पहिन, अजात-शत्रु कुमारीकी गोदमें प्रादुर्भूत हुआ । अजातशत्रु कुमा भीत=उद्विग्न, उत्शंकित=उत्-त्रस्त होगया । तब देवदत्तने अजातशत्रु कुमारको कहा—

"कुमार ! तू मुझसे भय खाता है ?"

"हां, भय खाता हूं ; तुम कौन हो ?"

"मैं देवदत्त हूँ ।"

"भन्ते ! यदि तुम आर्य देवदत्त हो, तो अपने रूप (=वर्ण)से प्रकट होओ ।"

तब देवदत्त कुमारका रूप छोड़, संघाटी, पात्र-चीवर धारण किये अजात शत्रु कुमारके सामने खड़ा हुआ । तब अजात-शत्रु कुमार, देवदत्तके इस दिव्य-चमत्कार (=ऋद्धि-प्रातिहार्य) से प्रसन्न हो पांचसौ रथोंके साथ सायं प्रातः उपस्थान (=हाजिरी)को जाने लगा । पांच सौ स्थालीपाक भोजन केलिये लेजाये जाने लगे ।

[1]तब भगवान् कौशाम्बीमें इच्छानुसार विहार कर···चारिका करते जहाँ राजगृह है वहाँ पहुँचे । वहाँ भगवान् राजगृहमें कलन्दक निवापके वेणुवनमें विहार करते थे ।

(देवदत्त)-सुत्त ।

ऐसा मैंने सुना—एक समय भगवान् राजगृहमें कलन्दक-निवापके वेणुवनमें विहार करते थे ।

उस समय अजातशत्रु कुमार सायं-प्रातः पांचसौ रथोंके साथ देवदत्तके उपस्थानको जाता था । पांचसौ स्थालीपाक भोजनके लिये लेजाये जाते थे । तब बहुतसे भिक्षु जहां भगवान् थे, वहां गये, जाकर भगवान्को अभिवादन कर एक ओर बैठे । एक ओर बैठे उन भिक्षुओंने भगवान्को कहा—

"भन्ते ! अजातशत्रु कुमार सायंप्रातः पांचसौ रथोंके साथ० ।"

"भिक्षुओ ! देवदत्तके लाभ, सत्कार श्लोक(=तारीफ)की मत स्पृहा करो । जब तक भिक्षुओ ! अजातशत्रु कुमार सायं प्रातः० उपस्थानको जायेगा ; पांचसौ स्थाली-पाक भोजनकेलिये जायेंगे, देवदत्तकी (उससे) कुशल-धर्मों (=धर्मों)में हानिही समझनी चाहिये, वृद्धि नहीं । भिक्षुओ ! जैसे चंड कुकुरके नाकपर पित्त चढ़े,···इस प्रकार वह कुक्कुर और भी पागल हो, अधिक चंड हो ।"

तब लाभ, सत्कार, श्लोकसे अभिभूत=आदत्त-चित्त देवदत्तको इसप्रकारकी इच्छा उत्पन्न हुई—मैं भिक्षु-संघकी (महन्ताई)ग्रहण करूँ । यह (विचार) चित्तमें आतेही देवदत्तका (वह)योग-बल (=ऋद्धि) नष्ट हो गया ।

\+ \+ \+

१· चुल्लवग्ग (संघ-भेदक-खंधक) ७ । २. स. नि. १६ : ४ : ६ ।

उस समय राजासहित बड़ी परिषद्से घिरे भगवान धर्म-उपदेश कर रहे थे। तब देवदत्त आसनसे उठ एक कंधेपर उत्तरासंग करके, जिधर भगवान् थे उधर अंजलि जोड़ भगवान्को यह बोला—

"भन्ते ! भगवान् अब जीर्ण=वृद्ध=महल्लक=अध्वगत=वयः-अनुप्राप्त हैं । भन्ते! अब भगवान् निश्चिन्त हो इस जन्मके सुख-विहारके साथ विहरें । भिक्षु-संघको मुझे दें, मैं भिक्षु-संघको ग्रहण करूंगा ।"

"अलम् (=बस, ठीक नहीं) देवदत्त! मत तुझे भिक्षुसंघका ग्रहण रुचे ।"

दूसरीबार भी देवदत्त ने० । ० । तीसरीबार भी देवदत्तने० । ०

"देवदत्त ! सारिपुत्र मौद्गल्यायनको भी मैं भिक्षु-संघको नहीं देता, तुझ मुर्दे, थूकसे तो क्या ?"

तब देवदत्तने—'राजासहित परिषद्में मुझे भगवान्ने फेंका थूक कहकर अपमानित किया और सारिपुत्र, मौद्गल्यायनको बढ़ाया' (सोच) कुपित, असंतुष्ट हो भगवान्को अभिवादन कर प्रदक्षिणाकर चला गया ।···तब भगवान्ने भिक्षुसंघको आमंत्रित किया—

"भिक्षुओ ! संघ राजगृहमें देवदत्तका प्रकाशनीय-कर्म करे—'पूर्वमें देवदत्त अन्य प्रकृतिका था, अब अन्य प्रकृतिका (अब) देवदत्त जो (कुछ) काय वचनसे करे उसका बुद्ध, धर्म, संघ ज़िम्मेवार नहीं ।'

तब देवदत्त जहां अजात-शत्रु कुमार था, वहां गया। जाकर अजातशत्रु कुमारको बोला—

"कुमार ! पहिले मनुष्य दीर्घायु (होते थे), अब अल्पायु । होसकता है, कि तुम कुमार रहते ही मर जाओ । इसलिये कुमार ! तुम पिताको मारकर राजा होओ; मैं भगवान्को मारकर बुद्ध होऊँगा ।'

···तब अजात-शत्रु कुमार जांघमें छुरा बांधकर भीत, उद्विग्न, शंकित, त्रस्त (की तरह) मध्याह्नमें सहसा अन्तःपुरमें प्रविष्ट हुआ । अन्तः-पुरके उपचारक (=रक्षक) महामात्योंने ०अजातशत्रु कुमारको० अन्तःपुरमें प्रविष्ट होते देखा । देखकर पकड़ लिया । कुमारको कहा—

"कुमार तुम क्या करना चाहते थे ?"

"पिताको मारना चाहता था ।"

"किसने उत्साहित किया ?"

"आर्य देवदत्तने ।'

तब वह महामात्य अजातशत्रुको ले जहां राजा मागध श्रेणिक बिम्बिसार था, वहां गये । जाकर राजा०को यह बात कह सुनाई ।···। तब राजा०ने अजात-शत्रु कुमारको कहा—

"कुमार ! किसलिये तू मुझे मारना चाहता था ?'

"देव ! राज्य चाहता हूं ।"

"कुमार ! यदि राज्य चाहता है तो यह तेरा राज्य है ।" कह अजात-शत्रु कुमारको राज्य देदिया ।

तब देवदत्त जहाँ अजात-शत्रु कुमार था, वहाँ गया। जाकर⋯कहा—

"महाराज ! आदमियोंको हुकुम दो, कि श्रमण गौतमको जानसे मार दें।"

तब अजातशत्रुकुमारने मनुष्योंको कहा—

"भणे ! जैसा आर्य देवदत्त कहें, वैसा करो।"

तब देवदत्तने एक पुरुषको हुकुम दिया—

"जाओ आवुस ! श्रमण गौतम अमुक स्थानपर विहार करता है। उसको जानसे मारकर, इस रास्तेसे आओ।"

उस रास्तेमें दो आदमियोंको बैठाया—"जो अकेला पुरुष इस रास्तेसे आवे, उसे जानसे मारकर इस मार्गसे आओ।"

उस रास्तेमें चार आदमियोंको बैठाया—"जो दो पुरुष इस रास्तेसे आवें, उन्हें जानसे मारकर, इस मार्गसे आओ।"

उस मार्गमें आठ आदमी बैठाये—'जो चार पुरुष०।"

उस मार्गमें सोलह आदमी बैठाये—०।

तब वह अकेला पुरुष ढाल तलवार ले तीर कमान चढ़ा, जहां भगवान् थे वहां गया। जाकर भगवान्‌के अविदूरमें भीत, उद्विग्न० शून्य-शरीरसे खड़ा हुआ। भगवान्‌ने उस पुरुषको भीत० शून्य-शरीर खड़े हुये देखा। देखकर उस पुरुषको कहा—

"आओ, आवुस ! मत डरो।"

तब वह पुरुष ढाल-तलवार एक ओर (रख) तीर-कमान छोड़कर, जहां भगवान् थे, वहां गया। जाकर भगवान्‌के चरणोंमें शिरसे पड़कर भगवान्‌को बोला—

"भन्ते ! बाल (=मूर्ख) सा मूढसा, अकुशल (=अ-चतुर) सा मैंने जो अपराध किया है; जो कि मैं दुष्ट-चित्त हो वध-चित्त हो, यहां आया उसे क्षमा करें। भन्ते ! भगवान् भविष्यमें संवर (=रोक करने)के लिये, मेरे उस अपराध (=अत्यय)को अत्यय (=बीते) के तौरपर स्वीकार करें।'

"आवुस ! जो तूने अपराध किया,० वध-चित्त हो यहां आया। चूँकि आवुस ! अत्यय (=अपराध)को अत्ययके तौरपर देखकर धर्मानुसार प्रतीकार करता है; (इसलिये) उसे हम स्वीकार करते हैं।⋯।'

तब भगवान्‌ने उस पुरुषको आनुपूर्वी-कथा कही०[1]। (और) उस पुरुषको उसी आसनपर० धर्म-चक्षु उत्पन्न हुआ।०।

तब वह पुरुष....भगवान्‌को बोला—

"आश्चर्य ! भन्ते !! ० भन्ते ! आजसे भगवान् मुझे अञ्जलिबद्ध शरणागत उपासक धारण करें।"

---

१. पृष्ठ २९।

तब भगवान्ने उस पुरुषको—

" आवुस ! तुम इस मार्गसे मत जाओ; इस मार्गसे जाओ" (कह) दूसरे मार्गसे भेज दिया ।

तब उन दो पुरुषोंने—' क्यों वह पुरुष देरकर रहा है ' (सोच) उधरकी ओर जाते, भगवान्को एक वृक्षके नीचे बैठे देखा । देखकर जहाँ भगवान् थे, वहाँ·····जाकर भगवान्को अभिवादनकर, एक ओर बैठ गये । उन्हें भगवान्ने आनुपूर्वी-कथा कही ० । ० । " आवुसो ! मत तुम लोग इस मार्गसे जाओ; इस मार्गसे जाओ " । ० ।

तब उन चार पुरुषोंने ० । ० । तब उन आठ पुरुषोंने ० । ० । तब उन सोलह पुरुषोंने ० । ० " आजसे भन्ते ! भगवान् हमें अञ्जलि-बद्ध शरणागत उपासक धारण करें ।'

तब वह अकेला पुरुष जहाँ देवदत्त था, वहाँ गया । जाकर देवदत्तको कहा—

" भन्ते ! मैं उन भगवान्को जानसे नहीं मार सकता । वह भगवान् महा-ऋद्धिक=महानुभाव हैं ।"

" जानेदे आवुस ! तू श्रमण गौतमको जानसे मत मार, मैं ही···जानसे मारूँगा ।'

उस समय भगवान् गृध्रकूट पर्वतकी छायामें टहलते थे । तब देव-दत्तने गृध्रकूट पर्वतपर चढ़कर—' इससे श्रमण गौतमको जानसे मारूँ'—(सोच) एक बड़ी शिला फेंकी । दो पर्वत कूटोंने आकर उस शिलाको रोक दिया । उससे (निकली) पपड़ीके उछलकर (लगनेसे) भगवान्के पैरसे रुधिर बह निकला ।···

\+ + + +

सकलिक-सुत्त ।

[1] ऐसा मैंने सुना—एक समय भगवान् राजगृहमें मद्दकुच्छि (=मद्रकुक्षि) मृगदावमें विहार करते थे ।

उस समय भगवान्का पैर पत्थर (=[2]सक्खलिका=शर्करिका)से क्षत होगया था । भगवान्को बहुत तीव्र, दुःखद, खर=कटुक=अ-सात=अ-मनाप शारिरिक वेदना होती थी । उनको भगवान् विना शोक करते, स्मृति संप्रजन्यसे सहन करते थे । तब भगवान्ने चौपेती संघाटीको बिछवा, दाहिनी बगलसे लेटकर पैरके ऊपर पैर रख, स्मृति, संप्रजन्यके साथ सिंह-शय्या की ।···

---

१. स. नि. १ : ४ : ८ ।

२. अ-क—"देवदत्तने···बड़ी···शिला फेंकी···दो शिलाओंके टकरानेसे पाषाण-शकलिका (=पत्थरका टुकड़ा)ने उछकर भगवान्के पैरकी सारी पीठको घायलकर दिया । पैर बड़े फरसेसे आहतकी भांति लोहू बहाता, लाक्षा-रससे रंजितसा होगया ।······। तबसे भगवान्को पीड़ा उत्पन्न हुई । भिक्षुओंने सोचा—'यह विहार जंगल (उज्जंगल), विषम, बहुतसे क्षत्रिय आदि-के और प्रव्रजितोंके पहुँचने लायक नहीं है । (और वह) तथागतको मंच-शिविका (=डोली) में बैठा, मद्दकुच्छि लेगये ।

देवदत्त-विद्रोह ।

[३]उस समय राजगृहमें नाला-गिरि नामक मनुष्य-घातक, चंड हाथी था । देवदत्तने राजगृहमें प्रवेशकर हथसारमें जा फीलवानूको कहा—

"...जब श्रमण गौतम इस सड़कपर आये, तब तुम नाला-गिरि हाथीको खोलकर, इस सड़कपर कर देना ।"

"अच्छा भन्ते !" ..

भगवान् पूर्वाह्ण समय पहिनकर पात्रचीवर ले, बहुतसे भिक्षुओंके साथ राजगृहमें पिंड-चारके लिये प्रविष्ट हुये । तब भगवान् उसी सड़कपर आये । उन फीलवानोंने भगवानको उस सड़कपर आते देखा । देखकर नालागिरि हाथीको छोड़कर, सड़कपर कर दिया । नाला-गिरि हाथीने दूरसे भगवानको आते देखा । देखकर सूँड़को खड़ाकर, प्रहृष्ट हो, कान चलाते जहां भगवान् थे, उधर दौड़ा । उन भिक्षुओंने दूरसे नालागिरि हाथीको आते देखा । देखकर भगवानको कहा—

"भन्ते ! यह चंड, मनुष्य-घातक नालागिरि हाथी इस सड़कपर आ रहा है, हट जायें भन्ते ! भगवान् हट जायें सुगत !"

दूसरीवार भी० । तीसरीवार भी० ।

उस समय मनुष्य प्रासादोंपर, हर्म्योंपर, छतोंपर, चढ़ गये थे । उनमें जो अश्रद्धालु= अप्रसन्न, दुर्बुद्धि (=मूर्ख) मनुष्य थे, वह ऐसा कहते थे—"अहो ! महाश्रमण अभिरूप (था, सो) नागसे मारा जायेगा ।" और जो मनुष्य श्रद्धालु=प्रसन्न, पंडित थे, उन्होंने ऐसा कहा—"देर तक जी ! नाग नाग (=बुद्ध)से, संग्राम करेगा ।"

तब भगवान्ने नालागिरि हाथीको मैत्री (भावना) युक्त चित्तसे आप्लावित किया । तब नालागिरि हाथी भगवान्के मैत्री (पूर्ण) चित्तसे स्पृष्ट हो, सूँडको नीचे करके, जहां भगवान् थे, वहां जाकर खड़ा हुआ । तब भगवान्ने दाहिने हाथसे नालागिरिके कुम्भको स्पर्श (किया)...। तब नालागिरि हाथीने सूँड़से भगवान्की चरण-धूलिको ले, शिरपर डाला । ...। नालागिरि हाथी हथसारमें जाकर अपने थानपर खड़ा हुआ ।......

तब देवदत्त जहां कोकालिक कटमोर-तिस्सक, और खंडदेवी-पुत्र समुद्रदत्त थे, वहां गया । जाकर...बोला—

"आओ आवुसो ! हम श्रमण गौतमका संघ-भेद (=फूट)=चक्रभेद करें । आओ... हम श्रमण गौतमके पास चलकर पांच वस्तुयें मांगे ।...—'अच्छा हो भन्ते ! भिक्षु (१) जिन्दगी भर आरण्यक रहें, जो गांवमें बसे, उसे दोष हो । (२) जिन्दगीभर पिंडपातिक (=भिक्षा मांगकर खानेवाले) रहें, जो निमंत्रण खाये, उसे दोष हो । (३) जिन्दगीभर पांसुकूलिक (=फेंके चीथड़े सीकर पहननेवाले) रहें, जो गृहस्थके (दिये) चीवरको उपभोग करे, उसे दोष हो, (४) जिन्दगीभर वृक्ष-मूलिक (=वृक्षके नीचे रहनेवाले) रहें, जो छायाके

३. चुल्लवग्ग (संघ-भेदक खंधक) ७ ।

नीचे जाये, वह दोषी हो (५) जिन्दगीभर मछली मांस न खायें, जो मछली मांस खाये, उसे दोष हो ।, श्रमण गौतम इसे नहीं स्वीकार करेगा । तब हम इन पांच बातोंसे लोगोंको समझायेंगे ।....."

तब देवदत्त परिषद्-सहित जहां भगवान् थे, वहां गया । जाकर भगवान्‌को अभिवादन-कर, एक ओर बैठा । एक ओर बैठे देवदत्तने भगवान्‌को कहा—

" ...अच्छा हो भन्ते ! भिक्षु (१) जिन्दगीभर आरण्यक हों० । "

" अलम् देवदत्त ! जो चाहे आरण्यक हो, जो चाहे [1]ग्राममें रहे । जो चाहे पिंड-पातिक हो, जो चाहे निमंत्रण खाये । जो चाहे पांसुकूलिक हो, जो चाहे गृहस्थके (दिये) चीवरको पहिने । देवदत्त ! आठ मास मैंने वृक्षके नीचे वास (=वृक्ष-मूल-शयनासन)की अनुज्ञा दी है । [1]अदृष्ट, [2]अ-श्रुत, [3]अ-परिशंकित, इस तीन कोटिसे परिशुद्ध मांसकी भी मैंने अनुज्ञा दी है ।...

तब देवदत्तने उस दिन [4]उपोसथको आसनसे उठकर [5]शलाका (=वोटकी लकड़ी) पकड़वाई—" हमने आवुसो ! श्रमण-गौतमको जाकर पांच वस्तुयें मांगीं—० । उन्हें श्रमण गौतमने नहीं स्वीकार किया । सो हम (इन) पांच वस्तुओंको लेकर बर्तेंगे । जिस आयुष्मान्‌को यह पांच बातें पसन्द हों, वह शलाका ग्रहण करें । "

उस समय वैशालीके पांच सौ वज्जिपुत्तक नये भिक्षु असली बातको न समझने वाले थे । उन्होंने—' यह धर्म है, यह विनय है, यह शास्ताका शासन (=गुरु उपदेश) है'—(सोच) शलाका ले ली । तब देवदत्तने संघको फोड़ (=भेद) कर, पांच सौ भिक्षुओंको ले, जहां [6]गयासीस था वहांको चल दिया ।

आयुष्मान् सारिपुत्र और मौद्गल्यायन जहां भगवान् थे वहां गये ।...। आयुष्मान् सारिपुत्रने भगवान्‌को कहा—

" भन्ते ! देवदत्त संघको फोड़कर, पांच सौ भिक्षुओंको लेकर जहां गयासीस है, वहां चला गया ।"

" सारिपुत्र ! तुम लोगोंको उन नये भिक्षुओंपर दया भी नहीं आई ? सारिपुत्र ! तुम लोग उन भिक्षुओंके आपद्‌में पड़नेसे पूर्वही जाओ ।"

" अच्छा भन्ते ! "

उस समय बड़ी परिषद्‌के बीच बैठा देवदत्त धर्म उपदेश कर रहा था । देवदत्तने दूरसे सारिपुत्र मौद्गल्यायनको आते देखा । देखकर भिक्षुओंको आमंत्रित किया ।—

---

१. ' मेरे लिये मारा गया '—यह देखा न हो । २. ' मेरे लिये मारा गया '—यह सुना न हो । ३. ' मेरे लिये मारा गया '—यह सन्देह न हो । ४. (कृष्णा चतुर्दशी या पूर्णिमा) । ५. वोट(=मत, पाली, छन्द) लेनेकी आसानीके लिये जैसे आजकल पुर्जी (वैलट) चलती, वैसेही पूर्वकालमें छन्द-शलाका चलती थी । ६. ब्रह्मयोनि पर्वत (गया) ।

"देखो भिक्षुओ कितना सु-आख्यात (=सु-उपदिष्ट) मेरा धर्म है। जो श्रमण गौतमके अग्रश्रावक सारिपुत्र मौद्गल्यायन हैं, वह भी मेरे पास आरहे हैं, मेरे धर्मको मानते हैं।"

ऐसा कहनेपर कोकालिकने देवदत्त को कहा—

"आवुस देवदत्त! सारिपुत्र मौद्गल्यायनका विश्वास मत करो। सारिपुत्र, मौद्गल्यायन बदनीयत (=पापेच्छ) हैं, पापक (=बुरी) इच्छाओंके वश में हैं।"

"आवुस, नहीं, उनका स्वागत है, क्योंकि वह मेरे धर्म को पसन्द करते हैं।"

तब देवदत्तने आयुष्मान् सारिपुत्रको आधा आसन (देनेको) निमंत्रित किया—

"आओ आवुस! सारिपुत्र! यहाँ बैठो।"

"आवुस! नहीं" (कह) आयुष्मान् सारिपुत्र दूसरा आसन लेकर एक ओर बैठ गये। आयुष्मान् महामौद्गल्यायन भी एक आसन लेकर० बैठ गये। तब देवदत्त बहुत रात तक भिक्षुओंको धार्मिक कथा ···(कहता) आयुष्मान् सारिपुत्रको बोला—

"आवुस! सारिपुत्र! (इस समय) भिक्षु आलस-प्रमाद-रहित हैं, तुम आवुस सारिपुत्र! 'भिक्षुओंको धर्म-देशना करो, मेरी पीठ अगिया रही है, सो मैं लम्बा पड़ूँगा।"

"अच्छा आवुस!"···

तब देवदत्त चौपेती संघाटीको बिछवाकर दाहिनी बगलसे लेट गया। स्मृति-रहित संप्रजन्य-रहित उसे मुहूर्तभरमेंही निद्रा आगई। तब आयुष्मान् सारिपुत्रने आदेश-प्रातिहार्य (=व्याख्यानके चमत्कार) और अनुशासनीय-प्रातिहार्यके साथ, तथा आयुष्मान् महामौद्गल्यायनने ऋद्धि-प्रातिहार्य(=योग-बलके चमत्कार)के साथ भिक्षुओंको धर्म-उपदेश किया, अनुशासन किया। तब उन भिक्षुओंको···विरज=विमल धर्म-चक्षु उत्पन्न हुआ - 'जो कुछ समुदय धर्म(=उत्पन्न होनेवाला) है, वह निरोध-धर्म (=विनाश होनेवाला) है०'।

आयुष्मान् सारिपुत्रने भिक्षुओंको निमंत्रित किया—

"आवुसो! चलो भगवान्के पास चलें, जो उस भगवान्के धर्मको पसन्द करता है वह आवै।"

तब सारिपुत्र मौद्गल्यायन उन पांच सौ भिक्षुओंको लेकर जहां वेणुवन था, वहां चले गये। तब कोकालिकने देवदत्तको उठाया—

"आवुस देवदत्त! उठो मैंने कहा न—आवुस देवदत्त! सारिपुत्र मौद्गल्यायनका विश्वास मत करो।०।"

तब देवदत्तको वहीं मुखसे गर्म खून निकल पड़ा।··· ·····

विसाखा-सुत्त।

[1]ऐसा[2]मैंने सुना—एक समय भगवान् श्रावस्तीमें मृगारमाताके प्रासाद पूर्वारामर्में विहार करते थे।

१. चालिसवां (४३२ वि. पू.) वर्षावास भगवान्ने श्रावस्ती (पूर्वाराम) में किया—
२. उदान २ : ९।

उस समय विशाखा ० का [1]कोई काम राजा प्रसेनजित् ० के साथ फँसा हुआ था। उसे राजा प्रसेनजित् ० इच्छानुसार निर्णय नहीं करता था। तब विशाखा मृगारमाता मध्याह्न में जहां भगवान् थे वहां गई।...... एक ओर बैठी विशाखा ० को भगवान्ने यह कहा—

"हैं! विशाखा! तू मध्याह्नमें कहांसे आरही है?"

"भन्ते! मेरा कोई काम राजा प्रसेनजित् ०।"

तब भगवान्ने इस अर्थको जानकर उसी वेलामें यह उदान कहा—

"(जो कुछ) पर-वश है, (वह) सब दुःख है, ऐश्वर्य (=प्रभुता, स्ववश) सुख है। साधारण (बात)में भी (प्राणी) पीडित होते हैं; क्योंकि काम भोग आदिके योगोंका अतिक्रमण करना मुश्किल है।"

जटिल-सुत्त।

[2]ऐसा मैंने सुना—एक समय भगवान् गयामें गयासीस पर विहार करते थे।

उस समय बहुतसे जटिल, [3]अन्तराष्टक हिम-पात समयवाली हेमन्तकी ठंडी रातोंमें गयामें डूबते उतराते थे,...पानीमें भीगते थे, अग्निमें हवनभी करते थे—'इस प्रकार (पाप) शुद्धि होगी'। भगवान्ने उन बहुतसे जटिलोंको देखा। तब भगवान्ने इस अर्थको जानकर उसी समय यह उदान कहा—

"बहुतसे जन यहां नहा रहे हैं, (किंतु) पानीसे शुद्धि नहीं होती। जिसमें सत्य और धर्म है, वही शुचि है, वही ब्राह्मण है।"

---

१. अ. क. "विशाखाके पीहरसे मणिमुक्तादि रचित...वस्तु उसकी भेंटके लिये आई थी। उसके नगर-द्वारपर पहुँचनेपर, चुङ्गीवालोंने अधिक महसूल लेलिया।......।

२. उदान १ : ९।

३. माघमासके अंतिम चार दिन, और फागुनके आदिम चार दिन।

पञ्चम-खण्ड ।

आयु-वर्ष ७५-८०,+४८२ ।

(वि. पू. ४३१–५६ विक्रमीय)

पंचम–खंड ।

(१)

संगाम-सुत्त । कोसल-सुत्त । वाहीतिक-सुत्त । चंकम-सुत्त ।
(वि. पू. ४३१-३०) ।

[1]ऐसा [2]मैंने सुना--एक समय भगवान् श्रावस्ती ०जेतवनमें विहार करते थे ।

तब राजा मागध अजातशत्रु वैदेही-पुत्र[3] चतुरंगिनी-सेनाको तैयारकर, राजा प्रसेनजित् कोसलसे युद्धके लिये काशी (देश)को गया । राजा प्रसेनजित् कोसलने सुना···· । तब राजा प्रसेनजित्० चतुरंगिनी सेनाको तय्यारकर···काशीकी ओर गया । तब राजा मागध अजातशत्रु०, और राजा प्रसेनजित्० लड़े । उस संग्राममें राजा० अजातशत्रु०ने राजा प्रसेनजित्०को हरा दिया । पराजित होकर राजा प्रसेनजित्० संग्रामसे राजधानी श्रावस्तीको लौट आया ।

तब बहुतसे भिक्षुओंने पूर्वाह्ण समय (चीवर) पहिनकर पात्र-चीवर लेकर श्रावस्तीमें पिंड-चार किया । श्रावस्तीमें पिंडचार करके भोजनोपरांत (वह)···जहां भगवान् थे, वहां गये । ०उन भिक्षुओंने भगवान्को कहा—

"भन्ते ! राजा मागध अजातशत्रु० काशीको गया । ०राजा प्रसेनजित्को हरा दिया । ०राजा प्रसेनजित्० श्रावस्तीको लौट आया ।"

"भिक्षुओ ! राजा० अजातशत्रु० पाप-मित्र (=बुरे दोस्तोंवाला)० है; राजा प्रसेनजित्० कल्याण-मित्र (=अच्छे मित्रोंवाला) कल्याण-सहाय···है । आज ही रातको राजा प्रसेनजित्० पराजित हो दुःखसे सोता है—

"जय वैरको उत्पन्न करती है, पराजित दुःखसे सोता है । शांतिको प्राप्त (पुरुष) जय-पराजय छोड़, सुखसे सोता है ॥ १ ॥"

तब राजा० अजातशत्रु० चतुरङ्गिणी सेना तैयारकर० काशीकी ओर आया ।०। उस संग्राममें राजा प्रसेनजित्०ने राजा ०अजातशत्रु०को हरा दिया, और उसे जीता पकड़

---

१. एकतालीसवां वर्षावास (४३१ वि. पू.) भगवान्ने श्रावस्ती (जेतवन)में विताया ।

२. स. नि. ३ : २ : ४ ।

३. अ. क. "वैदेही=पंडिता···महाकोसल राजा (=प्रसेनजित्के पिता)ने बिंबसारको कन्या देते वक्त, दोनों राज्योंके बीचका एक लाख आयका काशी ग्राम कन्याको दिया । अजातशत्रुके पिताके मार देनेपर, उसकी माता भी राजाके वियोगमें जल्दी ही मर गई । तब राजा प्रसेनजित्—'अजात-शत्रुने माता-पिताको मार दिया, यह मेरे पिताका गांव है' (कह) उसके लिये झगड़ा करने लगा । अजातशत्रुने भी—'मेरी माताका है' । उस गांवके लिये दोनों मामा भांजोंने युद्ध किया ।"

लिया। तब राजा प्रसेनजित् कोसलको ऐसा हुआ—' यद्यपि यह राजा ०अजातशत्रु० द्रोह न करनेवाले मुझसे द्रोह करता है; तब भी तो यह मेरा भान्जा है। क्यों न मैं राजा ०अजातशत्रु०के सब हस्तिकाय (=हाथी-झुण्ड)को लेकर, सब अश्व०, ०सब रथ०, ०पदाति (=पैदल सैनिक) कायको लेकर जीताही छोड़ दूँ। तब राजा प्रसेनजित्ने० लेकर उसे जीताही छोड़ दिया।

तब बहुतसे भिक्षु० भगवान्‌को बोले—०।

भगवान्‌ने इस बातको जानकर, उसी समय इन गाथाओंको कहा—

" जो उसकी बुराई करता है, (जो पुरुष) उसे विलुप्त करता है; जब दूसरे विलुप्त करते हैं, तो वह विलुप्त हो विलोप (को प्राप्त) होता है ॥२॥ बाल (=मूर्ख जन) तब तक नहीं समझता, जबतक पापमें नहीं पचता, जब पापमें पचने लगता है, तब बाल (मनुष्य) समझता है ॥३॥ हत्यारा हत्या पाता है, जेता जय पाता है; निन्दक (=आक्रोशक) निन्दा पाता है; और रोष करनेवाला रोष। तब कर्मके फेर (=विवर्त)से वह विलुप्त हुआ, विलोप हो जाता है ॥ ४ ॥

— — —

कोसल-सुत्त ।

[1]ऐसा मैंने सुना—एक समय भगवान् श्रावस्ती० जेतवनमें विहार करते थे।

उस समय राजा प्रसेनजित् ० संग्राम जीतकर, मनोरथ-प्राप्तकर चढाईसे लौटा था। तब राजा प्रसेनजित् ० जहां आराम था, वहां गया। जितना यानका रास्ता था, उतना यानसे जाकर, यानसे उत्तर पैदलही आराममें प्रविष्ट हुआ। उस समय बहुतसे भिक्षु खुली जगहमें टहलते थे। तब राजा ० ने··· उन भिक्षुओंको यह पूछा—

" भन्ते! इस समय वह भगवान् अर्हत् सम्यक्-संबुद्ध कहां विहार करते हैं? भन्ते! हम उन भगवान्०का दर्शन करना चाहते हैं।"

" महाराज! यह द्वार-बन्द विहार (=कोठरी) है, चुपकेसे धीरे धीरे वहां ज बरांडा (=आलंद)में प्रवेशकर, खांसकर जञ्जीर (=अर्गल) खट-खटाओ। भगवान् तुम्हा लिये द्वार खोलेंगे।"

······भगवान्‌ने द्वार खोल दिया। तब राजा प्रसेनजित् ० विहारमें प्रविष्ट हो, सिर भगवान्‌के पैरोंमें गिरकर, भगवान्‌के पैरोंको मुखसे चूमता था, हाथसे (पैरोंको) सं (=दबाना) करता था, और नाम सुनाता था—' भन्ते! मैं राजा प्रसेनजित् को हूँ ३।'

" महाराज! तुम किस बातको देखते इस शरीरमें इतनी परम सुश्रुषा करते मैत्रीका उपहार दिखाते हो?"

१. अ. नि १०:१:१०।

" भन्ते ! कृतज्ञता, कृत-वेदिताको देखते हुये, मैं भगवान्‌में इस प्रकारकी परम सुश्रुषा करता हूँ, मैत्री-उपहार दिखाता हूँ । भन्ते ! भगवान् बहुतजनोंके हित, बहुत जनोंके सुख केलिये हैं । भगवान्‌ने बहुत जनोंको आर्य-न्याय—जो कि यह कल्याण-धर्मता कुशल धर्मता है—(उसमें) प्रतिष्ठित किया ।

बाहीतिक-सुत्त ।

[1]ऐसा मैंने सुना—एक समय भगवान् श्रावस्ती॰जेतवनमें विहार करते थे ।

तब आयुष्मान् आनन्द पूर्वाह्न समय (चीवर) पहिनकर पात्रचीवर ले, श्रावस्तीमें··· पिंडचार करके···दिनके विहारके लिये जहाँ मृगार-माताका प्रासाद पूर्वाराम था, वहाँ चले । उस समय राजा प्रसेनजित्॰ एक पुंडरीक नाग (=हाथी)पर चढ़कर, मध्याह्नमें श्रावस्तीसे बाहर जा रहा था । राजा प्रसेनजित॰ने दूरसे आयुष्मान् आनन्दको आते देखा । देखकर सिरिवड्ढ (श्रीवर्द्ध)महामात्यको आमंत्रित किया—

" सौम्य सिरिवड्ढ ! यह आयुष्मान् आनंद हैं न ?"

" हाँ महाराज !···।"···

तब राजा॰ने एक आदमीको आमंत्रित किया—

" आओ, हे पुरुष ! जहाँ आयुष्मान् आनन्द हैं, वहाँ जाओ, जाकर मेरे वचनसे आयुष्मान् आनन्दके पैरोंमें वंदना करना···,और यह भी कहना—'भन्ते ! यदि आयुष्मान् आनन्दको कोई बहुत जरूरी काम न हो, तो भन्ते ! आयुष्मान् आनन्द कृपाकर एक मिनट (=मुहूर्त)ठहर जायें ।'

" अच्छा देव !"

आयुष्मान् आनन्दने मौनसे स्वीकार किया ।

तब राजा प्रसेनजित् जितना नागका रास्ता था, उतना नागसे जाकर, नागसे उतर पैदलही···जाकर···अभिवादन कर एक ओर खड़ा हो, आयुष्मान् आनन्दको बोला—

" भन्ते ! यदि आयुष्मान् आनन्दको कोई अत्यावश्यक काम न हो, तो अच्छा हो भन्ते ! आयुष्मान् आनन्द जहाँ अचिरवती नदीका तीर है, कृपाकर वहाँ चलें ।"

आयुष्मान् आनन्दने मौनसे स्वीकार किया ।

तब आयुष्मान् आनन्द, जहाँ अचिरवती नदी का तट था, वहाँ गये । जाकर एक वृक्षके नीचे बिछे आसनपर बैठे । तब राजा प्रसेनजित ॰ जाकर, नागसे उतर पैदलही···जाकर ···अभिवादनकर एक ओर खड़ा हुआ । एक ओर खड़े हुये राजा॰ने···यह कहा—

" भन्ते ! आयुष्मान् आनन्द यहाँ कालीनपर बैठें ।"

" नहीं महाराज ! तुम बैठो, मैं अपने आसनपर बैठा हूँ ।"

राजा प्रसेनजित्॰ बिछे आसनपर बैठा । बैठकर···बोला—

---

१. म. नि. २:४:८

"भन्ते! क्या वह भगवान् ऐसा कायिक आचरण कर सकते हैं, जो कायिक आचरण, श्रमणों, ब्राह्मणों और विज्ञोंसे निन्दित (=उपारम्भ) है?"

"नहीं महाराज! वह भगवान्०!"

"क्या भन्ते! ० वाचिक आचरण कर सकते हैं० ?" "नहीं महाराज!"

"आश्चर्य! भन्ते!! अद्भुत! भन्ते!! जो हम (दूसरे) श्रमणोंसे नहीं पूरा कर (जान) सके, वह भन्ते! आयुष्मान् आनन्दने प्रश्नका उत्तर दे पूरा कर दिया। भन्ते! जो वह बाल=अव्यक्त (=मूर्ख) बिना सोचे, बिना थाह लगाये, दूसरोंका वर्ण (=प्रशंसा) या अ-वर्ण भाषण करते हैं, उसे हम सार मानकर नहीं स्वीकार करते। और भन्ते! जो वह पंडित=व्यक्त=मेधावी (=पुरुष) सोचकर, थाह लगाकर दूसरोंका वर्ण या अवर्ण भाषण करते हैं; उसे हम सार मानकर स्वीकार करते हैं। भन्ते! आनन्द! कौन कायिक आचरण श्रमणों ब्राह्मणों विज्ञोंसे निंदित है?"

"महाराज! जो कायिक-आचरण अ-कुशल (=बुरा) है।"

"भन्ते! अकुशल कायिक आचरण क्या है?" "महाराज! जो कायिक आचरण स-अवद्य (=सदोष) है।" "०सावद्य क्या है?" "जो० स-व्यापाद्य (=हिंसायुक्त) है।" "०स-व्यापाद्य क्या है?" "जो० दुःख विपाक (=अन्तमें दुःख देने वाला) है।"

"०दुःख-विपाक क्या है?"

"महाराज! जो कायिक आचरण अपनी पीड़ाके लिये होता है, पर-पीड़ाके लिये होता है; दोनोंकी पीड़ाके लिये होता है। उससे अ-कुशल-धर्म (=पाप) बढ़ते हैं, कुशल-धर्म नाश होते हैं। इस प्रकारका कायिक आचरण महाराज! ०निन्दित है।"

"भन्ते आनन्द! कौन वाचिक-आचरण श्रमणों ब्राह्मणों विज्ञोंसे निन्दित है?" ०। "महाराज! जो वाचिक-आचरण अपनी पीडाके लिये है०।"

"० कौन मानसिक आचरण०?" ०।

"भन्ते! अनन्द! क्या वह भगवान् सभी अकुशल धर्मों (=बुराइयों) का वर्णन करते हैं?"

"महाराज! तथागत सभी अकुशल धर्मोंसे रहित हैं, सभी कुशल-धर्मोंसे युक्त हैं।

"भन्ते आनन्द! कौन कायिक आचरण (=काय-समाचार) श्रमणों ब्राह्मणों विज्ञों अनिन्दित है?"

"महाराज! जो कायिक आचरण कुशल है।०। ०अनवद्य०।०। ०अव्यापाद्य०। ०सुख विपाक०।०। जो ० न अपनी पीड़ाके लिये होता है, न पर-पीड़ाके लिये; न दो पीड़ाके लिये होता है। उससे अकुशल-धर्म नाश होते हैं, कुशल-धर्म बढ़ते हैं।०।

०वाचिक आचरण कुशल हैं?० मानसिक आचरण कुशल हैं? ०।

"भन्ते आनन्द! क्या वह भगवान् सभी कुशल धर्मोंकी प्राप्तिको वर्णन करते हैं?

"महाराज ! तथागत सभी अकुशल-धर्मोंसे रहित हैं, सभी कुशल-धर्मोंसे युक्त हैं ।"

"आश्चर्य ! भन्ते !! अद्भुत ! भन्ते !! कितना सुन्दर कथन (=सुभाषित) है, भन्ते ! आयुष्मान् आनन्दका !!! भन्ते ! आयुष्मान् आनन्दके इस सुभाषितसे हम परम प्रसन्न हैं । भन्ते ! आयुष्मान् आनन्दके सुभाषितसे इस प्रकार प्रसन्न हुये, हम हाथी-रत्न भी आयुष्मान्को देते, यदि वह आयुष्मान् आनन्दको विहित (=ग्राह्य=कल्प्य) होता, ०अश्व-रत्न (=श्रेष्ट घोड़ा) भी०, ०अच्छा गांव भी० । किन्तु भन्ते ! आनन्द ! हम इसे जानते हैं, यह आयुष्मान्को ग्राह्य नहीं हैं । मेरे पास राजा मागध अजातशत्रु वैदेही-पुत्रकी भेजी...यह सोलह हाथ लम्बी आठ हाथ चौड़ी [1]वाहीतिक है, उसे आयुष्मान् आनन्द कृपा-करके स्वीकार करें ।"

"नहीं महाराज ! मेरे तीनों चीवर पूरे हैं ।"

"भन्ते ! यह अचिरवती नदी आयुष्मान् आनन्दने देखी है, और हमने भी । जब ऊपर पर्वत पर महामेघ बरसता है, तब यह अचिरवती, दोनों तटोंको भर कर बहती है । ऐसेही भन्ते ! इस वाहीतियसे आयुष्मान् आनन्द अपना त्रिचीवर बनावेंगे, जो आयुष्मान् आनन्दके चीवर हैं, उन्हें सब्रह्मचारी बांट लेंगे । इस प्रकार हमारी दक्षिणा (=दान) मानों भरकर बहती हुई (=संविस्यन्दन्ती) होगी । भन्ते ! आयुष्मान् आनन्द मेरी वाहीतिकको स्वीकार करें ।"

आयुष्मान् आनन्दने वाहीतिकको स्वीकार किया । तब राजा ० ने कहा—
"अच्छा भन्ते ! अब हम जाते हैं, (हम) बहु-कृत्य बहु-करणीय हैं ।"
"जिसका महाराज ! तुम काल समझते हो ।"

तब राजा प्रसेनजित ० आयुष्मान् आनन्दके भाषणको अभिनन्दनकर, अनुमोदनकर, आसनसे उठ, ० अभिवादनकर, प्रदक्षिणाकर चला गया ।

राजा०के जानेके थोड़ीही देर बाद, आयुष्मान् आनन्द जहां भगवान् थे, वहां गये । एक ओर बैठ आयुष्मान् आनन्दने जो कुछ राजा प्रसेनजित्०के साथ कथा-संलाप हुआ था, वह सब भगवान्को सुना दिया, और वह वाहीतिकभी भगवान्को अर्पण करदी । तब भगवान् ने भिक्षुओंको आमंत्रित किया—

"भिक्षुओ ! राजा प्रसेनजित्०को लाभ है, ० सुलाभ मिला है, जो राजा० आनन्दका दर्शन सेवनपाता है ।"

यह भगवान्ने कहा, संतुष्ट हो उन भिक्षुओंने भगवान्के भाषणका अभिनन्दन किया ।

---

१. अ० क० "वाहीत राष्ट्रमें पैदा होनेवाले वस्त्रका यह नाम है ।" सतलज और व्यासके बीचका प्रदेश वाहीत देश है । पाणिनीय (४ : २ : १७ । ५ : ३ : ११४) ने इसेही वाहीक लिखा है ।

चंकम-सुत्त ।

[1]ऐसा[2] मैंने सुना—एक समय भगवान् राजगृहमें गृद्धकूट-पर्वतपर विहार करते थे ।

उस समय आयुष्मान् सारिपुत्र बहुतसे भिक्षुओंके साथ भगवान्के अविदूरमें टहल रहे थे । ०महामौद्गल्यायन भी० । महाकाश्यपभी० । ०अनुरुद्धभी० । ०पूर्ण मैत्रायणीपुत्रभी० । आयुष्मान् उपालिभी० । आयुष्मान् आनन्दभी० । देवदत्त भी बहुतसे भिक्षुओंके साथ० । तब भगवान्ने भिक्षुओंको आमंत्रित किया—

"देख रहेहो तुम भिक्षुओ ! सारिपुत्रको, बहुतसे भिक्षुओंके साथ टहलते ?" "हाँ भन्ते !" "भिक्षुओ ! यह सभी भिक्षु महाप्रज्ञ हैं ।" "देख रहे हो० मौद्गल्यायनको० ?" "हाँ भन्ते !" "भिक्षुओ ! यह सभी भिक्षु महा-ऋद्धिक (=दिव्य-शक्तिधारी) हैं ।"

"०काश्यपको ?" ० । "०सभी० धुतवादी (=धुतगणोंसे युक्त) हैं ।"

"०अनुरुद्धको० ?" ० । "०सभी०दिव्यचक्षुक० ।"

"०पूर्ण मैत्रायणी-पुत्रको० ?" ० । "०सभी० धर्म-कथिक० ।"

"०उपालिको० ?" ० । "०सभी०विनय(=भिक्षुनियम)-धर० ।"

"०आनन्दको० ?" ० । "०सभी० बहुश्रुत० ।

"देख रहेहो तुम भिक्षुओ ! देवदत्तको बहुतसे भिक्षुओंके साथ टहलते ?" "हाँ भन्ते !"

"भिक्षुओ ! यह सभी भिक्षु पापेच्छुक (=बद-नीयत) हैं । भिक्षुओ ! प्राणी, धातु (=चित्त-वृत्ति=प्रकृति)के अनुसार (परस्पर) मिलाप करते हैं, साथ पकड़ते हैं । हीन-अधिमुक्तिक (=नीच-प्रकृतिवाले) हीनाधिमुक्तिकोंके साथ मिलाप करते हैं, साथ पकड़ते हैं । कल्याण (=अच्छे, उत्तम)-अधिमुक्तिक कल्याणाधिमुक्तिकोंके साथ० । पूर्वकालमें भी भिक्षुओ ! प्राणी धातुके अनुसार मिलाप करते थे, साथ पकड़ते थे । हीनाधिमुक्तिक० । कल्याणाधिमुक्तिक० । अनागत (=भविष्य)कालमें भी० । ० । इस समय भी० ।०।"

(२)

उपालि-सुत्त (वि॰ पृ॰ ४३०) ।

[1]ऐसा मैंने सुना—एक समय भगवान् नालन्दामें प्रावारिकके आम्रवनमें विहार करते थे ।

उस समय निगंठ नात-पुत्त निगंठों (=जैन-साधुओं)की बड़ी परिषद् (=जमात)के साथ नालन्दामें विहार करते थे । तब दीर्घ-तपस्वी निर्ग्रंथ (=जैन साधु) नालन्दामें भिक्षाचार कर, पिंडपात-खतमकर, भोजनके पश्चात्, जहां प्रावारिक-आम्र-वन (में) भगवान् थे, वहां गया । जाकर भगवान्‌के साथ संमोदन (कुशलप्रश्नपूछ)कर, एक ओर खड़ा हो गया । एक ओर खड़े हुये दीर्घ-तपस्वी निर्ग्रंथको भगवान्‌ने कहा—

" तपस्वी ! आसन मौजूद हैं, यदि इच्छा हो तो बैठ जाओ !"

ऐसा कहनेपर दीर्घ-तपस्वी निर्ग्रंथ एक नीचा आसनले एक ओर बैठ गया । एक ओर बैठे दीर्घ-तपस्वी निर्ग्रंथसे भगवान् बोले—

" तपस्वी ! पापकर्मके करनेकेलिये, पाप-कर्मकी प्रवृत्तिकेलिये निर्ग्रन्थ ज्ञातृपुत्र कितने कर्मोंका विधान करते हैं ? "

" आवुस ! गौतम ! 'कर्म' 'कर्म' विधान करना निर्ग्रंथ ज्ञातृपुत्रका कायदा (=आचिण्ण) नहीं है । आवुस ! गौतम ! 'दंड' 'दंड' विधान करना निगंठ नाथ-पुत्तका कायदा है । "

" तपस्वी ! तो फिर पाप-कर्मके करनेकेलिये=पाप-कर्मकी प्रवृत्तिकेलिये निगंठ नाथ-पुत्त कितने 'दंड' विधान करते हैं ? "

" आवुस ! गौतम ! पापकर्मके हटानेकेलिये ० निगंठ नात-पुत्त तीन दंडोंका विधान करते हैं । जैसे—'काय-दंड', 'वचन-दंड', 'मन-दंड' । "

" तपस्वी ! तो क्या काय-दंड दूसरा है, वचन-दंड दूसरा है, मन-दंड दूसरा है ? "

" आवुस ! गौतम ! (हां) ! काय-दंड दूसरा ही है, वचन-दंड दूसरा ही, मन-दंड दूसरा ही है ।

" तपस्वी! इस प्रकार भेद किये, इस प्रकार विभक्त, इन तीनों दंडोंमें निगंठ नात-पुत्त, पाप कर्मके करनेकेलिये, पापकर्मकी प्रवृत्तिकेलिये, किस दंडको महादोष-युक्त विधान करते हैं, काय-दंडको, या वचन-दंडको, या मन-दंडको ?"

" आवुस गौतम ! इस प्रकार भेद किये, इस प्रकार विभक्त, इन तीनों दंडोंमें निगंठ नात-पुत्त, पाप कर्मके करनेकेलिये ० काय-दंडको महादोष-युक्त विधान करते हैं; वैसा वचन-दंडको नहीं, वैसा मन-दंडको नहीं । "

१· म॰ नि॰ २ : २ : ६ ।

" तपस्वी ! काय-दंड कहते हो ?'
" आवुस ! गौतम ! काय-दंड कहता हूँ ।"
" तपस्वी ! काय-दंड कहते हो ?'
" आवुस ! गौतम ! काय-दंड कहता हूँ ।"
" तपस्वी ! काय-दंड कहते हो ?'
" आवुस ! गौतम ! काय-दंड कहता हूँ ।"

इस प्रकार भगवान्‌ने दीर्घ-तपस्वी निगंठको इस कथा-वस्तु (=बात)में तीनवार प्रतिष्ठापित किया ।

ऐसा कहनेपर दीर्घ-तपस्वी निगंठने भगवान्‌को कहा—

" तुम आवुस ! गौतम ! पाप-कर्मके करनेके लिये० कितने दंड-विधान करते हो ?'

" तस्वी ! 'दंड' 'दंड' कहना तथागतका कायदा नहीं है, 'कर्म' 'कर्म' कहना तथागतका कायदा है ।"

" आवुस ! गौतम ! तुम ०कितने कर्म विधान करते हो ?"

" तपस्वी ! मैं ०तीन कर्म बतलाता हूँ—जैसे काय-कर्म, वचन-कर्म, मन-कर्म ।'

" आवुस ! गौतम ! काय-कर्म दूसरा ही है, वचन-कर्म दूसरा ही है, मन-कर्म दूसरा ही है ।"

" तपस्वी ! काय-कर्म दूसरा ही है, वचन-कर्म दूसरा ही है, मन-कर्म दूसरा ही है ।"

" आवुस ! गौतम ! ०इस प्रकार विभक्त० इन तीन कर्मोंमें, पाप-कर्म करनेके लिये० किसको महादोषी ठहराते हो—काय-कर्मको, या वचन-कर्मको, या मन-कर्मको ?"

" तपस्वी ! ०इस प्रकार विभक्त० इन तीनों कर्मोंमें मन-कर्मको मैं ०महादोषी बतलाता हूँ ।"

" आवुस ! गौतम ! मन-कर्म बतलाते हो ?"
" तपस्वी ! मन-कर्म बतलाता हूँ ।'
" आवुस ! गौतम ! मन-कर्म बतलाते हो ?"
" तपस्वी ! मन-कर्म बतलाता हूँ ।'
" आवुस ! गौतम ! मन-कर्म बतलाते हो ?"
" तपस्वी ! मन-कर्म बतलाता हूँ ।"

इस प्रकार दीर्घ-तपस्वी निगंठ भगवान्‌को इस कथा-वस्तु (=विवाद-विषय) तीन बार प्रतिष्ठापित करा, आसनसे उठ जहाँ निगंठ नात-पुत्त थे, वहाँ चला गया ।

उस समय निगंठ नात-पुत्त, बालक (-लोणकार)-निवासी उपाली आदिकी गृहस्थ-परिषद्‌के साथ बैठे थे । तब निगंठ नात-पुत्तने दूरसे ही दीर्घ-तपस्वी निगंठको देख, पूछा—

"हैं ! तपस्वी ! मध्याह्नमें तू कहांसे (आ रहा है) ?

"भन्ते ! श्रमण गौतमके पाससे आ रहा हूं ।"

"तपस्वी ! क्या तेरा श्रमण गौतमके साथ कुछ कथा-संलाप हुआ ?"

"भन्ते ! हां ! मेरा श्रमण गौतमके साथ कथा-संलाप हुआ ।"

"तपस्वी ! श्रमण गौतमके साथ तेरा क्या कथा-संलाप हुआ ।"

तब दीर्घ-तपस्वी निगंठने भगवान्‌के साथ जो कुछ कथा-संलाप हुआ था, वह सब निगंठ नात-पुत्तको कह दिया ।

"साधु ! साधु !! तपस्वी ! जैसा कि शास्ता (= गुरु)के शासन (= उपदेश)को अच्छी प्रकार जाननेवाले, बहुश्रुत श्रावक दीर्घ-तपस्वी निगंठने श्रमण गौतमको बतलाया । वह मुवा मन-दंड, इस महान् काय-दंडके सामने क्या शोभता है ? पाप-कर्मके करने = पापकर्मकी प्रवृत्तिके लिये काय-दंड ही महादोषी है, वचन दंड, मन-दंड वैसे नहीं । "

ऐसा कहनेपर उपाली गृहपतिने निगंठ···को यह कहा—

"साधु ! साधु !! भन्ते तपस्वी ! जैसा कि शास्ताके शासनके मर्मज्ञ, बहुश्रुत श्रावक भदन्त दीर्घ-तपस्वी निगंठने श्रमण गौतमको बतलाया । यह मुवा० । तो भन्ते ! मैं जाऊँ, इसी कथा-वस्तुमें श्रमण गौतमके साथ विवाद रोपूँ ? यदि मेरे (सामने) श्रमण गौतम वैसे (ही) ठहरा रहा, जैसा कि भदन्त दीर्घ-तपस्वीने (उसे) ठहराया । तो जैसे बलवान् पुरुष लम्बे बालवाली भेड़को बालोंसे पकड़कर निकाले, घुमावे, डुलावे ; उसी प्रकार मैं श्रमण गौतमके वादको···निकालूँगा, घुमाऊँगा, डुलाऊँगा । (अथवा) जैसे कि गहरे बलवान् शौंडिक-कर्मकर (= शराब बनानेवाला) भट्टीके बड़े टोकरे (= सोंडिका-किलंज)को पानी(वाले) तालाबमें फेंककर ; कानोंको पकड़ निकाले, घुमावे, डुलावे, ऐसे ही मैं० । (अथवा) जैसे बलवान् शराबी, बालकको कानसे पकड़कर हिलावे, ०डुलावे···, ऐसे ही मैं० । (अथवा) जैसे कि साठ वर्षका पट्ठा हाथी गहरी पुष्करिणीमें घुसकर सन-धोवन नामक खेलको खेले, ऐसे ही मैं श्रमण गौतमको सन-धोवन० । हां ! तो भन्ते ! मैं जाता हूं । इस कथा-वस्तुमें श्रमण गौतमके साथ वाद रोपूँगा । "

"जा गृहपति ! जा, श्रमण गौतमके साथ इस कथा-वस्तुमें वाद रोप । गृहपति ! श्रमण गौतमके साथ मैं वाद रोपूँ, या दीर्घ-तपस्वी निगंठ रोपै, या तू । "

ऐसा कहनेपर दीर्घ-तपस्वी निगण्ठने निगण्ठ नात-पुत्तको कहा—

"भन्ते ! (आपको) यह मत रुचे, कि उपालि गृहपति श्रमण गौतमके पास जाकर वाद रोपै । भन्ते ! श्रमण गौतम मायावी है, (मति) फेरनेवाली माया जानता है, जिससे दूसरे तैर्थिकों (= पंथाइयों)के श्रावकों (को अपनी ओर) फेर लेता है । "

"तपस्वी ! यह संभव नहीं, कि उपाली गृहपति श्रमण गौतमका श्रावक होजाय । संभव है कि श्रमण गौतम (ही) उपाली गृहपतिका श्रावक होजाय । जा गृहपति ! श्रमण गौतमके साथ इस कथा-वस्तुमें वाद रोप । गृहपति ! श्रमण गौतमके साथ मैं वाद रोपूँ, या दीर्घ-तपस्वी निगंठ रोपै, या तू । "

वारिसे धुला हुआ, सब (पाप) वारिसे छूटा हुआ, निर्ग्रंथ (= जैन-साधु) है। वह आते जाते बहुतसे छोटे-छोटे प्राणि-समुदायको मारता है। गृहपति! निगंठ नात-पुत्त इसका क्या विपाक (= फल) बतलाते हैं ?"

"भन्ते! अनजानीको निगंठ नात-पुत्त महादोष नहीं कहते।"

"गृहपति! यदि जानता हो।" "(तब) भन्ते! महादोष होगा।"

"गृहपति! जाननेको निगंठ नात-पुत्त किसमें कहते हैं ?" "भन्ते! मन-दंडमें"

"गृहपति! गृहपति! मनमें (सोच)करके कहो।०।"

"और भन्ते! भगवान्‌ने भी०।"

"तो गृहपति! क्या यह नालन्दा सुख-संपत्ति-युक्त, बहुत जनोंवाली, (बहुत) मनुष्योंसे भरी है?" "हां भन्ते!"

"तो···गृहपति! (यदि) यहां एक पुरुष (नंगी) तलवार उठाये आये, और कहे—इस नालन्दामें जितने प्राणी हैं, मैं एक क्षणमें एक मुहूर्तमें, उन (सब)का एक मांस का खलियान, एक मांसका ढेर कर दूंगा। तो क्या गृहपति! वह पुरुष···एक मांसका ढेर कर सकता है?"

"भन्ते! दसभी पुरुष, बीसभी पुरुष, तीस० चालीस०, पचासभी पुरुष, एक मांसका ढेर नहीं कर सकते, वह एक मुवा क्या··· है।"

"तो···गृहपति! यहां एक ऋद्धिमान्, चित्तको वशमें किया हुआ, श्रमण या ब्राह्मण आवे, वह ऐसा बोले—मैं इस नालंदाको एकही मनके क्रोधसे भस्म कर दूंगा। तो क्या···गृहपति! वह० श्रमण या ब्राह्मण० इस नालंदाको (अपने) एक मनके क्रोधसे भस्म कर सकता है?"

"भन्ते! दस नालन्दाओंको भी० पचास नालन्दाओंको भी० वह श्रमण या ब्राह्मण० (अपने) एक मनके क्रोधसे भास्मकर सकता है। एक मुई नालन्दा क्या है।"

"गृहपति! गृहपति! मनमें (सोच) कर···कहो०।"

"और भगवान्‌ने भी०।"

"तो···गृहपति! क्या तुमने दंडकारण्य, कलिंगारण्य, मेध्यारण्य (= मेज्झारञ्ञ), मातङ्गारण्यका अरण्य होना सुना है?" "हां, भन्ते! ०।"

"तो···गृहपति! तुमने सुना है, कैसे दण्डकारण्य० हुआ?"

"भन्ते? मैंने सुना है—ऋषियोंके मनके-कोपसे दंडकारण्य० हुआ।"

"गृहपति! गृहपति! मनमें (सोच) कर···कहो०। तुम्हारा पूर्वसे पश्चिम नहीं मिलता, पश्चिमसे पूर्व नहीं मिलता। और तुमने गृहपति! यह बात कही है—'सत्यमें स्थिर हो मैं भन्ते! मंत्रणा (= वाद) करूँगा, हमारा संलाप हो।'

---

१. मिलाओ जैन 'उपासगदसा' (सूत्र)।

"भन्ते ! भगवान्‌की पहिली उपमासेही मैं संतुष्ट और अभिरत होगया था । विचित्र प्रश्नोंके व्याख्यान (=पटिभान)को और भी सुननेकी इच्छासेही मैंने भगवान्‌को प्रतिवादी बनाना पसन्द किया । आश्चर्य ! भन्ते !! आश्चर्य ! भन्ते !! जैसे औंधेको सीधा करदे० आजसे भगवान् मुझे सांजलि शरणागत उपासक धारण करें ।"

"गृहपति ! सोच-समझकर (काम) करो । तुम्हारे जैसे मनुष्योंका सोच-समझकर ही करना अच्छा होता है ।"

"भन्ते ! भगवान्‌के इस कथनसे मैं और भी प्रसन्नमन, सन्तुष्ट और अभिरत हुआ; जोकि भगवान्‌ने मुझे कहा—'गृहपति ! सोच-समझकर करो० ।' भन्ते ! दूसरे तैर्थिक (=पंथाई) मुझे श्रावक पाकर, सारे नालन्दामें पताका उड़ाते—'उपाली गृहपति हमारा श्रावक होगया' । और भगवान् मुझे कहते हैं—' गृहपति ! सोच-समझकर करो० । भन्ते ! यह दूसरी वार मैं भगवान्‌की शरण जाता हूँ, धर्म और भिक्षु संघकी भी० ।"

"गृहपति ! दीर्घ-कालसे तुम्हारा कुल (=कुल)निगंठोंके लिये प्याउकी तरेह रहा है, उनके जानेपर 'पिंड नहीं देना चाहिये'-यह मत समझना ।"

"भन्ते ! इससे और भी प्रसन्न-मन, सन्तुष्ट और अभिरत हुआ, जो मुझे भगवान्‌ने कहा—दीर्घकालसे तेरा घर० । भन्ते ! मैंने सुना था कि श्रमण गौतम ऐसा कहता है—मुझेही दान देना चाहिये, दूसरोंको दान न देना चाहिये । मेरेही श्रावकोंको दान देना चाहिये, दूसरोंको दान न देना चाहिये । मुझेही देनेका महा-फल होता है, दूसरोंको देनेका महा-फल नहीं होता । मेरेही श्रावकोंको देनेका महाफल होता है, दूसरोंके श्रावकोंको देनेका महाफल नहीं होता । और भगवान्‌तो मुझे निगंठोंको भी दान देनेको कहते हैं । भन्ते ! हम भी इसे युक्त समझेंगे । भन्ते ! यह मैं तीसरी वार भगवान्‌की शरण जाता हूँ० ।"

तव भगवान्‌ने उपाली गृहपतिको आनुपूर्वी-कथा कही०[1] ।जैसे कालिमा-रहित शुद्ध-वस्त्र अच्छी प्रकार रंगको पकड़ता है, इसी प्रकार उपालि गृहपतिको उसी आसनपर विरज=विमल धर्म-चक्षु उत्पन्न हुआ—'जो कुछ समुदय-धर्म है, वह सब निरोध-धर्म है' । तव उपाली गृहपतिने दृष्ट-धर्म०[1] हो भगवान्‌से कहा—

" भन्ते ! अव हम जाते हैं, हम वहुकृत्य=वहुकरणीय हैं "

" गृह-पति ! जैसा तुम काल (=उचित) समझो (वैसा करो) ।"

तव उपाली गृह-पति भगवान्‌के भाषणको अभिनन्दनकर, अनु-मोदनकर, आसनसे उठ, भगवान्‌को अभिवादनकर, प्रदक्षिणाकर, जहां उसका घर था, वहां गया । जाकर द्वार-पालको बोला—

" सौम्य ! दौवारिक ! आजसे मैं निगंठों और निगंठियोंकेलिये द्वार वन्द करता हूँ, भगवान्‌के भिक्षु भिक्षुनी, उपासक और उपासिकाओंकेलिये द्वार खोलता हूँ । यदि निगंठ आये, तो कहना ' ठहरें भन्ते ! आजसे उपाली गृह-पति श्रमण गौतमका श्रावक हुआ ।

१. देखो पृष्ठ २९ ।

निगंठों, निगंठियोंकेलिये द्वार बन्द है; भगवान्‌के भिक्षु, भिक्षुनी, उपासक, उपासिकाओं केलिये द्वार खुला है । यदि भन्ते ! तुम्हें पिंड (=भिक्षा) चाहिये, यहीं ठहरें, (हम) यहीं ला देंगे । "

" भन्ते ! अच्छा " (कह) दौवारिकने उपालि गृह-पतिको उत्तर दिया ।

दीर्घ-तपस्वी निगंठने सुना—' उपालि गृह-पति श्रमण गौतमका श्रावक होगया ' । तब दीर्घ-तपस्वी निगंठ, जहां निगंठ नात-पुत्त थे, वहां गया । जाकर निगंठ नात-पुत्तको बोला :—

" भन्ते ! मैंने सुना है, कि उपाली गृह-पति श्रमण गौतमका श्रावक हो गया ।"

" यह स्थान नहीं, यह अवकाश नहीं (=यह असम्भव) है, कि उपाली गृह-पति श्रमण गौतमका श्रावक हो जाये, और यह स्थान (=संभव) है, कि श्रमण गौतम (ही) उपाली गृहपतिका श्रावक (=शिष्य) हो ।"

दूसरी वारभी दीर्घ तपस्वी निगंठने कहा—० ।

तीसरी वारभी दीर्घ तपस्वी निगंठ ने ० ।

" तो भन्ते ! मैं जाता हूँ, और देखता हूँ, कि उपाली गृह-पति श्रमण गौतमका श्रावक हो गया, या नहीं ।"

" जा तपस्वी ! देख कि उपाली गृहपति श्रमण गौतमका श्रावक होगया, या नहीं ।"

तब दीर्घ-तपस्वी निगंठ जहां उपाली गृहपतिका घर था, वहां गया । द्वार-पालने दूरसे ही दीर्घ-तपस्वी निगंठको आते देखा । देखकर दीर्घ-तपस्वी निगंठसे कहा—

" भन्ते ! ठहरो, मत प्रवेश करो । आजसे उपाली गृहपति श्रमण गौतमका श्रावक होगया० । यहीं ठहरो, यहीं तुम्हें पिंड ले आ देंगे ।"

" आवुस ! मुझे पिंडका काम नहीं है ।"

—यह कह दीर्घ-तपस्वी निगंठ जहां निगंठ नात-पुत्त थे, वहां गया । जाकर निगंठ नात-पुत्तसे बोला—

" भन्ते ! सच ही है । उपाली गृहपति श्रमण गौतमका श्रावक होगया । भन्ते ! मैंने तुमसे पहिले ही न कहा था, कि मुझे यह पसन्द नहीं कि उपाली गृहपति श्रमण गौतमके साथ वाद करे । (क्योंकि) श्रमण गौतम भन्ते ! मायावी है, आवर्तनी माया जानता है, जिससे दूसरे तैर्थिकोंके श्रावकोंको फेर लेता है । भन्ते ! उपाली गृहपतिको श्रमण गौतमने आवर्तनी-मायासे फेर लिया ।"

" तपस्वी ! यह....(संभव नहीं)...कि उपाली गृहपति श्रमण गौतमका श्रावक होजाय० ।"

दूसरीवार भी दीर्घ-तपस्वी निगंठने निगंठ नात-पुत्तको यह कहा—० । तीसरीवार भी दीर्घ-तपस्वी० ।

"तपस्वी! यह···(संभव नहीं)···०। अच्छा तो तपस्वी! मैं जाता हूं। स्वयं जानता हूं, कि उपाली गृह-पति श्रमण गौतमका श्रावक हुआ या नहीं।"

तब निगंठ नात-पुत्त बड़ी भारी निगंठोंकी परिषद्के साथ, जहां उपाली गृहपतिका घर था, वहां गया। द्वार-पालने दूरसे आते हुये निगंठ नात-पुत्तको देखा। (और) कहा—

"ठहरें भन्ते! मत प्रवेश करें। आजसे उपाली गृहपति श्रमण गौतमका उपासक हुआ०। यहीं ठहरें, यहीं तुम्हें (पिंड) ले आ देंगे।"

"तो सौम्य दौवारिक! जहां उपाली गृहपति है, वहां जाओ। जाकर उपाली गृहपतिको कहो—भन्ते! बड़ी भारी निगंठ-परिषद्के साथ निगंठ नात-पुत्त फाटकके बाहर खड़े हैं, (और) तुम्हें देखना चाहते हैं।"

"अच्छा भन्ते।"

निगंठ नात-पुत्तको कह (द्वारपाल) जहां उपाली गृहपति था, वहां गया। जाकर उपाली गृहपतिको कहा—

"भन्ते! ०निगंठ नात-पुत्त।०"

"तो सौम्य! दौवारिक! बिचली द्वार-शाला (=दालान)में आसन बिछाओ।"

"भन्ते! अच्छा" उपालि गृहपतिको कह, बिचली द्वार-शालामें आसन बिछा—

"भन्ते! बिचली द्वार-शालामें आसन बिछा दिये। अब (आप) जिसका काल समझें।"

तब उपाली गृह-पति जहां बिचली द्वार-शाला थी, वहां गया। जाकर जो वहां अग्र=श्रेष्ठ, उत्तम=प्रणीत आसन था, उसपर बैठकर दौवारिकको बोला—

"तो सौम्य दौवारिक! जहां निगंठ नात-पुत्त हैं, वहां जाओ, जाकर निगंठ नात-पुत्तको यह कहो—'भन्ते! उपालि गृहपति कहता है—यदि चाहें तो भन्ते! प्रवेश करें।"

"अच्छा भन्ते!"

—(कह)···दौवारिकने······निगंठ नात-पुत्तसे कहा—

"भन्ते! उपालि गृहपति कहते हैं—यदि चाहें तो, प्रवेश करें।"

निगंठ नात-पुत्त बड़ी भारी निगंठ-परिषद्के साथ जहां बिचली द्वारशाला थी, वहां गये। पहिले जहां उपालि गृहपति, दूरसेही निगंठ नात-पुत्तको आते देखता; देखकर अगवानी-कर वहां जो अग्र=श्रेष्ठ उत्तम=प्रणीत आसन होता, उसे चादरसे पोंछकर, उसपर बैठाता था। सो आज जो वहां०उत्तम० आसन था, उसपर स्वयं बैठकर निगंठनात-पुत्तको कहा—

"भन्ते! आसन मौजूद हैं, यदि चाहें तो बैठें।"

ऐसा कहनेपर निगंठ नात-पुत्तने उपाली-गृहपतिको कहा—

"उन्मत्त होगया है गृहपति! जड़ होगया है गृहपति! तू—'भन्ते! जाता हूँ श्रमण-गौतमके साथ वाद रोपूंगा'—(कहकर) जानेके बाद बड़े भारी वादके संघाट (=जाल)में

बंधकर लौटा है । जैसे कि अंड(=अंडकोश)-हारक निकाले अंडोंके साथ आये; जैसे कि " अक्षि(=आंख)-हारक पुरुष निकाली आँखोंके साथ आये, वैसेही गृहपति ! तू—'भन्ते ! जाता हूँ, श्रमण गौतमके साथ वाद रोपूंगा' (कहकर)जा, बड़े भारी वाद-संघाटमें बँधकर लौटा है । गृहपति ! श्रमण गौतमने आवर्तनी-मायासे तेरी (मत) फेर ली है ।'

" सुन्दर है, भन्ते ! आवर्तनीमाया । कल्याणी है भन्ते ! आवर्तनी माया । (यदि)मेरे प्रिय जातिभाई भी इस आवर्तनी-माया द्वारा फेर लिये जांये, (तो) मेरे प्रिय जाति-भाइयोंका दीर्घ-कालतक हित-सुख होगा । यदि भन्ते ! सभी क्षत्रिय इस आवर्तनी-मायासे फेर लिये जावें, तो सभी क्षत्रियोंका दीर्घ-कालतक हित-सुख होगा । यदि सभी ब्राह्मण० । यदि सभी वैश्य० । यदि सभी शूद्र० । यदि देव-मार-ब्रह्मा-सहित सारालोक, श्रमण-ब्राह्मण-देव-मनुष्य-सहित सारी प्रजा (=जनता) इस आवर्तनी मायासे फेर लीजाय, तो···(उसका) दीर्घकालतक हित-सुख होगा । भन्ते ! आपको उपमा कहता हूँ, उपमासे भी कोई कोई विज्ञ पुरुष भाषणका अर्थ समझ जाते हैं—

"पूर्वकालमें भन्ते ! किसी जीर्ण=बूढ़े=महल्लक ब्राह्मणकी एक नव-वयस्का (=दहर) माणविका (=तरुण ब्राह्मणी) भार्या गर्भिणी आसन्न-प्रसवा हुई । तब भन्ते ! उस माणविकाने ब्राह्मणको कहा—ब्राह्मण ! जा बाजारसे एक वानरका बच्चा (खिलौना) खरीद ला, वह मेरे कुमारका खेल होगा ।'

'ऐसा बोलनेपर, भन्ते ! उस ब्राह्मणने उस माणविका को कहा—भवती (=आप) ! ठहरिये, यदि आप कुमार जनेंगी, तो उसके लिये मैं बाजारसे मर्कट-शावक (खिलौना) खरीद कर लाऊँगा, जो आपके कुमारका खेल होगा' । दूसरी बारभी भन्ते ! उस माणविकाने० । तीसरी बारभी० । तब भन्ते ! उस माणविकामें अति-अनुरक्त=प्रतिबद्ध-चित्त उस ब्राह्मणने बाजारसे मर्कट-शावक खरीदकर, लाकर, उस माणविका को कहा—'भवती ! बाजारसे यह तुम्हारा मर्कट-शावक खरीदकर लाया हूं, यह तुम्हारे कुमारका खिलौना होगा ।' ऐसा कहनेपर भन्ते ! उस माणविकाने उस ब्राह्मणको कहा—'ब्राह्मण ! इस मर्कट-शावकको लेकर, वहां जाओ जहां रक्त-पाणि रजक-पुत्र (=रंगरेजका बेटा) है । जाकर रक्त-पाणि रजक-पुत्रको कहो—सौम्य ! रक्तपाणि ! मैं इस मर्कट-शावकको पीतावलेपन रंगसे रंगा मला, दोनों ओर पालिश किया हुआ चाहता हूं ।' तब भन्ते ! उस माणविकामें अति-अनुरक्त=प्रतिबद्ध-चित्त वह ब्राह्मण उस मर्कट-शावकको लेकर जहां रक्त-पाणि रजक-पुत्र था, वहां गया, जाकर रक्त-पाणि रजक-पुत्रसे कहा—सौम्य ! रक्तपाणि ! इस०' । ऐसा कहनेपर, रक्त-पाणि रजक-पुत्रने उस ब्राह्मणको कहा—'भन्ते ! यह तुम्हारा मर्कट-शावक न रंगने योग्य है, न मलने योग्य है, न मांजने योग्य है ।' इसी प्रकार भन्ते ! बाल (अज्ञ=) निगंठोका वाद (सिद्धान्त) बालों (=अज्ञों)को रंजन करने लायक है, पंडितको नहीं । (यह) न परीक्षा (=अनुयोग)के योग्य है, न मीमांसाके योग्य है । तब भन्ते ! वह ब्राह्मण दूसरे समय नया धुस्सेका जोड़ा ले, जहाँ रक्त-पाणि रजकपुत्र था, वहाँ गया । जाकर रक्त-पाणि रजक-पुत्रको कहा—'सौम्य ! रक्त-पाणि ! धुस्सेका जोड़ा पीतावलेपन (=पीले) रंगसे रंगा, मला, दोनों ओरसे मांजा (=पालिश किया) हुआ चाहता हूँ' । ऐसा कहनेपर भन्ते ! रक्त-पाणि रजक-पुत्रने उस ब्राह्मणको कहा—'भन्ते ! यह तुम्हारा

धुस्सा-जोड़ा रँगने योग्य है, मलने योग्य भी है, मांजने योग्य भी है।' इसी तरह भन्ते! उस भगवान् अर्हत् सम्यक् संबुद्धका वाद, पंडितोंको रंजन करने योग्य है, वालों (=अज्ञों)को नहीं। (यह) परीक्षा और मीमांसाके योग्य है।"

"गृहपति! राजा-सहित सारी परिषद् जानती है, कि उपाली गृह-पति निगंठ नात-पुत्तका श्रावक है। (अब) गृहपति! तुझे किसका श्रावक समझें। ऐसा कहने पर उपाली गृह-पति आसनसे उठकर, उत्तरासंग (=चद्दर)को (दाहिने कन्धेको नंगाकर), एक कंधेपर कर, जिधर भगवान् थे उधर हाथ जोड़ निगंठ नात-पुत्तसे बोला—" भन्ते! सुनो मैं किसका श्रावक हूँ?"

धीर विगत-मोह खंडित-कील विजित-विजय,
निर्दुःख सु-सम-चित्त वृद्ध-शील सुन्दर-प्रज्ञ,
विश्वके तारक, वि-मल, उस भगवान्‌का मैं श्रावक हूँ॥ १॥
अकथं-कथी, संतुष्ट, लोक-भोगको वमन करनेवाले, मुदित,
श्रमण-हुये-मनुज अंतिम-शरीर-नर,
अनुपम, वि-रज, उस भगवान्‌का मैं श्रावक हूँ॥ २॥
संशय-रहित, कुशल, विनय-युक्त-बनानेवाले, श्रेष्ठ-सारथी,
अनुत्तर (=सर्वोत्तम), रुचिर-धर्म-वान्, निराकांक्षी, प्रभाकर,
मान-छेदक, वीर, उस भगवान्‌का मैं श्रावक हूँ॥ ३॥
उत्तम (=निसभ) अ-प्रमेय, गम्भीर, मुनित्व-प्राप्त,
क्षेमंकर, ज्ञानी, धर्मार्थ-वान्, संयत-आत्मा,
संग-रहित, मुक्त, उस भगवान्‌का मैं श्रावक हूँ॥ ४॥
नाग, एकांत-आसन-वान्, संयोजन (=बन्धन)-रहित, मुक्त,
प्रति-मंत्रक (=वाद-दक्ष), धौत, प्राप्त-ध्वज, वीत-राग,
दान्त, निष्प्रपंच, उस भगवान्‌का मैं श्रावक हूँ॥ ५॥
ऋषि-सत्तम, अ-पाखंडी, त्रि-विद्या-युक्त, ब्रह्म(=निर्वाण)-प्राप्त,
स्नातक, पदक (=कवि), प्रश्रब्ध, विदित-वेद,
पुरन्दर, शक्र, उस भगवान्‌का मैं श्रावक हूँ॥६॥
आर्य, भावितात्मा, प्राप्तव्य-प्राप्त, वैयाकरण,
स्मृतिमान्, विपश्यी, अन्-अभिमानी, अन्-अवनत,
अ-चंचल, वशी, उस भगवान्‌का मैं श्रावक हूँ॥७॥
सम्यग्-गत, ध्यानी, अ-लग्न-चित्त (=अन्-अनुगत-अन्तर), शुद्ध।
अ-सित (=शुद्ध), अ-प्रहीण, प्रविवेक-प्राप्त, अग्र-प्राप्त,
तीर्ण, तारक, उस भगवान्‌का मैं श्रावक हूँ॥८॥
शांत, भूरि(=बहु)-प्रज्ञ, महा-प्रज्ञ विगत-लोभ,
तथागत, सुगत, अ-प्रति-पुद्गल (=अ-तुलनीय)=अ-सम,
विशारद, निपुण, उस भगवान्‌का मैं श्रावक हूँ॥९॥

तृष्णा-रहित, बुद्ध, धूम-रहित, अन्-उपलिप्त,
पूजनीय, यक्ष, उत्तम-पुद्गल, अ-तुल,
महान् उत्तम-यश-प्राप्त, उस भगवान्का मैं श्रावक हूँ ॥१०॥"
" गृहपति ! श्रमण-गौतमके गुण तुझे कब सूझे ? "

"भन्ते ! जैसे नाना पुष्पोंकी एक महान् पुष्प-राशि (ले) एक चतुर माली, या मालीका अन्तेवासी (=शिष्य), विचित्र माला गूँथे ; उसी प्रकार भन्ते ! वह भगवान् अनेक वर्ण (=गुण)वाले, अनेक-शत-वर्ण-वाले हैं । भन्ते ! प्रशंसनीयकी प्रशंसा कौन न करेगा ?"

निगंठ नात-पुत्तने भगवान्के सत्कारको न सहनकर, वहीं मुँहसे गर्म लोहू फेंक दिया ।

---

(३)

अभयराजकुमार-सुत्त (वि. पू. ४३०) ।

[१] ऐसा मैंने सुना—एक समय भगवान् राजगृहमें वेणुवन कलन्दक-निवापमें विहार करते थे ।

तब अभय-राजकुमार जहां निगंठ नात-पुत्त थे, वहां गया । जाकर निगंठ नात-पुत्तको अभिवादनकर एक ओर बैठा । एक ओर बैठे अभय-राजकुमारको निगंठ नात-पुत्तने कहा—

"आ, राजकुमार ! श्रमण गौतमके साथ वाद (=शास्त्रार्थ) कर । इससे तेरा सुयश (=कल्याणकीर्ति शब्द) फैलेगा—'अभय राजकुमारने इतने महर्द्धिक = इतने महानुभाव श्रमण गौतमके साथ वाद रोपा' ।"

"किस प्रकारसे भन्ते ! मैं इतने महानुभाव श्रमण गौतमके साथ वाद रोपूंगा ?"

"आ तू राजकुमार ! जहां श्रमण गौतम हैं, वहां जा । जाकर श्रमण गौतमको ऐसा कह—'क्या भन्ते ! तथागत ऐसा वचन बोल सकते हैं, जो दूसरोंको अ-प्रिय=अ-मनाप हो'। यदि ऐसा पूछनेपर श्रमण गौतम तुझे कहे—'राजकुमार ! बोल सकते हैं० ।' तब उसे तुम यह बोलना—'तो फिर भन्ते ! पृथग्जन (=अज्ञ संसारीजीव)से (तथागतका) क्या भेद हुआ, पृथग्जनभी वैसा वचन बोल सकता है०' । यदि ऐसा पूछनेपर तुझे श्रमण गौतम कहे—'राजकुमार !० नहीं बोल सकते हैं ।' तब तुम उसे बोलना, 'तो भन्ते ! आपने देवदत्तके लिये भविष्यद्वाणी क्यों की है—'देवदत्त अपायिक (=दुर्गतिमें जानेवाला)है, देवदत्त नैरयिक (=नरकगामी) है, देवदत्त कल्पस्थ (=कल्पभर नरकमें रहनेवाला)है, देवदत्त अचिकित्स्य (=लाइलाज) है' । आपके इस वचनसे देवदत्त कुपित=असंतुष्ट हुआ ।' राजकुमार ! (इसप्रकार) दोनों ओरके प्रश्न पूछनेपर श्रमण गौतम न उगिल सकेगा, न निगल सकेगा । जैसे कि पुरुषके कंठमें लोहेकी वंसी (=श्रंगाटक) लगा हो, वह न निगल सकै न उगल सकै; ऐसेही० ।"

"अच्छा भन्ते !" कह···अभय राजकुमार···आसनसे उठ, निगंठ नात-पुत्तको अभिवादनकर, प्रदक्षिणाकर, जहां भगवान् थे, वहां गया । जाकर भगवान्को अभिवादनकर, एक ओर बैठ गया । एक ओर बैठे हुये अभय राजकुमारको सूर्य (=समय) देखकर हुआ—'आज भगवान्से वाद रोपनेका समय नहीं है । कल अपने घरपर भगवान्के साथ वाद करूँगा ।' (और) भगवान्से कहा—

"भन्ते ! भगवान् अपने सहित चार आदमियोंका कलको मेरा भोजन स्वीकार करें ।"

भगवान्ने मौनसे स्वीकार किया । तब अभय राजकुमार भगवान्की स्वीकृति जान, भगवान्को अभिवादनकर, प्रदक्षिणाकर चला गया ।

---

१. म. नि. ९ः १ः ८।

उस रातके बीतनेपर भगवान् पूर्वाह्न समय पहिनकर पात्रचीवर ले, जहां अभय राजकुमारका घर था, वहां गये । जाकर बिछे आसनपर बैठे । तब अभय राजकुमारने भगवान्‌को उत्तम खाद्य भोज्यसे अपने हाथसे तृप्त किया, पूर्ण किया । तब अभय राजकुमार, भगवान्‌के भोजनकर पात्रसे हाथ हटा लेनेपर, एक नीचा आसन ले, एक ओर बैठ गया । एक ओर बैठे हुये, अभय राजकुमारने भगवान्‌को कहा—

"क्या भन्ते ! तथागत ऐसा वचन बोल सकते हैं, जो दूसरेको अ-प्रिय=अ-मनाप हो । "

"राजकुमार ! यह एकांशसे (=सर्वथा=विना अपवादके) नहीं (कहा जा सकता) ।"

"भन्ते ! नाश होगये निगंठ ।"

"राजकुमार ! क्या तू ऐसे बोल रहा है—'भन्ते ! नाश हो गये निगंठ' ?"

"भन्ते ! मैं जहां निगंठ नात-पुत्त हैं, वहां गया था । जाकर निगंठ नात-पुत्तको अभिवादन कर एक ओर बैठ गया । एक ओर बैठे मुझे निगंठ नात-पुत्तने कहा—'आ राजकुमार !०' ०। इसी प्रकार राजकुमार ! दुधारा प्रश्न पूछनेपर श्रमण गौतम न उगल सकेगा, न निगल सकेगा' ।"

उस समय अभय राजकुमारकी गोदमें, एक छोटा मन्द, उतान सोने लायक (=बहुतही छोटा) बच्चा, बैठा था । तब भगवान्‌ने अभय राजकुमारको कहा—

"तो क्या मानते हो, राजकुमार ! क्या तेरे या दाईके प्रमाद (=गफलत)से यदि यह कुमार मुखमें काठ या ढला डाल ले, तो तू इसको क्या करेगा ?"

"निकाल लूंगा, भन्ते ! यदि भन्ते मैं पहिलेही न निकाल सका, तो बायें हाथसे सीस पकड़कर, दाहिने हाथसे अंगुली टेढ़ीकर, खून-सहित भी निकाल लूँगा ।"

"सो किस लिये ?"

"भन्ते ! मुझे कुमार (=बच्चे) पर दया है ।"

"ऐसेही, राजकुमार ! तथागत जिस वचनको अभूत=अ-तथ्य, अन्-अर्थ-युक्त (=व्यर्थ) जानते हैं, और वह दूसरोंको अ-प्रिय अ-मनाप है, उस वचनको तथागत नहीं बोलते । तथागत जिस वचनको भूत=तथ्य अनर्थक जानते हैं, और वह दूसरोंको अ-प्रिय=अ-मनाप है; उस वचनको तथागत नहीं बोलते । तथागत जिस वचनको भूत=तथ्य सार्थक जानते हैं । कालज्ञ तथागत उस वचनको बोलते हैं । तथागत जिस वचनको अभूत=अतथ्य तथा अनर्थक जानते हैं, और वह दूसरोंको प्रिय और मनाप है, उस वचनको भी तथागत नहीं बोलते । जिस वचनको तथागत भूत=तथ्य (=सच)=सार्थक जानते हैं, और वह यदि दूसरोंको प्रिय=मनाप होती है, कालज्ञ तथागत उस वचनको बोलते हैं । सो किसलिये ? राजकुमार ! तथागतको प्राणियोंपर दया है ।"

" भन्ते ! जो यह क्षत्रिय-पंडित, ब्राह्मण-पंडित, गृहपति-पंडित, श्रमण-पंडित, प्रश्न तैयारकर तथागतके पास आकर पूछते हैं । भन्ते ! क्या भगवान् पहिलेहीसे चित्तमें सोचे रहते हैं—' जो मुझे ऐसा आकर पूछेंगे, उनके ऐसा पूछनेपर, मैं ऐसा उत्तर दूँगा ? "

" तो राजकुमार ! तुझेही यहां पूछता हूँ, जैसे तुझे जँचे, वैसे इसका उत्तर देना । तो ....राजकुमार ! क्या तू रथके अङ्ग-प्रत्यंग में चतुर है ? "

" हां, भन्ते ! मैं रथके अङ्ग-प्रत्यंग में चतुर हूँ ।"

" तो राजकुमार ! जो तेरे पास आकर यह पूछे—'यह रथका कौनसा अंग-प्रत्यङ्ग है ?' तो क्या तू पहिलेहीसे यह सोचे रहता है—जो मुझे आकर ऐसा पूछेंगे, उनके ऐसा पूछनेपर, मैं ऐसा उत्तर दूँगा ।' अथवा मुकाम ही पर यह तुझे भासित होता है ? "

" भन्ते ! मैं रथिक हूं, रथके अंग-प्रत्यंगका मैं प्रसिद्ध (जानकार), चतुर हूं । रथके सभी अंग-प्रत्यंग मुझे सुविदित हैं । (अतः) उसी क्षण (=स्थानशः) मुझे यह भासित होगा ।"

" ऐसे ही राजकुमार ! जो वह क्षत्रिय-पंडित,० श्रमण पंडित प्रश्न तय्यारकर, तथागतके पास आकर पूछते हैं । उसी क्षण वह तथागतको भासित होता है । सो किस हेतु ? राजकुमार ! तथागतकी धर्मधातु (=मनका विषय) अच्छी तरह सध गई है ; जिस धर्म-धातुके अच्छी तरह सधी होनेसे, उसी क्षण (वह) तथागतको भासित होता है । "

ऐसा कहनेपर अभय राजकुमारने भगवान्‌को कहा—

" आश्चर्य ! भन्ते !! अद्भुत ! भन्ते !! ०आजसे भगवान् मुझे अंजलि-बद्ध शरणागत उपासक धारण करें । "

(२)

सामञ्ञफल-सुत्त (वि. पू. ४३०) ।

[1]ऐसा मैंने सुना—एक समय भगवान् [2]राजगृहमें [3]जीवक कौमार-भृत्यके आम्रवनमें, साढ़े बारहसौ भिक्षुओंके महाभिक्षु-संघके साथ विहार करते थे ।

उस समय पंचदशीके उपोसथके दिन चातुर्मासकी कौमुदी (=चंद्रप्रकाश)से पूर्ण पूर्णिमाकी रातको, राजा मागध [4]अजातशत्रु वैदेहीपुत्र, राजामात्योंसे घिरा, उत्तम प्रासादके ऊपर बैठा हुआ था । तब राजा ०अजातशत्रु०ने उस दिन उपोसथ (=पूर्णिमा)को उदान कहा—

"अहो ! कैसी रमणीय चांदनी रात है ! कैसी अभिरूप (=सुन्दर) चांदनी रात है !! कैसी दर्शनीय चांदनी रात है !!! कैसी प्रासादिक चांदनी रात है !!! कैसी लक्षणीय चांदनी रात है !!! किस श्रमण या ब्राह्मणकी उपासना करें, जो हमसे परि-उपासित हो हमारे चित्तको

---

१. दी. नि. १: १: २: । २. अ. क. "यह बुद्धके समय और चक्रवर्तीके समय नगर होता है, बाकी समय शून्य यक्ष-परिगृहीत होता है, ।" ३. अ. क. "···जीवकने एक समय भगवान्को···विरेचन देकर शिविके दुशालेको देकर, वस्त्र(-दान)के अनुमोदनके अन्तमें स्रोतआपत्तिफल पर प्रतिष्ठितहो सोचा—'मुझे दिनमें दो तीन वार बुद्ध-सेवामें जाना है, और यह वेणुवन अतिदूर है, और मेरा आम्रवन समीपतर है, क्यों न मैं यहां भगवान्के लिये विहार बनवाऊँ'। (तब) वह उस आम्रवनमें रात्रि-स्थान, दिन-स्थान, लयन, कुटि, मंडप आदि तैयार करा, भगवान्के अनुरूप गंध-कुटी बनवा, आम्रवनको अठारह हाथ ऊँची तांबेके पट्टेके रंगके प्राकारसे घिरवाकर, चीवर-भोजन दानके साथ बुद्धप्रमुख भिक्षु-संघके उद्देशसे दान-जल छोड़, विहार अर्पित किया ।"

४. अ.क. "इसके पेटमें होते देवीको दोहद उत्पन्न हुआ ।····राजाने···वैद्यको बुलाकर सुनहली छुरीसे (अपनी) बांह चिरवा सुवर्णके प्यालेमें लोहूले पानीमें मिला, पिलादिया । ज्योतिषियोंने सुनकर कहा—'यह गर्भ राजाका शत्रु होगा, इससे राजा मारा जायेगा ।' देवीने सुनकर···गर्भ गिरानेके लिये बागमें जाकर पेट मँडवाया, गर्भ न गिरा ।···। जन्मके समयभी···रक्षक मनुष्य बालकको हटा लेगये । तब दूसरे समय होशियार होनेपर देवीको दिखलाया । उसको पुत्र-स्नेह उत्पन्न हुआ; इससे वह मार न सकी । राजाने भी क्रमशः उसे युवराज-पद दिया ।···राज्य देदिया । उसने···देवदत्तको कहा । तब उसने उसे कहा— "····थोड़ेही दिनोंमें राजा तुम्हारे किये अपराधको सोच स्वयं राजा बनेगा ।···। चुपके मरवा-डालो ।" "किन्तु भन्ते! मेरा पिता है न? शास्त्र-वध्य नहीं है ।" "भूखा रखकर मार दो ।" उसने पिताको तापन-गेहमें डलवादिया। तापनगेह कहते हैं, (लोह-)कर्म करनेकेलिये (बने) धूम-घरको । और कह दिया—मेरी माताको छोड़कर दूसरेको मत देखने देना । देवी सुनहले कटोरे (=सरक)में भोजन रख, उत्संगमें (छिपा) प्रवेश करती थी । राजा उसे खाकर निर्वाह करता था । उसने···वह हाल सुन—'मेरी माताको उत्संग (=ओंइछा) बांध मत जाने दो।" तब जूड़ेमें डालकर···तब सुवर्ण पादुकामें···। तब देवी गंधोदकसे स्नान किये शरीरपर चार

प्रसन्न करें ।"···किसीने कहा—पूर्णकाश्यप···मक्खली-गोसाल,···अजित केस कम्बली···, पकुध कच्चायन,···निगंठनात-पुत्त···संजय वेलट्ठ-पुत्त···।

जीवक कौमार-भृत्यने (कहा)—

"देव ! भगवान् अर्हत् सम्यक्-संबुद्ध···हमारे आम्रवनमें ० विहार करते हैं। उन भगवान् गौतमका ऐसा कल्याणकीर्ति शब्द फैला हुआ है ०। देव उस भगवान् ० की परि-उपासना करें ०।"

मधुर (रस) मलकर, कपड़ा पहिन कर जानेलगी। राजा उसके शरीरको चाटकर निर्वाह करता था।···। "अबसे मेरे माताका जाना रोक दो"। देवी दर्वाजेके पास खड़ी हो बोली—"स्वामि बिंबसार ! बचपनमें मुझे इसे मारने नहीं दिया, अपने शत्रुको अपनेही पाला। यह अब अन्तिम दर्शन है। इसके बाद अब न तुम्हें देखने पाऊँगी। यदि मेरा (कोई) दोषहो, तो क्षमा करो' (कह) रोती कांदती लौटगई।

उसके वादसे राजाको आहार नहीं मिला। राजा (स्रोतआपत्ति)-मार्गफल (की भावना) के सुखसे टहलते हुये निर्वाह करता था।···। 'मेरे पिताके पैरोंको छुरेसे फाड़कर नून-तेलसे लेपकर खैरके अंगारमें चिट चिटाते हुये पकाओ—(कह) नापितको भेजा।···पका दिया 'राजा मर गया'। उसीदिन राजा (अजातशत्रु)को पुत्र उत्पन्न हुआ। पुत्रके जन्म और पिताके मरणके दो लेख एक साथही निवेदन करनेके लिये आये। अमात्योंने पहिले पुत्र-जन्मके··· लेखको ही राजाके हाथमें रक्खा। उसी क्षण पुत्र-स्नेह राजाको उत्पन्न हो, सकल शरीरको व्यापकर, अस्थि-मज्जा तक व्याप गया। उस समय पिताके गुणको जाना—'मेरे पैदा होनेपर भी मेरे पिताको ऐसाही स्नेह उत्पन्न हुआ होगा।' 'जाओ भणे ! मेरे पिताको मुक्त करो, मुक्त करो' बोला। 'किसको मुक्त कराते हो देव !' (कहकर) दूसरा लेख हाथमें रख दिया। वह उस समाचारको सुनकर रोते हुये माताके पास जाकर बोला—'अम्मा ! मेरे पिताका मेरे ऊपर स्नेह था? उसने कहा—'बाल (=अज्ञ) पुत्र ! क्या कहता है? बचपनमें तेरी अंगुलीमें फोड़ा हुआ। तब रोते २ तुझे न समझा सकनेके कारण, कचहरी (=विनिश्चय-शाला=अदालत)में बैठे, तेरे पिताके पास ले गये। पिताने तेरी अंगुली मुंहमें रक्खी। फोड़ा मुखमें ही फूट गया। तब तेरे स्नेहसे उस खून मिली पीवको न थूककर, घोंट गये। इस प्रकारका तेरे पिताका स्नेह था।' उसने रो कांदकर पिताकी शरीर-क्रियाकी।···

देवदत्तने सारिपुत्र मौद्गल्यायनके परिषद् लेकर चले जानेपर मुँहसे गर्म खून फेंक, नव-मास बीमार पड़ा रहकर, खिन्न हो (पूछा)—"आजकल शास्ता कहां हैं?" "जेतवनमें" कहनेपर "मुझे खाटपर ले चलकर शास्ताका दर्शन कराओ" कहकर, ले जाये जाते हुये, दर्शनके अयोग्य काम करनेसे, जेतवन पुष्करिणीके समीप हीमें···फटी पृथ्वीमें धँसकर नर्कमें जा स्थित हुआ।···। यह (अजातशत्रु) कोसल-राजाकी पुत्रीका पुत्र था, विदेह-राजकी (का) नहीं। वैदेही पंडिताको कहते हैं, जैसे 'वैदेहिका गृहपत्नी', 'आर्य आनन्द वैदेह मुनि'। ···वेद=ज्ञान···, उससे ईहन (=प्रयत्न) करता है=वैदेही···।

"तो जीवक ! हस्ति-काय (=हाथी-समुदाय) तैयार कराओ ।"

"अच्छा देव !"···

तब राजा० अजातशत्रु पांच-सौ हथिनियोंपर एक एक स्त्री चढ़ाकर, आरोहणीय नागपर (स्वयं) चढ़कर, जलते मशालोंकी (रोशनीमें) बड़े राजसी ठाटसे [1]राजगृहसे निकला, जहां जीवक कौमारभृत्यका आम्रवन था, वहांको चला । राजा०को भय हुआ, स्तब्धता हुई, लोम-हर्ष हुआ । तब राजा०ने भीत उद्विग्न रोमांचित हो, जीवक०को कहा—

"सौम्य जीवक ! कहीं मुझसे वंचना तो नहीं करते हो ? सौम्य जीवक ! कहीं मुझे धोका (=प्रलंभन) तो नहीं दे रहे हो ? सौम्य जीवक ! कहीं मुझे शत्रुओंको तो नहीं दे रहे हो ? कैसे साढ़े बारह सौ भिक्षुओंका न खांसनेका शब्द होगा, न थूकनेका शब्द होगा, न निर्घोष ही होगा ?'

"महाराज ! डरो मत, महाराज ! डरो मत । देव ! तुम्हें वंचना नहीं करता हूं० । महाराज ! चलो, महाराज ! चलो, यह मंडल-माल (=मंडप)में दीपक जल रहे हैं ।"

तब राजा० जितना नागका रास्ता था, नागसे जाकर, नागसे उतर, पैदल ही जहां मंडल-मालका द्वार था, वहां गया । जाकर जीवक०को पूछा—

"सौम्य जीवक ! भगवान् कहां हैं ?"

"महाराज ! भगवान् यह हैं; महाराज ! भगवान् यह हैं. भिक्षुसंघको सामने करके बिचले स्तम्भके सहारे पूर्वाभिमुख बैठे हैं।'

तब राजा० जहां भगवान् थे, वहां गया । जाकर एक ओर खड़ा हुआ । एक ओर खड़े राजा०ने स्वच्छ सरोवर समान मौनहुये भिक्षुसंघको देखकर उदान कहा—

"मेरा (पुत्र) उदायिभद्र, इस [2]उपशम (=शांति)से युक्त हो । मेरा उदायिभद्र इस उपशमसे युक्त हो; जिस (उपशम)से युक्त इस समय भिक्षु-संघ है ।'

"महाराज ! तूने प्रेमके अनुसार पाया ?"

"भन्ते ! मुझे उदायिभद्र कुमार प्रिय है, भन्ते ! मेरा उदायिभद्र कुमार इस शांतिसे युक्त हो, जिस उपशमसे युक्त कि इस समय भिक्षु-संघ है ।"

तब राजा० भगवान्‌को अभिवादनकर, भिक्षुसंघको हाथ जोड़, एक ओर बैठगया ।··· भगवान्‌को यह बोला—

---

१. अ. क. "राजगृहमें बत्तीस बड़े द्वार, और चौंसठ छोटे द्वार (थे) । जीवकका आम्रवन प्राकार और गृध्रकूटके बीचमें था । वह पूर्व-द्वारसे निकलकर; पर्वत-छायामें प्रविष्ट हुआ । वहां पर्वत-कूटसे चंद्र छिप गया था ।"

२. अ. क. "पुत्रसे आशंका करके, उसकेलिये उपशम चाहता भी ऐसा बोला ।···। (अंतमें) उसको पुत्रने माराही । इस वंशमें पितृवध पांच पीढ़ी तक गया । अजातशत्रुने बिंबसारको मारा । उदयने अजातशत्रुको । उसके पुत्र महामुंडने उदयको । अनुरुद्धने महामुंडको । उसके पुत्र नागदासने अनुरुद्धको । नागदासको 'यह वंश-छेदक राजा है, इनसे क्या' (सोच) कुपितहो, राष्ट्रवासियोंने मार डाला ।"

" भन्ते ! यदि भगवान् प्रश्नोत्तर करनेकी (=प्रश्न पूछनेकी) आज्ञा दें, तो भगवान्को कुछ पूछूं ?"

" पूछो महाराज ! जो चाहते हो ।"

" जैसे भन्ते ! यह भिन्न भिन्न शिल्प-स्थान (=विद्या, कला) हैं, जैसे कि हस्ति-आरोहण (=हाथीकी सवारी), अश्वारोहण, रथिक, धनुर्ग्राह, चेलक (=युद्धध्वज-धारण) चलक (=व्यूह-रचन), पिंडदायिक (=पिंड काटनेवाले), उग्र राजपुत्र (=वीर राजपुत्र), महानाग (=हाथीसे युद्ध करनेवाले), शूर, चर्म (=ढाल)-योधी, दासपुत्र, आलारिक (=बावर्ची) कल्पक (=हजाम), नहापक (=नहलानेवाले), सूद (=पाचक), मालाकार, रजक, पेशकार (=रंगरेज), नलकार, कुंभकार, गणक, मुद्रिक (=हाथसे गिननेवाले), और जो दूसरे भी इस प्रकारके भिन्न भिन्न शिल्प हैं, (लोग) इसी शरीरमें प्रत्यक्ष (इनके) शिल्पफलसे जीविका करते हैं, उससे अपनेको सुखी करते हैं, तृप्त करते हैं। पुत्र स्त्रीको सुखी करते हैं, तृप्त करते हैं। मित्र अमात्यों को० । ऊपर लेजानेवाला, स्वर्गको लेजानेवाला, सुख-विपाकवाला, स्वर्ग-मार्गीय, श्रमण ब्राह्मणोंकेलिये दान, स्थापित करते हैं। क्या भन्ते ! इसीप्रकार श्रामण्य (=भिक्षुपनका)-फलभी इसी जन्ममें प्रत्यक्ष बतलाया जा सकता है ?'

" महाराज ! इस प्रश्नको दूसरे श्रमण ब्राह्मणको भी पूछ (उत्तर) जाना है ? "

" भन्ते ! जाना है ० ।"

" यदि तुम्हें भारी न हो, तो कहो महाराज ! कैसे उन्होंने उत्तर दिया था ? "

" भन्ते ! मुझे भारी नहीं है, जहाँ भगवान्. या भगवान्के समान कोई बैठा हो ।"

" तो महाराज ! कहो ।"

" एक बार मैं भन्ते ! जहां पूर्ण काश्यप थे, वहां गया । जाकर पूर्ण काश्यपके साथ मैंने संमोदन किया···एक ओर बैठकर···यह पूछा—' हे काश्यप ! यह भिन्न भिन्न शिल्प-स्थान हैं ० । ऐसा पूछनेपर भन्ते ! पूर्ण काश्यपने मुझे कहा—' महाराज ! करते कराते , छेदन करते, छेदन कराते, पकाते, पकवाते, शोक करते, परेशान होते, परेशानकरते, चलते, चलाते, प्राण मारते, अदत्त ग्रहण करते, सेंध काटते, गाँव लूटते, चोरी करते, बटमारी करते, परस्त्रीगमन करते, झूठ बोलते कहते भी, पाप नहीं किया जाता ०[1] । दान दम संयमसे, सत्य बोलनेसे न पुण्य है, न पुण्यका आगम है ।' इस प्रकार भन्ते ! पूर्ण०ने मेरे सांदृष्टिक (=प्रत्यक्ष) श्रामण्य-फल पूछनेपर अक्रिया वर्णन किया । जैसे कि भन्ते ! पूछे आम, जवाब दे कटहल; पूछे कटहल, जवाब दे आम; ऐसेही भन्ते ! पूर्ण काश्यपने मेरे सांदृष्टिक श्रामण्य-फल पूछनेपर अक्रिया (=अक्रिय-वाद) उत्तर दिया । "

" एक बार भन्ते ! मैं जहाँ मक्खलि गोसाल थे, वहां गया —० । मेरे ऐसा कहने पर···मुझे कहा—' महाराज ! प्राणियोंके क्लेश (=रोग आदि मल) केलिये (कोई) हेतु नहीं, प्रत्यय नहीं । विना हेतु विना प्रत्यय ही प्राणी क्लेश पाते हैं । प्राणियोंकी (पापसे) शुद्धिका कोई हेतु=प्रत्यय नहीं है; विना ०प्रत्ययही प्राणी विशुद्ध होते हैं । न आत्मकार

१. देखो पृष्ठ २३२ ।

(=अपना किया पाप पुण्य कर्म) है, न पर-कार है; न पुरुषकार (=पौरुष) है, न बल है, न वीर्य (=प्रयत्न) है, न पुरुष-स्थाम (=पराक्रम) है, न पुरुष-पराक्रम है। सभी सत्त्व=सभी प्राण=सभी भूत=सभी जीव, अ-(स्व)-वश हैं, बल-वीर्य-रहित हैं। नियति (=तकदीर)से निर्मित अवस्थामें परिणत हो, छः ही अभिजातियोंमें सुख दुःख अनुभव करते हैं। यह चौदह सौ हजार प्रमुख योनियां हैं, (दूसरी) साठ सौ, (दूसरी) छः सौ। पांच सौ कर्म हैं, (दूसरे) पांच कर्म, ० तीन कर्म, एक कर्म और आधा कर्म। बासठ प्रतिपद्, बासठ अन्तर्कल्प, छः अभिजातियां, आठ पुरुष भूमियां, उन्चास सौ आजीवक उन्चास सौ परिव्राजक, उन्चास सौ नागावास, बीससौ इन्द्रिय, तीससौ निरय (=नर्क), छत्तीस रजो-धातु, सात संज्ञी गर्भ, सात असंज्ञी गर्भ, सात निगंठी गर्भ, सात देव, सात मनुष्य, सात पिशाच, सात सर, सात पमुट (=गांठ), सात सौ पमुट, सात प्रपात, सात सौ प्रपात, सात स्वप्न, सात सौ स्वप्न। बाल भी, पंडित भी, चौरासी हजार महाकल्प (इनमें) भरमकर =आवागमनमें पड़कर, दुःखका अन्त करेंगे ०[1]। ० इस प्रकार ० संसार-शुद्धि जवाब दिया ० । ० ।

"० अजित केशकम्बलीने मुझे यह कहा—'महाराज! इष्ट (=यज्ञ किया) कुछ नहीं है, हुत कुछ नहीं है०[1]। ०उच्छेदवाद जवाब दिया० ।०।

"० पकुध कच्चायन[2] ०। ०अन्यसे अन्य जवाब दिया० ।०।

"० निगंठ नाथपुत्त०[3]। चातुर्याम-संवर जवाब दिया० ।०।

"० संजय वेलट्ठिपुत्त०[4]। ०(अमर-) विक्षेप जवाब दिया० ।०।

"सो भन्ते! मैं भगवान्‌को भी पूछता हूं, जैसे कि भन्ते! यह भिन्न भिन्न शिल्प हैं० ?'

"तो क्या मानते हो महाराज! यहां (एक) पुरुष तुम्हारा दास, कमकर (=नौकर), पूर्व उठनेवाला, पीछे लेटनेवाला, 'क्या-काम'-सुनानेवाला, प्रिय-चारी प्रिय-वादी, मुख-अव-लोकक है। उसको ऐसा हो—

"आश्चर्य है जी! अद्भुत है जी! पुण्योंकी गति=पुण्योंका विपाक। यह राजा० अजात-शत्रु मनुष्य है, मैं भी मनुष्य हूं। यह राजा० पांच कामगुणोंसे संयुक्त मानों देवताकी तरह विचरता है; लेकिन मैं इसका दास० हूं। सो मैं पुण्य करूँ। क्यों न मैं केश-श्मश्रु मुँडाकर० प्रव्रजित होजाऊँ ।०। वह उस प्रकार प्रव्रजित हो कायासे संवृत (=सुरक्षित) हो, विहरे, वचनसे०, मनसे०। खाने-ढांकने मात्रसे संतुष्ट हो, प्रविवेक (=एकांत)में रत हो०। यदि तुम्हारे पुरुष तुम्हें ऐसा कहें—'देव! जानते हो, जो पुरुष तुम्हारा दास० था, वह ०प्रव्रजित हो प्रविवेकमें रत है। क्या तुम कहोगे—'आवे वह पुरुष, फिर मेरा दास० होवे ?"

"नहीं भन्ते! बल्कि उसे हम अभिवादन करेंगे, प्रत्युत्थान करेंगे०।"

---

१. पृष्ठ २६१। २. देखो ब्रह्मजाल सुत्त। ३. पृष्ठ २६३, ४४८। ४. किसी पक्षको न मानना।

"तो क्या मानते हो महाराज ! यदि ऐसा हो तो यह सांदृष्टिक श्रामण्य-फल होता है, या नहीं ?"

"अवश्य भन्ते ! ऐसा हो तो सांदृष्टिक० ।"

"महाराज ! यह इसी जन्ममें प्रथम प्रत्यक्ष श्रामण्य-फल है ।"

"क्या भन्ते ! अन्य भी इसी जन्ममें प्रत्यक्ष श्रामण्य फल कहे जा सकते हैं ?"

"(कहे जा) सकते हैं महाराज ! तो महाराज ! तुम्हें ही यहां पूछता हूं, जैसा तुम्हें पसन्द हो, इसका जवाब दो । तो····महाराज ! यहां तुम्हारा एक पुरुप कृपक=गृहपतिक, कार-कारक, राशिवर्द्धक हो । उसको ऐसा हो—'पुण्योंकी गति, पुण्योंका विपाक आश्चर्य है जी ! अद्भुत है जी !० । क्या तुम कहोगे—'आवे वह पुरुप फिर मेरा कृपक० हो ?"

"नहीं भन्ते !० ।' ०।०।

"महाराज ! यह····दूसरा० प्रत्यक्ष श्रामण्य-फल है ।"

"० अन्य भी० ?"

"महाराज ! लोकमें तथागत अर्हत्०[1] उत्पन्न होते हैं ।० धर्म उपदेश करते हैं ।०सुनकर ०प्रव्रजित होता है । ० शिक्षापदोंमें सीखता है ।०। परिशुद्ध आजीविकावाला (परिशुद्धाजीव) शील-संपन्न, इन्द्रियोंमें गुप्तद्वार, भोजनमें मात्रा जाननेवाला; संप्रजन्यसे युक्त, संतुष्ट (हो)० । महाराज ! भिक्षु कैसे शील संपन्न होता है ? यहाँ महाराज ! प्राणातिपात (प्राण-हिंसा) छोड़ प्राणातिपातसे विरत होता है, निहित(=त्यक्त)-दंड, निहित-शास्त्र, लज्जी, दयालु, सर्व-प्रण-भूत-अनुकंपक हो, विहरता है, यहभी उसके शीलमें है । अदत्तादान छोड़ अदत्तादान (=चोरी)से विरत होता है, दत्त-आदायी, दत्त-प्रतिकांक्षी होता है । तब इस शुद्ध-भूत आत्मासे विहार करता है, यहभी उसके शीलोंमें है । अब्रह्मचर्यको छोड़कर ब्रह्मचारी होता है, एकांत-चारी, मैथुन=ग्राम्यधर्मसे विरत, यह भी० । मृपावादको छोड़ मृपावाद-विरत होता है, सत्यवादी=सत्यसंध, थेता (=स्थाता, बातपर ठहरने वाला), लोकका प्रत्ययिक (=विश्वासपात्र) =अविसंवादक (होता है) । यह भी० । पिशुनवचन (=चुगली)को छोड़ पिशुन-वचनसे विरत० । यहभी० । परुप वचनको छोड़० । संप्रलाप छोड़०, संप्रलापसे विरत होता है, काल-वादी भूत-वादी, अर्थ-वादी, धर्म-वादी, विनय-वादी, (होता है)' । कालसे सप्रयोजन=पर्यन्तवती अर्थ-सहित=निधानवाली वाणीका बोलनेवाला होता है । यह भी० । बीज-ग्राम, भूत-ग्रामके नाश(हत्या)से विरत होता है । एकाहारी (=एकभत्तिक) रातको (भोजनसे) विरत, विकाल भोजनसे विरत होता है, नृत्य, गीत, वाद्य, विसूकदस्सनसे विरत होता है । माला गंध, विलेपन, के धारण, मंडन विभूपण····से विरत होता है । उच्चशयन, महाशयनसे विरत होता है । सोना चाँदीके स्वीकारसे विरत होता है । कच्चा अन्न (धान्य) ग्रहण करनेसे विरत होता है । स्त्री कुमारिकाके० । दासी दासके ग्रहणसे० । भेड़ बकरीके ग्रहणसे० । मुर्गी-सूअरके० । हाथी-गाय, घोड़ा-घोड़ीके० । खेत, मकान (=वस्तु)के० । दूतके कामसे० । क्रय-विक्रयसे० । तुलाकूट (=खोटी तौल), कंस-कूट (=खोटीधातु),

१. पृष्ठ १७२-७४ ।

प्रमाण-कूट (=खोटी नाप) से० । उक्कोटन (=रिश्वत), वंचना, निकति (=कृतघ्नता), साचि-योगसे० । छेदन, वध, बंधन, लूट, आलोप (=छापा), सहसाकार (खूनआदि)से०, यहभी० ।

" जैसे कि कोई कोई श्रमण ब्राह्मण श्रद्धासे दिये भोजनको खाकर, वह इसप्रकारके बीज-ग्राम, भूत-ग्रामके विनाशमें लगे विहरते हैं, जैसे कि—मूल-बीज, स्कंध-बीज (=डाली जिसकी बीजका काम देती है), फल-बीज, अग्र-बीज, और पाँचवां बीज-बीज । यह या इस प्रकारके बीज-ग्राम=भूतग्रामके विनाशसे विरत होता है । यहभी० ।

" जैसे कि कोई कोई श्रमण ब्राह्मण श्रद्धासे दिये भोजनको खाकर, वह इस प्रकारके संनिधि-कारक भोगोंको भोग करते विहरते हैं, जैसे कि अन्न-सन्निधि (=अन्नजमा करना) पान-संनिधि, वस्त्र-संनिधि, यान-सन्निधि, शयन-सन्निधि, गंध-सन्निधि, आमिष(=भोग)-सन्निधि, यह या इस प्रकारके० ।

"०वह इस प्रकारके विसूक-दस्सन (=बुरे तमाशे)में लगे विहरते हैं, जैसे कि—नृत्य, गीत, वादित (=बाजा बजाना), प्रेक्ष्य (=नाटक आदि), आख्यान (=कथा), पाणि-स्वर (=ताली बजाना), वैताल ।०।

" ० । वह इस प्रकारकी तिरश्चान विद्याओंसे मिथ्या-जीविका करनेसे विरत होता है, यहभी उसके शीलमें होता है ।

" सो महाराज ! वह भिक्षु इसप्रकार शील-संपन्न शीलसंवर-युक्तहो कहीं भी भय नहीं देखता ; जैसे कि महाराज ! शत्रु-परास्त-किये मूर्धाभिषिक्त (=अभिषिक्त)क्षत्रिय, कहींसे भी शत्रुसे भय नहीं देखता···· । वह इस आर्य शील-स्कंध (=उत्तम शील-समूह) से संयुक्त हो, अपने भीतर अनवद्य (=विमल)-सुखको अनुभव करता है । इस प्रकार महाराज! भिक्षु शील-संपन्न होता है ।

" कैसे महाराज ! भिक्षु इन्द्रियोंमें गुप्त-द्वार होता है ? यहां महाराज ! भिक्षु, चक्षु (=आंख)से रूप देखकर, निमित्त-ग्राही=अनुव्यंजन-ग्राही नहीं होता ०[1] । मनसे धर्म जानकर ० । इस आर्य इन्द्रिय-संवरसे युक्त हो अपने भीतर अमिट सुखको अनुभव करता है । इस प्रकार महाराज ! भिक्षु इन्द्रियोंमें गुप्तद्वार होता है । "

" महाराज ! भिक्षु कैसे स्मृति-संप्रजन्यसे युक्त होता है ? महाराज ! भिक्षु जानते हुये (=चित्तवृत्तिको उधर लगाये हुए) गमन-आगमन करता है । आलोकन, विलोकनमें संप्रज्ञान (=जानकर)-कारी होता है । समेटने, फैलाने० । संघाटी, पात्र, चीवरके धारणमें० । अशन-पान, खादन, आस्वादनमें ० । पाखाना पेशाबके काममें ० । गमन, खड़े होते, बैठते, सोते, जागते, भाषण करते, चुप रहते में० । इस प्रकार महाराज ! भिक्षु स्मृति-संप्रजन्यसे युक्त होता है ।

" महाराज ! भिक्षु कैसे संतुष्ट होता है ? "

---

१. पृष्ठ १७३ ।

" वह इस आर्य शील-स्कन्धसे युक्त, इस आर्य इन्द्रिय-संवरसे युक्त, इस आर्य स्मृति-संप्रजन्यसे युक्त, और इस आर्य सन्तुष्टिसे युक्त हो, एकान्त शयनासन (=निवास) सेवन करता है—अरण्यको, वृक्ष-मूल(=वृक्षके नीचे) को, पर्वत कंदराको, गिरि-गुहाको, श्मशानको, वन-प्रान्तको, अभ्यवकाश (=खुली जगह)को, पयालके पुंजको। वह भोजनोपरान्त पिंड-पातसे अलगहो, आसन मारकर शरीरको सीधाकर स्मृतिको सामने रखकर, बैठता है। वह लोकमें अभिध्या (=लोभ)को छोड़, अभिध्यारहित चित्तसे विहरता है, अभिध्यासे चित्तको शोधता है। व्यापाद=प्रद्वेष (=द्वेष)को छोड़ अव्यापन्न-चित्त हो सर्व प्राणी=भूतोंमें अनुकम्पकहो विहरता है। व्यापाद=प्रद्वेपसे चित्तको परिशुद्ध करता है। स्त्यान-मृद्ध (=मनके आलस्य) को छोड़ स्त्यान-मृद्ध-रहित हो विहरता है। आलोक-संज्ञी स्मृतिसंप्रजन्य-युक्त हो, स्त्यान-मृद्धसे चित्तको परिशुद्ध करता है। औद्धत्य कौकृत्य छोड़, अन्-उद्धत हो विहरता है, अध्यात्ममें (=अपने भीतर) शांत-चित्त हो औद्धत्य-कौकृत्यसे चित्तको परिशुद्ध करता है। विचिकित्सा (=संशय) को छोड़ विचिकित्सा-रहित हो विहरता है। कुशल (=उत्तम) धर्मोंमें अकथंकथी (=निर्विवादी) हो, विचिकित्सासे चित्तको परिशुद्ध करता है। जैसे महाराज! पुरुष ऋण लेकर खेती (=कर्मान्त)में लगाये, उसकी वह खेती अच्छी (=समृद्ध) उतरै। वह जो पुराने ऋण हैं, उन्हें भी दे डालै, और उसको ऊपरसे बच्चोंके पोसनेकेलिये भी वाकी वच रहै। उसको ऐसा हो—'मैंने पहिले ऋण लेकर खेतीमें लगाया, मेरी वह खेती अच्छी उतरी। मैंने जो पुराने ऋण थे, उन्हें भी दे डाला, और मेरे पास उसके ऊपर बच्चोंको पोसनेकेलिये वाकी बचा है'। वह इसके कारण प्रसन्नता (=प्रामोद्य) पाये, खुशी (=सौमनस्य) पाये। महाराज! जैसे पुरुष आवाधिक=दुःखित=बहुत बीमार हो, उसको भोजन अच्छा न लगै, और उसके शरीरमें वल-मात्रा न हो। वह दूसरे समय उस बीमारीसे मुक्त होवे, उसको भोजन (=भक्त) अच्छा लगै, उसके शरीरमें बल-मात्रा भी होवे। उसको ऐसा हो—'मैं पहिले आवाधिक० था, ०शरीरमें बल-मात्रा भी न थी। सो मैं उस बीमारीसे मुक्त हूँ, मुझे भोजन भी अच्छा लगता है, मेरे शरीरमें बल-मात्रा भी है। वह इसके कारण प्रामोद्य पाये=सौमनस्य पाये। महाराज! जैसे पुरुष बन्धनागार (=जेल) में बँधा हो, वह दूसरे समय स्वस्ति (=मङ्गल)-पूर्वक, विना हानिके—उस बन्धनसे मुक्त हो; और उसके अङ्गोंकी कुछ भी हानि न हो। उसको ऐसा हो—'मैं पहिले जेलमें०। ०सौमनस्य पाये। जैसे महाराज! पुरुष दास हो, पराधीन, न-इच्छा-गामी। वह दूसरे समय उस दासत्वसे मुक्त, स्वाधीन, अ-पराधीन=भुजिस्स हो, जहाँ तहाँ इच्छा-गामी (=कामङ्गम) हो०।०। महाराज! जैसे धन-सहित, भोगी पुरुष, दुर्भिक्ष (=अन्न-दुर्लभ) भययुक्त कांतार (=बयाबान्)के रास्तेमें पड़ा हो। वह दूसरे समय उस कांतारको पार कर जाये, स्वस्तिके साथ, क्षेम-युक्त, भय-रहित किसी ग्राममें पहुँच जाये। उसको ऐसा हो०।०।

" इसी प्रकार महाराज! भिक्षु इन पांच नीवरणोंके न प्रहीण होनेपर अपनेमें ऋणकी तरह, रोगकी तरह, बंधनागारकी तरह, दासताकी तरह, कान्तार-मार्गकी तरह, देखता है। और महाराज! इन पांच नीवरणोंके प्रहीण (=नष्ट)होनेपर, भिक्षु अपनेमें उऋण-पन० आरोग्य०

बंधन-मोक्ष०, अदासता०, क्षेमयुक्त-भूमिमा देखता है। अपने भीतरसे इन पांच नीवरणोंको प्रहीण देखकर, उसे प्रामोद्य (=खुशी) उत्पन्न होता है। प्रमुदित (पुरुष)को प्रीति उत्पन्न होती है। प्रीतियुक्त मनवालेकी काया प्रश्रब्ध (=स्थिर) होती है। प्रश्रब्ध-काय (=पुरुष) सुख अनुभव करता है। सुखीका चित्त समाहित (=एकाग्र) होता है। वह०[1]प्रथम ध्यानको प्राप्त हो विहरता है। ।०जैसे महाराज! दक्ष (=चतुर) स्नापक (=नहलानेवाला) या स्नापकका अन्तेवासी, कांसेके थालमें छींटकर स्नानीय-चूर्णको पानीमें तर करते तर करते घोले। सो वह स्नानीय पिंडी स्नेह (=नमी)-अनुगत, स्नेह-परिगत=अंदर बाहर स्नेहसे व्याप्तहो बहती नहीं; इसीप्रकार महाराज! भिक्षु इसी कायाको विवेकसे उत्पन्न प्रीति-सुखसे आप्लावित परिप्लावित करता है, परिपूर्ण करता है। इसके शरीरका कोई अंशभी विवेकज प्रीति सुखसे अ-व्याप्त नहीं होता। यह भी महाराज! सांदृष्टिक श्रामण्य-फल पूर्वके श्रामण्यफलोंसे उत्कृष्टतर=-प्रणीततर है।

"और महाराज! फिर [1]०द्वितीय ध्यानको प्राप्तहो विहरता है। वह इसी कायाको समाधिज (=समाधिसे उत्पन्न) प्रीति सुखसे०। जैसे महाराज! उदक-हृद (=पानीका दह) ०[1]यहभी० प्रणीततर है।

"और फिर महाराज! [1]०तृतीयध्यान०। वह इसी कायाको निष्प्रीतिक सुखसे०। जैसे कि महाराज! उत्पलिनी (=उत्पलोंका समूह)०। यहभी प्रणीततर है।

"और फिर महाराज!० [1]चतुर्थ-ध्यान०। वह इसी कायाको परिशुद्ध=परि-अवदात चित्तसे०[1]! महाराज! जैसे पुरुष सिरतक सफेद (=अवदात) वस्त्रसे ढांककर बैठा हो० यह भी० प्रणीततर है।

"इस प्रकार चित्तके समाहित (=एकाग्र), परिशुद्ध[2]परि-अवदात=अन्-अंगण=उपक्लेश-रहित, मृदुभूत=कर्मणीय, स्थित (अचंचल)=आनेञ्ज्यप्राप्त होनेपर, वह चित्तको ज्ञान=दर्शनके लिये झुकाता है[2]०। जैसे[3]० वैदुर्य (=हीरा) मणि०। यह भी० प्रणीततर०।

"इस प्रकार चित्तके समाहित० [3]होनेपर वह चित्तको मनोमय कायके निर्माणके लिये झुकाता है०। जैसे [4]मूंजमें से कंडा निकाले०। यह भी०।

"इस प्रकार चित्तके समाहित[1]० होनेपर, वह नाना ऋद्धियों (=योगबलों)के लिये चित्तको झुकाता है०। जैसेकि महाराज! चतुर कुंभकार या कुंभकारका अन्तेवासी (=शिष्य)[3]०। यह भी०।

"इस प्रकार चित्तके समाहित० होनेपर, वह चित्तको दिव्य-श्रोत्र-धातु (=कानोंसे दूरकी बातोंके सुनने)के लिये झुकाता है०। जैसेकि महाराज! पुरुष रास्तेमें जा रहा हो०। यह भी०।

"इस प्रकार चित्तके समाहित[4]० होनेपर वह चित्तको पर-चित्त-ज्ञानके लिये झुकाता है०। जैसे कि महाराज! शौकीन स्त्री या पुरुष, बालक या युवा० यह भी०।

---

१. पृष्ठ १७४। २. पृष्ठ २७१-७२। ३. पृष्ठ १७४। ४. पृष्ठ २७२।

"इस प्रकार चित्तके समाहित० होनेपर, वह चित्तको पूर्व-निवास(=पूर्वजन्म)-ज्ञान-अनुस्मृतिके लिये झुकाता है[४]० । जैसे कि महाराज ! पुरुष अपने गाँवसे दूसरे गाँवको जाये, उस गाँवसे भी दूसरे गाँवको जाये । यह भी० ।

" इस प्रकार चित्तके समाहित होनेपर वह चित्तको प्राणियोंकी च्युति (=मरण)-उत्पाद (=जन्म)के-ज्ञानकेलिये झुकाता है ०[१] । जैसे कि महाराज ! चौरस्तेके बीचमें प्रासाद हो । उसपर खड़ा पुरुष ० । यह भी ० । "

" इस प्रकार चित्तके समाहित होनेपर वह चित्तको आस्रव-क्षय-ज्ञान (=राग आदि चित्तमलोंके विनाशके ज्ञान)के लिये चित्तको झुकाता है ०[४] । जैसे कि महाराज ! पर्वतके घेरेमें स्वच्छ=विप्रसन्न=अनाविल उदक-ह्रद (=पानीका दह) हो, वहां तीरपर खड़ा चक्षु-मान् (=आँखवाला) पुरुष ०[४] । यह भी ० ।"

ऐसा कहनेपर राजा मागध अजातशत्रु वैदेही-पुत्रने भगवान्‌को कहा...

" आश्चर्य ! भन्ते !! अद्भुत ! भन्ते !! ० भन्ते ! मैं भगवान्‌की शरण जाता हूँ, धर्म और भिक्षु-संघकी भी । आजसे भगवान् मुझे अञ्जलि-बद्ध शरणागत उपासक समझें ।

"भन्ते ! मैंने बाल (=मूर्ख)की तरह, मूढकी तरह, अ-कुशल (=अचतुर)की तरह, अपराध किया; जो मैंने ऐश्वर्यके कारण धार्मिक धर्म-राजा पिताको जानसे मारा; भन्ते ! भगवान् मेरे अपराधको अपराधके तौर पर ग्रहण करें, भविष्यमें (अपराधके) संवर (=न करनेके) लिये ।

" तो महाराज ! जो तुमने० अपराध किया, जो ० धर्म-राजा पिताको जानसे मारा । चूँकि, तुम महाराज ! अपराधको अपराधके तौर पर देखकर धर्मानुसार प्रतिकार करते हो, वह तुम्हारा हम ग्रहण करते हैं । महाराज ! आर्य-विनय (=सत्पुरुषोंकी रीति)में यह वृद्धि (=लाभ) ही है, जो कि अपराधको अपराधके तौर पर देखकर धर्मानुसार प्रतीकार करना भविष्यमें संवर (=संयम) रखना ।"

ऐसा कहनेपर राजा ० अजातशत्रु ०ने भगवान्‌को कहा—

"हन्त ! भन्ते ! अब हम जायेंगे, हम बहु-कृत्य बहु-करणीय हैं ।"

"महाराज ! जिसका तुम काल समझो (वह करो) ।"

तब राजा० भगवान्‌के भाषणको अभिनन्दनकर, अनुमोदन कर, आसनसे उठ भगवान्‌को अभिवादनकर प्रदक्षिणाकर चला गया ।

राजा०के जानेके थोड़ीही देर बाद भगवान्‌ने भिक्षुओंको संबोधित (=आमंत्रित) किया—

"भिक्षुओ ! यह राजा (भाग्य-)हत है, ०उपहत है । भिक्षुओ ! इस राजाने यदि धार्मिक धर्मराजा पिताको जानसे न मारा होता, तो इसी आसनपर इसे विरज=विमल धर्म-चक्षु उत्पन्न हुआ होता ।"

भगवान्‌ने यह कहा । सन्तुष्ट हो उन भिक्षुओंने भगवान्‌के भाषणका अभिनन्दन किया ।

---

१. पृष्ठ २७३ ।

एतदग्गवग्ग (वि॰ पू॰ ४२९) ।

[1]ऐसा [2]मैंने सुना—एक समय भगवान् श्रावस्ती ०जेतवनमें विहार करते थे ।

(१)···भिक्षुओ ! मेरे रक्तज्ञ (=अनुरक्तिज्ञ) भिक्षु श्रावकोंमें यह आज्ञा-कौण्डिन्य[1] अग्र (=श्रेष्ठ) है ।

(२)···महाप्रज्ञोंमें यह [2]सारिपुत्र अग्र है ।

(३)"···ऋद्धि-मानोंमें यह [3]महामौद्गल्यायन अग्र है ।

(४)"···धुतवादियोंमें यह [4]महाकाश्यप अग्र है ।

(५)"···दिव्य चक्षुकोंमें यह [5]अनुरुद्ध अग्र है ।

(६)"···उच्च-कुलीनोंमें यह भद्दिय [6]कालिगोधा-पुत्र अग्र है ।

(७)···मंजु (=कोमल)स्वर (से धर्म उपदेश करने)वालोंमें लकुंटक-भद्दिय० ।

(८)···सिंहनादियोंमें पिंडोल भारद्वाज० ।

(९)···धर्म-कथिकोंमें पूर्ण मैत्रायणीपुत्र० ।

(१०)···संक्षिप्तसे कहेका विस्तारसे अर्थ करनेवालोंमें महाकात्यायन० ।

(११)···मनोमय काय निर्माण करनेवालोंमें चुलपंथक० ।

···चित्तऽविवर्त्त चतुरोंमें चुलपंथक० ।

(१२)···संज्ञा-विवर्त्त-चतुरोंमें महापंथक० ।

(१३)···अरण-विहारियोंमें सुभूति० ।

दक्षिणेयोंमें (=दानपात्रों)में सुभूति० ।

---

१. तैंतालीसवाँ वर्षावास (४२९ वि. पू.) भगवान्ने श्रावस्ती (जेतवन)में बिताया । २. अं. नि. १ : २ : १-७ ।

(१) शाक्य देशमें कपिलवस्तु नगरके पास द्रोण-वस्तु ग्राममें ब्राह्मण-कुलमें जन्म ।

(२) मगध-देशमें राजगृह-नगरके अविदूर उपतिष्य-ग्राम=नालकग्राम (=वर्तमान सारीचक, वड़गाँव=नालन्दाके समीप, जि० पटना)में ब्राह्मण-कुलमें जन्म ।

(३) मगध-देशमें राजगृहके अविदूर कोलित-ग्राममें ब्राह्मण-कुलमें जन्म ।

(४) मगध-देशमें महातीर्थ ब्राह्मण-ग्राममें ब्राह्मण-कुलमें जन्म ।

(५) शाक्य-देशमें कपिलवस्तु-नगरमें भगवान्के चचा अमृतोदन-शाक्यके पुत्र, क्षत्रिय-कुलमें जन्म ।

(६) शाक्य-देशमें कपिलवस्तु-नगरमें क्षत्रिय-कुलमें ।

(७) कोसलदेश, श्रावस्ती-नगरमें धनी (=महाभोग) कुलमें । (८) मगध, राजगृहमें ब्राह्मणकुलमें । (९) शाक्य, कपिलवस्तुके समीप द्रोणवस्तु ब्राह्मण-ग्राममें ब्राह्मण-कुल । (१०) अवन्तीदेश, उज्जयिनीमें ब्राह्मणकुलमें । (११) मगध, राजगृह, श्रेष्ठि-कन्यापुत्र । (१२) मगध, राजगृह, श्रेष्ठि-कन्यापुत्र । (१३) कोसल, श्रावस्ती, वैश्यकुलमें ।

(३५)…विनयधरोंमें उपालि०।
(३६)…भिक्षुणियोंके उपदेशकोंमें नन्दक०।
(३७)…जितेन्द्रियोंमें नन्द०।
(३८)…भिक्षुओंके उपदेशकोंमें महाकप्पिन०।
(३९)…तेज-धातु-कुशलोंमें स्वागत०।
(४०)…प्रतिभानालियों (=पटिभानेय्यक)में राध०।
(४१)…रूक्ष चीवर धारियोंमें मोघराज।

---

(४२)…भिक्षुओ! मेरी रत्तञ्ञु भिक्षुणी-श्राविकाओंमें महाप्रजापती गौतमी अग्र है।
(४३)…महाप्रज्ञाओंमें खेमा०।
(४४)…ऋद्धि-मतियोंमें उत्पलवर्णा०।
(४५)…विनयधरोंमें पटाचारा०।
(४६)…धर्मकथिकाओंमें धम्मदिन्ना०।
(४७)…ध्यानियोंमें नन्दा०।
(४८)…आरब्ध-वीर्योंमें सोणा०।
(५०)…क्षिप्राभिज्ञाओंमें भद्रा कुंडलकेशा०।
(५१)…पूर्व-जन्म-अनुस्मृति-वालियोंमें भद्रा कापिलायनी०।
(५२)…महा-अभिज्ञा-प्राप्तोंमें भद्रा कात्यायनी०।
(५३)…रूक्ष चीवर धारिणियोंमें कृशा गौतमी०।
(५४)…श्रद्धा-युक्तोंमें शृगाल-माता०।

(५५, ५६)…भिक्षुओ! मेरे उपासक श्रावकोंमें प्रथम शरण आनेवालोंमें तपस्सु, और भल्लुक वणिक्, अग्र हैं।
(५७)…दायकोंमें अनाथ-पिंडक सुदत्त गृहपति०।

---

(३५) शाक्य, कपिलवस्तु, नाई-कुलमें। (३६) कोसल, श्रावस्ती, कुल-गेह। (३७) शाक्य, कपिलवस्तु, (महाप्रजापतीपुत्र) क्षत्रिय-कुल (३८) सीमान्त (=प्रत्यंत) देश, कुक्कुटवती नगर, राजवंश। (३९) कोसल, श्रावस्ती, ब्राह्मणकुल। (४०) मगध, राजगृह, ब्राह्मणकुल। (४१) कोसल, श्रावस्ती (बावरी-शिष्य) ब्राह्मणकुल। (४२) शाक्य, कपिलवस्तु, शुद्धोदनभार्या, क्षत्रियकुल। (४३) मद्रदेश सागल (=स्यालकोट) नगर, राजपुत्री, मगधराज बिंबसारकी भार्या, (४४) कोसल, श्रावस्ती, श्रेष्ठिकुल। (४५) कोसल, श्रावस्ती, श्रेष्ठिकुल। (४६) मगध, राजगृह, विशाख-श्रेष्ठीकी भार्या। (४७) शाक्य, कपिलवस्तु, महाप्रजापती गौतमीकी पुत्री। (४८) कोसल, श्रावस्ती, कुलगेह। (४९) कोसल, श्रावस्ती, कुलगेह। (५०) मगध, राजगृह, श्रेष्ठिकुल। (५१) मद्रदेश, सागल-नगर, ब्राह्मणकुल, (महाकाश्यप-भार्या)। (५२) शाक्य, कपिलवस्तु, राहुलमाता, (देवदहवासी सुप्रबुद्ध शाक्यकी पुत्री), क्षत्रिय। (५३) कोसल, श्रावस्ती, (वैश्य)। (५४) मगध, राजगृह, श्रेष्ठिकुल। (५५, ५६) असितंजन नगर, कुटुम्बिक-गेहमें। (५७) कोसल, श्रावस्ती, सुमन श्रेष्ठि-पुत्र।

(५८)···धर्मकथिकोंमें मच्छिकापण्डवासी चित्र गृहपति० ।

(५९)·· चार संग्रह-वस्तुओंसे परिषत्(=जमात)को मिलाकर रखनेवालोंमें हस्तक आलवक० ।

(६०)···उत्तम (=प्रणीत) दायकोंमें महानाम शाक्य० ।

(६१)···मनाप (=प्रिय) दायकोंमें वैशालिका उग्र गृहपति० ।

(६२) ··संघ-सेवकोंमें उग्गत (=उद्गत) गृहपति० ।

(६३)···अत्यन्त प्रसन्नोंमें सूर अम्बष्ठ० ।

(६४)···पुद्गल (=व्यक्तिगत)-प्रसन्नोंमें जीवक कौमारभृत्य० ।

(६५)···विश्वासकोंमें नकुल-पिता गृहपति० ।

---

(६६)···भिक्षुओ ! मेरी उपासिका श्राविकाओंमें प्रथम शरण आनेवालियोंमें सेनानी-दुहिता सुजाता अग्र है ।

(६७)··· दायिकाओंमें विशाखा मृगारमाता० ।

(६८)···बहुश्रुतोंमें खुज्ज(=कुब्ज)-उत्तरा० ।

(६९)···मैत्री विहार प्राप्तोंमें सामावती ० ।

(७०)···ध्यानियों में उत्तरा नन्दमाता ० ।

(७१)···प्रणीत-दायिकाओंमें सुप्रवासा कोलिय दुहिता ० ।

(७२)···रोगी-सुश्रूषिकाओंमें सुप्रिया उपासिका ० ।

(७३)···अतीव प्रसन्नोंमें कात्यायनी (=कातियानी) ० ।

(७४)···विश्वासिकाओंमें नकुल-माता गृहपत्नी (=गहपतानी) ० ।

(७५)···अनुश्रव प्रसन्नोंमें कुररघरवाली काली उपासिका ० ।

---

(५८) मगध, मच्छिकासंड, श्रेष्ठिकुल । (५९) पञ्चाल देश, आलवी (=अर्वल, जि० फरुखाबाद), राजकुमार । (६०) शाक्य, कपिलवस्तु, (अनुरुद्धका ज्येष्ठ भ्राता) क्षत्रिय । (६१) वज्जीदेश, वैशाली, श्रेष्ठिकुल । (६२) वज्जीदेश, हस्तिग्राम, श्रेष्ठिकुल । (६३) कोसल, श्रावस्ती, श्रेष्ठि-कुल । (६४) मगध, राजगृह, अभय-कुमारसे सालवतिका गणिकामें उत्पन्न । (६५) भग्ग (=भर्ग देश) संसुमारगिरि, श्रेष्ठिकुल । (६६) मगध, उरुवेलाके सेनानी-ग्राम, सेनानी कुटुम्बिककी पुत्री । (६७) कोसल, श्रावस्ती, (वैश्य) । (६८) वत्स, कौशाम्बी, घोषक श्रेष्ठिकी धाईकी पुत्री ।

(६९) भद्रवतीराष्ट्र, भद्दिया (=भद्रिका) नगर, भद्रवतिक श्रेष्ठि-पुत्री; (पश्चात् वत्स, कौशाम्बी, घोषित श्रेष्ठिकी धर्मपुत्री), वत्स-राज उदयनकी महिषी ।

(७०) मगध, राजगृह, सुमनश्रेष्ठीके आधीन पूर्णसिंहकी पुत्री ।

(७१) शाक्य, कुंडिया, सांवलीमाता, क्षत्रियकुल ।

(७२) काशीदेश, वाराणसी, कुलगेह (वैश्यकुल) ।

(७३) अवन्ती, कुररघर, (वैश्यकुल), सोणकुटिकण्णकी माता ।

(७४) भग्गदेश, सुंसुमारगिरि, नकुलपिता गृहपतिकी भार्या ।

(७५) मगध, राजगृह, कुलगेहमें पैदाहुई । अवन्ती कुररघरमें व्याही ।

(६)

धम्मचेतिय-सुत्त (वि. पृ. २४८)।

[1]ऐसा मैंने सुना—एक समय भगवान् शाक्य (देश)में, मेतलूप (=मेतलुम्प) नामक शाक्योंके निगममें विहार करते थे।

उस समय राजा प्रसेनजित् कोसल किसी कामसे नगरकमें आया हुआ था। तब राजा प्रसेनजित् कोसलने [2]दीर्घ कारायणको आमंत्रित किया—

---

१. म. नि. २: २: ९।

२. धम्मपद. अ. क. (४: ३)—श्रावस्तीके महाकोसल राजाका पुत्र प्रसेनजित कुमार, वैशालीका लिच्छवी-कुमार महाली, कुशीनाराका मल्ल-राजपुत्र बंधुल, यह तीनोंही दिशा-प्रामोक्ष्य आचार्यके पास शिल्प (=विद्या) ग्रहण करनेके लिये, तक्षशिला···(गये)। (वहाँ) नगरके बाहर (धर्म-)शालामें भेंट हुई। एक-दूसरेके आनेका कारण, कुल और नाम पूछकर, मित्र बन, एक साथही आचार्यके पास जा, शीघ्रही विद्या समाप्त कर, आचार्यसे आज्ञाले एक साथही निकल कर अपने अपने स्थानको गये। उनमें प्रसेनजित् कुमारने पिताको विद्या दिखा, प्रसन्न पितासे राज्य-अभिषेक पाया; महालीकुमारकी लिच्छवियोंको अपनी विद्या दिखाते समय बहुत उत्साह(=बल)के साथ दिखानेके कारण, आँखें फूटकर निकल गईं। लिच्छवी राजाओं (=प्रजातन्त्र-सभासदों)ने—'अहो! हमारे आचार्यकी आँखें फूट गईं', इन्हें नहीं छोड़ना चाहिये, इनकी सेवा करनी चाहिये (सोच), (शुल्कसे) एक लाख आय वाला एक (नगर-) द्वार देदिया। वह वहीं बैठ पाँचसौ लिच्छवी राजकुमारोंको विद्या-ग्रहण कराते रहने लगा।

बंधुल राजकुमारको मल्ल राज-कुलने प्रत्येक बाँसमें लोहेकी शलाका डाल, खड़ाकर, साठ साठ बासोंके साठ कलापोंको (तलवारसे) काटनेको कहा। वह आकाशमें अस्सी हाथ उछलकर तलवारसे काटने लगा, अन्तिम कलापमें, उसने लोहेकी शलाकाके खनखनानेका शब्द सुन, पूछ, सभी कलापोंमें लोह-शलाका रखी होनेकी बात सुन; तलवारको फेंक, रोते हुये (कहा)—'मेरे इतने जाति-सुहृदोंमेंसे एकने भी स्नेहयुक्त हो, इस बातको न बतलाया। यदि मैं जानता तो लोह-शलाकाके शब्द हुये बिना (पूर्णतः) ही काटता'। अब 'इन सबको मारकर राज्य करूँगा'—मातापिताको कहा। उन्होंने—'तात! यहं प्रवेणी (=वंशानुगत) राज्य है, यहाँ ऐसा करनेको नहीं मिलेगा'—कह निवारित किया। तब—'तो मैं अपने मित्रके पास जाऊँगा' (कह), श्रावस्ती गया। प्रसेनजित् कोसल-राजाने उसके आगमनकी बात सुन, अगवानी कर, बड़े सत्कारसे नगरमें प्रवेशकरा, सेनापतिके पदपर स्थापित किया। वह माता-पिताको बुलवाकर वहीं बस गया।····

···तथागतके सारिपुत्र, महामौद्गल्यायन स्थविर दो अग्रश्रावक (=प्रधान शिष्य); क्षेमा (=खेमा), उत्पलवर्णा दो अग्रश्राविकायें; उपासकोंमें चित्रगृहपति और हस्तक

"सौम्य कारायण ! सुन्दर यानोंको जुड़वाओ, सुभूमि देखनेकेलिये उद्यानभूमि जायेंगे ।"

आलवक दो अग्र-श्रावक उपासक ; उपासिकाओंमें वेलु-कंटकी(-नगर-वासिनी) नन्दमाता, और खुज्ज-उत्तरा दो अग्र श्राविका उपासिकायें, यह आठ जन···थे ।···

·· राजा (-प्रसेनजित्)ने—भिक्षु-संघके साथ मुझे विश्वास पैदा कराना चाहिये, (सोच,···' एक कन्या मुझे दो ' (ऐसा संदेश) शाक्योंके पास भेजा···। उन्होंने एकत्रित हो—'राजा प्रबल है, यदि न देंगे, हमारा नाशकर देगा, किन्तु कुलमें हमारे समान नहीं है, तो क्या करना चाहिये ?'—सोचा । तब महानामने—'मेरी दासीके कोखसे उत्पन्न वासभ-खत्तिया (=वार्षभक्षत्रिया) नामक अत्यन्त सुन्दरी कन्या है, उसे देंगे ' ।···दूतोंको कहा— ' अच्छा राजाको कन्या देंगे ' । ' यह किसकी कन्या है ? ' ' सम्यक् संबुद्धके छोटे चचाके पुत्र महानाम शाक्यकी वासभखत्तिया नामक पुत्री है । उन्होंने जाकर राजाको कहा । राजाने—'यदि ऐसा है तो अच्छा, जल्दी ले आओ । क्षत्रिय बड़े छली (=मायावी) होते हैं, दासी-कन्या भी भेज सकते हैं. पिताके साथ एक भोजनमें खाती देखकर लाना ' (कह) भेजा ।·· । महानामने···उसे अलंकृत करा, अपने भोजनके समय बुलवाकर उसके साथ एक जगह भोजन करने सा दिखला, दूतोंको प्रदान किया । उन्होंने उसे लेकर श्रावस्ती जाकर उस बातको राजासे कहा । राजाने संतुष्ट हो उसे पांचसौ स्त्रियोंकी प्रधाना बना, अग्रमहिषीके पदपर अभिषिक्त किया । उसने थोड़ेही दिनमें सुवर्ण-वर्ण पुत्र प्रसव किया ।···। राजाने···विडूडभ नाम रक्खा; और राजाने (उसे) छोटी उमरमें ही···सेनापतिका पद दिया ।···

सोलह वर्षकी अवस्थामें (विडूडभ)····पितासे कहकर बड़े लोग-बागकेसाथ निकला । ···। शाक्य विडूडभके आगमनको जान कर,···(विडूडभसे) छोटी उमरके बालकोंको देहातमें भेज, उसके कपिलपुर पहुँचनेपर, संस्थागारमें एकत्रित हुये । कुमार वहां जाकर खड़ा हुआ । तब उसे—' तात ! यह तेरा मातामह है, यह मातुल है, ' बोले । उसने उन सबकी वन्दना करते, घूमते हुये, एकको भी अपनी वन्दना करते न देख, पूछा—' क्या है, एक भी मुझे वन्दना नहीं करता' । ' तुमसे छोटे कुमार देहात गये हुये हैं '—(कह) शाक्योंने बहुत सत्कार किया । वह कुछ दिन वासकर बड़े परिवारके साथ निकला । तब एक दासी, संस्थागारमें उसके बैठनेके फलक (=तख्त)को दूध-पानीसे धोती—' यह वासभ-खत्तिया दासीके पुत्रके बैठनेका फलक है '—कह, निन्दा करती थी । (विडूडभका) एक आदमी अपना हथियार भूलकर, उसे लेनेके लिये लौटा । उसे लेते समय, विडूडभ कुमारकी निन्दाके उस शब्दको सुन, उससे वह बात पूछकर, (उसने)···सेनामें कह दिया—'वासभ खत्तिया महानाम शाक्य की दासीसे उत्पन्न हुई है' । बड़ा कोलाहल मचा । उसे सुनकर (विडूडभने) चित्तमें ठान लिया,—' वह मेरे बैठनेके तख्तको क्षीरोदकसे धोते हैं, मैं राज-गद्दीपर बैठ, उनके गलेका रक्त ले, अपने तख्तको धुलवाऊँगा ' । उसके श्रावस्ती जानेपर अमात्योंने उस बातको राजासे कहा । राजाने···शाक्योंसे क्रुद्ध हो वासभ-खत्तिया विडूडभ, दोनों माता-पुत्रको दिये सन्मानको छीनकर, (उन्हें) दास-दासीके योग्य स्थान दिलवाया । कुछ दिन बाद शास्ता राज-महलमें जाकर बैठे । राजाने आकर वन्दना कर···(वह सब) कह दिया । शास्ताने कहा—

"अच्छा देव !"...

' महाराज ! शाक्योंने अयुक्त किया... । महाराज ! मैं तुमको कहता हूँ—वासभ-खत्तिया राज-दुहिता है, क्षत्रिय राजाके गेहमें उसने अभिषेक पाया है । विडूडभ भी क्षत्रिय राजासे ही उत्पन्न हुआ है । माताका गोत्र क्या करेगा, (पिताका गोत्र) काफी (=प्रमाण) है । ... । सुनकर (राजाने)....संतुष्ट हो फिर माता-पिताको (उनका) प्रकृत परिहार(=संमान) दे दिया ।

वंधुल सेनापतिकी भार्या...मल्लिकाको देरतक संतान न हुई ।...(फिर) गर्भ होनेपर... मुझे दोहद (=गर्भिणीकी किसी चीजकी इच्छा)उत्पन्न हुआ है'—कहा । 'क्या दोहद है ?' 'वैशाली नगरमें गण (=प्रजातंत्र)-राज-कुलकी अभिषेक पुष्करिणीमें उतरकर नहाकर पानी पीना चाहती हूँ, स्वामी !' वंधुल 'अच्छा कह'...सहस्र(=मनुष्य)-बल (-से नमने)वाला धनुषले, उसे रथपर चढ़ा श्रावस्तीसे निकलकर, रथ हांकते महाली लिच्छवीको दिये द्वारसे वैशालीमें प्रविष्ट हुआ ।...।पुष्करिणीके भीतर और वाहर वडा जबर्दस्त पहरा था, ऊपर लोहेका जाल विछा हुआ था, पंछीके भी जानेका स्थान न था । वंधुल सेनापतिने रथसे उतर कर वेंतसे पहरेवालोंको पीटकर भगा, लोहजालको काटकर, पुष्करिणीके भीतर भार्याको नहला, स्वयंभी नहा, फिर उसी रथपर चढ़, नगरसे निकलकर, आनेके रास्तेसेही चल दिया । पहरेवालोंने लिच्छवियोंको कहा । लिच्छवी राजा क्रुद्ध होकर पांचसौ रथोंपर आरूढ़हो— 'वंधुल मल्लको पकड़ेंगे'—(कह) निकले । (लोगोंने)उस समाचारको महालीसे कहा । महालीने कहा—'मत जाओ' वह तुम सबको मार डालेगा' । उन्होंनेभी कहा—'हम जायेंहीगे'...वह सभी मारे गये । वंधुल मल्लिकाको लेकर श्रावस्ती गया । उसने सोलहवार जमुये पुत्र जने । वह सभी शूर वलवान् हुये । सभी विद्या (=शिल्प)में निष्णात थे ।... एक दिन मनुष्योंने वंधुलको आते देखकर वड़ी दोहाई दे,...न्यायधीशोंके रिश्वतले फैसला करनेकी वात (=कूटट्टकारण)कही । उसने अदालतमें जा उस झगडेका फैसलाकर, स्वामीही को स्वामी वनाया । लोगोंने वडे जोरसे साधुवाद दिया । राजाने....पूछकर, उसवातको सुन संतुष्टहो, उन सभी अमात्योंको हटा, वंधुलकोही विनिश्चय (=न्यायविभाग)दे दिया । वह तबसे ठीक ठीक न्याय करने लगा । पुराने न्यायाधीशों(=विनिश्चयिकों)ने रिश्वत (=लंचा,न पानेसे...."वंधुल राज्य ले लेना चाहता है" (कहकर), राजकुलमें फूट डालदी । राजा उनकी वात मानकर, अपने मनको न रोक सका । 'इसको यहीं मारनेसे वड़ी निन्दा होगी'—सोच,... 'सीमान्तमें वलवा हो गया, अपने पुत्रोंके साथ जाकर वलवाइयों(=चोरे)को पकड़ो' कह भेज दिया ।...लौटते वक्त...नगरसे अविदूरस्थानमें (राजाके भेजे) योधाओंने पुत्रके साथ (वंधुल मल्ल)का शिर काट लिया । .....

...(पीछे) राजाके चरपुरुषोंने राजाको उनके (=वंधुल और उसके पुत्रोंके) निर्दोष होनेकी वात कही । राजाने संविग्न हो;...उसके घर जा, मल्लिका और उसकी वहुओंसे क्षमा मांगी ।...(मल्लिका) कुसीनारामें अपने कुलघरको चली गई । राजाने वंधुल मल्लके भांजे दीर्घ-कारायणको सेनापतिका पद दिया । वह 'इसने मेरे मामाको मारा है' (सोच)

" देव ! सुन्दर सुन्दर यान जुत गये, अब जिसका देव काल समझते हों । "

मौका ढूँढ़रहा था । राजाभी निःपराध बंधुलके मारे जानेके समयसेही, खिन्नहो चैन न पाता था, राज्य-सुख नहीं अनुभव करता था । उस समय शास्ता शाक्योंके उलुम्प नामक निगम (=कस्बे) में विहार करते थे । राजा वहां जा, आरामके अविदूरमें छावनी (=स्कंधावार) डाल, थोड़ेसे परिवारके साथ विहारमें जा, पांच राज-ककुध-भांड(=छत्र, व्यजन, उष्णीष, खड्ग, और पादुका) दीर्घकारायणको दे, अकेलाही गंध-कुटीमें गया । उसके गंधकुटीमें जातेही, कारायण उन राज-ककुध-भाण्डोंको ले विड्डभको राजा बना, राजाके लिये एक घोड़ा और एक सेविका छोड़, श्रावस्ती चला गया । राजा, शास्ताके साथ प्रिय-कथा कह, निकलकर, सेनाको न देख, स्त्रीको पूछ, उस बातको सुन, भांजे (=अजातशत्रु)को लेकर विड्डभको पकड़नेकी बात सोच, राजगृह नगरको जाते, संध्याकालमें नगरद्वारके बन्द होजानेपर, एक(धर्म-)-शालामें ठहरा । धूप हवामें थका (होनेसे)···रातको वहीं मर गया ।·· भोरको 'कोसलनरेन्द्र अनाथ होगये' कह चिल्लाती उस स्त्रीके शब्दको सुनकर, (लोगोंने) राजाको कहा । उसने मामा की शरीर-क्रिया बड़े सत्कारसे की ।

विड्डभ भी राज्यप्राप्तकर उस वैरको स्मरणकर सभी शाक्योंके मारने केलिये बड़ी सेना के साथ निकला । उस दिन भगवान् ··कपिलवस्तुके पास जाकर एक कबरीछायावाले वृक्षके नीचे बैठे थे । वहां (पास हीमें) विड्डभकी राज्यसीमामें बड़ी घनी छायावाला बर्गदका वृक्ष था । विड्डभने शास्ताको देख, जाकर वन्दनाकर कहा—

'भन्ते ! ऐसे गर्मीके समय इस कबरी छायावाले वृक्षके नीचे बैठे हैं ? इस घनी छायावाले बर्गदके नीचे बैठें । '....

'ठीक है महाराज ! ज्ञातकों (=भाई बन्दों)की छाया ठंडी होती है ।' कहनेपर—शास्ता ज्ञातकोंके बचानेके लिये आये हैं—सोच, शास्ताको वन्दनाकर, श्रावस्तीको ही लौट गया ।···। राजा दूसरी वारभी···उसी प्रकार शास्ताको देखकर लौट गया । तीसरी वार भी···। चौथी वार···शास्ता न गये । विड्डभ शाक्योंके मारनेके लिये बड़ी सेनाके साथ निकला···।·· (और) कहा—'जो कहे हम शाक्य हैं, उनको मारो, किन्तु मेरे नाना महानामके पास खड़े हुओंको जीवन-दान दो ।' शाक्यों (में) · कोई कोई दांतमें तिनका दबाकर खड़े हो गये, कोई कोई नल (=नर्कट) पकड़कर खड़े हो गये । 'तुम शाक्य हो' पूछने पर···तिनका दबाये हुये बोले—'शाक नहीं (=नो=हम, नहीं), तिनका हैं' नलको पकड़कर खड़े हुये बोले—'शाक नहीं (=नो) नल हैं । उनमेंसे महानामके पास खड़े हुये जान बचा पाये । उनमें तिनका दबाकर खड़े पीछे तृण-शाक्य कहलाये ; नल पकड़कर खड़े नल-शाक्य कहलाये । बाकी दूध पीनेवाले बच्चों तकको बिना छोड़े मरवाकर, खूनकी नदी बहवा (विड्डभने) उनके गलेके खूनसे तख्त धुलवाया । इस प्रकार शाक्यवंशको विड्डभने उच्छिन्न किया....। रातके समय उसने अचिरवती नदीके तटपर पहुँच, छावनी डालनी । कोई कोई नदीके भीतर बालुकापुलिन पर लेटे, कोई कोई बाहर स्थलपर ।···उसी समय मेघने उठकर घना ओला बरसाया; और नदीमें आई बाढ़ने सेना-सहित उसे समुद्रमें पहुँचा दिया ।······

तब राजा प्रसेनजित्० भद्र (=सुन्दर) यानपर आरूढ हो, भद्र भद्र यानोंके साथ, बड़े राजसी ठाठसे नगरकसे निकल कर, जहाँ आराम था, वहाँ गया। जितनी यानकी भूमि थी, उतना यानसे जा, यानसे उतर पैदलही आराममें प्रविष्ट हुआ। राजा प्रसेनजित्‌ने टहलते हुये आराममें शब्द-रहित, घोष-रहित, निर्जन,···ध्यान-योग्य मनोहर वृक्ष-मूलोंको देखा। देखकर भगवान्‌कीही स्मृति उत्पन्न हुई—यह वैसेही ०मनोहर वृक्षमूल हैं, जहाँ पर हम भगवान् ०सम्यक् संबुद्धकी उपासना (=सत्संग) करते थे। तब राजा ०ने दीर्घ कारायणको पूछा—

"सौम्य कारायण! यह ०मनोहर वृक्षमूल हैं, जहांपर०। सौम्य कारायण! इस समय वह भगवान् ०कहाँ विहरते हैं?"

"महाराज! शाक्योंका मेतलूप नामक निगम (=कस्बा) है, वह भगवान्० वहां पर विहर रहे हैं।"

"सौम्य कारायण! नगरकसे कितनी दूर पर शाक्योंका वह मेतलूप निगम है?"

"महाराज! दूर नहीं हैं, तीन योजन है। बाकी बचे दिनमें पहुंचा जा सकता है।"

"तो सौम्य कारायण! जुड़वा भद्रयानों को, हम भगवान्०के दर्शनके लिये वहाँ चलेंगे।" "अच्छा देव!"···

···तब राजा प्रसेनजित् सुन्दर यानपर आरूढ़ हो० नगरकसे निकलकर,···उसी बँचे दिनमें शाक्योंके निगम मेतलूपमें पहुंच गया। जहाँ आराम था, वहाँ चला। जितनी यानकी भूमि थी, उतनी यानसे जा, यानसे उतर कर पैदल ही आराममें प्रविष्ट हुआ।

उस समय बहुतसे भिक्षु खुली जगहमें टहल रहे थे०। राजा प्रसेनजित्‌ने वहीं खड्ग और उष्णीष दीर्घ करायणको देदिया। दीर्घकारायणने सोचा—'मुझे राजा यहीं, ठहरा रहा है; इसलिये मुझे यहीं खड़ा रहना होगा"। तब राजा० जहाँ वह द्वारबंद विहार था० गया। भगवान्‌ने दर्वाजा खोल दिया। राजा० विहार (=गंधकुटी)में प्रविष्टहो, भगवान्‌के चरणोंमें शिरसे पड़कर[१]०।

"क्या है महाराज! क्या बात देखकर महाराज! इस शरीरमें इतना गौरव दिखलाते हो, विचित्र उपहार (=संमान) प्रदर्शन कर रहे हो?"

"भन्ते! भगवान्‌में मेरा धर्म-अन्वय (=धर्म-संबन्ध) है—भगवान् सम्यक् संबुद्ध हैं, भगवान्‌का धर्म स्वाख्यात है, संघ सुमार्ग पर आरूढ है। भन्ते! किन्हीं किन्हीं श्रमण ब्राह्मणोंको मैं स्वल्प-कालिक (=पर्यंतक) ब्रह्मचर्य पालन करते देखता हूँ—दसवर्ष, बीस वर्ष तीस वर्ष, चालीस वर्षभी। वह दूसरे समय सु-स्नात, सु-विलिप्त, केश-श्मश्रु बनवा (=कल्पित कर) पाँच कामगुणोंसे समर्पित=सम्-अंगीभूत हो, विचरण करते हैं। भन्ते! भिक्षुओंको मैं देखता हूं, जीवनभर···परिपूर्ण परिशुद्ध ब्रह्मचर्य पालन करते हैं। भन्ते! यहांसे बाहर दूसरा इतना परिपूर्ण परिशुद्ध ब्रह्मचर्य नहीं देखता। भन्ते! यह भी (कारण है) कि भगवान्‌में

१. देखो पृष्ठ ४४०।

मुझे धर्म-दर्शन (=धर्मअन्वय) होता है,—'भगवान् सम्यक् संबुद्ध हैं, भगवान्‌का धर्म स्वाख्यात है, संघ सु-प्रतिपन्न (=सुमार्गारूढ) है।

"और फिर भन्ते! राजाभी राजाओंसे विवाद करते हैं, क्षत्रिय क्षत्रिके साथ विवाद करते हैं, ब्राह्मणभी०, गृहपति (=वैश्य) भी०, माताभी पुत्रके साथ०, पुत्रभी माताके साथ०, पिता भी पुत्रके साथ०, पुत्र भी पिताके साथ०, भाई भी भाईके साथ०, भाई भी बहिनके साथ०, बहिन भी भाईके साथ०, मित्र भी मित्रके साथ०। किन्तु यहां भन्ते! मैं भिक्षुओंको समग्र (=एकाग्र), संमोदमान (=एक दूसरेसे मुदित), विवाद-रहित, दूध-जल-बने, एक दूसरेको प्रिय-चक्षुसे देखता विहार करत देखता हूं। भन्ते! यहांसे बाहर मैं (कहीं) ऐसी एकराय परिषद् नहीं देखता। यह भी भन्ते!०।

"और फिर भन्ते! मैं (एक) आरामसे (दूसरे) आराममें, (एक) उद्यानसे (दूसरे) उद्यानमें, टहलता हूं, विचरता हूं; वहां मैं किन्हीं किन्हीं श्रमण ब्राह्मणोंको कृश, रुक्ष, दुर्वर्ण, पीले पीले, नाडी बँधे गात्रवाले (देखता हूं); मानों लोगोंके दर्शन करनेसे आंखको बंद कर रहे हैं। तब भन्ते! मुझे ऐसा होता है—'निश्चय यह आयुष्मान् या तो बेमन (=अन्-अभिरत) हो ब्रह्मचर्य कर रहे हैं, या इन्होंने कोई छिपा हुआ पापकर्म किया है, जिससे कि यह आयुष्मान् कृश०। उनके पास जाकर मैं ऐसे पूछता हूं—'आयुष्मानो! तुम कृश० ?' वह मुझे कहते हैं—'महाराज! हमें बंधुक-रोग (=कुल-रोग) है।' किन्तु भन्ते! मैं यहां भिक्षुओंको हृष्ट, प्रहृष्ट=उदग्र, अभिरत=प्रसन्न-इन्द्रिय उत्सुकता-रहित, रोमांच-रहित, ...मृदु-चित्तसे विहार करते देखता हूं। यह भी भन्ते!०।

"और फिर भन्ते! मैं मूर्धाभिषिक्त क्षत्रिय राजा हूं, मारने योग्यको मरवा सकता हूं, ...निर्वासन-योग्यको निर्वासन कर सकता हूं। ऐसा होते भी भन्ते! मेरे (राज-) कार्यमें बैठे वक्त, (लोग) बीच बीचमें बात डाल देते हैं। उनको मैं (कहता हूं)—'मैं (काम करने) नहीं पाता, आपलोग कार्य करनेके लिये बैठे वक्त बीच बीचमें बात मत डालें; आप बात समाप्त हो जाने तक प्रतीक्षा करें।' तो (भी)....बीच बीचमें बात डाल ही देते हैं। किंतु यहां भन्ते! मैं भिक्षुओंको देखता हूं, जिस समय भगवान् अनेक शतकी परिषद्‌को धर्म-उपदेश करते हैं; उस समय भगवान्‌के श्रावकोंके थूकने खांसनेका भी शब्द नहीं होता। भन्ते! पहिले एक समय भगवान् अनेक शत परिषद्‌को धर्म-उपदेशकर रहे थे, उस समय भगवान्‌के एक श्रावक (=शिष्य)ने खांसा। तब उसे एक सब्रह्मचारीने घुटनेको दबाकर इशारा किया—आयुष्मान् निःशब्द हों, आयुष्मान् शब्द मत करें, शास्ता भगवान् हमें धर्म-उपदेशकर रहे हैं। तब मुझे ऐसा हुआ—'आश्चर्य है जी! अद्भुत है जी!! जो बिना दंडके ही, बिना शस्त्रके ही, इस प्रकारकी विनय-युक्त (=विनीत) परिषद्!!!' यहांसे बाहर भन्ते! मैं दूसरी इस प्रकारकी सु-विनीत परिषद् नहीं देखता। यह भी०।

"और फिर भन्ते! मैं किन्हीं किन्हीं निपुण, कृतपरप्रवाद (=प्रौढ शास्त्रार्थी) बाल-वेधी क्षत्रिय-पंडितोंको देखता हूं; (जो) मानों (अपनी) प्रज्ञा-गत (युक्तियोंसे) (दूसरेके) दृष्टि-गत (=मतविषयक बातों)को टुकड़े टुकड़े करे डालते हैं। वह सुनते हैं—

'श्रमण गौतम अमुक ग्राम या निगममें आयेगा' यह प्रश्न तय्यार करते हैं—इस प्रश्नको हम श्रमण गौतमके पास जाकर पूछेंगे; ऐसा पूछनेपर यदि ऐसा उत्तर देगा, तो हम इस प्रकार उससे वाद रोपेंगे। वह सुनते हैं—'श्रमण गौतम अमुक ग्राम या निगममें आगया'। वह जहां भगवान् (होते हैं) वहां जाते हैं। वह भगवान्‌की धार्मिक-कथा द्वारा संदर्शित हो, प्रेरित हो, समुत्तेजित हो, संप्रहर्षित हो, भगवान्‌से प्रश्न भी नहीं पूछते, वाद कहांसे रोपेंगे? बल्कि भगवान्‌के श्रावक ही वन जाते हैं। यह भी०।

"और फिर भन्ते! मैं किन्हीं किन्हीं ० ब्राह्मण पंडितों ०।"

"० गृहपति पंडितों ०।"

"० श्रमण पंडितों ०। भगवान्‌से प्रश्न भी नहीं पूछते, वाद कहांसे रोपेंगे; वल्कि भगवान्‌से ही घरसे बेघर हो प्रव्रज्या मांगते हैं। उन्हें भगवान् प्रव्रजित करते हैं। वह इस प्रकार प्रव्रजित हो एकाकी० आत्म-संयमी हो विहरते, जल्दीही जिसके लिये कुलपुत्र ० प्रव्रजित होते हैं, उस अनुत्तर (=सर्वोत्तम) ब्रह्मचर्य-फलको इसी जन्ममें स्वयं अभि-ज्ञानकर, साक्षात्कारकर, प्राप्तकर विहरते हैं। वह ऐसा कहते हैं—हम नष्ट थे, हम प्र-नष्ट थे; हम पहिले अ-श्रमण होते ही 'श्रमण हैं,' का दावा करते थे; अ-ब्राह्मण होते 'ब्राह्मण हैं' का दावा करते थे। अर्हत् न होते 'अर्हत् हैं' का दावा करते थे। अब हैं हम श्रमण, ० ब्राह्मण, ० अर्हत्। यह भी ०।

"और फिर भन्ते! यह ऋषिदत्त और पुराण स्थपति (=फीलवान्) मेरे ही (भोजनसे) भोजनवाले, मेरे ही (पानसे) पानवाले हैं, मैं ही उनके जीवनका प्रदाता, उनके यशका प्रदाता हूँ; तो भी (वह) मेरेमें उतना सन्मान नहीं करते, जितना कि भगवान्‌में। पहिले एक वार भन्ते! मैं चढ़ाईके लिये जाता था। ऋषिदत्त और पुराण स्थपतिने खोजकर एक भीड़वाले आवसथ (=सराय)में वास किया। तब भन्ते! वह ऋषिदत्त और पुराण वहुत रात धर्म-कथामें विता, जिस दिशामें भगवान्‌के होनेको सुना था, उधर शिरकर, मुझे पैरकी ओर करके लेट गये। तब मुझे ऐसा हुआ—'आश्चर्य है जी! अद्भुत है जी!! यह ऋषिदत्त, और पुराण स्थपति मेरे ही भोजनसे भोजनवाले ०। यह आयुष्मान् उन भगवान्‌के शासनमें (=श्रद्धालु) हो, पहिलेसे अवश्य कोई विशेष देखते होंगे। यह भी ०।

"और फिर भन्ते! भगवान्‌भी क्षत्रिय हैं, मैं भी क्षत्रिय हूं, भगवान्‌भी कोसलक-(=कोसलवासी, कोसल-गोत्रज)हैं, मैं भी कोसलक हूं। भगवान्‌भी अस्सी वर्षके, मैं भी अस्सी वर्षका। भन्ते! जो भगवान्‌भी क्षत्रिय०, इससेभी भन्ते! मुझे योग्यही है, भगवान्‌का परम सन्मान करना, विचित्र गौरव प्रदर्शित करना। हन्त! भन्ते! अब हम जायेंगे, हम बहुकृत्य बहु-करणीय हैं।"

"महाराज! जिसका तुम काल समझते हो (वैसा करो)"

सामगाम-सुत्त (वि. पृ. ४२८) ।

ऐसा[1] मैंने सुना—एक समय भगवान् शाक्य (देश)में, सामगाम में विहार करते थे।

उस समय निगंठ नाथ-पुत्त (=जैन तीर्थङ्कर महावीर) अभी अभी पावामें मरे[2] थे। उनके मरने पर निगंठ (=जैन साधु) लोग दो भाग हो, भंडन=कलह=विवाद करते, एक दूसरेको मुखरूपी शक्तिसे छेदते विहर रहे थे—'तू इस धर्म-विनय (=धर्म)को नहीं जानता, मैं इस धर्म-विनयको जानता हूं'। 'तू क्या इस धर्म-विनयको जानेगा, तू मिथ्यारूढ़ है, मैं सत्यारूढ़ हूं'। 'मेरा (कथन अर्थ-) सहित है, तेरा अ-सहित है'। 'तू पूर्व बोलने (की बात)को पीछे बोला; पीछे बोलने (की बात)को पहिले बोला।' 'तेरा (वाद) विना-विचारका उलटा है'। 'तूने वाद रोपा, तू निग्रह-स्थानमें आ गया'। 'जा वादसे छूटने के लिये फिरता फिर'। 'यदि सकता है तो समेट'। नाथ-पुत्तीय निगंठोंमें मानो युद्ध (=वध) ही हो रहा था।

निगंठके श्रावक (=शिष्य) जो गृही श्वेत वस्त्रधारी, (थे) वह भी नाथ-पुत्तीय निगंठोंमें (वैसेही) निर्विण्ण=विरक्त=प्रतिवाण-रूप थे, जैसे कि (नाथ-पुत्तके) दुर्-आख्यात (=ठीकसे न कहे गये), दुष्-प्रवेदित (=ठीकसे न साक्षात्कार किये गये), अनैर्याणिक (=पार न लगाने वाले), अन्-उपशम-संवर्तनिक (=न-शांति-गामी), अ-सम्यक्-संबुद्ध-प्रवेदित (=किसी बुद्धसे न जाने गये), प्रतिष्ठा (=नींव)-रहित=भिन्न-स्तूप, आश्रयरहित धर्म-विनयमें (थे)।

तब [3]चुन्द समणुद्देस पावामें वर्षावास कर, जहां सामगाम था, जहां आयुष्मान् आनन्द थे, वहां गया। जाकर आयुष्मान् आनन्दको अभिवादनकर एक ओर बैठ गया। एक ओर बैठे चुन्द श्रमणोद्देशने आयुष्मान् आनन्दको कहा—

"भन्ते! निगंठ नाथपुत्त अभी अभी पावामें मरे हैं। उसके मरनेपर० नाथ-पुत्तीय निगंठोंमें मानो युद्ध ही हो रहा है। ०आश्रय-रहित धर्म-विनयमें (थे)।"

ऐसा कहनेपर आयुष्मान् आनन्दने चुन्द श्रमणोद्देशको कहा—

"आवुस चुन्द! भगवान्के दर्शनके लिये यह बात भेंट-रूप है। आओ आवुस चुन्द! जहां भगवान् हैं, वहां चलें। चलकर यह बात भगवान्को कहें।" "अच्छा भन्ते!"······

---

१. म. नि. ३:१:४।

२. अ. क. "यह नात-पुत्त तो नालन्दा-वासी था, वह कैसे क्यों पावामें मरा? सत्य-लाभी उपालि गृहपतिके दश गाथाओंसे भाषित बुद्ध गुणोंको सुनकर, उसने गर्म खून फेंक दिया। तब अस्वस्थही उसे पावा ले गये। वह वहां मरा।"

३. अ. क. "यह स्थविर धर्मसेनापति (=सारिपुत्र)के छोटे भाई थे। उनको उप-सम्पन्न न होनेके समय भिक्षु चुन्द समणुद्देस कहा करते थे, स्थविर हो जानेपर भी वही कहते रहे।"

तब आयुष्मान् आनन्द और चुन्द श्रमणोद्देश जहां भगवान् थे, वहां गये, जाकर भगवान्‌को अभिवादनकर एक ओर बैठ गये। एक ओर बैठे हुये आयुष्मान् आनन्दने भगवान्‌को कहा—

"भन्ते ! यह चुन्द समणुद्देस ऐसा कह रहे हैं—'भन्ते ! निगंठ नाथपुत्त अभी अभी पावामें मरे हैं०।' तब भन्ते ! मुझे ऐसा होता है, भगवान्‌के बाद भी (कहीं) संघमें ऐसा ही विवाद मत उत्पन्न हो। वह विवाद बहुतजनोंके अहितके लिये, बहुत जनोंके असुखके लिये, बहुत जनोंके अनर्थके लिये, देव मनुष्योंके अहित और दुःखके लिये (होगा)।"

"तो क्या मानते हो आनन्द ! मैंने साक्षात्कार कर जिन धर्मोंका उपदेश किया, जैसे कि—(१) चार स्मृति प्रस्थान, (२) चार सम्यक् प्रधान, (३) चार ऋद्धिपाद, (४) पांच इन्द्रियां, (५) पांच बल, (६) सात बोध्यंग, (७) आर्य आष्टांगिक मार्ग। आनन्द ! क्या इन धर्मोंमें दो भिक्षुओंका भी अनेक मत (दीखता) है ?"

"भन्ते ! भगवान्‌ने जो यह धर्म साक्षात्कारकर उपदेश किये हैं, जैसे कि—(१) चार स्मृति-प्रस्थान०। इन धर्मोंमें भन्ते ! मैं दो भिक्षुओंका भी अनेक मत नहीं देखता। लेकिन भन्ते ! जो पुद्गल भगवान्‌के आश्रयसे विहरते हैं, वह भगवान्‌के न रहनेके बाद, संघमें आजीव (=जीविका)के विषयमें, प्रातिमोक्ष(=भिक्षु नियम)के विषयमें विवाद पैदा कर सकते हैं, वह विवाद बहुत जनोंके अहितके लिये, बहुत जनोंके अ-सुखके लिये, बहुत जनोंके अनर्थ=अहितके लिये, देव-मनुष्योंके ०दुःखके लिये होगा।'

"आनन्द ! जो यह आजीवके विषयमें या प्रातिमोक्षके विषयमें विवाद है, वह अल्प-मात्रक (=छोटा) है। मार्ग या प्रतिपद्‌के विषयमें यदि संघमें विवाद···उत्पन्न हो, वह विवाद ०अहितके लिये०। आनन्द ! यह छः विवादके मूल हैं। कौनसे छः ? आनन्द ! यहां भिक्षु (१) क्रोधी, पाखंडी (=उपनाही) होता है। जो भिक्षु आनन्द ! क्रोधी उपनाही होता है, वह शास्ता (=गुरु)में गौरव-रहित, आश्रय-रहित हो विहरता है, धर्ममें भी०, संघमें भी०, शिक्षा (=भिक्षु-नियम)में त्रुटि करनेवाला होता है। जो भिक्षु आनन्द ! शास्तामें० गौरव-रहित०, शिक्षामें त्रुटि करनेवाला होता है, वही संघमें विवाद पैदा करता है। वह विवाद बहुतजनोंके अहितके लिये० होता है। इसलिये आनन्द ! इस प्रकारके विवाद-मूलको यदि तुम अपनेमें या दूसरेमें देखना, तो आनन्द ! तुम उस पापी विवाद-मूलके विनाशके लिये प्रयत्न करना। ०यदि ०देखना, तो आनन्द ! तुम उस पापी विवाद-मूलको, भविष्यमें न होने देनेके लिये उपाय करना, इस प्रकार इस पापी विवाद-मूलकी भविष्यमें अनुत्पत्ति होगी। (२) और फिर आनन्द ! भिक्षु, मर्षी, पलासी होता है, जो भिक्षु आनन्द ! मर्षी०। (३) ईर्ष्यालु, मत्सरी०। (४) शठ, मायावी०। (५) ०पापेच्छु (=बद्-नीयत), मिथ्या-दृष्टि०। (६) दृष्टि-परामर्षी, आधान-ग्राही०। आनन्द ! यदि अपनेमें या दूसरेमें इस प्रकारके विवाद-मूलको देखना, वहां आनन्द ! तुम इस पापी विवाद-मूलके विनाशके लिये प्रयत्न करना, ०इस पापी विवाद-मूलकी भविष्यमें अनुत्पत्तिके लिये उपाय करना; इस प्रकार इस पापी (=दुष्ट) विवाद-मूलका प्रहाण (=विनाश) होता है; इस प्रकार ०इस पापी विवाद-मूलकी भविष्यमें अनुत्पत्ति होती है। आनन्द ! यह छः विवाद मूल हैं।

"आनन्द ! यह चार अधिकरण हैं । कौनसे चार ? [1](१) विवाद-अधिकरण, (२) अनुवाद-अधिकरण, (३) आपत्ति-अधिकरण, (४) कृत्य-अधिकरण ।

" आनन्द ! यह सात अधिकरण-शमथ हैं, जिन्हें तब तब (=समय २ पर) उत्पन्न हुये अधिकरणों ० (झगड़ों)के शमथ=उपशम (=शांति)के लिये देना चाहिये, (१) संमुख-विनय देना चाहिये, (२) स्मृति-विनय ०, (३) अ-मूढ़-विनय ० । (४) प्रतिज्ञात-करण, (५) [2]यद्भूयसिक, (६) तत्पापीयसिक, (७) तिणवत्थारक । "

" आनन्द ! संमुख विनय कैसे होता है ?···आनन्द ! भिक्षु विवाद करते हैं, धर्म है या अधर्म, विनय है या अविनय । आनन्द ! उन सभी भिक्षुओंको एक जगह एकत्रित होना चाहिये । एकत्रित हो धर्म (रूपी) रस्सीका (ज्ञानसे) परीक्षण करना चाहिये, जैसे वह शांत हो, वैसे उस अधिकरण (=झगड़े)को शांत करना चाहिये । इस प्रकार आनन्द ! संमुख-विनय होता है , इस प्रकार संमुख-विनयसे भी किन्हीं किन्हीं अधिकरणोंका शमन होता है ।

" आनन्द ! यद्भूयसिक कैसे होता है ? आनन्द ! यदि वह भिक्षु उस अधिकरणको उस आवास (=मठ)में शांत न कर सकें । तो आनन्द ! उन सभी भिक्षुओंको, जिस आवास में अधिक भिक्षु हैं, उसमें जाना चाहिये । वहां सबको एक जगह एकत्रित होना चाहिये । एकत्रित हो धर्म-नेत्री (=धर्म रूपी रस्सी)का समनुमार्जन (=परीक्षण) करना चाहिये । धर्म-नेत्रीका समनुमार्जनकर ० ।

---

१. चुल्लवग्ग. ४ (समथ खंधक) "···क्या है विवाद-अधिकरण ? ··भिक्षु विवाद करते हैं— धर्म है या अधर्म, विनय है या अविनय; तथागतका भाषित···है या अभाषित···, तथागतने ऐसा आचरण किया, या···नहीं; तथागतने प्रज्ञप्त किया, या ··नहीं; आपत्ति है या अनापत्ति (अ-दोष); लघु आपत्ति है या गुरु आपत्ति; स-अवशेष (=बाकी रखकर) आपत्ति है या अन्-अवशेष आपत्ति; दुट्ठुल्ल आपत्ति है, या अदुट्ठुल्ल आपत्ति । जो वहां भंडन=कलह=विग्रह=विवाद, नानावाद, अन्यथावादहै···यही विवादाधिकरण कहा जाता है । क्या है अनुवाद-अधिकरण ?···भिक्षु भिक्षुको शील-विपत्ति (=शीलसंबंधी दोष) से, या आचार-विपत्तिसे, या दृष्टि (=सिद्धांत)-विपत्तिसे या आजीव-विपत्तिसे, अनु-वाद (=दोषारोप) करते हैं ।···अनुवाद=अनु-वदना=अनुलपना···।··· क्या है आपत्ति-अधिकरण ? पांच आपत्ति-स्कंध (=दोष-समुदाय), या सात आपत्तिस्कंध आपत्ति-अधिकरण कहलाते हैं···। क्या है कृत्य-अधिकरण ? जो संघका कृत्यकरणीय (है, जैसे) (संघका) अवलोकन-कर्म, ज्ञप्ति (=संघको सूचना)-कर्म, ज्ञप्ति-द्वितीयकर्म, ज्ञप्ति-चतुर्थकर्म, यह कृत्याधिकरण कहा जाता है । २. चुल्लवग्ग ४—

" अनुज्ञा करता हूं भिक्षुओ ! इस प्रकारके अधिकरणका यद्भूयसिकसे उपशमन करना पांच अङ्गों (=गुणों)से युक्त भिक्षुको शलाका (=वोटकी शलाका जो टिकटकी जगह व्यवहार होती थी)-ग्रहापक (=शलाका बांटनेवाला) मानना चाहिये—(१) जो अपनी रुचिके रास्ते न जाये, (२) न द्वेषके रास्ते जाये, (३) न मोहके रास्ते जाय, (४) न भयके रास्ते जाय (५) न (पहिलेसे) पकड़े रास्ते जाय ।···। यद्भूयसिक क्या है ? (यह) जो बहुमतके अनुसार (=यद्भूयसिक) कर्मका करना,···(कर्मका) स्वीकार करना इस प्रकार झगड़ा शांत होजाय, फिर (वादी) उसका उत्कोटन (=अमान्य, विरोध) करे

"कैसे आनन्द ! स्मृति-विनय होता है ? यहां आनन्द ! भिक्षु भिक्षुपर पाराजिका या पाराजिका-समान (=[1]सामन्तक) आपत्ति (=दोष)का आरोप करते हैं-'स्मरण करो आवुस ! तुम पाराजिका या पाराजिका-समान, ऐसी बड़ी (=गुरुक) आपत्तिसे आपन्न हुये, वह ऐसा उत्तर देता है—आवुस ! मुझे याद (=स्मृति) नहीं कि मैं ०ऐसी गुरुक-आपत्तिसे आपन्न हूँ। उस भिक्षुको आनन्द ! स्मृति-विनय देना चाहिये । इस प्रकार आनन्द ! स्मृति-विनय होता है । इस स्मृति विनयसे भी किन्हीं किन्हीं झगड़ोंका निवटारा होता है ।

"आनन्द ! अमूढ़-विनय कैसे होता है ? यहाँ आनन्द ! भिक्षु भिक्षुपर० गुरुक-आपत्तिका आरोप करता है ! वह ऐसा उत्तर देता है—'आवुस ! मुझे स्मरण नहीं, कि मैं० आपत्तिसे आपन्न हूँ । तब वह छोड़ते हुयेको लपेटता है—'तो आयुष्मान् ! अच्छी तरह बूझो, क्या तुम स्मरण करते हो, कि तुम० ऐसी ऐसी गुरुक आपत्तिसे आपन्न हुये ?' वह ऐसा उत्तर देवे—'मैं आवुस ! पागल होगया था, मति-भ्रम (होगया था), उन्मत्तहो मैंने बहुतसा श्रमण-विरुद्ध आचरण किया, भाषण किया; मुझे वह स्मरण नहीं होता । मूढ़ (=बेहोश) हो, मैंने वह किया । उस भिक्षुको आनन्द ! अमूढ़-विनय देना चाहिये । इस अमूढ़-विनयसे भी किन्हीं किन्हीं झगड़ोंका निवटारा होता है ।

"आनन्द ! प्रतिज्ञात-करण कैसे होता है ?'''आनंद ! भिक्षु आरोप करनेपर या आरोप न करने पर भी आपत्ति (=दोष)को स्मरण करता है, खोलता है, स्पष्ट करता है ।

तो उसे उत्कोटन-प्रायश्चित (करना होगा); छन्द-दायक (=वोटर, मतदाता) यदि असंतोष प्रकट करे (=खीयति), तो खीयनक-प्रायश्चित ।'''। अनुज्ञा करता हूं, भिक्षुओ !'''तीन प्रकार के शलाका-ग्रहण (=Voting)को, (१) गूढ़क, (२) स-कर्ण-जल्पक, और (३) विवृतक । भिक्षुओ ! गूढ़ शलाका-ग्राह कैसे होता है ? । उस शलाका-ग्रहापक भिक्षुको शलाकायें रङ्गीन, बेरङ्गीन, बनाकर एक एक भिक्षुके पास जाकर यह कहना चाहिये—'यह ऐसे पक्षवाले की शलाका है, यह ऐसे पक्षकी ०, जिसे चाहो ले लो ।' (शलाकायें) ग्रहण कर लेनेपर, बोलना चाहिये—'किसीको मत दिखलाओ ।' यदि जाने कि अधर्म-वादी (=उल्टा लेनेवाले) अधिक हैं, तो दुर्ग्रह (=ठीकसे न ग्रहण) है' (सोच) लौटा लेना चाहिये; यदि जाने कि धर्म-वादी अधिक हैं, तो सुग्रह (=ठीकसे ग्रहण) है, बोलना चाहिये । इस प्रकार भिक्षुओ ! गूढ़क शलाका-ग्राह होता है । कैसे भिक्षुओ ! स-कर्ण-जल्पक, शलाका-ग्राह होता है ? शलाका-ग्रहापक भिक्षुको एक एक भिक्षुके कानके पास कहना चाहिये—'यह ऐसे पक्षकी शलाका है, यह ऐसे पक्षकी शलाका है, जिसे चाहो ले लो ।' ग्रहण करलेने पर बोलना चाहिये—'किसी को मत बतलाओ ।' यदि जाने कि अधर्मवादी (=उल्टालेनेवाले) अधिक हैं तो 'दुर्ग्रह है' (सोच, शलाका) लौटा लेनी चाहिये ० । भिक्षुओ ! विवृतक शलाका-ग्राह कैसे होता है ? यदि जाने धर्म-वादी बहुत हैं, तो विश्वास-पूर्वक विवृत (=खुली) (शलाका) ग्रहण करानी चाहिये ।

१. अ. क. "यहां पाराजिका-आपत्ति-स्कन्ध, संघादिशेष०, स्थूल-अत्यय ०, प्रतिदेशनीय ०, दुष्कृत ०, दुर्भाषित आपत्ति-स्कंध, इनमें पूर्व-पूर्ववालेके पीछे वाले''' सामन्त होते हैं ।"

उस भिक्षुको (अपनेसे) वृद्धतर भिक्षुके पास जाकर, चीवरको एक (बायें) कंधेपर करके, पाद-वंदनाकर, उकड़ूँ बैठ हाथ जोड़, ऐसा कहना चाहिये—भन्ते ! मैं इस नामकी आपत्तिसे आपन्न हुआ हूँ, उसकी मैं प्रतिदेशना (=निवेदन)करता हूँ'। वह (दूसरा भिक्षु) ऐसा कहे—'देखते हो (उस दोपको) ?, 'देखता हूँ'। 'आगेसे (इन्द्रिय-) रक्षा करना'। 'रक्षा करूँगा'। इस प्रकार आनन्द ! प्रतिज्ञात-करण (=स्वीकार=Confesson) होता है ।०।

" आनन्द ! तत्पापीयसिका (=तस्स पापीयसिका)कैसे होती है ? यहां आनन्द ! भिक्षु भिक्षुको०ऐसी गुरुक-आपत्ति आरोप करते हैं—'आयुष्मान् स्मरणकरो० तुम ऐसी गुरुक-आपत्ति आपन्न हुये ?' वह ऐसा उत्तर देता है—'आवुस ! मुझे स्मरण नहीं, कि मैं० ऐसी गुरुक-आपत्ति आपन्न हुआ।' उसको छोडते हुयेको वह लपेटता है—'आयुष्मान् अच्छी तरह बूझो-क्या तुम्हें स्मरणहै, कि तुम ०ऐसी गुरुक आपत्तिसे आपन्नहुये ?' वह ऐसा उत्तर देवे—'आवुस! मैं स्मरण नहीं करता कि मैं,०ऐसी गुरुक आपत्ति आपन्न हुआ। स्मरण करता हूँ आवुस! कि मैं इसप्रकारकी छोटी (=अल्पमात्रक)आपत्तिसे आपन्न हुआ।' खोलते हुये उसको वह फिर लपेटता है—'आयुष्मान् अच्छीतरह बूझो० ?' वह ऐसा उत्तर दे-'आवुस ! मैं इसप्रकार की (=अमुक)छोटी आपत्ति आपन्न हुआ, बिना पूछेही स्वीकार करता हूँ; तो क्या मैं ०ऐसी गुरुक आपत्ति आपन्नहो पूछनेपर न स्वीकार करूंगा ?' वह ऐसा कहता है—'आवुस ! तुम इस छोटी आपत्तिको भी बिनापूछे नहीं स्वीकार करते, तो क्या तुम ०ऐसी गुरुक-आपत्ति आपन्नहो पूछनेपर स्वीकार करोगे ? तो आयुष्मान्! अच्छीतरह बूझो०'। वह यदि बोले—'आवुस! स्मरण करता हूँ, मैं ०ऐसी गुरुक-आपत्ति आपन्न हुआ हूँ। दव(=सहसा)से, रव(=प्रमाद) से मैंने यह कहा—'मैं स्मरण नहीं करता, कि मैं ०ऐसी'। इस प्रकार आनन्द ! 'तस्सपापीयसिका' (=उसकी औरभी कड़ी आपत्ति)होती है। ऐसेभी यहां किन्हीं किन्हीं अधिकरणोंका निबटारा होता है।

"आनन्द ! 'तिण-वत्थारक' कैसे होता है। आनन्द ! यहां भंडन=कलह=विवादसे युक्तहो विहरते(समय),भिक्षु बहुतसे श्रमण-विरुद्ध आचरण, भाषण, किये होते हैं। उन सभी भिक्षुओंको एकराय हो एकत्रित होना चाहिये। एकत्रहो एक पक्षवालोंमेंसे चतुर भिक्षुको आसन से उठकर चीवरको एक कंधेपर कर हाथजोड़ संघको ज्ञापित करन चाहिये—

'भन्ते ! संघ सुने, भंडन=कलह=विवादसे युक्तहो विहरते (समय) हमने बहुतसे श्रमण-विरुद्ध आचारण··· किये हैं, यदि संघ उचित समझे, तो जो इन आयुष्मानोंका दोष है, और जो मेरा दोष है, इन आयुष्मानोंके लिये भी और अपने लियेभी, मैं तिणवत्थारक (=घाससे ढांकना जैसा)से बखान करूं, (लेकिन) स्थूल-वद्य (=बड़ा दोप),गृही-प्रतिसंयुक्त (=गृहस्थ-सबंधी)छोड़कर। तब (दूसरे) पक्षवालोंमेंसे चतुर भिक्षुको आसनसे उठकर०।०। इस प्रकार आनन्द ! तिणवत्थारक (=तृणसे ढांकने जैसा)होता है।

" आनन्द ! यह छः धर्म साराणीय प्रिय-करण, गुरु-करण हैं; संग्रह, अ-विवाद, सामग्री (=एकता)=एकीभावके लिये हैं। कौनसे छः ? (१) आनन्द ! भिक्षुका सब्रह्म-चारियोंमें, गुप्त भी प्रकट भी, मैत्रीभाव-युक्त कायिक कर्म हो; यह भी धर्म साराणीय०।

(२) और फिर आनन्द ! ०मैत्रीभाव-युक्त वाचिक कर्म० । (३)० मैत्रीभावयुक्त मानसकर्म० । (४) और फिर आनन्द ! जो कुछ भिक्षुको धार्मिक लाभ, धर्मसे लब्ध होते हैं, अन्तमें पात्र चुपड़ने मात्र भी ; वैसे लाभोंको विना बांटे उपभोग न करने वाला हो, शीलवान् स-ब्रह्मचारियोंके साथ सह-भोगी हो; यह भी धर्म०। (५) और फिर आनन्द ! जो वह शील (=आचार) कि अखंड=अ-छिद्र, अ-शवल=अ-कल्मप, सेवनीय, पंडितोंसे प्रशंसित, अ-निंदित, समाधि-सहायक हैं, वैसे शीलोंमें शील-श्रमण-भावयुक्त हो, गुप्त भी और प्रकट भी सब्रह्मचारियोंके साथ विहार करता हो; यह भी धर्म० । (६) और फिर आनन्द ! जो यह दृष्टि(=सिद्धान्त), आर्य है, नैर्याणिक=उसके (अनुसार) करनेवालेको दुःख-क्षयको लेजाती है, वैसी दृष्टिसे दृष्टि-श्रमण-भाव (=विचारोंके श्रमण-पन)से युक्त हो; गुप्तभी, और प्रकटभी सब्रह्मचारियोंके साथ विहार करता हो ; यह भी धर्म० । आनन्द ! यह छः धर्म साराणीय० हैं।

भगवान्‌ने यह कहा ; संतुष्ट हो आयुष्मान् आनन्दने भगवान्‌के भाषणका अभिनन्दन किया ।

(८)

संगीति-परियाय-सुत्त (वि. पृ. ४२८)।

[1]ऐसा मैंने सुना—एक समय पांच-सौ भिक्षुओंके महाभिक्षु-संघके साथ भगवान् मल्ल (देश)में चारिका करते, जहां [2]पावा नामक मल्लोंका नगर है, वहां पहुँचे। वहां पावामें भगवान् चुन्द कम्मार-पुत्रके आम्रवनमें विहार करते थे।

उस समय पावा-वासी मल्लोंका ऊँचा, नया, संस्थागार (=प्रजातंत्र-परिषद्-भवन) अभी ही बना था; (जहां अभी) किसी श्रमण या ब्राह्मण या किसी मनुष्य-ने वास नहीं किया था। पावा-वासी मल्लोंने सुना—'भगवान्० मल्लमें चारिका करते पावामें पहुँचे हैं, और पावामें चुंद कर्मार (=सोनार)-पुत्रके आम्रवनमें विहार करते हैं।' तब पावावासी मल्ल जहां भगवान् थे, वहां पहुँचे। पहुँचकर भगवान्को अभिवादनकर एक ओर बैठ गये। एक ओर बैठे पावावासी मल्लोंने भगवान्को कहा—

"भन्ते! यहां पावा-वासी मल्लोंका ऊँचा (=उब्भतक) नया संस्थागार, किसी भी श्रमण, या ब्राह्मण या किसी भी मनुष्यसे न बसा, अभी ही बना है। भन्ते! भगवान् उसको प्रथम परिभोग करें। भगवान्के पहिले परिभोग कर लेनेपर, पीछे पावा-वासी मल्ल परिभोग करेंगे, वह पावा-वासी मल्लोंके लिये दीर्घरात्र (=चिरकाल)तक हित सुखके लिये होगा।"

भगवान्ने मौन रह स्वीकार किया।

तब पावाके मल्ल भगवान्की स्वीकृति जानकर, आसनसे उठकर भगवान्को अभिवादन-कर प्रदक्षिणाकर, जहां संस्थागार था, वहां गये। जाकर संस्थागारमें सब ओर फर्श बिछा, आसनोंको स्थापितकर, पानीके मटके रख, तेलके दीपक आरोपित कर, जहां भगवान् थे, वहां गये; जाकर भगवान्को अभिवादनकर० एक ओर खड़े हो···बोले—

"भन्ते! संस्थागार सब ओर बिछा हुआ है, आसन स्थापित किये हुये हैं, पानीके मटके रक्खे हुये हैं, तेल-प्रदीप रक्खे हुये हैं। भन्ते! अब भगवान् जिसका काल समझें (वैसा करें)।"

तब भगवान् पहिनकर पात्र-चीवर ले भिक्षु-संघके साथ जहां संस्थागार था, वहां गये। जाकर पैर पखार, संस्थागारमें प्रवेश कर, पूर्वकी ओर मुँहकर, बीचके खम्भेके आश्रयसे बैठे। भिक्षु-संघ भी पैर पखार, संस्थागारमें प्रवेशकर पूर्वकी ओर मुँहकर, पच्छिमकी भीतके सहारे भगवान्को आगे कर बैठा। पावा-वासी मल्लभी पैर पखार, संस्थागारमें प्रवेशकर पच्छिम की ओर मुँहकर, पूर्वकी भीतके सहारे भगवान्को सामने करके बैठे। तब भगवान्ने पावा-वासी मल्लोंको बहुत राततक धार्मिक-कथासे संदर्शित=समादपित, समुत्तेजित, संप्रशंसित कर विसर्जित किया—

---

१. दी. नि. ३ : १०। २. पडरौनाके समीप पप-उर (=पावा-पुर) (जि. गोरखपुर)।

" वाशिष्टो ! रात तुम्हारी बीत गई, अब तुम जिसका काल समझो (वैसा करो । "

" अच्छा भन्ते ! "···पावा-वासी मल्ल आसनसे उठ भगवान्‌को अभिवादन कर, प्रदक्षिणा कर चले गये। "

तब मल्लोंके जानेके थोड़ीही देर बाद, भगवान्‌ने शांत (=तूष्णीभूत) भिक्षु-संघको देख, आयुष्मान् सारिपुत्रको आमंत्रित किया—

"सारिपुत्र ! भिक्षु-संघ स्त्यान-मृद्ध-रहित है, सारिपुत्र ! भिक्षुओंको धर्म-कथा कहो; मेरी पीठ [1]अगिया रही है । सो मैं लम्बा पड़ूँगा।"

आयुष्मान् सारिपुत्रने भगवान्‌को ' 'अच्छा भन्ते !" कह उत्तर दिया । तब भगवान्‌ने चौपेती संघाटी बिछवा, दाहिनी करवटके बल, पैरपर पैर रख, स्मृति-संप्रजन्यके साथ, उत्थान-संज्ञा मनमें कर, सिंह-शय्या लगाई । उस समय निगंठ नाट-पुत्त अभी अभी पावामें काल किये थे । उनके काल करनेसे निगंठ फूटकर दो भाग हो, भंडन = कलह = विवादमें पड़, एक दूसरेको मुख (रूपी) शक्तिसे चीरते हुये विहर रहे थे० । मानो[2] नाट-पुत्तिय निगंठोंमें एक युद्ध (=वध) ही चल रहा था । जो भी निगंठ नाटपुत्तके श्वेत वस्त्रधारी गृहस्थ श्रावक थे० ।

आयुष्मान् सारिपुत्रने भिक्षुओंको आमंत्रित किया—

"आवुसो ! निगंठ नाट-पुत्तने पावामें अभी अभी काल किया है । उनके काल करनेसे ०निगंठ फूटकर दो भागमें हो, भंडन = कलह = विवाद करते, एक दूसरेको मुख-शक्तिसे छेदते विहर रहे हैं—'तू इस धर्म-विनयको नहीं जानता०[2] । निगंठ नाटपुत्तके जो श्वेतवस्त्रधारी गृही श्रावक हैं, वह भी नाटपुत्तिय निगंठों में (वैसेही) निर्विण्ण = विरक्त = प्रति-वाण रूप हैं, जैसेकि वह (नाटपुत्तके) दुराख्यात, दुष्प्रवेदित, अ-नैर्याणिक, अन्-उपशम-संवर्तनिक, अ-सम्यक्-संबुद्ध-प्रवेदित, प्रतिष्ठा-रहित, आश्रय-रहित धर्म-विनयमें । किंतु आवुसो ! हमारे भगवान्‌का यह धर्म सु-आख्यात (=ठीकसे कहा गया) , सु-प्रवेदित (=ठीकसे साक्षात्कार कियागया), नैर्याणिक (=दुःखसे पार करने वाला), उपशम-संवर्तनिक (=शांति-प्रापक), सम्यक्-संबुद्ध-प्रवेदित (=बुद्धद्वारा जाना गया), है । तहाँ सबको ही अ-विरुद्ध वचन वाला होना चाहिये । विवाद नहीं करना चाहिये; जिससे कि यह ब्रह्मचर्य अध्वनिक =(चिर-स्थायी) हो, और वह बहुजन-सुखार्थ, लोकके अनुकम्पाके लिये, देव-मनुष्योंके अर्थ = हित = सुखके लिये हो । आवुसो ! कैसे हमारे भगवान्‌का धर्म० देव-मनुष्योंके अर्थ = हित = सुखके लिये होगा ? आवुसो ! उन भगवान् जाननहार, देखनहार, अर्हत्, सम्यक् संबुद्धने 'एक' धर्म ठीकसे बतलाया है । उसमें सबको ही अविरोध-वचनवाला होना चाहिये, विवाद न करना चाहिये; जिसमें कि यह ब्रह्मचर्य अध्वनिक = चिरस्थायी हो० । कौनसा एक धर्म ? सब प्राणी आहार पर स्थित (=निर्भर) हैं । आवुसो ! उन भगवान्‌ने० यह एक धर्म यथार्थ बतलाया । इसमें सबको ही० ।

---

१. अ. क. "क्यों अगियाती थी ? भगवान्‌के छः वर्षतक महा तपस्या करते वक्त शरीरको बड़ा दुःख हुआ । तब पीछे बुढ़ापेमें उन्हें पीठमें वात(-रोग) उत्पन्न हुआ ।" २. पृष्ठ ४८१ ।

"आवुसो! उन भगवान्०ने 'दो' धर्म यथार्थ कहे हैं। ०। कौनसे दो? नाम और रूप। अविद्या और भव (=आवागमनकी)-तृष्णा। भव(=नित्यता-)दृष्टि और विभव(=उच्छेद-)दृष्टि। अह्रीकता(=लज्जारहितता), और अन्-अवत्राप्य (=भयरहितता)। ह्री(=लज्जा) और अवत्रपा (=भय)। दुर्वचनता और पाप(=दुष्टकी)-मित्रता। सुवचनता और कल्याण(=सु)मित्रता। आपत्ति(=दोष)-कुशलता (=चतुराई), और आपत्ति-व्युत्थान(=उठना)-कुशलता। समापत्ति(=ध्यान) कुशलता, और समापत्ति-व्युत्थान-कुशलता। [1]धातु-कुशलता, और [2]मनसिकार-कुशलता। [3]आयतन-कुशलता, और [4]प्रतीत्य-समुत्पाद-कुशलता। स्थान (=कारण)-कुशलता, और अ-स्थान-कुशलता। आर्जव (=सीधापन)और मार्दव(=कोमलता)। क्षांति (=क्षमा)और सौरत्य(=आचार-युक्तता)। साखिल्य (=मधुर वचनता)और प्रति-संस्तार (=वस्तु या धर्मका छिद्र-पिधान)। अविहिंसा (=अहिंसा)और शौचेय(=मैत्रीभावना)। मुषित-स्मृतिता(=स्मृति-लोप) और अ-संप्रजन्य (=अविद्या)। स्मृति और संप्रजन्य (=ज्ञान, विद्या)। इन्द्रिय-अगुप्त-द्वारता (=अ-जितें-द्रियता), और भोजनमें-अ-मात्रज्ञता (भोजनमें अपने लिये मात्रा न जानना)। इन्द्रिय-गुप्त-द्वारता और भोजन-मात्रज्ञता। प्रतिसंख्यान (=अकंपन-ज्ञान)-बल और भावना-बल। स्मृति-बल और समाधि-बल। शमथ (=समाधि)और विपश्यना (=प्रज्ञा)। शमथ-निमित्त और विपश्यता-निमित्त। प्रग्रह (=चित्त-निग्रह) और अ-विक्षेप। शील-विपत्ति (=आचार-दोष), और दृष्टि-विपत्ति (=सिद्धांत-दोष)। शील-सम्पदा (=आचारकी संपूर्णता) और दृष्टि-संपदा। शील-विशुद्धि (=कायिक वाचिक अदुराचार), और दृष्टि-विशुद्धि (सत्यके अनुसार ज्ञान)। दृष्टि-विशुद्धि कहते हैं सम्यक्‌दृष्टिके निरंतर अभ्यास (=प्रधान)को। संवेग कहते हैं संवेजनीय (=उद्वेगकरनेवाले) स्थानोंमें संविग्न (-चित्तता)का कारण-पूर्वक निरंतर अभ्यास। कुशल (=उत्तम)धर्मोंमें अ-संतुष्टिता, और प्रधान (=निरंतर अभ्यास)में अ-प्रतिवानिता (=निरालसता)। विद्या (=तीन विद्याओं) से विमुक्ति (=आस्रवोंसे चित्तकी विमुक्ति), और निर्वाण,। आवुसो! उन भगवान्०ने इन दो (=जोड़े) धर्मोंको ठीकसे कहा है०।

"आवुसो! उन भगवान्०ने यह तीन धर्म यथार्थ ही कहे हैं ०।"
कौन से तीन? तीन अकुशल-मूल (=बुराइयोंकी जड़) हैं। कौन से तीन ०? लोभ अकुशल-मूल द्वेष अकुशल-मूल, मोह अकुशल-मूल।
तीन कुशल-मूल हैं—अलोभ ०, अ-द्वेष ० और अ-मोह-अकुशलमूल।
तीन दुश्चरित हैं—काय-दुश्चरित, वचन-दुश्चरित और मन-दुश्चरित।
तीन सुचरित हैं—काय-सुचरित, वचन-सुचरित, और मन-सुचरित।
तीन अकुशल (=बुरे) वितर्क—काम-वितर्क, व्यापाद (=द्रोह) ० विहिंसा ०।

---

१. अ. क. 'धातु अठारह हैं' चक्षु, श्रोत्र, घ्राण, जिह्वा, काय, मन, रूप, शब्द, गंध, रस, स्प्रष्टव्य, धर्म, चक्षुर्विज्ञान, श्रोत्र-विज्ञान, घ्राण-विज्ञान, जिह्वाविज्ञान, कायविज्ञान, मनो-विज्ञान।" २. 'उन धातुओंको प्रज्ञासे जाननेकी निपुणता।' ३. आयतन बारह हैं, चक्षु, श्रोत्र, घ्राण, जिह्वा, काय, मन, रूप, शब्द, गंध रस, स्प्रष्टव्य, धर्म।' ४. देखो पृष्ठ १२८।

तीन कुशल (=अच्छे)-वितर्क—नेक्खम्म (=निष्कामता)०, अ-व्यापाद०, अ-विहिंसा० ।
तीन अकुशल-संकल्प (=वितर्क)—काम ०, व्यापाद ०, विहिंसा ० ।
तीन कुशल संकल्प—नेक्खम्म ०, अव्यापाद ० अविहिंसा ० ।
तीन अकुशल संज्ञायें—काम ०, व्यापाद ०, विहिंसा ० ।
तीन कुशल संज्ञायें—नेक्खम्म ०, अव्यापाद० अ-विहिंसा ० ।
तीन अकुशल धातु (=तर्क-वितर्क)—काम०, व्यापाद०, विहिंसा० ।
तीन कुशल धातु—निष्कामता ०, अव्यापाद ०, अ-विहिंसा ० ।
दूसरे भी तीन धातु (=लोक)—कामधातु, रूप-धातु अ-रूप धातु ।
दूसरे भी तीन धातु (=चित्त)—हीन-धातु, मध्यम-धातु, प्रणीत-धातु ।
तीन तृष्णायें—काम ०, भव (=आवागमन)०, विभव ० ।
दूसरी भी तीन तृष्णायें—काम०, रूप०, अ-रूप ० ।
दूसरी भी तीन तृष्णायें—रूप०, अरूप०, निरोध ० ।
तीन संयोजन (=बंधन)—सत्काय-दृष्टि, विचिकित्सा (=संदेह), शीलव्रत-परामर्श ।
तीन आस्रव (=चित्तमल)—काम०, भव०, अविद्या ० ।
तीन भव (=आवागमन)—काम (-धातुमें) ०, रूप ०, अरूप ० ।
तीन एषणायें (=राग)—काम०, भव०, ब्रह्मचर्य ० ।
तीन विध (=प्रकार)—मैं सर्वोत्तम हूँ, मैं समान हूँ, मैं हीन हूँ ।
तीन अध्व (=काल)—अतीत (=भूत) ०, अनागत (=भविष्य) ०, प्रत्युत्पन्न (=वर्तमान) ० ।
तीन अन्त—सत्काय ०, सत्काय-समुदय (=उत्पत्ति) ०, सत्काय-निरोध ० ।
तीन वेदनायें (=अनुभव)—सुखा०, दुःखा०, अदुःख-असुखा ० ।
तीन दुःखता—दुःख-दुखता, संस्कार०, विपरिणाम ० ।
तीन राशियां—मिथ्यात्त्व-नियत ०, सम्यक्त्व-नियत, अ-नियत ० ।
तीन कांक्षायें—अतीतकालको लेकर कांक्षा=विचिकित्सा करता है, नहीं छूटता, नहीं प्रसन्न होता है । अनागत कालकोलेकर० । अब प्रत्युत्पन्न कालको ० ।
तीन तथागतके अरक्षणीय—आवुसो ! तथागतका कायिक आचरण परिशुद्ध है, तथागतको काय-दुश्चरित नहीं है । जिसकी कि तथागत आरक्षा (=गोपन) करें—'मत दूसरा कोई इसे जानले' । आवुसो ! तथागतका वाचिक आचार परिशुद्ध है ० । ० तथागतका मानसिक आचार परिशुद्ध है ० ।
तीन किंचन (=प्रतिबंध)—राग ०, द्वेष ०, मोह ० ।
तीन अग्नियां—राग ०, द्वेष ०, मोह ० ।
और भी तीन अग्नियां—आहवनीय ०, गार्हपत्य ०, दक्षिण ० ।
तीन प्रकारसे रूपोंका संग्रह—सनिदर्शन (=स्व-विज्ञान-सहितदर्शन) अ-प्रतिघ (=अ-पीडाकर) रूप ; अ-निदर्शन सप्रतिघ ० ; अ-निदर्शन अप्रतिघ ० ।
तीन संसकार—पुण्य-अभिसंस्कार, अ-पुण्य- अभिसंस्कार, आनिञ्ज्य (=आनेञ्ज) अभिसंस्कार ।

तीन पुद्गल (=पुरुष)—शैक्ष्य (=अमुक्त)०, अ-शैक्ष्य (=मुक्त)०, न-शैक्ष्य-न-अ-शैक्ष्य० ।
तीन स्थविर (=वृद्ध)—जाति (=जन्मसे)०, धर्म ०,सम्मति-स्थविर ।
तीन पुण्य-क्रियावस्तु—दानमय-पुण्यक्रियावस्तु, शीलमय ०, भावनामय ० ।
तीन दोषारोप(=चोदना)-वस्तु—देखे (दोष)से, सुने (दोष)से, शंका किये (दोष)से ।
तीन काम (=भोगोंकी)-उपपत्ति (=उत्पत्ति, प्राप्ति)—आवुसो ! कुछ प्राणी मौजूदा कामउपपत्तिवाले हैं; वह मौजूद कामोंके वशवर्ती होते हैं, जैसेकि मनुष्य, कुछ देवता, और कुछ विनिपातिक (=अधमयोनिवाले); यह प्रथम काम-उपपत्ति है । आवुसो ! कुछ प्राणी निर्मितकाम हैं, वह (स्वयं अपनेलिये) निर्माणकर कामोंके वशवर्ती होते हैं; जैसे कि निर्माण-रति-देव लोग; यह दूसरी काम-उपपत्ति है । आवुसो ! कुछ प्राणी पर-निर्मित-काम हैं, वह दूसरोंके निर्मितकामोंके वश-वर्ती होते हैं; जैसेकि पर-निर्मित-वशवर्ती देवलोग । यह तीसरी काम-उपपत्ति है ।
तीन सुख-उपपत्तियें—आवुसो ! कुछ प्राणी सुख उत्पन्न कर सुख-पूर्वक विहरते हैं; जैसेकि ब्रह्म-कायिक देव लोग । यह प्रथम सुख-उपपत्ति है । आवुसो ! कुछप्राणी सुखसे अभिषण्ण =परिषण्ण=परिपूर्ण=परिस्फुट हैं । वह कभी कभी उदान (=चित्तोल्लाससे निकला वाक्य) कहते हैं—'अहो सुख !' अहो सुख !!' जैसेकि आभास्वर देव० । आवुसो ! कुछ प्राणी सुखसे० परिपूर्ण०, हैं, वह उत्तम (सुखमें) संतुष्ट हो चित्त-सुखको अनुभव करते हैं, जैसे शुभ-कृत्स्न देव लोग । यह तीसरी सुख-उपपत्ति है ।
तीन प्रज्ञायें—शैक्ष्य (=अमुक्त-पुरुषकी)-प्रज्ञा, अ-शैक्ष्य०, नशैक्ष्य-न-अशैक्ष्य-प्रज्ञा ।
और भी तीन प्रज्ञायें—चिन्ता-मयी प्रज्ञा, श्रुतमयी०, भावनामयी० ।
तीन आयुध—श्रुत (=पढा)०, प्रविवेक (=विवेक)०; प्रज्ञाविवेक० ।
तीन इन्द्रियाँ—अन्-आज्ञातं-आज्ञास्यामि (=नजानेको जानूंगा)-इन्द्रिय, आज्ञा०, आज्ञा-तावी (=अर्हत्-ज्ञान)० ।
तीन चक्षु (=नेत्र)—मांसचक्षु, दिव्यचक्षु, प्रज्ञाचक्षु ।
तीन शिक्षायें—अधिशील(=शीलविषयक)-शिक्षा, अधि-चित्त (=चित्तविषयक)०, अधि-प्रज्ञ (=प्रज्ञाविषयक)० ।
तीन भावनायें—काय-भावना, चित्त-भावना, प्रज्ञा-भावना ।
तीन अनुत्तरीय (=उत्तम, श्रेष्ठ)—दर्शन(=विपश्यना, साक्षात्कार)-अनुत्तरीय, प्रतिपद् (=मार्ग)०, विमुक्ति (=अर्हत्त्व, निर्वाण) अनुत्तरीय ।
तीन समाधि—स-वितर्क-सविचार-समाधि, अवितर्क-विचार-मात्र-समाधि, अवितर्क-अविचार-समाधि ।
और भी तीन समाधि—शून्यता-समाधि, अ-निमित्त०, अ-प्रणिहित-समाधि ।
तीन शौचेय (=पवित्रता)—काय०, वाक्०, मन-शौचेय ।
तीन मौनेय (=मौन)—काय०, वाक्०, मन-मौनेय ।
तीन कौशल्य—आय०, अपाय (=विनाश)०, उपाय-कौशल्य ।
तीन मद—आरोग्य-मद, यौवन-मद, जाति-मद ।

तीन आधिपत्य (स्वामित्व)—आत्माधिपत्य, लोक०, धर्म० ।

तीन कथावस्तु (=कथा विषय)—अतीत कालको ले कथा कहे, 'अतीतकाल ऐसा था'। अनागत कालको ले कथा कहे—'अनागतकाल ऐसा होगा'। अथवा प्रत्युत्पन्नकाल-कोले कथा कहे—'इस समय प्रत्युत्पन्न काल ऐसा है'।

तीन विद्या—पूर्व-निवास-अनुस्मृतिज्ञान-विद्या (=पूर्वजन्म-स्मरण), प्राणियोंके च्युति (=मृत्यु)-उत्पाद (=जन्म)का ज्ञान०, आस्रवोंके क्षयका ज्ञान० ।

तीन विहार—दिव्य-विहार, ब्रह्म-विहार, आर्य-विहार ।

तीन प्रातिहार्य (=चमत्कार)-ऋद्धि०, आदेशना०, अनुशासनी-प्रातिहार्य। यह आवुसो ! उन भगवान्० ।

"आवुसो ! उन भगवान्० ने (यह) चार धर्म यथार्थ कहे हैं० । कौनसे चार ?

चार[1] स्मृति-प्रस्थान—आवुसो ! भिक्षु कायामें० कायानुपश्यी विहरता है। वेदनाओंमें०। लोकमें० । धर्ममें० धर्मानुपश्यी० ।

चार सम्यक् प्रधान—भिक्षु अनुत्पन्न पापक (=बुरे) = अकुशल धर्मोंकी अनुत्पत्तिके लिये रुचि उत्पन्न करता है, परिश्रम करता है, प्रयत्न करता है, चित्तको निग्रह = प्रधारण करता है । (२) उत्पन्न पापक= अकुशल धर्मोंके विनाशके लिये० । अनुत्पन्न कुशल धर्मोंकी उत्पत्तिके लिये० । उत्पन्न कुशल धर्मोंकी स्थिति, अ-विनाश, वृद्धि विपुलता, भावनासे पूर्ति करनेके लिये० ।

चार ऋद्धिपाद—आवुसो ! भिक्षु (१) छन्द(=रुचिसे उत्पन्न)-समाधि (के)-प्रधान संस्कार से युक्त ऋद्धिपादकी भावना करता है। (२) चित्त-समाधि-प्रधान-संस्कारसे० । (३) वीर्य(=प्रयत्न)-समाधि-प्रधान-संस्कार० । (४) विमर्श-समाधि प्रधान-संस्कार० ।

चार ध्यान—आवुसो ! भिक्षु (१) [2]प्रथमध्यानको प्राप्तहो विहरता है। (२)० द्वितीय-ध्यान० । (३) ०तृतीय-ध्यान० । (४) चतुर्थ-ध्यान० ।

चार समाधि-भावना—(१) आवुसो ! (ऐसी) समाधि-भावना है, जो भावित होनेपर वृद्धि-प्राप्त होनेपर, इसी जन्ममें सुख-विहारके लिये होती है। (२) आवुसो ! (ऐसी) समाधि-भावना है, जो भावित होनेपर, वृद्धि-प्राप्त होनेपर, ज्ञान-दर्शन (=साक्षात्कार)के लाभके लिये होती है। (३) आवुसो ! ०स्मृति, सम्प्रजन्यके लिये होती है। (४) ०आस्रवोंके क्षयके लिये होती है। आवुसो ! कौनसी समाधि-भावना है, जो भावित होनेपर, बहुली-कृत (=वृद्धि-प्राप्त) होनेपर इसी जन्ममें सुख-विहारके लिये होती है ? आवुसो ! भिक्षु ०प्रथम ध्यान०, ०द्वितीय ध्यान०, ०तृतीय ध्यान०, ०चतुर्थ ध्यानको प्राप्त हो विहरता है। आवुसो ! यह समाधि-भावना भावित होनेपर० । आवुसो ! कौनसी ०जो भावित होनेपर० ज्ञान-दर्शनके लाभके लिये होती है ? आवुसो ! भिक्षु आलोक (=प्रकाश)-संज्ञा (=ज्ञान) मनमें करता है, दिन-संज्ञाका अधिष्ठान (=दृढ़-विचार) करता है—'जैसे दिन वैसी

---

१. देखो सतिपट्ठान सुत्त पृष्ठ ११८। २. पृष्ठ २७१-२७२ ।

रात, जैसी रात वैसा दिन'। इस प्रकार खुले, बन्धन-रहित, मनसे प्रभा-सहित चित्तकी भावना करता है। आवुसो! यह समाधि-भावना भावित होनेपर०। आवुस! कौनसी ०जो ०स्मृति, संप्रजन्यके लिये होती है? आवुसो! भिक्षुको विदित (=ज्ञानमें आई) वेदना (=अनुभव) उत्पन्न होती हैं, विदित (ही) ठहरती हैं, विदित (ही) अस्तको प्राप्त होती हैं। विदित संज्ञा उत्पन्न होती है, ०ठहरती०, ०अस्त होती है। विदित वितर्क उत्पन्न०, ठहरते०, ०अस्त होते हैं। आवुसो! यह समाधि-भावना० स्मृति-संप्रजन्यके लिये होती है। आवुसो! कौनसी है ०जो आस्रव-क्षयके लिये होती है? आवुसो! भिक्षु पांच उपादान-स्कंधोंमें उदय (=उत्पत्ति)-व्यय (=विनाश)-अनुपश्यी (=देखनेवाला) हो विहरता है—'ऐसा रूप है, ऐसा रूपका समुदय (=उत्पत्ति), ऐसा रूपका अस्तंगमन (=अस्त होना); ऐसी वेदना है०, ऐसी संज्ञा०, ०संस्कार०, ०विज्ञान०। यह आवुसो०।

चार अप्रामाण्य (=अ-सीम)—यहां आवुसो! भिक्षु (१) मैत्री-युक्त चित्तसे०[1] विहरता है०। (२) करुणा-युक्त०। (३) ०मुदिता-युक्त०। (४) ०उपेक्षा-युक्त०।

चार आरूप्य (=रूप-रहित-ता)—आवुसो! (१) रूप-संज्ञाओंके सर्वथा अतिक्रमणसे, प्रतिघ (=प्रतिहिंसा) संज्ञाके अस्त होनेसे, नानात्व(=नानापन)-संज्ञाके मनमें न करनेसे, 'आकाश अनन्त है' इस आकाश-आनन्त्य (=आकाशकी अनन्तता)-आयतन (=स्थान)को प्राप्त हो विहार करता है। आकाशानन्त्यायतनको सर्वथा अतिक्रमण करनेसे 'विज्ञान अनन्त है' इस, विज्ञान-आनन्त्य-आयतनको प्राप्त हो, विहार करता है। विज्ञानानन्त्यायतनको सर्वथा अतिक्रमण करनेसे, 'कुछ नहीं (=नत्थि किंचि)' इस आकिंचन्य-आयतनको प्राप्त हो, विहार करता है। आकिंचन्यायतनके सर्वथा अतिक्रमण करनेसे, नैवसंज्ञा(=न होश ही है)-न-असंज्ञा-आयतनको प्राप्त हो विहार करता है।

चार अपाश्रयण (=अवलंबन)—आवुसो! भिक्षु (१) संख्यान(=जान)कर किसीको सेवन करता है। (२) संख्यानकर किसी (=एक)को स्वीकार करता है। (३) संख्यानकर किसीको परिवर्जन (=अस्वीकार) करता है। (४) संख्यानकर किसीको हटाता है (=विनोदेति)।

चार आर्य-वंश—आवुसो! भिक्षु (१) जैसे तैसे चीवरसे सन्तुष्ट होता है। जैसे तैसे चीवरसे संतुष्ट होनेका प्रशंसक होता है। चीवरके लिये अनुचित अन्वेषण नहीं करता। चीवरको न पाकर दुःखित नहीं होता, चीवरको पाकर अ-लोभी, अलिप्त (=अमूर्छित) अनासक्त, दुष्परिणाम-दर्शी=निःसरण प्रज्ञावाला हो, परिभोग (=उपभोग) करता है। (अपने) उस जिस तिस चीवरके सन्तोषसे, अपनेको बड़ा नहीं मानता, दूसरेको नीच नहीं समझता। जो कि वह दक्ष, निरालस, संप्रज्ञान (=जाननेवाला) प्रतिस्मृत (=याद रखनेवाला), होता है। यह कहा जाता है, आवुसो!

---

१. पृष्ठ २०८।

भिक्षु पुराने अग्रण्य (=सर्वोत्तम) आर्य-वंशमें स्थित है । (२) और फिर आवुसो ! भिक्षु जैसे तैसे पिंडपात (=भिक्षा)से सन्तुष्ट होता है० । (३) ०जैसे तैसे शयनासन (=निवास)से० । (४) और फिर आवुसो ! प्रहाण (=त्याग)में रमण करनेवाला, प्रहाण-रत होता है । भावनाराम=भावनारत होता है । उस प्रहाणा-रामतासे प्रहाण-रतिसे, भावना-रामतासे भावना-रतिसे न अपनेको बड़ा मानता है, न दूसरेको नीच मानता है० ।

चार प्रधान (अभ्यास, योग)—संवर (=संयम)-प्रधान, प्रहाण०, भावना०, अनुरक्षण-प्रधान । आवुसो ! संवर-प्रधान कौन है ? आवुसो ! भिक्षु चक्षु(=आँख)से रूप देख निमित्त (=रंग आकार आदि)-ग्राही नहीं होता, अनुव्यंजन-ग्राही नहीं होता । जिसमें कि चक्षु-इन्द्रिय-अधिकरणको अ-संवृत (अ-रक्षित) रख विहरते समय अभिध्या (=लोभ), दौर्मनस्य पापक, अ-कुशल-धर्म उसे मलिन न करें, इसके लिये संवर (संयम, रक्षा)के लिये यत्न करता है । चक्षु-इन्द्रियकी रक्षा करता है । चक्षु-इन्द्रियमें संयम-शील होता है । श्रोत्रसे शब्द सुनकर० । घ्राणसे गंध सूँघकर० । जिह्वासे रस चखकर० । काय (=त्वक्)से स्पर्श छूकर० । मनसे धर्मको जानकर० । यह कहा जाता है, आवुसो ! संवर-प्रधान । क्या है, आवुसो ! प्रहाण-प्रधान ? आवुसो ! भिक्षु उत्पन्न काम-वितर्कको नहीं पसन्द करता, अस्वीकार (=प्रहाण) करता है, हटाता है, अन्त करता है, नाशको पहुंचाता है । उत्पन्न व्यापाद (=द्रोह)-वितर्कको० । उत्पन्न विहिंसा-वितर्कको० । तब तब उत्पन्न हुये, पापक अकुशल धर्मोंको० । आवुसो ! यह प्रहाण-प्रधान कहा जाता है । क्या है आवुसो ! भावना-प्रधान ? आवुसो ! भिक्षु विवेक-निश्रित (=आश्रित), विराग निःश्रित निरोध-निश्रित व्यवसर्ग(=त्याग)-परिणामवाले [1]स्मृति-संबोध्यंगकी भावना करता है । धर्मविचय-संबोध्यंगकी भावना करता है । ०वीर्य-संबोध्यंग० । ०प्रीति सं० । ०प्रश्रब्धि-संबोध्यंग० । ०समाधि संबोध्यंग० । ०उपेक्षा संबो० । यह कहा जाता है, आवुसो ! भावना-प्रधान । क्या है, आवुसो ! अनुरक्षण-प्रधान ? आवुसो ! भिक्षु उत्पन्न हुये अस्थिक-संज्ञा, पुलवक-संज्ञा, विनीलक-संज्ञा, विच्छिद्रकसंज्ञा, उद्धूमातक संज्ञा(रूपी)उत्तम(=भद्रक) समाधि-निमित्तोंकी रक्षा करता है । यह आवुसो ! अनुरक्षणा-प्रधान है ।

चार ज्ञान—धर्म-विषयक-ज्ञान, अन्वय-ज्ञान, परिच्छेद-ज्ञान, संमति-ज्ञान ।

और भी चार ज्ञान—दुःख-ज्ञान, दुःख समुदय-ज्ञान, दुःख-निरोध-ज्ञान, दुःख-निरोध-गामिनी प्रतिपद् का ज्ञान ।

चार स्रोतआपत्तिके अंग—सत्पुरुष-सेवन, सद्धर्म-श्रवण, योनिशःमनसिकार (=कारण-पूर्वक विचार) । धर्मानुधर्म-प्रतिपत्ति ।

चार स्रोत-आपन्नके अंग—आवुसो ! आर्य-श्रावक (१) बुद्धमें अत्यंत प्रसाद

(=श्रद्धा)से प्रसन्न होता है—वह भगवान् अर्हत्[1]० । (२) धर्ममें अत्यंत प्रसादसे प्रसन्न होता है० । (३) संघमें० । (४) अ-खंड-अछिद्र, अ-शवल =अ-कल्मष, योग्य=विज्ञ-प्रशंसित अपरामृष्ट (=अनिंदित), समाधि-गामी आर्य कमनीय (=कांत) शीलोंसे युक्त होता है ।

चार श्रामण्य (=भिक्षुपनके) फल—स्रोतआपत्ति-फल, सकृदागामि-फल, अनागामि-फल, अर्हत्त्व-फल ।

चार धातु (=महाभूत)—पृथिवी-धातु, आप-धातु, तेज-धातु, वायु-धातु ।

चार आहार—(१) औदारिक (=स्थूल) या सूक्ष्म कवलीकार आहार । (२) स्पर्श··· । (३) मन-संचेतना··· । (४) विज्ञान··· ।

चार विज्ञान (=चेतन, जीव)-स्थितियाँ—(१) आवुसो ! रूप प्राप्त कर ठहरते, रूपमें रमण करते, रूपमें प्रतिष्ठित हो, विज्ञान स्थित होता है, नन्दी (=तृष्णा)के सेवनसे वृद्धि=विरूढ़ताको प्राप्त होता है । (२) वेदना प्राप्तकर० । (३) संज्ञा प्राप्तकर० । (४) संस्कार प्राप्तकर० ।

चार अगति-गमन—छन्द (=स्वैर)-गति जाता है, द्वेष-गति०, मोह-गति०, भय-गति० ।

चार तृष्णा-उत्पाद (=उत्पत्ति)—(१) आवुसो ! भिक्षुको चीवरके लिये तृष्णा उत्पन्न होती है । (२) ०पिंडपातके लिये० । (३) ०शयनासन(=निवास)० । (४) अमुक जन्म-अजन्म (=भवाभव)के लिये० ।

चार प्रतिपद् (=मार्ग)—(१) दुःखवाली प्रतिपद् और देरसे ज्ञान । (२) दुःखवाली प्रतिपद् और क्षिप्र (=जल्दी) ज्ञान । (३) सुखवाली (=सहल) प्रतिपद् और देरसे ज्ञान । (४) सुखवाली प्रतिपद् और जल्दी ज्ञान ।

और भी चार प्रतिपद्—अ-क्षमा-प्रतिपद् । क्षमाप्रतिपद् । दमकी प्रतिपद् । शमकी प्रतिपद् ।

चार धर्मपद—अन्-अभिध्या-धर्मपद । अ-व्यापाद० । सम्यक्-स्मृति० । सम्यक् समाधि० ।

चार धर्म-समादान—(१) आवुसो ! वैसा धर्म-समादान (=स्वीकार), जो वर्तमानमें भी दुःख-मय, भविष्यमें भी दुःख-विपाकमय (२)० वर्तमानमें दुःखमय, भविष्यमें सुख-विपाकी । (३)० वर्तमानमें सुख-मय, भविष्यमें दुःख-विपाकी । (४)० वर्तमानमें सुख-मय, और भविष्यमें सुख-विपाकी ।

चार धर्म-स्कन्ध—शील-स्कन्ध (=आचार-समूह) समाधि-स्कन्ध । प्रज्ञा-स्कन्ध । विमुक्ति-स्कन्ध ।

चार बल—वीर्य-बल । स्मृतिबल । समाधि-बल । प्रज्ञाबल ।

चार अधिष्ठान (=संकल्प)—प्रज्ञा० । सत्य० । त्याग० । उपशम० ।

चार प्रश्न-व्याकरण (=सवालका जवाब)—एकांश-(=है यानहीं एकमें)-व्याकरण करने

[1] पृष्ठ २९३ ।

लायक प्रश्न । प्रतिपृच्छा (=सवालके रूपमें) व्याकरणीय प्रश्न । विभज्य (=एक अंश हाँ भी, दूसरा अंश नहीं भी करके) व्याकरणीय-प्रश्न । स्थापनीय (=न उत्तर देने लायक) प्रश्न।

चार कर्म—आवुसो ! कृष्ण (=काला, बुरा) कर्म और कृष्ण-विपाक (=बुरे परिणाम वाला) । (२) ०शुक्लकर्म शुक्ल-विपाक । (३) शुक्ल-कृष्ण-कर्म, शुक्ल-कृष्ण-विपाक । (४) ०अकृष्ण-अ-शुक्लकर्म, अकृष्ण-अशुक्ल-विपाक ।

चार साक्षात्करणीय धर्म—(१) पूर्व-निवास (=पूर्व-जन्म), स्मृतिसे साक्षात्करणीय। (२) प्राणियोंका जन्म-मरण (=च्युति-उत्पाद), चक्षुसे साक्षात्करणीय। (३) आठ विमोक्ष, कायासे० । (४) आस्रवोंका क्षय, प्रज्ञासे० ।

चार ओघ(=बाढ़)—काम-ओघ । भव(=जन्म)० । दृष्टि(=मतवाद) ० । अविद्या० ।

चार योग(=मिलना)—काम-योग । भव० । दृष्टि० । अविद्या० ।

चार विसंयोग(=वियोग)—काम-योग-विसंयोग । भवयोग० । दृष्टियोग० । अविद्यायोग० ।

चारगन्ध—अभिध्या (=लोभ)काय-गंध । व्यापाद(=द्रोह) कायगंध- ।
शील-व्रत-परामर्श० । 'यही सच है' पक्षपात० ।

चार उपादान—काम-उपादान । दृष्टि० । शील-व्रत-परामर्श० । आत्म-वाद० ।

चार योनि—अंडजयोनि । जरायुज योनि । संस्वेदज० । औपपातिक(=अयोनिज)० ।

चार गर्भ-अवक्रान्ति(=गर्भधारण)—(१) आवुसो ! कोई कोई (प्राणी) ज्ञान(=होश) विना माताकी कोखमें आता है, ज्ञान-विना मातृ-कुक्षिमें ठहरता है, ज्ञानविना मातृ-कुक्षिसे निकलता है; यह पहिली गर्भावक्रान्ति है । (२) और फिर आवुसो ! कोई कोई ज्ञान-सहित मातृ-कुक्षिमें आता है, ज्ञान-विना० ठहरता है, ज्ञान-विना० निकलता है० । (३) ०ज्ञान-सहित०आता है, ज्ञान-सहित० ठहरता है, ज्ञान-विना० निकलता है० । (४)० ज्ञान-सहित० आता है, ज्ञान-सहित०ठहरता है, ज्ञान-सहित० निकलता है० ।

चार आत्म-भाव-प्रतिलाभ(=शरीर-धारण)—(१) आवुसो ! (वह) आत्म-भाव-प्रतिलाभ, जिस आत्म-भाव-प्रतिलाभमें आत्म-संचेतना (अपनेको जानना)ही पाता(=क्रमति), है पर-संचेतना नहीं पाता (२) ०पर ही संचेतनाको पाता है, आत्म-संचेतनाको नहीं । (३) ०आत्म-संचेतनाभी०, पर-संचेतनाभी० (४) ० । न आत्म-संचेतना०, न पर-संचेतना० ।

चार दक्षिणा-विशुद्धि(=दानशुद्धि)—(१) आवुसो ! दक्षिणा(=दान) दायकसे शुद्ध किन्तु प्रतिग्राहकसे नहीं (२)०प्रतिग्राहकसे शुद्ध०, किन्तु दायकसे नहीं । (३) ०न दायकसे०, न प्रतिग्राहकसे० । (४) ०दायकसे भी०, प्रतिग्राहकसे भी० ।

चार[1] संग्रह-वस्तु—दान, वैयावर्त्य (=सेवा), अर्थ-चर्या, समानार्थता ।

---

१. देखो हत्थक-सुत्त पृष्ठ २९९ ।

चार अनार्य-व्यवहार—मृषावाद (=झूठ), पिशुन-वचन (=चुगली), संप्रलाप (=बकवाद), परुष-वचन ।

चार आर्य-व्यवहार—मृषा-वाद-विरतता, पिशुन-वचन-विरतता, संप्रलाप-विरतता, परुष-वचन-विरतता ।

चार अनार्य-व्यवहार—अदृष्टमें दृष्ट-वादी बनना, अ-श्रुतमें श्रुत-वादिता, अ-स्मृतमें स्मृतवादिता, अ-विज्ञातमें विज्ञात-वादिता ।

और भी चार अनार्य-व्यवहार—दृष्टमें अदृष्ट-वादिता, श्रुतमें अश्रुत-वादिता । स्मृतमें अस्मृत-वादिता, विज्ञातमें अ-विज्ञात-वादिता ।

और भी चार आर्य-व्यवहार—दृष्टमें दृष्टवादिता, श्रुतमें श्रुत-वादिता, स्मृतमें स्मृत-वादिता, विज्ञातमें विज्ञात-वादिता ।

चार पुद्गल (=पुरुष)—(१) आवुसो ! कोई कोई पुद्गल आत्मं-तप, अपनेको संताप देनेमें लगा होता है । (२) कोई कोई पुद्गल परन्तप, पर (=दूसरे)को संताप देनेमें लगा होता है । (३) ०आत्मं-तप० भी० होता है, परन्तप, भी० । (४)० न आत्मं-तप०, न परन्तप० ; वह अनात्मंतप अपरंतप हो इसी जन्ममें शोकरहित, सुखित, शीतल-भूत, सुखानुभवी ब्रह्मभूत आत्माके साथ विहार करता है ।

और भी चार पुद्गल—(१) आवुसो ! कोई कोई पुद्गल आत्म-हितमें लगा होता है, परहितमें नहीं । (२)० परहितमें लगा होता है, आत्महितमें नहीं । (३)० न आत्म-हितमें लगा होता है, न परहितमें । (४)० आत्महितमें भी लगा होता है, पर-हितमें भी० ।

और भी चार पुद्गल—(१) तम तम-परायण । (२) तम ज्योति-परायण । (३) ज्योति तम-परायण (४) ज्योति ज्योति-परायण ।

और भी चार पुद्गल—(१) श्रमण अचल । (२) श्रमण पद्म (=रक्त कमल) । (३) श्रमण-पुंडरीक (=श्वेतकमल) । (४) श्रमणोंमें श्रमण-सुकुमार ।

यह आवुसो ! उन भगवान्० ।

"आवुसो ! उन भगवान्० ने पांच धर्म यथार्थ कहे हैं० । कौनसे पांच ?—

पांच स्कंध—रूप०, वेदना०, संज्ञा०, संस्कार०, विज्ञान-स्कन्ध ।

पाँच उपादान स्कन्ध—रूप-उपदान स्कन्ध, वेदना०, संज्ञा०, संस्कार०, विज्ञान-उपादान स्कंध ।

पांच काम-गुण—(१) चक्षुसे विज्ञेय इष्ट=कान्त=मनाप, प्रिय-रूप, काम-सहित=रंजनीय (=चित्तको रंजन करनेवाले) रूप । (२) श्रोत-विज्ञेय ० शब्द । (३) घ्राण-विज्ञेय०गन्ध । (४) जिह्वा-विज्ञेय ० रस । (५) काम-विज्ञेय ० स्पर्श ।

पांच गति—निरय (=नर्क), तिर्यक् (=पशु पक्षी आदि) योनि, प्रेत्य-विषय (=भूत प्रेत आदि) । मनुष्य । देव ।

पांच मात्सर्य (=हसद)=आवासमात्सर्य, कुल ०, लाभ ०, वर्ण ०, धर्म ० ।

पांच नीवरण—कामच्छन्द (=काम-राग) ०, व्यापाद ०, स्त्यान-मृद्ध ० । औद्धत्य-कौकृत्य ०, विचिकित्सा ० ।

पांच अवर [१]भागीय संयोजन—सत्काय-दृष्टि, विचिकित्सा, शील-व्रत-परामर्श, कामच्छन्द, व्यापाद ।

पांच ऊर्ध्व-भागीय संयोजन—रूप-राग, अरूप-राग, मान, औद्धत्य, अविद्या ।

पांच [२]शिक्षापद—प्राणातिपात (=प्राण-बध)·विरति, अदत्तादान-विरति, काम-मिथ्याचार-विरति, मृषावाद-विरति, सुरा-मेरय-मद्य-प्रमादस्थान-विरति ।

पांच अभव्य (=अयोग्य) स्थान—(१) आवुसो ! क्षीणास्रव (=अर्हत्) भिक्षु जानकर प्राण-हिंसा करनेके अयोग्य हैं । (२) अदत्तादान (=चोरी)=स्तेय करनेके अयोग्य हैं । (३) ० मैथुन-धर्म सेवन करनेके अयोग्य है । (४) ० जानकर मृषा-वाद (=झूठ बोलने)के० । (५) ० सन्निधि-कारक हो (=जमाकर) कामोंको भोगकरनेके ० । जैसे कि पहिले गृहस्थ होते वक्त था ।

पांच व्यसन—ज्ञातिव्यसन, भोग०, रोग०, शील०, दृष्टि० । आवुसो ! प्राणी ज्ञातिव्यसनके कारण या भोगव्यसनके कारण, या रोगव्यसनके कारण, काया छोड़ मरनेके बाद अपाय···दुर्गति··· विनिपात, निरय (=नर्क)को प्राप्त होते हैं । आवुसो ! शील-व्यसनके कारण या दृष्टिव्यसनके कारण प्राणी० ।

पांच सम्पद्(=योग)—ज्ञाति-सम्पद्, भोग०, आरोग्य०, शील०, दृष्टि० । आवुसो ! प्राणी ज्ञाति-सम्पद्के कारण०, भोग-सम्पद्०, आरोग्य-सम्पद्के कारण काया छोड़ मरनेके बाद सुगति····स्वर्गलोकमें नहीं उत्पन्न होते । आवुसो ! शीलसंपद्के कारण या दृष्टिसंपद्के कारण प्राणी० ।

पांच आदिनव(=दुष्परिणाम) हैं, दुःशील (पुरुष)को शील-विपत्ति (=आचार-दोष)के कारण —(१) आवुसो ! शील-विपन्न=दुःशील(=दुराचारी)प्रमादसे बड़ी भोग हानिको प्राप्त होता है, शील-विपन्न दुःशीलके लिये यह प्रथम दुष्परिणाम है । (२) और फिर आवुसो ! शील-विपन्न,=दुःशीलके लिये बुरे निन्दा-वाक्य उत्पन्न होते हैं, यह दूसरा दुष्परिणाम है । (३) और फिर आवुसो ! शील-विपन्न=दुःशील, चाहे क्षत्रिय-परिषद्, चाहे ब्राह्मण-परिषद्, चाहे गृहपति-परिषद्, चाहे श्रमण-परिषद्, चाहे जिस परिषद् (=सभा)में जाता है, अ-विशारद होकर, मूक होकर, जाता है । यह तीसरा० । (४) और फिर आवुसो ! शील-विपन्न=दुःशील, संमूढ़ (=मोहप्राप्त) होकर काल करता है, यह चौथा० । (५) और फिर आवुसो ! शील-विपन्न काया छोड़ मरनेके बाद, अपाय=दुर्गति=विनिपात, निरय (=नर्क)में उत्पन्न होता है, यह पांचवां० ।

पांच गुण (=आनृशंस्य) हैं, शीलवान्के शील-सम्पदासे—[१] आवुसो ! शील-सम्पन्न शीलवान्

अप्रमादके कारण, बड़ी भोग-राशिको प्राप्त होता है; शीलवान्‌की शील-संपदासे यह प्रथम गुण है । [२] ०सुन्दर कीर्ति शब्द उत्पन्न होते हैं० । [३] ०जिस जिस परिषद्‌में जाता है, विशारद होकर, अ-मूक होकर, जाता है० । [४] ०अ-संमूढ हो काल करता है० । [५] ०काया छोड़ मरनेके बाद सुगति=स्वर्गलोकमें उत्पन्न होता है० ।

पांच धर्मोंको अपनेमें स्थापितकर आवुसो! ···आरोपी [=दूसरेपर दोषारोप करने वाले] भिक्षुको दूसरे पर आरोप करना चाहिये—[१] कालसे कहूँगा, अकालसे नहीं । [२] भूत [=यथार्थ]से कहूँगा, अभूतसे नहीं । (३) मधुरसे कहूँगा, कटुसे नहीं । [४] अर्थ-संहित [=स-प्रयोजन]से कहूँगा, अनर्थ-संहितसे नहीं । [५] मैत्री-भावसे कहूँगा, द्रोह-चित्तसे हनीं ।···।

पांच प्रधानीयां [=प्रधानके] अंग—[१] यहां अवुसो! भिक्षु श्रद्धालु होता है, तथागतकी बोधि (=परमज्ञान) पर श्रद्धा रखता है—ऐसे वह भगवान् अर्हत्, सम्यक् संबुद्ध० । आबाधा (=राग)-रहित (रोग-) आतंक-रहित होता है । न बहुत शीतल, न बहुत उष्ण, सम-विपाकवाली, प्रधान (=योगाभ्यास)के योग्य ग्रहणी (=पाचनशक्ति)से युक्त होता है । (३) शास्ताके पास, या विज्ञोंके पास, या स-ब्रह्मचारियोंके पास अपनेको यथाभूत (=जैसा है वैसा) प्रकट कर, अशठ=अ-मायावी होता है । (४) अकुशल धर्मोंके विनाशके लिये, कुशल धर्मोंकी प्राप्तिके लिये, आरब्ध-वीर्य (यत्न-शील) हो विहरता है; कुशल धर्मोंमें स्थाम-वान्=दृढ पराक्रम=धुरा (कंधेसे) न फेंकनेवाला (होता है) । (५) निर्वेधिक (=अन्तस्तल तक पहुंचने वाली), सम्यक् दुःख-क्षयकी ओर ले जानेवाली, उदय-अस्त-गामिनी, आर्य प्रज्ञासे संयुक्त, प्रज्ञावान् होता है ।

छःसंचेतना-काय—रूप-संचेतना, शब्द०, गन्ध०, रस०, स्प्रष्टव्य०, धर्म० ।

छःतृष्णा-काय—रूप-तृष्णा, शब्द०, गन्ध०, रस०, स्प्रष्टव्य०, धर्म-तृष्णा ।

छःअ-गौरव—(१) यहां आवुसो! भिक्षु शास्तामें अ-गौरव (=सत्कार-रहित), अ-प्रतिश्रय (=आश्रय-रहित)हो विहरता है । (२) धर्ममें अगौरव० । (३) संघमें अगौरव० । (४) शिक्षामें अगौरव० । (५)अप्रमादमें अ-गौरव० । (६) स्वागत(=प्रति-संस्तार)में अ-गौरव० ।······

पांच शुद्धावास (=देवलोक विशेष)—अविह, अतप्प (=अतप्प), सुदस्स (=सुदर्श), सुदस्सी (=सुदर्शी), अकनिट्ठ ।

पांच अनागामी—अन्तरापरिनिर्वायी, उपहत्य-परिनिर्वायी, असंस्कार०, स-संस्कार०, ऊर्ध्व-स्रोत-अकनिष्ट-गामी ।

पांच चेतोखिल(=चित्तके कीले)—(१) आवुसो! भिक्षु शास्ता (=धर्माचार्य)में कांक्षा =विचिकित्सा (संदेह) करता है, (=संदेह)-मुक्त नहीं होता, प्रसन्न नहीं होता ।

उसका चित्त उद्योगके लिये, अनुयोगके लिये, सातत्य(=निरन्तर लगन)के लिये प्रधानके लिये नहीं झुकता; जो यह इसका चित्त० नहीं झुकता; यह प्रथम चेतो-खिल (चित्त-कील) है। (२) और फिर आवुसो! भिक्षु धर्ममें कांक्षा=विचिकित्सा करता है०। (३) ०संघमें कांक्षा=विचिकित्सा करता है०। (५) सब्रह्मचारियोंमें रुष्ट-चित्त, असन्तुष्ट-मन, कील समान, कुपित होता है; जो यह आवुसो! भिक्षु सब्रह्मचारियोंमें ०कुपित होता है; (इसलिये) उसका चित्त ०प्रधानके लिये नहीं झुकता, यह पांचवां चेतो-खिल है।

पांच चित्त-विनिबन्ध—(१) आवुसो! भिक्षु कामों (=कामवासनाओं)में अवीत-राग अ-वीत-छन्द अविगत-प्रेम अविगत-पिपासा, अविगत-परिदाह अवि-गत-तृष्णा (=तृष्णा-रहित नहीं) होता; उसका चित्त ०प्रधानके लिये नहीं झुकता। जो इसका चित्त० नहीं झुकता, यह प्रथम चित्त-विनिबन्ध है। (२) और आवुसो! कायामें ०अविगत-तृष्णा होता ०। (३) रूपमें अ-वीत-राग० होता है०। (४) और फिर आवुसो! भिक्षु यथेच्छ पेटभर खाकर, शय्या-सुख, स्पर्श-सुख, मृद्ध (=आलस्य) सुख लेते विहरता है०। (५) और फिर आवुसो! भिक्षु किसी एक देव-निकाय (=देव-लोक)की इच्छासे ब्रह्मचर्य-पालन करता है—'इस शील, व्रत, तप, ब्रह्मचर्यसे मैं (अमुक) देव···होऊंगा'। जो आवुसो! यह भिक्षु किसी एक देव-निकायकी इच्छासे ब्रह्मचर्य-पालन करता है०; उसका चित्त ०प्रधानके लिये नहीं झुकता;०: यह पांचवां चित्त-विनिबंध है।

पांच इन्द्रिय—चक्षु-इन्द्रिय, श्रोत्र०, घ्राण०, जिह्वा०, काया (=त्वक्)०।

और भी पांच इन्द्रिय—सुख-इन्द्रिय, दुःख०, सौमनस्य०, दौर्मनस्य०, उपेक्षा०।

और भी पांच इन्द्रिय—श्रद्धा-इन्द्रिय, वीर्य०, स्मृति०, समाधि, प्रज्ञा०।

पांच निःसरणीय-धातु—(१) आवुसो! भिक्षुको काममें मन करते, काममें चित्त नहीं दौड़ता, प्रसन्न नहीं होता, स्थित नहीं होता, विमुक्त नहीं होता। किन्तु, नैष्काम्यको मनमें करते चित्त दौड़ता, प्रसन्न होता, स्थित होता, विमुक्त होता है। उसका वह चित्त सुगत, सुभावित, सु-उत्थित, सु-विमुक्त, कामोंसे वियुक्त होता है; और कामोंके कारण जो आस्रव, विघात, परिदाह (=जलन) उत्पन्न होते हैं, उनसे वह मुक्त है; उस वेदनाको वह नहीं झेलता; यह कामोंका निःसरण कहा गया है। (२) और फिर आवुसो! भिक्षुको व्यापाद (=द्रोह) मनमें करते व्यापादमें चित्त नहीं दौड़ता०; किन्तु अव्यापाद (=अद्रोह)को मनमें करते०; यह व्यापादका निस्सरण कहा गया है। (३) ०भिक्षुको विहिंसा (=हिंसा) मनमें करते०; किन्तु, अ-विहिंसाको मनमें करते०; यह विहिंसा-निस्सरण कहा गया है। (४) ०रूपोंको मनमें करते०; किन्तु, अ-रूपको मनमें करते०; यह रूपोंका निस्सरण कहा गया है। (५) और फिर आवुसो! भिक्षुको सत्काय मनमें करते०; किन्तु, सत्काय-निरोधको मनमें करते०; यह सत्कायका निस्सरण कहा गया है।

पांच विमुक्ति-आयतन—(१) आवुसो ! भिक्षुको शास्ता (=गुरु) या दूसरा कोई पूज्य (=गुरु-स्थानीय) स-ब्रह्मचारी धर्म उपदेश करता है ; जैसे जैसे आवुसो ! भिक्षुको शास्ता या दूसरा कोई गुरु-स्थानीय स-ब्रह्मचारी धर्म उपदेश करता है, वैसे वैसे वह उस धर्ममें, अर्थ समझता है, धर्म समझता है ; अर्थ-संवेदी (=मतलब समझनेवाला), धर्म-प्रतिसंवेदी हो, उसको प्रमोद (=प्रामोद्य) होता है ; प्रमुदित (पुरुष)को प्रीति पैदा होती है ; प्रीति-मान्‌को काया प्रश्रब्ध (=स्थिर) होती है ; प्रश्रब्ध-काय (पुरुष) सुखको अनुभव करता है ; सुखीका चित्त एकाग्र होता है ; यह प्रथम विमुक्त्यायतन है । (२) और फिर आवुसो ! भिक्षुको न शास्ता धर्म उपदेश करता है, न दूसरा कोई गुरु-स्थानीय सब्रह्मचारी ; बल्कि यथा-श्रुत (=सुनेके अनुसार), यथा-पर्याप्त (=धर्म-शास्त्रके अनुसार) (जैसे जैसे) दूसरोंको धर्म-उपदेश करता है० । (३)० बल्कि यथाश्रुत, यथा-पर्याप्त धर्मको विस्तारसे स्वाध्याय करता है० । (४)० बल्कि यथाश्रुत यथा-पर्याप्त धर्मको चित्तसे अनु-वितर्क करता है, अनुविचार करता है, मनसे सोचता है० । (५) ०बल्कि उसको कोई एक समाधि-निमित्त, सुगृहीत=सुमनसीकृत=सु-प्रधारित (=अच्छी तरह समझा), (और) प्रज्ञासे सु-प्रतिविद्ध (=तहतक जाना) होता है ; जैसे जैसे आवुसो ! भिक्षुको कोई एक समाधि-निमित्त० ।

पांच विमुक्ति-परिपाचनीयसंज्ञा—अनित्य-संज्ञा, अनित्यमें दुःख-संज्ञा, दुःखमें अनात्म-संज्ञा, प्रहाण-संज्ञा, विराग-संज्ञा ।

यह आवुसो ! उन भगवान्०ने० ।

"आवुसो ! उन भगवान्०ने छःधर्म यथार्थ कहे हैं० । कौनसे छः ?

छःअध्यात्म(=शरीर में)-आयतन—चक्षु-आयतन, श्रोत्र०, घ्राण०, जिह्वा०, काय०, मन-आयतन ।

छःबाह्य-आयतन—रूप-आयतन, शब्द०, गन्ध०, रस०, स्प्रष्टव्य(=स्पर्श)०, धर्म-आयतन ।

छःविज्ञान-काय (=समुदाय)—चक्षु-विज्ञान, श्रोत्र०, घ्राण०, जिह्वा०, काय०, मनो-विज्ञान ।

छःस्पर्श-काय—चक्षु-संस्पर्श, श्रोत्र०, घ्राण०, जिह्वा०, काय०, मनःसंस्पर्श ।

छःवेदना-काय—चक्षु-संस्पर्शज वेदना, श्रोत्र-संस्पर्शज०, घ्राणसंस्पर्शज०, जिह्वा-संस्पर्शज०, काय-संस्पर्शज, मनःसंस्पर्शज-वेदना ।

छःसंज्ञा-काय—रूप-संज्ञा, शब्द०, गन्ध०, रस०, स्प्रष्टव्य० धर्म०, ।

छः गौरव—(१) ० शास्तामें सगौरव, स-प्रतिश्रय, हो विहरता है; (२) धर्ममें ०, (३) संघ में ०, (४) शिक्षामें ०, (५) अप्रमादमें ०, (६) प्रतिसंस्तारमें ० ।

छः सौमनस्य-उप-विचार—(१) चक्षुसे रूप देखकर सौमनस्य(=प्रसन्नता)-स्थानीय रूपोंका उपविचार (=विचार) करता है । (२) श्रोत्रसे शब्द सुनकर ० । (३) घ्राणसे गन्ध

संवर० ० । (४) जिह्वासे रस चखकर ० । (५) कायासे स्प्रष्टव्य छू कर ० । (६) मन से धर्म जानकर ० ।

छः दौर्मनस्य उप-विचार—(१) चक्षुसे रूप देखकर दौर्मनस्य (=अप्रसन्नता)-स्थानीय रूपों का उपविचार करता है । (२) श्रोत्रसे शब्द ० । (३) घ्राणसे गन्ध ० । (४) जिह्वा से रस ० । (५) कायासे स्प्रष्टव्य छूकर ० । (६) मनसे धर्म० ।

छः उपेक्षा-उपविचार—(१) चक्षुसे रूपको देखकर उपेक्षा-स्थानीय रूपोंका उपविचार करता है । (२) श्रोत्रसे शब्द ० । (३) घ्राणसे गन्ध ० । (४) जिह्वासे रस ० । (५) काया से स्प्रष्टव्या ० । (६) मनसे धर्म ० ।

छः साराणीय धर्म—(१) यहां आवुसो ! भिक्षुको सब्रह्मचारियोंमें गुप्त या प्रकट मैत्रीभाव युक्त कायिक कर्म उपस्थित होता है; यह भी धर्म साराणीय=प्रियकरण=गुरुकरण है; संग्रह; अ-विवाद, एकताकेलिये है । (२) और फिर आवुसो ! भिक्षुको ० मैत्री-भाव-युक्त वाचिक-कर्म उपस्थित होता है ० । (३) ० मैत्रीभाव-युक्त मानस-कर्म ० । (४) भिक्षुके जो धार्मिक धर्म-लब्ध लाभ हैं—अन्ततः पात्रमें चुपड़ने मात्रभी ; उस प्रकारके लाभोंको बांटकर भोगनेवाला होता है; शीलवान् स-ब्रह्म-चारियों सहित भोगनेवाला होता है; यह भी ० । (५) ० जो अखंड=अ-छिद्र, अ-शबल=अ-कल्मष, उचित (=भुजिस्स), विज्ञ-प्रशंसित, अ-परामृष्ट (=अनिंदित), समाधि-गामी शील हैं; वैसे शीलोंमें स-ब्रह्मचारियोंके साथ गुप्त और प्रकट शील-श्रामण्यको प्राप्त हो विहरता है, यह भी ० । (६) ० जो यह आर्य नैर्याणिक दृष्टि है; (जो कि) वैसा करनेवालेको अच्छी प्रकार दुःख-क्षयकी ओर ले जाती है, वैसी दृष्टिसे स-ब्रह्मचारियोंके साथ गुप्त और प्रकट दृष्टि-श्रामण्यको प्राप्त हो विहरता है; यह भी ० ।

छःविवाद-मूल—(१) यहां आवुसो ! भिक्षु क्रोधी, उपनाही (=पाखंडी)होता है, जो वह आवुसो ! भिक्षु क्रोधी उपनाही होता है, वह शास्तामें भी अगौरव=अप्रतिश्रय हो विहरता है, धर्ममें भी०, संघमेंभी०, शिक्षा(=भिक्षु-नियम)को भी पूरा करनेवाला नहीं होता है । आवुसो ! जो वह भिक्षु शास्तामें भी अगौरव०होता है, वह संघमें विवाद उत्पन्न करताहै; जो विवाद कि बहुत लोगोंके अहितके लिये=बहुजन-असुखके लिये, देव-मनुष्योंके अनर्थ, अहित, दुःखके लिये होता है । आवुसो ! यदि तुम इस प्रकारके विवाद-मूलको अपनेमें या बाहर देखना, (तो) वहां आवुसो ! तुम उस दुष्ट विवाद-मूलके नाशके लिये प्रयत्न करना । यदि आवुसो ! तुम इस प्रकारके विवाद-मूलको अपनेमें या बाहर न देखना, तो तुम उस दुष्ट विवाद-मूलके भविष्यमें न उत्पन्न होने देनेके लिये उपाय करना । इसप्रकार इस दुष्ट(=पापक)विवाद-मूलका प्रहाण होता है, इसप्रकार इस दुष्ट विवाद-मूलकी भविष्यमें उत्पत्ति नहीं होती । (२) और फिर आवुसो ! भिक्षु मर्षी पलासी (=पर्यासी), होता है (३) ईर्ष्यालु,

मत्सरी होता है० । [४] शठ, मायावी होता है० । [५] पापेच्छु, मिथ्यादृष्टि होता है० । [६] संदृष्टि-परामर्शी, आधान-ग्राही, दुःप्रति-निस्सर्गी होता है० ।

छः धातु—पृथिवी-धातु, आप०, तेज०, वायु०, आकाश०, विज्ञान० ।

छः निस्सरणीय-धातु—(१) आवुसो ! भिक्षु ऐसा बोले—'मैंने मैत्री चित्त-विमुक्तिको, भावित, बहुलीकृत (=बढ़ाई), यानीकृत, वस्तु-कृत, अनुष्ठित, परिचित, सुसमारब्ध किया; किन्तु व्यापाद (=द्रोह) मेरे चित्तको पकड़कर ठहरा हुआ है' उसको ऐसा कहना] चाहिये—आयुष्मान् ऐसा मत कहें, भगवान्‌की निन्दा (=अभ्याख्यान) मत करें, भगवान्‌का अभ्याख्यान करना अच्छा नहीं है । भगवान् ऐसा नहीं कहते । आवुसो ! यह मुमकिन नहीं, इसका अवकाश नहीं; कि मैत्री चित्त-विमुक्ति० सुसमारब्ध की गई हो; और तो भी व्यापाद उसके चित्तको पकड़कर ठहरा रहे । यह संभव नहीं । आवुसो ! मैत्री चित्त-विमुक्ति व्यापादका निस्सरण है । (२) यदि आवुसो ! भिक्षु ऐसा बोले—'मैंने करुणा चित्त-विमुक्तिको भावित० किया, तोभी विहिंसा मेरे चित्तको पकड़ कर ठहरी हुई है' ।०। (३) आवुसो ! यदि भिक्षु ऐसा बोले—'मैंने मुदिता चित्त-विमुक्तिको भावित० किया; तोभी अ-रति (=चित्त न लगना) मेरे चित्तको पकड़कर ठहरी हुई है' ।०। (४)० उपेक्षा चित्त-विमुक्तिको भावित० किया; तोभी राग मेरे चित्तको पकड़े हुये है;० । (५) अनिमित्ता चित्त-विमुक्तिको भावित० किया; तोभी यह निमित्तानुसारी विज्ञान मुझे होता है' ।०। (६)० 'अस्मि (=मैं हूँ); मेरा चलागया, 'यह मैं हूँ' नहीं देखता; तोभी विचिकित्सा (=संदेह) वाद-विवाद-रूपी शल्य चित्तको पकड़ेही हुये है० ।'

छः अनुत्तरीय—दर्शन०, श्रवण०, लाभ०, शिक्षा०, परिचर्या०, अनुस्मृति० ।

छःअनुस्मृति-स्थान—बुद्ध-अनुस्मृति, धर्म०, संघ०, शील०, त्याग०, देवता-अनुस्मृति ।

छःशाश्वत-विहार—[१] आवुसो ! भिक्षु चक्षुसे रूपकोदेखकर न सुमन होता है, न दुर्मन होता है । स्मरण करते, जानते उपेक्षकहो विहार करता है । [२] श्रोत्रसे शब्द सुनकर० । (३) घ्राणसे गंध सूँघकर० (४) जिह्वासे रस चखकर० । (५) कायासे स्प्रष्टव्य छूकर० । (६) मनसे धर्मको जानकर० ।

छः अभिजाति (=जाति, जन्म)—(१) यहां आवुसो ! कोई कोई कृष्ण-अभिजातिक (=नीचकुलमें पैदा) हो, कृष्ण (=काले=बुरे) धर्म करता है । (२) ०कृष्णाभिजातिक हो शुक्ल-धर्म करता है । (३) ०कृष्णाभिजातिक हो अ-कृष्ण-अशुक्ल निर्वाणको पैदा करता है । (४) ०शुक्लाभिजातिक (=ऊँचे कुलमें उत्पन्न) हो शुक्ल-धर्म (=पुण्य) करता है । (५) शुक्ल-अभिजातिक हो, कृष्ण-धर्म (=पाप) करता है । (६) ०शुक्लाभिजातिक हो अकृष्ण-अशुक्ल निर्वाणको पैदा करता ।

छः निर्वेध-भागीय संज्ञा—(१) अनित्य संज्ञा । (२) अनित्यमें दुःखःसंज्ञा । (३) दुःखमें अनात्म-संज्ञा । (४) प्रहाण-संज्ञा । (५) विराग-संज्ञा । (६) निरोध-संज्ञा । आवुसो ! उन भगवान्‌ने यह० ।

प्रथम उत्पन्न ब्रह्मकायिक देव० । (३) एक-काया नाना-संज्ञावाले, जैसेकि आभास्वर देवता० । (४)० एक-काया एक-संज्ञावाले, जैसे कि शुभकृत्स्न देवता० । (५) आवुसो ! कोई कोई सत्त्व रूपसंज्ञाको सर्वथा अतिक्रमणकर, प्रतिघ (=प्रतिहिंसा) संज्ञाके अस्तहोने से, नाना संज्ञाके मनमें न करनेसे 'आकाश अनन्त है' इस आकाश-आनंत्य-आयतनको प्राप्त हैं, यह पांचवीं विज्ञानस्थिति है । (६)० आकाशानन्त्यायतनको सर्वथा अतिक्रमण कर, 'विज्ञान अनन्त है' इस विज्ञान-आनंत्य-आयतनको प्राप्त हैं, यह छठीं विज्ञान-स्थिति है, (७)० विज्ञानानन्त्यायतनको सर्वथा अतिक्रमणकर 'कुछ नहीं,' इस आकिंचन्य-आयतनको प्राप्त हैं । यह सातवीं विज्ञान-स्थिति है ।

सात दक्षिणेय (=दान-पात्र) पुद्गल हैं—उभयतोभाग-विमुक्त, प्रज्ञा-विमुक्त, काय-साक्षी, दृष्टिप्राप्त, श्रद्धाविमुक्त, धर्मानुसारी, श्रद्धानुसारी ।

सात अनुशय—काम-राग अनुशय, प्रतिघ०, दृष्टि०, विचिकित्सा०, मान०, भवराग०, अविद्या० ।

सात संयोजन—अनुनय-संयोजन, प्रतिघ०, दृष्टि०, विचिकित्सा०, मान०, भवराग०, अविद्या० ।

सात,—[1]अधिकरण-शमथ, तब तब उत्पन्न हुये अधिकरणों (=झगड़ों)के शमनके लिये—(१) संमुख-विनय देना चाहिये (२) स्मृतिविनय०, (३) अमूढ़-विनय०, (४) प्रतिज्ञात करण । (५) यद्भूयसिक, (६) तत्पापीयसिक, (७) तिणवित्थारक ।

यह आवुसो ! उन भगवान्० ने० ।

"आवुसो ! उन भगवान्० ने आठ धर्म यथार्थ कहे हैं० ।

आठ मिथ्यात्व (=झूठ)—मिथ्यादृष्टि, मिथ्यासंकल्प, मिथ्यावाक्, मिथ्या-कर्मान्त, मिथ्याव्यायाम, मिथ्यास्मृति, मिथ्यासमाधि ।

आठ सम्यक्त्व (=सच)—सम्यक्-दृष्टि, सम्यक्-वाक् सम्यक् कर्मान्त, सम्यक्-आजीव, सम्यक्-व्यायाम, सम्यक्-स्मृति, सम्यक्-समाधि ।

आठ दक्षिणेय पुद्गल—स्रोत आपन्न, स्रोतआपत्ति-फल साक्षात्कार करनेमें तत्पर, सकृदागामी, सकृदागामी-फल-साक्षात्कार-तत्पर, अनागामी, अनागामि-फल-साक्षात्कार-तत्पर, अर्हत्, अर्हत्फल-साक्षात्का-तत्पर ।

आठ कुसीत (=आलस्य) वस्तु—यहां आवुसो ! भिक्षुको (जब) कर्म करना होता है, उसके (मनमें) ऐसा होता है—कर्म मुझे करना है, किन्तु कर्म करते हुये मेरा शरीर तकलीफ पायेगा, क्यों न मैं लेट (=चुप) रहूं । वह लेटता है, अप्राप्तकी प्राप्तिके लिये=अनधिगतके अधिगमके लिये, अ-साक्षात्कृतके साक्षात्कारके लिये उद्योग नहीं

१. देखो पृष्ठ ४८३

आठ दान-उपपत्ति (=उत्पत्ति)—(१) आवुसो! कोई कोई पुरुष, श्रमण या ब्राह्मणको अन्न, पान, वस्त्र, यान, माला, गंध, विलेपन, शय्या, आवसथ (=निवास), प्रदीप दान देता है। वह, जो देता है, उसकी भी तारीफ करता है। वह क्षत्रिय महाशाल (=महाधनी) ब्राह्मण-महाशाल, गृहपति-महाशालको पांच काम-गुणोंसे समर्पित=संयुक्त हो विचरते देखता है। उसको ऐसा होता है—अहोवत! मैं भी काया छोड़ मरनेके बाद क्षत्रिय-महाशालों०की स्थिति (=सहव्यता)में उत्पन्न होऊँ। वह इसको चित्तमें धारण करता है, इसको चित्तमें अधिष्ठान (=दृढ़ संकल्प) करता है, इसे चित्तमें भावना करता है। उसका वह चित्त, हीन (-उत्पत्ति) छोड़, उत्तमकी न भावनाकर, वहीं उत्पन्न होता है। यह मैं शीलवान् (=सदाचारी)का कहता हूं, दुःशीलका नहीं। आवुसो! विशुद्ध होनेसे शीलवान्की मानसिक प्रणिधि (=अभिलाषा) पूरी होती है। (२) और फिर आवुसो! ० दान देता है। वह जो देता है, उसकी प्रशंसा करता है। वह सुने होता है—चातुर्महाराजिक देव लोग दीर्घायु सुरूप, बहुत सुखी, (होते हैं)। उसको ऐसा होता है—अहोवत! मैं शरीर छोड़ मरनेके बाद चातुर्महाराजिक देवोंमें उत्पन्न होऊँ०। (३) ०वह सुने होता—त्रयस्त्रिंश देव लोग०। (४) ०याम देव०। (५) ०तुषित०। (६) ०निर्माण-रति देव०। (७) ०परनिर्मित-वशवर्ती देव०। (८) ब्रह्मकायिक देव०।

सात,-परिषद्—क्षत्रिय०। ब्राह्मण०। गृहपति०। श्रमण०। चातुर्महाराजिक०। त्रयस्त्रिंश०। मार०। ब्रह्म०।

अभिभ्वायतन—एक (पुरुष) अपने भीतर (=अध्यात्मं) रूप-संज्ञी (=रूपकी लौ लगानेवाला) बाहर स्वल्प सुवर्ण दुर्वर्ण रूपोंको देखता है, 'उनको अभिभवन (=लुप्त) कर जानता हूं, देखता हूं' इस संज्ञावाला होता है। यह प्रथम अभिभ्वायतन है। (२) एक (पुरुष) अध्यात्ममें अरूप-संज्ञी, बाहर अप्रमाण (=अतिमहान्) सुवर्ण दुर्वर्ण रूपोंको देखता है०। (३) ०अध्यात्ममें अरूपसंज्ञी बाहर स्वल्प सुवर्ण दुर्वर्ण रूपोंको देखता है०। (४) ०अध्यात्ममें अरूप-संज्ञी, बाहर अप्रमाण सुवर्ण दुर्वर्ण रूपोंको ०। (५) ०अध्यात्ममें अरूपसंज्ञी बाहर नील, नीलवर्ण, नील-निदर्शन नील-निभास रूपोंको देखता है, जैसे कि नील, नीलवर्ण, नील-निदर्शन अलसीका फूल, या जैसे दोनों ओरसे रगड़ा (=पालिश किया) नीला० बनारसी वस्त्र। ऐसे ही अध्यात्ममें अरूप-संज्ञी बाहर नील० रूपोंको देखता है। उन्हें अभिभवनकर०। (६) ०अध्यात्ममें अरूप-संज्ञी बाहर पीत (=पीला), पीतवर्ण, पीत-निदर्शन, पीत-निभास रूपोंको देखता है, जैसे कि ०कर्णिकार पुष्प, या जैसे ०पीला० बनारसी वस्त्र०। (७) ० ०बाहर लोहित (=लाल) ०रूपोंको देखता है, जैसे कि ०बंधु-जीवक पुष्प, या जैसे ०लोहित ०बनारसी वस्त्र०। (८)० ०बाहर अवदात (=सफेद) ०रूपोंको देखता है; जैसे कि अवदात० ओषधी-तारका (=शुक्र), या जैसे अवदात० बनारसी वस्त्र।०

आठ विमोक्ष—(१) (स्वयं) रूपी (=रूपवान्) रूपोंको देखता है, यह प्रथम विमोक्ष है। (२) एक (पुरुष) अध्यात्ममें अरूपी-संज्ञी बाहर रूपोंको देखता है०। (३) सुभ (=शुभ्र)

हो से मुक्त (=अधिमुक्त) हुआ होता है० । (४) सर्वथा रूप-संज्ञाको अतिक्रमण कर, प्रतिघ (=प्रतिहिंसा)-संज्ञाके अस्त होनेसे, नानापनकी संज्ञा (=ख्याल)के मनमें न करनेसे, 'आकाश अनन्त है' इस आकाश-आनन्त्य-आयतनको प्राप्त हो विहरता है० । (५) सर्वथा आकाशानन्त्यायतनको अतिक्रमण कर, 'विज्ञान अनन्त है' इस विज्ञान-आनन्त्य-आयतनको प्राप्तहो विहरता है० । (६) सर्वथा विज्ञानानन्त्यायतन को अतिक्रमण कर, 'किंचित् (=कुछभी) नहीं' इस आकिंचन्य-आयतनको प्राप्तहो विहरता है० । (७) सर्वथा आकिंचन्यायतनको अतिक्रमण कर 'नहीं संज्ञा है, न असंज्ञा' इस नैव संज्ञा-न-असंज्ञा-आयतन को० । (८) सर्वथा नैवसंज्ञा-नासंज्ञयतनको अतिक्रमणकर, संज्ञा-वेदयितनिरोध (=जहाँ होशका ख्याल ही लुप्त होजाता है)को प्राप्त हो विहरता है ।

आवुसो ! उन भगवान्० ने० यह ।

"आवुसो ! उन भगवान्० ने यह नव धर्म यथार्थ कहे हैं० ।

नव आघात-वस्तु—(१) 'मेरा अनर्थ (=बिगाड़) किया', इसलिये आघात (=बदला) रखता हैं । (२) 'मेरा अनर्थ कर रहा है० (३) मेरा अनर्थ करेगा०। (४) मेरे प्रिय=मनाप का अनर्थ किया० । (५)०० अनर्थ करता है० । (६)०० अनर्थ करेगा० । (७) मेरे अ-प्रिय-अमनापके अर्थ (=प्रयोजन)को किया० । (८)० करता है० । (९)० करेगा० ।

नव अघात-प्रतिविनय (=हटाना)—(१) 'मेरा अनर्थ किया तो (बदलेमें अनर्थ करनेमें मुझे) क्या मिलने वाला है' इससे आघातको हटाता है । (२) 'मेरा अनर्थ करता है, तो क्या मिलनेवाला है' इससे० । (३) ०करेगा० । (४) मेरे प्रिय-मनापका अनर्थ किया, तो क्या मिलनेवाला है'० । (५) ०अनर्थ करता है० । (६)० अनर्थ करेगा० । (७) मेरे अप्रिय=अमनापके अर्थको किया है० । (८) ०करता है० । (९)० करेगा० ।

नव सत्त्वावास [1](=जीवलोक)—(१) आवुसो ! कोई सत्त्व नानाकाय (=शरीर) और नाना संज्ञा (=नाम) हैं जैसेकि मनुष्य, कोई कोई देव, कोई कोई विनिपातिक (=पाप-योनि), यह प्रथम सत्त्वावास है । (२) ० नाना-काय एक-संज्ञावाले, जैसे प्रथम उत्पन्न ब्रह्मकायिक देव । (३)० एककाया नाना-संज्ञावाले, जैसे आभास्वर देवलोग । (४)० एक-काया एक-संज्ञा वाले, जैसे शुभ-कृत्स्न देवलोग । (५)० संज्ञा-रहित, प्रतिसंवेदन(=होश)-रहित, जैसे कि असंज्ञी० सत्त्व देवलोग । (६)० रूप-संज्ञाको सर्वथा अतिक्रमण कर, प्रतिघ-संज्ञा (=प्रतिहिंसाके ख्याल)के अस्तहोने, नानापन की संज्ञाको मनमें न करनेसे, 'आकाश अनन्त है' इस आकाश-आनन्त्य-आयतनको प्राप्त हैं० । (७)० आकाशानन्त्यायतनको सर्वथा अतिक्रमण कर, 'विज्ञान अनन्त है' इस विज्ञान-आनन्त्य-आयतनको प्राप्त हैं० । (८)० विज्ञानानन्त्यायतनको

१. सात विज्ञान-स्थिति ५०४ ।

सर्वथा अतिक्रमण कर 'किंचित् नहीं' इस आकिंचन्य-आयतनको प्राप्त हैं० । (९) आवुसो ! ऐसे सत्त्व हैं, (जोकि) आकिंचन्यायतनको सर्वथा अतिक्रमण कर, नैव-संज्ञा-नासंज्ञा (=न होश न बेहोश)-आयतनको प्राप्त हैं, यह नवम सत्त्वावास है ।

नव अक्षण=असमय (हैं) ब्रह्मचर्य-वासकेलिये—(१) आवुसो ! लोकमें तथागत अर्हत् सम्यक् संबुद्ध उत्पन्न होते हैं, और उपशम=परिनिर्वाणकेलिये, संबोधिगामी, सुगत (=सुन्दर गतिको प्राप्त=बुद्ध) द्वारा प्रवेदित (=साक्षात्कार किये) धर्मको उपदेश करते हैं, (उस समय) यह पुद्गल (=पुरुष) निरय (=नर्क)में उत्पन्न रहता है, यह प्रथम अक्षण० है । (२) और फिर यह तिर्यक्-योनि (=पशु पक्षी आदि)में उत्पन्न रहता है० । (३) प्रेत्य-विषय(=प्रेत-योनि)में उत्पन्न हुआ होता है० । (४) ० असुर-काय (=असुर-समुदाय) ० । (५) दीर्घायु देव-निकाय (=देव-समुदाय)में ० । (६) ० प्रत्यन्त (=मध्य देशके बाहरके) देशोंमें अ-पंडित म्लेच्छोंमें उत्पन्न हुआ होता है, जहां पर कि भिक्षुओंकी गति (=जाना) नहीं, न भिक्षुणियोंकी ,न उपासकोंकी, न उपासिकाओंकी ० । (७) ० मध्यदेश (=मज्झिमजनपद)में उत्पन्न होता है, किन्तु वह मिथ्यादृष्टि (=उल्टीमत)=(विपरीत-दर्शन का) है—दान दिया (-कुछ) नहीं है, यज्ञ किया ०, हवन किया ०, सुकृत दुष्कृत कर्मोका फल=विपाक नहीं; यह लोक नहीं, परलोक नहीं, माता नहीं, पिता नहीं, औपपातिक (=अयोनिज) सत्त्व नहीं, लोक में सम्यग्-गत (=ठीक रास्ते पर)=सम्यक्-प्रतिपन्न श्रमण ब्राह्मण नहीं, जो कि इस लोक और परलोकको स्वयं साक्षात्कर, अनुभवकर, जाने ० । (८) ० मध्य-देशमें होता है, किन्तु वह है, दुष्प्रज्ञ, जड़=एड-मूक (=भेडसा गूंगा), सुभाषित दुर्भाषितके अर्थको जाननेमें असमर्थ, यह आठवां अक्षण है । (९) ० मध्य-देशमें उत्पन्न होता है, और वह प्रज्ञावान्, अजड़=अनेड-मूक होता है, सुभाषित दुर्भाषितके अर्थको जाननेमें समर्थ होता है ० ।

नव अनुपूर्व(=क्रमशः)-विहार—(१) आवुसो ! भिक्षु काम और अकुशल धर्मोंसे अलग हो, वितर्क-विचार सहित विवेकज प्रीति सुखवाले प्रथम ध्यानको प्राप्त हो विहरता है । (२) ० द्वितीय ध्यान० । (३) ० तृतीय ध्यान० । (४) ० चतुर्थ ध्यान ० । (५) ० आकाशानन्त्यायतनको प्राप्तहो विहरता है (६) विज्ञानानन्त्यायतन ० । (७) ०आकिंचन्यायतन ० । (८) ०नैवसंज्ञानासंज्ञायतन ० । (९) ० संज्ञा वेदयित-निरोध ० ।

नव अनुपूर्व-निरोध— (१) प्रथम ध्यान प्राप्तको काम-संज्ञा (=कामोपभोगका ख्याल) निरुद्ध (=लुप्त) होता है । (२) द्वितीय ध्यानवालेको वितर्क-विचार निरुद्ध होता है । (३) तृतीय ध्यानवालेको प्रीति निरोध होती है (४) चतुर्थ ध्यान-प्राप्त का आश्वास-प्रश्वास (=सांस लेना) निरुद्ध होता है । (५) आकाशानन्त्यायन प्राप्तकी रूप-संज्ञा निरुद्ध होती है । (६) विज्ञानानन्त्यायतन-प्राप्तकी आकाशानन्त्यायतन-संज्ञा ० । (७) आकिंचन्यायतन-प्राप्तकी विज्ञानानन्त्यायतन

संज्ञा ० । (८) नैव-संज्ञा-नासंज्ञा-यतन-प्राप्तकी आकिंचन्यायतन संज्ञा ० । (९) संज्ञा-वेदयित-निरोध-प्राप्तकी संज्ञा (=होश) और वेदना (=अनुभव) निरुद्ध होती हैं ।

आवुसो ! उन भगवान्०ने यह० ।

" आवुसो ! उन भगवान्०ने दश धर्म यथार्थ कहे० । कौनसे दश ?—

दश नाथ-करण धर्म—(१) आवुसो ! भिक्षु शीलवान्, प्रातिमोक्ष (=भिक्षुनियम)-संवर (=कवच)से संवृत (=आच्छादित) होता है । थोड़ी सी बुराइयों (=वद्य)में भी भय-दर्शी, आचार-गोचर-युक्त हो विहरता है, (शिक्षापदोंको) ग्रहणकर शिक्षापदों को सीखता है । जो यह आवुसो ! भिक्षु शीलवान्०, यह भी धर्म नाथ-करण (=न अनाथ करनेवाला) है । (२)० भिक्षु बहु-श्रुत, श्रुत-धर, श्रुत-संचय-वान् होता है । जो वह धर्म आदिकल्याण, मध्यकल्याण, पर्यवसान-कल्याण, सार्थक=सव्यंजन हैं, (जिसे) केवल, परिपूर्ण, परिशुद्ध ब्रह्मचर्य कहते हैं । वैसे धर्म, (भिक्षु)को बहुत सुने, ग्रहण किये, वाणीसे परिचित, मनसे अनुपेक्षित, दृष्टिसे सुप्रतिविद्ध (=अन्तस्तल तक देखे) होते हैं; यह भी धर्म नाथ-करण होता है । (३) ०भिक्षु कल्याण-मित्र=कल्याण-सहाय=कल्याण-संप्रवंक होता है । जो यह भिक्षु कल्याण मित्र० होता है, यह भी० । (४) ०भिक्षु सुवचा, सौवचस्य (=मधुर-भाषिता) वाले धर्मोंसे युक्त होता है । अनुशासनी (=धर्म-उपदेश)में प्रदक्षिणग्राही=समर्थ (=क्षम) (होता है) यह भी० । (५)० भिक्षु ब्रह्मचारियोंके जो नाना प्रकारके कर्तव्य होते हैं, उनमें दक्ष=आलस्यरहित होता है, उनमें उपाय=विमर्शसे युक्त, करनेमें समर्थ=विधानमें समर्थ, होता है । ० यह भी० । (६) ०भिक्षु अभिधर्म (=सूत्रमें), अभि-विनय (=भिक्षु-नियमोंमें) धर्म-काम (=धर्मेच्छु), प्रिय-समुदाहार (=दूसरे के उपदेशको सत्कारपूर्वक सुननेवाला, स्वयं उपदेश करनेमें उत्साही), बड़ा प्रमुदित होता है, ० यह भी० । (७) भिक्षु जैसे तैसे चीवर, पिंडपात, शयनासन, ग्लान-प्रत्यय-भैषज्य-परिष्कारसे सन्तुष्ट होता है० । (८)० भिक्षु अकुशल-धर्मोंके विनाशके लिये, कुशल-धर्मोंकी प्राप्तिके लिये उद्योगी (=आरब्ध-वीर्य) स्थामवान्=दृढपराक्रम होता है । कुशल-धर्मोंमें अनिक्षिप्त-धुर (=भगोड़ा नहीं) होता० । (९)० भिक्षु स्मृतिमान्, अत्युत्तम स्मृति-परिपाकसे युक्त होता है ; बहुत पुराने किये, बहुत पुराने भाषण करेको भी स्मरण करने वाला, अनुस्मरण करने वाला होता है० । (१०)० भिक्षु प्रज्ञावान् उदय-अस्त गामिनी, आर्य, निर्वेधिक (=अन्तस्तल तक पहुँचनेवाली), सम्यक्-दुःख-क्षय-गामिनी प्रज्ञासे युक्त होता है० ।

दस कृत्स्नायतन—(१) एक (पुरुष) ऊपर नीचे टेढ़े अद्वितीय (=एक मात्र) अप्रमाण (=अतिमहान्) पृथिवी-कृत्स्न (=सब पृथिवी) जानता है । (२) ०आप-कृत्स्न० । (३) ०तेजः-कृत्स्न० । (४) ०वायु-कृत्स्न० । (५) ०नील-कृत्स्न० । (६) ०पीत-कृत्स्न० । (७) ०लोहित-कृत्स्न० । (८) ०अवदात-कृत्स्न० । ०आकाश-कृत्स्न० । (१०) ०विज्ञान-कृत्स्न० ।

दश अकुशल-कर्म-पथ (=दुष्कर्म)—(१) प्राणातिपात (=हिंसा)। (२) अदत्तादान (=चोरी)। (३) काम-मिथ्याचार (=व्यभिचार)। (४) मृषावाद (=झूठ)। (५) पिशुन-वचन (=चुगली)। (६) परुष-वचन (=कटुवचन)। (७) संप्रलाप (=बकवास)। (८) अभिध्या (=लोभ)। (९) व्यापाद (=द्रोह)। (१०) मिथ्या-दृष्टि (=उल्टीमत)।

दश कुल-कर्म-पथ (=सुकर्म)—(१) प्राणातिपात-विरति। (२) अदत्तादान-विरति। (३) काम-मिथ्याचार-विरति। (४) मृषावाद-विरति। (५) पिशुनवचन-विरति। (६) परुष-वचन-विरति। (७) संप्रलाप-विरति। (८) अन्-अभिध्या। (९) अव्यापाद। (१०) सम्यग्-दृष्टि।

दश आर्य-वास—(१) आवुसो! भिक्षु पांच अंगों (=बातों)से हीन (=पञ्चाङ्ग-विप्रहीण) होता है। (२) छः अंगोंसे युक्त (=षडंग-युक्त) होता है। (३) एक आरक्षा वाला होता है। (४) अवश्रयण (=आश्रय) वाला होता है। (५) पनुन्न पचेक-सच्च होता है। (६) समवय-सट्ठेसन। (७) अन्-आविल (=अमलिन)-संकल्प०। (८) प्रश्रब्ध-काय-संस्कार०। (९) सुविमुक्त-चित्त०। (१०) सुविमुक्त-प्रज्ञ०। (१) आवुसो! भिक्षु पांच अंगोंसे हीन कैसे होता है? यहां आवुसो! भिक्षुका कामच्छन्द (=काम-राग) प्रहीण (=नष्ट) होता है, व्यापाद प्रहीण०, स्त्यान-मृद्ध०, औद्धत्य-कौकृत्य०, विचिकित्सा०। इस प्रकार आवुसो! भिक्षु पञ्चाङ्ग-विप्रहीण होता है। (२) कैसे आवुसो भिक्षु षडंग-युक्त होता है? आवुसो! भिक्षु चक्षुसे रूपको देख न सु-मन होता है, न दुर्मन; स्मृति-संप्रजन्य-युक्त उपेक्षक हो विहरता है। श्रोत्रसे शब्द सुनकर०। घ्राणसे गंध सूंघकर०। जिह्वासे रस चखकर०, कायसे स्प्रष्टव्य छूकर०, मनसे धर्म जानकर० ०। (३) आवुसो! एकारक्ष कैसे होता है? आवुसो! भिक्षु स्मृतिकी रक्षासे युक्त होता है। (४) आवुसो! भिक्षु कैसे चतुरापश्रयण होता है? आवुसो! भिक्षु संख्यानकर (=समझकर) एकको सेवन करता है, संख्यानकर एकको स्वीकार करता है, संख्यानकर एकको हटाता है, संख्यानकर एकको वर्जित करता है, ०। (५) आवुसो! भिक्षु कैसे पनुन्न-पचेक-सच्च होता है? आवुसो! जो वह पृथक् (=उलटे) श्रमण-ब्राह्मणोंके पृथक् (=उलटे) प्रत्येक (=एक एक) सत्य (=सिद्धांत) होते हैं, वह सभी (उसके) पणुन्न=त्यक्त =वान्त=मुक्त=प्रहीण, प्रतिप्रश्रब्ध (=शमित) होते हैं ०। (६) आवुसो! कैसे 'समवयसट्ठेसन, (=सम्यक्-विसृष्टैषण) होता है? आवुसो! भिक्षुकी काम-एषणा प्रहीण (=त्यक्त) होती है, भव-एषणा०, ब्रह्मचर्य-एषणा प्रशमित होती है, ०। (७) आवुसो! भिक्षु कैसे अनाविल-संकल्प होता है? आवुसो! भिक्षुका काम-संकल्प प्रहीण होता है, व्यापाद-संकल्प०, हिंसा-संकल्प०। इस प्रकार आवुसो! भिक्षु अनाविल(=निर्मल)-संकल्प होता है। (८) आवुसो! भिक्षु कैसे प्रश्रब्ध-काय होता है? ०भिक्षु०[1] चतुर्थ ध्यानको प्राप्त हो विहरता है, ०। (९) आवुसो!

१. देखो पृष्ठ २७१-७२।

भिक्षु कैसे विमुक्त-चित्त होता है ? आवुसो ! भिक्षुका चित्त रागसे विमुक्त होता है, ०द्वेषसे विमुक्त होता है, ०मोहसे विमुक्त होता है, इस प्रकार० । (१०) कैसे ० सुविमुक्ति-प्रज्ञ होता है ? आवुसो ! भिक्षु जानता है—' मेरा राग प्रहीण हो गया, उच्छिन्न-मूल=मस्तकच्छिन्न-तालकी तरह, अभाव-प्राप्त, भविष्यमें उत्पन्न होनेके अयोग्य ,हो गया है ।' ०मेरा द्वेष० । ०मेरा मोह० । ० ।

दश अशैक्ष्य (=अर्हत्)-धर्म—(१) अशैक्ष्य सम्यक्-दृष्टि । (२) ०सम्यक्-संकल्प । (३) ०सम्यक्-वाक् । (४) ०सम्यक्-कर्मान्त । (५) ०सम्यक्-आजीव । (६) सम्यक्-०व्यायाम । (७) ०सम्यक्-स्मृति । (८) ०सम्यक्-समाधि । (९) ०सम्यक्-ज्ञान । (१०) अशैक्ष्य सम्यक्-विमुक्ति ।

" आवुसो ! उन भगवान्० ने० ।"

तब भगवान्‌ने उठकर आयुष्मान् सारिपुत्रको आमंत्रित किया—

" साधु, साधु, सारिपुत्र ! सारिपुत्र तूने भिक्षुओंको अच्छा सङ्गीति-पर्याय (=एकता का ढंग) उपदेश किया ।"

आयुष्मान् सारिपुत्रने (जो) यह कहा । शास्ता (=बुद्ध) इसमें सहमत हुये । सन्तुष्ट हो उन भिक्षुओंने (भी) आयुष्मान् सारिपुत्रके भाषणका अभिनन्दन किया ।

चुन्द-सुत्त। सारिपुत्रमोग्गलान-परिनिर्वाण। उक्काचेल-सुत्त। (वि. पू. ४२८-२७)।

[1]ऐसा[2] मैंने सुना—एक समय भगवान् श्रावस्तीमें अनाथ-पिंडकके आराम जेतवनमें विहार करते थे।

उस समय आयुष्मान् सारिपुत्र मगधमें [1]नालक-ग्राममें रोग-ग्रस्त=दुःखित सख्त बीमारहो विहार करते थे।

---

१. चौआलीसवां वर्षावास (४२८ वि. पू.) को भगवान्ने श्रावस्ती (पूर्वाराम) में बिताया, पैंतालीसवां (४२७ वि. पू.) श्रावस्ती (जेतवन)में। २. सं. नि. ४६:२:३.।

१. अ.क. "भगवान्ने क्रमशः श्रावस्ती जा, जेतवनमें प्रवेश किया।... माताको मिथ्या-दर्शन (=झूठे मत)से छुड़ाकर, जन्म लेनेके कोठे (=ओवरक)में ही परिनिर्वाण प्राप्त करूंगा' यह निश्चयकर (सारिपुत्रने) चुन्द स्थविरको कहा—, =आवुस चुन्द! हमारे पांचसौ भिक्षुओंको सूचित करो—'आवुसो! पात्रचीवर ग्रहण करो, धर्म-सेनापति नालकग्राम जाना चाहते हैं'। स्थविरने ऐसाही किया। भिक्षु शयनासन संभाल, पात्रचीवरले स्थविरके सामने गये।

स्थविर (सारिपुत्र) शयनासन संभाल दिवास्थान (=दिनके विश्रामके स्थान)को साफ कर, दिवास्थानके द्वारपर खड़ेहो, दिवास्थानकी ओर अवलोकनकर—'यह अन्तिम (=पच्छिम) दर्शन है, फिर आना नहीं है'। (फिर) पांचसौ भिक्षुओंके साथ भगवान्के पास जा वन्दनाकर भगवान्को बोले—

"भन्ते! भगवान् अनुज्ञा दें, सुगत अनुज्ञा दें, मेरा परिनिर्वाण-काल है, आयु-संस्कार (=जीवन) खतम हो चुका।"

...."कहां परिनिर्वाण करोगे?"...

"भन्ते! मगध (देश)में नालकग्राममें जन्मगृह है, वहां परिनिर्वाण करूंगा।"

..."सारिपुत्र! जैसा तू काल समझता है।"

...स्थविरने रक्तवर्ण हाथोंको फैलाकर, शास्ताके सुवर्ण-कच्छप सदृश चरणोंके गुल्फोंको पकड़कर—

"भन्ते! इन चरणोंकी वन्दनाके लिये सौहजार कल्पोंसे अधिक कालतक मैंने असंख्य पारमितायें पूर्णकीं। वह मेरा मनोरथ शिरतक पहुंच गया। अब (आपके साथ) फिर/जन्मले एकस्थानमें एकत्रित=समागम, होना नहीं है। अब यह विश्वास छिन्न होचुका। अनेक शत सहस्र बुद्धोंके प्रवेश-स्थान अजर, अमर, क्षेम, सुख, शीतल, अभय, निर्वाण-पुर जाऊंगा। यदि मेरा कोई कायिक या वाचिक (कर्म) भगवान्को न रुचा हो, भगवान् क्षमा करें, मेरा जानेका समय है।"

"सारिपुत्र! तुझे क्षमा करता हूं; तेरा कुछभी कायिक या वाचिक (कर्म) ऐसा नहीं, जो मुझे नापसंदहो। अब तू सारिपुत्र! जिसका काल समझे (उसको कर)।"

भगवान्‌की अनुज्ञा पानेके बाद, आयुष्मान् सारिपुत्रके पादवंदनाकर, उठते समय···, शास्ताभी धर्मसेनापतिके सन्मानके लिये धर्मासनसे उठकर गंधकुटीके सामने मणि-फलक पर जा खड़े हुये।

स्थविर तीनवार प्रदक्षिणाकर चार स्थानों (=अंगों)से वन्दना कर—

"भगवन्! आजसे असंख्य सौ हजार कल्पसे अधिक समय पूर्व अनोमदर्शी सम्यक्-संबुद्धके पादमूलमें पड़कर, मैंने तुम्हारे दर्शनकी प्रार्थना की। वह मेरी प्रार्थना पूरी हुई, तुम्हें देख लिया। वह तुम्हारा प्रथम दर्शन था, यह अन्तिम दर्शन, (अब) फिर तुम्हारा दर्शन नहीं होगा।"

—कह दश-नख-संयुक्त समुज्वल अंजलिको जोड़कर, जबतक (भगवान्) नज़रके सामने थे, (बिना पीठ दिखाये) सामने मुख रखतेही चलकर वन्दना कर, चल दिये। ·· भगवान्‌ने घेरकर खड़ेहुये भिक्षुओंको कहा—

"भिक्षुओ! अपने-ज्येष्ठ भ्राताका अनुगमन करो।"

उस समय एक सम्यक्-संबुद्धको छोड़कर सभी भिक्षु, भिक्षुणी उपासक उपासिका, चारों परिषद् जेतवनसे निकली। श्रावस्ती नगरवासियोंने भी, 'सारिपुत्र स्थविर सम्यक्संबुद्धको पूछ परिनिर्वाणको इच्छासे निकले हैं, उनका दर्शन करें'—सोच, नगरद्वारोंको अवकाशरहित बनाते निकलकर, गंध माला हाथमें ले, केशोंको बिखेर—अब हम 'कहां महा-प्रज्ञ बैठे हैं? कहां धर्मसेनापति बैठे हैं?'—पूछते, किसके पास जायेंगे। 'स्थविर किसके हाथमें शास्ताको सौंपकर जारहे हो' इसप्रकारसे रोते कांदते स्थविरका अनुगमन किया।

स्थविर महा-प्रज्ञामें स्थित होनेसे-'सबको ही यह गंतव्य (=अनू-अतिक्रमणाय) मार्ग है' लोगोंको उपदेशकर, 'तुम भी आवुसो! ठहरो, दशबल (=बुद्ध)के विषयमें बेपर्वाही मत करना' (कह), भिक्षु-संघको भी लौटाकर, अपनी परिषद्‌के साथ चलदिये।···तब आयुष्मान् सारिपुत्र सर्वत्र एक एक रात्रिवासकर, मार्गमें एक सप्ताह मनुष्योंको उपदेश करते, सायंकालको नालकग्राम पहुँच, ग्रामद्वारपर वर्गदके वृक्षके नीचे खड़े हुये। तब स्थविरका भागिनेय उपरेवत गांवसे बाहर जाते वक्त, स्थविरको देखकर पास जा वन्दनाकर, खड़ा हुआ। स्थविरने उसे कहा—"घरमें तेरी अय्यका (=नानी) है?"

"भन्ते! है"

"जाओ, हमारे यहां आनेकी बात कहो। किसलिये आये पूछनेपर—आज एक रात गांवके भीतर बसेंगे। जन्म-गृह (=जातोवरक)को साफकरो, और पांच सौ भिक्षुओंके रहने का स्थान ठीक करो।"

उसने जाकर—"नानी! मेरे मामा आये हैं।"···

"इस समय कहां हैं?" "ग्राम द्वारपर।"

"अकेलेही, या और भी कोई है?" "पांचसौ भिक्षु हैं।"

"किस कारणसे आये?"

उसने वह (सब) हाल कह सुनाया। ब्राह्मणी—इतनोंके लिये क्यों वासस्थान साफ करा रहे हैं ? जवानीमें प्रव्रजित हो, अब बुढ़ापेमें क्या गृहस्थ होना चाहते हैं ?—सोचती, जन्म-घरको साफ करवा, पांचसौके बसनेका स्थान बनवा, मशाल (=दंड-दीपिका) जलवाकर, स्थविरके लिये आदमी भेजा। स्थविर, भिक्षुओंके साथ प्रासाद(=कोठे)पर चढ़ जन्मघरमें प्रविष्ट हो बैठे। बैठकर, भिक्षुओंको उनके आसनपर भेज दिया। उनके जाने मात्रसेही स्थविरको खून गिरनेकी सख्त बीमारी उत्पन्न हुई; मरणान्तक पीड़ा होने लगी। ब्राह्मणी—'पुत्रकी कथा मुझे अच्छी नहीं लगती'—(सोच), अपने वास-गृहके द्वारपर खड़ी रही।

चारों महाराजा (देवता) 'धर्म-सेनापति कहां विहरते हैं' खोजते खोजते—'नालक-ग्राममें जन्मघरमें परिनिर्वाण-मंचपर पड़े हैं, अन्तिम दर्शनके लिये चलें' (सोच) आकर वंदनाकर खड़े हुये। (स्थविरने पूछा-) "तुम कौनहो ?" 'महाराजा, भन्ते !' 'किसलिये आये ?" "रोगी-सेवा होगी (तो) करेंगे।' "होगया, रोगी सुश्रूषक है, तुमलोग जाओ"—कह कर भेज दिया। उनके जानेके बाद उसी प्रकारसे देवताओंका इन्द्र (=राजा) शक्र (आया)। उसके जानेपर महाब्रह्मा आये। उनकोभी स्थविरने भेज दिया। ब्राह्मणी देवताओंके गमन-आगमनको देखकर-'यह कौन मेरे पुत्रको वन्दना कर कर, जा रहे हैं' (सोचती), स्थविरके कमरेके द्वारपर जाकर—'तात चुन्द ! क्या बात है?' पूछा। उन्होंने वह बात कह दी। (स्थविरको) कहा—"भन्ते !! महा-उपासिका आई है"। "अ-समय किसलिये आई है ?' "तात ! तुम्हें देखनेके लिये" कहकर—'तात ! पहिले कौन आये थे ?' पूछा। "उपासिके ! चारों महाराजा" "तात ! तुम चारों महाराजोंसे भी बड़े हो ?" "उपासिके ! यह हमारे माली जैसे हैं…?". "तात ! उनके जानेके बाद कौन आया ?" "देवोंका इन्द्र शक्र"…"उसके जानेपर तात ! प्रकाश करते से कौन आये ?" "उपासिके ! वह तुम्हारे भगवान्, शास्ता महाब्रह्मा थे"। "तात ! तुम मेरे भगवान् महाब्रह्मासे भी बढ़कर हो ?' "हां उपासिके !…"

तब ब्राह्मणीको—'मेरे पुत्रकी ऐसी सामर्थ्य है, तो मेरे पुत्रके भगवान् शास्ताकी कैसी सामर्थ्य होगी ?'—सोचते समय, एक दम पांच प्रकार(=वर्ण)की प्रीति उत्पन्न हो सकल शरीरमें व्याप्त होगई। स्थविरने 'मेरी माताको प्रीति=सौमनस्य उत्पन्न होगया, यह अब धर्म-उपदेशका काल है'—सोचकर—"क्या सोच रही है, महाउपासिके !'—पूछा। उसने कहा—"तात ! यह सोच रही हूं—'मेरे पुत्रमें यह गुण है, तो उसके शास्तामें कैसा गुण होगा ?" "महाउपासिके ! मेरे शास्ताके…समान, शील, समाधि, प्रज्ञा, विमुक्ति-ज्ञान-दर्शनमें कोई नहीं है।" (और)…विस्तारकर…धर्म-देशना कही। ब्राह्मणीने प्रिय-पुत्रकी धर्म-देशनाके अन्तमें स्रोत-आपत्तिफलमें स्थित हो, पुत्रको कहा—"तात उपतिष्य ! क्यों ऐसा किया ? ऐसा अमृत मुझे इतने समय तक नहीं दिया ?" स्थविरने—'मैंने माता रूपसारी ब्राह्मणीको पोसनेका दाम चुका दिया, इतनेसे (वह) निर्वाह कर लेगी'—सोचकर, "जा महाउपासिके !' (कह), ब्राह्मणीको भेजकर "चुन्द ! क्या समय है ?" "भन्ते ! बड़े भोरकी बेला है"—'भिक्षु-संघको जमा करो।' "भन्ते ! भिक्षु-संघ जमा है।" "चुन्द ! मुझे उठाकर बैठाओ !' उठाकर बैठा दिया।

स्थविरने भिक्षुओंको आमंत्रित किया—

"आवुसो ! तुम्हें मेरे साथ विचरते चौवालीस वर्ष होगये, जो कोई मेरा कायिक या वाचिक (कर्म) तुम्हें अरुचिकर हुआ हो ; आवुसो ! उसे क्षमा करो ।"

"भन्ते ! इतने समय तक आपको छायाकी भांति विना छोड़े विचरते, हमें अरुचिकर कुछ भी नहीं हुआ । किंतु आप, हमारे (दोषोंको) क्षमा करें ।"

तब स्थविर महाचीवरको खींचकर मुखको ढांक, दाहिनी करवट लेटे । शास्ताकी भांति क्रमसे नव समापत्तियों (=ध्यानों)में अनुलोम-प्रतिलोमसे पहुँचकर, फिर प्रथम-ध्यानसे लेकर चतुर्थ-ध्यान पर्यन्त ध्यान लगाया । उस (चतुर्थ-ध्यान)से उठनेके बाद ही ··· (वह) निर्वाणको···प्राप्त हुये । उपासिका 'मेरा पुत्र क्यों कुछ नहीं बोलता है'—सोच, पीठ-पाद मलकर 'परिनिर्वाण प्राप्त होगये' जान चिल्ला कर, पैरोंमें गिरकर—'तात ! पहिले हमने तुम्हारे गुणोंको नहीं जाना····' रोने लगी ।

···तब शालका महामंडप बनवा, मंडपके बीचमें महाकूटागारको स्थापितकर, (उसमें शरीर रख), बड़ा उत्सव किया । (उस समय) देवोंके भीतर मनुष्य, मनुष्योंके भीतर देवता (भीड़ लगा रहे) थे ।···उनमें वह उपासिका भी घूम रही थी । मोटी होनेके कारण एक ओर न हट सकनेसे मनुष्योंके बीचमें गिर पड़ी । मनुष्य उसे न देख कुचलते चले गये । वह वहीं मरकर त्रयस्त्रिंश (देव) भवनके कनक-विमानमें जाकर पैदा हुई···।

लोगोंने सप्ताहभर उत्सव मना, सब गंधोंसे चिनी चिता सजाई ।···। स्थविरके शरीरको चितामें रख, खसके पुंजोंसे लिपवा दिया । दाह-स्थानमें सब रात धर्म-उपदेश होता रहा । अनुरुद्ध स्थविरने सब गंधोदकसे स्थविरकी चिता बुझाई । चुन्द स्थविर धातुओं (=अस्थियों)को परिस्रावण (जलछाका)में रख,—'अब मैं यहां नहीं ठहर सकता, अपने ज्येष्ठ भ्राता धर्म-सेनापति सारिपुत्र स्थविरके परिनिर्वाण होनेकी बात सम्यक्-संबुद्धको कहूं'—(सोच), धातु-परिस्रावण और स्थविरके पात्र-चीवरको लेकर श्रावस्ती चले । एक स्थानमें दो रात भी न वसकर,···श्रावस्ती पहुँच गये । (जाकर) जहां उनके उपाध्याय धर्म-भंडारी आयुष्मान् आनन्द थे, वहां गये ।···जेतवन महाविहारकी पुष्करिणीमें नहाकर··· 'मेरे उपाध्याय धर्म-भाण्डागारिक जेठे भाई स्थविरके बड़े मित्र हैं, उनके पास जाकर··· (फिर) शास्ताके पास जाऊँगा····(सोचकर वहां गये) । (वहांसे)···भगवान्‌के दर्शनके लिये···। एक एकको दिखलाकर—"यह उन (=सारिपुत्र)का पात्रचीवर है, और यह धातु-परिस्रावण है' कहा ।

शास्ताने हाथ फैला धातु-परिस्रावणको ले, हथेलीपर रख, भिक्षुओंको आमंत्रित किया—

"भिक्षुओ! जिस भिक्षुने पहिले (एक) दिन अनेकशौ प्रातिहार्य करके निर्वाण होनेके लिये अनुज्ञा मांगी, उसकी ही यह आज शंख-वर्ण-समान धातुयें (=हड्डियां) दिखाई पड़ रही हैं । भिक्षुओ ! सौ हजार कल्पसे अधिक समय तक पारमिता (=दान आदि) पूर्णकिया हुआ यह भिक्षु था । मेरे प्रवर्तित (=घुमाये) धर्म-चक्र (=धर्मके चक्के) को अनु-प्रवर्तन करनेवाला, यह भिक्षु था ।···। महाप्रज्ञावान् यह भिक्षु था ।···। अल्पेच्छ (=त्यागी)

चुन्द श्रमणोद्देश आयुष्मान् सारिपुत्रके पात्र-चीवरको ले जहां श्रावस्ती, अनाथ-पिंडक का आराम जेतवन था, जहां आयुष्मान् आनन्द थे, वहां गये । जाकर आयुष्मान् आनन्दको अभिवादनकर बोले—

"भन्ते ! आयुष्मान् सारिपुत्र परिनिर्वृत (=निर्वाण-प्राप्त) हो गये, यह उनका पात्र-चीवर है, यह उनका धातु-परिस्रावण है ।"

"आवुस चुन्द ! यह कथा (=बात) रूपी भेंट है, चलो चलें, आवुस चुन्द ! जहां भगवान् हैं,···चलकर भगवान्को यह बात कहें ।"

"अच्छा भन्ते ! '···

तब आयुष्मान् आनन्द और चुन्द श्रमणोद्देश जहां भगवान् थे, वहां गये; जाकर भगवान्को अभिवादनकर एक ओर बैठ गये । एक ओर बैठे आयुष्मान् आनन्दने भगवान्को कहा—

"भन्ते ! यह चुन्द श्रमणोद्देश ऐसा कह रहा है —" भन्ते ! आयुष्मान् सारिपुत्र परिनिर्वृत हो गये, यह उनका पात्र-चीवर है । भन्ते ! ' आयुष्मान् सारिपुत्र परिनिर्वृत हो गये ' सुनकर मेरा शरीर ढीला पड़ गया (=मधुरक जातो), मुझे दिशायें नहीं सूझतीं, बात भी नहीं सूझ पड़ती ।

"आनन्द ! क्या सारिपुत्र शीलस्कन्धको लेकर परिनिर्वृत हुये, या समाधि-स्कन्धको लेकर ०, या प्रज्ञा-स्कन्धको ०, या विमुक्ति-स्कन्धको लेकर या विमुक्ति-ज्ञान-दर्शन-स्कन्धको ले परिनिर्वृत हुये ? "

यह भिक्षु था । संतुष्ट प्रविविक्त (=एकांतप्रेमी) था,=असंसृष्ट था, उद्योगी, पाप-निंदक यह भिक्षु था । प्राप्त-महान्-संपत्तियोंको पांच सौ जन्मों (तक) छोड़कर, यह भिक्षु प्रव्रजित होता रहा ।···। देखो भिक्षुओ ! महाप्रज्ञकी धातुओं को···।—

जो पांच सौ जन्मों तक मनोरम भोगोंको छोड़ प्रव्रजित होता रहा । उस वीत-राग जितेन्द्रिय, निर्वाण-प्राप्त सारिपुत्रकी वन्दना करो ॥ १ ॥

शान्ति(=क्षमा)-बलमें पृथ्वीके समान हो (वह) नहीं कुपित होता था, न इच्छाओं के वशवर्ती होता था, (वह) अनुकंपक, कारुणिक निर्वाणको गया; निर्वाणप्राप्त सारिपुत्रकी वन्दना करो ॥२॥

जैसे चाण्डाल-पुत्र नगरमें प्रविष्ट हो, मन नीचा किये, कपाल हाथमें लिये, विचरता है, ऐसेही यह सारिपुत्र विचरता था; निर्वाणप्राप्त० ॥ ३ ॥

जैसे टूटे सींगों वाला सांड, नगरके भीतर विना किसीको मारते विचरता है । वैसेही यह सारिपुत्र विचरता था, निर्वाण-प्राप्त० ॥ ४ ॥

इस प्रकार भगवान् ने ··स्थविरके गुणको वर्णन किया । जैसे जैसे भगवान् स्थविरके गुणको वर्णन करतेथे, वैसे वैसे आनन्द अपनेको संभाल न सकते थे ।

"भन्ते ! आयुष्मान् सारिपुत्र न शील-स्कन्धको लेकर परिनिर्वृत हुये ० न विमुक्ति-ज्ञान-दर्शन-स्कन्धको लेकर परिनिर्वृत हुये । बल्कि भन्ते ! आयुष्मान् सारिपुत्र मेरे अववादक (=उपदेशक), ज्ञात-अज्ञात-वस्तुओंके विज्ञापक (=बतलानेवाले), संदर्शक=प्रेरक, समुत्तेजक, संप्रशंसक थे । धर्मदेशनाके अभिलाषी, सब्रह्मचारियोंके अनुग्राहक थे । यह आयुष्मान् सारिपुत्रका धर्म (=स्वभाव) था । इस धर्म-भोगको=धर्मानुग्रहको हम स्मरण करते हैं ।"

"क्यों अनान्द ! मैंने इसे पहिले नहीं कह दिया है--'सभी प्रियों=मनापोंसे नाना-भाव (=जुदाई)=विनाभाव=अन्यथाभाव (होनाहै), वह आनन्द ! कहाँ मिलैगा । जो कुछ उत्पन्न है=हुआ है=संस्कृत है, वह सब नाश होनेवाला है । 'हाय वह न नाश हो' यह संभव नहीं है । इस प्रकार आनन्द ! महाभिक्षु-संघके रहनेपर भी सारवाला सारिपुत्र परिनिर्वृतहो गया । आनन्द ! वह अब कहाँ मिलनेवाला है । जो कुछ उत्पन्न (=जात) है=हुआ है (=भूत) संस्कृत है, वह सब नाश होनेवाल है । 'हाय वह न नाशहो' यह संभव नहीं है । इसलिये आनन्द ! आत्म-दीप (=अपने अपना मार्ग-प्रदर्शक, दीपक)=आत्म-शरण (=स्वावलम्बी) अन्-अन्य-शरण (=अपरावलम्बी) होकर विहरो, धर्म-दीप=धर्म-शरण= अन्-अन्यशरण होकर (विहरो) । आनन्द ! कैसे भिक्षु आत्म-शरण० होता है ? आनन्द ! यहाँ भिक्षु कायामें कायानुपश्यी हो० विहरता है । वेदनाओंमें । चित्तमें०, धर्मोमें० । इस प्रकार आनन्द ! भिक्षु० आत्म-शरण ० होता है । आनन्द ! जो कोई इस वक्त या मेरे न रहने (=अत्यय) के बाद० आत्मशरण० हो विहार करेंगे, (सब इसी तरह)० ।..."

मोग्गलानका परिनिर्वाण (वि. पू. ४२७) ।

[1]एक समय तैर्थिक लोग एकत्रितहो सलाह करने लगे—'जानतेहो आवुसो ! किसकारण से, किसलिये, श्रमण-गौतमका बहुत लाभ-सत्कार होगया है ?'...'एक महामौद्गल्यायनके कारण हुआ है । वह देवलोकभी जाकर देवताओंके कामको पूछकर, आकर मनुष्योंको कहता है... नर्कमें उत्पन्न हुओंके भी कर्मको पूछकर, आकर, मनुष्यों को कहता है ...। मनुष्य उसकी बात को सुनकर बड़ा लाभ-सत्कार प्रदान करते हैं । यदि उसे मार सकें, तो वह लाभ-सत्कार हमें होने लगेगा...।' तब (उन्होंने) अपने सेवकोंको कहकर एकहजार कार्षापण पाकर, मनुष्य-मारनेवाले गुंडोंको बुलवा०—'महामौद्गल्यायन स्थविर काल-शिलामें वास करता है, वहां जाकर उसे मारो' (कह) उन्हें कार्षापण दे दिये । गुंडों(=चोरों)ने धनके लोभसे उसे स्वीकार कर, स्थविरको मारनेके लिये जाकर, उनके वास-स्थानको घेर लिया । स्थविर उनके घेरनेकी बात जानकर कुञ्जीके छिद्रसे (बाहर) निकल गये । उन्होंने स्थविरको न देख, फिर दूसरे दिन जाकर घेरा । स्थविर जानकर छत फोड़कर आकाशमें चले गये । इसप्रकार वह न प्रथम मासमें न दूसरे मासमेंही स्थविरको पकड़ सके । अन्तिम मास प्राप्त होनेपर, स्थविर अपने किये कर्मका परिणाम जानकर स्थानसे नहीं हटे । घातकोंने जाकर स्थविरको पकड़कर, उनकी हड्डीको

---

१. धम्मपद अ. क. १०:७ ।

तंडुल-कण जैसा करके मार डाला । तब उन्हें मरा जानकर एक झाड़ीके पीछे डालकर चले गये । स्थविरने 'शास्ता को देखकरही मरूंगा' (सोच), शरीरको ध्यानरूपी वेष्टनसे वेष्टितकर, स्थिरकर, आकाश-मार्गसे शास्ताके पास जा, शास्ताको वन्दना कर " भन्ते ! परिनिर्वृत होऊंगा'—कहा ।

" परिनिर्वृत होओगे, मौद्गल्यायन !' " भन्ते हां !"

" कहां जाकर ?" " भन्ते ! काल-शिला-प्रदेशमें ।"

...शास्ताको वन्दनाकर काल-शिला जा परिनिर्वृत हुये !...

उक्काचेल-सुत्त ।

[१]ऐसा मैंने सुना—एक समय भगवान्, सारिपुत्र मौद्गल्यायनके परिनिर्वाणके थोड़ी ही देर बाद, बड़े भारी भिक्षु-संघके साथ, वज्जी (देश)में गंगा नदीके तीरपर उक्काचेल (=उल्काचेल)में विहार करते थे ।

उस समय भगवान् भिक्षु-संघके साथ खुली जगहमें बैठे हुये थे । तब भगवान्ने भिक्षु-संघको मौन देखकर भिक्षुओंको आमंत्रित किया—

" भिक्षुओ ! मुझे यह परिषद् शून्य सी जान पड़ती है । सारिपुत्र, मौद्गल्यायनके परिनिर्वाण न हुये समय, भिक्षुओ ! मुझे यह परिषद् अ-शून्य मालूम होती थी । जिस दिशामें सारिपुत्र मौद्गल्यायन विहरते थे, वह दिशा अपेक्षा-रहित (=किसी और की न चाहवाली) होती थी । भिक्षुओ ! अतीतकालमें भी जो कोई अर्हत् सम्यक् संबुद्ध हुये, उन भगवानोंकी भी इतनी ही उत्तम (=परम) श्रावकोंकी जोड़ी थी, जैसे कि मेरे सारिपुत्र मौद्गल्यायन । जो भी भिक्षुओ ! भविष्य कालमें अर्हत् सम्यक् संबुद्ध होंगे ; उन भगवानों की भी इतनी ही उत्तम (=परम) श्रावकोंकी जोड़ी होगी, जैसे कि मेरे सारिपुत्र मौद्गल्यायन । आश्चर्य है भिक्षुओ ! श्रावकोंको ! अद्भुत है भिक्षुओ ! श्रावकोंको, जो शास्ता (=गुरु)के शासन-कर (=धर्म-प्रचारक) हों, उपदेशक हों ; और चारो (प्रकारकी) परिषदोंके प्रिय=मनाप और गौरवास्पद हों । आश्चर्य है भिक्षुओ ! तथागतको, अद्भुत है भिक्षुओ ! तथागतको ; इस प्रकार के श्रावकोंकी जोड़ीके परिनिर्वृत हो जानेपर भी, तथागतको शोक=परिदेव नहीं है । सो भिक्षुओ ! वह कहांसे मिलै ! जो कुछ जात=भूत=संस्कृत है, वह सब नाश होनेवाला है । ' हाय ! वह न नाश हो ' इसका मौका नहीं । भिक्षुओ ! जैसे महान् वृक्षके खड़े रहते भी (उसके) सारवाले महास्कन्ध (=शाखायें) टूट जायें ; इसी प्रकार भिक्षुओ ! तथागतको, भिक्षु-संघके रहते भी, सारवाले सारि-पुत्र, मौद्गल्यायनका परिनिर्वाण है । सो वह भिक्षुओ ! कहां से मिलै ? जो कुछ जात=भूत=संस्कृत है, वह सब नाश होनेवाला है । इसलिये भिक्षुओ ! आत्म-दीप=आत्म-शरण=अनन्य शरण हो कर विहरो०[१] ।

---

१. सं. नि. ४६ : २ : ४ । २. अ. क. " धर्मसेनापति (=सारिपुत्र) कार्तिकमासकी पूर्णिमाको परिनिर्वृत हुये ; महामौद्गल्यायन उससे १६ दिन बाद कृष्णपक्षके उपोसथ (अमावास्या) को । शास्ता दोनों अग्रश्रावकोंके परिनिर्वाण हो जाने पर, महाभिक्षु-संघके साथ महामंडलमें चारिका करते, क्रमशः उक्काचेल-नगर (=हाजीपुर, जिला-मुजफ्फरपुर ?) को प्राप्त हो, वहां पिंडचारकर गंगाकी...रेतीमें विहार कर रहे थे । "

(१०)

महापरिनिव्वाण-सुत्त (त्रि. पू. ४२७-२६) ।

[१]ऐसा मैंने सुना—एक समय भगवान् राजगृहमें गृध्रकूट-पर्वतपर विहार करते थे ।

उस समय राजा मागध अजातशत्रु वैदेहीपुत्र [२]वज्जीपर चढ़ाई (=अभियान) करना चाहता था । वह ऐसा कहता था—' मैं इन ऐसे महर्द्धिक (=वैभव-शाली), =ऐसे महानुभाव, वज्जियोंको उच्छिन्न करूँगा, वज्जियोंका विनाश करूँगा, उनपर आफत ढाऊँगा ।'

तब ०अजात शत्रु० ने मगधके माहात्म्य (=महामंत्री) वर्षकार ब्राह्मणको कहा—

" आओ ब्राह्मण ! जहां भगवान् हैं, वहां जाओ । जाकर मेरे वचनसे भगवान्‌के पैरोंमें शिरसे वन्दना करो । आरोग्य=अल्प-आतंक, लघु-उत्थान (=फुरती), सुखविहार पूछो—' भन्ते ! राजा० वन्दना करता है, आरोग्य० पूछता है ।' और यह कहो—' भन्ते ! राजा० वज्जियों पर चढ़ाई करना चाहता है, वह ऐसा कहता है—' मैं इन ०वज्जियोंको उच्छिन्न करूँगा० ।' भगवान् जैसा तुम्हें उत्तर दें, उसे समझकर (आकर) मुझे कहो, तथागत अ-यथार्थ (=वितथ) नहीं बोला करते ।'

" अच्छा भो ! " कह" वर्षकार ब्राह्मण अच्छे अच्छे यानोंको जुड़वाकर, बहुत अच्छे यानपर आरूढ़ हो, अच्छे यानोंके साथ, राजगृहसे निकला; (और) जहां गृध्रकूट-पर्वत था, वहां चला । जितनी यानकी भूमि थी, उतनी यानसे जाकर, यानसे उतर पैदल ही, जहां भगवान् थे, वहां गया । जाकर भगवान्‌के साथ संमोदनकर…एक ओर बैठा; एक ओर बैठकर भगवान्‌को बोला—

" गौतम !० ' राजा० आप गौतमके पैरोंमें शिरसे वंदना करता है० । ० वज्जियोंको उच्छिन्न करूँगा० ' । "

उस समय आयुष्मान् आनन्द भगवान्‌के पीछे (खड़े) भगवान्‌को पंखा झल रहे थे । तब भगवान्‌ने आयुष्मान् आनन्दको आमंत्रित किया—

" आनन्द ! क्या तूने सुना है, (१) वज्जी बराबर (बैठकमें) इकट्ठा (=सन्निपात) होनेवाले हैं=सन्निपात-बहुल हैं ? "

" सुना है, भन्ते ! वज्जी बराबर० । "

---

१. दी. नि. २:३ (१६) । २. अ. क. " गंगाके घाटके पास आधा योजन अजातशत्रुका राज्य था, और आधा योजन लिच्छवियोंका ।…। वहां पर्वतके पाद (=जड़) से बहुमूल्य सुगंध-वाला माल उतरता था । उसको सुनकर अजात-शत्रुके- ' आज जाऊँ कलजाऊँ ' करतेही, लिच्छवी एकराय, एकमत हो पहिलेही जाकर सब ले लेते थे । अजातशत्रु पीछे जाकर उस समाचारको पा क्रुद्ध हो चला जाताथा । वह दूसरे वर्ष भी वैसाही करते थे । तब उसने अत्यन्त कुपित हो…ऐसा सोचा—' गण(=प्रजातंत्र) के साथ युद्ध मुश्किल है, (उनका) एक भी प्रहार बेकार नहीं जाता । किसी एक पंडितके साथ मंत्रणा करके करना अच्छा होगा ।…'। (सोच) उसने वर्षकार ब्राह्मणको भेजा ।

"आनन्द! जब तक वज्जी (बैठकमें) इकट्ठा होनेवाले रहेंगे=सन्निपात-बहुल रहेंगे; (तब तक) आनन्द! वज्जियोंकी वृद्धि ही समझना, हानि नहीं। (२) क्या आनन्द! तूने सुना है, वज्जी एक हो [1]बैठक करते हैं, एक हो उत्थान करते हैं; वज्जी एक हो करणीय (=कर्तव्य)को करते हैं?"

"सुना है, भन्ते! ०।"

"आनन्द! जब तक०। (३) क्या ०सुना है, वज्जी अ-प्रज्ञप्त (=गैरकानूनी)को प्रज्ञप्त (=विहित) नहीं करते, प्रज्ञप्त (=विहित)का उच्छेद नहीं करते। जैसे प्रज्ञप्त है, वैसे ही पुराने [2]वज्जि-धर्म (=वज्जि नियम)को ग्रहणकर, वर्तात्र करते हैं?

"भन्ते! मैंने यह सुना है।"

"आनन्द ०! जब तक कि०। (४) क्या आनन्द! तूने सुना है—वज्जियोंके जो महल्लक (वृद्ध) हैं, उनका (वह) सत्कार करते हैं,=गुरुकार करते हैं, मानते हैं, पूजते हैं; उनकी (बात) सुनने योग्य मानते हैं।" "भन्ते! सुना है ०।"

आनन्द! जब तक कि ०। (५) क्या सुना है—जो वह कुल-स्त्रियां हैं, कुल-कुमारियां हैं, उन्हें (वह) छीनकर, जबर्दस्ती नहीं बसाते?" "भन्ते सुना है ०?"

"आनन्द! ० जब तक०। (६) क्या ० सुना है—वज्जियोंके (नगरके) भीतर या बाहरके जो चैत्य (=चौरा=देव-स्थान) हैं, उनका सत्कार करते हैं, ० पूजते हैं। उनकेलिये पहिले किये गये दानको, पहिलेकी गई धर्मानुसार बलि (=वृत्ति)को, लोप नहीं करते?"

"भन्ते! सुना है ०?"

---

१. अ. क. "आवश्यक बैठकके बिगुल (=सन्निपात-भेरी)...के शब्दके सुनते ही, खाते हुये भी, आभूषण पहिनते भी, वस्त्र पहिनते भी, अध-खाये ही, अध-भूषित ही, वस्त्र पहिनते हुये ही...एक (=समग्र) हो जमा होते हैं, जमा हो सोचकर, मंत्रणाकर, कर्तव्य करते हैं...।"

२. अ. क. "...पहिले न किये गये, शुल्क, या बलि (=कर) या दंडको लेनेवाले अ-प्रज्ञप्त करते हैं।...। पुराना वज्जि-धर्म...यहां पहिले वज्जि राजा लोग 'यह चोर है=अपराधी है' (कह) लाकर दिखलानेसे, 'इस चोरको बांधो' न कह, विनिश्चय-महामात्य (=न्यायाधीश)को देते हैं, वह विचारकर अचोर होनेपर छोड़ देते थे, यदि चोर होता, तो अपने कुछ न कहकर, 'व्यवहारिक'को दे देते हैं। वह भी विचारकर अचोर होनेपर छोड़ देते, यदि चोर होता, तो 'सूत्रधार' को दे देते हैं। वह भी विचारकर अचोर होनेपर छोड़ देते, यदि चोर होता, तो 'अष्टकुलिक' का दे देते। वह भी वैसाही कर सेनापतिका, सेनापति उपराज को, उपराज राजा(=राष्ट्रपति)को, राजा विचारकर यदि अचोर होता तो छोड़ देता। यदि चोर (=अपराधी) होता, तो प्रवेणी-पुस्तक (=कानूनकी किताब) बंचवाता। उसमें—'जिसने यह किया उसको ऐसा दंड हो' लिखा रहता है। राजा उसकी क्रियाको उससे मिलाकर, उसके अनुसार दंड करता।..."

" जब तक ०। (७) क्या सुना है,—वज्जीलोग अर्हतों (= पूज्यों)की अच्छी तरह धार्मिक (=धर्मानुसार) रक्षा=आवरण,=गुप्ति करते हैं। किसलिये? भविष्यके अर्हत् राज्यमें आवें, आये अर्हत् राज्यमें सुखसे विहार करें।" "सुना है भन्ते! ०।"

"जब तक ०।"

तब भगवान्‌ने ०वर्षकार ब्राह्मणको आमंत्रित किया—

"ब्राह्मण! एक समय मैं वैशालीमें सारन्दद-चैत्यमें विहार करता था। वहाँ मैंने वज्जियोंको यह सात अपरिहाणीय-धर्म (=अ-पतनके नियम) कहे। जबतक ब्राह्मण! यह सात अपरिहाणीय-धर्म वज्जियोंमें रहेंगे; इन सात अपरिहाणीय-धर्मोंमें वज्जी (लोग) दिखलाई पड़ेंगे; (तबतक) ब्राह्मण! वज्जियोंकी वृद्धि ही समझना, परि-हानि नहीं।'

ऐसा कहने पर ०वर्षकार ब्राह्मण भगवान्‌को बोला—

"हे गौतम! एकभी अपरिहाणीय-धर्मसे वज्जियोंकी वृद्धि ही समझनी होगी, सात अ-परिहाणीय धर्मोंकी तो बातही क्या? हे गौतम! राजा० को उपलाप (=रिश्वत देना), या आपसमें फूटको छोड़, युद्ध करना ठीक नहीं। हन्त! हे गौतम! अब हम जाते हैं, हम बहुत-कृत्य=बहु-करणीय (=बहुतकाम वाले) हैं ०"

"ब्राह्मण! जिसका तू काल समझता है ०"

तब मगध-महामात्य वर्षकार ब्राह्मण भगवान्‌के भाषणको अभिनन्दनकर, अनुमोदनकर आसनसे उठकर, [1]चला गया। तब भगवान्‌ने ०वर्षकार ब्राह्मणके जानेके थोड़ीही देर बाद आयुष्मान् आनन्दको आमंत्रित किया—

" जाओ आनन्द। तुम जितने भिक्षु राजगृहके आसपास विहरते हैं; उन सबको उपस्थानशालामें एकत्रित करो।"

" अच्छा भन्ते!"···" भन्ते! भिक्षुसंघको एकत्रित कर दिया, अब भगवान् जिसका समय समझें।

तब भगवान् आसनसे उठकर जहाँ उपस्थानशाला थी,-वहां जा, बिछे आसनपर बैठे। बैठकर भगवान्‌ने भिक्षुओंको आमंत्रित किया—" भिक्षुओ! तुम्हें सात अपरिहाणीय-धर्म उपदेश कहता हूँ, उन्हें सुनो कहता हूँ।"

---

१. अ.क. "राजाके पास गया। राजाने उसको पूछा—'आचार्य! भगवान्‌ने क्या कहा?'। उसने कहा—'भो! श्रमण०के कथनसे तो वज्जियोंको किसी प्रकार भी लिया नहीं जा सकता हां, उपलापन और आपसेमें फूट होनेसे लिया जा सकता है'। तब राजाने कहा—'उपलापन से हमारे हाथी घोड़े नष्ट होंगे, भेद (=फूट)से ही पकड़ना चाहिये। (फिर) क्या करेंगे?"

" तो महाराज! वज्जियोंको लेकर तुम परिषद्‌में बात उठाओ। तब मैं—' महाराज! तुम्हें उनसे क्या है? अपनी कृषि, वाणिज्य करके यह राजा (=प्रजातन्त्रके सभासद्) जीयें'—कहकर चला जाउँगा। तब तुम बोलना—' क्योंजी! यह ब्राह्मण वज्जियोंके सम्बन्धमें होती बातको रोकता है'। उसी दिन मैं उन (=वज्जियों)के लिये भेंट (=पर्णाकार)

....“ अच्छा भन्ते ! ”....

(१) भिक्षुओ ! जब तक भिक्षु वार वार (=अभीक्ष्णं) इकट्ठा होनेवाले =सन्निपात-बहुल रहेंगे; (तब तक) भिक्षुओ ! भिक्षुओंकी वृद्धि समझना, हानि नहीं । (२) जब तक भिक्षुओ ! भिक्षु एक हो बैठक करेंगे, एक हो उत्थान करेंगे; एक हो संघके करणीय (कामों)

भेजूँगा; उसे भी पकड़कर मेरे ऊपर दोषारोपणकर, बंधन, ताड़न आदि न कर, छुरेसे मुंडन करा मुझे नगरसे निकाल देना । तब मैं कहूंगा—मैंने तेरे नगरमें (=प्राकार) और परिखा (=खाई) बनवाई हैं; मैं दुर्बल…तथा गंभीर स्थानोंको जानताहूं, अब जल्दी (तुझे) सीधा करूंगा’ । ऐसा सुनकर बोलना—‘तुम जाओ’ ।

“राजाने सब किया । लिच्छवियोंने उसके निकालने (=निष्क्रमण)को सुनकर कहा—‘ब्राह्मण मायावी (=शठ)है, उसे गंगा न उतरने दो ।’ तब किन्हीं किन्हींके-‘हमारे लिये कहनेसे तो वह (राजा) ऐसा करता है’ कहनेपर,—‘ तो भणे ! आनेदो’। उसने जाकर लिच्छवियों द्वारा —‘किसलिये आये ?’ पूछनेपर, वह (सब)हाल कह दिया । लिच्छवियोंने—‘ थोड़ीसी बातके लिये इतना भारी दंड करना युक्त नहीं था’ कहकर—‘वहां तुम्हारा क्या पद(=स्थानान्तर)था’—पूछा । ‘ मैं विनिश्चय-महामात्य था’—(कहनेपर)—‘यहां भी (तुम्हारा)वही पद रहे’—कहा । वह सुन्दर तौरसे विनिश्चय (=इन्साफ) करता था । राजकुमार उसके पास विद्या (=शिल्प) ग्रहण करते थे । अपने गुणोंसे प्रतिष्ठित होजानेपर उसने एक दिन एक लिच्छविको एक ओर लेजाकर—‘खेत (=केदार=क्यारी) जोतते हैं’ ? ‘हां जोतते हैं’ । ‘ दो बैल जोतकर ?’ ‘ हां, दो बैल जोतकर’—कहकर लौट आया । तब उसको दूसरेके—‘आचार्य ! (उसने)क्या कहा ?’—पूछनेपर, उसने कह दिया । (तब) मेरा विश्वास न कर, यह ठीक ठीक नहीं बतलाता है’ (सोच) उससे बिगाड़ कर लिया । ब्राह्मण दूसरेदिनभी एक लिच्छवीको एकओर लेजाकर ‘ किस व्यंजन (=तेमन=तरकारी)से भोजन किया’ पूछकर लौटनेपर, उससेभी दूसरेने पूछकर, न विश्वासकर वैसेही बिगाड़ कर लिया । ब्राह्मण किसी दूसरे दिन एक लिच्छवीको एकान्तमें लेजाकर—‘ बड़े गरीब हो न ?’ —पूछा । ‘किसने ऐसा कहा ?’ ‘ अमुक लिच्छवीने ।’ दूसरेकोभी एक ओर लेजाकर—‘ तुम कायर हो क्या ?’ ‘ किसने ऐसा कहा ’ ‘ अमुक लिच्छवीने ’ । इस प्रकार दूसरेके न कहे हुयेको कहते तीन वर्ष (४२५—४२३ वि. पू.) में उन राजाओंमें परस्पर ऐसी फूट डाल दी, कि दो एक रास्तेसे भी न जाते थे । वैसा करके जमा होनेका नगारा (=सन्निपात भेरी) बजवाया ।

लिच्छवी—‘ मालिक (=ईश्वर) लोग जमा हो ’—कहकर नहीं जमा हुये । तब उस ब्राह्मणने राजाको जल्दी आनेके लिये खबर (=शासन) भेजी । राजा सुनकर सैनिक-नगारा (=बलभेरी) बजवाकर निकला । वैशालीवालोंने सुनकर भेरी बजवाई—‘(आओ चलें) राजाको गङ्गा न उतरने दें ’ । उसकोभी सुनकर—‘ देव-राज (=सुर-राज) लोग जांयें ’ आदि कहकर लोग नहीं जमा हुये । (तब) भेरी बजवाई —‘ नगर में घुसने न दें, (नगर-) द्वार बन्द करके रहें ’ । एक भी नहीं जमा हुआ । (राजा अजात-शत्रु) खुले द्वारोंसे ही घुसकर, सबको तबाह कर (=अनय-व्यसनं पापेत्वा) चला गया ।

को करेंगे; (तब तक) भिक्षुओ ! भिक्षुओंकी वृद्धिही समझना, हानि नहीं । (३) जब तक ० अप्रज्ञप्तों (=अ-विहितों)को प्रज्ञप्त नहीं करेंगे, प्रज्ञप्तका उच्छेद नहीं करेंगे; प्रज्ञप्त शिक्षा-पदों (=विहित भिक्षु-नियमों)के अनुसार वर्तेंगे ० । (४)जब तक ० जो वह रक्तज्ञ (=धर्मा-नुरागी) चिरप्रव्रजित, संघके पिता, संघके नायक, स्थविर भिक्षु हैं, उनका सत्कार करेंगे गुरुकार करेंगे, मानेंगे, पूजेंगे, उन (की बात)को सुनने योग्य मानेंगे ० । (५) जब तक पुनः पुनः उत्पन्न होनेवाली तृष्णाके वशमें नहीं पड़ेंगे ० । (६) जब तक ० भिक्षु, आरण्यक शयनासन (=वनकी कुटियों) की इच्छावाले रहेंगे ० । (७) जब तक भिक्षुओ ! हर एक भिक्षु यह याद रक्खेंगे कि अनागत (=भविष्य)में सुन्दर सब्रह्मचारी आवें, आये हुए (=आगत) सुन्दर सब्रह्मचारी सुखसे विहरें; (तब तक) ० । भिक्षुओ ! जब तक यह सात अ-परिहानीय धर्म (भिक्षुओंमें) रहेंगे; (जब तक) भिक्षु इन सात अ-परिहानीय धर्मोंमें दिखाई देंगे; (तब तक) ० ।

"भिक्षुओ ! और भी सात अ-परिहानीय धर्मोंको कहता हूँ । उसे सुनो० ।....। (१) भिक्षुओ ! जबतक भिक्षु (सारे दिन चीवर आदिके) काममें लगे रहने वाले (=कर्मा-राम) =कर्मरत=कर्मारामता-युक्त नहीं होंगे । (तबतक)० । (२) जबतक भिक्षु बक-वादमें लगे रहनेवाले (=भस्साराम), =भस्सरत=भस्सारामता-युत नहीं होंगे । (३)० निद्राराम=निद्रा-रत=निद्रारामता-युक्त नहीं होंगे० । (४)० संगणिकाराम (=भीड़को पसन्द करनेवाले)=संगणिक-रत=संगणिकारामता-युक्त नहीं होंगे० । (५)० पापेच्छ (=बदनीयत)=पाप-इच्छाओंके वशमें नहीं होंगे० । (६)० पाप-मित्र (=बुरे मित्रोंवाले), =पाप-सहाय, बुराईकी ओर झुकानवाले न होंगे० । (७)० थोड़ेसे विशेष (=योग-साफल्य)को पाकर बीचमें न छोड़ देंगे० । ० ।

"भिक्षुओ ! और भी सात अ-परिहानीय धर्मोंको कहता हूँ ।०।....। (१) भिक्षुओ ! जबतक भिक्षु श्रद्धालु होंगे० । (२)० (पापसे) लज्जाशील (=ह्रीमान्) होंगे० । (३)० (पापसे) भय खानेवाले (=अपत्रपी) होंगे० । (४) ०बहुश्रुत० (५)० उद्योगी (=आरब्ध-वीर्य) ० । (६)० याद रखनेवाले (=उपस्थित-स्मृति)० । (७)० प्रज्ञावान् होंगे० । ० ।

"भिक्षुओ ! और भी सात अ-परिहानीय धर्मोंको ० । (१) भिक्षुओ ! जबतक भिक्षु स्मृति-संबोध्यंगकी भावना करेंगे० । (२)० धर्म-विचय संबोध्यंगकी० । (३)० वीर्य-सं० । (४) प्रीतिसं० (५)० प्रश्रब्धि-सं० । (६)० समाधि-सं० । (७)० उपेक्षा-संबोध्यंगको ।०।०।

"भिक्षुओ ! और भी सात अपरिहाणीय धर्मोंको कहता हूँ ।...। (१) भिक्षुओ ! जबतक भिक्षु अनित्य-संज्ञाकी भावना करेंगे० (२)० अनात्मसंज्ञा० । (३) ०अशुभसंज्ञा० । (४) ०आदिनव(=दुष्परिणाम)-संज्ञा० । (५) प्रहाण-(=त्याग,० । (६) ०विरागसंज्ञा० (७) ०निरोधसंज्ञा० ।०।

"भिक्षुओ ! और भी छः अ-परिहाणीय धर्मोंको कहता हूँ० ।...। (१) जबतक भिक्षु-सब्रह्मचारियों (=गुरुभाइयों)में गुप्त और प्रकट, मैत्रीपूर्ण कायिक कर्म उपस्थित रक्खेंगे० ।

(३) ०मैत्रीपूर्ण वाचिक-कर्म उपस्थित रक्खेंगे० । (४) ०जबतक भिक्षु धार्मिक, धर्मसे प्राप्त जो लाभ हैं—अन्तमें पात्रमें चुपड़ने मात्र भी—वैसे लाभोंको (भी) शीलवान् स-ब्रह्मचारी भिक्षुओंमें बांटकर भोग करने वाले होंगे० (५) ०जबतक भिक्षु; जो वह अखंड=अ-छिद्र, अ-कल्मष=भुजिस्स, विद्वानोंसे प्रशंसित, अ-निंदित, समाधिकी ओर (ले) जाने वाले, शील हैं, वैसे शीलोंसे शील-श्रामण्य-युक्त हो सब्रह्मचारियोंके साथ गुप्तभी प्रकट भी विहरेंगे०। (६)जो वह आर्य (=उत्तम), नैर्याणिक (=पार करानेवाली), वैसा करनेवालेको अच्छी प्रकार दुःखक्षयकी ओर लेजानेवाली दृष्टि है, वैसी दृष्टिसे दृष्टि-श्रामण्य-युक्त हो, सब्रह्मचारियोंके साथ गुप्त भी प्रगट भी विहरेंगे० । भिक्षुओ! जबतक यह छः अ-परिहाणीय धर्म० ।

वहां राजगृहमें गृध्रकूट-पर्वतपर विहार करते हुये भगवान् बहुत करके भिक्षुओंको यही धर्मकथा कहते थे—ऐसा शील है, ऐसी समाधि है, ऐसी प्रज्ञा है । शीलसे परिभावित समाधि महा-फलवाली=महा-आनृशंसवाली होती है । समाधिसे परिभावित प्रज्ञा महाफलवाली=महानृशंसवाली होती है । प्रज्ञासे परिभावित चित्त अच्छी तरह [१]आस्रवों,—कामास्रव, भवास्रव, दृष्टि-अस्रव—से मुक्त होता है ।

(अम्ब-लट्ठिकामें) ।

तब भगवान्ने राजगृहमें इच्छानुसार विहारकर आयुष्मान् आनन्दको आमंत्रित किया—

"चलो आनन्द! जहां [२]अम्बलट्ठिका है, वहां चलें ।"

"अच्छा, भन्ते!"...

भगवान् महान् भिक्षु-संघके साथ जहां अम्बलट्ठिका थी, वहां पहुँचे । वहां भगवान् अम्बलट्ठिकामें राजगारकमें विहार करते थे । वहां ०राजागारकमें भी भगवान् भिक्षुओंको बहुत करके यही धर्म-कथा कहते थे—० ।

भगवान्ने अम्बलट्ठिकामें यथेच्छ विहार करके आयुष्मान् आनन्दको आमंत्रित किया—

"चलो आनन्द! जहां नालन्दा है, वहां चलें ।"

"अच्छा भन्ते!"...

वहांसे भिक्षु-संघके साथ तब भगवान् जहां नालन्दा थी, वहां पहुँचे । वहां भगवान् [३]नालन्दामें प्रावारिक-आम्रवनमें विहार करते थे । तब आयुष्मान् [४]सारिपुत्र जहां भगवान् थे, वहां गये । जाकर भगवान्को अभिवादनकर एक ओर बैठे । एक ओर बैठे आयुष्मान् सारिपुत्रने भगवान्को कहा—

"भन्ते! मैं ऐसा प्रसन्न (=श्रद्धावान्) हूँ—'संबोधि (=परम ज्ञान) में भगवान्से बढ़कर, या भूयस्तर कोई दूसरा श्रमण ब्राह्मण न हुआ, न होगा, न इस समय है' ।"

---

१. देखो आस्रव । २. वर्तमान सिलाव (?) जि. पटना । ३. मिलाओ स. नि. ४५:२:२ । ४. सारिपुत्रका निर्वाण पहिलेही हो चुकनेसे, यह भाणकोंके प्रमादसे यहां आया मालूम होता है ।

" सारिपुत्र ! तूने यह बहुत उदार (=बड़ी)=आर्षभी वाणी कही । एकांश सिंहनाद ...किया—' मैं ऐसा प्रसन्न हूं० ।' सारिपुत्र ! जो वह अतीतकालमें अर्हत् सम्यक्-संबुद्ध हुये, क्या (तूने) उन सब भगवानोंको (अपने) चित्तसे जान लिया; कि वह भगवान् ऐसे शील वाले, ऐसी प्रज्ञा वाले, ऐसे विहार वाले, ऐसी विमुक्ति वाले थे ?'

"नहीं भन्ते !

"सारिपुत्र ! जो वह भविष्यकालमें अर्हत् सम्यक् संबुद्ध होंगे, क्या उन सब भगवानों को चित्तसे जान लिया० ?" " नहीं भन्ते !"

" सारिपुत्र ! इस समय में अर्हत् सम्यक् संबुद्ध हूं, क्या चित्तसे जान लिया, (कि मैं) ऐसी प्रज्ञावाला० हूँ ?" " नहीं भन्ते !"

" (जब) सरिपुत्र ! तेरा अतीत, अनागत (=भविष्य), प्रत्युत्पन्न (=वर्तमान) अर्हत् सम्यक्-संबुद्धों के विषयमें चेतः-परिज्ञान (=पर-चित्तज्ञान) नहीं है; तो सारिपुत्र ! तूने क्यों यह बहुत उदार आर्षभी वाणी कही० ?"

" भन्ते ! अतीत-अनागत-प्रत्युत्पन्न अर्हत् सम्यक् संबुद्धोंमें मुझे चेतः-परिज्ञान नहीं है; किंतु (सबकी) धर्म-अन्वय (=धर्म-समानता) विदित है । जैसे कि भन्ते ! राजा का सीमान्त-नगर दृढ़ नींववाला, दृढ़-प्राकारवाला, एक द्वारवाला हो । वहां अज्ञातों (=अपरिचितों)को निवारण करनेवाला, ज्ञातों (=परिचितों)को प्रवेश करनेवाला पंडित-व्यक्त, मेधावी द्वारपाल हो । वहां नगरके चारो ओर, अनुपर्याय (=वारी वारीसे) मार्गपर घूमते हुये (मनुष्य), प्राकारमें अन्ततो बिल्लीके निकलने भर की भी संधि=विवर न पाये; । उसको ऐसा हो—'जो कोई बड़े बड़े प्राणी इस नगर में प्रवेश करते हैं; सभी इसी द्वारसे० । ऐसेही भन्ते ! मैंने धर्म-अन्वय जान लिया—"जो वह अतीतकालमें अर्हत् सम्यक्-संबुद्ध हुये, वह सब भी भगवान् चित्तके उपक्लेश (=मल), प्रज्ञाको दुर्बल करनेवाले, पांचो नीवरणोंको छोड़, चारों स्मृति-प्रस्थानोंमें चित्तको सु-प्रतिष्ठित कर, सात बोध्यंगोंको यथार्थसे भावना कर, सर्वश्रेष्ठ (=अनुत्तर) सम्यक्-संबोधि(=परमज्ञान)को अभिसंबोधन किये थे (=जाना था) । और भन्ते ! अनागतमें भी जो अर्हत् सम्यक्संबुद्ध होंगे; वह सब भी भगवान्० । भन्ते ! इस समय भगवान् अर्हत् सम्यक् संबुद्धने भी चित्तके उपक्लेश० ।"

वहां नालन्दामें प्रावारिक-आम्रवनमें विहार करते, भगवान् भिक्षुओंको बहुत करके यही कहते थे० ।

(पाटलि-ग्राम में) ।

तब भगवान्ने नालन्दामें इच्छानुसार विहार कर, आयुष्मान् आनन्दको आमंत्रित किया—

"आनन्द ! चलो, जहां पाटलीग्राम है, वहां चलें ।"

" भन्ते ! अच्छा "

---

१. पृष्ठ १७३ । २. पृष्ठ ११८ ।

तब ··· भिक्षुसंघके साथ भगवान् जहां पाटलिग्राम था, वहां गये ।··· उपासकोंने सुना कि भगवान् पाटलिग्राम आये हैं । तब ··· उपासक जहां भगवान् थे वहां गये । जाकर भगवान् को अभिवादन कर एक ओर बैठ गये । एक ओर बैठे हुये··· उपासकोंने भगवान्को यह कहा--

" भन्ते ! भगवान् हमारे आवसथागार[1] (=अतिथिशाला)को स्वीकार करें ।

भगवान्ने मौनसे स्वीकार किया ।

तब··· उपासक भगवान्की स्वीकृतिको जान आसनसे उठ भगवान्को अभिवादनकर, प्रदक्षिणा कर जहां आवसथागार था, वहां गये०। तब भगवान् सायंकालको पहिनकर पात्र चीवर ले भिक्षुसंघके साथ [2]०आवसथागारमें प्रविष्ट हो बीचके खम्भेके पास पूर्वाभिमुख बैठे० । तब भगवान्ने··· उपासकोंको आमंत्रित किया—

" गृहपतियो ! दुराचारसे दुःशील (=दुराचारी)के यह पांच दुष्परिणाम हैं । कौनसे पांच ? ०[3] ।"

तब भगवान्ने बहुत रात तक··· उपासकोंको धार्मिक-कथासे संदर्शित··· समुत्तेजितकर ···उद्योजित किया—

" गृहपतियो रात क्षीण होगई, जिसका तुम समय समझते हो (वैसा करो) ।"

" अच्छा भन्ते ! "··· पाटलिग्राम-वासी···· उपासक··· आसनसे उठकर भगवान्को अभिवादनकर, प्रदक्षिणाकर चले गये । तब पाटलिग्रामिक उपासकोंके चले जानेके थोड़ीही देर बाद भगवान् शून्य-आगारमें चले गये ।

उस समय सुनोध (=सुनीथ) और वर्षकार मगधके महामात्य पाटलिग्राममें वज्जियों को रोकनेके लिये नगर बसाते थे ।···। भगवान्ने रातके प्रत्यूप-समय (=भिनसार)को उठकर आयुष्मान् आनन्दको आमंत्रित किया—

" आनन्द ! पाटलिग्राममें कौन नगर बना रहा है ?"

" भन्ते ! सुनीथ और वर्षकार मगध-महामात्य, वज्जियोंके रोकनेके लिये नगर बसा रहे हैं ।"

" आनन्द ! जैसे त्रयस्त्रिंशके देवताओंके साथ मंत्रणा करके मगधके महामात्य सुनीथ, वर्षकार, वज्जियोंके रोकनेके लिये नगर बना रहे हैं । यहां आनन्द ! मैंने दिव्य अमानुप

---

१. उदान अ. क. ८: ६ "भगवान् कब पाटलीग्राममें गये ?···श्रावस्तीमें धर्म-सेनापति (=सारिपुत्र)का चैत्य बनवा, वहांसे निकलकर राजगृहमें वास करते, वहां आयुष्मान् महामौद्गल्यायन का चैत्य बनवाकर, वहां से निकलकर अंबलट्ठिका में वासकर; अ-त्वरित-चारिका से जनपद-चारिका करते ; वहां वहां एक रात वास करते, लोकानुग्रह करते, क्रमशः पाटलिग्राम पहुँचे ।···। पाटलिग्राममें अजातशत्रु और लिच्छवी राजाओंके आदमी समय समय पर, आकर घरके मालिकोंको घरसे निकाल कर, मास भी आधामासभी बस रहते थे । इससे पाटलिग्राम-वासियोंने नित्य पीडित हो—उनके आनेपर यह (हमारा) वास-स्थान होगा—(सोचकर)···नगर के बीचमें महाशाला बनवाई । उसीका नामथा 'आवसथागार' । वह उसी दिन समाप्त हुआ था ।
२. देखो पृष्ठ ४८७ । ३. देखो पृष्ठ ४९८ ।

नेत्रसे देखा—बहु-सहस्र देवता यहां पाटलि-ग्राममें वास्तु (=घर, निवास) ग्रहण कर रहे हैं। जिस प्रदेशमें महाशक्ति-शाली (=महेसक्ख) देवता वास ग्रहण कर रहे हैं, वहां महा-शक्ति-शाली राजाओं और राज-महामात्योंका चित्त, घर बनानेको लगेगा। जिस प्रदेशमें मध्यम देवता वास ग्रहण कर रहे हैं, वहां मध्यम राजाओं और राज-महामात्योंका चित्त घर बनानेको लगेगा। जिस प्रदेशमें नीच देवता०, वहां नीच राजाओं०। आनन्द! जितने (भी) आर्य-आयतन (=आर्योंके निवास) हैं, जितने (भी) वणिक्-पथ (=व्यापार-मार्ग) हैं, (उनमें) यह पाटलि-पुत्र पुट-भेदन (=मालकी गांठ जहां तोड़ी जाय) अग्र (=प्रधान)-नगर होगा। पाटलि-पुत्रके तीन अन्तराय (=विघ्न) होंगे, आग, पानी, और आपसकी फूट।"

तब मगध-महामामात्य सुनीथ और वर्षकार जहां भगवान् थे, वहां गये; जाकर भगवान्के साथ संमोदनकर···एक ओर खड़े हुये···भगवान्को बोले—

"भिक्षु-संघके साथ आप गौतम हमारा आजका भात स्वीकार करें।"

भगवान्ने मौनसे स्वीकार किया।

तब० सुनीथ वर्षकारने भगवान्की स्वीकृति जानकर, जहां उनका आवसथ था (=डेरा) था, वहां गये। जाकर अपने आवसथमें उत्तम खाद्य-भोज्य तैयार करा (उन्होंने) भगवान्को समयकी सूचना दी···।

तब भगवान् पूर्वाह्न समय पहिनकर, पात्रचीवर ले भिक्षुसंघके साथ जहां मगध-माहात्म्य सुनीथ, और वर्षकारका आवसथ था, वहां गये; जाकर बिछे आसनपर बैठे। तब सुनीथ, वर्षकारने बुद्ध-प्रमुख भिक्षुसंघको अपने हाथसे उत्तम खाद्य-भोज्यसे संतर्पित-संप्रवारित किया। तब०सुनीथ वर्षकार, भगवान्के भोजनकर पात्रसे हाथ हटा लेनेपर, दूसरा नीचा आसन लेकर, एक ओर बैठ गये। एक ओर बैठे हुये मगध-महात्म्य सुनीथ, वर्षकारको भगवान्ने इन गाथाओंसे (दान-)अनुमोदन किया—

"जिस प्रदेश (में) पंडित पुरुष, शीलवान्, संयमी, ब्रह्मचारियोंको भोजन कराकर वास करता है ॥ १ ॥

वहां जो देवता हैं, उन्हें दक्षिणा (=दान-भाग) देनी चाहिये। वह देवता पूजितहो पूजा करती हैं, मानितहो मानती हैं ॥ २ ॥

तब(वह)औरस पुत्रकी भांति इसपर अनुकम्पा करती हैं। देवताओंसे अनुकम्पितहो पुरुष सदा मंगल देखता है ॥ ३ ॥

तब भगवान्०सुनीथ और वर्षकारको इन गाथाओंसे अनुमोदन कर, आसनसे उठ कर चले गये।

उस समय०सुनीथ, वर्षकार भगवान्के पीछे पीछे चल रहे थे—'श्रमण गौतम आज जिस द्वारसे निकलेगा, वह गौतम-द्वार···होगा। जिस तीर्थ (=घाट)से गंगानदी पार होगा, वह गौतम-तीर्थ···होगा। तब भगवान् जिस द्वारसे निकले, वह गौतमद्वार···हुआ।

भगवान् जहां गंगा-नदी है, वहां गये । उस समय गंगा करारों बराबर भरी, करारपर बैठे कौवेके पीने योग्य थी । कोई आदमी नाव खोजते थे, कोई० बेड़ा (=उलुम्प) खोजते थे, कोई० कूला(=कुल्ल) बांधते थे । तब भगवान्, जैसे कि बलवान् पुरुष समेटी बांहको (सहजही) फैला दे, फैलाई बांहको समेट ले, ऐसेही भिक्षुसंघके साथ गंगानदीके इस पारसे अन्तर्ध्यान हो, परले तीरपर जा खड़े हुये । भगवान्‌ने उन मनुष्योंको देखा, कोई कोई नाव खोज रहे थे० । तब भगवान्‌ने इस अर्थको जानकर, उसी समय यह उदान कहा—

" (पंडित) छोटे जलाशयों (=पल्वलों)को छोड़ समुद्र और नदियोंको सेतुसे तरते हैं । (जबतक) लोग कूला बांधते रहते हैं, (तबतक) मेधावी जन तर गये रहते हैं ।"

(कोटिग्राममें) ।

तब भगवान्‌ने आयुष्मान् आनंदको आमंत्रित किया—

" आओ आनन्द ! जहां कोटिग्राम है, वहां चलें ।" " अच्छा भन्ते !"

तब भगवान् महाभिक्षु-संघके साथ जहां कोटिग्राम था, वहां गये । वहां भगवान् कोटि-ग्राममें विहार करते थे । भगवान्‌ने भिक्षुओंको आमंत्रित किया—

"भिक्षुओ ! चारों [1]आर्य-सत्योंके अनुबोध (=बोध)=प्रतिवेध न होनेसे इस प्रकार दीर्घकालसे (यह) दौड़ना=संसरण (=आवागमन) ('मेरा और तुम्हारा') होरहा है । कौनसे चारोंके ? भिक्षुओ ! दुःख आर्य-सत्यके बोध=प्रतिबोध न होनेसे० । दुःख-निरोध० । दुःख-निरोध-गामिनी प्रतिपद्० । भिक्षुओ ! सो इस दुःख आर्य-सत्यको अनु-बोध=प्रतिबोध किया०, (तो) भवतृष्णा उच्छिन्न होगई, भवनेत्री (=तृष्णा) क्षीण होगई"

—भगवान्‌ने यह कहा ।···

वहां कोटिग्राममें विहार करते भी भगवान्, भिक्षुओंको बहुत करके यही धर्मकथा कहते थे० ।०

(नादिकामें) ।

तब भगवान्‌ने कोटिग्राममें इच्छानुसार विहरकर, आयुष्मान् आनन्दको आमंत्रित किया—

"आओ आनन्द ! जहां [2]नादिका (=नातिका) है, वहां चलें ।"

"अच्छा भन्ते !"

तब भगवान् महान् भिक्षुसंघके साथ जहां नादिका है, वहां गये । वहां नदिकामें भगवान् गिजकावसथमें विहार करते थे···। वहां नादिकामें विहार करते भी भगवान्‌ने भिक्षुओंको यही धर्मकथा० ।

---

१. देखो पृष्ठ १२३-२७ ।

२. "एक ज्ञातृयों (=ञाति=ज्ञातृ=ज्ञातर=जातर=जतरिया=जथरिया=जैथरिया)के गांवमें ।" नादिका=ज्ञातृका=नत्तिका=लत्तिका=रत्तिका=रत्ती, जिसके नामसे वर्तमान रत्ती पर्गना (जि. मुजफ्फरपुर) है ।

(वैशालीमें) ।

०तब भगवान् महाभिक्षु-संघके साथ जहां वैशाली थी वहां गये । वहां वैशालीमें अम्ब-पाली-वनमें विहार करते थे । वहां भगवान्ने भिक्षुओंको आमंत्रित किया—

"भिक्षुओ ! स्मृति और संप्रजन्यके साथ विहार करो, यही हमारा अनुशासन है ।…"

अम्बपाली गणिकाने सुना—भगवान् वैशालीमें आ गये ; और वैशालीमें मेरे आम्र-वनमें विहार करते हैं । अम्बपाली गणिका सुन्दर सुन्दर (=भद्र) यानोंको जुड़वाकर, सुन्दर यानपर चढ़, सुन्दर यानोंके साथ वैशालीसे निकली; और जहां उसका आराम था, वहां चली । जितनी यानकी भूमि थी, उतनी यानसे जाकर, यानसे उतर पैदल ही जहां भगवान् थे, वहां गई । जाकर भगवान्को अभिवादनकर एक ओर बैठ गई । एक ओर बैठी अम्बपाली गणिकाको भगवान्ने धार्मिक-कथासे संदर्शित समुत्तेजित…किया । तब अम्बपाली गणिका भगवान्को यह बोली—

"भन्ते ! भिक्षु संघके साथ भगवान् मेरा कलका भोजन स्वीकार करें ।"

भगवान्ने मौनसे स्वीकार किया ।

तब अम्बपाली गणिका भगवान्की स्वीकृतिको जान, आसनसे उठ भगवान्को अभि-वादनकर प्रदक्षिणाकर चली गई ।

वैशालीके लिच्छवियोंने सुना—'भगवान् वैशालीमें आये हैं ०'। तब वह लिच्छवी ० सुन्दर यानोंपर आरूढ़ हो ० वैशालीसे निकले । उनमें कोई कोई लिच्छवि नीले=नील-वर्ण नील-वस्त्र नील-अलंकार-वाले थे । कोई कोई लिच्छवि पीले=पीतवर्ण ० थे । ० लोहित (=लाल) ० । ० अवदात (=सफेद) ० । अम्बपाली गणिकाने तरुण तरुण लिच्छवियोंके धुरोंसे धुरा, चक्कोंसे चक्का, जूयेसे जूआ टकराया । उन लिच्छवियोंने अम्बपाली गणिकाको कहा—

" जे ! अम्बपाली ! क्यों तरुण तरुण (=दहर) लिच्छवियोंके धुरोंसे धुरा टकराती है । ० "

" आर्यपुत्रो ! क्योंकि मैंने भिक्षुसंघके साथ भगवान्को कलके भोजनके लिये निमंत्रित किया है ।"

" जे अम्बपाली ! सौ हजारसे भी इस भात (=भोजन)को (हमें करनेके लिये) दे दे ।"

" आर्यपुत्रो ! यदि वैशाली जनपद भी दो, तो भी इस महान् भातको न दूँगी ।"

तब उन लिच्छवियोंने अँगुलियां फोड़ीं—

" अरे ! हमें अम्बिकाने जीत लिया, अरे ! हमें अम्बिकाने वंचित कर लिया ।"

तब वह लिच्छवी जहां अम्बपाली-वन था, वहां गये । भगवान्ने दूरसे ही लिच्छवियोंको आते देखा । देखकर भिक्षुओंको आमंत्रित किया—

" अवलोकन करो भिक्षुओ ! लिच्छवियोंकी परिषद्को । अवलोकन करो भिक्षुओ ! लिच्छवियोंकी परिषद्को । भिक्षुओ ! लिच्छवि-परिषद्को त्रायस्त्रिंश (देव)-परिषद् समझो (=उपसंहरथ) ।"

तब वह लिच्छवी० रथसे उतरकर पैदलही जहां भगवान् थे, वहां...जाकर भगवान्को अभिवादनकर एक ओर बैठे। एक ओर बैठे लिच्छवियोंको भगवान्ने धार्मिक-कथासे० समुत्तेजित० किया। तब वह लिच्छवी ०भगवान्को बोले—

" भन्ते ! भिक्षु-संघके साथ भगवान् हमारा कलका भोजन स्वीकार करें ।"

" लिच्छवियो ! कल तो स्वीकार कर लिया है, मैंने अम्बपाली-गणिकाका भोजन ।"

तब उन लिच्छवियोंने अंगुलियां फोड़ीं—

" अरे ! हमें अम्बिकाने जीत लिया। अरे ! हमें अम्बिकाने वंचित कर लिया ।"

तब वह लिच्छवी भगवान्के भाषणको अभिनन्दितकर अनुमोदितकर, आसनसे उठकर भगवान्को अभिवादनकर प्रदक्षिणाकर चले गये ।

अम्बपाली गणिकाने उस रातके बीतनेपर, अपने आराममें उत्तम खाद्य-भोज्य तय्यार कर, भगवान्को समय सूचित किया...। भगवान् पूर्वाह्ण समय पहिनकर पात्र चीवरले भिक्षु-संघके साथ जहां अम्बपालिका परोसनेका स्थान था, वहां गये। जाकर प्रज्ञप्त (=बिछे) आसनपर बैठे। तब अम्बपाली गणिकाने बुद्ध-प्रमुख भिक्षुसंघको अपने हाथसे उत्तम खाद्य-भोज्य द्वारा संतर्पित=संप्रवारित किया। तब अम्बपाली गणिका भगवान्के भोजनकर० लेने पर, एक नीचा आसन लेकर एक ओर बैठी। एक ओर बैठी अम्बपाली गणिका भगवान्को बोली —

" भन्ते ! मैं इस आरामको बुद्ध-प्रमुख भिक्षु-संघको देती हूँ ।"

भगवान्ने आरामको स्वीकार किया। तब भगवान् अम्बपाली०को धार्मिक कथासे० समुत्तेजित०कर, आसनसे उठकर चले गये ।

वहां वैशालीमें विहार करते भी भगवान् भिक्षुओंको बहुत करके यही धर्म-कथा कहते थे ०।

(वेलुव-गाम में)।

० तब भगवान् महाभिक्षुसंघके साथ जहां वेलुव-गामक (=वेणु-ग्राम) था, वहां गये। वहां भगवान् वेलुव-गामकमें विहरते थे। भगवान्ने वहां भिक्षुओंको आमंत्रित किया—

" आओ भिक्षुओ ! तुम वैशालीके चारों ओर मित्र परिचित...देखकर वर्षावास करो। मैं यहीं वेलुवगाममें वर्षावास करूँगा ।"

" अच्छा भन्ते !"...

---

१. मिलाओ सं. नि. ४५ : १ : १ ।

वर्षावासमें भगवान्‌को कड़ी बीमारी उत्पन्न हुई। भारी मरणांतक पीड़ा होने लगी। उसे भगवान्‌ने स्मृति-संप्रजन्यके साथ बिना दुःख करते, स्वीकार(=सहन) किया। उस समय भगवान्‌को ऐसा हुआ—'मेरे लिये यह उचित नहीं, कि मैं उपस्थाकों (=सेवकों)को बिना पूछे, भिक्षुसंघको बिना अवलोकन किये, परिनिर्वाण करूं। क्यों न मैं इस आबाधा(=व्याधि) को हटाकर, जीवन-संस्कारका अधिष्ठाता बन, विहार करूँ'। भगवान् उस व्याधिको वीर्य (=मनोबल)से हटाकर जीवन-संस्कार (प्राण-शक्ति)के अधिष्ठाता बन, विहार करने लगे। तब भगवान्‌की वह बीमारी शांत होगई।

भगवान् बीमारीसे उठ, रोगसे अभी अभी मुक्तहो, विहारसे (बाहर)निकल कर विहारकी छायामें बिछे आसनपर बैठे। तब आयुष्मान् आनन्द जहां भगवान थे, वहां गये। जाकर भगवान्‌को अभिवादनकर एक ओर बैठे। एक ओर बैठे आयुष्मान आनन्दने भगवान्‌को यह कहा—

"भन्ते! भगवान्‌को सुखी देखा! भन्ते! मैंने भगवान्‌को अच्छा हुआ देखा!। भन्ते! मेरा शरीर शून्य होगया था। मुझे दिशायेंभी सूझ न पड़ती थीं। भगवान्‌की बीमारीसे (मुझे)धर्म (=बात) भी नहीं भान होते थे। भन्ते! कुछ आश्वासन मात्र रह गया था—भगवान् तबतक परिनिर्वाण नहीं करेंगे; जबतक भिक्षुसंघको कुछ कह न लेंगे।"

"आनन्द! भिक्षु-संघ क्या चाहता है? आनन्द! मैंने न-अन्दर न-बाहर करके धर्म-उपदेश कर दिये। आनन्द! धर्मोंमें तथागतको (कोई) आचार्य-मुष्टि (=रहस्य) नहीं है। आनन्द! जिसको ऐसा हो कि मैं भिक्षुसंघको धारण करता हूँ, भिक्षु-संघ मेरे उद्देश्यसे है, वह जरुर आनन्द! भिक्षुसंघके लिये कुछ कहे। आनंद! तथागतको ऐसा नहीं है···। आनंद! तथागत भिक्षुसंघके लिये क्या कहेंगे? आनन्द! मैं जीर्ण=वृद्ध=महल्लक=अध्व-गत=वयःप्राप्त हूं। अस्सी वर्षकी मेरी उम्र है। आनन्द! जैसे जीर्ण-शकट बांध-बूंधकर चलता है, ऐसेही आनन्द! मानों तथागतका शरीर बांधबूँध कर चल रहा है। आनन्द! जिस समय तथागत सारे निमित्तोंके मनमें न करनेसे, किन्हीं किन्हीं वेदनाओंके निरुद्ध होनेसे, निमित्त-रहित चित्तकी समाधि(=एकाग्रता)को प्राप्तहो विहरते हैं, उस समय·· तथागतका शरीर अच्छा (=फासुक) होता है। इसलिये आनन्द! आत्मद्वीप=आत्मशरण =अनन्य-शरण, धर्मद्वीप=धर्म-शरण=अनन्य-शरणहो विहरो०[1]।···।"

तब भगवान् पूर्वाह्ण समय पहिन कर पात्र चीवर ले वैशालीमें पिंडके लिये प्रविष्ट हुए। वैशालीमें पिंडचार कर, भोजनोपरांत·· आयुष्मान् आनन्दको बोले—

"आनन्द! आसनी उठाओ, जहां चापाल-चैत्य है, वहां दिनके विहारके लिये चलेंगे।"

"अच्छा भन्ते!" कह···आयुष्मान् आनन्द आसनी ले भगवान्‌के पीछे पीछे चले। तब भगवान् जहां चापाल-चैत्य था, वहां गये। जाकर बिछे आसनपर बैठे। आयुष्मान् आनन्द भी अभिवादन कर,···। एक ओर बैठे आयुष्मन् आनन्दको भगवान्‌ने यह कहा—

१. देखो पृष्ठ ५१८।

"आनन्द ; रमणीय है वैशाली । रमणीय है उदयन चैत्य । ०गोतमक-चैत्य; ०सत्तम्बक (=सप्त-आम्रक)चैत्य, ०बहु-पुत्रक-चैत्य, ०सारन्दद-चैत्य ; रमणीय है चापाल-चैत्य ।…। रमणीय है आनन्द ! (राजगृह में) गृध्रकूट । ०(कपिलवस्तुमें) न्यग्रोधाराम । ०चोरप्रपात । ०वैभार (-गिरि)के बगलमें कालशिला ।० सीतवनमें सर्प-शौंडिक (=सप्प-सोण्डिक)पहाड़ (=पब्हार) । ०तपोदाराम० । ०वेणुवन कलन्दक-निवाप । ०जीवकम्ब-वन । ०मद्रकुक्षि(=मद्द-कुच्छि)-मृग-दाव ।

… "आनन्द ! मैंने पहिलेही कह दिया है—सभी प्रियों=मनापोंसे जुदाई०होती है…।

तथागतने यह बात कही,—जल्दीही तथागतका परिनिर्वाण होगा; आजसे तीनमास बाद तथागत परिनिर्वाण प्राप्त होंगे ।…। आओ आनन्द ! जहां महावन कूटागार शाला है, वहां चलें ।"

"अच्छा भन्ते !"

भगवान् आयुष्मान् आनन्दके साथ जहां महावन कूटागार-शाला थी, वहां गये । जाकर आयुष्मान् आनन्दको बोले—"आनन्द ! तुम जाओ वैशालीके पास जितने भिक्षु विहार करते हैं, उन सबको उपस्थानशालामें एकत्रित करो ।"…

तब भगवान् जहां उपस्थान-शाला थी वहां गये । जाकर बिछे आसन पर बैठे । बैठकर भगवान्ने भिक्षुओंको आमंत्रित किया—

"इसलिये भिक्षुओ ! मैंने जो धर्म-उपदेश किया है, उसे तुम अच्छी तौरसे सीखकर सेवन करना, भावना करना; बढ़ाना; जिसमें यह ब्रह्मचर्य अध्वनीय=चिरस्थायी हो; यह (ब्रह्मचर्य) बहुजन-हितार्थ बहुजन-सुखार्थ, लोकानुकंपार्थ, देव मनुष्योंके अर्थ, हित, सुखके लिये हो । भिक्षुओ ! मैंने वह कौनसे धर्म, अभिज्ञान कर, उपदेश किये हैं, जिन्हें अच्छी तरह सीखकर० ? जैसेकि (१) चार स्मृति-प्रस्थान, (२) चार सम्यक्-प्रधान, (३) चार ऋद्धिपाद, (४) पांच इन्द्रिय,(६) पांचबल,(७) सात बोध्यंग,(८) आर्य अष्टांगिक-मार्ग ।…। हन्त ! भिक्षुओ ! तुम्हें कहता हूं—संस्कार (=कृतवस्तु) नाश होनेवाले (=वयधम्मा) हैं, प्रमादरहित हो सम्पादन करो । अचिरकालमें ही तथागतका परिनिर्वाण होगा । आजसे तीनमास बाद तथागत परिनिर्वाण पायेंगे ।"

(कुसीनाराकी ओर) ।

तब भगवान् पूर्वाह्न समय पहिन कर पात्र चीवरले वैशालीमें पिंडचार कर, भोजनोपरान्त नागावलोकन (=हाथीकी तरह सारे शरीरको घुमाकर देखना) से वैशालीको देख कर, आयुष्मान् आनन्दको कहा—

"आनन्द ! तथागतका यह अन्तिम वैशाली-दर्शन होगा । आओ आनंद ! जहां भण्डगाम है वहां चलें ।

"अच्छा भन्ते !"…

तब महा भिक्षुसंघके साथ भगवान् जहाँ भंडग्राम था, वहाँ पहुँचे। वहाँ भगवान् भण्डग्राममें विहार करते थे।···। वहाँ भंडग्राममें विहार करते भी भगवान्०।

०जहाँ अम्बगाम (=आम्रग्राम)०। ०जहाँ जम्बूग्राम (=जम्बुग्राम)०। ०जहाँ भोगनगर०।

(भोगनगरमें)।

वहाँ भोगनगरमें भगवान् आनन्द-चैत्यमें विहार करते थे। वहाँ भगवान्ने भिक्षुओंको आमंत्रित किया —

"भिक्षुओ! चार महाप्रदेश तुम्हें उपदेश करता हूँ, उन्हें सुनो, अच्छी तरह मनमें करो, भाषण करता हूँ।" "भन्ते! अच्छा।"

"···(१) भिक्षुओ! यदि (कोई) भिक्षु ऐसा कहे—आवुसो! मैंने इसे भगवान्के मुखसे सुना, मुखसे ग्रहण किया है; यह धर्म है, यह विनय है, यह शास्ताका शासन है। भिक्षुओ! उस भिक्षुके भाषणको न अभिनन्दन करना, न निन्दा करना। अभिनन्दन न कर निन्दा न कर; उन पद्-व्यंजनों को अच्छी तरह सीखकर, सूत्रसे तुलना करना, विनयमें देखना। यदि वह सूत्रसे तुलना करने पर, विनयमें देखने पर, न सूत्रमें उतरते हैं, न विनय में दिखाई पड़ते हैं; तो विश्वास करना, कि अवश्य यह भगवान्का वचन नहीं है, इस भिक्षुका ही दुर्गृहीत है। ऐसा (होनेपर) भिक्षुओ! उसको छोड़ देना। यदि वह सूत्रसे तुलना करनेपर, विनयके देखनेपर, सूत्रमें भी उतरता है, विनयमें भी दिखाई देता है; तो विश्वास करना कि अवश्य यह भगवान्का वचन है, इस भिक्षुका यह सुगृहीत है। भिक्षुओ! इसे प्रथम महाप्रदेश धारण करना।

"(२) भिक्षुओ! यदि (कोई) भिक्षु ऐसा कहे—आवुसो! अमुक आवासमें स्थविर-युक्त=प्रमुख-युक्त संघ विहार करता है। यह उस संघके मुखसे सुना, मुखसे ग्रहण किया। यह धर्म है, यह विनय है, यह शास्ता का शासन है। ०। तो विश्वास करना, कि अवश्य उन भगवान्का वचन है, इसे संघने सुगृहीत किया। भिक्षुओ! यह दूसरा महाप्रदेश धारण करना।

"(३) ० भिक्षु ऐसा कहे—'आवुसो! अमुक आवासमें बहुतसे बहुश्रुत, आगत-आगम (=आगमज्ञ) धर्म-धर, विनय-धर, मात्रिकाधर, स्थविर भिक्षु विहार करते हैं। यह उन स्थविरोंके मुखसे सुना, मुखसे ग्रहण किया। यह धर्म है। ०। ०।

"(४) भिक्षुओ! (यदि) भिक्षु ऐसा कहे—अमुक आवासमें एक बहुश्रुत० स्थविर भिक्षु विहार करता है। यह मैंने उस स्थविरके मुखसे सुना है, मुखसे ग्रहण किया है। यह धर्म है, यह विनय०। भिक्षुओ! इसे चतुर्थ महाप्रदेश धारण करना। भिक्षुओ! इन चार महाप्रदेशोंको धारण करना।"

वहाँ भोग-नगरमें विहार करते भी भगवान् भिक्षुओंको बहुत करके यही धर्म-कथा कहते थे०।

(पावामें)।

०तक भगवान् महाभिक्षु-संघके साथ जहां पावा थी, वहां गये। वहां पावामें [1]भगवान् चुन्द कर्मार (=सोनार)-पुत्रके आम्रवनमें विहार करते थे।

चुन्द कर्मारपुत्रने सुना—भगवान् पावामें आये हैं; पावामें मेरे आम्रवनमें विहार करते हैं। तब चुन्द कर्मार-पुत्र जहां भगवान् थे, वहां···जाकर भगवान्को अभिवादनकर एक ओर बैठा। एक ओर बैठे चुन्द कर्मार-पुत्रको भगवान्ने धार्मिक कथासे ०समुत्तेजित० किया। तब चुन्द०ने भगवान्की धार्मिक-कथासे ०समुत्तेजित० हो, भगवान्को यह कहा—

"भन्ते! भिक्षु-संघके साथ भगवान् मेरा कलका भोजन स्वीकार करें।"

भगवान्ने मौनसे स्वीकार किया।

तब चुन्द कर्मार-पुत्रने उस रातके बीतनेपर उत्तम खाद्य-भोज्य (और) बहुत सा [2]शूकर-मार्दव (=सूकर-मद्दव) तय्यार करवा, भगवान्को कालकी सूचना दी···। तब भगवान् पूर्वाह्ण समय पहिनकर पात्र-चीवर ले भिक्षु-संघके साथ, जहां चुन्द कर्मार-पुत्रका घर था, वहां गये। जाकर बिछे आसनपर बैठे।···। (भोजनकर)···एक ओर बैठे चुन्द कर्मार-पुत्रको भगवान् धार्मिक-कथासे ०समुत्तेजित० कर आसनसे उठकर चल दिये।

तब चुन्द कर्मार-पुत्रका भात (=भोजन) खाकर भगवान्को खून गिरनेकी, कड़ी बीमारी उत्पन्न हुई, मरणान्तक सख्त पीड़ा होने लगी। उसे भगवान्ने स्मृति-संप्रजन्ययुक्त हो, बिना दुःखित हुए, स्वीकार (=सहन) किया। तब भगवान्ने आयुष्मान् आनन्दको आमंत्रित किया—

"आओ आनन्द! जहां कुसीनारा है, वहां चलें।" "अच्छा भन्ते।"

तब भगवान् मार्गसे हटकर एक वृक्षके नीचे गये। जाकर आयुष्मान् आनन्दको कहा-

"आनन्द! मेरे लिये चौपेती संघाटी बिछादे, मैं थक गया हूं, बैठूंगा।

"अच्छा भन्ते!"···आयुष्मान् आनन्दने चौपेती संघाटी बिछादी, भगवान् बिछे आसनपर बैठे।···। उस समय आलार कालामका शिष्य पुक्कुस मल्ल-पुत्र कुसीनारा और पावाके बीच, रास्तेमें जा रहा था। पुक्कुस मल्ल-पुत्रने भगवान्को एक वृक्षके नीचे बैठे देखा। देखकर जहां भगवान् थे, वहां···जाकर भगवान्को अभिवादन कर एक ओर बैठ गया। पुक्कुस०ने भगवान्को कहा—

---

१. मिलाओ उदान ८:५। २. अ. क. "न बहुत तरुण न बहुत बूढ़े (=जीर्ण) एक (वर्ष) बड़े सूअरका बना मांस; वह मृदु भी, स्निग्ध भी होता है···। कोई कोई कहते हैं—नर्म चावल (=ओदन)को पांच गोरससे जूस पकानेके विधानका नाम है, जैसे गोपान (=गवपान) पाकका नाम है। कोई कहते हैं—शूकर-मार्दव नामक रसायन विधि है, वह रसायन-शास्त्रमें आती है। उसे चुन्दने भगवान्का परिनिर्वाण न हो, इसके लिये तैयार कराया था।"

३. उदान अ.क. (८:५) पावासे कुसीनारा ६ गव्यूति (=१½ योजन) है। इस बीचमें पच्चीस स्थानोंमें बैठ कर, बड़ी हिम्मत करके जाते हुये (मध्याह्नसे चल कर) सूर्यास्त समय भगवान् कुसीनारा पहुँचे।"

" आश्चर्य भन्ते ! अद्भुत भन्ते ! प्रव्रजित (लोग)शांततर विहारसे विहरते हैं···।···।" आजसे भन्ते ! मुझे अंजलिबद्ध शरणागत उपासक धारण करें । "···

तब पुक्कुस० भगवान्‌के धार्मिक-कथासे० समुत्तेजित० हो, आसनसे उठकर, भगवान्‌को अभिवादनकर, प्रदक्षिणाकर चला गया ।···

(भगवान्‌ने आनन्दको कहा)—

" आज आनन्द ! रातके पिछले पहर(=याम) कुसीनाराके [1]उपवत्तन शालवनमें जोड़े शाल(=साखू)वृक्षोंके बीच तथागत निर्वाणको प्राप्त होंगे । आओ आनन्द ! जहाँ ककुत्था (=ककुत्सा) नदी है, वहाँ चलें ।"

" अच्छा भन्ते ! "···

तब महाभिक्षु-संघके साथ भगवान् जहाँ ककुत्था नदी थी, वहाँ गये । जाकर ककुत्था नदीको अवगाहन कर, स्नानकर, पानकर, उतरकर, जहाँ [2]अम्बवन(=आम्रवन)था, वहाँ गये । जाकर आयुष्मान् चुन्दकको बोले—

" चुंदक ! मेरे लिये चौपेती संघाटी बिछा दें । चुन्दक थक गया हूँ ।, लेटूंगा ।"

" अच्छा भन्ते !"

तब भगवान् पैरपर पैर रखकर, स्मृतिसंप्रजन्यके साथ, उत्थान-संज्ञा मनमें करके, दाहिनी करवट सिंह-शय्यासे लेटे । आयुष्मान् चुन्दक वहीं भगवान्‌के सामने बैठे ।···

तब भगवान्‌ने आयुष्मान् आनन्दको कहा—

" आनन्द ! शायद कोई चुन्द कर्म्मारपुत्रको चिंतित करे(=विप्पटिसारं उपदहेय) (और कहे)—' आवुस चुन्द ! अलाभ है तुझे, तूने दुर्लभ कमाया, जो कि तथागत तेरे पिंड-पातको भोजनकर परिनिर्वाणको प्राप्तहुये' आनंद ! चुन्द कर्मार-पुत्रकी इस चिंताको दूर करना (और कहना)—आवुस ! लाभ है तुझे, तूने सुलाभ कमाया, जो कि तथागत तेरे पिंडपातको भोजनकर परिनिर्वाणको प्राप्तहुये । आवुस चुन्द ! मैंने यह भगवान्‌के मुखसे सुना, मुखसे ग्रहण किया-'यह दो पिंड-पात समान फलवाले=समान विपाकवाले हैं, दूसरे पिंडपातोंसे बहुतही महाफल-प्रद=महानृशंसतर हैं । कौनसे दो ? (१) जिस पिंडपात(=भिक्षा)को भोजनकर तथागत अनुत्तर सम्यक्-संबोधि (=बुद्धत्त्व)को प्राप्त हुये, (२) और जिस पिंड-पातको भोजनकर तथागत अनु-उपादिशेष निर्वाणधातु (=दुःखकारण-रहित निर्वाण)को प्राप्त हुये ।···

तब भगवान्‌ने आयुष्मान् आनन्दको आमंत्रित किया—

" आओ आनन्द ! जहाँ [3]हिरण्यवती नदीका परला तीर है, जहाँ कुसीनारा उपवत्तन मल्लोंका शालवन है, वहाँ चलें । " " अच्छा भन्ते ! "

---

१. माथा कुँअर, कसया जि० गोरखपुर । २. अ. क. " उसी नदीके तीर अम्बवन ।"

३. अ. क. " जैसे कलम्ब-नदीके तीरसे राजमाता-विहार-द्वारसे थूपाराम जाना होता है । ऐसे ही हिरण्यवतीके परले तीरसे शालवन उद्यान (है) । जैसे अनुराधपुरका थूपाराम है, वैसे ही वह कुसीनाराका है । जैसे थूपारामसे, दक्षिण-द्वारहो नगरमें प्रवेश करनेका

तब भगवान् महाभिक्षु-संघके साथ जहां हिरण्यवती० मल्लोंका शालवन था, वहां गये । जाकर आयुष्मान् आनन्दको बोले—

"आनन्द ! यमक (=जुड़वें)-शालोंके बीचमें उत्तरकी ओर सिरहानाकर चारपाई (=मंचक) बिछा दे । थका हूं, आनन्द ! लेटूंगा ।" "अच्छा भन्ते !"···

तब भगवान्० दाहिनी करवट सिंहशय्यासे लेटे ।···

"आनन्द ! श्रद्धालु कुल-पुत्रके लिये यह चार स्थान दर्शनीय, संवेजनीय (=वैराग्य-प्रद) हैं । कौनसे चार ? (१) 'यहां तथागत उत्पन्न हुये (=लुम्बिनी)' यह स्थान श्रद्धालु० ! (२) 'यहां तथागतने अनुत्तर सम्यक्-संबोधिको प्राप्त किया' (=बुद्धगया)० । (३) 'यहां तथागतने अनुत्तर (=सर्व श्रेष्ठ) धर्मचक्रको प्रवर्तन किया' (=सारनाथ)० । (४) 'यहां तथागत अनुपादि-शेष निर्वाण-धातुको प्राप्त हुये (=कुसीनारा)० । ०यह चार स्थान दर्शनीय० हैं । आनन्द ! श्रद्धालु भिक्षु भिक्षुणियां उपासक उपासिकायें (भविष्यमें) आवेंगी, 'यहां तथागत उत्पन्न हुये',० 'यहां तथागत० निर्वाण०को प्राप्त हुये' ।··"

"भन्ते ! हम स्त्रियोंके साथ कैसे वर्ताव करेंगे ?"

"अ-दर्शन (=न देखना), आनन्द !"

"दर्शन होनेपर भगवान् कैसे वर्ताव करेंगे ?"

"आलाप (=बात) न करना, आनन्द !"

"बात करनेवालेको कैसा करना चाहिये ?"

"स्मृति (=होश)को संभाले रखना चाहिये ?"

"भन्ते ! तथागतके शरीरको हम कैसे करेंगे ?"

"आनन्द ! तथागतकी शरीर-पूजासे तुम बेपर्वाह होना । तुम आनन्द सच्चे पदार्थ (=सदर्थ)के लिये प्रयत्न करना, सत्-अर्थके लिये उद्योग करना । सत्-अर्थमें अप्रमादी, उद्योगी आत्मसंयमी हो विहरना । हैं, आनन्द ! क्षत्रिय पंडित भी, ब्राह्मण पंडित भी, गृहपति पंडित भी, तथागतमें अत्यन्त अनुरक्त; वह तथागतकी शरीर-पूजा करेंगे ।"

"भन्ते ! तथागतके शरीरको कैसे करना चाहिये ?"

"जैसे आनन्द ! राजा चक्रवर्तीके शरीरके साथ करना होता है, वैसे तथागतके शरीरको करना चाहिये :"

"भन्ते ! राजा चक्रवर्तीके शरीरके साथ कैसे किया जाता है ?

"आनन्द ! राजा चक्रवर्तीके शरीरको नये वस्त्रसे लपेटते हैं; नये वस्त्रसे लपेटकर धुनी रूईसे लपेटते हैं । धुनी रूईसे लपेटकर नये वस्त्रसे लपेटते हैं ।···। इस प्रकार लपेटकर···तेलकी लोहद्रोणी (=दोन)में रखकर, दूसरी लोह-द्रोणीसे ढांककर, सभी गंधों (वाले काष्ठ)की चिता बनाकर, राजा चक्रवर्तीके शरीको जलाते हैं; जलाकर बड़े चौरस्तेपर राजा चक्रवर्तीका स्तूप बनाते हैं ।···।"

मार्ग, पूर्वमुँह हो, जाकर उत्तरकी ओर मुड़ता है ; ऐसे ही उद्यानसे शाल-पंक्ति पूर्व मुँह जाकर, उत्तरकी ओर मुड़ी है । इसीलिये वह उपवत्तन कहा जाता है ।"

तब आयुष्मान् आनन्द विहारमें जाकर कपिसीस (=खूंटी)को पकड़ कर रोते खड़े हुये—'हाय ! मैं शैक्ष्य=सकरणीय हूँ । और जो मेरे अनुकंपक शास्ता हैं, उनका परिनिर्वाण हो रहा है !!'

भगवान्‌ने भिक्षुओंको आमंत्रित किया—"भिक्षुओ ! आनन्द कहां है?"

"यह भन्ते ! आयुष्मान् आनन्द विहार(=कोठरी)में जाकर० रोते खड़े हैं० ।"

"आ ! भिक्षु ! मेरे वचनसे तू आनन्दको कह—'आवुस आनन्द ! शास्ता तुम्हें बुला रहे हैं ।" "अच्छा, भन्ते !"···

आयुष्मान् आनन्द···जहाँ भगवान् थे वहाँ···आकर···अभिवादनकर एक ओर बैठे । ···आयुष्मान् आनन्दको भगवान्‌ने कहा—

"नहीं आनन्द ! मत शोक करो, मत रोओ ! मैंने तो आनन्द ! पहिलेही कह दिया है—सभी प्रियों=मनापोंसे जुदाई० होती है, सो वह आनन्द ! कहाँ मिलनेवाला है । जो कुछ जात (=उत्पन्न) =भूत=संस्कृत है, सो नाश होने वाला है । 'हाय ! वह नाश न हो !'···यह संभव नहीं । आनन्द तूने दीर्घरात्र (=चिरकाल) तक हित-सुख···अप्रमाण मैत्रीपूर्ण कायिक-कर्मसे तथागतकी सेवाकी है । मैत्रीपूर्ण वाचिक कर्मसे० । ०मैत्रीपूर्ण मानसिक कर्मसे० । आनन्द ! तू कृतपुण्य है । प्रधान(=निर्वाण-साधन)में लग जल्दी अनास्रव (=मुक्त) होजा ।'

···आयुष्मान् आनन्दने भगवान्‌को यह कहा—

"भन्ते ! मत इस क्षुद्र नगले (=नगरक)में, जंगली नगलेमें शाखा-नगरकमें परि-निर्वाणको प्राप्त होवें । भन्ते ! और भी महानगर हैं; जैसे कि चम्पा, राजगृह, श्रावस्ती, साकेत, कौशाम्बी, वाराणसी । वहां भगवान् परिनिर्वाण करें । वहां बहुतसे क्षत्रिय महाशाल (=महाधनी), ब्राह्मण-महाशाल, गृहपति महाशाल तथागतके भक्त हैं; वह तथागतके शरीरकी पूजा करेंगें ।'

"मत आनन्द ! ऐसा कह; मत आनन्द ! ऐसा कह—इस क्षुद्र नगले०।' पूर्व कालमें आनन्द ! यह कुसीनारा राजा सुदर्शनकी कुशावती नामक राजधानी थी ।···। आनन्द ! कुसी नारामें जाकर कुसीनारावासी मल्लोंको कह—'वाशिष्ठो ! आज रातके पिछले पहर तथागतका परिनिर्वाण होगा । चलो वाशिष्ठो ! चलो वाशिष्ठो ! पीछे अफसोस मत करना—'हमारे ग्राम-क्षेत्रमें तथागतका परिनिर्वाण हुआ, लेकिन हम अंतिमकालमें तथागतका दर्शन न कर पाये ।"

"अच्छा भन्ते !"···आयुष्मान् आनन्द चीवर पहिनकर, पात्रचीवर ले, अकेलेही कुसीनारामें प्रविष्ट हुए । उस समय कुसीनारावासी मल्ल किसी कामसे संस्थागारमें जमा हुये थे । तब आयुष्मान् आनन्द जहाँ कुसीनाराके मल्लोंका संस्थागार था, वहां गये । जाकर कुसीनारावासी मल्लोंको यह बोले—'वाशिष्ठो ! ० ।'

आयुष्मान् आनन्दसे यह सुनकर मल्ल, मल्ल-पुत्र, मल्ल-वधुयें, मल्ल-भार्यायें दुःखित दुर्मना दुःख-समर्पित-चित्त हो, कोई कोई बालोंको बिखेर रोतेथे, बांह पकड़कर क्रंदन करतेथे, कटे (पेड़)से गिरतेथे, (भूमिपर) लोटते थे-बहुत जल्दी भगवान् निर्वाण

प्राप्त हो रहे हैं, बहुत जल्दी सुगत निर्वाण प्राप्त हो रहे हैं० । बहुत जल्दी लोक-चक्षु अन्तर्धान हो रहे हैं । तब मल्ल ० दुःखित० हो, जहां उपवत्तन मल्लोंका शालवन था, वहां गये ।

तब आयुष्मान् आनन्दको यह हुआ-'यदि मैं कुसीनाराके मल्लोंको एक एक कर भगवान्की वन्दना करवाऊँगा; तो भगवान् (सभी) कुसीनाराके मल्लोंसे अवन्दितही होंगे, और यह रात बीत जायेगी। क्यों न मैं कुसीनाराके मल्लोंको एक एक कुलके क्रमसे भगवान्की वन्दना करवाऊँ—'भन्ते ! अमुक नामक मल्ल स-पुत्र, स-भार्य, स-परिषद्, स-अमात्य भगवानके चरणोंको शिरसे वंदना करता है।' तब आयुष्मान् आनंदने कुसीनाराके मल्लोंको एक एक कुलके क्रमसे भगवान्की वंदना करायी—० । इस उपायसे आयुष्मान् आनंदने, प्रथम याम (=छःसे दसबजे राततक)में कुसीनाराके मल्लोंसे भगवान्की वंदना करवा दी।

उस समय कुसीनारामें सुभद्र नामक परिव्राजक वास करता था। सुभद्र परिव्राजकने सुना, आज रातको पिछले पहर श्रमण गौतमका परिनिर्वाण होगा। तब सुभद्र परिव्राजकको ऐसा हुआ—'मैंने वृद्ध-महल्लक आचार्य-प्राचार्य परिव्राजकोंको यह कहते सुना है—'कदाचित् कभी ही तथागत अर्हत् सम्यक्-सम्बुद्ध उत्पन्न हुआ करते हैं'। और आज रातके पिछले पहर श्रमण गौतमका परिनिर्वाण होगा, और मुझे यह संशय (=कंखा-धम्म) उत्पन्न है;···इस प्रकार मैं श्रमण गौतममें प्रसन्न (=श्रद्धावान्) हूं। श्रमण गौतम मुझे वैसा, धर्म उपदेश कर सकता है; जिससे मेरा यह संशय हट जाये।'

तब सुभद्र परिव्राजक जहां उपवत्तन मल्लोंका शाल-वन था, जहां आयुष्मान् आनन्द थे, वहां गया। जाकर आयुष्मान् आनन्दको बोला—

"हे आनन्द ! मैंने वृद्ध महल्लक ०परिव्राजकोंको यह कहते सुना है० । सो मैं ···श्रमण गौतमका दर्शन पाऊँ ?"

ऐसा कहनेपर आयुष्मान् आनन्दने सुभद्र परिव्राजकको कहा—

"नहीं आवुस ! सुभद्र ! तथागतको तकलीफ मत दो। भगवान् थके हुये हैं।

दूसरीवार भी सुभद्र परिव्राजकने० ।०। तीसरीवार भी० ।०।

भगवान्ने आयुष्मान् आनंदका सुभद्र परिव्राजकके साथका कथा-संलाप सुन लिया। तब भगवान्ने आयुष्मान् आनन्दको कहा—

"नहीं आनन्द ! मत सुभद्रको मना करो। सुभद्रको तथागतका दर्शन पाने दो। जो कुछ सुभद्र पूछैगा, वह आज्ञा (=परम-ज्ञान)की चाहसे ही पूछैगा; तकलीफ देनेकी चाहसे नहीं। पूछनेपर जो मैं उसे कहूंगा, उसे वह जल्दी ही जान लेगा।'

तब आयुष्मान् आनन्दने सुभद्र परिव्राजकको कहा—

"जाओ आवुस सुभद्र ! भगवान् तुम्हें आज्ञा देते हैं।"

तब सुभद्र परिव्राजक जहां भगवान् थे, वहां गया। जाकर भगवान्के साथ संमोदन-कर···ओर बैठा। एक ओर बैठ···बोला।

"हे गौतम ! जो श्रमण ब्राह्मण संघी=गणी=गणाचार्य, प्रसिद्ध यशस्वी तीर्थंकर, बहुत लोगों द्वारा उत्तम माने जाननेवाले ; जैसे कि—पूर्ण काश्यप, मक्खलि गोसाल, अजित केशकम्बल, पकुध कच्चायन, संजय बेलट्ठपुत्त, निगंठ नाथ-पुत्त । (क्या) वह सभी अपने दावा (=प्रतिज्ञा)को (वैसा) जानते, (या) सभी (वैसा) नहीं जानते ; (या) कोई कोई वैसा जानते, कोई कोई वैसा नहीं जानते ! ।…। '

" [1]नहीं सुभद्र ! जाने दो—' वह सभी अपने दावाको० । सुभद्र ! तुम्हें धर्म० उपदेश करता हूँ ; उसे सुनो, अच्छी तरह मनमें करो, भाषण करता हूँ । "

" अच्छा भन्ते !" सुभद्र परिव्राजकने भगवान्‌को कहा । भगवान्‌ने यह कहा—

" सुभद्र ! जिस धर्म-विनयमें आर्य अष्टांगिक मार्ग उपलब्ध नहीं होता, वहां श्रमण (स्रोत आपन्न) भी उपलब्ध नहीं होता; द्वितीय श्रमण (=सकृदागामी)भी उपलब्ध नहीं होता; तृतीय श्रमण (=अनागामी)भी उपलब्ध नहीं होता; चतुर्थ श्रमण (=अर्हत्)भी उपलब्ध नहीं होता । सुभद्र ! जिस धर्म-विनयमें आर्य-अष्टांगिक-मार्ग उपलब्ध होता है, श्रमण भी वहां होता है ० । सुभद्र ! इस धर्म-विनयमें आर्य अष्टांगिक-मार्ग उपलब्ध होता है; सुभद्र ! यहां श्रमण०भी, यहां ० द्वितीय श्रमण भी, यहां ० तृतीय श्रमण भी, यहां ० चतुर्थ श्रमण भी है । दूसरे वाद(=मत) श्रमणोंसे शून्य हैं । सुभद्र ! यहां (यदि) भिक्षु ठीकसे विहार करें (तो) लोक अर्हतोंसे शून्य न होवे ।"

" सुभद्र ! उन्तीस वर्षकी अवस्थामें कुशल (=मंगल)का खोजी हो, जो मैं प्रव्रजित हुआ । सुभद्र ! जब मैं प्रव्रजित हुआ तबसे इक्कावन वर्ष हुये । न्याय-धर्म (=आर्य-धर्म= सत्यधर्म)के एक देशको भी देखनेवाला यहांसे बाहर कोई नहीं है ॥ १, २ ॥…।"

ऐसा कहनेपर सुभद्र परिव्राजकने भगवान्‌को कहा—

" आश्चर्य भन्ते ! अद्भुत भन्ते ! ० मैं भगवान्‌की शरण जाता हूँ, धर्म और भिक्षु-संघकी भी । भन्ते ! मुझे भगवान्‌के पाससे प्रव्रज्या मिले, उपसंपदा मिले ।"

" सुभद्र ! जो कोई भूतपूर्व अन्य-तैर्थिक (=दूसरे पंथका) इस धर्म…में प्रव्रज्या… उपसंपदा चाहता है । वह चार मास परिवास (=परीक्षार्थ वास) करता है । चार मासके बाद, आरब्ध-चित्त भिक्षु प्रव्रजित करते हैं, भिक्षु होनेके लिये उपसंपन्न करते हैं । । "…

" भन्ते ! यदि भूत-पूर्व अन्यतैर्थिक इस धर्मविनयमें प्रव्रज्या ० उपसंपदा चाहनेपर, चार मास परिवास करता है० । तो भन्ते ! मैं चारवर्ष परिवास करूंगा । चार वर्षोंके बाद आरब्ध-चित्त भिक्षु मुझे प्रव्रजित करें ।"

तब भगवान्‌ने आयुष्मान् आनंदको कहा—"तो आनन्द ! सुभद्रको प्रव्रजित करो ।"
" अच्छा भन्ते !"…

१. अ. क. " पहिले पहरमें मल्लोंको धर्मदेशनाकर, बिचले पहर सुभद्रको, पिछले पहर भिक्षुसंघको उपदेशकर, बहुत भोरे ही परिनिर्वाण… । "

तब सुभद्र परिव्राजकको आयुष्मान् आनन्दने कहा—

"आवुस !...लाभ है तुम्हें, सुलाभ हुआ तुम्हें; जो यहां शास्ताके संमुख अन्तेवासी (=शिष्य)के अभिषेकसे अभिषिक्त हुये ।"

सुभद्र परिव्राजकने भगवान्के पास प्रव्रज्या पाई, उपसंपदा पाई । उपसंपन्न होनेके अचिरहीमें आयुष्मान् सुभद्र "आत्मसंयमी हो विहार करते, जल्दीही, जिसके लिये कुलपुत्र० प्रव्रजित होते हैं; उस अनुत्तर ब्रह्मचर्यफलको इसी जन्ममें स्वयं जानकर, साक्षात्कारकर, प्राप्तकर, विहरने लगे ।०। सुभद्र अर्हतोंमेंसे एक हुये । वह भगवान्के अन्तिम...शिष्य हुये ।

तब भगवान्ने आयुष्मान् आनन्दको कहा—

"आनन्द ! शायद तुमको ऐसा हो—(१) अतीत-शास्ता (=चलेगये गुरु)का (यह) प्रवचन (=उपदेश) है, (अब) हमारा शास्ता नहीं है । आनन्द ! इसे ऐसा मत देखना । मैंने जो धर्म और विनय उपदेश किये हैं, प्रज्ञप्त (=विहित) किये हैं; मेरे बाद वही तुम्हारा शास्ता (=गुरु) है ।—(२) आनन्द ! जैसे आजकल भिक्षु एक दूसरेको 'आवुस' कहकर पुकारते हैं, मेरे बाद ऐसा कहकर न पुकारें । आनन्द ! स्थविरतर (=उपसंपदा प्रव्रज्यामें अधिक दिनका) भिक्षु नवक-तर(=अपनेसे कम समयके) भिक्षुको नामसे, या गोत्रसे, या 'आवुस' कहकर पुकारें । नवकतर भिक्षु स्थविरतरको 'भन्ते' या 'आयुष्मान्' कह कर पुकारें । (३) इच्छा होनेपर संघ मेरे बाद क्षुद्र-अनुक्षुद्र(=छोटे छोटे) शिक्षापदों (=भिक्षुनियमों)को छोड़ दे । (४) आनन्द ! मेरे बाद छन्न भिक्षुको ब्रह्मदंड करना चाहिये ।"

"भन्ते ! ब्रह्मदंड क्या है ?"

"आनन्द ! छन्न, भिक्षुओंको जो चाहे सो कहे, भिक्षुओंको उससे न बोलना चाहिये, न उपदेश=अनुशासन करना चाहिये ।"

तब भगवान्ने भिक्षुओंको आमंत्रित किया—

"भिक्षुओ ! (यदि)बुद्ध, धर्म, संघमें एक भिक्षुको भी कुछ शंका हो, (तो) पूछलो । भिक्षुओ ! पीछे अफसोस मत करना—'शास्ता हमारे सन्मुख थे, (किंतु)हम भगवान्के सामने कुछ न पूछ सके ।"

ऐसा कहने पर वह भिक्षु चुप रहे । दूसरी बारभी भगवान्ने० । ० । तीसरी बारभी० । ० ।...

तब भगवान्ने भिक्षुओंको आमंत्रित किया—

"हन्त ! भिक्षुओ अब तुम्हें कहता हूं—"संस्कार (=कृतवस्तु) व्यय-धर्मा (=नाशमान) हैं; अप्रमादके साथ (=आलस न कर) (=जीवनके लक्ष्यको) संपादन करो ।"—यह तथागत का अन्तिम वचन है ।

तब भगवान् प्रथम ध्यानको प्राप्त हुये । प्रथम ध्यानसे उठकर द्वितीय ध्यानको प्राप्त हुये ।०तृतीय ध्यानको०।०चतुर्थ ध्यानको०।०आकाशानन्त्यायतनको०।०विज्ञानानन्त्यायतनको०।

०आकिंचन्यायतनको० ।० नैव-संज्ञानासंज्ञायतनको० । ०संज्ञावेदयितनिरोधको प्राप्तहुये । तब आयुष्मान् आनन्दने आयुष्मान् अनुरुद्धको कहा—"भन्ते ! अनुरुद्ध ! भगवान् परिनिर्वृत होगये ?"

"आवुस आनन्द ! भगवान् परिनिर्वृत नहीं हुये । संज्ञावेदयितनिरोधको प्राप्त हुये हैं ।"

तब भगवान् संज्ञावेदयितनिरोध-समापत्ति (=चार ध्यानोंके ऊपरकी समाधि)से उठकर नैवसंज्ञा-नासंज्ञायतनको प्राप्त हुये । ० । द्वितीय ध्यानसे उठकर प्रथम ध्यानको प्राप्त हुये । प्रथम ध्यानसे उठकर द्वितीय ध्यानको प्राप्त हुये । ० । चतुर्थ ध्यानसे उठनेके अनन्तर भगवान् परिनिर्वाणको प्राप्त हुये ।…

भगवान्के परिनिर्वाण हो जाने पर, जो वह अवीत-राग (=अ-विरागी) भिक्षु थे, (उनमें) कोई बांह पकड़कर क्रन्दन करते थे ; कटे पेड़के सदृश गिरते थे, (धरतीपर) लोटते-थे—'भगवान् बहुत जल्दी परिनिर्वृत हो गये० । किन्तु जो वीत-राग भिक्षु थे, वह स्मृति-संप्रजन्यके साथ स्वीकार (=सहन) करते थे—'संस्कार अनित्य हैं, वह कहां मिलैगा ?'

तब आयुष्मान् अनुरुद्धने भिक्षुओंको कहा—

"नहीं आवुसो ! शोक मत करो, रोदन मत करो । भगवान्ने तो आवुसो ! यह पहिलेही कह दिया है—'सभी प्रियों०से जुदाई० होनी है० ।'

आयुष्मान् अनुरुद्ध और आयुष्मान् आनन्दने वह बाकी रात धर्म-कथामें बिताई । तब आयुष्मान् अनुरुद्धने आयुष्मान् आनन्दको कहा—

"जाओ ! आवुस आनन्द ! कुसीनारामें जाकर, कुसीनाराके मल्लोंको कहो—'वाशिष्टो ! भगवान् परिनिर्वृत हो गये । अब जिसका तुम काल समझो (वह करो) ।"

"अच्छा भन्ते ! " कह…आयुष्मान् आनन्द पहिनकर पात्र-चीवर ले अकेले कुसीनारामें प्रविष्ट हुये । उस समय किसी कामसे कुसीनाराके मल्ल, संस्थागार (=प्रजातन्त्र-सभा-भवन)में जमा थे । तब आयुष्मान् आनन्द जहां मल्लोंका संस्थागार था, वहां गये । जाकर कुसीनाराके मल्लोंको बोले—

"वाशिष्टो ! भगवान् परिनिर्वृत होगये, अब जिसका तुम काल समझो (वैसा करो) ।"

आयुष्मान् आनंदसे यह सुनकर मल्ल, मल्ल-पुत्र, मल्ल-वधुयें, मल्ल-भार्याय दुःखित हो० कोई केशोंको बिखेरकर क्रंदन करती थीं०[1] ।

तब कुसीनाराके मल्लोंने पुरुषोंको आज्ञा दी—

"तो भणे ! कुसीनाराकी सभी गंध-माला और सभी वाद्योंको जमा करो ।"

तब कुसीनाराके मल्लोंने गंध-माला, सभी वाद्यों, और पांच हजार थान (=दुस्स)-जोड़ोंको लेकर जहां [2]उपवत्तन० था, जहां भगवान्का शरीर था, वहां गये । जाकर भगवान्के

१. देखो पृष्ठ ६३८ । २. वर्तमान माथा-कुंअर, कसया (जि. गोरखपुर) ।

शरीरको नृत्य, गीत, वाद्य, माला, गंधसे सत्कार करते,=गुरुकार करते,=मानते=पूजते कपड़ेका वितान (=चँदवा) करते, मंडप बनाते उस दिनको बिता दिया। तब कुसीनाराके मल्लोंको हुआ—'भगवान्‌के शरीरके दाह करनेको आज बहुत विकाल होगया। अब कल भगवान्‌के शरीरका दाह करेंगे।' तब कुसीनाराके मल्लोंने भगवान्‌के शरीरको नृत्य, गीत, वाद्य, माला, गंधसे सत्कार करते=गुरुकार करते=मानते=पूजते, चँदवा तानते, मंडप बनाते दूसरा दिन भी बिता दिया। तीसरा दिन भी०। ०चौथा दिन भी०। ०पांचवां दिन भी०। छठां दिन भी०। तब सातवें दिन कुसीनाराके मल्लोंको यह हुआ—'हम भगवान्‌के शरीरको नृत्य० गंधसे सत्कार करते नगरके दक्षिण से लेजाकर बाहरसे बाहर नगरके दक्षिण भगवान्‌के शरीरका दाह करें। उस समय मल्लोंके आठ प्रमुख (=मुखिया) शिरसे नहाकर, नये वस्त्र पहिन, भगवान्‌के शरीरको उठाना चाहते थे; लेकिन वह नहीं उठा सके। तब कुसीनाराके मल्लोंने आयुष्मान् अनुरुद्धको पूछा—

'भन्ते! अनुरुद्ध! क्या हेतु है=क्या कारण है; जो कि हम आठ मल्ल-प्रमुख ०नहीं उठा सकते?'

"वाशिष्टो! तुम्हारा अभिप्राय दूसरा है, और देवताओंका अभिप्राय दूसरा है।"

"भन्ते! देवताओंका अभिप्राय क्या है?'

"वाशिष्टो! तुम्हारा अभिप्राय है, हम भगवान्‌के शरीरको नृत्य०से सत्कार करते० नगरके दक्षिण दक्षिण ले जाकर, बाहरसे बाहर नगरके दक्षिण, भगवान्‌के शरीरका दाह करें। देवताओंका अभिप्राय है—हम भगवान्‌के शरीरको दिव्य नृत्य०से सत्कार करते० नगरके उत्तर उत्तर ले जाकर, उत्तर-द्वारसे नगरमें ०प्रवेशकर, नगरके बीचसे ले जा, पूर्व-द्वारसे निकल, नगरके पूर्व ओर (जहां) [1]मुकुट-बंधन नामक मल्लोंका चैत्य (=देवस्थान) है, वहां भगवान्‌के शरीर का दाह करें।"

"भन्ते! जैसा देवताओंका अभिप्राय है—वैसा ही हो।'

उस समय कुसीनारामें जांघभर मन्दारव (=एक दिव्य पुष्प)-पुष्प बरसे हुये थे। तब देवताओं और कुसीनाराके मल्लोंने भगवान्‌के शरीरको दिव्य और मानुष्य नृत्य०के साथ सत्कार करते० नगरसे उत्तर उत्तरसे ले जाकर ०(जहां) मुकुट-बंधन नामक मल्लोंका चैत्य था, वहां भगवान्‌का शरीर रक्खा। तब कुसीनाराके मल्लोंने आयुष्मान् आनन्दको कहा—

"भन्ते आनन्द! हम तथागतके शरीरको कैसे करें?"

"वाशिष्टो! जैसा चक्रवर्ती राजाके शरीरको करते हैं, वैसे ही तथागतके शरीरको करना चाहिये।'

"कैसे भन्ते! चक्रवर्ती राजाके शरीर को करते हैं।"

"वाशिष्टो! चक्रवर्ती राजाके शरीरको नये कपड़ेसे लपेटते हैं०। (दाहकर) बड़े चौरस्ते पर तथागतका स्तूप बनवाना चाहिये।...."

१. रामाभार (कसया) का स्तूप।

तब कुसीनाराके मल्लोंने पुरुषोंको आज्ञादी–
" तो भणे ! मल्लोंका धुना कपास जमा करो ।"

तब कुसीनाराके मल्लोंने भगवान्के शरीरको नये वस्त्रसे वेष्टित किया० सब गंधोंकी चिता बना, भगवान्के शरीरको चिता पर रक्खा ।

उस समय पांचसौ भिक्षुओंके महाभिक्षुसंघके साथ आयुष्मान् महाकाश्यप पावा और कुसीनाराके बीचमें, रास्तेपर जा रहे थे । तब आयुष्मान् महाकाश्यप मार्गसे हटकर एक वृक्षके नीचे बैठे । उस समय एक आजीवक कुसीनारासे मंदार का पुष्प ले पावाके रास्तेपर जा रहा था । आयुष्मान् महाकाश्यपने उस आजीवक को दूरसे आते देखा । देखकर उस आजीवकको यह कहा—

" आवुस ! क्या हमारे शास्ताको भी जानते हो ?"

" हां, आवुस ! जानता हूँ ; श्रमण गौतमको परिनिर्वृत हुये आज एक सप्ताह होगया; मैंने यह मंदार-पुष्प वहींसे पाया ।"

यह सुन वहां जो अवीतराग भिक्षु थे, (उनमें) कोई कोई बांह पकड़कर रोते० । उस समय सुभद्र नामक (एक) वृद्ध प्रव्रजित (=बुढ़ापेमें साधु हुआ) उस परिषद्में बैठा था । तब वृद्ध-प्रव्रजित सुभद्रने उन भिक्षुओंको यह कहा—

" मत आवुसो ! मत शोक करो, मत रोओ । हम सुमुक्त होगये । उस महाश्रमण से पीड़ित रहा करतेथे—'यह तुम्हें विहित है, यह तुम्हें विहित नहीं है । अब हम जो चाहेंगे, सो करेंगे, जो नहीं चाहेंगे, सो नहीं करेंगे ।"

तब आयुष्मान् महाकाश्यपने भिक्षुओंको आमंत्रित किया—

" आवुसो ! मत सोचो, मत रोओ । आवुसो ! भगवान्ने तो यह पहिलेही कह दिया है—सभी प्रियों=मनापोंसे जुदाई ० होनी है, सो वह आवुसो ! कहां मिलनेवाला है ? जो जात (=उत्पन्न)=भूत ० है, वह नाश होनेवाला है । ' हाय ! वह नाश मत हो '—यह सम्भव नहीं ।"

उस समय चार मल्ल-प्रमुख शिरसे नहाकर, नया वस्त्र पहिन, भगवान्की चिताको लीपना चाहते थे, किन्तु नहीं (लीप) सकते थे । तब कुसीनाराके मल्लोंने आयुष्मान् अनुरुद्धको पूछा—

" भन्ते अनुरुद्ध ! क्या हेतु है=क्या प्रत्यय है, जिससे कि चार मल्ल-प्रमुख ०नहीं (लीप) सकते हैं ।"

" वाशिष्टो ! ०देवताओंका दूसराही अभिप्राय है । पांच सौ भिक्षुओंके महाभिक्षुसंघके साथ आ० महाकाश्यप पावा और कुसीनाराके बीच रास्तेमें आरहे हैं । भगवान्की चिता तब तक न जलैगी, जबतक आयुष्मान् महाकाश्यप स्वयं भगवान्के चरणोंको···शिरसे वन्दना न कर लेंगे ।"

" भन्ते ! जैसा देवताओंका अभिप्राय है, वैसा हो ।"

तब आयुष्मान् महाकाश्यपने जहां मल्लोंका मुकुटबन्धन नामक चैत्य था, जहां भगवान् की चिता थी, वहां···पहुँचकर, चीवरको एक कन्धेपर कर अञ्जली जोड़, तीन बार चिताकी परिक्रमाकर, चरण खोलकर, शिरसे वन्दना की। उन पांच सौ भिक्षुओंने भी एक कन्धेपर चीवर कर, हाथ जोड़ तीनवार चिताकी—प्रदक्षिणाकर, भगवान्‌के चरणोंमें शिरसे वन्दना की। आयुष्मान् महाकाश्यप और उन पांच सौ भिक्षुओंके वन्दना करलेतेही, भगवान्‌की चिता स्वयं जल उठी। भगवान्‌के शरीरमें जो छवि (=झिल्ली) या चर्म, मांस, नस, या लसिका थी, उनकी न राख जान पड़ी, न कोयला; सिर्फ अस्थियांही बाकी रह गईं; जैसे कि जलते हुये घी या तेलकी न राख (=छारिका) जान पड़ती है, न कोयला (=मसी)···। भगवान्‌के शरीरके दग्ध हो जानेपर आकाशसे मेघने प्रादुर्भूत हो भगवान्‌की चिताको ठंढा किया।···। कुसीनाराके मल्लोंने भी सर्व-गन्ध (-मिश्रित) जलसे भगवान्‌की चिताको ठंढा किया।

तब कुसीनाराके मल्लोंने भगवान्‌की अस्थियों (=सरीरानि)को सप्ताह भर संस्थागारमें शक्ति(-हस्त पुरुषोंके घेरेका)-पंजर बनवा, धनुष(-हस्त पुरुषोंके घेरेका)-प्राकार बनवा, नृत्य, गीत, वाद्य, माला, गंधसे सत्कार किया=गुरुकार किया, माना=पूजा।

राजा मागध अजातशत्रु वैदेहीपुत्रने सुना—'भगवान् कुसीनारामें परिनिर्वाणको प्राप्त हुये'। तब राजा ०अजातशत्रु०ने कुसीनाराके मल्लोंके पास दूत भेजा—'भगवान् भी क्षत्रिय (थे), मैं भी क्षत्रिय (हूं); भगवान्‌के शरीरों (=अस्थियों)में मेरा भागभी वाजिब है। मैं भी भगवान्‌के शरीरोंका स्तूप बनवाऊंगा और पूजा करूंगा'।

वैशालीके लिच्छवियोंने सुना ०।
कपिलवस्तुके शाक्योंने सुना०।—'भगवान् हमारे ज्ञातिके (थे)०।
अल्लकप्पके बुलियोंने सुना०। रामग्रामके कोलियोंने सुना०।

वेठ-द्वीपके ब्राह्मणोंने सुना०, भगवान् भी क्षत्रिय थे, हम ब्राह्मण०। पावाके मल्लोंने भी सुना०।

ऐसा कहनेपर कुसीनाराके मल्लोंने उन संघो और गणोंसे कहा—"भगवान् हमारे ग्राम-क्षेत्रमें परिनिर्वृत हुये, हम भगवान्‌के शरीरों (=अस्थियों)का भाग नहीं देंगे।"

ऐसा कहनेपर द्रोण ब्राह्मणने उन संघों और गणोंको यह कहा—

"आप सब मेरी एक बात सुनें, हमारे बुद्ध क्षांति(=क्षमा)-वादी थे।
यह ठीक नहीं कि (उस) उत्तम पुरुषकी अस्थि-बांटनेमें मारपीट हो॥१॥

आप सभी सहित (=एक साथ) समग्र (=एक राय) संमोदन करते आठ भाग करें। (जिससे) दिशाओंमें स्तूपोंका विस्तार हो, बहुतसे लोग चक्षुमान् (=बुद्ध)में प्रसन्न (=श्रद्धावान्) हों॥२॥"

तो ब्राह्मण! तूही भगवान्‌के शरीरोंको आठ समान भागोंमें सुविभक्त कर।"

"अच्छा भो!" "द्रोण ब्राह्मणने भगवान्‌के शरीरोंको आठ समान भागोंमें सुविभक्त (=बांट)कर, उन संघों गणोंको कहा—

" आप सब इस कुंभको मुझे दें, मैं कुम्भका स्तूप बनाऊँगा और पूजा करूँगा ।"

उन्होंने द्रोण ब्राह्मणको कुंभ दे दिया ।

पिप्पलीवनके मोरियों(=मौर्यों)ने सुना० 'भगवान्‌भी क्षत्रिय, हमभी क्षत्रिय० ।" .

"भगवान्‌के शरीरोंका भाग नहीं है, भगवान्‌के शरीर बँट चुके । यहांसे कोइला (=अंगार) ले जाओ ।" वह वहांसे अंगार ले गये ।

तब (१) राजा० [1]अजातशत्रु०ने राजगृहमें भगवान्‌के अस्थियोंका स्तूप (बनाया) और पूजा(=मह)की । वैशालीके लिच्छवियोंनेभी० । (३) कपिलवस्तुके शाक्योंने भी० । (४) अल्लकप्पके बुलियोंने भी० । (५) रामगामके कोलियोंने भी० । वेठद्वीपके ब्राह्मण नेभी० । (७) पावाके मल्लोंने भी० । (८) कुसीनाराके मल्लोंने भी० । (९) द्रोण ब्राह्मणने भी कुम्भका० । (१०) पिप्पलीवनके मौर्योंने भी अंगारोंका० ।

इस प्रकार आठ शरीर(=अस्थि)के स्तूप और एक कुम्भ-स्तूप पूर्वकाल (=भूतपूर्व) में थे ।

" चक्षु-मान् (=बुद्ध)का शरीर (=अस्थि) आठ द्रोण था । (जिसमेंसे) सात द्रोण जम्बूद्वीपमें पूजित होते हैं । (और) पुरुषोत्तमका एक द्रोण राम-ग्राममें नागोंसे पूजा जाता है ॥१॥

एक दाढ़ (=दाठा) स्वर्ग-लोकमें पूजित है, और एक गंधारपुरमें पूजी जाती है । एक कलिंग-राजाके देशमें है; और एकको नागराज पूजते हैं ॥२॥ ...

---

[1] अ. क. "कुसीनारासे राजगृह पचीस योजन है । इस बीचमें आठ ऋषभ चौड़ा समतल मार्ग बनवा, मल्ल राजाओंने मुकुट-बंधन और संस्थागारमें जैसी पूजा की थी; वैसीही पूजा पचीस योजन मार्गमें की ।....(उसने) अपने पांच सौ योजन परिमंडल (=घेरे वाले) राज्यके मनुष्योंको एकत्रित करवाया । उन धातुओंको ले, कुसीनारासे धातु(-निमित्त)-क्रीडा करते निकलकर (लोग) जहां सुन्दर पुष्पोंको देखते,...वहीं पूजा करते थे । इस प्रकार धातु लेकर आते हुये, सात वर्ष सात मास सात दिन बीत गये ।... लाई गई धातुओंको लेकर (अजातशत्रुने) राजगृहमें स्तूप बनवाया, पूजा कराई ।...

इस प्रकार स्तूपोंके प्रतिष्ठित होजानेपर महाकाश्यप स्थविरने धातुओंके अन्तराय (=विघ्न)को देखकर, राजा अजात-शत्रुके पास जाकर कहा—" महाराज ! एक धातु-निधान (=अस्थि-धातु रखनेका तहखाना) बनाना चाहिये ।' " अच्छा भन्ते ! "...

स्थविर उन-उन राज-कुलोंको पूजा करने मात्रकी धातु छोड़कर बाकी धातुओंको ले आये । रामग्राममें धातुओंके नागोंके ग्रहण करनेसे अन्तराय न था; 'भविष्यमें लंका-द्वीपमें इसे महाविहारके महाचैत्यमें स्थापित करेंगे'—(के ख्यालसे भी) न ले आये । बाकी सातों नगरोंसे ले आकर, राजगृहके पूर्व-दक्षिण भागमें...(जो स्थान है); राजाने उस स्थान को खुदवाकर, उससे निकली मिट्टीसे ईंटें बनवाईं । 'यहां राजा क्या बनवाता है', पूछने वालोंको भी 'महाश्रावकोंका चैत्य बनवाता है' यही कहते थे; कोई भी धातु-निधानकी बात न जानता था ।

उस स्थानके अस्सी हाथ गहरा होनेजानेपर, नीचे लोहेका पत्तर बिछाकर, वहां 'थूपाराम'के चैत्य-घरके बराबरका तांबे (=ताम्र-लोह)का घर बनवा, आठ आठ हरिचंदन आदिके करंडों (=पिटारी) और स्तूपोंको बनवाया। तब भगवानूकी धातुको हरिचंदनके करण्ड (=पेटारी, डिब्बा)में रखवा, उस ···को दूसरे हरिचंदनके करण्डमें, उसे भी दूसरेमें, इस प्रकार आठ हरिचंदनके करण्डोंमें एकमें एक रखकर, ··,···आठ हरिचन्दन-स्तूपोंमें,···आठ लोहित (=लाल)-चन्दनके स्तूपोंमें,···(उन्हें) आठ (हाथी-)दंत-करण्डोंमें, आठ दंत-करण्डोंको आठ दंत-स्तूपोंमें,···सर्वरत्न करण्डोंमें,···सर्वरत्न-स्तूपोंमें,···आठ सुवर्ण-करण्डोंमें, ···आठ सुवर्ण-स्तूपोंमें,····आठ रजत(=चांदी)-करण्डोंमें,···आठ राजत-स्तूपोंमें, ···आठ मणि-करण्डोंमें,··· आठ मणि-स्तूपोंमें,·· लोहितांक-करण्डोंमें,=लोहितांक (=पद्मराग-मणि)-स्तूपोंमें,···मसार-गल्ल (=कवर-मणि)-करण्डोंमें,·· मसारगल्ल-स्तूपोंमें,···आठ स्फटिक-करण्डोंमें,···आठ स्फटिक-स्तूपोंमें रखकर, सबके ऊपर थूपारामके चत्यके बराबरका स्फटिक चैत्य बनवाया। उसके ऊपर सर्वरत्नमय गेह बनवाया। उसके ऊपर सुवर्णमय,·· रजतमय, उसके ऊपर ताम्रलोह (=तांबा)-मय गेह बनवाया। वहां सर्वरत्नमय बालुका बिखेरकर, जलज स्थलज सहस्रों पुष्पोंको बिखेरकर, साढ़े पांच सौ जातक, अस्सी महास्थविर, शुद्धोदन महाराज, महामायादेवी, (सिद्धार्थके) साथ उत्पन्न हुये सात, सभी (की मूर्तियां)को सुवर्ण-मय बनवाया। पांच-सौ सुवर्ण-रजतमय घट स्थापित किये; पांच-सौ सुवर्ण-ध्वज फहराये; पांच-सौ सुवर्ण-दीप, पांच-सौ रजत-दीप बनवाकर सुगंध-तैल भरकर, उनमें दुकूल (=बहुमूल्य वस्त्र)की बत्तियां डलवाईं। तब आयुष्मान् महाकाश्यपने—'माला मत मुरझायें, गंध न नष्ट हो, प्रदीप न बुझें'—यह अधिष्ठान (=दिव्य संकल्प) करके सुवर्ण-पत्रपर अक्षर खुदवाये—

"भविष्यमें पियदास (?=पियदस्सी=प्रियदर्शी) नामक कुमार छत्र धारणकर अशोक धर्मराजा होगा। वह इन धातुओंको फैलायेगा।"

राजाने सब साधनोंसे पूजाकर आदिसे ही (एक एक) द्वारको बंदकर, जंजीरमें कुंजी दे (=कुंचिकमुद्दियं बंधित्वा), वहां बड़ी मणियोंकी राशि स्थापित की—"भविष्यमें (होनेवाले) दरिद्र राजा मणियोंको ग्रहणकर धातुओंकी पूजा करें"—अक्षर खुदवा दिये। शक्र देवराजने विश्वकर्माको बुलाकर—"तात! अजातशत्रुने धातुनिधान कर दिया, वहां पहरा नियुक्त करो"—कह भेजा। उसने आकर वाल-संघाट-यंत्र लगा दिया। (जिससे) उस धातु-गर्भ (=धातुके चहबच्चे)में काष्ठकी मूर्तियां स्फटिकके वर्णके खड्गोंको लेकर पवन-वेगसे घूमती थीं। यंत्रमें जोड़कर एक ही आनीमें बांधकर; चारों ओर गृध्रोंके रहनेके स्थानकी भांति शिला-परिक्षेप करवा, ऊपर एक (शिला)से बंदकरवा मिट्टी डलवा भूमि समतलकर, उसके ऊपर पाषाण-स्तूप स्थापितकरवा दिया।

इस प्रकार धातु-निधान समाप्त हो जानेपर, स्थविर आयुभर रहकर निर्वाणको चले गये, राजा भी कर्मानुसार गया, वह मनुष्य भी मर गये।

पीछे पियदास (? पियदस्सी) नामक कुमारने, छत्र धारणकर अशोक नामक धर्मराजा हो, उन धातुओंको लेकर जंबूद्वीपमें फैलाया।···"

(प्रथम-संगीति वि. पृ. ४२६)

तब आयुष्मान् महाकाश्यपने भिक्षुओंको संबोधित किया । आवुसो ! एक समय मैं [1]पांचसौ भिक्षुओंके साथ पावा और कुसीनाराके बीच रास्तेमें था । तब आवुसो ! मार्गसे हटकर मैं एक वृक्षके नीचे बैठा । उस समय एक आजीवक कुसीनारासे मंदारका पुष्प लेकर पावाके रास्तेमें जारहा था । आवुसो ! मैंने दूरसे ही आजीवकको आते देखा । देखकर उस आजीवकको यह कहा—" आवुस ! हमारे शास्ताको जानते हो ? "

" हां आवुसो ! जानता हूं, आज सप्ताह हुआ, श्रमण गौतम परिनिर्वाणको प्राप्त हुआ । मैंने यह मन्दारपुष्प वहींसे लिया है । " आवुसो ! वहां जो भिक्षु अवीत-राग (=वैराग्य वाले नहीं) थे; (उनमें) कोई-कोई बांह पकड़कर रोते थे[2] ०।

'उस समय आवुसो ! सुभद्र[3] ०वृद्ध-प्रव्रजितने०कहा—०जो नहीं चाहेंगे उसे न करेंगे '। 'अच्छा आवुसो ! हम धर्म और विनय का संगान (=साथ पाठ) करें, सामने अधर्म प्रकट हो रहाहै, धर्म हटाया जा रहाहै, अविनय प्रकट हो रहाहै, विनय हटाया जा रहाहै । अधर्मवादी बलवान् हो रहे हैं,०धर्मवादी दुर्बल होरहे हैं,०विनयवादी हीन हो रहे हैं ।"

'तो भन्ते ! (आप) स्थविर भिक्षुओंको चुनें ।" तब आयुष्मान् महाकाश्यपने एक कम पांचसौ अर्हत् चुने । भिक्षुओंने आयुष्मान् महाकश्यपको यह कहा—

" भन्ते ! यह आनन्द यद्यपि शैक्ष्य (अन्-अर्हत्) हैं, (तो भी) छन्द (= राग) द्वेष, मोह, भय, अगति (=बुरे मार्ग) पर जानेके अयोग्य हैं । इन्होंने भगवान्के पास बहुत धर्म (=सूत्र) और विनय प्राप्त किया है; इसलिये भन्ते ! स्थविर आयुष्मान्को भी चुन लें ।"

तब आयुष्मान् महाकाश्यपने आयुष्मान् आनन्दको भी चुन लिया । तब स्थविर भिक्षुओंको यह हुआ—'कहां हम धर्म और विनयका संगायन करें ?' तब स्थविर भिक्षुओंको यह हुआ—

"राजगृह महागोचर (=समीपमें बहुत बस्तीवाला) बहुत शयनासन(=वासस्थान)-वाला है, क्यों न राजगृहमें वर्षावास करते हम धर्म और विनयका संगायन करें । (लेकिन) दूसरे भिक्षु राजगृह मत जावें' । तब आयुष्मान् महाकाश्यपने संघको ज्ञापित किया—

"आवुसो ! संघ सुनै, यदि संघको पसंद है, तो संघ इन पाँचसौ भिक्षुओंको राजगृहमें वर्षावास करते धर्म और विनय संगायन करनेकी संमति दे । और दूसरे भिक्षुओंको राजगृहमें नहीं बसने की ।' यह ज्ञप्ति(=सूचना)है । " भन्ते ! संघ सुने, यदि संघको पसंद है०।' जिस आयुष्मान्को इन पांचसौ भिक्षुओंका, ० संगायन करना, और दूसरे भिक्षुओंका राजगृह

---

१. चुल्लवग्ग ११ । २. देखो पृष्ठ ५४२ । ३. पृष्ठ ५४४ ।

में वर्षावास न करना पसंदहो, वह चुप रहै; जिसको नहीं पसंदहो, वह बोले । दूसरीवारभी० । तीसरीवारभी० । 'संघ इन पांचसौ भिक्षुओंके० तथा दूसरे भिक्षुओंके राजगृहमें वास न करनेसे सहमत है, संघको पसंद है, इसलिये चुप है'—यह धारण करता हूँ ।'

तब स्थविर भिक्षु ! धर्म और विनयके संगायन करनेके लिये राजगृह गये । तब स्थविर भिक्षुओंको हुआ—

'आवुसो ! भगवान्‌ने टूटे फूटेकी मरम्मत करनेको कहा है । अच्छा आवुसो ! हम प्रथम मासमें टूटे फूटेकी मरम्मत करें, दूसरे मासमें एकत्रितहो धर्म और विनयका संगायन करें ।' तब स्थविर भिक्षुओंने प्रथम मासमें टूटे फूटेकी मरम्मत की ।

आयुष्मान् आनन्दने—'बैठक (=सन्निपात) होगी, यह मेरे लिये उचित नहीं, कि मैं शैक्ष्य रहते ही बैठक में जाऊँ' (सोच) बहुत रात तक काय-स्मृतिमें बिता कर, रातके भिनसारको लेटनेकी इच्छासे शरीरको फैलाया, भूमिसे पैर उठ गये, और शिर तकिया पर न पहुँच सका । इसी बीचमें चित्त आस्रवों (=चित्तमलों)से अलग हो, मुक्त होगया । तब आयुष्मान् आनन्द अर्हत् होकर ही बैठकमें गये ।

आयुष्मान् महाकाश्यपने संघको ज्ञापित किया—

"आवुसो ! संघ सुने, यदि संघको पसन्द है, तो मैं उपालीको विनय पूछूँ ?"

आयुष्मान् उपालीनेभी संघको ज्ञापित किया—

"[1]भन्ते ! संघ सुने यदि संघको पसन्द है, तो मैं आयुष्मान् महाकाश्यपसे पूछे गये विनयका उत्तर दूँ ?"

तब आयुष्मान् महाकाश्यपने आयुष्मान् उपालीको कहा—

"आवुस ! उपाली ! [2]प्रथम-पाराजिका कहां प्रज्ञप्तकी गई ?" "राजगृहमें भन्ते !"

"किसको लेकर ?" "सुदिन्न कलन्द-पुत्तको लेकर ।"

"किस बातमें ?" "मैथुन-धर्म में ।"

तब आयुष्मान् महाकाश्यपने आयुष्मान् उपालीको प्रथम पाराजिकाकी वस्तु (=कथा)भी पूछी, निदान (=कारण)भी पूछा, पुद्गल (=व्यक्ति) भी पूछा, प्रज्ञप्ति (=विधान)भी पूछी, अनु-प्रज्ञप्ति (=संशोधन)भी पूछी, आपत्ति (=दोष-दंड)भी पूछी, अन्-आपत्ति भी पूछी ।

"आवुस उपाली ! [3]द्वितीय-पाराजिका कहां प्रज्ञापित हुई ?" "राजगृहमें, भन्ते !"

"किसको लेकर ?" "धनिय कुंभकार-पुत्र को ।

"किस वस्तुमें ?" "अदत्तादान (=चोरी)में ।"

तब आयुष्मान् महाकाश्यपने आयुष्मान् उपालीको द्वितीय पाराजिकाकी वस्तु (=बात, विषय) भी पूछी, निदान भी० अनापत्ति भी पूछी ।—

---

१. उस संघमें सभी महाकाश्यपसे पीछेके बने भिक्षु थे; इसलिये 'आवुस' कहा । २. यहां उस संघमें महाकाश्यप उपालीसे बड़े थे, इसलिये 'भन्ते !' कहा । ३. देखो पृष्ठ ३१२ । ४. देखो पृष्ठ ३०८ ।

" आवुस उपाली ! [1]तृतीय पाराजिका कहाँ प्रज्ञापित हुई ?" " वैशालीमें, भन्ते ।"
" किसको लेकर ?" " बहुतसे भिक्षुओं को लेकर ।"
" किस वस्तुमें ?"
" मनुष्य विग्रह (=नर-हत्या)के विषय में ।"

तब आयुष्मान् महाकाश्यपने० ।—
" आवुस उपाली ! [2]चतुर्थ-पाराजिका कहां प्रज्ञापित हुई ?" " वैशालीमें भन्ते !"
" किसको लेकर ?" "वग्गु-मुदा-तीरवासी भिक्षुओंको लेकर ।"
" किस वस्तुमें ?" " उत्तर-मनुष्य-धर्म (=दिव्य-शक्ति) में ।"

तब आयुष्मान काश्यपने० । इसी प्रकारसे दोनों (भिक्षु, भिक्षुणी)के विनयोंको पूछा । आयुष्मान् उपाली पूछेका उत्तर देते थे ।

तब आयुष्मान् महाकाश्यपने संघको ज्ञापित किया—

" आवुसो ! संघ मुझे सुने । यदि संघको पसन्द हो, तो मैं आयुष्मान् आनन्दको धर्म (=सूत्र) पूछूँ ?"

तब आयुष्मान् आनन्दने संघको ज्ञापित किया—

" भन्ते ! संघ मुझे सुने । यदि संघको पसन्द हो, तो मैं आयुष्मान् महाकाश्यपसे पूछे गये धर्मका उत्तर दूँ ?"

तब आयुष्मान् महाकाश्यपने आयुष्मान् आनन्दको कहा—
" आवुस आनन्द ! ' ब्रह्मजाल ' (सूत्र)को कहां भाषित किया ?"
" राजगृह और नालन्दाके बीचमें, अम्बलट्ठिकाके राजागारमें ।"
" किसको लेकर ?"
" सुप्रिय परिव्राजक और ब्रह्मदत्त माणवकको लेकर ।"   भी पूछा.
तब आयुष्मान महाकाश्यपने ' ब्रह्मजाल ' के निदानको भी पूछा, पुद्गलको भी पूछा—
" आवुस आनन्द ! ' [3]सामञ्ज (=श्रामण्य) फल ' को कहां भाषित किया ?"
" भन्ते ! राजगृहमें जीवकम्ब-वनमें ।"
" किसके साथ ?"
" अजात-शत्रु वैदेहिपुत्रके साथ ।"

तब आयुष्मान् महाकाश्यप ' सामञ्ञ-फल '-सुत्तके निदानको भी पूछा, पुद्गलको भी पूछा । इसी प्रकारसे पाँचों निकायोंको पूछा ; पूछे पूछेका आयुष्मान् आनन्दने उत्तर दिया ।

तब आयुष्मान आनन्दने स्थविर-भिक्षुओंको कहा—

" भन्ते ! भगवान्ने परिनिर्वाणके समय ऐसा कहा है—' आनन्द ! इच्छा होनेपर संघ मेरे न रहनेके बाद, क्षुद्र-अनुक्षुद्र (=छोटे छोटे) शिक्षापदों (=भिक्षु-नियमों)को हटा दे ।'

---

१. देखो पृष्ठ ३१७ । २. देखो पृष्ठ ३१९ । ३. देखो पृष्ठ ४९९ ।

"आवुस आनन्द! "तूने भगवान्‌को पूछा ?"—'भन्ते! किन क्षुद्र-अनुक्षुद्र शिक्षापदों को ?"

"भन्ते! मैंने भगवान्‌को नहीं पूछा०।"

किन्हीं किन्हीं स्थविरोंने कहा—चार पाराजिकाओंको छोड़कर बाकी शिक्षापद क्षुद्र-अनुक्षुद्र हैं। किन्हीं किन्हीं स्थविरोंने कहा—चार पाराजिकायें, और तेरह संघादिशेषोंको छोड़कर, बाकी०। ०चार पाराजिकायें, और तेरह संघादिशेषों, और दो अनियतोंको छोड़कर बाकी०। ०पाराजिका० संघादिशेष० अनियत और तीस नैसर्गिक-प्रायश्चित्तिकोंको छोड़कर०। ०पाराजिका० संघादिशेष० अनियत० नैसर्गिक प्रायश्चित्तिक और बानवे प्रायश्चित्तिकोंको छोड़कर०। ० ० और चार प्राति-देशनीयोंको छोड़कर०।

तब आयुष्मान् महाकाश्यपने संघको ज्ञापित किया—

"आवुसो! संघ मुझे सुनै। हमारे शिक्षापद गृही-गत भी हैं (=गृहस्थ भी जानते हैं)—"यह तुम शाक्यपुत्रीय श्रमणोंको विहित (=कल्प्य) है, यह नहा विहित है।" यदि हम क्षुद्र-अनुक्षुद्र शिक्षापदोंको हटायेंगे, तो कहनेवाले होंगे—'श्रमण गौतमने धूमके कालिख जैसा शिक्षापद प्रज्ञप्त किया, जबतक इनका शास्ता रहा, तब तक यह शिक्षापद पालते रहे, जब इनका शास्ता परिनिर्वृत होगया; तब यह शिक्षापदोंको नहीं पालते।' यदि संघको पसंद हो तो संघ अ-प्रज्ञप्त (=अविहित)को न प्रज्ञापन (=विधान) करै, प्रज्ञप्तका न छेदन करे। प्रज्ञप्तिके अनुसार शिक्षापदोंमें वर्तें'—यह ज्ञप्ति(=सूचना) है—'आवुसो! संघ सुनै० प्रज्ञप्तिके अनुसार शिक्षापदोंमें वर्तें। जिस आयुष्मान्‌को अ-प्रज्ञप्त न प्रज्ञापन, प्रज्ञप्तका न छेदन, प्रज्ञप्तिके अनुसार शिक्षापदोंको ग्रहण कर वर्तना पसन्द हो, वह चुप रहै, जिसको नहीं पसन्द हो वह बोले। संघ न अप्रज्ञप्तको प्रज्ञापन करता है, न प्रज्ञप्तका छेदन करता है०। प्रज्ञप्तिके अनुसारही शिक्षापदोंमें ग्रहण कर वर्तता है—(यह) संघको पसन्द है, इसलिये मौन है—ऐसा धारण करता हूँ।"

तब स्थविर भिक्षुओंने आयुष्मान् आनन्दको कहा—

"आवुस आनन्द! यह तूने बुरा किया (=दुक्कट), जो भगवान्‌को नहीं पूछा—'भन्ते! कौनसे हैं वह क्षुद्र-अनुक्षुद्र शिक्षापद। अतः अब तू दुष्कृतकी देशनाकर'।"

"भन्ते! मैंने याद न होनेसे भगवान्‌को नहीं पूछा—'भन्ते! कौनसे हैं०। इसे मैं दुष्कृत नहीं समझता। किन्तु आयुष्मानोंके ख्यालसे देशना (=क्षमा-प्रार्थना) करता हूँ।"

"यह भी आवुस आनन्द! तेरा दुष्कृत है, जो तूने भगवान्‌की वर्षाशाटी (=वर्षा ऋतुमें नहानेके कपड़े)को (पैरसे) आक्रमणकर सिया, इस दुष्कृतको देशनाकर।"

"भन्ते! मैंने अगौरवके ख्यालसे भगवान्‌की वर्षाकी लंगीको आक्रमणकर नहीं सिया, इसे मैं दुष्कृत नहीं समझता; किन्तु आयुष्मानोंके ख्यालसे देशना (=क्षमा-प्रार्थना) करता हूँ०।"

" यह भी आवुस आनन्द ! तेरा दुष्कृत है, जो तूने प्रथम भगवान्के शरीरको स्त्रीसे वंदना करवाया, रोती हुई उन स्त्रियोंके आंसुओंसे भगवान्का शरीर लिप्त होगया, इस दुष्कृतको देशनाकर ।"

" भन्ते ! वह वि(=अति)-कालमें न हो—इस (ख्याल)से मैंने भगवान्के शरीरको प्रथम स्त्रीसे वन्दना करवाया, मैं उसे दुष्कृत नहीं समझता० ।

" यह भी आवुस आनन्द ! तेरा दुष्कृत है, जो तूने भगवान्के उदार निमित्त करनेपर भगवान्के उदार (=ओलारिक) अवभास करनेपर, भगवान्से नहीं प्रार्थनाकी—' भन्ते ! बहुजन-हितार्थ बहुजन-सुखार्थ, लोकानुकंपार्थ, देव-मनुष्योंके अर्थ=हित=सुखके लिये भगवान् कल्पभर ठहरें, सुगत कल्पभर ठहरें ।' इस दुष्कृतको देशनाकर । "

" मैंने भन्ते ! मारसे परि-उत्थित-चित्त (=भ्रममें) होनेसे, भगवान्से प्रार्थना नहीं की ० । इसमें दुष्कृत नहीं समझता ० ।"

" यह भी आवुस आनन्द ! तेरा दुष्कृत है, जो तूने तथागतके बतलाये धर्म (=धर्म-विनय)में स्त्रियोंकी प्रव्रज्याकेलिये उत्सुकता पैदाकी । इस दुष्कृतकी देशना कर[1] । "

" भन्ते ! मैंने—'यह महाप्रजापती गौतमी भगवान्की मौसी, आपादिका=पोषिका, क्षीरदायिका है, जननीके मरनेपर स्तन पिलाया' (ख्यालकर) तथागत-प्रवेदित धर्ममें स्त्रियों की प्रव्रज्याकेलिये उत्सुकता पैदा की । मैं इसे दुष्कृत नहीं समझता, किन्तु ० । "

उस समय पांचसौ भिक्षुओंके महाभिक्षु-संघके साथ आ० पुराण दक्षिणागिरिमें चारिका कर रहे थे । आयुष्मान् पुराण स्थविर-भिक्षुओंके धर्म और विनयके संगायन समाप्त होजानेपर, दक्षिणागिरिमें इच्छानुसार विहरकर, जहां राजगृहमें कलंदक-निवापका वेणुवन था, जहां पर स्थविर भिक्षु थे, वहां गये । जाकर स्थविर भिक्षुओंके साथ प्रतिसंमोदनकर, एक ओर बैठे । एक ओर बैठे हुये आयुष्मान् पुराणको स्थविर भिक्षुओंने कहा—

" आवुस पुराण ! स्थविरोंने धर्म और विनयका[2] संगायन किया है । आओ तुम (भी) संगीतिको ।"

" आवुस ! स्थविरोंने धर्म और विनयको सुंदर तौरसे संगायन किया है ; तो भी जैसा मैंने भगवान्के मुँहसे सुना है, मुखसे ग्रहण किया है, वैसा ही मैं धारण करूँगा ।"

तब आयुष्मान् आनन्दने स्थविर-भिक्षुओंको यह कहा—

" भन्ते ! भगवान्ने परिनिर्वाणके समय यह कहा—' आनन्द ! मेरे न रहनेके बाद संघ छन्न (=छंदक)को ब्रह्मदंडकी आज्ञा दे ।'

" आवुस ! पूछा तुमने ब्रह्मदंड क्या है ?"

" भन्ते ! मैंने पूछा० ।—'आनन्द ! छन्न भिक्षु जैसा चाहे वैसा बोले ; भिक्षु छन्नको न बोलें, न उपदेश करें, न अनुशासन करें ।"

" तो आवुस आनन्द ! तूही छन्न भिक्षुको ब्रह्मदंडकी आज्ञादे ।"

---

१. पृष्ठ ७० ।

"भन्ते ! मैं छन्नको ब्रह्मदंडकी आज्ञा करूंगा, लेकिन वह भिक्षु चंड परुष (=कटुभाषी) है।"

"तो आवुस आनन्द ! तुम बहुतसे भिक्षुओंके साथ जाओ।"

"अच्छा भन्ते !"...कहकर आयुष्मान् आनन्द पांचसौ भिक्षुओंके महाभिक्षुसंघके साथ नावपर कौशाम्बी गये। नावसे उतर कर राजा उदयनके उद्यानके समीप एक वृक्षके नीचे बैठे। उस समय राजा उदयन रनिवास (=अवरोध)के साथ बागकी सैर कर रहाथा। राजा उदयनके अवरोधने सुना—हमारे आचार्य आर्य आनन्द उद्यानके समीप एक पेड़के नीचे बैठे हैं। तब अवरोधने राजा उदयनको कहा—

"देव ! हमारे आचार्य आर्य आनन्द उद्यानके समीप एक पेड़के नीचे बैठे हैं, देव ! हम आर्य आनन्दका दर्शन करना चाहती हैं।

"तो तुम श्रमण आनन्दका दर्शन करो।"

तब...अवरोध जहां आयुष्मान् आनन्द थे, वहां...जाकर अभिवादनकर एक ओर बैठा। एक ओर बैठे हुये...रनिवासको आयुष्मान् आनन्दने धार्मिक कथासे संदर्शित=प्रेरित=समुत्तेजित, संप्रहर्षित किया। तब राजा उदयनके अवरोधने आयुष्मान् आनन्दको पांच सौ चादरें (=उत्तरासंग) प्रदानकीं। तब अवरोध आयुष्मान् आनन्दके भाषणको अभिनंदित कर अनुमोदित कर, आसनसे उठ आयुष्मान् आनन्दको अभिवादनकर, प्रदक्षिणाकर,जहां राजा उदयन था वहां चला गया। राजा उदयनने दूरसे ही अवरोधको आते देखा, देखकर अवरोधको कहा—

"क्या तुमने श्रमण आनन्दका दर्शन किया ?" "दर्शन किया देव ! हमने...आनंदका।"
"क्या तुमने श्रमण आनन्दको कुछ दिया ?" "देव ! हमने पांच सौ...चादरें दीं।"

राजा उदयन हैरान होता था, खिन्न होता था=विपाचित होता था—'क्यों श्रमण आनन्दने इतने अधिक चीवरोंको लिया, क्या श्रमण आनन्द कपड़ेका व्यापार (=दुस्स-वणिज्ज) करेगा, या दूकान खोलेगा।' तब राजा उदयन जहां आयुष्मान् आनंद थे, वहां गया, जाकर आयुष्मान् आनन्दके साथ सम्मोदन कर... एक ओर बैठ गया। एक ओर बैठे राजा उदयनने आयुष्मान् आनन्दको यह कहा—

"हे आनन्द ! क्या हमारा अवरोध यहां आया था ?" "आया था महाराज ! यहां तेरा अवरोध।"

"क्या आप आनन्दको कुछ दिया ?" "महाराज ! पांच सौ चादरें दीं।"

"आप आनन्द ! इतने अधिक चीवर क्या करेंगे ?" "महाराज ! जो फटे चीवर वाले भिक्षु हैं, उन्हें बाटेंगे।"

"और...जो वह पुराने चीवर हैं, उन्हें क्या करेंगे ?" "... महाराज ! बिछौनेकी चादर बनायेंगे।"

"...जो वह पुराने बिछौनेकी चादरें हैं, उन्हें क्या करेंगे ?" "...उनसे गद्देका गिलाफ बनायेंगे।"

"···जो वह पुराने गद्देके गिलाफ हैं, उन्हें क्या करेंगे ?" "···उनका महाराज ! फर्श बनावेंगे ।"

"···जो वह पुराने फर्श हैं, उनका क्या करेंगे ?" "···उनका महाराज ! पायंदाज बनावेंगे ।"

"···जो वह पुराने पायंदाज हैं, उनका क्या करगे ?" "···उनका महाराज ! झाड़न बनावेंगे ।"

"···जो वह पुराने झाड़न हैं० ?" "···उनको···कूटकर, कीचड़के साथ मर्दनकर पलस्तर करेंगे ।"

तब राजा उदयनने—'यह सभी शाक्यपुत्रीय श्रमण कार्यकारणसे काम करते हैं, व्यर्थ नहीं जाने देते'—(कह), आयुष्मान् आनन्दको पांच-सौ और चादरें प्रदान कीं । यह आयुष्मान् आनन्दको एक हजार चीवरोंकी प्रथम चीवर-भिक्षा प्राप्त हुई ।

तब आयुष्मान् आनन्द जहां घोषिताराम था, वहां गये, जाकर बिछे आसनपर बैठे । आयुष्मान् छन्न जहां आयुष्मान् आनन्द थे, वहां गये, जाकर आयुष्मान् आनन्दको अभिवादन कर एक ओर बैठे । एक ओर बैठे आयुष्मान् छन्नको आयुष्मान् आनन्दने कहा—

"आवुस ! छन्न ! संघने तुम्हें, ब्रह्मदंडकी आज्ञा दी है ।

"क्या है भन्ते आनन्द ! ब्रह्मदंड ?"

तुम आवुस छन्न ! भिक्षुओंको जो चाहना सो बोलना, किंतु भिक्षुओंको तुमसे नहीं बोलना होगा, नहीं अनुशासन करना होगा ।"

"भन्ते आनन्द ! मैं तो इतनेसे मारा गया, जो कि भिक्षुओंको मुझसे नहीं बोलना होगा० ।"—(कह) वहीं मूर्छित होकर गिर पड़े । तब आयुष्मान् छन्न ब्रह्मदण्डसे वेधित, पीड़ित, जुगुप्सित हो, एकाकी, निस्संग, अ-प्रमत्त, उद्योगी, आत्मसंयमी हो, विहार करते, जल्दीही जिसके लिये कुलपुत्र···प्रव्रजित होते हैं; उस सर्वोत्तम ब्रह्मचर्य-फलको इसी जन्ममें स्वयं जानकर=साक्षात्कारकर=प्राप्तकर विहरने लगे । और आयुष्मान् छन्न अर्हतोंमें एक हुये ।"

तब आयुष्मान् छन्न अर्हत-पदको प्राप्तहो जहां आयुष्मान् आनन्द थे, वहां गये, जाकर आयुष्मान् आनन्दको बोले—

"भन्ते आनन्द ! अब मुझसे ब्रह्मदंड हटा लें ।"

"आवुस छन्न ! जिस समय तूने अर्हत्त्व साक्षात्कार किया, उसी समय, ब्रह्म-दंड हट गया ।"

इस विनय-संगतिमें पांचसौ भिक्षु—न कम न बेशी थे । इसलिये यह विनय-संगीति 'पंच शतिका' कही जाती है ।

+ + + +

[1]सुत्तपिटकमें पांच निकाय हैं···—(१) दीघ-निकाय (२) मज्झिम-निकाय, (३) संयुत्त-निकाय (४) अंगुत्तर-निकाय, और (५) खुद्दक-निकाय ।···। (१) दीर्घ-निकाय में ब्रह्मजाल आदि ३४ सूत्र और तीन वर्ग हैं।···। सूत्रोंके दीर्घ (=लम्बे) होनेके कारण··· दीघ-निकाय कहा जाता है।···ऐसेही औरोंको भी समझाना चाहिये।····। (३) मज्झिम-निकायमें मध्यम परिमाणके पंद्रह वर्ग और 'मूल-परियाय' आदि एकसौ तिरपन सूत्र हैं।····। (२) संयुत्त निकायमें 'वेदना-संयुत्त' आदि (५४ संयुक्त) और 'ओघ-तरण' आदि सात हजार सात सौ बासठ सूत्र हैं···। (४)····अंगुत्तर निकायमें (ग्यारह निपात और) 'चित्त-परियादान' आदि नौहजार पांचसौ सत्तावन सूत्र हैं।···।

दीघ-निकाय आदि चार निकायोंको छोड़कर बाकी बुद्ध-वचन खुद्दक (निकाय) कहा जाता है।···। यह सभी बुद्ध-वचन हैं—

बुद्धसे ८२ हजार (श्लोक-प्रमाण वचन) गृहीत हुये हैं, और भिक्षुओंसे दो हजार। यह चौरासीहजार मेरे धर्म हैं; जिन्हें कि मैंने प्रवर्तित किया।···।

द्वितीय-संगीति (वि॰ पू॰ ३२६)।

[1]उस समय भगवान्के परिनिर्वाणके सौ वर्ष बीतनेपर, वैशाली-निवासी वज्जिपुत्तक (=वृज्जि-पुत्र) भिक्षु दश वस्तुओंका प्रचार करते थे—

" भिक्षुओ ! (१) शृङ्गि-लवण-कल्प विहित है। (२) द्वि-अंगुल-कल्प०। (३) ग्रामान्तर-कल्प०। (४) आवास-कल्प०। (५) अनुमति-कल्प०। (६) आचीर्ण-कल्प०। (७) अमथित-कल्प०। (८) जलोगीपान०। (९) अ-दशक०। (१०) जातरूप-रजत०।"

उस समय आयुष्मान् यश काकण्डक-पुत्त वज्जीमें चारिका करते जहां वैशाली थी वहां पहुँचे। आयुष्मान् यश० वैशालीमें महावनकी कूटागार-शालामें विहार करते थे। उस समय वैशालीके वज्जि-पुत्तक भिक्षु उपोसथके दिन कांसेकी थालीको पानीसे भर भिक्षु-संघके बीचमें रखकर, आने जाने वाले वैशालीके उपासकोंको कहते थे—

" आवुसो ! संघको कार्षापण दो, अधेला (=अर्द्ध-कार्षापण) दो, पाइली (=पाद कार्षापण) दो, मासा (=मापक रूप) भी दो। संघके परिष्कार (=सामान)का काम होगा।"

ऐसा कहनेपर आयुष्मान् यश० ने वैशालीके उपासकोंको कहा—" मत आवुसो ! संघको कार्षापण (=पैसा)० दो, शाक्यपुत्रीय श्रमणोंको जातरूप(=सोना)-रजत (=चांदी) विहित नहीं है, शाक्यपुत्रीय श्रमण जात-रूप रजत उपभोग नहीं करते, ०जातरूप-रजत स्वीकार नहीं करते। शाक्यपुत्रीय श्रमण जात रूप-रजत त्यागे-हुये हैं।...। आयुष्मान् यश०के ऐसा कहनेपर भी ०उपासकोंने संघको कार्षापण० दिया ही। तब वैशालिक वज्जि-पुत्तक भिक्षुओंने उस रातके बीतनेपर, भोजनके समय हिस्सा लगाकर बांट दिया। तब वैशाली के वज्जि-पुत्तक भिक्षुओंने आयुष्मान् यश काकण्ड-पुत्तको कहा—

" आवुस यश ! यह हिरण्यका हिस्सा तुम्हरा है।"

" आवुसो ! मेरा हिरण्यका हिस्सा नहीं, मैं हिरण्यको उपभोग नहीं करता।"

तब वैशालिक वज्जिपुत्तक भिक्षुओंने—' यह यश काकण्डपुत्त, श्रद्धालु प्रसन्न उपासकोंको निन्दता है, फट्कारता है, अ-प्रसन्न करता है; अच्छा हम इसका प्रतिसारणीय कर्म करें।' उन्होंने उनका प्रतिसारणीय कर्म किया। तब आयुष्मान् यश०ने वैशालिक वज्जिपुत्तक भिक्षुओंको कहा—

" आवुसो ! भगवान्ने आज्ञा दी है कि प्रतिसारणीय कर्म किये गये भिक्षुको, अनुदूत देना चाहिये। आवुसो ! मुझे (एक) अनुदूत भिक्षु दो।"

---

१. चुल्लवग्ग १२।

तब वैशालिक वज्जिपुत्तक भिक्षुओंने सलाहकर ०यशको एक अनुदूत (=साथ जाने-वाला) दिया। तब आयुष्मान् यश०ने अनुदूत भिक्षुके साथ वैशालीमें प्रविष्ट हो, वैशालिक उपासकोंको कहा—

"आयुष्मानो! मैं श्रद्धालु, प्रसन्न, उपासकोंको निन्दता हूँ, फट्कारता हूँ, अप्रसन्न करता हूं, जो कि मैं अधर्मको अधर्म कहता हूँ, धर्मको धर्म कहता हूँ, अविनयको अविनय कहता हूँ, विनयको विनय कहता हूं? आवुसो! एक समय भगवान् श्रावस्तीमें अनाथ-पिंडकके आराम जेतवनमें विहार करते थे। वहां आवुसो! भगवान्ने भिक्षुओंको आमंत्रित किया—'भिक्षुओ! चंद्र-सूर्यको चार उपक्लेश (=मल) हैं, जिन उपक्लेशोंसे उपक्लिष्ट (मलिन) होनेपर, चंद्र-सूर्य न तपते हैं=न भासते हैं, न प्रकाशते हैं। कौनसे चार? भिक्षुओ! बादल, चंद्र-सूर्यका उपक्लेश है, जिन उपक्लेशसे०। भिक्षुओ! महिका (=कुहरा)०। धूमरज (=धूमकण)०। राहु असुरेन्द्र (=ग्रहण)०। इसी प्रकार भिक्षुओ! श्रमण ब्राह्मणके भी चार उपक्लेश हैं, जिन उपक्लेशोंसे उपक्लिष्ट हो श्रमण ब्राह्मण नहीं तपते०। कौनसे चार? भिक्षुओ! (१) कोई कोई श्रमण ब्राह्मण सुरा पीते हैं, मेरय (=कच्ची शराब) पीते हैं, सुरा-मेरय-पानसे विरत नहीं होते। भिक्षुओ! यह प्रथम० उपक्लेश है०। (२) भिक्षुओ! कोई कोई श्रमण ब्राह्मण मैथुनधर्म सेवन करते हैं, मैथुन-धर्मसे विरत नहीं होते। ०यह दूसरा०। (३) ०जातरूप-रजत उपभोग करते हैं, जातरूप-रजतके ग्रहणसे विरत नहीं होते०। (४) ०मिथ्या-जीविका करते है, मिथ्या-आजीवसे विरत नहीं होते०। भिक्षुओ! यह चार श्रमणोंके उपक्लेश हैं०।'''।

"ऐसा कहनेवाला मैं श्रद्धालु, प्रसन्न आयुष्मान् उपासकोंको निन्दता हूँ०? सो मैं अधर्मको अधर्म कहता हूं०। एक समय आवुसो! भगवान् राजगृहमें कलन्दक-निवापके वेणुवनमें विहार करते थे। उस समय आवुसो! राजान्तःपुर (=राज-दर्बार)में राज-सभामें एकत्रित हुओंमें यह बात उठी—'शाक्यपुत्रीय श्रमण सोना-चांदी (=जातरूप-रजत) उपभोग करते हैं स्वीकार करते हैं।' उस समय मणिचूड़क ग्रामणी उस परिषद्में बैठा था। तब मणिचूड़क ग्रामणीने उस परिषद्को कहा—'मत आर्यो! ऐसा कहो, शाक्यपुत्रीय श्रमणोंको जातरूप-रजित नहीं कल्पित (=विहित, हलाल) है,०। वह मणि-सुवर्ण त्यागे हुए हैं, शाक्यपुत्रीय श्रमण, जातरूप रजत छोड़े हुये है०।' आवुसो! मणिचूड़क ग्रामणी उस परिषद्को समझा सका। तब आवुसो! मणिचूड़क ग्रामणी उस परिषद्को समझाकर जहाँ भगवान् थे, वहाँ गया। जाकर भगवान्को अभिवादनकर'''एक ओर बैठ'''भगवान्को यह बोला—

'भन्ते! राजान्तःपुरमें राजसभामें ० बात उठी ०। मैं उस परिषद्को समझा सका। क्या भन्ते! ऐसा कहते हुये मैं भगवान्के कथितका ही कहनेवाला होता हूं? असत्यसे भगवान् का अभ्याख्यान (=निन्दा)तो नहीं करता? धर्मानुसार कथित कोई धर्म-वाद निन्दित तो नहीं होता?'

"निश्चय, ग्रामणी! ऐसा कहनेसे तू मेरे कथितका कहनेवाला है ०, कोई धर्म-वाद निन्दित नहीं होता। ग्रामणी! शाक्यपुत्रीय श्रमणोंको जातरूप-रजत विहित नहीं है ०। ग्रामणी! जिसको जात-रूप-रजत कल्पित है, उसे पांच काम-गुणभी कल्पित हैं, जिसको पांच

काम-गुण (=काम-भाग) कल्पित हैं, ग्रामणी! तुम उसको बिल्कुलही अ-श्रमण-धर्मी, अ-शाक्यपुत्रीय-धर्मी समझना। और मैं ग्रामणी! ऐसा कहता हूँ, तिन-का चाहनेवाले (=तृणार्थी)को तृण खोजना होता है शकटार्थीको शकट ०, पुरुषार्थीको पुरुष ०; किन्तु ग्रामणी! किसी प्रकारभी मैं जातरूप-रजतको स्वादितव्य, पर्येषितव्य (=अन्वेषणीय) नहीं मानता।' ऐसा कहनेवाला मैं ० आयुष्मान् उपासकोंको निन्दिता हूँ ०।"

"आवुसो! एक समय उसी राजगृहमें भगवान्ने आयुष्मान् उपनन्द शाक्यपुत्रको लेकर, जातरूप-रजतका निषेध किया, और शिक्षापद (=भिक्षु-नियम) बनाया। ऐसा कहनेवाला मैं ०।"

ऐसा कहनेपर वैशालीके उपासकोंने आयुष्मान् यश काकंडपुत्तको कहा—

"भन्ते! एक आर्य यशही शाक्यपुत्रीय श्रमण हैं, यह सभी, अ-श्रमण हैं, अ-शाक्य-पुत्रीय हैं। आर्य यश ० वैशालीमें वास करें। हम आर्य यश०के चीवर; पिंडपात, शयनासन ग्लान-प्रत्यय भैषज्य परिष्कारोंका प्रबन्ध करेंगे।"

तब आयुष्मान् यश०वैशालीके उपासकोंको समझाकर, अनुदूत भिक्षुके साथ आरामको गये। तब वैशालिक वज्जिपुत्तक भिक्षुओंने अनुदूत भिक्षुको पूछा—

"आवुस! क्या यश काकण्डपुत्तने वैशालिक उपासकोंसे क्षमा मांगी?"

"आवुसो! उपासकोंने हमारी निन्दाकी—एक आर्य यश० ही श्रमण हैं, शाक्य-पुत्रीय हैं, हम सभी अश्रमण, अशाक्य-पुत्रीय बना दिये गये।"

तब वैशालिक वज्जिपुत्तक भिक्षुओंने (विचारा)—'आवुसो! यह यश काकण्डपुत्त हमारी असम्मत (बात)को गृहस्थोंको प्रकाशित करता है; अच्छा तो हम इसका उत्क्षेपणीय कर्म करें।' वह उनका उत्क्षेपणीय-कर्म करनेके लिये एकत्रित हुये। तब आयुष्मान् यश आकाशमें होकर, कौशाम्बी जा खड़े हुये।

तब आयुष्मान् यश काण्ड-पुत्तने पावावासी और अवन्ती-दक्षिणापथ-वासी भिक्षुओंके पास दूत भेजा—'आयुष्मानो! आओ, इस झगड़ेको मिटाओ, सामने अधर्म प्रकट हो रहा है, धर्म हटाया जा रहा है, ०अविनय प्रकट होरहा है०,०[1]।

उस समय आयुष्मान् संभूत साणवासी अहोगंग-पर्वतपर वास करते थे। तब आयुष्मान् यश० जहां अहोगंग-पर्वत था, जहां आ०संभूत थे, वहां गये। जाकर आयुष्मान् संभूत साणवासीको अभिवादनकर···एक ओर बैठ आयुष्मान् संभूत साणवासीको बोले—

"भन्ते! यह वैशालिक वज्जिपुत्तक भिक्षु वैशालीमें दश वस्तुओंका प्रचार कर रहे हैं०। अच्छा तो भन्ते! हम इस झगड़े (=अधिकरण)को मिटावें०।"

"अच्छा आवुस!"···

तब साठ पावावासी भिक्षु—सभी आरण्यक, सभी पिंडपातिक, सभी पांसुकूलिक, सभी त्रिचीवरिक, सभी अर्हत्, अहोगंग-पर्वत पर एकत्रित हुये। अवन्ती-दक्षिणापथके अट्ठासी

१. देखो पृष्ठ ५४८।

भिक्षु—कोई आरण्यक, कोई पिंडपातिक, कोई पांसुकूलिक, कोई त्रिचीवरिक, सभी अर्हत्, अहोगंग-पर्वतपर एकत्रित हुये। तब मंत्रणा करते हुये स्थविर भिक्षुओंको यह हुआ—'यह झगड़ा (=अधिकरण) कठिन और भारी है; हम कैसे (ऐसा) पक्ष (=सहायक) पावें, जिससे कि हम इस अधिकरणमें अधिक बलवान् होवें।

उस समय बहुश्रुत, आगतागम, धर्मधर, विनयधर, मात्रिकाधर (=अभिधर्मज्ञ), पंडित, व्यक्त, मेधावी, लज्जी, कौकृत्यक (=संकोची), शिक्षाकाम आयुष्मान् रेवत [1]सोरेय्यमें वास करते थे;—'यदि हम आयुष्मान् रेवतको पक्षमें पावें, तो हम···इस अधिकरणमें अधिक बलवान् होंगे।' आयुष्मान् रेवतने अमानुष, विशुद्ध, दिव्य श्रोत्र-धातुसे स्थविर भिक्षुओंकी मंत्रणा सुनली। सुनकर उन्हें ऐसा हुआ—'यह अधिकरण कठिन और भारी है, मेरे लिये अच्छा नहीं कि मैं ऐसे अधिकरण (=विवाद)में न फँसूं; अब वह भिक्षु आवेंगे उनसे घिरा मैं सुखसे नहीं जासकूंगा, क्यों न मैं आगेही जाऊँ।' तब आयुष्मान् रेवत सोरेय्यसे संकाश्य गये। स्थविर भिक्षुओंने सोरेय्य जाकर पूछा—'आयुष्मान् रेवत कहां हैं?' उन्होंने कहा—आयुष्मान् रेवत संकाश्य गये।' तब आयुष्मान् रेवत संकाश्यसे कन्नकुज्ज (=कान्यकुब्ज, कन्नौज) गये। स्थविर भिक्षुओंने संकाश्य जाकर पूछा—'आयुष्मान् रेवत कहां हैं?' उन्होंने कहा—'आयुष्मान् रेवत कान्यकुब्ज गये।' आयुष्मान् रेवत कान्यकुब्जसे उदुम्बर गये।०। ०उदुम्बरसे अग्गलपुर गये।०। ०अग्गलपुरसे [2]सहजाति गये।०। तब स्थविर भिक्षु आयुष्मान् रेवतसे सहजातिमें जा मिले।

आयुष्मान् संभूत साणवासीने आयुष्मान् यश०को कहा—"आवुस! यश! यह आयुष्मान् रेवत बहुश्रुत० शिक्षाकामी हैं। यदि हम आयुष्मान् रेवतको प्रश्न पूछें, तो आयुष्मान् रेवत एकही प्रश्नमें सारी रात बिता सकते हैं। अब आयुष्मान् रेवत अन्तेवासी स्वरभाणक (=स्वरसहित सूत्रोंको पढ़ने वाले) भिक्षुको (सस्वर पाठके लिये) कहेंगे। स्वर-भणन समाप्त होनेपर, आयुष्मान् रेवतके पास जाकर इन दश वस्तुओंको पूछो।"

"अच्छा भन्ते!"

तब आयुष्मान् रेवतने अन्तेवासी (=शिष्य) स्वरभाणक भिक्षुको आज्ञा (=अध्ये-षणा) की। तब आयुष्मान् यश उस भिक्षुके स्वरभणन समाप्त होने पर, जहां आयुष्मान् रेवत थे, वहां गये। जाकर० रेवतको अभिवादन कर एक ओर बैठे। एक ओर बैठ आयुष्मान् यश० ने आयुष्मान् रेवतको कहा—

(१) "भन्ते! शृंगि-लवण-कल्प विहित है?"

"क्या है आवुस! यह शृंगि-लवण-कल्प?"

"भन्ते! सींगमें नमक रखकर पास रक्खा जा सकता है, कि जहां अलोना होगा, लेकर खायेंगे? क्या यह विहित है?" "आवुस! नहीं विहित है।"

(२) "भन्ते! द्वयंगुल-कल्प विहित है?" "क्या है अवुस! द्वयंगुल-कल्प?"

---

१. सोरों (जिला, एटा)। २. भीटा, जि. इलाहाबाद।

"भन्ते ! (दोपहरको) दो अंगुल छायाको बिताकर भी विकालमें भोजन करना क्या विहित है ?" "आवुस नहीं विहित है ।"

(२) "भन्ते ! क्या ग्रामान्तर-कल्प विहित है ?" "क्या है आवुस ! ग्रामान्तर-कल्प?"

"भन्ते ! भोजन कर चुकनेपर, छक लेनेपर गांवके भीतर भोजन करने जाया जा सकता है ?" "आवुस ! नहीं....है ।"

(३) "भन्ते ! क्या आवास-कल्प विहित है ?" "क्या है आवुस ! आवास-कल्प ?"
"भन्ते ! 'एक सीमाके बहुतसे आवासोंमें उपोसथको करना' क्या विहित है?"
"आवुस ! नहीं विहित है ।"

(५) "भन्ते ! क्या अनुमति-कल्प विहित है ?" "क्या है आवुस ! अनुमति-कल्प ?"
"भन्ते ! (एक)वर्गके संघका (विनय-)कर्म करना, 'यह ख्याल करके, कि जो भिक्षु (पीछे)आवेंगे, उनको स्वीकृति दे देंगे, क्या यह विहित है ?'
"आवुस ! नहीं विहित है ।"

(६) "भन्ते ! क्या आचीर्ण-कल्प विहित है ?" "क्या है आवुस ! आचीर्ण-कल्प ?"

"भन्ते ! 'यह मेरे उपाध्यायने आचरण किया है, यह मेरे आचार्यने आचरण किया है' (ऐसा समझकर) किसी बातका आचरण करना, क्या विहित है ?"

"आवुस ! कोई कोई आचीर्ण-कल्प विहित हैं, कोई कोई....अविहित हैं ।"

(७) "भन्ते ! अमथित-कल्प विहित है ?" "क्या है आवुस ! अमथित-कल्प ?"

"भन्ते ! जो दूध दूध-पनको छोड़ चुका है, दहीपनको नहीं प्राप्त हुआ है, उसे भोजन कर चुकनेपर, छक लेनेपर, अधिक पीना क्या विहित है ?" "आवुस ! नहीं विहित है ।"

(८) "भन्ते ! जलोगी-पान विहित है ?" "क्या है आवुस ! जलोगी ?"
"भन्ते ! जो सुरा अभी खुवाई नहीं गई है, जो सुरापनको अभी प्राप्त नहीं हुई है ; उसका पीना क्या विहित है ?" "आवुस ! विहित नहीं है ।"

(९) "भन्ते ! अदशक निषीदन (=बिना किनारीका आसन) विहित है ?"
"आवुस ! नहीं विहित है ।"

(१०) "भन्ते ! जातरूप-रजत (=सोनाचांदी) विहित है ?" "आवुस ! नहीं विहित है ।"

"भन्ते ! वैशालिक वज्जिपुत्तक भिक्षु वैशालीमें इन दश वस्तुओंका प्रचार करते हैं । अच्छा हो भन्ते ! हम इस अधिकरणको मिटावें० ।"

"अच्छा आवुस !" (कह) आयुष्मान् रेवतने आयुष्मान् यश०को उत्तर दिया ।

वैशालीके वज्जिपुत्तक भिक्षुओंने सुना, यश काकण्डपुत्त, इस अधिकरणको मिटानेके लिये पक्ष ढूँढ रहा है । तब वैशालिक वज्जिपुत्तक भिक्षुओंको यह हुआ—'यह अधिकरण कठिन है, भारी है ; कैसा पक्ष पावें, कि इस अधिकरणमें हम अधिक बलवान् हों । ' तब वैशालिक-वज्जिपुत्तक भिक्षुओंको यह हुआ—'यह आयुष्मान् रेवत बहुश्रुत० हैं ; यदि हम आयुष्मान् रेवतको

पक्ष (में) पावें, तो हम इस अधिकरणमें अधिक बलवान् हो सकेंगे। तब वैशाली वासी वज्जिपुत्तक भिक्षुओंने श्रमणोंके योग्य बहुत सा परिष्कार (=सामान) सम्पादित किया— पात्र भी, चीवर भी, निषीदन (=आसन, बिछौना) भी, सूचीघर (=सूईका घर) भी, काय-बंधन (=कमर-बंद) भी, परिस्रावण (=जलछक्का) भी, धर्मकरक (=गड़वा) भी। तब ०वज्जिपुत्तक भिक्षु उन श्रमण-योग्य परिष्कारोंको लेकर नावसे सहजातीको दौड़े। नावसे उतरकर एक वृक्षके नीचे भोजनसे निवटने लगे।

तब एकान्तमें स्थित, ध्यानमें बैठे आयुष्मान् साढ़के चित्तमें इस प्रकारका वितर्क उत्पन्न हुआ—'कौन भिक्षु धर्मवादी हैं? पावेयक (=पश्चिमवाले) या प्राचीनक (=पूर्ववाले)?' तब धर्म और विनयकी प्रत्यवेक्षासे आयुष्मान् साढ़को ऐसा हुआ—

"प्राचीनक भिक्षु अधर्मवादी हैं, पावेयक भिक्षु धर्मवादी हैं।"…।

तब वैशालिक वज्जिपुत्तक भिक्षु उस श्रमण-परिष्कारको लेकर, जहां आयुष्मान् रेवत थे, वहां…जाकर आयुष्मान् रेवतको बोले—

"भन्ते! स्थविर श्रमण-परिष्कार ग्रहण करें—पात्र भी०।"

"नहीं आवुसो! मेरे पात्र-चीवर पूरे हैं।"…

उस समय बीस वर्षका उत्तर नामक भिक्षु, आयुष्मान् रेवतका उपस्थाक (=सेवक) था। तब ०वज्जिपुत्तक भिक्षु, जहां आयुष्मान् उत्तर थे, वहां गये, जाकर आयुष्मान् उत्तरको बोले—

"आयुष्मान् उत्तर श्रमण-परिष्कार ग्रहण करें—पात्र भी०।"

"नहीं आवुसो! मेरे पात्रचीवर पूरे हैं।"

"आवुस उत्तर! लोग भगवान्‌के पास श्रमण-परिष्कार ले जाया करते थे, यदि भगवान् ग्रहण करते थे, तो उससे वह सन्तुष्ट होते थे; यदि भगवान् नहीं ग्रहण करते थे, तो आयुष्मान् आनन्दके पास ले जाते थे—'भन्ते! स्थविर श्रमण-परिष्कार ग्रहण करें, जैसे भगवान्‌ने ग्रहण किया, वैसा ही (आपका ग्रहण) होगा।' आयुष्मान् उत्तर श्रमण-परिष्कार ग्रहण करें, यह स्थविर (=रेवत)के ग्रहण करने जैसा ही होगा।'

तब आयुष्मान् उत्तरने ० वज्जिपुत्तक भिक्षुओंसे दबाये जानेपर एक चीवर ग्रहण किया—

"कहो, आवुसो! क्या काम है, कहो?"

"आयुष्मान् उत्तर स्थविरको इतनाही कहें—'भन्ते! स्थविर (आप) संघके बीच में इतनाही कहदें—प्राचीन (=पूर्वीय) देशों (=जनपदों)में बुद्ध भगवान् उत्पन्न होते हैं, प्राचीनक (=पूर्वीय) भिक्षु धर्मवादी हैं, पावेयक भिक्षु अधर्मवादी हैं।"

"अच्छा आवुसो!" कह…आयुष्मान् उत्तर जहां आयुष्मान् रेवत थे, वहां गये। जाकर आयुष्मान् रेवतको बोले—

" भन्ते ! (आप) स्थविर, संघके बीचमें इतनाही कहदें—प्राचीन देशोंमें बुद्ध भगवान् उत्पन्न होते हैं, प्राचीनक भिक्षु धर्मवादी हैं, पावेयक भिक्षु अधर्म-वादी हैं ।"

" भिक्षु ! तू मुझे अधर्ममें नियोजित कर रहा है ' (कहकर) स्थविरने आयुष्मान् उत्तरको हटादिया । तब ० वज्जिपुत्तकोंने आयुष्मान् उत्तरको कहा—

" आवुस उत्तर ! स्थविरने क्या कहा ?"

" आवुस ! हमने बुरा किया । ' भिक्षु ! तू मुझे अधर्ममें नियोजित कर रहा है '— (कह कर) स्थविरने मुझे हटा दिया ।"

" आवुस ! क्या तुम वृद्ध, बीस-वर्ष (के भिक्षु) नहीं हो ?" " हूं आवुस ! "

"तो हम (तुम्हें) बड़ा मानकर ग्रहण करते हैं ।"

उस अधिकरणका निर्णय करनेकी इच्छासे संघ एकत्रित हुआ । तब आयुष्मान् रेवतने संघको ज्ञापित किया—

"आवुस ! संघ मुझे सुने—यदि हम इस अधिकरण(=विवाद)को यहां शमन करेंगे, तो शायद मूलदायक (=प्रतिवादी) भिक्षु कर्म(=न्याय)के लिये उत्कोटन (=अमान्य) करेंगे । यदि संघको पसन्द हो, तो जहां यह विवाद उत्पन्न हुआ है, संघ वहीं इस विवादको शांत करै ।" तब स्थविर भिक्षु उस विवादके निर्णयके लिये वैशाली चले ।

उस समय पृथिवीपर आ० आनन्दके शिष्य सर्वकामी नामक संघ-स्थविर, उपसंपदा (=भिक्षुदीक्षा) होकर एकसौ बीस वर्षके, वैशालीमें वास करते थे । तब आयुष्मान् रेवतने आ० संभूत साणवासी (=श्मशान वासी, सन-वस्त्र-धारी) को कहा—

"आवुस ! जिस विहारमें सर्वकामी स्थविर रहते हैं, मैं वहां जाऊँगा, सो तुम समय पर आयुष्मान् सर्वकामीके पास आकर इन दश वस्तुओंको पूछना ।" "अच्छा, भन्ते !"

तब आयुष्मान रेवत, जिस विहारमें आयुष्मान् सर्वकामी थे, उस विहारमें गये । कोठरी (=गर्भ)के भीतर आयुष्मान् सर्वकामीका आसन बिछा हुआ था, कोठरीके बाहर आयुष्मान् रेवतका । तब आयुष्मान् रेवत—'यह स्थविर वृद्ध (होकर भी) नहीं लेट रहे हैं'—(सोच कर) नहीं लेटे । आयुष्मान् सर्वकामी भी—यह नवागत भिक्षु थका (होनेपरभी) नहीं लेट रहा है—(सोचकर) नहीं लेटे । तब आयुष्मान् सर्वकामीने रातके प्रत्यूष (=भिनसार)के समय आयुष्मान् रेवतको यह कहा—

" तुम आजकल किस····विहारसे अधिक विहरते हो ?"

" भन्ते ! मैत्री विहारसे मैं इस समय अधिक विहरता हूं ।"

" कुल्लक विहारसे तुम···इस समय अधिक विहरते हो, यह जो मैत्री है, यही कुल्लक विहार है ।"

" भन्ते ! पहिले गृहस्थ होनेके समय भी मैं मैत्री (भावना) करता था, इसलिये अब भी मैं अधिकतर मैत्री विहारसे विहरता हूं; यद्यपि मुझे अर्हत्-पद पाये चिर हुआ । भन्ते ! स्थविर आजकल किस विहारसे अधिक विहरते हैं । ?"

" भुम्म ! मैं इस समय अधिकतर शून्यता विहारसे विहरता हूँ ।"

" भन्ते ! इस समय स्थविर अधिकतर महापुरुष-विहारसे विहरते हैं । भन्ते ! यह 'शून्यता' महापुरुष-विहार है ।"

" भुम्म ! पहिले गृही होनेके समय मैं शून्यता विहारसे विहरा करता था, इसलिये इस समय शून्यता विहारसेही अधिक विहरता हूँ ; यद्यपि मुझे अर्हत्त्व पाये चिर हुआ ।"

(जब) इस प्रकार स्थविरोंकी आपसमें बात हो रही थी, उस समय आयुष्मान् साणवासी पहुँच गये । तब आयुष्मान् संभूत साणवासी जहां आयुष्मान् सर्वकामी थे, वहां गये । जाकर आयुष्मान् सर्वकामीको अभिवादनकर···एक ओर बैठ···यह बोले —

" भन्ते ! यह वैशालिक वज्जिपुत्तक भिक्षु वैशालीमें दश वस्तुका प्रचार कर रहे हैं० । स्थविरने (अपने) उपाध्याय (= आनन्द)के चरणमें बहुत धर्म और विनय ग्रहण किया है । स्थविरको धर्म और विनय देखकर कैसा मालूम होता है ? कौन धर्मवादी हैं, प्राचीनक भिक्षु, या पावेयक ?"

"तूने भी आवुस ! उपाध्यायके चरणमें बहुत धर्म और विनय सीखा है । तुझे आवुस ! धर्म और विनयको देखकर कैसा मालूम होता है ? कौन धर्मवादी हैं, प्राचीनक भिक्षु या पावेयक ?"

"भन्ते ! मुझे धर्म और विनयको अवलोकन करनेसे ऐसा होता है—'प्राचीनक भिक्षु अधर्मवादी हैं, पावेयक भिक्षु धर्मवादी हैं ।···।"

"मुझे भी आवुस ! ०ऐसा होता है—प्राचीनक भिक्षु अधर्मवादी हैं, पावेयक धर्मवादी ।" ···।

तब उस विवादके निर्णय करनेकेलिये संघ एकत्रित हुआ । उस अधिकरणके विनिश्चय (=फैसला) करते समय अनर्गल बकवाद उत्पन्न होते थे, एक भी कथनका अर्थ मालूम नहीं पड़ता था । तब आयुष्मान् रेवतने संघको ज्ञापित किया—

"भन्ते ! संघ मुझे सुने—हमारे इस विवादके निर्णय करते समय अनर्गल बकवाद उत्पन्न होते हैं० । यदि संघको पसन्द हो, तो, संघ इस अधिकरणको उद्वाहिका (=कमीटी) से शांत करे ।"

चार प्राचीनक भिक्षु और चार पावेयक भिक्षु चुने गये । प्राचीनक भिक्षुओंमें आयुष्मान् सर्वकामी, आयुष्मान् साढ़, आयुष्मान् क्षुद्र शोभित (=खुज्ज सोभित) और आयुष्मान् वार्षभ-ग्रामिक (=वासभ गामिक) । पावेयक भिक्षुओंमें आयुष्मान् रेवत, आयुष्मान् संभूत साणवासी, आयुष्मान् यश काकंडपुत्त और आयुष्मान् सुमन । तब आयुष्मान् रेवतने संघको ज्ञापित किया—

"भन्ते ! संघ मुझे सुनै—हमारे इस विवादके निर्णय करते समय अनर्गल बकवाद उत्पन्न होते हैं० । यदि संघको पसन्द हो, तो संघ चार प्राचीनक····(और) चार पावेयक भिक्षुओंकी उद्वाहिका इस विवादको शमन करनेके लिये माने ।—यह ज्ञप्ति है ।—

'भन्ते ! संघ मुझे सुने—हमारे इस विवादके निर्णय करते समय० । संघ चार प्राचीनक और चार पावेयक भिक्षुओंकी, उद्वाहिकासे इस विवादको शांत करना मानता है । जिस आयुष्मान्‌को चार प्राचीनक०, चार पावेयक भिक्षुओंकी उद्वाहिकासे इस विवादका शांत करना पसन्द है, वह चुप रहे, जिसको नहीं पसन्द है वह बोले ।...। संघने मान लिया, संघको पसन्द है, इसलिये चुप है—इसे ऐसा मैं समझता हूं ।"

उस समय अजित नामक दशवर्षीय[1] भिक्षु-संघका प्रातिमोक्षोद्देशक (=उपोसथके दिन भिक्षु नियमोंकी आवृत्ति करनेवाला) था । संघने आयुष्मान् अजितको ही स्थविर भिक्षुओं का आसन-विज्ञापक (=आसन विछानेवाला) स्वीकार किया । तब स्थविर भिक्षुओंको यह हुआ—' यह वालुकाराम रमणीय शब्दरहित=घोष-रहित है, क्यों न हम वालुकाराममें (ही) इस अधिकरणको शांत करें ।' तब स्थविर भिक्षु उस विवादके [2]निर्णय करनेकेलिये वालुकाराम गये । आयुष्मान् रेवतने संघको ज्ञापित किया—

" भन्ते संघ ! मुझे सुने—यदि संघको पसन्द हो, तो मैं आयुष्मान् सर्वकामीको विनय पूछूं ? "

आयुष्मान् सर्वकामीने संघको ज्ञापित किया —

" आवुस संघ ! मुझे सुनै—यदि संघको पसन्दहो, तो मैं आयुष्मान् रेवतद्वारा पूछे विनयको कहूं । "

आयुष्मान् रेवतने आयुष्मान् सर्वकामीको कहा—

(१) " भन्ते ! शृंगि-लवण-कल्प विहित है ? " " आवुस ! शृंगि लवण कल्प क्या है ? " " भन्ते ! सींगमें ० ।"

" आवुस ! विहित नहीं है ।"

" कहां निषेध किया है ?" " श्रावस्तीमें, 'सुत्त विभंग' में ।"

" क्या आपत्ति(=दोष) होती है ?',

" सन्निधिकारक(=संग्रहीत वस्तु)के भोजन करनेमें ' प्रायश्चित्तिक' ।"

" भन्ते ! संघ मुझे सुने—यह प्रथम वस्तु संघने निर्णय किया । इसप्रकार यह वस्तु धर्म-विरुद्ध, विनय-विरुद्ध, शास्ताके शासनसे वाहरकी है । यह प्रथम शलाकाको छोड़ता हूं ।"

(२) " भन्ते ! द्व्यंगुल-कल्प विहित है ?"०।०। " आवुस ! नहीं विहित है ।"

" कहां निषिद्ध किया ?" " राजगृहमें, 'सुत्तविभंग' में ।"

" क्या आपत्ति होती है ?" " विकाल भोजन-विषयक 'प्रायश्चित्तिक' की ।"

" भन्ते संघ ! मुझे सुनै—यह द्वितीय वस्तु संघने निर्णय किया ।०। यह दूसरी शलाका छोड़ता हूँ ।"

(३) " भन्ते ! 'ग्रामान्तर-कल्प' विहित है ? ०।०। " आवुस नहीं विहित है ।"

" कहां निषिद्ध किया ?" " श्रावस्तीमें 'सुत्तविभंग' में ।"

---

१. उपसंपदा होकर दशवर्षका । २. देखो पृष्ठ ५४१-४२ ।

"क्या आपत्ति होती है ?" "अतिरिक्त भोजन विषयक 'प्रायश्चित्तिक'।"
"भन्ते ! संघ मुझे सुने—०।"

(४) "भन्ते ! 'आवास-कल्प' विहित है ?" ०।०। "आवुस ! नहीं विहित है।"
"कहां निषिद्ध किया ?" "राजगृहमें 'उपोसथ-संयुत्त' में।"
"क्या आपत्ति होती है ?" "विनय (=भिक्षुनियम) के अतिक्रमणसे 'दुष्कृत'।"
"भन्ते ! संघ मुझे सुने०।"

(५) "भन्ते ! 'अनुमति-कल्प' विहित है ?"०।०। "आवुस ! नहीं विहित है।"
"कहां निषेध किया ?" "चाम्पेयक विनय-वस्तुमें।"
"क्या आपत्ति होती है ?" "विनय-अतिक्रमणसे 'दुष्कृत'।"
"भन्ते ! संघ मुझे सुने०।"

(६) "भन्ते ! 'आचीर्ण-कल्प' विहित है ?"०।०। "आवुस ! कोई कोई आचीर्ण-कल्प विहित है, कोई कोई नहीं।"
"भन्ते ! संघ मुझे सुने०।"

(७) "भन्ते ! 'अमथित-कल्प' विहित है ?"०।०। "आवुस ! नहीं विहित है।"
"कहां निषेध किया ?" "श्रावस्तीमें, 'सुत्त-विभंग' में।"
"क्या आपत्ति···है ?" "अतिरिक्त भोजन करनेमें 'प्रायश्चित्तिक'।"
"भन्ते ! संघ मुझे सुने०।"

(८) "भन्ते ! 'जलोगी-पान' विहित है ?"०।०। "आवुस ! नहीं विहित है।"
"कहां निषेध किया ?" "कौशाम्बीमें, 'सुत्त-विभङ्ग' में।"
"क्या आपत्ति होती है ?" "सुरा-मेरय पानमें 'प्रायश्चित्तिक'।"
"भन्ते ! संघ मुझे सुने०।"

(९) "भन्ते ! 'अदशक-निषीदन' (=विना किनारीका बिछौना) विहित है ?"
"आवुस ! नहीं विहित है।"
"कहां निषेध किया ?" "श्रावस्तीमें 'सुत्त-विभंगमें।"
"क्या आपत्ति होता है ?" "छेदन करनेका 'प्रायश्चित्तिक'।"
"भन्ते ! संघ मुझे सुने०।"

(१०) "भन्ते ! 'जातरूप-रजत' (=सोना चांदी) विहित है ?" "आवुस ! नहीं विहित है।
"कहां निषेध किया ?" "राजगृहमें 'सुत्त-विभंग' में।"
"क्या आपत्ति···है ?" "जात-रूप-रजत प्रतिग्रहण विषयक 'प्रायश्चित्तिक'।"

"भन्ते ! संघ मुझे सुने—यह दसवीं वस्तु संघने निर्णय की। इस प्रकार यह वस्तु (=बात) धर्म-विरुद्ध, विनय-विरुद्ध, शास्ताके शासनसे बाहरकी है। यह दसवीं शलाका छोड़ता हूं।"

" भन्ते ! संघ मुझे सुने— यह दश वस्तु, संघने निर्णयकी' । इस प्रकार यह वस्तु धर्म-विरुद्ध, विनय-विरुद्ध, शास्ताके शासनसे बाहरकी है ।"

(सर्वकामी)—" आवुस ! यह विवाद निहत हो गया, शांत, उपशांत, सु-उपशांत हो गया। आवुस ! उन भिक्षुओंकी जानकारीके लिये (महा-) संघके बीचमें भी मुझे इन दश वस्तुओंको पूछना ।"

तब आयुष्मान् रेवतने संघके बीचमें भी आयुष्मान् सर्वकामीको यह दस वस्तुयें पूछीं । पूछनेपर आयुष्मान् सर्वकामीने व्याख्यान किया ।

इस विनय-संगीतिमें, न कम, न वेशी सात सौ भिक्षु थे । इसलिये यह विनय संगीति 'सप्त-शतिका' कही जाती है ।

अशोक राजा। तृतीय-संगीति। (वि० पू० २१२-१९१)।

[1]इस प्रकार द्वितीय संगीतिको संगायन कर, उन स्थविरोंने···भविष्यकी ओर अवलोकन करते हुये यह देखा—'अबसे एकसौ अठारह (वि० पू० २०८) वर्ष बाद पाटलीपुत्रमें धर्माशोक नामक राजा·· सारे जम्बूद्वीप पर राज्य करेगा। वह बुद्धशासन (=बुद्धधर्म)में श्रद्धालु हो बहुत लाभ-सत्कार करेगा। तब लाभ-सत्कारकी इच्छासे तैर्थिक लोग शासन (=धर्म)में प्रव्रजित हो अपने अपने मतका प्रचार करेंगे। इस प्रकार शासनमें बड़ा मल उत्पन्न होगा।···कौन उस अधिकरण (=विवाद) को शांत करनेमें समर्थ होगा?—(यह सोचते) सकल मनुष्यलोकमें अवलोकन करते किसीको न देख, ब्रह्मलोकमें तिष्य नामक ब्रह्माको अल्पायु, तथा ऊपर ब्रह्मलोकमें उत्पन्न होनेसे (निर्वाण-) मार्गकी भावनामें रत देखा। देखकर उन्हें यह हुआ—'यदि हम इस महाब्रह्माको मनुष्य लोकमें उत्पन्न होनेकी प्रेरणा करें; तो यह अवश्य मौद्गलि (=मोग्गलि) ब्राह्मणके गेहमें जन्म लेगा; तब मंत्रके लोभसे निकलकर प्रव्रजित होगा। इस प्रकार प्रव्रजित हो सकल बुद्धवचनको पढकर (=ग्रहणकर), प्रतिसंवित्-प्राप्त हो, तैर्थिकोंको मर्दनकर, उस विवादको निर्णयकर, शासनको दृढ़ करेगा।' (यह सोच) ब्रह्मलोक जा तिष्य महाब्रह्माको कहा।···। तिष्य महाब्रह्माने···हर्षित हो 'अच्छा' कहकर वचन दिया।···। उस समय सिग्गव स्थविर और चंडवज्जी स्थविर दोनों तरुण, त्रिपिटकधर, प्रतिसंवित्-प्राप्त, क्षीणास्रव (=अर्हत्) नये भिक्षु थे। वह उस अधिकरण (=विवाद)में नहीं आये थे। स्थविरोंने—'आवुसो! तुम इस अधिकरणमें हमारे सहायक नहीं हुये, इसलिये तुम्हें यह दंड है—'तिष्यनामक ब्रह्मा मोग्गलि ब्राह्मणके घर जन्म लेगा। तुममें से एक उसे लेकर प्रव्रजित करें, और एक बुद्ध-वचन पढ़ावे।' कहकर वह सभी आयु पर्य्यन्त जीवित रहकर (निर्वाण-प्राप्त हुये)।

तिष्य महाब्रह्माभी ब्रह्मलोकसे च्युत हो मोग्गलि ब्राह्मणके घर गर्भमें आया। सिग्गव स्थविर भी उसके गर्भमें आनेसे लेकर सात वर्षतक, उस ब्राह्मणके घरमें पिंडके लिये जाते रहे, एक दिनभी चुल्लूभर यवागू या कलछीभर भात उन्होंने नहीं पाया। सात वर्षोंके बीतनेपर एकदिन "माफ करें, भन्ते"—इतना वचन मात्र पाया। उस दिन बाहर कोई आवश्यक काम करके लौटते वक्त ब्राह्मणने सामने स्थविरको देखकर कहा—

"हे प्रव्रजित! हमारे घर गये थे?" "हाँ ब्राह्मण! गया था।"
"क्या कुछ मिला?" "हाँ, ब्राह्मण! मिला।"
उसने घरमें जाकर पूछा—"उस साधुको कुछ दिया?"
"कुछ नहीं दिया।"

ब्राह्मण दूसरे दिन गृह-द्वार परही बैठा।···। स्थविर दूसरे दिन ब्राह्मणके गृहद्वारपर गये। ब्राह्मणने स्थविरको देखकर कहा—

---

१. समन्त पासादिका, पाराजिका-अट्ठकथा, ततिय-संगीति।

"तुम हमारे घरमें वार वार आकर भी कुछन पा, 'मिला है' बोले; (क्या) यह तुम्हारी वात झूठी नहीं है ?"

"ब्राह्मण ! हमने तुम्हारे घर सातवर्ष तक आकर, 'माफकरें' यह वचन मात्रभी न पा, फिर 'माफ करें' यह वचन पाया; इसी वातको लेकर हमने 'मिला है' कहा ।

ब्राह्मणने सोचा—'यह वचनमात्रको पाकर 'मिला है' (कहकर) प्रशंसा करते हैं, तो कुछ खाद्य-भोज्य पाकर क्यों न प्रशंसा करेंगे ।' (सोच) प्रसन्न हो, अपने लिये वने भातसे कलछीभर और उसके योग्य व्यंजन (=तेमन) दिलवाकर, 'यह भिक्षा तुम सदा पाओगे' कहा ।·· फिर ··स्थविरकी शांतवृत्ति देख·· प्रसन्न हो, अपने घरमें नित्य भोजन करनेकी प्रार्थनाकी । स्थविरने स्वीकार कर (लिया) ।···

वह माणवक (=ब्राह्मणपुत्र)भी सोलह वर्षकी उम्रमेंही त्रिवेद-पारंगतहो गया।··· जब वह आचार्यके घर जाता था, तो (घरवाले) उसके मंच-पीठको श्वेत वस्त्रसे आच्छादितकर लटका रखते थे । स्थविरने सोचा—' अब माणवकको प्रव्रजित करनेका समय आ गया ।···। (एक दिन) घरवालोंने···दूसरा आसन न देखकर (स्थविरकेलिये) माणवकका आसन विछा दिया । स्थविर आसनपर वैठे । माणवकने भी उसी समय आचार्यके घरसे आकर, स्थविरको अपने आसनपर वैठे देखकर, कुपित···हो कहा—'मेरा आसन श्रमणको किसने दे दिया ?' स्थविरने भोजन समाप्तकर···माणवककी चंडताके लिये कहा—

" क्या तुम माणवक कुछ (वेद-) मंत्र जानते हो ? "

" हे प्रव्रजित ! इस समय मेरे मंत्र न जाननेसे (दूसरा) कौन जानैगा"—कह स्थविरको पूछा—" क्या तुम मंत्र जानते हो ? "

" माणवक ! पूछो, पूछकर जान सकते हो ? "

तब माणवकने शिक्षा (=अक्षर-प्रभेद) कल्प, निघंटु, इतिहास सहित तीनों वेदोंमें जितने जितने कठिन स्थान थे, जिनके मतलबको न अपने जानता था, न आचार्यही जानता था, उन्हें स्थविरको पूछा । स्थविर वैसे भी तीनों वेदोंमें पारंगत थे, अब तो प्रतिसंवित् भी प्राप्त थे, इसलिये उन्हें उन प्रश्नोंके उत्तर देनेमें कोई कठिनाई न थी । उसी समय उत्तर दे माणवकको वोले—

" माणवक ! तुमने मुझे वहुत पूछा, मैं भी एक प्रश्न पूछता हूं, क्या तुम मुझे उत्तर दोगे ?"

" हां प्रव्रजित ! पूछो, उत्तर दूंगा । "

स्थविरने ' [1]चित्त-यमक 'से यह प्रश्न पूछा—

" जिसका चित्त उत्पन्न होता है, निरुद्ध नहीं होता, उसका चित्त निरुद्ध होगा, उत्पन्न नहीं होगा; किन्तु जिसका चित्त निरुद्ध होगा, और उत्पन्न नहीं होगा, उसका चित्त उत्पन्न होता है, निरुद्ध नहीं होता ।

---

१. अभिधम्म-पिटकके यमक प्रकरणसे ।

"हे प्रव्रजित ! इस मन्त्रका क्या नाम है ?" "माणवक ! यह बुद्ध-मंत्र है ।"

"क्या इसे मुझे भी दे सकते हो ?" "माणवक ! हमारी ग्रहणकी हुई प्रव्रज्याको ग्रहण करनेसे दे सकते हैं ।"

तब माणवकने माता-पिताके पास जाकर कहा—

"यह प्रव्रजित बुद्ध-मंत्र जानता है, किन्तु अपने पास न प्रव्रजित हुयेको नहीं देता; मैं इसके पास प्रव्रजित हो मंत्र ग्रहण करूँगा ।"

तब उसके माता-पिताने—'...मंत्र...ग्रहणकर फिर लौट आयेगा' ख्यालकर 'पुत्र ! ग्रहण करो' (कहकर) आज्ञा देदी ।

स्थविरने युवकको प्रव्रजितकर, पहिले बत्तीस प्रकारके कर्मस्थान (=योगक्रिया) बतलाये । वह उनका अभ्यास करते, जल्दी ही स्रोतआपत्तिफलमें प्रतिष्ठित होगया । तब स्थविरने सोचा—"श्रामणेर (अब) स्रोतआपत्तिफलमें स्थित है, अब शासनसे लौटने योग्य नहीं है; यदि मैं इसे बढ़ाकर कर्मस्थान कहूँगा, तो अर्हत्त्वको प्राप्त हो जायेगा, और बुद्ध-वचन ग्रहण करनेमें उत्साह-हीन हो जायेगा; अब चंडवज्जी स्थविरके पास भेजनेका समय है ।" तब उसे कहा—

"आओ श्रामणेर ! तुम स्थविरके पास जाकर बुद्ध-वचन ग्रहण करो । मेरे वचनसे (उन्हें) राजीखुशी (=आरोग्य) पूछना (और) यह भी कहना—भन्ते ! उपाध्यायने मुझे तुम्हारे पास भेजा है । तुम्हारे उपाध्यायका क्या नाम है, पूछनेपर—'भन्ते ! सिग्गव स्थविर' कहना । 'मेरा नाम क्या है' पूछनेपर "भन्ते ! मेरे उपाध्याय तुम्हारा नाम जानते हैं ।"

"अच्छा भन्ते !"...कह तिष्य श्रामणेर...चंडवज्जी स्थविरके पास (गया)...।

"किस लिये आये हो ?।" "भन्ते ! बुद्ध वचन ग्रहण करनेके लिये ।"

"...ग्रहण करो श्रामणेर !"

...तिष्यने श्रामणेर होते समय ही (२० वर्षकी अवस्था तक) विनयपिटकको छोड़कर अट्ठकथाके साथ सभी बुद्ध-वचनको ग्रहण (=याद करना) कर लिया था । उपसंपदा प्राप्त (=भिक्षुपन) हो एक वर्ष न पूरा होतेही त्रिपिटकधर होगये । आचार्य और उपाध्याय, मोग्गलिपुत्त-तिस्स (=मौद्गलिपुत्र तिष्य) स्थविरके हाथमें सकल बुद्ध-वचनको स्थापितकर आयुभर जीकर निर्वाण-प्राप्त हुये । मोग्गलिपुत्त तिस्स स्थविरने भी कर्मस्थान बढ़ाकर, अर्हत्-पद प्राप्त हो, बहुतोंको धर्म और विनय पढ़ाया ।

उस समय बिंदुसार राजाके एकसौ पुत्र थे । अपने और अपने सहोदर तिष्यकुमारको छोड़ अशोकने उन सबको (वि. पू. २१२ में) मार डाला । मारकर चार वर्षतक बिना अभिषेकके ही राज्य करके, चार वर्षोंके बाद, तथागतके निर्वाणके बाद २१८वें (वि. पू. २०८) वर्षमें सारे जम्बूद्वीपका एक छत्र राज्याभिषेक पाया ।....। राजाने अभिषेकको प्राप्त हो, तीन वर्षही तक बाह्य-पाषण्ड (=दूसरे मत) को ग्रहण किया । चौथे वर्ष (वि. पू. २०५) वह बुद्ध-धर्ममें प्रसन्न (=श्रद्धावान्) हुआ । उसका पिता बिन्दुसार ब्राह्मण-भक्त था ।...

इस प्रकार समय बीतते बीतते एक दिन राजाने सिंहपञ्जर(=खिड़की)में खड़े, दान्त, गुप्त, शान्तेन्द्रिय, [1]ईर्यापथयुक्त न्यग्रोध श्रामणेरको राज-आँगनसे जाते देखा। यह न्यग्रोध कौन था? बिन्दुसार राजाके ज्येष्ठ-पुत्र सुमन राजकुमारका पुत्र था।...। बिन्दुसार राजाको दुर्बल-अवस्था (=रोगावस्था)में अशोक कुमारने अपने उज्जैनके राज्यको छोड़कर, सारे नगरको अपने हाथमें करके, सुमन राजकुमारको पकड़ लिया। उसी दिन सुमन राजकुमारकी सुमना नामक देवी परिपूर्ण-गर्भा थी। वह अज्ञात वेशमें निकलकर, पासके एक चांडाल-ग्रामकी ओर जाती, मुखिया चांडाल (=ज्येष्ठक-चांडाल)के गेहके पास एक बर्गद (=न्यग्रोध)के नीचे...पहुँची।...उसी दिन उसे पुत्र उत्पन्न हुआ।...उस (बालकका भी) ...नाम न्यग्रोध रक्खा। ज्येष्ठक-चांडाल देखनेके दिनसे ही उसे अपने स्वामीकी पुत्री समझ, सेवा करने लगा। राजकन्या सात वर्ष तक वहाँ बसी। न्यग्रोध-कुमार भी सात वर्षका हो गया। तब महावरुण स्थविर नामक एक अर्हत्ने...राजकन्याको कहलाकर न्यग्रोध-कुमारको प्रव्रजित किया। कुमार छुरेकी धार (केशमें लगने)के साथ ही अर्हत्त्वको प्राप्त हो गया। एक दिन प्रातः ही शरीर-कृत्यसे निवृत्त हो, वह आचार्य-उपाध्यायके व्रत (=सेवा)को पूराकर, पात्र-चीवर ले, माता उपासिकाके द्वारपर जानेकी (इच्छासे)....निकला। उसकी माताके घरको, दक्षिण-द्वारसे नगरमें प्रविष्ट हो, नगरके बीचसे जाकर, पूर्व-द्वारसे निकलकर, जाना होता था। उस समय अशोक धर्मराजा पूर्वकी ओर मुँहकर, सिंहपञ्जरमें टहलते थे। उसी समय० न्यग्रोध राज-आँगनमें पहुँचा।...।...देखनेके साथ ही श्रामणेरमें चित्त प्रसन्न हो गया...। तब राजाने कहा....'इस श्रामणेरको बुलाओ'।...। श्रामणेर स्वाभाविक चालसे आया। राजाने कहा—

"अपने लायक आसनपर बैठिये।"

उसने इधर उधर देखकर—'कोई दूसरा भिक्षु नहीं है' (जानकर), श्वेत-छत्र-प्रधारित, राज-सिंहासनके पास जाकर, राजाको (भिक्षा-)पात्र देने जैसा आकार दिखलाया। राजा उस आसनके पास जाते देखकर ही सोचने लगा—'आजही यह श्रामणेर इस घरका स्वामी होगा।' श्रामणेर राजाके हाथमें पात्र दे, आसन पर चढ़कर बैठा। राजाने अपने लिये तय्यार किया सभी यागु-खज्जक, नाना भोजन पास मँगवाया। श्रामणेरने अपने प्रयोजन भर ही ग्रहण किया। भोजन समाप्त हो जानेपर राजाने कहा—

"शास्ताने तुम्हें जो उपदेश दिया (है), उसे जानते हो?"

"महाराज! एक देशना जानता हूँ।"

"तात! मुझे भी उसे बतलाओ।"

"अच्छा महाराज!" (कह)राजाके अनुरूपही 'धम्मपद'के 'अप्पमाद-वग्ग'को...कह।

"अप्रमाद (=आलस्यका अभाव) अमृतपद है, और प्रमाद मृत्युपद।" (यह) सुनतेही राजाने कहा—'तात! जान गया, पूरा करो।' (दान-)अनुमोदन(-देशना)के अंतमें 'तात! तुम्हें आठ नित्य भोजन देता हूँ।'—कहा। श्रामणेरने 'महाराज! मैं यह उपाध्याय को देता हूँ।"

१. देखो पृष्ठ ११९।

" तात ! यह उपाध्याय कौन है ?" " महाराज ! अच्छा बुरा देखकर जो प्रेरणा करता है, स्मरण कराता है ।'

"तात ! औरभी आठ नित्य-भोजन देता हूं ।"

" महाराज ! यह आचार्यको देता हूं ।"

" तात ! यह आचार्य कौन है ? " महाराज ! इस शासन(=धर्म)में, होसकने लायक धर्मोंमें जो स्थापित करता है ।'

" अच्छा, तात ! तुम्हें औरभी आठ देता हूं ।'

" महाराज ! यह भिक्षुसंघको देता हूं ।

" तात ! यह भिक्षु-संघ कौन है ?

"महाराज ! जिसके अवलंबसे मेरे अचार्य, उपाध्याय तथा मेरी प्रव्रज्या और उपसंपदा है ।"

"तात ! तुम्हें और भी आठ देता हूँ । "

श्रामणेरने 'साधु (=अच्छा)' कह स्वीकार कर, दूसरे दिन बत्तीस भिक्षुओंको लेकर राजान्तः पुरमें प्रवेशकर, भोजन किया ।...। न्यग्रोध...ने परिषद्-सहित राजाको तीन शरणों, और पांच शीलोंमें प्रतिष्ठित किया ।...। फिर राजाने ' अशोकाराम' नामक महाविहार बनवा कर, साठ हजार भिक्षुओंका नित्य-बंधान किया । सारे जम्बूद्वीपके चौरासी हजार नगरोंमें चौरासी हजार चैत्योंसे मंडित चौरासी हजार विहार बनवाये...।

(राजाने) अशोकाराम विहार बनवानेका काम लगवाया, संघने इन्द्रगुप्त स्थविर को निरीक्षक नियत किया ।...। तीन वर्षमें विहारका काम समाप्त हुआ ।...। तब...(राजा) सु-अलंकृतहो...नगरसे होते (विहार प्रतिष्ठाके लिये) विहारमें जा, संघके बीचमें खड़ा हुआ । ...फिर भिक्षुसंघको पूछा—

"क्या भन्ते ! मैं शासन (=धर्म)का दायाद हूं या नहीं ?"

तब मोग्गालिपुत्त तिस्स स्थविरने...कहा—

"महाराज ! इतनेसे शासनका दायाद नहीं कहा जाता, बल्कि प्रत्यय-दायक या उपस्थाक कहा जाता है । महाराज ! जो पृथिवीसे लेकर ब्रह्मलोक तककी प्रत्यय(=भिक्षुओंकी अपेक्षित चार वस्तुयें)-राशि भी देवे, वहभी दायाद नहीं कहा जाता ।"

"तो भन्ते ! शासनका दायाद कैसे होता है ?"

"महाराज ! जो धनी या गरीब अपने औरस पुत्रको प्रव्रजित कराता है, वह शासनका दायाद कहा जाता है ।"

तब अशोक राजाने...शासनमें दायाद होनेकी इच्छासे इधर उधर देखते, पासमें खड़े महेन्द्रकुमारको देखकर—' यद्यपि मैं तिष्यकुमारके प्रव्रजित होजानेके बादसे ही, इसे युवराज-पदपर प्रतिष्ठित करना चाहता हूँ, किन्तु युवराजपनसे प्रव्रज्या ही अच्छी है ' (सोच)... कुमारको कहा—

"तात ! प्रव्रजित हो सकते हो ?"...."देव ! प्रव्रजित होऊँगा । मुझे प्रव्रजितकर तुम शासनके दायाद बनो ।"

उस समय राजपुत्री संघमित्रा भी उसी स्थानमें खड़ी थी । उसका भी पति अग्नि-ब्रह्मा, तिष्यकुमारके साथ प्रव्रजित होगया था । राजाने उसे देखकर कहा—

"अम्म ! तू भी प्रव्रजित हो सकती है ?" "हाँ तात ! हो सकती हूँ ।"

राजाने पुत्रोंकी कामना जानकर भिक्षुसंघको कहा—

"भन्ते ! इन दोनों बच्चोंको प्रव्रजितकर, मुझे शासन-दायाद बनाओ ।"

राजाके वचनको स्वीकार संघने कुमारको मोग्गलिपुत्त तिष्य स्थविरके उपाध्यायत्व और महादेव स्थविरके आचार्यत्वमें प्रव्रजित (=श्रामणेर) किया; और मध्यान्तिक (=मज्झन्तिक) स्थविरके आचार्यत्वमें उपसंपन्न (=भिक्षु) किया । उस समय कुमार पूरे बीस वर्षका था । उसी उपसंपदा-मंडलमें उसने प्रतिसंविद्-सहित अर्हत्-पदको पाया । संघमित्रा राजपुत्रीकी आचार्या आयुपाला थेरी, और उपाध्याया धर्मपाला थेरी थी । उस समय संघमित्रा अठारह वर्षकी थी ।...। दोनोंके प्रव्रजित होनेके समय राजाका अभिषेक हुये, छः वर्ष होगये थे ।

महेन्द्र स्थविर उपसंपन्न होनेके बादसे अपने उपाध्यायके पास धर्म और विनयको पूरा करते, दोनों संगीतियोंमें संगृहीत अट्ठकथा-सहित त्रिपिटक...और सभी स्थविर-वाद (=थेरवाद)को तीन वर्षके भीतर (वि. पू. १९९) ग्रहणकर, अपने उपाध्यायके एक हजार भिक्षु शिष्योंमें प्रधान हुये । उस समय अशोक धर्मराजके अभिषेकको नव वर्ष हो चुके थे ।...

(उस समय) तैर्थिक (=पंथाई) लाभ-सत्कार रहित खाने-ढांकनेके भी मुहताज हो, लाभ सत्कारके लिये शासनमें प्रव्रजित हो, अपने अपने मतका...प्रचार करते थे । प्रव्रज्या न पानेपर अपने ही मुंडनकर काषाय-वस्त्र पहिन, विहारोंमें विचरते, उपोसथमें भी, प्रवारणामें भी, संघकर्ममें भी, गणकर्ममें भी, प्रविष्ट हो जाते थे । भिक्षु उनके साथ उपोसथ नहीं करते थे । तब मोग्गलिपुत्त स्थविरने—'अब यह विवाद (=अधिकरण) उत्पन्न हो गया, थोड़ीही देरमें यह कठिन हो जायेगा; इनके बीचमें वास करते इसे शमन नहीं किया जा सकता'—(सोचकर) महेन्द्र स्थविरको गण(=जमात) सपुर्दकर, स्वयं सुखसे विहरनेकी इच्छासे [1]अहोगङ्ग पर्वतपर चले गये ।...उस समय...अशोकाराममें सात वर्ष तक उपोसथ नहीं हुआ ।...

राजाने एक अमात्यको आज्ञा दी—

"विहारमें जाकर अधिकरण (=विवाद)को शांतकर, उपोसथ करवाओ ।"

...तब वह अमात्य विहारमें जाकर भिक्षु-संघको इकट्ठा करके बोला—

"भन्ते ! मुझे राजाने उपोसथ करानेके लिये भेजा है; अब उपोसथ करो ।"

भिक्षुओंने कहा—"हम तैर्थिकोंके साथ उपोसथ नहीं करेंगे ।"

---

१. संभवतः हरिद्वारके पासका कोई पर्वत ।

अमात्यने स्थविरासन (=सभापतिके आसन)से लेकर सिर काटना शुरू किया। तिष्य स्थविरने अमात्यको वैसा करते देखा। तिष्य स्थविर जैसे तैसे नहीं थे। वह राजाके एक मातासे जन्मे भाई, तिष्य कुमार थे। राजाने अपना अभिषेक करनेके बाद उन्हें युवराज पदपर स्थापित किया (था)।···। कुमार राजाके अभिषेकके चौथेवर्ष (वि० पू० २०४) प्रव्रजित हुये थे।···वह अमात्यको ऐसा करते देख ··स्वयं उसके समीपवाले आसनपर जाकर बैठ गये। उसने स्थविरको पहिचानकर शस्त्र छोड़ने में असमर्थ हो, जाकर राजाको कहा।···। राजाने उसी समय बदनमें आगलगी जैसा (हो) विहारमें जाकर स्थविर भिक्षुओंको पूछा—

"भन्ते! इस अमात्यने विना मेरी आज्ञाके ऐसा किया है, यह पाप किसको लगेगा?"

किन्हीं स्थविरोंने कहा—

"इसने तेरे वचनसे किया, इस लिये पाप तुझेही लगेगा।"

किन्हींने कहा—'तुम दोनोंको यह पाप है।"

किन्हींने ऐसा कहा—"महाराज! क्या तेरे चित्तमें था कि यह जाकर भिक्षुओंको मारे?'

"नहीं भन्ते! मैंने शुद्ध मनसे भेजा था, कि भिक्षुसंघ एकमत हो उपोसथ करे।'

"यदि महाराज! शुद्ध मनसे (भेजा था) तो तुझे पाप नहीं है, अमात्य (=अफसर) हीको है।"

राजा दुविधामें पड़कर बोला—

"भन्ते! है कोई भिक्षु, जो मेरी इस दुविधाको छिन्नकर शासन (=धर्म)को संभालनेमें समर्थ हो?

"महाराज! मोग्गलिपुत्त तिष्य स्थविर हैं, वह तेरी दुविधाको काटकर शासनको संभाल सकते हैं।"

राजाने उसी दिन चार धर्म-कथिक (भिक्षुओं)को ···, और चार अमात्योंको··· (यह कहकर) भेजा—'स्थविरको लेकर आओ।' उन्होंने जाकर कहा—'राजा बुलाता है।' स्थविर नहीं आये।

दूसरी वार राजाने आठ धर्म-कथिकोंको····, और आठ अमात्योंको···भेजा 'भन्ते! राजा बुलाता है' कहकर लिवालाओ। उन्होंने जाकर वैसेही कहा। दूसरी वारभी स्थविर नहीं आये। राजाने स्थविरोंको पूछा—'भन्ते! मैंने दोवार (आदमी) भेजे, स्थविर क्यों नहीं आते हैं?"

"महाराज! 'राजा बुलाता है", कहनेसे नहीं आते। ऐसा कहनेसे आयेंगे—'भन्ते! शासन (=धर्म) गिर रहा है, शासनके संभालनेकेलिये हमारे सहायक हों।'

तब राजाने वैसाही कहकर, सोलह धर्मकथिकों···, और सोलह अमात्यों को····भेजा। भिक्षुओंको पूछा—

' भन्ते ! स्थविर महल्लक हैं, या नई उम्रके ? " " महल्लक (=वृद्ध) हैं, महाराज !'

" भन्ते ! यान या पालकीमें चढ़ेंगे ? ' " महाराज ! नहीं चढ़ेंगे ।"

" भन्ते ! स्थविर कहां वास करते हैं ? " महाराज ! गङ्गाके ऊपरकी ओर ।"

राजाने (नौकरों को) कहा—" तो भणे ! नावका बेड़ा बांधकर, उसपर स्थविरको बैठाकर, दोनों तीरपर पहरा रखवा, स्थविरको ले आओ ।' भिक्षुओं और अमात्योंने स्थविर केपास जाकर राजाका संदेश कहा···स्थविर चर्म-खंड(=चमड़ेकी आसनी) लेकर खड़े हो गये । ··। तब राजाने···' देव ! स्थविर आगये ।' सुनकर गङ्गातीर पर जा नदीमें उतर, जांघ भर पानीमें जाकर, स्थविरकी ओर हाथ बढ़ाया । स्थविरने राजाको दाहिने हाथसे पकड़ा·।··· राजाने स्थविरको अपने उद्यानमें लिवा लेजा स्वयंही स्थविरके पैर धो,(तेल से) मल, पासमें बैठ···अपनी दुविधा कही—

" भन्ते ! मैंने एक अमात्यको भेजा कि विहारमें जाकर विवादको शांत कर, उपोसथ करवाओ । उसने विहारमें जाकर इतने भिक्षुओंको जानसे मार दिया । इसका पाप किसे होगा ?"

" क्या महाराज ! तेरे चित्तमें ऐसा था, कि यह विहारमें जाकर भिक्षुओंको मारे ?"

"नहीं भन्ते !" " यदि महाराज ! तेरे चित्तमें ऐसा नहीं था, तो तुझे पाप नहीं है । ···"

इसप्रकार स्थविरने राजाको समझाकर, वहीं राजोद्यानमें सात दिन वास कर, राजाको (बुद्ध-)समय (=सिद्धान्त) सिखलाया । राजाने सातवें दिन अशोकाराममें भिक्षु-संघको एकत्रितकर, कनातकी चहारदीवारी घिरवाकर, कनातके भीतर एक एक मतवाले भिक्षुओंको एक एक जगह करवाकर, एक एक भिक्षुसमूह को बुलवाकर पूछा—" सम्यक् संबुद्ध किस वाद (=मत)के माननेवाले थे ?"

तब शाश्वतवादियोंने 'शाश्वतवादी' (=नित्यता-वादी) कहा, आत्मानन्तिकोंने 'आत्मानन्तिक,० अमराविक्षेपिक,०···। पहिलेहीसे सिद्धांत समय जाननेसे राजाने—'यह भिक्षु नहीं हैं, अन्य तैर्थिक (=दूसरे पंथवाले) हैं' जानकर, उन्हें सफेद कपड़े (=सेतक) देकर, अ-प्रव्रजित कर दिया । वह सभी साठ हजार थे । तब दूसरे भिक्षुओंको बुलाकर पूछा —

"भन्ते ! सम्यक् सम्बुद्ध किस वादको माननेवाले थे ?"

" [१]'विभज्यवादी' महाराज !"

ऐसा कहनेपर स्थविरको पूछा—

"भन्ते ! सम्यक् सम्बुद्ध 'विभज्यवादी' थे ?"

"हाँ, महाराज !"

---

१. देखो पृष्ठ ४९६ विभज्य व्याकरण ।

तब राजा—

"भन्ते ! अब शासन शुद्ध है, भिक्षु-संघ उपोसथ करे ।"
—कह, रक्षाका प्रबन्ध कर नगरमें चला गया ।

संघने एकत्रित हो उपोसथ किया ।...। उस समागममें मोग्गलिपुत्त तिष्य स्थविरने दूसरे वादोंको मर्दन करते हुये [1]"कथावत्थुप्पकरण" भाषण किया । तब (मोग्गलिपुत्त स्थविरने)...भिक्षुओंमेंसे एक हजार त्रिपिटक-निष्णात प्रतिसंवित्-प्राप्त, त्रैविद्य...भिक्षुओंको चुनकर, महाकाश्यप स्थविरकी भांति, यश स्थविरकी भांति, धर्म और विनयका सङ्गायन किया । इस प्रकारसे धर्म और विनयका सङ्गायनकर सभी शासन-मलों (=धर्मकी मिलावट) को शोधकर, (वि. पू. १९१में) तृतीय सङ्गीतिको किया ।...। यह सङ्गीति नव मासमें समाप्त हुई ।...

स्थविर-वाद-परम्परा । विदेशमें धर्म-प्रचार । ताम्रपर्णी-द्वीपमें महेन्द्र । त्रिपिटकका लेख-बद्ध करना । (वि. पू. १९३–५६ वि.) ।

[1]यह आचार्य परम्परा है ।…

(१) बुद्ध, (२) उपाली, (३) दासक, (४) सोणक, (५) सिग्गव, और (६) मोग्गलिपुत्त तिष्य यह विजयी हैं । श्री जंबूद्वीपमें तृतीय संगीति तक इस अटूट परम्परासे विनय आया ।…तृतीय संगीतिसे आगे इसे इस (लंका) द्वीपमें महेन्द्र आदि लाये । महेन्द्रसे सीखकर कुछ काल तक अरिष्ट स्थविर आदि द्वारा चला । उनसे उनके ही शिष्योंकी परम्परा वाली आचार्य परम्परामें आजतक (विनय) आया ।…जैसाकि पुराने (आचार्यों)ने कहा है—

" तब (७) महिन्द, इट्टिय, उत्तिय, संबल, और भद्द…यह…महाप्रज्ञ जंबूद्वीप (=भारत)से यहां आये । उन्होंने तम्बपण्णी (=ताम्रपर्णी=लंका) द्वीपमें विनय-पिटक बँचाया (=पढ़ाया), पांच निकायों (=दीघ आदि)को पढ़ाया, और सात प्रकरणों (=धम्म संगणी आदि सात अभिधर्म-पिटककी पुस्तकों)को भी । तब आर्य…(८) तिष्यदत्त,…(९) काल सुमन,…(१०) दीर्घ स्थविर,…(११) दीर्घ सुमन,…(१२) काल सुमन,…(१३) नाग स्थविर,…(१४) बुद्धरक्षित,…(१५) तिष्य स्थविर,…(१६) देव स्थविर,…(१७) सुमन,…(१८) चूल नाग,…(१९) धर्मपालित,…(२०) रोहण,…(२१) खेम (=क्षेम),…(२२) उपतिष्य,…(२३) फुस्स(=पुष्य)देव,…(२४) सुमन,…(२५) पुष्य,…(२६) महासीव (=शिव),…(२७) उपाली,…(२८) महानाग,…(२९) अभय,…(३०) तिष्य, …(३१) पुष्प,…(३२) चूल अभय,…(३३) तिष्य स्थविर, …(३४) चूल देव,…(३५) शिव स्थविर,…इन महाप्राज्ञ,…विनयज्ञ, मार्ग-कोविदोंने, ताम्रपर्णी द्वीपमें विनय-पिटकको प्रकाशित किया ।…

(विदेशमें धर्म-प्रचार ।)

…[2]मोग्गलिपुत्त स्थविरने इस तृतीय संगीतिको (समाप्त) कर (वि. पू. १९० में) सोचा…" कैसे प्रत्यन्त (=सीमान्त) देशोंमें शासन(=धर्म) सुप्रतिष्ठित (=चिरस्थायी) होगा । " तब उन्होंने उन उन भिक्षुओंपर (इसका) भार देकर उन्हें वहां वहां भेज दिया ।

मध्यांतिक (=मज्झंतिक) स्थविरको कश्मीर और गन्धार[3] राष्ट्रमें भेजा ।
महादेव स्थविरको …[4]महिंसकमण्डलमें…।
रक्षित स्थविरको…[5]वनवासीमें ।

---

१. समन्त-पासादिका (आरम्भ) । २. समंतपासादिका (आरंभ) । ३. पेशावरके आसपासका प्रांत । ४. महेश्वर (इन्दोर-राज्य)के आस पासका प्रांत, जो कि विंध्याचल सतपुड़ाकी पर्वत-मालाओंके बीचमें पड़ता है । ५. उत्तरी-कनारा जिला (बंबई प्रांत) ।

योनक (=यवनक) धर्मरक्षित स्थविरको [1]अपरान्तमें ।
महा-धर्मरक्षित स्थविरको महाराष्ट्रमें ।
महारक्षित स्थविरको [2]योनक(=यवनक) लोकमें ।
मध्यम (=मज्झिम) स्थविरको हिमवान् (=हिमालय) प्रदेशमें ।
सोणक और उत्तर स्थविरोंको [3]सुवर्णभूमिमें ।

…महिन्द (=महेन्द्र) स्थविरको इट्टिय०, उत्तिय०, संबल०, भद्दसाल (=भद्र-शाल)के साथ ताम्रपर्णी द्वीपमें भेजा ।

वह भी उन उन दिशाओंमें जाते (चार और तथा) अपने पांचवें होकर गये । क्योंकि प्रत्यंत (=सीमान्त) देशोंमें उपसंपदाके लिये पंचवर्गीयगण पर्याप्त होता है ।

ताम्रपर्णी (=लंका) द्वीपमें महेन्द्र ।

…महेन्द्र स्थविरने इट्टिय आदि स्थविरों, संघमित्राके पुत्र सुमन श्रामणेर, तथा भंडुक उपासकके साथ अशोकारामसे निकल कर, राजगृह नगरको घेरे दक्षिणागिरि देशमें चारिका करते…छःमास बिता दिया । तब क्रमशः माताके निवास स्थान [1]विदिशा (=वेदिस) नगर पहुँचे । अशोकने कुमार होते वक्त (इस) देश (का शासन) पाकर, उज्जयिनी जाते हुये विदिशा नगरमें पहुंच, देवश्रेष्ठीकी कन्याको ग्रहण किया । उसने उसी दिन (वि. पू. २२३) गर्भधारण कर उज्जैनमें जाकर पुत्र प्रसव किया । कुमारके चौदहवें वर्षमें राजाने (राज्य-) अभिषेक पाया । उन (महेन्द्र)की माता उस समय पीहरमें वास करती थी ।…। स्थविरको आये देख स्थविर-माता देवीने पैरोंको शिरसे वन्दना कर, भिक्षा प्रदानकर, स्थविरको अपने बनवाये वैदिश-गिरि महाविहारमें वास कराया । स्थविरने उस विहारमें बैठे बैठे सोचा—'हमारा यहां का कार्य खतम होगया, अब ताम्रपर्णी द्वीप जानेका समय है' । तब सोचा—तब तक देवानां-प्रिय तिष्यको मेरे पिताका भेजा (राज्य-) अभिषेक पालने दो…। तब एक मास और वहीं वास किया ।…। ज्येष्ठ…पूर्णिमाके दिन अनुराधपुरकी पूर्व-दिशामें मिश्रक-पर्वत पर (जा) स्थित हुये, जिसका कि आजकल चैत्य-पर्वतभी कहते हैं ।

इट्टिय आदिके साथ आयुष्मान् महेन्द्र स्थविर सम्यक्-संबुद्धके परिनिर्वाणसे २३६वें (=वि. पू. १९०)में द्वीपमें आकर…स्थित हुये…। सम्यक्-संबुद्ध अजात-शत्रुके आठवें वर्ष (=४२६ वि. पू.)में परिनिर्वाणको प्राप्त हुये । उसी समय सिंहकुमारके पुत्र, ताम्रपर्णी द्वीपके आदि राजा विजयकुमारने इस द्वीपमें आकर मनुष्योंका वास कराया । जम्बूद्वीपमें उदयभद्रके चौदहवें वर्ष (वि. पू. ९८)में विजयकी मृत्यु हुई । उदय-भद्रके पंद्रहवें वर्ष (ई. वि. पू. ३९७)में पांडु वासुदेवने इस द्वीपमें राज्य पाया । नागदास राजाके बीसवें वर्ष (वि. पू. ३५८)में पांडु वासुदेवने काल किया । उसी वर्ष अभयने इस द्वीपमें राज्य पाया । वहां (जम्बूद्वीपमें) शिशुनाग राजाके सत्रहवें वर्ष (वि. पू. ३३७)में यहां (लंकामें)

---

१. नर्वदाके मुहानासे बंबई तक फैला, पश्चिमीघाटकी पहाड़ियोंके पश्चिमका प्रांत ।
२. यूनानी राजाओंकेदेश— वाह्लीक (बलख), सिरिया, मिश्र, यूनान आदि । ३. पेगू (वर्मा) ।

५ : १४ ।

अभय-राजाको (राज्य करते) बीस वर्ष पूरा हो चुके थे । तब अभयके बीसवें वर्षमें, पकुण्डक अभय नामक दामरिक(=द्रविड़)ने राज्य ले लिया । वहां काल-अशोकके सोलहवें (वि. पू. ३२०) वर्षमें यहां पकुण्डकके सत्रह वर्ष पूर्ण हुये । वह नीचे एक वर्षके साथ अठारह होते हैं । वहां चन्द्रगुप्तके चौदहवें (वि. पू. २९०) वर्षमें यहां पकुण्डक-अभय मर गया ; (और) मुटसीवने राज्य पाया । वहां अशोक धर्मराजाके सत्रहवें (वि. पू. १९१) वर्षमें, यह मुट-सीव राजा मर गया ; और देवनांप्रिय तिष्यने राज्य पाया ।

भगवान्‌के परिनिर्वाण (वि. पू. ४२६)के बाद अजातशत्रुने चौबीसवर्ष (वि. पू. –४०२ तक) राज्य किया, उदयभद्र सोलह (वि. पू. ४०२-), अनुरुद्ध और मुण्ड आठ (वि. पू. ३८६-), नागदासक चौबीस (वि. पू. ३७८-), शिशुनाग अठारह (वि. पू. ३५४-), उसका ही पुत्र अशोक अट्ठाईस (वि. पू. ३३६-), अशोकके पुत्र दश भाई राजा बाईस वर्ष (वि. पू. ३०८-) राज्य किये । उनके पीछे नवनन्द (वि. पू. २८६-) भी बाईस ही । चंद्रगुप्त चौबीसवर्ष (वि. पू. २६४-), बिन्दुसार अट्ठाईस वर्ष (वि. पू. २४०-), उसके पीछे अशोकने (वि. पू. २१२ में) राज्य पाया । उसके अभिषेक (वि. पू. २०८)से पहिले चारवर्ष (वि. पू. १९४) (होगये थे), अभिषेकसे अठारहवें वर्षमें महेन्द्र स्थविर इस द्वीपमें आ उपस्थित हुये ।···

उस दिन ताम्रपर्णी द्वीपमें ज्येष्ठ-मूल नक्षत्र (=उत्सव) था । राजा अमात्योंको— 'उत्सव (=नक्षत्र) की घोषणाकरके क्रीड़ा करो'—कह, चौवालीस हजार पुरुषोंके साथ नगर से निकलकर, जहां [1]मिश्रकपर्वत है, वहां शिकार खेलनेके लिये गया । तब उस पर्वतकी अधि-वासिनी देवता, राजाको स्थविरका दर्शन करानेकी इच्छासे, रोहित मृगका रूप धारण कर, पासहीमें घास-पत्ता खाती सी विचरने लगी । राजाने देखकर–'गफलतमें इस समय मारना अच्छा नहीं है'—(सोचकर) ताली पीटी । मृग अम्बत्थल (=आम्रस्थल)के मार्गसे भागने लगा । राजा पीछा करते हुये, अम्बत्थल पर चढ़गया । मृग भी स्थविरोंके करीब जा अन्तर्ध्यान होगया । महेन्द्र स्थविरने राजाको पासमें आते देखकर,···कहा—

"तिष्य ! तिष्य ! यहां आ"

राजाने सुनकर सोचा—'इस द्वीपमें पैदा हुआ (कोई) मुझे 'तिष्य' नाम लेकर बोलने की हिम्मत करनेवाला नहीं है ; यह छिन्न-भिन्न-पटधारी मलिन-काषाय-वसनी मुझे नाम लेकर पुकारता है । यह कौन होगा–मनुष्य है, या अमनुष्य ?' स्थविरने कहा—

"महाराज ! हम धर्मराज(=बुद्ध)के श्रावक श्रमण हैं । तेरेहीपर कृपाकर, जम्बूद्वीप से यहां आये हैं ॥"

उस समय अशोक धर्मराज और देवानांप्रियतिष्य अदृष्ट-मित्र थे ।······।सो यह राजा उस दिनसे एकमास पूर्व अशोक राजाके भेजे अभिषेकसे अभिषिक्त हुआ था । वैशाख-पूर्णिमाको उसका अभिषेक किया गया था । उसने हालहीमें खबर सुनी थी । (बुद्ध-)शासनके

१. वर्तमान मिहिन्तले (सीलोन) । २. मिहिन्तलेपर एक स्थान, जहांपर अब भी उक्त नामका स्तूप है ।

समाचारको स्मरणकर, (वह) स्थविरके उस वचन···को सुन—" आर्य आगये ! " (जान), उसी समय हथियार रखकर, संमोदन कर···एक ओर बैठ गया ।···।वहीं चौवालिस हजार पुरुष आकर उसे घेरकर खड़े होगये, तब स्थविरने दूसरे छःजनोंकोभी दिखलाया । राजाने देखकर—

" यह कब आये ?" " मेरे साथही महाराज !"

" इस वक्त जम्बूद्वीपमें और भी इसप्रकारके श्रमण हैं ?"

" हैं, महाराज ! इस समय जम्बूद्वीप कापायसे जगमगा रहा है ।···········

(तब)स्थविरने राजाकी प्रज्ञा, पांडित्यकी परीक्षाके लिये पासके आम्रवृक्षके विषयमें प्रश्न पूछा—

" महाराज ! इस वृक्षका नाम क्या है ?" " आमका वृक्ष है भन्ते !

" महाराज ! इस आमको छोड़कर औरभी आम हैं या नहीं ?"

" भन्ते ! औरभी बहुतसे आमके वृक्ष हैं ।"

" इस आम और उन आमोंको छोड़कर और भी वृक्ष हैं या नहीं ? "

" हैं, भन्ते ! लेकिन वह आम वृक्ष नहीं (=न-आम्र-वृक्ष) हैं।"

" दूसरे आम, और न-आम्र-वृक्षोंको छोड़कर और भी वृक्ष हैं ? "

" भन्ते ! यही आम वृक्ष है ।"

" साधु, महाराज ! तुम पंडित हो ।···"

तब स्थविरने—' राजा पंडित है, धर्म समझ सकता है ' (सोचकर),' [1]चूल-हत्थि-पदोपम-सुत्त ' का उपदेश किया । कथाके अन्तमें चौवालीस हजार आदमियों सहित राजा तीनों शरणोंमें प्रतिष्ठित हुआ ।····

उस समय अनुलादेवीने प्रव्रजित होनेकी इच्छासे राजाको कहा । राजाने उसकी बात सुनकर स्थविरको···कहा ····।

" महाराज हमें स्त्रियोंको प्रव्रज्या देना विहित नहीं है । पाटलिपुत्रमें मेरी भगिनी संघमित्रा थेरी है, उसको बुलाओ ।···। महाराज ! ऐसा पत्र भेजो, जिसमें संघमित्रा बोधि (=बोध गयाके पीपलकी संतति)को लेकर आये ।"···

महाबोधि गङ्गामें नावपर रखकर···विंध्याटवीको पारकर सात दिनमें [2]ताम्रलिप्तिमें पहुँची ।···। मार्गशीर्ष मासके प्रथम प्रतिपद्के दिन अशोक धर्मराजाने महाबोधिको उठाकर, गले तक पानीमें जाकर नावपर रख, संघमित्रा थेरीको भी अनुचर सहित नावपर चढ़ा (दिया)····। ···सात दिन नागराजोंने पूजाकर फिर नावमें रख दिया । उसी दिन नाव जम्बुकोल-पट्टनपर पहुँच गई ।···। तब चौथे दिन महाबोधिको लेकर···अनुराधपुर गये ।···। अनुलादेवी (राज-भगिनी) पांच सौ कन्याओं और पांच सौ अंतःपुरकी स्त्रियोंके साथ संघमित्रा थेरीके पास प्रव्रजित हुई ।···। राजाका भांजा अरिष्टभी पांचसौ पुरुषोंके साथ स्थविरके पास प्रव्रजित हुआ ।···

---

१. पृष्ठ १७० । तम्‌-लुक्, जि. मेदिनीपुर (बंगाल) ।

५ : १४ ।

त्रिपिटकका लेख-बद्ध करना ।

(वट्ट-गामनी के शासनकाल वि. पू. २८—१६ विक्रम संवत्)में [१]त्रिपिटककी पाली (=पंक्ति)और उसकी अट्ठकथा, जिन्हें पूर्वमें महामति भिक्षु कंठस्थ करके लेआये थे, प्राणियोंकी (स्मृति-)हानि देखकर, भिक्षुओंने एकत्रित हो, धर्मकी चिरस्थितिके लिये, पुस्तकोंमें लिखाया ।

॥ इति ॥

परिशिष्ट ॥१॥

मूल ग्रन्थोंकी सूची ।

अंगुत्तर-निकाय । (अं. नि., सुत्त-पिटक)। ७८, ८०, १३७, १४९, १४८,१८७, २५०, २५२, २५९, २८५, २८९ ३४७, ३५०, ३८५, ४०९, ४४०, ४६९ ।

अंगुत्तर-निकाय-अट्ठकथा । (अं. नि. अ. क.) ४१, ४८, ५७, ५९, ७५, ८२, ११०,१३७, १७०, २५०, २५९, २६५, २८५, २९४, २९७, ३२५, ३३५, ३३६ ३५०, ४६९ ।

अपदान, थेरी-(खुद्दक-निकाय, सुत्त-पिटक)। ३६३ ।

उदान (खुद्दक-नि०, सुत्त०) । १०३, २९४, ३६१, ३९४, ३९७, ४०८, ४३४, ४३५, (५३५) ।

उदान-अट्ठकथा । ५७, ३६२, ३९७,३९८, ४३५, ५२७, ५३५ ।

चुल्लवग्ग (चु. व, विनय-पिटक)। ६८,७८, ८२, ९२, २५४, २५९, २६०, २६५, ३३९, ४२७, ४२८, ४३२, ४८३,५४८, ५५६ ।

जातक-अट्ठकथा । (जा. अ., खुद्दक०,सुत्त०) १, ७, २९, ३५, ५४, ५५, ५७, ६५ ।,

थेरगाथा-अट्ठकथा (खुद्दक०,सुत्त०)। ४ ।

दीघ-निकाय (दी. नि., सुत्त०) । ११८, १२८, १८९, २०३, २१०, २३२,२४१, २४५, ४७४ (सिगालोवाद-सुत्त),४८७, ५२० ।

दीघ-निकाय-अट्ठकथा (दी. नि. अ. क.)। २१०, २१६, २१८, २३७, ४८८, ५०४, ५२०, ५२१, ५२९, ५३६, ५४०, ५४६।

धम्मपद-अट्ठकथा (ध. प. अ. क., खुद्दक०, सुत्त०) । ८२, ८३; १५२, २५१, ३३६, ३३६, ४४३, ५१८ ।

धम्मसंगणी (अभिधम्म-पिटक) । (८८) ।

पाराजिका (विनय-पिटक) । १३७, १४,१ १४५, ३०८, ३१२, ३१७ ।

पाराजिका-अट्ठकथा (समंतपासादिका) । ३०९, ३१३, ३१५, ५५५, ५६७, ५७६ ।

मज्झिम-निकाय (म. नि., सुत्त०) । ६३, ९८, १५६, १६२, १७०, २७६, १८०, १८८, २२२, २२८, २४८, २५५ २६०, २६५, २८०, २८६, २९१, ३४१ ३५२, ३६७, ३९८, ४०४, ४१२, ४२३ ४४१, ४४२, ४५६, ४७३, ४८१ ।

मज्झिम-निकाय-अट्ठकथा (म. नि.अ.क.) ७३, २२४, २७०, २८२, ३४१, ३७१ ३७२, ४२१, ४२३, ४४३, ४८०,४८१, ४८४ ।

महावग्ग (म. व., विनय-पिटक) । २२, २३, २४, २५, २९, ३१, ३५, ३८, ५०, ५३, ५४, ५७, ९७, १०३, १०६, १५१, १५४, १६७, २९७, ३३८, ३९६ ।

महावग्ग-अट्ठकथा (समंतपासादिका) ९७, २९८, ३०६, ३०७ ।

महावंस । ६८० ।

यमक (अभिधम्म-पिटक) (५६८) ।

संयुत्त-निकाय (सं. नि., सुत्त-पिटक) । २३, २४, २९, ३४, ६५, ६८, ९१, ९२, १०५, ११०, १११, ११३, २९३, ३८८, ३९१, ३९३, ४०२, ४०५, ४०६. ४१०, ४२८, ४३१, ४३९, ४४४, ५१३, (५२५, ५३१), ५१९ ।

संयुत्त-निकाय-अट्ठकथा । ४१, ३८८, ३८९, ४०२, ४०३, ४०६, ४१०, ४३१, ४३९, ५१३, ५१९ ।

सुत्त-निपात (खुद्दक०, सुत्त०) । ११५, १६२, ३६४, ३७३, ३८९ ।

सुत्त-निपात-अट्ठकथा । ३६५, ३७३ ।

नामानुक्रमणी ।

अक्षरप्रभेद । शिक्षाशास्त्र १८०, २१०।

अग्गलपुर । (नगर) । ५९९ कानपुर या फतेहपुर जिलेमें कोई स्थान ।

अग्गालव-चैत्य । २५९ पंचाल देशके आलवी नगरमें, ।

अग्निब्रह्मा । भिक्षु, अशोकका दामाद ५७२।

अंग । देश । ३१ (उरुवेलाके समीप), ५५, २४१ भागलपुर, मुंगेर जिलोंके गंगाके दक्षिणका भाग । २४१ ४७० (में चंपा), २८६ (में अश्वपुर)।

अंगमाणवक । २४३ चंपानिवासी सोणदंड ब्राह्मणका भांजा ।

अंग मगध । ८४ (-का घेरा ३०० योजनका)

अंगिरा । मंत्रकर्त्ता ऋषि । १६७, २०४, २१८, २२४ ।

अंगुत्तर-निकाय । (देखो ग्रंथ-सूची) ।

अंगुत्तराप । (भागलपुर मुंगेर जिलोंका गंगा के उत्तरका भाग) १९४, १९६; १६२, में आपण) ।

अंगुलिमाल । २१० (के प्रत्युद्गमनार्थ ३० योजन) । २६७-३७२ (वृत्त, उपदेश) । ३६९ (गार्ग्य मैत्रायणीपुत्र), ३७१ (तक्षशिलामें शिक्षा) ।

अचिरवतीनदी । रापती । १९६ (का उद्गम), २०२ (मनसाकटके पास), २०७,२०६, ४४१-४४३ (श्रावस्तीके पूर्वद्वारके समीप), ४७६ (में विडूडभका स-सेन डूबना) ।

अजपाल वृक्ष । १८ बोधि मंडपर ।

अजातशत्रु । ४२७,४२८ (देवदत्तकी रायमें), ४२९ (पितृहत्याका प्रयत्न), ४३९-४४० (प्रसेनजित्से युद्ध), ४५९-६८ (-राजा-मागधको उपदेश), ४६९ (उपासक), ४६८ (पितृहत्याकेलिये पश्चात्ताप), ५७६ (प्रसेनजित्की शरीर क्रिया), ५८० (विडूडभ पर चढ़ाईकी तय्यारी), ५२० (वज्जीपर चढ़ाईकी इच्छा) ५४५-५४६ (बुद्ध धातुको पाना), ५४६ (राज्य ५०० योजनमें), ४४७ (धातुनिधान बनवाना), ५५०, ५७८ (निर्वाणके बाद २४ वर्ष राज्य करना) ।

अजित केश-कंबल । [अजित केस-कंबल] । ८२ (गणाचार्य, तीर्थंकर), ९१, ९२, २६६ (श्रावकोंसे असत्कृत, ४६० (उच्छेदवादी), ४४० ।

अजित ब्राह्मण । ३७५ (बावरिका शिष्य), ३७७ (-माणव प्रश्न) ।

अजित भिक्षु । ५६४ (द्वितीय संगीतिमें आसन-विज्ञापक) ।

अट्ठक [अष्टक] । मंत्र-कर्ता ऋषि, १६७, २०४, २१८, २२४, ३८६ ।

अट्ठक-वग्गिक । ३७५, ३९९ (उदान ५ : ६ में स्मृत) ।

अनवतप्तदह । ३१, ८८ (मानसरोवर), १९६ (पांच कूटोंके बीच) ।

अनवतप्तसर । देखो अनवतप्तदह ।

अनाथपिंडक । ६८ (प्रथम दर्शन), ६९ (सुदत्त), १०८, ४७२ (श्रावस्तीवासी, सुमन श्रेष्ठीका पुत्र, नाम सुदत्त) ।

अनाथपिंडक, चूल- । ८८ (श्रावस्तीवासी)

अनुगारवरचर । २६९ (प्रसिद्ध परिब्राजक, राजगृहमें) ।

अनुराधपुर । लंकामें । ४२, ३९७ (लोह प्रासाद), ५३६ (कलंब नदी, राजमाता-विहार, थूपाराम, दक्षिणद्वार), ५७७ ।

अनुरुद्ध । श्रावक । ५९-६४ (महानाम शाक्यका अनुज, प्रव्रज्या), ६०, ६३ (नलकपानमें), ८७ (चमत्कार), ९९ (प्राचीनवंसदायमें नन्दिय आदिके साथ), १००-१०३, १०७ (१२प्रधान श्रावकोंमें अष्टम), ४०९, ४४४ (दिव्य चक्षुक), ४६९ (कपिलवस्तु वासी भगवान्‌के चचा अमृतोदनके पुत्र), ५१६, ५४२ (निर्वाणके समय), ५४५ ।

,, । राजा । ४६१ (महामुंडका पुत्र और घातक), ५७८ (उदयभद्रका पुत्र और घातक) ।

अनुलादेवी । भिक्षुणी । ५७९ (देवानां प्रिय तिष्यकी भगिनी, संघमित्राकी शिष्या) ।

अनूपिया । कस्बा । १३ (राजगृहसे ३० योजन), ५९ (मल्लदेशमें, शाक्य देशसे नजदीक जहां अनुरुद्ध आदि प्रव्रजित हुये), ४७० (द्रव्य मल्ल-पुत्रकी जन्म भूमि) ।

अनोमा । नदी । ११, १२ (औमी नदी, जि० गोरखपुर) ।

अन्तिम मंडल । प्रदेश (जेतवन, वाराणसी, गया, वैशाली जिसमें हैं) । ११४ (३०० योजन बड़ा) ।

अंधक । जाति, देश । ३७३ (अश्मक, आर्यकके राजा अंधक थे) ।

अंधकविन्द । ग्राम । ३३४ (राजगृहके पास मगधमें) ।

अपराजित । (आसन) । १६ (बोधि मंडपर) ।

अपरान्त । देश (बम्बई नगर, नर्मदा, पश्चिमीघाट पर्वत, और समुद्रसे घिरा)। ५७७ (में प्रचारक योनक-धर्म-रक्षित) ।

अपरान्त । सूना—। ४०२ (थाना और सूरतके जिले, यही जो अपरांत), ४०३ (-में अय्यभत्थ पर्वत, समुद्रगिरि विहार, मातुगिरि, मंकुलकाराम, सच्चबद्ध-पर्वत, नर्मदा नदीके तीर पद-चैत्य) ।

अप्पमादवग्ग । ५७० (धम्मपदमें) ।

अय्यभत्थ-पर्वत । ४०३ (सूनापरांतमें) ।

अभय । राजा । ५७७ (सिंहलराजा, नागदासका समकालीन), ५७८ ।

,, । स्थविर । ५७६ (सिंहलके) ।

,, **चूल**— । स्थविर । ५७६ (सिंहल) ।

अभयराजकुमार । २९८, ३००, ३०१ (जीवकके पोषक), ४९५-४९८ (ज्ञातृ पुत्र द्वारा शास्त्रार्थके लिये प्रेषित, उपासक) ।

अभिधर्म-पिटक [अभिधम्म-पिटक] । ८८ (-का उपदेश त्रयस्त्रिंशलोकमें), ८९, ५७६ (सात प्रकरण—१. धम्मसंगणी, २. विभङ्ग, ३. पुग्गलपञ्ञत्ति, ४. धातुकथा, ५. पट्ठान, ६. यमक, ७. कथावत्थु) ।

अभिनिष्क्रमण । = बुद्धका गृहत्याग । ९,१० ।

अमृतोदन । शाक्य । ३३९ (आनंदका पिता ।

अम्बट्ठ । अम्बष्ट भी देखो । २१०— (उक्कट्ठाके स्वामी पौष्करसातिका शिष्य) ।

अम्बत्थल । ५७८ (लङ्काके मिश्रक-पर्वतपर) ।

अम्बपाली । २९७ (वैशालीकी गणिका), ५३० (बुद्धको निमन्त्रण, अम्बिका), ५३१ (बगीचेका दान) ।

अम्बलट्ठिका । ६९ (राजगृहमें) ।

,, । २३२ (खाणुमतमें), ५२६ (=सिलाथ, जिला पटना) ५९० (में राजागारक) ।

अम्बष्ठ । २१७ (देखो अम्बट्ठ) ।
अम्बिका । ५३० (=अम्बपाली) ।
अरति । ११६ (मारकन्या) ।
अरिष्ट । ५७९ (देवानां प्रियतिष्यका भांजा, भिक्षु) ।
अल्लक [आर्यक] । ३७३ (गोदावरीके पास वर्तमान औरंगाबाद जिला, निजाम-हैदराबाद) । ३५७ (स्थान, जिससे उत्तर प्रतिष्ठान) ।
अल्लकप्प । ५४५ (के बुलि क्षत्रिय) ।
अवन्ति दक्षिणपथ । ३९४, ३९६ (में कम भिक्षु) ; ५०८ ।
अवन्ती (देश) । ३९४ (मालवा, जहां कुररघरमें प्रपातपर्वत था) ३९६ । ४६९ (उज्जेनी) ४७०, ४७२ में कुररघर ।
अशोक । ५४७ (पियदास, पियदस्सी) । ५६९ (तिष्य-सहोदर, विंदुसार-पुत्र, अपने ९८ भाइयोंको मारा, राज्य-प्राप्ति, बौद्ध-दीक्षा) । ५७० (युवराज सुमनको मारना, न्यग्रोध-साक्षात्कार) । ५७१ (-ने जम्बूद्वीपमें ८४००० चैत्य और विहार बनवाये) । ५६९ (अनभिषिक्त ४ वर्षतक) । ५७२ (नवम अभिषेक-वर्ष) । ५७७ (उज्जैन राज्यपर जाते रास्तेमें महेन्द्रमाता मिली) । ५७८ (राज्य-काल) । ५७९ (पुत्री और बोधिका विदा करना) । ५७८ (-धर्म-राजके सत्रहवें वर्ष देवानांपिय सिंहलमें गद्दीपर बैठा) ।
अशोक । काल–। ५७८ (जम्बूद्वीप नृप) । ५७८ (-शिशुनाग-पुत्रका राज्यकाल) ।
अशोकाराम-विहार । ५७१ (पाटलिपुत्र में इन्द्रगुप्तस्थविर-निरीक्षक, ३ वर्षमें समाप्त) । ५७४ (-में भिक्षुओंकी परीक्षा, निष्कासन) ।
अश्वजित् । (पंचवर्गीय) । २९ (उपसंपदा) । ३८, ३९ (सारिपुत्रको उपदेश) । २५४ । २५५ (कीटागिरि-वासी, पुनर्वसु का साथी) ।
असित-देवल । १८३ (ऋषि) ।
असितंजन-नगर । ४७२ (में तपस्सु भल्लिकका जन्म) ।
असिबंधक-पुत्त । ११०,१११-११३ (नाट-पुत्त द्वारा शास्त्रार्थके लिये भेजा गया, उपासक) ।
असुरेन्द्र । १३ (का देवनगर-प्रवेश) ।
अस्सक (अश्मक-देश) दक्षिणपथमें । ३७३ (अल्लकके समीप गोदावरी तटपर पैठन) ।
अस्सपुर । २८६ (अंगदेशमें) ।
अहोगंग-पर्वत । ५५८,५५९,५७२, (हरि-द्वारके पासका कोई पर्वत), ५७४ (गंगाके ऊपरकी ओर) ।
आजीवक, उपक– । २१ ।
आजीवक । २६५ (संप्रदाय, के तीन निर्याता) । ३३२ (नग्न) ।
आतुमा । (अंगुत्तरापमें) । १६८, १६९ ।
आनन्द । ४५ (के शिष्य पतित), ४५,४६ (महाकाश्यपका कुमारवाद), ४६ वैदेह-मुनि), ६१, (अनूपियामें प्रव्रज्या), ६१,६३ (नलकपानमें) ७६-८० (भिक्षुणी-प्रव्रज्या याचना), १०४ (पारिलेयकमें), १०७ (कोसम्बक-विवादमें), १०७ (१२ प्रधान-शिष्योंमें ११वें), १२८-३६ (महानिदानके श्रोता), १४१ (चावल कूट कर खाना), १६७,१६८ (रोजमल्ल मित्र), २६०-६४ (कौशाम्बी, प्लक्षगुहामें, संदकको उपदेश), २९१-२९२ (कजं-गलामें), ३०७ (महापंडित, महाप्राज्ञ), ३३९ (केपूर्ण मैत्रायणीपुत्र उपाध्याय), ३३६ (आठ वर) ३३५-३३६ (अमृतो-

दनपुत्र, भद्दियके साथ प्रव्रज्या), ३९९ (जेतवनमें), ४०९ (को अन्तिम पुरुष न बननेका उपदेश), ४०९, ४१०,४१३, ४२६ (विड्डभसे संवाद), ४२७ (प्रसेन-जित् द्वारा प्रशंसित), ४४१ (प्रसेन-जित्को उपदेश), ४४४ (बहुश्रुत), ४७० (जन्म-शाक्य, कपिल-वस्तुमें अमृ-तोदन-पुत्र), ४८१-८६, ५०४, ५१७ (सारिपुत्रके निर्वाणपर), ५२५-५२७, ५२९, ५३२, ५३३-५३६, ५२१, ५२२, ५२३, ५३२, ५३७-४३, ५४८-५५२ (प्रथम संगीतिमें), ५५३ (कौशाम्बीमें उदयनके रनिवासने ५०० चादरें दीं), ५५५ (उदयनने भी,), (छन्नको ब्रह्मदंड), ५६१. ५६२ (-के शिष्य सर्वकामी) ।

आनन्द-चैत्य । ५३४ (भोगनगरमें)

आपण । निगम (अंगुत्तरापमें) । १५६ (नाम-करण, पोतलियको उपदेश), १६२ (अंगुत्तरापमें), १६३ (बिंबसारके राज्यमें), १६७ ।

आलवक । ७५ (आलवीमें), २१० (-के लिये ३० योजन) । दे० हस्तक० ।

आलवी । ७५ (१६ वां वर्षावास), २५९ (आलंभिकापुरी, पंचालमें; वर्तमान अर्वल, जि० कानपुर), ३६९ (से राजगृह) ३५० (में गोमग्ग, सिसपावन) (पंचालमें, हस्तक आलवक) ।

आलार कालाम । १३ (राजगृह-उरुवेलाके बीचमें), २० (मृत्यु), ४१३ (के पास भगवान् ।५३५ (का शिष्य पुक्कुस मल्लपुत्त)।

आश्वलायन । १८०—८४ (को उपदेश)

आषाढ़-उत्सव । १ ।

इक्ष्वाकु [ओक्काक] । राजा । १२-१५ (शाक्योंका पूर्वज), ३५५,३५६ (गो-हिंसा), ३७४ (शाक्य-पूर्वज) ।

इच्छानंगल । २१० (तारुक्खका ग्राम कोसलमें उक्कट्ठाके समीप) ।

इट्टिय । ५७७ (ताम्रपर्णीमें प्रचारक) ॥

इतिहास ग्रन्थ । १८०, ५६८ ।

इन्द्र । ८, २०६ (वैदिक), ३३७, ५४७ ।

इन्द्रगुप्त । स्थविर । ५७१ (अशोकाराम-निर्माणमें तत्त्वावधायक) ।

ईशान । २०६ (वैदिक देवता) ।

उक्कट्ठा । २०३ (कोसलमें, पोक्खरसातिका गांव), २१०, २११, २२१ (इच्छानंगलके समीप) ।

उक्काचेल । ५१९ (वज्जीमें गंगा-तटपर, हाजीपुर, जि. मुजफ्फरपुर) ।

उग्र । ४७२ (वज्जी, वैशालीमें श्रेष्ठी ।

उच्चकुल । १८२ (क्षत्रिय, ब्राह्मण, वैश्य, शूद्र) ।

उजुका [उजुञ्जा] । ४२३ (राष्ट्रभी, नगर भी) ।

उज्जैनी । ४८, ४९, ३०३ (में कांचन-वन-विहार) । ३७६ (उज्जैन, ग्वालियर राज्य) । ४७० (अवंतिमें, महा-कात्यायनका जन्म-स्थान) । ५७० (में अशोक उपराज) । २७७ (में महेन्द्र-जन्म) ।

उत्तर-देश । ३७३ (में श्रावस्ती) ।

उत्कल । १८ (से उरुवेलाको तपस्सु भल्लिक) ।

उत्तर । भिक्षु । ५६१, ५६२ (रेवतका उप-स्थाक) ।

उत्तर । माणवक । २९१ (पारासवियका शिष्य) ।

उत्तर । ५७७ (सुवर्णभूमिमें प्रचारक) ।

उत्तरापथ । १४७ (के अश्ववणिक्) ।

उत्तिय । ५७७ (ताम्रपर्णीमें प्रचारक) ।

उत्पलवर्णा भिक्षुणी । ४७१ (जन्म-कोसल, श्रावस्ती, श्रेष्ठिकुल),४७३(अग्रश्राविका)

उदय । ३७९ (बावरि-शिष्य), ३८३ (प्रश्न)
उदयन । ४२१ (की उत्पत्ति), ५५३ (कोशाम्बीमें उद्यान-क्रीडा), ५५४ (आनन्दसे प्रश्नोत्तर)
उदयभद्र । ५७०, ५७८ (मगधराज) ।
उदान अट्ठकथा (देखो ग्रंथसूची) ।
उदायी । ५५, २९३ (प्रव्रज्याके संबंधमें)।
उदायी, काल—१३,५४, ५५, ४७०(जन्म-शाक्य, कपिलवस्तु, अमात्यगृहमें) ।
उदायिभद्र । ४६१ (अजातशत्रुका पुत्र और घातक, उदयभद्र भी) ।
उदुम्बर नगर । ५५९ (कानपुर जिलेमें कोई स्थान) ।
उद्गत [उग्गत] । ४७२ (वज्जी,हस्तिग्राम,श्रेष्ठी)
उद्दक-रामपुत्त । १३ (राजगृह-उरुवेलाके बीचमें), २० (मृत्यु), ४१४ (के पास भगवान्) ।
उपक । २१ आजीवक ।
उपतिष्य । स्थविर । ५७६ (सिंहलमें), ४६९ (-ग्राम में सारिपुत्रक का जन्म) ।
उपनन्द-शाक्यपुत्र। ५९८ (को लेकर जात-रूप रजत-निषेध)
उपवत्तन शालवन । ५३६ (कुसीनारामें, अनुराधपुरके स्थानोंसे तुलना) । ५४२ कुसीनारा (वर्तमान माथाकुंवर, कसया, जि० गोरखपुर) में ।
उपवाण । ३३९ (बुद्ध-उपस्थाक) ।
उपसीव । माणवक । ३७९, ३८० (प्रश्न) ।
उपसेन वंगन्तपुत्त । ४७० (मगध, नालक ग्राम, सारिपुत्रके अनुज) ।
उपाली । ६१ (अनूपियामें प्रव्रजित), १०७ (१२ महाश्रावकोंमें १० वें), ५७६ (दासक-गुरु), ४४४ (विनयधर), ४७१ (जन्म, कपिलवस्तु नापित-कुल), ५४९ (प्रथम संगीतिमें), ५५० ।
उपाली गृहपति । ४४५-५४ (नालन्दाका उपासक, जैनसे बौद्ध) ।
उपाली स्थविर । ५७६ (सिंहलमें) ।
उरुवेला (प्रदेश) । १४, १७, २१, ३० (काश्यप), ५५, ४१५ (सेनानी-निगम), ४७२ (मगधमें), ५३७ (दर्शनीय-स्थान) ।
उल्कामुख [ओक्कामुख] । २१२ (इक्ष्वाकु पुत्र, शाक्यपूर्वज) ।
उशीरध्वज । पर्वत । ३९७ (हिमालयका भाग, उसीरद्धज भी) ।
ऋषिगिरि । २३० (राजगृहमें, के पास कालशिला), ३०८ (इसिगिलि राजगृहमें) ।
ऋषिदत्त । ४०६ (प्रसेनजित्का हाथी-वान्), ४७९ (पुराणका साथी, भगवान् का भक्त) ।
ऋषिपतन मृगदाव । १४ (सारनाथ, जि० बनारस), २१, २२, २५, २६, ५५, ७५, ५३७ (दर्शनीय स्थान), (देखो वाराणसी) ।
एकपुंडरीक । ४४१ (प्रसेनजितका हाथी) ।
एक पुंडरीक परिव्राजकाराम। २४८ (वैशालीमें) ।
ऐतरेय ब्राह्मण । २०४ ।
ओट्ठद्धलिच्छवी । २४५ (देखो महालि)।
ओपसाद । २०३, २२२ (कोसलमें चंकिका गांव) ।
ककुत्था नदी । ५३६ (पावा-कुसीनाराके बीचमें कुछ बड़ी सी नदी) ।
ककुध भाण्ड । ३ (राजाके खड्ग, छत्र, पगड़ी, पादुका, व्यजन) ।
कजङ्गल । १,३,९७ (कंकजोल, ज़िला संथाल-पर्गना) ।

कजङ्गला । (कंकजोल) । २८९ (में वेणुवन), २९१ (में सुवेणुवन), २८९-९० (भिक्षुणी-कजंगलाका उपदेश), ४९० (पंडिता) ।

कटमोर तिस्स । देखो कोकालिय ।

कण्णत्थल मिगदाव । ४२३ (उजुकामें) ।

कण्णमुण्ड-दह । १५६ ।

कथावत्थुप्पकरण । ५७९ (अभिधर्म-पिटकका ग्रंथ, मोग्गलिपुत्त-निर्मित) ।

कन्थक । (अश्व) ३ (जन्म). १०, ११, १२ (मरण, देवपुत्र) ।

कन्थक-निवर्त्तन-चैत्य । ११ कपिलवस्तुके पास स्थान) ।

कपिल । ४१,४२ (महाकाश्यपका पिता) ।
—पुर । (कपिलवस्तु) ४७४ ।

कपिलवस्तु । [तिलौराकोट, तौलिहवा (नेपालकी तराई)से २ मील उत्तर] । १, ५५, ७९ (में १९ वां वर्षावास), ७६, ७८ (-पुर), २१२, २२८ (शाक्य देश, में न्यग्रोधाराम), २५०, २५२ (में न्यग्रोधाराम), ३७४,३७६ (कुसीनारा-सेतव्याके बीचमें) । ४६९-४७२ (में उत्पन्न महाश्रावक अनुरुद्ध भद्दिय कालीगोधापुत्र), ४७० (में जन्म, राहुलका, कालउदायिका), ४७१ (के उपाली, नंद, प्रजापतीगोतमी, नन्दा, भद्दा कात्यायनी), ४७२ (महानाम) ४७६ (शाक्य-विनाश), ५४५ (के शाक्य क्षत्रिय) ।

कप्पमाणव । ३८२ (का प्रश्न) ।

कप्पासिय-वनखंड । २९ (वाराणसी-उरुवेलाके मार्गपर) ।

कप्पिन । महा—१०७ (१२ महाश्रावकोंमें छठवें), २१० (प्रत्युद्गमनमें १२० योजन), ४०९, ४७१ (जन्म-प्रत्यंत देश, कुक्कुटवती नगर, राजवंश) ।

कंबोज । देश । १८१ (काफिरस्तान, या ईरान) ।

कम्मास-दम्म [कल्माष-दम्य] । १३९ (कुरुमें), ११८ (सतिपट्ठानसुत्त), १२८ (महानिदानसुत्त) ।

करण्डु । इक्ष्वाकुपुत्र, शाक्यपूर्वज ।

कलन्दक-ग्राम । १२९ (वैशालीके नातिदूर), ३१२ (कलन्दग्राम, वैशालीके पास) ।

कलन्दकनिवाप । ४९, (वेणुवन, राजगृह) ४२८ ।

कलम्ब । नदी । ५३६ (अनुराधपुरमें) ।

कलार-जनक । (निमिराजका पुत्र, मिथिलाकी परम्पराका परित्यागी) ४०५ ।

कलिंग । ५४६ ।

कलिंगारण्य । ४४९ ।

कल्प । ग्रन्थनाम । ५६८ ।

कश्मीर । ५७६ (में प्रचारक मध्यांतिक) ।

कश्यप । १६८ (मंत्रकर्त्ता ऋषि), २०४, २१८, २२४ ।

कस्सप । बुद्ध । १२ ; १४१ (भद्रकल्पके बुद्ध), १४२ (ब्राह्मण, चिरस्थायी धर्म) ।

कहापण । देखो कार्षापण ।

काक । प्रद्योतका दास ३०४ ।

काकवलिश्रेष्ठी । १९२ (बिंबसारके-राज्यमें) ।

कांचनवन । ४९ (उज्जैनीमें विहार) ।

कात्यायन, महा— । ४८-४९ (-चरित) १०७ (१२ महाश्रावकोंमें छठें), ३९४-३९६-३९७ (अवन्ति-देशमें कुररघरके प्रपात-पर्वत पर), ४०९, ४६९ (जन्म—अवन्ति देश, उज्जयिनी नगर, ब्राह्मण) ।

कात्यायनी । ४७२ (अवंती, कुररघर, सोण कुटिकण्णकी माता) ।

कान्यकुब्ज [कण्णकुज्ज] । १४४ (कन्नौज जि० फर्रुखाबाद), ५५९ ।

कापथिक माणवक, भारद्वाज । २२४ चंकि का भांजा) ।
कारायण, दीर्घ-। ४७३-४७६ (बंधुलमल्लका भांजा, कोसल-सेनापति, राजासे विश्वास-घात), ४७७ ।
कापापण । (सिक्का) ४९; ८९ (= कहापण), ८, १६; २९८ (तांबेका सिक्का, क्रय-शक्ति पौन रुपया), ५१८, ५५६ ।
कार्षापण, अर्द्ध—। ५५६ ।
कालकूट । १९६ (अनवतप्तके पास, पर्वत-शिखर)
काल देवल ऋषि । (बोधिसत्त्वके दर्शनार्थ) ४ ।
कालशिला । २३० (ऋषिगिरि, राजगृहमें) ५१८-५१९ (में मौद्गल्यायनका वध), ५३३ (राजगृहमें वैभारगिरिकी बगलमें)।
कालाम । (कोसलदेशमें, केसपुत्त निगमके क्षत्रिय) ३४७ ।
काली । (मगध, राजगृहमें उत्पन्न, अवंती कुररघरमें० याही) ४७२ ।
काशी । २५५ (देशमें चारिका), ३९८, (प्रायः बनारस कमिश्नरी और आजमगढ़ ज़िला);(-का चंदन), ४०१ (प्रसेनजित् का राज्य), ४७१,४७२(देशमें वाराणसी)
काशीग्राम । ४३९ (महाकोसल द्वारा कन्याको प्रदत्त) ।
काशी-राज । ३०७ (कासिनं राजा, प्रसेन-जितका भाई) ।
काश्यप । २४६ (=नागित) ।
काश्यप, उरुवेल— । ३०—३२ (प्रव्रज्या) ३५.३६ । ४७० (जन्म—काशी, वारा-णसी, ब्राह्मण)
काश्यप, कुमार—। ४७० (जन्म—मगध, राजगृहमें) ।
काश्यप, गया—। ३०, ३३ (उपसंपदा) ।
काश्यप, नदी—। ३०, ३३ (उपसंपदा) ।
काश्यप, पूर्ण— । ८२ (तीर्थंकर १), ८६ (मृत्यु डूबकर), ९१,९२ (गणाचार्य १), २६६ (शिष्योंमें असत्कृत) ।
काश्यपबुद्ध । २२४ (के उपदेशानुसार वेद, पीछे मिलावट) ।
काश्यप, महा— । ४ (के प्रत्युद्गमनार्थ ३ गव्यूति), ५८ (राहुलके आचार्य), (=पिप्पलीमाणवक), ४१ (-चरित), ४९ (संघाटी-परिवर्तन), ४१-४९, १०७ (१२ महाश्रावकोंमें तृतीय), ४०९, ४४४ (धुतवादी), ४६९ (जन्म—मगधदेश, महातीर्थग्राम, ब्राह्मण), ५४४, ५४५ ५४६ (राजगृहमें अजात-शत्रुसे धातुनिधान बनवाना), ५४८—५५१ (प्रथम संगीतिमें), ५७५ ।
किम्बिल । (शाक्य) । ६१ (अनूपियाके प्रव्रजितोंमें), ६३ (नलकपानमें), ९९ (प्राचीनवंसदायमें), १०० (अनुरुद्ध नंदियके साथ) ।
कीटागिरि । २५४ (केराकत, जि. जौनपुर) २५५ (काशियोंका निगम), २५९ ।
कुक्कुटवती । (प्रत्यंतदेशमें) । ४७१ (महा कप्पिनका जन्म) ।
कुटदंत ब्राह्मण । २३२ (मगधमें खाणु-मतका स्वामी), २३२-२४० ।
कुणालदह । १९६ ।
कुण्डधान । ६३ (नलकपानमें संन्यास), ४७० (जन्म—कोसल, श्रावस्ती, ब्राह्मण)
कुण्डिया । (शाक्य) । ४७० (सुप्रवासा कोलियधीताका घर, सीवलीका जन्म स्थान) ।
कुतुम्बक (पुष्प) । ८ ।
कुतूहलशाला । (राजगृहमें) २६६ ।
कुव्यक । (पुष्प) ८ ।

कुररघर । ३९४, ३९६ (में प्रपात-पर्वत अवंतीमें), ४७० (में सोणकुटिकण्णका जन्म), ४७२ (काली, कात्यायनी) ।
कुरु । उत्तर-३१, ८८ (में भिक्षार्थ) ।
कुरुदेश । ११९ (कम्मासदम्म), ११८, १२८, ३९२ (थुल्लकोट्ठित), ३९६ कौरव्य राजा), ३९९ (समृद्धदेश) ।
कुरु-राजा । ३८९ ।
कुशावती । ५३८ (कुसीनाराका पुराना नाम) ।
कुसीनारा । (कसया, जिला गोरखपुर, तहसील देवारियास्टेशन (B. N. W. Ry.) । १६७, १६८, ३७६, ४७९, ५३५ (पावास ६ गव्यूति = ३/४ योजन), ५३६ (में उपवत्तन शालवन, अनुराधपुरसे तुलना), ५३७ (४ दर्शनीय स्थानोंमें), ५३८ (पुराना नाम कुशावती), ५३९ ५४२, ५४३, ५४४, (में निर्वाण), ५४५, (मुकुट-वन्धन चैत्य), ५४६ (से राजगृह २५ योजन) ।
कृमिकाला नदी । २९४ (जंतुग्राम, चालिय पर्वतके पास, संभवतः वर्तमान कर्मनाशा) ।
कृश सांकृत्य । २६५ (आजीवकोंके तीन निर्याताओं में) ।
कृशागौतमी । ९ (शाक्य-कन्या) ३६३ (-भिक्षुणी-चरित) ।
कृष्ण । (ऋषि) २१३ (इक्ष्वाकुकी दासी दिशाके पुत्र, कृष्णायनोंके पूर्वज) ।
कृष्णायन । २१२ (गोत्र) ।
केटुभ । १८० (कल्पसूत्र), २१० ।
केणिय जटिल । १६२ (आपण-वासी), १६३, १६५, १६६, १६७ ।
केसपुत्त । ३४७ (कोसलमें कालामों का निगम) ।
कैलाश । (पर्वत) । ८७ कैलाशकूट, १९६ (अनवतप्तके पास) ।
कोकनदप्रासाद । ४१२ (बोधिराजकुमारका सुंसुमारगिरिमें) ।
कोकालिक कश्मीर-तिस्स । ४३२ (देवदत्तका अनुयायी भिक्षु), ४३४ (गयासीसमें देवदत्तके साथ) ।
कोटिग्राम । ५२९ (वज्जीमें, गंगा और वैशालीके बीच) ।
कोट्ठित । महा—१०७ (१२ महाश्रावकों में पांचवें), ४०९ ।
कोंडनि । [कौडिन्य] । ५ (दैवज्ञ ब्राह्मण)
कोनागमन । १४१ (भद्रकल्पके बुद्ध),१४२ (ब्राह्मण, चिरस्थायी धर्म) ।
कौरव्य राजा । ३९९-३६० (थुल्लकोट्ठितमें, कुरुदेशका राजा) ।
कोलित-ग्राम । (मगधमें) । ४६९ (में महामौद्गल्यायनका जन्म) ।
कोलिय । ११ (के पश्चिम नदीपार शाक्य-राज्य, पूर्वमें रामगाम-राज्य), २५१ (शाक्योंसे विवाद), ५४५ (कोलिय-क्षत्रिय रामगामके), ५४६ (बुद्धधातु पाने वाले) ।
कोष्ठित । महा—[महाकोट्ठित] ४७०(जन्म-कोसल, श्रावस्ती, ब्राह्मण), (देखो कोट्ठित) ।
कोसल । २०३ (में मनसाकट, ओपसाद, इच्छानंगल, उक्कट्ठा, तुदीगाम) । २४५ (के ब्राह्मणदूत वैशालीमें), ३४७ (में, केसपुत्त निगम), ३४७, ३६४, (फैजाबाद, गोंडा बहराइच, बाराबंकीके जिले तथा, आसपासके जिलोंके कुछ भाग), ३७५ ३७३ (बावरिका जन्म), ४०१ (का प्रसेनजित् राजा), ४०६ (अवध, बस्ती, गोरखपुर आजमगढ़, जौनपुर जिलोंके

कितनेही भाग), ४६९, ४७२ (में श्रावस्ती), ४८० (पर मगधराज अजातशत्रुकी चढ़ाई), ११०, २९० (में चारिका),
कोसलक । ४७९ (कोसलदेशवासी, या कोसलगोत्रज, प्रसेनजित् और भगवान्)
कोसलराजा । ३२९ ।
कौंडिन्य, आयुष्मान्—। १४ (उरुवेलामें)।
कौडिन्य, आज्ञात–१४, २४ (प्रव्रज्या, अर्हत्त्व), ४६१ (जन्म—शाक्यदेशमें कपिलवस्तुके पास द्रोणग्राममें, ब्राह्मण) ।
कौशाम्बी । ७९ (नवम वर्षावास), ९७,९८, १००, १०४, १०६, (घोषिताराम में कलह १०८, २४७, २६० (में सूक्ष्गुहा =पभोसा, कोसम, जि० इलाहाबाद), ३०४ (उज्जैन-राजगृहके मार्गपर), ३७६ कोसम, जि० इलाहाबाद), ४२१, ४२७, ४२८, ४७१, ४७२ (वत्सदेशमें वक्कुल -का जन्म) (खुज्जुत्तरा, सामावती),५३८ (महानगर), ५५३, ५५८, ५६९(सुत्त-विभंग) ।
कौशिकगोत्र । ४१, ४२ (भद्रा कपिलायनी का पिता) ।
ककुच्छन्द [ककुसंध] । १४१, १४२ १४३, (भद्रकल्पके बुद्ध ब्राह्मण, चिर-स्थायी धर्म) ।
क्षुद्ररूपी । २१४, २१९ (इक्ष्वाकु-कन्या, कृष्ण-भार्या) ।
क्षुद्रशोभित । (देखो शोभित, क्षुद्र-) ।
खंडदेवी-पुत्र समुद्रदत्त। ४३२ (देवदत्तका अनुयायी भिक्षु) ।
खाणुमत ब्राह्मणग्राम । २३२ (मगधमें कुट-दंतका ग्राम), ५३४ (में अम्बलट्ठिका,
खुज्जुत्तरा, [कुब्जा-उत्तरा] ४७२, ४७३ । (वत्स-देशमें, कौशांबीके घोषक श्रेष्ठीके धाईकी कन्या, गृहस्थ अग्रश्राविका)
खुद्दक (=क्षुद्रक) निकाय । (देखो ग्रंथसूची)।
खेम । स्थविर । ५७६ (सिंहलमें) ।
खेमा । ४७१ (जन्म—मद्रदेश, शाकला, राजपुत्री, बिंबसार-भार्या), ४७३ (अग्रश्राविका) ।
गंगा । नदी । १४४ (प्रयागमें), १९६ (का उद्गम),२१९, (वज्जी-मगध-सीमा)५२९।
गंड । ८९ (प्रसेनजित्का माली)
गंडम्बरुक्ख । ८९ (श्रावस्ती नगरमें) ।
गंधमादन-कूट । १९६ (अनवतप्तके पास)
गंधार । ५७६ (में धर्मप्रचारक, मध्यांतिक)
गंधारपुर । ५४६ (में एक बुद्धदाढा)
गया । १९, २१, ३३, ३४, ४३० (में गयासीस) ।
गयासीस । (गयामें) ३४, ३९, ४३३, ४३६ (पर देवदत्त संघभेदकर आया, ब्रह्मयोनि पर्वत, गया) ।
गरुड़ । १३ ।
गग्गरा [गग्गरा] । पुष्करिणी । २४१ अंग-देशके चंपा नगरमें, २८९ ।
गवांपति । (भिक्षु) २७, २८ ।
गव्यूति । ३ (=$\frac{1}{4}$ योजन) ।
गिंजकावसथ । ५२९ (वज्जिदेशके नादिका ग्राममें) ।
गिरिव्रज । ४९० (मगधोंका नगर, राजगृह)
गृध्रकूट । पर्वत ३०८ (राजगृहमें), ४३१ (देवदत्तका बुद्धके ऊपर पत्थर फेंकना), (देखो राजगृह) ।
गोदावरी । नदी । ३७३ (पतिट्ठान इसके किनारे, अस्सकदेशमें) ।
गोनद्ध । ३७६ (उज्जैन और भिल्साके बीच कोई स्थान) ।
गोपाल । (प्रद्योतका पुत्र) ।
गोपाल-माता देवी । ४९ (प्रद्योत-महिषी) ।

गोमग्ग । ३९० (आलवीमें) ।
गोयोग-प्लक्ष । १४९ (वाराणसीमें) ।
गौतम तीर्थ । २९२ (पाटलिपुत्रमें) ।
गौतमद्वार । ५२८ (पाटलिपुत्रमें)
गौतमकचैत्य । ३१२ (वैशालीमें, त्रिचीवर-विधान) ।
गौतमी, कृशा- । ४७१ (जन्म—कोसल, श्रावस्ती, वैश्यकुल, कृशा गौतमी भी देखो) ।
गौतमी, महाप्रजापती- । ४७१ (शाक्य, कपिलवस्तु, भगवान्‌की मौसी) ।
घटिकार । महाब्रह्मा । १२,१९ ।
घोषितराम । (देखो कौशाम्बी) ।
चक्रवाल । ३, ८३
चंकि ब्राह्मण । २०३,२२२, (ओपसादवासी)
चंडवज्जी स्थविर । २६७, २६९ (मोग्गलि-पुत्तके गुरु) ।
चंडालकुल । १८२ (नीचकुलोंमें) ।
चंद्रगुप्त राजा । ५७८ (मौर्य, राज्यकाल)
चंद्रपद्मा । १९२ (मेंडककी भार्या) ।
चंपा । २४१ (अंगमें, जहां गग्गरा पुष्करिणी), २८९ (गग्गरा पुष्करिणी), ४७० (में सोण कोटिवीसका जन्म), ५३८ (महा-नगर) ।
चाम्पेयक विनयवस्तु । ५६९ ।
चापाल चैत्य । ५३२, ५३३ (वैशालीमें) ।
चालिय पर्वत । ७९ (वर्षावास १३, १८, १९), १४७ (१३वीं वर्षा) (१८वीं २८९, २९४ (१९वीं वर्षा, पासमें जंतुग्राम कृमिकालानदी) ।
चित्रकूट (पर्वत) । ८७, १९६ (अनवतप्तके पास) ।
चित्त (गृहपति) । ४७२ (मगध, मच्छिका संडमें श्रेष्ठी), ४७३ (गृहस्थ अग्र-श्रावक) ।
चित्त हस्तिसारीपुत्र । १९४, १९९ उप-संपदा, अर्हत् ।
चिंचा । ३३६-३३८ (परिव्राजिका श्रावस्तीमें) ।
चुंदक । ५३६ (आयुष्मान्) ।
चुन्द कर्मार-पुत्र । ५३५, ५३६ (पावामें) ५३६ (का पिंड असमसम) ।
चुन्द, महा— । १०७ (१२में सातवें) ४०९ (जेतवन) ।
चुन्द श्रमणोद्देश । ३३५ (बुद्ध-उपस्थाक), ४८१ (पावासे सामगाम नाथपुत्तके मरनेका समाचार ले, सारिपुत्तके भाई), ५१७, ५१४ ।
चूडामणिचैत्य । १२ (त्रयस्त्रिंश लोकमें)
चैत्यपर्वत । =मिश्रकपर्वत ५७७ ।
चोरप्रपात । ५३३ (राजगृहमें) ।
छद्दन्तदह । १९६ ।
छन्दक [छन्न] । ३, १०, ११, १२, ५४१ (ब्रह्मदंड), ५५२ (को ब्रह्मदंड), ५५३ (को ब्रह्मदंड), ५५४ (अर्हत्) ।
छन्दाघा । (ब्राह्मण) २०४ ।
छन्दोग । (ब्राह्मण) २०४ ।
छन्न । (देखो छन्दक) ।
छः वर्गीय । ७२, ९२ (के अनाचार), ९३ ।
जटिल । (श्रेष्ठी) १९२ (बिंबसारके राज्यमें)
जंतुग्राम । २९४ (चालियपर्वतके पास) (प्राचीनवंशदावमें) ३३५ ।
जम्बुकोलपट्टन । (लंकामें बंदर) ५७९ ।
जम्बूद्वीप । १,१९६ (१०००० योजन, ४००० समुद्र, ३००० मनुष्य), ५४६, ५४७, ५६७, ५६९, (=भारत), ५७१ (में अशोकने ८४००० चैत्य और विहार बनवाये), ५७६, ५७७ (राजावली), ५७९ ।
जातकट्ठ कथा । (देखो ग्रन्थ-सूची) ।

जातकट्ठ कथा । १० (सिंहलभाषा की), २९, ९४ ।
जातियावन । १९१ (देखो भद्दिया) ।
जातुकर्णी । ३७९ (बावरि-शिष्य) ३८२ (प्रश्न) ।
जानुश्रोणि [जाणुस्सोणि] । १७०, १७१, १७२ (ब्राह्मण, श्रावस्तीवासी उपदेश), शरणागत २०३ ।
जानुस्सोणि । (देखो जानुश्रोणी) ।
जालिय । (दारुपात्रिकका शिष्य, कौशाम्बी में) २४७ ।
जीवक कौमारभृत्य । ४९९, (आम्रवन-दान) ४६१,४७२ (मगध, राजगृह, अभय राजकुमारसे सालवतिका गणिकामें उत्पन्न), २९७-३०७ (जीवक-चरित), ३०० ५५० (राजगृहमें) ।
जीवकम्बवन । ५३३ ।
जेतवन । ७१ निर्माण (देखो श्रावस्ती) ७०, ।
जेतकुमार । ७०, ७१, (-उद्यान) ।
जोतिय (श्रेष्ठी) । १९२ बिंबसारके राज्यमें
ज्ञातृ । ५२९ [वर्तमान जैथरिया भूमिहार ब्राह्मण] ।
ज्ञातृपुत्र । (नाट-पुत्त = नाथपुत्त = नातपुत्त) ११० (विशेष) ।
तक्षशिला । २९८ (शाहजीकी ढेरी तक्सिला जि० रावलपिंडी), ३७१ (में श्रावस्ती-वासी, अध्ययनार्थ) ।
तपस्सु । १८ (भल्लिकका भाई । उरुवेलामें), १९ (उपासक), ४७१ (जन्म— असितंजन-नगर, कुटुम्बिकगेह) ।
तपोदाराम । ५३३ (राजगृहमें) ।
ताम्रपर्णी द्वीप । ५७६ (तम्बपण्णिद्वीप, लंका), ५७७(में प्रचारक, महेन्द्र, उत्तिय, संबल, भद्दसाल) ।
ताम्रलिप्ति । ५७९ (तमलुक्, जि०मेदिनीपुर)।
तारुक्ख ब्राह्मण । २०३ (इच्छानंगलवासी), २१० (उकट्ठा समीप) ।
तित्तिरजातक । ७३-७४ ।
तिन्दुकाचीर । १८९ (समयप्पवादक मल्लिकाराम, वर्तमान चीरनाथ, सहेट. महेट, जि० बहराइच) ।
तिष्यकुमार । ५६९ (अशोकसहोदर, बिंदुसार-पुत्र), ५७१ (प्रव्रजित) ।
तिष्यदत्त । स्थविर । ५६६ (सिंहल) ।
तिष्य ब्रह्मा । ५६७ ।
तिष्य मैत्रेय । ३७९ (बावरि-शिष्य) ।
तिष्य श्रामणेर । २१० (सारिपुत्र-शिष्यके लिये १२० योजन ३ गव्यूति) ।
तिष्य । स्थविर । (=तिष्यकुमार) ५७३ (प्रव्रजित, राज्याभिषेकके चौथे वर्ष) ।
तिष्यस्थविर (३३) । ५७६ (सिंहल) ।
तिस्समेत्तेय । माणवक । ३७८ (प्रश्न) ।
तुदीगाम । २०३ (तोदेय्य ब्राह्मणका, कोसल में) ।
तुषित । देवविमान । ८८, ९०(में मायादेवी) २५३ (देवता), ३३९ (स्वर्ग) ।
तृष्णा । (मारकन्या) ११६ ।
तेलप्पनाली । ४८ (राजगृहसे उज्जैनके रास्तेमें गांव) ।
तैत्तिरीय ब्राह्मण । ७४, २०४ ।
तैर्थिक । ८३ (प्रातिहार्य) ।
तेदेयकप्प । ३७९ (बावरि-शिष्य) ।
तोदेय्य ब्राह्मण । २०३ (तुदीग्रामवासी) ।
तोदेय्य (माणव) । ३८२ (प्रश्न) ।
त्रयस्त्रिंश । १२ (इन्द्र-लोक), ७९, ८७ (में वर्षावास), ८८ (में वर्षावास पांडु-कंबल शिलापर), २५३ ४०४, ४१६ (देवता) ।
त्रिपिटक । ५८० (का लिखा जाना) ।

थुल्लकोट्टित । ३९२ (कुरुदेशमें), ९९४ (में मिगाचीर राजोद्यान). ३९६ (कौरव्य राजा). ४७० (में राष्ट्रपालका जन्म) ।
थुल्लनंदा भिक्खुनी । ४६ (महाकश्यपसे नाराज) ।
थूण ब्राह्मणग्राम । १ (थानेसर, जि० कर्नाल), ३९७ ।
थूपाराम । ९३६ (अनुराधपुरमें) ।
थेर-गाथा । अ. क. (देखो ग्रन्थ-सूची) ।
दक्षिणद्वार । ९३६ (अनुराधपुर में) ।
दक्षिणागिरि । ४९ (राजगृहके पास), ९९२, ९९७ ।
दक्षिणापथ । ३७३ (जनपद जिसमें आंध्र है) ।
दण्डकारण्य । ४४९ ।
दामरिक । ९७८ (=द्रविड़) ।
दारुपात्रिक । २४७ (-का शिष्य जालिय कौशाम्बीमें) ।
दाव । प्राचीनवंश-। १९(में अनुरुद्ध आदि)
दाव । मृग-। २१, २२ (ऋषिपतन) ।
दासक । ९७६ (उपालिशिष्य, सोणक-गुरु)
दिशा । २१३ (इक्ष्वाकुकी दासी, कृष्ण ऋषिकी माता), २१३ ।
दीघ-निकाय [दीर्घ-निकाय] । (देखो ग्रंथसूची) ।
दीघभाणक । ८ (दीर्घ-निकायको कंठ करने वाले) ।
दीर्घ तपस्वी निगंठ । ४४४ (निर्ग्रंथ ज्ञातपुत्रका प्रधान शिष्य),४४७,४५०-१ ।
दीर्घ-सुमन । स्थविर । ९७६ (सिंहल) ।
दीर्घ-स्थविर । ९७६ (सिंहल) ।
दूभय । ३७९ (बावरि-शिष्य) ।
देवकट-सोब्भ । २६० (कौशाम्बीमें लक्ष गुहाके पास) ।
देव, चूल—। ९७६ (सिंहल) ।
देवता, वृक्ष—। १९ ।
देवदत्त । ६१ (अनूपियामें प्रव्रजित). ४२७, (संघभेद), ४२७-४३४, ४२८ (संघका आधिपत्य मांगना), ४२९ (अजातशत्रु को पितृवधकी सलाह), ४३० (बुद्धके वधार्थ आदमी भेजना) ४३१ (बुद्धके पादको क्षत करना), ४३२ (५ वस्तु मांगना), ४४४ (पापेच्छु), ४५९ (आपायिक-कल्पस्थ), ४६० (के अंतिम दिन) ।
देवदह-नगर । २ (कोलियमें), ३४१ (शाक्यदेशमें) ।
देवल, असित —। देखो असित देवल ।
देववन । २२३ (ओपसाद, कोसलमें) ।
देवस्थविर । ९७६ (सिंहल) ।
देवानां प्रियतिष्य । ९७७ (ताम्रपर्णीनृप, अभिषेक), ९७८ (अशोकके १७वें वर्ष राज्य पाया), ९७९ (बौद्ध होना) ।
द्रोण ब्राह्मण । ३८९ (श्रावस्तीवासी,प्रश्न), ९४५, ९४६ ।
द्रोणवस्तु (शाक्यदेश) ४६९ । (में पूर्णमैत्रायणीपुत्रका जन्म) ।
धजा । ९ (देवज) ।
धनंजय । श्रेष्ठी । १९२, १९३ (विशाखा-पिता मेंडकका पुत्र साकेतमें), ३२६ (साकेतका श्रेष्ठी), ३२७, ३२८ ।
धनपाल । १३ ।
धनिय । २१० (के लिये १०७ योजन) ।
धनिय कुम्भकारपुत्त । ३०८-१२ (ऋषिगिरिमें द्वितीय पाराजिक), ९४९ ।
धम्मदिन्ना । ४७१ (जन्म-मगध, राजगृह, विशाख-श्रेष्ठी-भार्या) ।
धम्मपद । (देखो ग्रंथसूची) ।
धम्मचक्कपवत्तनसुत्त । २३ ।
धर्मपालित । ९७६ (सिंहल स्थविर) ।

धर्मरक्षित, महा।-६७७ (महाराष्ट्रमें प्रचारक)
धर्मरक्षित। योनक-६७७ (अपरांतमें धर्म-प्रचारक)।
धर्मसेनापति। (देखो सारिपुत्र)।
धम्नक। ३७६ (बावरि-शिष्य)।
धोतक माणव। ३७९ (प्रश्न)।
नकुल-पिता, गृहपति। ४७२ (भर्ग-देश, सुंसुमार-गिरिमें, श्रेष्ठी)।
नकुल-माता, गृहपत्नी। ४७२ (भग्ग, सुंसुमारगिरिमें नकुल-पिताकी भार्या)।
नगरक। (कोसलमें), ४७३ (से मेतलूप निगम ६ योजन)।
नन्द। ६७,६८ (प्रव्रज्या), ४७१ (जन्म-शाक्य, कपिलवस्तु, प्रजापतिपुत्र), ३७६ (बावरि-शिष्य), ३८१ (प्रश्न)।
नन्दक। ४७१ (कोसल, श्रावस्ती, कुलगेह)।
नन्द-माता। ४७२ (मगध, राजगृह, सुमन श्रेष्ठीके आधीन पूर्णसिंहकी पुत्री), ४७३ (वेलुकंटकी नगर-वासिनी, गृहस्थ-अग्र श्राविका)।
नन्दराजा। ६७८ (राज्य-काल)।
नन्द वात्स। २९६ (आजीवकोंके तीन निर्याताओंमें)।
नन्दा। ४७१ (शाक्य, कपिलवस्तु, महा-प्रजापती-पुत्री।
नन्दिय। ६३ (नलकपानमें प्रव्रजित), ९९, १००(प्राचीन वंशदावमें अनुरुद्धके साथ)
नर्मदा नदी। ४०३ (सूनापरांतमें)।
नलकपान। ६३ (कोसलमें जहां पलासवन)
नलेरुपुचिमन्द। (देखो वेरंजा)।
नाग। १३।
नाग। चूल-,६७६ (सिंहल, स्थविर)।
नागदास। ४६१ (अनुरुद्धका पुत्र और घातक, स्वयं प्रजाद्वारा हत),६७७,६७८ (मुंड-पुत्र, राज्यकाल)।
नाग, महा-। ६७६ (सिंहल स्थविर)।
नाग-राज। ३०।
नागसमाल। ३३९ (बुद्ध-उपस्थाक, आज्ञो-ल्लंघन)।
नाग-स्थविर। ६७६ (सिंहल)।
नागित। २४९ (उपस्थाक, वैशालीमें), २४६ (काश्यप), ३३९ (बुद्ध-उपस्थाक)।
नाथपुत्तिय निगंठ। ४८१ (जैनसाधु)।
नादिका। (=नाटिका, ज्ञातृका)। ६२९ (वज्जीमें पाटलिपुत्तसे कोटिग्राम, इसके और वैशालीके बीचमें। वर्तमान रत्तीपर्गना इसी नामसे है। में गिंजकावसथ)।
नालक-ग्राम। ९० (सारिपुत्तका जन्म-स्थान, मगधमें)।
नालक ब्राह्मण-ग्राम। ४७० (में सारिपुत्त, रेवत खदिरवनिय, उपसेन वंगंतपुत्तका जन्म, मगधमें)।
नालन्दा। ४४, ४६, ११० (प्रावारिक-आम्र-वन, दुर्भिक्ष), १११, ४४४ ४४८, ४४९, ४८१ (उपालीके बौद्ध होनेपर नाथपुत्तके मुंहसे खून निकला, फिर पावा लेगये, जहां मरण), ६२५, ६२६ (प्रावारिक आम्रवन), ६६० (राजगृह-नालंदाके बीच अंब-लट्ठिका)।
नाला। ७९ (११वां वर्षावास)।
नालागिरि। ४३१-३२ (चंड हाथी, जिसे देवदत्तने बुद्धके ऊपर छुड़वाया)।
नालीजंघ। ब्राह्मण। ४०० (मल्लिका देवीका दर्बारी, श्रावस्तीमें)।
निकाय। ६६० (दीघनिकाय आदि ५)
निगंठ। (निर्ग्रंथ=नंगे) ८६।
निगंठ नाटपुत्त। ११०, १११ (असिबंधक-पुत्तको भेजना), ११२।
निगंठ नातपुत्त। ४६०, ४६३ (चातुर्यामसंवर-वादी), ४४४, (नालंदामें बुद्धभी उस

समय),४४९(उपालिको शास्त्रार्थके लिये भेजना), ४५२-९४ (उपालिसे संवाद)।

निगंठ नाथपुत्त । ८२,(निग्रंथज्ञातृपुत्र महावीर जैनतीर्थंकर), ९१,९२ (वृद्ध गणाचार्य तीर्थंकर ३), १४८ (सिंहको रोकना), २३० (सर्वज्ञ),२३६ (श्रावकोंसे असत्कृत), २८० (सर्वज्ञताका दावा), ३४१-४३ (-का वाद), ३४२ (सर्वज्ञ), ४८१, ४८८ (मृत्यु पावामें, अनुयायियोंमें कलह) ९ ० (संघी)।

निघंटु । १८०,२१०,९६८ ।

निमि । ४०४ (मखादेव-वंशज मिथिलाका धर्मराजा) ।

निर्माणरति । २९३ (देवता) ।

निषाद । १८२ (नीचकुल) ।

निष्क । ४१ (अशर्फी) ।

नीचकुल । १८२ [चंडाल, निषाद, वेणु (वसोर), रथकार, पुक्कस] ।

नेरंजरा नदी । १९(निलाजन, जि. गया) । १७ (के तीरपर बोधिवृक्ष) ।

नैगम । ७० (श्रेष्ठीसे ऊपर पद) ।

न्यग्रोध श्रामणेर । ९७० (युवराज सुमनका पुत्र, बिंदुसारका पौत्र, महावरुण स्थविर का शिष्य), ९७१ (अशोकका प्रेरक) ।

न्यग्रोधाराम । ९९ (कपिलवस्तुमें न्यग्रोध शाक्यका), २२८,९३३ ।

पकुंडक अभय । ९७८ (सिंहल का दामरिक राजा) ।

पकुध कच्चायन । ४६०,४६३ (का वाद), ९४० (देखो प्रकुध कात्यायन) ।

पंचवर्गीय । स्थविर ५ । (कौंडिन्य आदि), १४ (उरुवेलामें), २०, २१ (ऋषिपतनमें) २२, (को उपदेश), २४ (कौंडिन्य), २९ (वप्प, भद्दिय, महानाम, अश्वजित्) ।

पंचवर्गीय भिक्षु । ४१८ (छोड़कर जाना), ४१९ ।

पंच-शतिका । विनय-संगीति । ९९४ ।

पंचशाला । ब्राह्मणग्राम । ११३ (मगधमें) ।

पंचशिखा । गंधर्व-पुत्र । ९० ।

पंचालदेश । ४२७, [में आलवी, अ , संकाश्य, कान्यकुब्ज, सौरेय्य] ।

पटाचारा । भिक्षुणी । ४७१ (कोसल, श्रावस्ती, श्रेष्ठीकुल) ।

पतिट्ठानपुर । ३७३ (गोदावरीमें तीन योजन का टापू) ।

पदक । १८० (=कवि) ।

पदचैत्य । ४०३ (नर्मदा नदीके तीर, सूनापरांतमें) ।

पदश । २१० (कवि)।

पंथक, चुल्ल-। ४६९ (मगध, राजगृहमें श्रेष्ठिकन्यापुत्र) ।

पंथक, महा-४६९ (मगध, राजगृहमें, श्रेष्ठि कन्यापुत्र) ।

परनिर्मितवशवर्ती । २९३ (देवता) ।

परंतपराजा । ४२१ (उदयनका पिता) ।

पाटलिग्राम । ९२६, ९२७ (वर्तमान पटना, नगर-निर्माण, वज्जियोंको रोकनेके लिये) ।

पाटलिपुत्र । ९२८ (में गौतमद्वार, गौतमतीर्थ) ९२८ (अग्रनगर, पुटभेदन; आग, पानी, आपसकी फूटसे भय), ९६७ ९७० (दक्षिणद्वारसे-पूर्वद्वार जाते रास्तेमें राजांगण), ९७९ ।

पांडव-पर्वत । १३ (रत्नगिरि, या रत्नकूट राजगृहमें) ।

पांडुकम्बल शिला । ८८ (त्रय-स्त्रिंशदेवलोक में, वर्षावास) ।

पांडुवासुदेव । ९७७ (उदयभद्रकालीन, सिंहलनृप) ।

पाराजिक । १३७ ।

पारासिविय । (ब्राह्मण)।२९१(की भावना)।
पारिछत्रक । ८८ (दिव्य-वृक्ष) ।
पारिजात । ११ (दिव्यपुष्प) ।
पारिलेयक । ७९ । में १०वाँ वर्षावास), १०३ (में रक्षित वनखंड), १०४, १०६ (भद्रशाल के नीचे) ।
पालों । ८६ (मूलत्रिपिटक) ।
पावा । ३७६, ४८१ (में निगंठ नातपुत्त का मरण), ४८७ (पडरौनाके पास पपउर, जि० गोरखपुर. में चुन्दकर्मारपुत्रका आम्रवन), ५३९ (से कुसीनारा ६ गव्यूति, ३/४ योजन), ५४६ (के मल्ल क्षत्रिय) ।
पाचेयक । ५६२ (पश्चिमवाले देश) ।
पापाणक चैत्य । (गिर्यक्)।३८४(मगधमें)।
पिंगिय । माणवक । ३८४ (प्रश्न) ।
भारद्वाज-पिंडोल-। ८२, ८३ (प्रातिहार्य-प्रदर्शन), ४६९, (जन्म—मगध, राजगृह, ब्राह्मण) ।
पिप्पली । ४२, ४४ (महाकाश्यप) ।
पिप्पलीवन । (वर्तमान पिपरिया, रमपुरवाके पास, स्टेशन नरकटिया-गंज B. N. W. Ry., जि. चंपारन), ५४६ (के मौर्य-क्षत्रिय) ।
पियदस्सी । ५४७, (अशोक) ।
पियदास । ५४७ (=पियदस्सी=अशोक)।
पिलिन्दि वत्स्य । ४७० (कोसल, श्रावस्ती, ब्राह्मण) ।
पिलोतिक परिव्राजक । १७० (वात्स्यायन, श्रावस्ती) ।
पुक्कसकुल । १८२ (नीचकुल) ।
पुक्कुस मल्लपुत्त । ५३९ (आलार कालाम का शिष्य) ।
पुक्कसाति । २१० (के प्रत्युद्गमनमें ४९ योजन) ।
पुण्णक । माणवक । ३७८ (प्रश्न) ।
पुण्णक श्रेष्ठी । १९२ । बिंबसारके राज्यमें) ।
पुनर्वसु । २५४, (अश्वजितका साथी, कीटागिरिवासी), २५५ ।
पुराण (स्थविर) । ५५२ (का संगीतिके पाठ को न मानना) ।
पुराणस्थपति । ४०६ (प्रसेनजितका हाथीवान्), ४७९ ।
पुष्य (स्थविर) । ५७६ (सिंहल) ।
पूरण । १९२ (मेंडकका दास) ।
पूर्ण । ३७५ (बावरि-शिष्य) ।
पूर्ण । ४०२–४०३ (आयुष्मान्) ।
पूर्ण काश्यप । ४६० (तीर्थंकर), ४६२ (अक्रियवादी), ५४० (संघी) (देखो काश्यप, पूर्ण-) ।
पूर्णजित् । २७, २८ (भिक्षु, यश-सहाय) ।
पूर्णमैत्रायणीपुत्र । ४४४ (धर्म-कथिक), ४६९ (जन्म शाक्यदेश, कपिलवस्तुके पास द्रोणवस्तु-ग्राम, ब्राह्मण) ।
पूर्णवर्द्धन । ३२६ (विशाखाका पति मृगारका पुत्र) ।
पूर्णा । १४–१५ (सुजाताकी दासी) ।
पूर्वाराम—३३८-३४० (निर्माण), ३३९ (हस्थिनख पासाद), ३४० (मौद्गल्यायन तत्त्वावधायक), ३४९ (में भगवान् का प्रथम वर्षावास) ४१० (देखो श्रावस्ती) ।
पोक्खरसाति (ब्राह्मण) । २०३ (उक्कट्ठावासी), २१० (इच्छानंगल समीप), २११ (जीवनी) ।
पोट्ठपाद । १८९-९८ (को उपदेश), १९३ ।
पोतलिय (गृहपति) । ५६-६१ (आपण, अंगुत्तराप, को उपदेश) ।
पोसाल । ३७५ (बावरि-शिष्य), ३८३ (प्रश्न) ।

पौष्करसाति । २१८ (जीवनी) । २२३ (शरणागत), २३४ (बुद्धशरणागत) (देखो पोक्खरसाति) ।

प्रकरण, सात-। (अभिधम्म, ५७६, देखो अभिधर्म-पिटक) ।

प्रकुधकात्यायन । [पकुधकच्चायन ४तीर्थंकर], ८२ ९१, ९२, (गणाचार्य तीर्थंकर ५), (देखो पकुध कच्चायन), (श्रावकोंमें असत्कृत), २६६, ५६२ ।

प्रजापति । २०६, (वैदिक देवता) ।

प्रजापती गौतमी महा—।७६ (दुस्सदान), ७८, (प्रव्रज्या-याचना), ७९ (आठ गुरुधर्म), ८० (प्रव्रज्या) १०७ ।

प्रतिष्ठान । [पतिट्ठान], ३७५, (अलक-माहिष्मतीके बीच) ।

प्रत्यन्तदेश । १ (सीमान्तदेश) ।

प्रद्योत, चंड—।४८,४९,(कांचनवन विहार), ३०३-३०४ (पांडुरोगी, जीवककी चिकित्सा), ३०५ (जीवकको वर), ४३२ (उदयनको पकड़ना, कन्या-विवाह) ।

प्रपात-पर्वत । ३९४ (कुररघर अवंतीमें) ।

प्रयाग प्रतिष्ठान । [पयाग-पतिट्ठान] १४४ (इलाहाबाद) ।

प्रसेनजित् । कोसल । ८५, ९१, ९२ (परीक्षण, उपासक), १५३ (बिंबसारका भगिनी-पति) (पौष्करसातिका ग्राम-दायक), २१९–२१ (उपासक), २३३, २३४ (शरणागत); ३०७ (का भाई काशिराज), ३२७ (कोसलराज विशाखाके ब्याहमें), ३७३ (अभिषेक, बावरि विद्यागुरु) (कोसलराजका, न्याय)३६१(अंगुलिमाल डाकू), ३६७, ३६९ (–सेवक), ३८८ (राजकारामनिर्माण), ३९३ (मल्लिकाके कन्या उत्पन्न होनेसे खिन्न), ३९७ (जटिल, परिव्राजक आदिकी प्रशंसा), ३९० मल्लिकाको ताना), ४०१ (कन्या वजिरी, रानी वासभखत्तिया, पुत्र विडूडभ, काशिकोसल-अधिपति), ४२३ (उज्ञुकामें विडूडभके साथ), ४३५, ४४१-४२ (आनन्दसे उपदेश-श्रवण), ४३९ (अजातशत्रुसे पराजित), ४४० (विजयी), ४७३-७६ (शिक्षा, राज्यप्राप्ति बंधुलमल्लको मरवाना, कारायणका विश्वासघात), ४७७-८० (भगवान्में प्रेम) ।

प्राकरणिक, सप्त—। ८९ ।

प्राचीनक । ५६२ (पूर्ववाले देश) ।

प्राचीन वंशदाव । (देखो दाव, प्राचीन-वंश–), २३० (में जंतुग्राम) ।

प्रातिहार्य, देवावरोहण-।८९(संकाश्यमें)।

प्रातिहार्य, यमक-। ८६, ८८, ९० ।

प्रावारिक आम्रवन । (देखो नालंदा) ।

प्लक्षगुहा । २६० (कौशाम्बीके पास, पभोसा पहाड़में) ।

फुस्स (पुष्य) देव । ५७६ (सिंहल स्थविर) ।

बनारस । (देखो वाराणसी) ।

बनारसी वस्त्र । ५०७ ।

बंधुलमल्ल । ४७३-७५ (प्रसेनजित्का सहपाठी और कोसलसेनापति, राजाज्ञासे शिरच्छेद) ।

बालक लोणकारगाम । ९९, (कौशाम्बी से पारिलेय्यकके रास्तेमें) ।

बालुकाराम । ५६४ (वैशालीमें) ।

बावरि । ब्राह्मण । ३७५, (के शिष्य १६— अजित्, तिष्य मैत्रेय, पूर्ण, मैत्रगू, धवनक, उपशिव, नन्द, हेमक, तोदेय्यकप्प, दूभय,

जातुकर्णी, भद्रायुध, उदय, पोसाल, मोघराज, पैंग्य), ३७३-३७७, (प्रसेनजित्का पुरोहित-गुरु, पतिट्ठानमें) ।

बिंबसार । १३ (प्रथमदर्शन), ३५ (मागध श्रेणिक), ३६ (उपासक), ३७ (वेणुवनदान), ६८, ६९, ८३ (प्रातिहार्य), ८४ (तीनसौ योजन बड़े, अङ्ग-मगधका राजा) । १५३ (प्रसेनजित्का भगिनीपति), २३१ (बुद्धके साथ सुख-विहारी), २३२ (कुटदंतका ग्राम-दायक), २३३, २३४ (शरणागत), २५३ (शरणागत), २९७, ३०० (भगंदर रोग), ३०९-३११ (अभिषेकके वक्तकी प्रतिज्ञा), ३२९, ४३९ (श्वसुर, महाकोसल), ४६० (मृत्यु), ४६८ (अजातशत्रुका मारना स्वीकार) ।

बुद्ध । ४९७(हाजिर-जवाबी), ३८९ (मुंडक), ३३८ (रोगि-सुश्रूषा), २८५, ५७४ (विभज्यवादी), २६७ (श्रावकोंसे सत्कृत), ५४१ (अन्तिमवचन); [का साम्यवाद—७७ (संघवादी), २५४ (अविभाज्य), ५२५ (सहभोग)], ४१० (शरीरमें जराचिह्न), ४८२, ५३३ (के साक्षात्कृत ८ धर्म), २४३(प्रशंसा) ।

बुद्धदाढा । ५४६ ।

बुद्धनिर्वाणकाल । ५६९, ५७७ (अजातशत्रुके आठवें वर्षमें)।

बुद्धस्तूप । ५४६ ।

बुद्धघोष । (आचार्य, अट्ठकथाओंके रचयिता) ।

बुद्धरक्षित । ५७६ (सिंहल स्थविर) ।

बुली । ५४५ (अल्लकप्पके), ५४६ (बुद्ध-धातुमें भाग) ।

बेठदीपक ब्राह्मण । ४४५, ४४६ (बुद्ध धातु मांगना) ।

बोधगया । ५३७ (गयासे ७ मील दक्खिन, देखो उरुवेला) ।

बोधिमंड । १९ (बोधगया मंदिरका हाता) ।

बोधि-राजकुमार । ४१२-२२ (भर्गमें, सुंसुमार गिरिमें), ४२२ (प्रद्योतका दौहित्र, उदयनका पुत्र) ।

बोधिवृक्ष । १९ (बोधगयामें), १७, १९ (उरुवेलामें, नेरंजराके तीर), ५७९ ।

ब्रह्मकायिक । २५३ (देवता) ।

ब्रह्मचर्य ब्राह्मण । २०४ ।

ब्रह्मदत्त । ५५० (सुप्रिय परिव्राजकका शिष्य, बुद्ध-प्रशंसक) ।

ब्रह्मलोक । २०८ ।

ब्रह्मलोकगामिनी प्रतिपद् । २०८ ।

ब्रह्मा । २०४, २०५, २०७ (गुण), २०६ (की सलोकता) ।

ब्रह्मा, महा-। ३, ८९, (देवावरोहण), ९० (छत्रधारी) ।

ब्रह्मा सहापति । १९, २० ।

भंडगाम । ५३३, ५३४ (वैशालीसे कुसीनाराके रास्तेपर प्रथम पड़ाव) ।

भद्दसाल । ५७७ (ताम्रपर्णिद्वीपमें प्रचारक)।

भद्रायुध माणव । ३८२ (प्रश्न) ।

भद्दिय । (पंच-वर्गीय) । २५ (उपसंपदा) । १३९ (श्रेष्ठि-पुत्र), ३३५ (आनन्दके साथ प्रव्रजित), ४६९ (कालिगोधापुत्त, शाक्य, कपिलवस्तु, क्षत्रिय) ।

भद्दिय, लकुण्टक-। ४६९ (जन्म कोसल, श्रावस्ती, धनीकुल) । ६० (शाक्यराज), ६१ (अनूपियामें), ६२, ६३ (प्रव्रज्या, अहोसुख) ।

भद्दिया । १५१, १५२-१५४ मुंगेर, (में जातियावन) ३३९ ।

भद्रकल्प । १४१ (में सात बुद्ध) ।

भद्रवतिका । ३०४ (प्रद्योतकी हथिनी)
भद्रवर्गीय । (तीस) । ३० (की प्रव्रज्या) ।
भद्रा कात्यायनी । ४७१, (शाक्य, कपिलवस्तु, राहुलमाता, सुप्रबुद्धशाक्य-पुत्री)
भद्रा कापिलायनी । ४१ (महाकाश्यपकी पूर्व-भार्या), ४२,४३,४४ (सौंदर्य), ४७१ (जन्म मद्रदेश, शाकला, महाकाश्यप-भार्या) ।
भद्रा कुंडलकेशा । ४७१ (मगध, राजगृह, श्रेष्ठिकुल) ।
भद्रायुध । ३७५ (बावरि-शिष्य) ।
भरंडु कालाम । २५० (कपिलवस्तुमें भगवान् का पूर्व गुरुभाई), २५१ ।
भरद्वाज । १९७ (मन्त्रकर्ता, ऋषि), २०४, २१८, २२४ ।
भर्ग [भग्ग] देश । ९३ (जिसमें सुंसुमारगिरि) ४१२, ४७२ ।
भल्लिक । १८ (तपस्सुका भाई, उरुवेलामें), १९ (उपासक), ४७० (जन्म—असितंजन नगर कुटुंबिकगेह) ।
भारद्वाज । कापथिक-। २२४-२२७ (ओपसादमें) ।
भारद्वाज । माणवक । २०३ (तारुक्ख-शिष्य, इच्छानंगलवासी, मनसाकटमें),२०४, २०९ (उपासक) ।
भारद्वाज, सुंदरिका- । ३८९-९१, ३९१ (अर्हत्) ।
भृगु । ६१ (अनूपियामें-प्रव्रजित) ६३ (नलकपानमें), ९९ (बालकलोणकार-गाममें) १६७,(मंत्रकर्ता ऋषि), २०४, २१८, २२४ ।
भेसकलावन । ४१२ (सुंसुमारगिरिमें), ४२१, (देखो सुंसुमारगिरि) ।
भोगनगर । ३७६,५३४ (वैशालीमें कुसीनारा के रास्तेपर दूसरा पड़ाव,में आनंदचैत्य) ।
भोज । ९ (देवदत्त) ।
मक्खलीगोसाल । (मस्करीगोशाल) । ८२, ९१, ९२ (तीर्थंकर), २६५ (श्रावकोंसे असत्कृत), २६५ (आजीवकोंके तीन निर्याताओंमें), २६६, ४६०, ४६२, (अहेतुवादी), ५४० ।
मखादेव । राजा । ४०४ (मिथिलाका धर्मराजा) ।
मखादेव आम्रवन । ४०४ (मिथिलामें)
मगध । (देश) । १९, ३१ (में उरुवेला), ३९, ४१, ४२ (में महातीर्थ-ग्राम। ५० (में गिरिव्रज), ५५, २३२ (में खाणुमत ब्राह्मण-ग्राम), २४५ (के ब्राह्मणदूत वैशालीमें), ३८४ (में पाषाणक-चैत्य), ४०७ (पटना, गया जिले, हजारीबागका कुछ भाग), ४६९-७० (में राजगृह, उपतिष्यग्राम, कोलितग्राम, महातीर्थ-ग्राम), ४७० नालकग्राम । ४७२ मच्छिकासंड । ४७२ (में उरुवेला सेनानी ग्राम) । (में ४७२ वेलुकंटकी नगरमें) ।
मगध-अंग । ८४ (३०० योजन) ।
मगधनाली । (=१ सेर) । ४२, ४३ ।
मगधपुर । ३७९ राजगृह ।
मगधमहामात्य । ३०९ (वर्षकार ब्राह्मण), ३१०,५२०,५२७ (सुनीथ, वर्षकार) ।
मंकुलकाराम । ४०३ (सूनापरांतमें) ।
मंकुल पर्वत । ७५, ८२ (छठ वर्षावास) ।
मच्छिका संड । (मगधमें) । ४७२ (में चित्त गहपति) ।
मज्झिमनिकाय । (देखो ग्रंथसूची) ।
मणिचूड़कग्रामणी । ५५७ ।
मंडिस्स परिव्राजक । २४७ (कौशाम्बीमें)
मथुरा । (मधुरा) १३७ ।
मद्दकुच्छि मिगदाय । [=मद्रकुक्षि मृग-दाव] ४२१, ५३३ (राजगृहमें) ।

मद्रदेश। ४१ (स्त्रियोंका आगार), ४७१ (में शाकला = सागल)।
मध्यदेश। १ (सीमा)।
मध्यम जनपद। १८८ (कोसी-कुरुक्षेत्र, विंध्य-हिमालयके बीचका देश, यही मध्यदेश, मध्यमंडल भी)।
मध्यमंडल। १४४ (६०० योजन)।
मध्यम-स्थविर। ५७७ (हिमवान्में प्रचारक)।
मध्यांतिक स्थविर। ५७२ (महेन्द्र स्थविरके उपसंपदाचार्य), ५७६ (कश्मीर-गंधारमें प्रचारक)।
मनसाकट। २०३ (कोसलमें अचिरवतीके दक्षिण किनारे), २०८।
मंत्री। ५ (दैवज्ञ)।
मंदाकिनी। (दह)। १९६।
मन्दार पुष्प। ११ (दिव्य पुष्प)।
मंदिर। ३७६ (कुसीनारा और पावाके बीच)।
मल्ल। ९९ (में अनूपिया)। ४८७ (में पावा)। ५४६ (में, पावामें बुद्धधातु-स्तूप)। ४०६ (कोसलकी सीमा पर, गोरखपुर सारन जिलोंके अधिकांश भाग)। ४७० (अनूपिया)। १६७ (में कुसीनारा)। ५३८ (का वाशिष्ट गोत्र)। ५४५, ५४६ (कुसीनारा)। १६७ (वर्तमान सैंथवार जाति)।
मल्लपुत्र, द्रव्य-। ४७० (मल्ल, अनूपिया-नगर, क्षत्रियकुल)।
मल्लिका। ३९३ (रानीको कन्या उत्पत्ति)। ३९९ (बुद्धमें अनन्य प्रसन्न)। ४७५ (बन्धुल सेनापतिकी भार्या)।
मल्लिकाराम। (देखो तिंदुकाचीर)।
महर्द्धि। २०६ (देवता)।
महाकोसल। ४३९ (प्रसेनजित्का पिता, बिंबसारका श्वसुर)।
महातीर्थ [महातित्थ]। ४१ (मगधमें, महाकाश्यपका जन्मग्राम), ४६१।
महादेव स्थविर। ५७२ (महेन्द्रके आचार्य)। ५७६ (महिसक मंडलमें प्रचारक)।
महानाम। (पंच-वर्गीय)। २५ (अर्हत्व)।
महानाम शाक्य। ५९ (अनुरुद्धका भाई)। २२८, २३१, २९०, २९१, २९२, ४७२ (शाक्य, कपिलवस्तु, आ० अनुरुद्धका ज्येष्ठ भ्राता), ४७२, ४७४ (की दासी-पुत्री वासभ खत्तिया, प्रसेनजित्की महिषी, विडूडभकी माता)।
महापुरुषलक्षण। १८० (सामुद्रिक)।
महाबोधिवृक्ष। ३ (बोध-गया, जि० गया)।
महामंडल। १४४ (९०० योजन का)।
महारक्षित। ५७७ (योनकलोकमें प्रचारक)।
महाराजिक, चातुर्-। ३, १९, २९३ (४, देवता)।
महाराष्ट्र। ५७७ (में महाधर्मरक्षित प्रचारक)।
महालि। २४९-४८ (ओट्टद्धलिच्छवी) ४७३ (लिच्छवी-कुमार-प्रसेनजित्, बंधुलमल्लका सहपाठी, वैशालीमें आचार्य)।
महावग्ग। (देखो ग्रंथ-सूची)।
महावन कूटागारशाला। ७१ (बखरा, जि० मुजफ्फरपुर), २४९,२४८ (वैशाली में), ५३३।
महाविजित राजा। २३४-२३८।
महाशाल-मालक। ८८ (देवलोकमें एक बंगला)।
महासीव। ५७६ (सिंहल-स्थविर)।
महिसक मण्डल। ५७६ महेश्वरके आस पासका, विंध्या-सतपुड़ाके बीचका देश)।
मही। (गंडकी)। १९६ (उद्गम)।

महेन्द्रकुमार । ९७१ (अशोक-पुत्र), ९७२ (उपाध्याय मोग्गलिपुत्ततिस्स, आचार्य महादेव, उपसंपदाचार्य मध्यांतिक), ९७६ (ताम्रपर्णीमें प्रचारार्थ, पाटलिपुत्रसे दक्षिणागिरि, विदिशा हो, उत्पत्ति उज्जैनमें), ९७८, ९९९ (अशोकके अभिषेकके अठारहवें वर्षमें लंकामें) ।
मार्गंदिय ब्राह्मण । ११९-११६ (संवाद, अर्हत्त्व),
मातंगारण्य । ४४९ ।
मातली । (देवपुत्र) ९० ।
मातुगिरि । ४०३ सूनापरांतमें ।
मायादेवी ,महा—। १,८८(तुषितसे त्रयस्त्रिंश), ९०, ९४७ (की मूर्ति) ।
मारकन्यायें । ११६ ।
मारघोषणा । १६ ।
मारयुद्ध । १६
मार-वंचना । ११३, ११४ ।
मार वशर्तीदेव । ११ ।
मारलोक । ३१७ ।
मार । (शिलावतीमें) २९३ ।
मारसेना । १६ ।
मापक-रूप । ९९६ (सिक्का, मासाभर का) ।
माहिष्मती । ९७९ (महेश्वर, इंदौर राज्य) ।
मिगव [मृगयु] । ३९७ (थुलकोट्टितवासी राजमाली) ।
मिथिला । ४०४ (मखादेव आश्रममें भगवान्), ४०४ (विदेहमें) ।
मिश्रकपर्वत । (=चैत्त्यपर्वत) । ९७७ अनुराधपुरसे पूर्व) । ९७८ (अम्बत्थल, मिहिंतले, सीलोन) ।
मुकुटबंधनचैत्य । ९४९ (कुसीनारामें), ९४६ ।
मुचलिन्द नागराज । १८ ।
मुचलिन्दवृक्ष । १८ (बोधिमंडपर) ।
मुटसीव । ९७८ (सिंहलनृप) ।
मुंड । राजा । ९७८ (अनुरुद्धपुत्र, मगधनृप)
मुंडक, महा—। ४६१ (उदयका पुत्र और घातक) ।
मृगदाव, कण्णत्थलक—। ४२३ (उजुकामें) ।
मृगदाव, भेसकलावन—। ९३ (सुंसुमार गिरिमें), ४१२, ४२१ ।
मृगलंडिक समण-कुत्तक । ३१७-३१८ ।
मृगारश्रेष्ठी । ३२६ (श्रावस्तीका श्रेष्ठी), ३२८, ३२९, ३८७ ।
मेत्रिय । २९४-९६ (उपस्थाक, स्वच्छन्दता), ३३९ ।
मेंडकगृहपति । १९१-९२, (भद्दियावासी), १९३ ९४, ३२६ (धनंजयका पिता) ।
मेतलूप । [मेतलुंप]। ४७३ (शाक्य-देशमें), ४७७ (नगरकसे ३ योजन) ।
मेत्तगु, माणवक । ३७९ (प्रश्न) ।
मेध्यारण्य । ४४९ ।
मैत्रगू । ३७९ (बावरि-शिष्य) ।
मैत्रायणीपुत्र, पूर्ण-(देखो पूर्ण मैत्रायणीपुत्र ।) (=मंतानी-पुत्त), ३३९ (आनन्दके गुरु) ।
मोग्गलान । (देखो मौद्गल्यायन) । २९४ (से आश्वजित् पुनर्वसुका द्वेष) ।
मोग्गलिपुत्त तिस्स । [मौद्गलिपुत्र तिष्य]। ९६८ (सिग्गवसे प्रश्नोत्तर), ९६९, (अशोकके गुरु, महिंदके भी), ९७१, ९७२ (महेन्द्रके उपाध्याय, अहोगंगपर्वतपर), ९७३ (आह्वान), ९७४ (उस समय वृद्ध), ९७५ (कथावत्थुप्पकरण-निर्माण), ९७६ (सिग्गवशिष्य) ।
मोघराज । (बावरि-शिष्य), ३७९ ।

मोघराज, माणवक । ३८३ (प्रश्न) ।
मोरिय । (देखो मौर्य) ।
मौद्गलि-ब्राह्मण । ५५७ ।
मौद्गल्यायन । ३८, ३९ (सारिपुत्रसे सुन, उपसंपदा), ५६,५८ (राहुलके काषाय-दाता), ८२ (चंदनगांठ), ८७, ८८ (धर्मोपदेश करते रहना), ८९, १०७ (कोसंबकलह), १०७ (१२ प्र. शिष्योंमें द्वितीय), ३३६ (उपस्थाकपद-याचना), ३४०(पूर्वाराम-निर्माणके तत्त्वावधायक), ४०९, ४२९ (देवदत्तके महंताई मांगनेके समय), ४३३ (देवदत्तके पास), ४३४, ४४४ (महर्द्धिक), ४६० (देवदत्तकी परिषद् फोड़ना), ४६९ (जन्म—मगधमें राजगृहके पास कोलितग्राममें), ४७३ (अग्रश्रावक), ५१८ (का परिनिर्वाण वधद्वारा अगहन कृ. १५ को), ५१९ ।
मौर्य । ५४६ (पिप्पलीवनके क्षत्रिय, बुद्धधातु-प्राप्ति) ।
यमदग्नि [यमतग्गि] । १६७ (मंत्रकर्ता ऋषि), २०४, २१८, २२४ ।
यमुना नदी । १५६ (उद्गम) ।
यवन (देश) । १८१ (रूसी तुर्किस्तान या यूनान । देखो योन) ।
यश (वाराणसी) । २५, २६ (अर्हत्त्व) २७, २८ ।
यश-पिता (श्रेष्ठी) । २५, २६ (उपासक) ।
यश-माता । २७ (उपासिका) ।
यश काकंड-पुत्त । ५५९ (भिक्षु), ५५६-५५८ (वैशालीमें अविनय रोकना), ५६३ (पावेयकके प्रतिनिधि)५७५ ।
याम (देवता) २५३ ।
युगंधर । ११ (पर्वत), ८७ ।
योनक धर्म-रक्षित । ५७७ (अपरांतमें प्रचारक) ।
योन-कलोक । ५०७(वाह्लीक, सिरिया, मिश्र, यूनान आदिमें महारक्षित धर्म प्रचारक)।
रक्षित वन-खंड । (देखो पारिलेय्यक) ।
रक्षित (स्थविर) । ५७६ (वनवासीमें प्रचारक) ।
रथकार । १८२ (नीचकुल) ।
रथकारदह । १५६ (हिमालयमें) ।
राग । ११६ (मार-कन्या) ।
राजकाराम । ३८८ (श्रावस्तीमें) ।
राजगृह । १३ (अनूपियासे ३० योजन), ३५, ३८, ४४, ४५, ४६, ५३, ५४ (वेणुवन), ६५, ७५, ७१, ७५ (द्वितीय चतुर्थ वर्षावास) ८२, ८४ । ५५, ६५, ६८ सीतवनमें अनाथपिंडक) । ८२, ८३ (श्रेष्ठीकी चन्दन-गांठ) । ९३ (में गिरग्ग समज्जा) । ६५ (अंबलट्ठिका) । ६८ (शिव-द्वार) । ७५ (द्वितीय, चतुर्थ, १७वां, २०वां वर्षावास) । २३० (में गृध्रकूट, ऋषिगिरि, कालशिला) । २६५ (में १७वां वर्षावास, वेणुवन) । २६५ (मार-निवाप, परिव्राजकाराम) । २८०-८९ (वेणुवन) । ३०१ (श्रेष्ठी, नैगम), ३०८, ४२८, ४४५ (वेणुवन), ४३१ (नालागिरि हाथी) । ४४४, ५२०, ५२५ (गृध्रकूट); ४५९, ४६१ (जीवकका आम्रवन, नगर और गृध्रकूटके बीच), ४६१ (में ३२ द्वार, ६४ छोटे द्वार), ४६९-४७२ (में उत्पन्न महा-श्रावक—पिंडोल भारद्वाज, चुल्ल-पंथक, महापथक, कुमार काश्यप, राध, धम्मदिन्ना, शृगालमाता, जीवक कौमार भृत्य, उत्तरा नन्द-माता), ४७६, ४८० (में नगरसे बाहर प्रसेनजित्की मृत्यु), ५२२, ५३३ (में गृध्रकूट, चोर प्रपात, वैभारगिरिकी बगलमें कालशिला,

सीतवनमें सर्पशौंडिकपब्भार, तपोदाराम, वेणुवन, जीवकम्ववन, मद्रकुक्षि मृगदाव), ५३८ (महानगर), ५४६ (कुसीनारासे २५ योजन), ५४८ (में प्रथम संगीति), ५४९ (प्रथम पाराजिक, द्वि० पाराजिक, वेणुवन) ५५२, ५५७, ५५८ । ५४६ (बुद्धस्तूप) ५४६-४७ (पूर्व-दक्षिण भागमें धातु-निधान), ५६४, ५६५ (में सुत्त-विभंग), ५७७ (को घेरे दक्षिणागिरि) ।

राजगृहक श्रेष्ठी । ६८ (अनाथपिंडकका बहनोई) ।

राजन्य-कुल । १८२ (क्षत्रियसे पृथक्) ।

राजमाता-विहार-द्वार । ५३६ (अनुराधपुरमें) ।

राजागार । ५५० (अंबलट्ठिकामें राजगृह-नालन्दाके बीच) ।

राजागारक । ५२५ (अंबलट्ठिकामें) ।

राजायतन वृक्ष । १८ (बोधिमंडपर) ।

राध । (ब्राह्मण) । ५३ (सारिपुत्र-शिष्य) । ३३५ (बुद्ध-उपस्थाक), ४७१ (जन्म-मगध, राजगृह ब्राह्मण) । ४७१ ।

राम । ५ (दैवज्ञ) ।

रामग्राम । राज्य । ११ (शाक्योंके बाद कोलिय, उनके बाद यह), ५४६ (नागों से पूजित बुद्धधातु, जो पीछे लङ्का अनुराधपुरके चैत्यमें गई), ५४६ (के कोलिय क्षत्रिय) ।

राष्ट्रपाल । ३५२ (थुल्ल-कोट्ठितके अग्रकुलिकका पुत्र), ३५३ (प्रव्रज्यार्थ अनशन), ३५४ (अर्हत्व), ४७० (जन्म-कुरु, थुल्ल कोट्ठित, वैश्य) ।

राहु असुरेन्द्र । ५५७ (ग्रहण) ।

राहुल । ९ (जन्म एक सप्ताहके होनेपर अभिनिष्क्रमण), ५७ (सारिपुत्र-शिष्य), ५८ (के मौद्गल्यायन, काश्यप आचार्य), ५९, ६५-६७ (को उपदेश), १०७ (१२ श्रावकोंमें १२वें), १८५-८७ (भावना-लग्न), ४७० (जन्म—शाक्य, कपिलवस्तु, सिद्धार्थ-कुमारके पुत्र) ।

राहुलमातादेवी । ३, ७, ८, (देखो भद्रा-कात्यायनी), ५६, ५७ ।

रुद्रदाम । ३११ (का कहापण) ।

रेवत । ६३, (नलकपानमें), १०७ (१२में ९वें), ४०९ (जेतवनमें) ।

रेवत-खदिरवनिय । ४७० (मगध, नालक-ग्राम, सारिपुत्रके अनुज) ।

रेवतभिक्षु । ५५९-६०, (अहोगंग पर्वतपर, सोरेय्य, संकाश्य, कान्यकुब्ज, उदुम्बर, अग्गलपुर, और सहजातिमें), ५६१,५६२, ५६३—५६६ (द्वितीय संगीतिमें सुचतुर भिक्षु), ५६३ (पावेयकोंके प्रतिनिधि) ।

रेवत, कंखा— । ४७० (कोसल, श्रावस्ती, महाभोगकुलमें) ।

रोजमल्ल । १६७ (कुसीनारामें), १६८ (उपासक) ।

रोहण । ५७६ (सिंहल स्थविर) ।

रोहिणी नदी । २५१ (शाक्य-कोलियकी सीमा) ।

महापुरुष-लक्षण । २१० (=सामुद्रिक) ।

लखन । ५ (दैवज्ञ) ।

लटुकिका । २९२ (=चिड़िया) ।

लिच्छवी । ३१९ (गण-राजा), ४७९ (बंधुलसे युद्ध), ५२० (-वैभवशाली, गणराजा), ५२५ (५२५ वि. पू. में पतन), ५३०-५३१ (त्रयस्त्रिंशदेवोंकी भांति), ५४५-४६ (क्षत्रिय, धातु-प्राप्ति) ।

लुम्बिनी । (रुम्मिनदेई स्टेशन नोतनवा, B. N. W. Ry., नैपालकी तराई)

५३७ (दर्शनीयस्थान); २, ३ (कपिल-वस्तु देवदहके बीच) ।

लोकधातु, साहस्रिक-। ११ (सहस्रब्रह्मांड समुदाय) ।

लोकायत । १८० (शास्त्र) १२१० ।

लोहप्रासाद । ३९७ (अनुराधपुर, लंकामें) ।

वक्कली । स्थविर (कोसल, श्रावस्ती, ब्राह्मण) ।

वक्कुल । ७४१ (वत्स, कोशाम्बी, वैश्य) ।

वग्गुमुदा । ३१७ (वैशालीके पास) ३१९, ३२१, ५५० (नदी) ।

वंगीस-। ४७० (कोसल, श्रावस्ती, ब्राह्मण) ।

वच्छगोत्त-परिव्राजक । २४८—४९ (वैशालीमें) ।

वजिरीकुमारी । ४०१ (प्रसेनजित्की कन्या) ।

वज्जि-धर्म । ५२१ ।

वज्जिपुत्तके भिक्षु । ४३३ (५०० देव-दत्तके साथ चलेगये थे) ।

वज्जिपुत्तक । वैशालिक । ५५८, ५५९, ५६०, ५६३ ।

वज्जियमहित । (गृहपति) २८५ (चंपामें)

वज्रपाणि । २१४ (यक्ष) ।

वज्जी । देश । १४७, ३१२, ३१९ (में दुर्भिक्ष) । ४०७ (मल्लकी सीमापर, चंपारन, मुज़फ्फ़रपुर, ज़िले; दर्भंगा सारनके कुछ भाग) । ४७२ (में वैशाली, हस्तिग्राम) । ५१९ (में उक्काचेल), ५२० (के उच्छिन्न करनेका अजातशत्रुका इरादा), ५२१ (के राज्याधिकारी), ५२१ (का इंसाफ़) । ५२७ (को रोकनेके लिये पाटलिपुत्र नगर बसाना) ।

वट्टगामिनी । ५८० (सिंहलेश्वर) ।

वत्सदेश । ४७१, ४७२ (में कौशाम्बी) ।

वन-कौशाम्बी । ३५६ (कोशाम्बी और वि-दिशाके बीच) (बंसा, जि. सागर) ।

वनवासी । ५७६ (उत्तरीकनारा जिला) ।

वप्प । (पंचवर्गीय) २५ ।

वरुण, महा-। ५७० (न्यग्रोधश्रामणेर के गुरु, स्थविर) ।

वर्षकार ब्राह्मण । ३०९ (मगधमहामात्य), ३१७, ५२०, ५२३ (वज्जियोंका विनिश्चयमहामात्य), ५२८ ।

वर्षा-वलाहक । ८५ (देवपुत्र) ।

वशिष्ठ । २०४ (मंत्रकर्ता ऋषि), २१८, २२४ ।

वशवर्ती देव । ११ (मार) ।

वहुपुत्रक चैत्य । ४४, ४६ (नालंदा और राजगृहके बीच, सिलाव), ५३३ (वैशालीमें) ।

वातवलाहक । ८५ (देवपुत्र) ।

वात्स्यायन । १७०, (वच्छायन, पिलोतिक परिव्राजक) ।

वामक । १६७ (मंत्रकर्ता ऋषि), २०४ २१८, २२४ ।

वामदेव । १६७ (मंत्रकर्ता ऋषि) २०४; २१८, २२४ ।

वाराणसी । २१ (ऋषिपतन मृगदाव), २२, २३, २५, २९, ५५, ७५ (प्रथम वर्षावास), १४४ (पुराना बनारस राजघाट का किला), १४५ (गोयोगप्लक्ष), २७० (कपासके वस्त्र मशहूर), ३०३ (श्रेष्ठी) ३२५, ४७१ (में उरुवेल काश्यपका जन्म), ४७२ (में सुप्रिया), ५३८ (महानगर) ।

वाशिष्ठ । ५४३ (कुसीनाराके मल्ल), ५४३ ।

वाशिष्ठ । माणवक । २०३-९ (पोक्खरसातिका शिष्य, मनसाकटमें), २०९ (उपासक) ।

वाहिय दारुचीरिय । ४७० (वाहिय राष्ट्र = सतलज व्यासका द्वाबा) ।

वाहियराष्ट्र । ४७१ (वाहीक, सतलज, व्यासके बीचका प्रदेश) ।

वाहीक । ४४३ (देखो वाहिय) ।

वासभ-खत्तिया । ४७४ (महानाम शाक्यकी दासीपुत्री), ४०१ (प्रसेनजितकी रानी) ।

वासभगामिक । [वार्षभग्रामिक] । ५६३ (द्वि० संगीतिमें प्राचीनक-प्रतिनिधि) ।

विजयकुमार । ५७७ (ताम्रपर्णीका प्रथम राजा) ।

विडूडभ सेनापति । ४०१ (प्रसेनजित्का प्रियपुत्र), ४२४, ४२६, ४७३ (वासभखत्तियाका पुत्र), ४७५-७६ (पितासे राज्य छीनना शाक्य-घात, मरण), ४८० (पर अजातशत्रु चढाई करना चाहता था) ।

विदिशा । ३७६ (वेसनगर, भिलसा, ग्वालियर-राज्य), ५७७ (वेटिस) ।

विदेहदेश । ४०४ (में मिथिला) ।

विनयपिटक । में ग्रंथ—विभंग (पाराजिक, पाचित्ति), खंधक (महावग्ग, चुल्लवग्ग), परिवार । ५७६ (लङ्कामें) ।

विनयवस्तु । ५६५ (=खंधक) ।

विनयसंगीति । ५६६ (सप्त-शतिका) ।

विंदुसार राजा । ५६९ (के अशोक तिष्यकुमार आदि १०० पुत्र, ब्राह्मणभक्त), ५७० (का ज्येष्ठपुत्र सुमन), ५७८ (राज्यकाल) ।

विंध्याटवी । ५७८ (गयासे ताम्रलिप्तिके रास्तेमें) ।

विपश्यी [विपस्सी] । १४१ (भद्रकल्पके बुद्ध), १४२ ।

विमल । २७, २८ (यश-सहायक, भिक्षु) ।

विशाखा । १०८, १९२, ३२५, ३३२ (जन्म आदि), ३२६ (पिता साकेतका श्रेष्ठी), ३३२ (मृगारकी माता), ३३८-४० (पूर्वाराम-निर्माण), ४०८ (नातीका मरण गया), ४३५, ४७२ (कोसलमें श्रावस्ती, वैश्य) ।

विश्वकर्मा । ८ (देवपुत्र), ५४७ ।

विश्वभू [वेस्सभू] । १४१, १४२ (भद्रकल्पके बुद्ध) ।

विश्वामित्र । १६७ (मंत्र-कर्ता ऋषि), २१८, २२४ ।

वीजक । ३१५ (सुदिन्नका पुत्र) ।

वेणुकुल । १८२ नीचकुल ।

वेणुवन (राजगृहमें) । ३७ (बिंबसारका दान), ४० (सारिपुत्त मोग्गलानकी उपसंपदा), ४४ (में गंधकुटी), ४५, ४२८, ५३३ (देखो राजगृह), २८९ (कजंगलामें भी) ।

वेद । १८०, ५६८ (तीन), २२४ (में प्रक्षेप) ।

वेदिशगिरि । ५७७ (महेन्द्र-माताका बनवाया विहार, वर्तमान सांची) ।

वेरंजा । ७५ (में १२ वां वर्षावास), १३७ (में नलेरुपुचिमंद), १४१ (वर्षावास दुर्भिक्ष) ।

वेरंजक ब्राह्मण । २३७-४० (प्रश्नोत्तर उपासक), १४१ (वर्षावास-निमंत्रण), १४३ (विस्मरण), १४४ (दान) ।

वेलुकंटकी नगर । ४७३ (में उत्तरा नन्दमाता, मगध-देशमें) ।

वेलुवगामक । ५३१ (वैशालीके पास भगवान्का अन्तिम वर्षावास) ।

वैदेह मुनि । ४६ (आनन्द) ।

वैभारगिरि । ५३३ (राजगृहमें, जिसके पास कालशिला) ।

वैयाकरण । १८० ।

वैशाली । ७५ (५वीं वर्षा कूटागार-शाला) । ७८ (प्रजापती-प्रव्रज्या, महावनमें), ७१ (बसाढ, जि. मुजफ्फरपुर), ७२, ७५, ८०, ९३, १४४ (महावन), १४५,

३१२ (के नातिदूर कलन्दक ग्राम)। १४८, १४९, १५०, १५१ (भद्दियाको), २४५, २४८ (में एकपुंडरीक-परिव्राजकाराम), २९७ (समृद्धिशाली, में ७७७७ प्रासाद)। ३१२ (राजगृहसे। गौतमक-चैत्यमें त्रिचीवर-विधान), ३१७ (तृ. पाराजिक), ३१९ (च० पराजिक), ३७६, ४३३ (के वज्जिपुत्तक भिक्षु), ४७२ (का उग्रगृहपति), ४७५ (में अभिषेक-पुष्करिणी), ५२३ (का ५२५ वि. पू. में पतन), ५३० (अम्बपाली-वन), ५३२ (में चापालचैत्य), ५३३ (में सत्तम्बकचेतिय, बहुपुत्रक चैत्य, सारंदद ०, चापाल०), ५४५ (के लिच्छवि क्षत्रिय), ५५० (में तृ० चतुर्थ पाराजिक), ५५६ (में दशवस्तु), ५५६, ५५८, ५५९, ५६०, ५६२, ५६३, ५६४ (में वालुकाराम)।

व्यंजन। ३७६ (=लक्षण)।

शक्र, देवराज। १२ (चूड़ा-ग्रहण), ८५, ८६, ८७, ८९ (देवावतरणमें)।

शाकला। ४७१ (में खेमा और भद्रा कापिलायिनीका जन्म, मद्रदेश, स्यालकोट)।

शाक्य। ६१ (अभिमानी), ५५ (जाति), ७६, २१२ (चंड), २५१ (कोलियोंसे झगड़ा), ३७४ (इक्ष्वाकु-संतान), ५४५, ५४६ (बुद्धधातु मांगना)।

शाक्यदेश। ४६९-७२, (में कपिलवस्तु, द्रोणवस्तु, कुंडिया, देवदह)। २२८ (में कपिलवस्तु), ४७३ (में मेतलूप-निगम), ४८१ (में सामगाम)।

शाक्यपुत्रीय श्रमण। ५५१ (बौद्धभिक्षु), ५५४, ५५६-५५८।

शाक्य-राज्य। ११ (के आगे कोलियराज्य, फिर रामगाम)।

शाक्यवंश। ४७६ (का विनाश, विडूडभ द्वारा)।

शिक्षा। ६६८ (=अक्षर-प्रभेद)।

शिलावती। २९३ (सुह्ममें)।

शिव-द्वार। ६८ (राजगृहमें)।

शिवस्थविर। ५७६ (सिंहल)।

शिवि-देश। ३०५ (वर्तमान सीवी विलोचिस्तान, या शोरकोट पंजाबके आसपास का प्रदेश)।

शिशुनाग राजा। ५७७, ५७८ (राज्यकाल)।

शुद्धोदन-शाक्य। १, २, ४, १६, ५८ (को वर), ४१८ (पिता), ५४७ (की मूर्ति)।

शूद्रकुल। १८२ (नीचकुल नहीं)।

शूर अम्बष्ठ। ४७२ (कोसल श्रावस्ती, श्रेष्ठी)।

शृगाल-माता। ४७१ (मगध, राजगृह, श्रेष्ठिकुल)।

शोभित। ४७१ (कोसल, श्रावस्ती, ब्राह्मण)

शोभित, क्षुद्र-। ५६३ (द्वि. संगीतिमें, प्राचीनक-प्रतिनिधि)।

श्यामलता। ८ (पुष्प)।

श्रावस्ती। ३७६, ४७५, ५६४, ५६५, ५९४, ३७५ (कोसलमंदिर), २०३ (में जानुस्सोणि ब्राह्मण), ३७३ (उत्तरदेश में), ४७२ (में अनाथपिंडक, शूरअम्बष्ट, विशाखा), ४६९—७२ (में उत्पलवर्णा महाश्राविका)। ४६९ (लकुंटक-भद्दिय, सुभूति), ४७० (कंखारेवत, वक्कली, कुंडधान, वंगीस, पिलिंद वात्स्य, महाकोट्ठित, शोभित), ४७१ (नंदक, स्वागत, मोघराज, उत्पलवर्णा, पटाचारा, सोणा, सकुला, कृशागौतमी) (में जेतवन), ७५ (दान), ९१, १०६, १७० (वर्षावास), १७६, १८८, १८९,

१८७, १८९, ३२५, ३६१, ३६४, ३६७, ३८५, ३९१, ३९३, ३९४, ३९८, ४०२, ४०५, ४०६, ४०९, ४२७, ४३९—४१, ४६० (-पुष्करिणी), ५१७, ५५७ (दक्षिणद्वार महेटका बाजार-दर्वाजा)। ३९७ (पूर्वाराम मृगारमाताका प्रासाद, द्वारकोट्ठक, लोहप्रासादकी तरह), ४०८ (पूर्वाराम=हनुमनवां), ४१०, ४३४, ४४१, ५३८ (महानगर), ३८८ (में राजका राम), ५१३ (में वर्षावास), २९४ (से कीटागिरिको), ३९४ (को थूल-कोट्ठितसे)।
श्रेणिक। (देखो बिंबसार)।
श्रेष्ठी। (पद)। ७० (नेगमसे नीचे)।
श्रोत्रिय। १५ (घसियारा, बोधगयामें)।
सकुल-उदायी। २८०-२८४, २६५-७४ (परिव्राजक, राजगृह, मोरनिवापमें), २६५-२७४, २८०।
सकुला। ४२३ (सोमाकी बहिन प्रसेनजित् की रानी, उपासिका), ४२३।
सकुला। ४७१ (दिव्यचक्षुका, अग्र-महाश्रावकाम ४९वीं)।
संकाश्यनगर। ८९-९० (देवावतरण), १४४ (संकिसा बसंतपुर, जि. फरुखाबाद), ५५९।
संगीति। ५४८, ५५६, ५७५।
संगीति, तृतीय-। ५७५ (नवमासमें), ५७६।
संघमित्रा। (अशोकपुत्री भिक्षुनी), ५७२ (की उपाध्याया धर्मपाला थेरी, आचार्या आयुपाला), ५७९ (सिलोनमें अनुलादेवी शिष्या)।
सच्चबद्धपर्वत। ४०३ (सूनापरांतमें)।
संजय। ५०।
संजय परिव्राजक। ३८, ४०, (सारिपुत्र मोग्गलानका पूर्व-गुरु)।
संजय बेलट्ठपुत्त। (तीर्थंकर ५), ८२, ९१, ९२ (गणाचार्य तीर्थंकर), ४० (श्रावकोंसे असत्कृत), ४६०, ४६३ (अमराविक्षेपवादी), ५४० (संवी)।
संजिकापुत्र। ४१२, ४२१ (बोधिराजकुमारका मित्र, सुंसुमारगिरिवासी)।
सत्तंबक-चेतिय। ५३३ (वैशालीमें)।
सनत्कुमार (ब्रह्मा)। २१६ (की गाथा)।
संदक परिव्राजक। २६०-६५ (आनंदसे संवाद)।
सप्तशतिका। (विनयसंगीति)। ५६६।
समयप्पवादक। देखो तिंदुकाचीर।
समुद्रगिरि विहार। ४०३ (सूनापरांतमें)।
समुद्रदत्त। (देखो रुंडदेवी-पुत्र)।
संबल। ५७७ (ताम्रपर्णि-प्रचारक)।
संभूतसाणवासी। ५५८, ५६३ (पावेयक-प्रतिनिधि, द्वितीय-संगीतिमें)।
संयुत्त, उपोसथ-। (५६९), संयुत्त (संयुक्त)-निकायमें (देखो ग्रंथसूची)।
सरयू। १५६ (सरभू, घाघरा नदी)।
साल। १८२ (वृक्ष)।
सर्पशौंडिक-पब्भार। ५३३ (राजगृह, सातवनमें)।
सर्वकामी। ५६२-६५ (आनंदके शिष्य द्वितीय-संगीतमें संघ-स्थविर)।
सललवती। १ (मेदिनीपुर, हजारीबागके जिलेमें बहनेवाली सिलई, नदी), ३९७।
सहजातिय। ५५९ (भीटा, जि. इलाहाबाद)।
सहापति ब्रह्मा। १९, २०।
साकेत। २१९ (अयोध्या-राजगृह-तक्षशिला-केरास्तेपर), ३२६ (श्रावस्तीसे ७ योजन पर), ३७६, ५३८ (महानगर)।

सागलनगर। ४१ (स्यालकोट, मद्रदेशमें, देखो शाकला)।

साढ़। स्थविर। ६६१,६६३, (द्वि-संगीतिमें पाचीनक-प्रतिनिधि)।

साणवासी। (देखो संभूत साणवासी)।

साधुक। ४०६ (श्रावस्तीके पास कोई ग्राम)।

सामगाम। ४८१ (शाक्यदेशमें)।

सामावती। ४७२ (भद्रवतीराष्ट्र, भद्दिया-नगर, भद्रवतिक श्रेष्ठीकी पुत्री, उदयनकी महिषी)।

सारनाथ। (देखो ऋषिपतन)।

सारन्दद चैत्य। ५३३ (वैशालीमें), ५२२ (में, वज्जियोंको भगवान्‌का ७ अपरिहा-णीयधर्म-उपदेश)।

सारिपुत्र। ३८, ३९ (अश्वजित्‌का उपदेश), ४० (उपसंपदा), ५३ (कृतवेदी), ५६, ५७ (के राहुल शिष्य), ७२ (विनीत), ८८, ८९, ९० (कोअभिधर्मोपदेश),१०६ (कोसंबक-कलह), १०८ (१२ प्र. शिष्योंमें प्रथम), १४१ (शिक्षापदके लिये, याचना), १७६ (महाहत्थि-पद्दोपमका उपदेश), २५४ (से अश्व-जित् पुनर्वसुका द्वेष), ३३५, ३३६ (उपस्थाकपद-याचना, बुद्धों जैसा धर्मो-पदेश), ३८९। ४०५-६ (भगवान्‌का प्रश्नोत्तर), ४०९,४२९ (देवदत्तके महंताई मांगनेके समय)। ४३३, ४३४ (देवदत्तके पास), ४४४ (महाप्रज्ञ), ४६० (देवदत्तकी परिषद्‌का फोड़ना), ४६९ (जन्म—मगध देशमें राजगृहके पास उपतिष्यग्राम, वर्तमान सारीचक, वड़गांव, जि. पटना, ब्राह्मण), ४७३ (अग्रश्रावक), ४८१ (के भाई चुन्द समणुद्देस), ४८८ (का उपदेश पावामें), ५१२, ५१५। ५२५, ५२६ (के भगवान्‌के विषयमें उद्गार), ५१७, ५१८ (के निर्वाणपर भगवान्‌के उद्गार), ५१९ (का कीर्तिक-पूर्णिमाको निर्वाण), ५२७ (का श्रावस्तीमें धातु-चैत्य)।

सालवती। २९७ (राजगृहकी गणिका, जीवककी माता)।

सावित्री। १६५ (छन्दोंमें मुख्य)।

सिखी (शिखी)। १४१, १४२ (भद्रकल्पके बुद्ध)।

सिगाल। २७४-७९ (राजगृह-वासी गृह-पति)।

सिग्गव स्थविर। ५६७ (मोग्गलिपुत्तके गुरु), ५६८ (मोग्गलिपुत्तसे प्रश्नोत्तर), ५६९, ५७६ (सोणके शिष्य)।

सिद्धार्थकुमार। ५,७,८ (अभिनिष्क्रमण), ९ (कृशागोतमीको गुरुदक्षिणा), १३ (राजगृहमें), १६ (बोधिमंडमें), ५६ ५४७, देखो बुद्धभी।

सिनीसूर। [शुनासीर]। २१२ (इक्ष्वा-कुपुत्र, शाक्यपूर्वज)।

सिंधु। ७ (-देशीय घोड़े)।

सिंसपावन। ३५० (आलवीमें)।

सिंहकुमार। (विजयकुमारका पिता)।

सिंहप्पपातक (दह)। १५६ (हिमालयमें)।

सिंह श्रमणोद्देश। २४६ (वैशालीमें)।

सिंह सेनापति। १४८-५० (जैनसे बौद्ध)।

सीतवन। ६८ (में अनाथ-पिंडक), ५३३ (राजगृहमें, जहां सर्पशौंडिकपब्भार था)।

सीवली। ४७० (शाक्य, कुंडिया, कोलिय-दुहिता सुप्रवासाके पुत्र)।

सुजाता। (सेनानीदुहिता)। ४७२ (मगध, उरुवेला, सेनानीकुटुंबिककी पुत्री) १४, १९ (सेनानी-ग्राम-वासिनी)।

सुत्त, अक्खण-। (अं. नि.)। १८७—१८८ ।
सुत्त, अंगुलिमाल—। (म. नि.) ३६७—३७२ ।
सुत्त, अट्ठक-वग्गिक—। (सुत्त. नि.) ३७३—८४ ।
सुत्त, अत्तदीप—! (सं. नि.) ३९१ ।
सुत्त, अभयराजकुमार—। (म. नि.) ४५९ ।
सुत्त, अम्बट्ठ—। (दो. नि.) २१० ।
सुत्त, अंबलट्ठिकाराहुलोवाद—। (म. नि.) ६९ ।
सुत्त, असिबन्धक-पुत्त—। (सं. नि.) ११० ।
सुत्त । अस्सलायण-। (म नि) १८० ।
सुत्त । आदित्त परियाय—। (सं. नि.) ३४ ।
सुत्त । आनेञ्जसप्पाय—। (म. नि) ११८ ।
सुत्त । आलवक—। (अ.नि.) ३९० ।
सुत्त । इंदियभावना—। (म.नि.) २११ ।
सुत्त । उक्काचेल—(सं नि.) ५११ ।
सुत्त । उदान—। (सं. नि.) ३९१ ।
सुत्त । उदायि—। (सं.नि.) २९३ ।
सुत्त । उपालि—। १४९ ।
सुत्त । उपालि—। (म. नि.) ४४४ ।
सुत्त । एतदग्गवग्ग-। (अ. नि.) ४६९ ।
सुत्त । ओघतरण-। (५५५) ।
सुत्त । कजंगला—। (अ.नि.) २८९ ।
सुत्त । कण्णत्थलक-। (म.नि.) ४२३ ।
सुत्त । कस्सप—। (सं. नि.) ४९ ।
सुत्त । कीटागिरि—। (म.नि.) २५४ ।
सुत्त । कुटदंत—। (दी. नि.) २३२ ।
सुत्त । केसपुत्तिय—। (अ.नि.) ३४७ ।
सुत्त । (कोसम्बक)-(म. नि.) १८ ।
सुत्त । कोसल—। (अं. नि.) ४४० ।
सुत्त । चंकम—(सं नि.) ४४ ।
सुत्त । चंकि—(म. नि.) २२२ ।
सुत्त । चारिका—२९ (सं. नि.) ।
सुत्त । चित्तपरियादान—(५५५) ।
सुत्त । चूल अस्सपुर—(म नि.) २८६ ।
सुत्त । चूल दुक्खक्खंध—(म. नि.) २२८ ।
सुत्त । चूल-सकुलुदायि—(म. नि.) २८० ।
सुत्त । चूळहत्थिपदोपम-(म. नि.) १७० ।
सुत्त । जटिल—(सं. नि.) ३९७ ।
सुत्त । जटिल—(उदान) ४३९ ।
सुत्त । जरा—. सं. नि.) ४१० ।
सुत्त । तेविज्ज—(दी. नि.) २०३ ।
सुत्त । तेविज्जवच्छगोत्त—(म. नि.), २४८ ।
सुत्त । थपति—(सं. नि.), ४०६ ।
सुत्त । दक्खिणाविभंग—(म. नि), ७६ ।
सुत्त । दिट्ठि—(अ. नि.) २८९ ।
सुत्त । (देवदत्त)—(सं. नि.) ४२८ ।
सुत्त । देवदह—(म. नि.) ३४१-४६ ।
सुत्त । दोण—(अ. नि.) ३८९ ।
सुत्त । धम्मचेतिय-(म. नि.) ४७३ ।
सुत्त । नलकपान—(म. नि) ६३ ।
सुत्त । (निगंठ)—१११ (सं. नि.)
सुत्त-निपात—(देखो ग्रंथ-सूची) ।
सुत्त । पजापतीपब्बज्जा—(अ.नि.)७८ ।
सुत्त । पजापता—(अं. नि.) ८० ।
सुत्त । पब्बज्जा-१३ (सुत्तनिपात, मारवग्ग)।
सुत्त । पधानीय—(अं. नि.) ४०९ ।
सुत्तपारिलेयक—१०३ (उदान) ।
सुत्त-पिटक । ५५५,(में दीघनिकाय, मज्झिम० संयुत्त नि०, अंगुत्तर०, खुद्दक-निकाय—१. खुद्दकपाठ, २. धम्मपद, ३. उदान, ४. इति वुत्तक, ५. सुत्तनिपात, ६. विमानवत्थु, ७,

पेतवत्थु, ८. थेरगाथा, ९. थेरीगाथा, १०. जातक, ११. निद्देस, १२. पटिसंभिदा, १३. अपदान. १४. बुद्धवंस, १५. चरियापिटक) ।
सुत्त। पिंड—११३ (सं. नि.)
सुत्त। पियजातिक—(म. नि.)३९८ ।
सुत्त। पुण्ण—(सं. नि.) ४०२ ।
सुत्त । पोट्ठपाद—(दी. नि.) १८९ ।
सुत्त । पोतलिय—(म. नि.) १९६-१६१ ।
सुत्त । बोधिराजकुमार–(म. नि.) ४१२ ।
सुत्त । ब्रह्मजाल–। (५९०-५९९) ।
सुत्त । भरंडु-(अ. नि.) २५१ ।
सुत्त । मखादेव-(म. नि.) ४०४ ।
सुत्त । मल्लिका—(सं. नि.) ३९३ ।
सुत्त । महानाम—(अं. नि.) २०२ ।
सुत्त । महानिदान—११८-१२८ (दी. नि.) ।
सुत्त । महापरिनिब्बाण—(दी. नि.) ५२० ।
सुत्त । महराहुलोवाद—(म. नि.) १८९ ।
सुत्त । महालि—(दी. नि.) २४९ ।
सुत्त । महासकुलदायि—(म.नि)२६९ ।
सुत्त । महासतिपट्ठान—(दी.नि.)११८ ।
सुत्त । हत्थिपदोपम—(म. नि.) १७६ ।
सुत्त । मागंदिय—(सुत्त-नि.) ११९ । (म. नि.) ११८ ।
सुत्त । मूलपरियाय—५९९ ।
सुत्त । मेघिय—(उदान) २९४ ।
सुत्त । रट्ठपाल—(म. नि.) (११८), (म. नि.) ३९२ ।
सुत्त । रुक्खूपम—(म. नि.) ११८ ।
सुत्त । वाहीतिक—(म. नि.) ४४१ ।
सुत्त-विभङ्ग (=सुत्त-पिटक) ५६४, ५६५ ।
सुत्त । (विसाखा)—(उदान) ४०८, ४३३ ।
सुत्त । वेरंजक—(अ. नि.) १३७-१४० ।
सुत्त । सकलिक—(सं. नि.) ४३१ ।
सुत्त । संगाम—। (सं. नि.) ४३९ ।
सुत्त । संगीति-परियाय—। (दी. नि.), ४८७ ।
सुत्त । सतिपट्ठान—। (म.नि.).११८ ।
सुत्त । संदक— । (म.नि.) २६० ।
सुत्त । संबहुल—। (सं. नि.) २९३ ।
सुत्त । सहस्सभिक्खुनी—। (सं. नि.) ३८८-८९ ।
सुत्त । सामगाम—। (म. नि.) ४८२ ।
सुत्त । सामञ्ञफल—। (दी. नि.) ४९९, (५००) ।
सुत्त । सारिपुत्त—। (सं. नि.) ४०० ।
सुत्त । सारिपुत्त—। ११८ (म. नि.) ।
सुत्त । सिगालोवाद—। (दी. नि. ३:८) २७४ ।
सुत्त । सीह—। (अ. नि.) १४८ ।
सुत्त । सुनक ।·(अं. नि.) ३८९ ।
सुत्त । सुन्दरिका भरद्वाज । (सं. नि. सुत्तनि.) ३८९ ।
सुत्त । सुन्दरी—। (उदान) ३६१ ।
सुत्त । सेल । (म. नि.) १६२ ।
सुत्त । सोण—। (उदान) ३९४ ।
सुत्त । सोणदंड—। (दी.नि.) २४१-२४५ ।
सुत्त । हत्थक—। (अं.नि.) २५९ ।
सुत्त । हत्थिपदोपम—। (५७९) ।
सुदत्त । ६९ (देखो अनाथ-पिंडक), ५ (देवपुत्र ब्राह्मण) ।
सुदर्शन । ५३८ (चक्रवर्ती राजा) ।
सुदर्शनकूट । १९६ (अनवतप्तके पास) ।
सुदिन्न कलन्दपुत्त । १४५—४७ (प्रव्रज्या), ३१२ (वैशालीमें), ३१३—३१६, ५४९ (प्र० पाराजिक) ।
सुधर्मा । ४०४ (देवसभा) ।

सुनक्खत्त लिच्छवि-पुत्त । २४६ (तीन वर्ष तक भिक्षु रहा), ३३९ (बुद्ध-उपस्थाक) ।
सुनीध । ५२७, ५२८ (मगधमहामात्य) ।
सुंदरिका नदी । ३८९ (कोसलमें) ।
सुंदरी । ३६१—६३ (परिव्राजिका श्रावस्ती वासिनी, का बुद्धपर कलंक) ।
सुपर्ण । ११ (गरुड) ।
सुप्रबुद्धशाक्य । ४७१ (देवदहवासी, राहुल के मातामह) ।
सुप्रवासा कोलियधीता । ४७२ (शाक्य, कुंडिया, सीवलीकी माता) ।
सुप्रिय परिव्राजक । ५५० (बुद्ध-निंदक, ब्रह्मदत्तका गुरु) ।
सुप्रिया । ४७२ (काशी, वाराणसीमें), ३३९ (विशाखाकी दासी) ।
सुभूति । ४६९ (कोसल, श्रावस्ती, वैश्य) ।
सुभद्र । ५३९ (अंतिम प्रव्रजित शिष्य), ५४०, ५४१, ५४४ (वृद्ध-प्रव्रजित भिक्षु) ।
सुमन । ५६३ (द्वि०संगीतिमें, पावेयकप्रतिनिधि) ।
सुमन (३) । ५७६ (सिंहल, स्थविर) ।
सुमन (१), काल—। ५७६, (सिंहल स्थविर) ।
सुमन काल (२)—। ५७६ (सिंहल-स्थविर) ।
सुमनादेवी । १९२ (विशाखाकी माता), ५७० (सुमन युवराजकी देवी, न्यग्रोध-श्रामणेरकी माता) ।
सुमेरु पर्वत । ८७, ८९ ।
सुयाम । ३ (देवता), ९० (देवपुत्र) ।
सुयाम । ९ (दैवज्ञ ब्राह्मण) ।
सुवर्णभूमि । ५७७ (=पेगू, वर्मामें सोणक और उत्तर स्थविर प्रचारक) ।
सुबाहु । (यशमित्र भिक्षु), २७, २८ ।
सुवेणुवन [सुवेलुवन] । २९१ (कजंगला में) ।
सुंसुमारगिरि । ७८ (भर्गमें, के भेसकलावन में अष्टमवर्षा), ९३ (भेसकलावन), ४१२ (चुनार जि० मिर्जापुर), ४२७ । ४७२ (में नकुलपिता गृहपति, नकुलमाता गृहपत्नी) ।
सुह्म । २९३ (हजारीबाग, संथाल-पर्गना जिलोंका कितनाही अंश, जिसमें सिलावती, सेतकण्णिक निगम) ।
सूत-मागध । ८ ।
सेतकण्णिक । १ (हजारीबाग जिले में) । २९३ (सुह्ममें), ३९७ ।
सेतव्या । ३७६ (श्रावस्ती-कपिलवस्तुके बीचमें) ।
सेनानीग्राम । ४७२ (मगध, उरुवेलामें सुजाताकी जन्मभूमि), १४, ४१९ (निगम) ।
सेल । १६३—६६ (महापंडित), १६६ (अर्हत्व) ।
सोणक । ५७६ (दासकका शिष्य), ५७७ (सुवर्णभूमिमें प्रचारक) ।
सोण कुटिकण्ण । ३९४—९७ (महा कात्यायन-शिष्य, कुररघरमें), ३९६ (भगवान्के पास), ४७० (जन्म-अवंती, कुररघर, वैश्य) ।
सोण कोडिवीस । [स्वर्ण कोटिविंश] ४७० (अंग, चंपा, श्रेष्ठिकुल) ।
सोणदंड [=स्वर्णदंड] । २४१—२४९ ।
सोणा । ४७१ (कोसल, श्रावस्ती) ।
सोमा । ४२३ (प्रसेनजित्की रानी, सकुला की बहिन, उपासिका) ।
सोरेय्य । १४४ (सोरों, जि० एटा), ५५९ ।

सौत्रांतिक । ७३ (=सूत्रपाठी), ९७ ।
स्थविरवाद । ५७२, ५७६ (-परंपरा) ।
स्वागत । ३३५ (बुद्ध-उपस्थाक), ४७१ (कोसल, श्रावस्ती, ब्राह्मण) ।
हत्थकआलवक । (आलवीवासी) २५९, ३५० (=हस्तक आलवक कुमार भगवान्‌के पास), ४७२ [पंचाल, आलवी (अर्वल), राजकुमार], ४७३ (गृहस्थ अग्रश्रावक) ।
हस्तिग्राम । ४७२ (में उद्गत गृहपति, वज्जी-देशमें) ।
हास्तिनिक । [हत्थिनिक] । (इक्ष्वाकु - शाक्यपूर्वज) २१२ ।
हिमवान् । १९६ (पर्वत), ५७७ (देशमें मध्यम-स्थविर प्रचारक) ।
हिमालय । २१२ ।
हिरण्य । १५५ (सोनेका सिक्का), २११ (=अशर्फी), ५९६ ।
हेमक । माणव । (प्रश्न) ३८१, (बावरि-शिष्य) ३७५ ।
हिरण्यवती नदी । ५३६ (कुसीनाराके पास छोटीसी नदी) ।

शब्दानुक्रमणी ।

अकथंकथी । १९४ (विवादरहित) ।
अकनिष्ट । ४९९ (देवता) ।
अकालिक । १६९ (न कालांतरमें फलप्रद, सद्यः फलप्रद) ।
अकिंचन । ३७९ (परिग्रहरहित) ।
अकुशल धर्म । १७३ (=पाप) ।
अक्रियावाद । १३८, १४८, १४९ ।
अक्षण (८) । १८७, ८०९ (=असमय) ।
अक्षणवेध । ७ (धनुष-कला) ।
अक्षधूर्त । ३३९ (=जुवारी) ।
अक्षर-प्रभेद । ९६८ (शिक्षा, निरुक्त) ।
अगतिगमन (४) । ४९९ ।
अग्नि (३) । ४९० ।
अग्निपरिचरण । २१७ (=होम) ।
अग्निपरिचर्या । २१७ (तापसकर्म) ।
अग्निशाला । ३० (=पानी गर्म करनेका घर), ९२, ७१ ।
अग्निहोत्र । ३३ ।
अग्र । १९२ (=उत्तम), ४६९ (=श्रेष्ठ) ।
अग्र-पिंड । ७३ (सर्वश्रेष्ठको दातव्य प्रथम परोसा) ।
अग्रमहिषी । ७ (=पटरानी) ।
अग्रश्रावक । (देखो श्रावक, अग्र-) ।
अंकुशग्रहणशिल्प । ४१९ (हाथीवानी) ।
अंग । (=बात) ।
अंगण । १७४ (=मल) ।
अंगार । ५४६ (=कोइला) ।
अंगारका । १९१ (=भौर=अग्निचूर्ण) ।
अचेलक । १८७ (वस्त्र-रहित साधु) ।
अच्छन्न । २१२ (अयुक्त) ।
अट्ठि । ८९ (=आँठी, गुठली) ।
अतर्प्य । ४९० (देवलोक) ।
अति-आरब्ध-वीर्य । [अच्चारद्धवीरिय] । १०१ (अत्यधिक अभ्यास, समाधिविघ्न) ।
अतिचार । २७८ (परस्त्रीगमन) ।
अतिलीन वीर्य । [अतिलीन वीरिय] । १६१ (ढीला अभ्यास, समाधिविघ्न) ।
अतिथि । २३४ (पूजनीय) ।
अतिनिध्यायितत्व । [अतिनिज्झायितत्त] १०१ (अवश्यकतासे अधिक ध्यान, समाधिविघ्न) ।
अतिपात । १११ (मारना) ।
अतिमुक्तक । ८० (=मोतिया फूल) ।
अत्यय । ४३० (=अपराध, बीता) ।
अ-दशक । ९६० (=बिना किनारीका) ।
अ-दशक-कल्प । ९९६, ९६०, ९६९, (बिना किनारीके विस्तरका विधान) ।
अद्भुतधर्म । [अब्भुतधम्म] १४२ (बुद्ध-भाषित) ।
अधिकरण । १०६ (=झगड़ा), २२९, ९९८, ९६७ (=विवाद), २२९ (=वासस्थान, विषय), ४८३ (४ विवाद-,अनुवाद,आपत्ति-,कृत्य-) ।
अधिकरण-शमथ । ४८३(७-संमुख-विनय, स्मृति०, अमूढ०, प्रतिज्ञातकरण, यद्भूयसिक, तत्पापीयसिक, तिणवत्थारक), ५०९ ।
अधिकार । ३०९ (=उपकार) ।
अधिमान । ३२१ (=वस्तु पा लेने पर 'पा लिया' समझना, कहना) ।
अधिमुक्त । २७० (=मुक्त) ।
अधिमुक्ति । ४४४ (प्रकृति, चित्तवृत्ति) ।

अधिवचन । १३० (=नाम), १३१ (संज्ञा) ।
अधिष्ठान । ७१ (=देखरेख), २९३, ८९ (योगसम्बन्धी संकल्प), ५४७ (=दिव्यसंकल्प), ४९९ ।
अध्यवकाश । ४६१ (=खुली जगह) ।
अध्यवकाशिक । २८७ (सदा चौड़ेमें रहनेवाला साधु) ।
अध्यवसान । १२९ (=प्रयत्न) ।
अध्यात्म । १७३ (=अपनेमें), १७६ (=शरीरमेंका), १८९ (=शरीरके भीतर) ।
अध्यात्मिक । १७६ (शरीरमेंका) ।
अध्यायक । २१० (=पढ़नेवाला) ।
अध्येषणा । ५५९ (=आज्ञा) ।
अध्व (३) । ४९० (=काल) ।
अध्वगत । १३७ (=वृद्ध) ।
अध्वनिक । ४८८ (=चिरस्थायी) ।
अध्वनीय । १४२ (=चिरस्थायी) ।
अनग्नि-पक्किक । २१६ (तापस-व्रत) ।
अनन्यशरण । ५१८ (=अ-परावलंबी) ।
अनागामी । ७३, २७४ (पांच अवर-भागीयोंके क्षयसे), ५४० (तृ० श्रमण), ४९९ (५ भेद—अन्तरापरिनिर्वायी, उपहत्यपरिनिर्वायी, असंस्कार०, स-संस्कार०, ऊर्ध्वस्रोता, अकनिष्ठगामी) ।
अनार्य । २३ (=हीन) ।
अनित्य । १०५ (=संस्कृत, निर्मित, प्रतीत्यसमुत्पन्न), १३३ (=क्षयधर्मा, व्ययधर्मा, विरागधर्मा, निरोधधर्मा) ।
अनित्यता । १७७ (=क्षयधर्मता,=विपरिणामधर्मता) ।
अनित्यसंज्ञाभावना । १८७ (सभी पदार्थ अनित्य हैं) ।
अनुकंपा । ७६ (=कृपा) ।
अनुजात । १६५ (=पीछे उत्पन्न) ।
अनुज्ञा । २९, ७९ (आज्ञा, स्वीकृति), १४६ (=आज्ञा) ।
अनुत्तर । १६० (=अनुपम), २६७, (=सर्वोत्तम) ।
अनुत्तरीय । (३) ४९१, ५०३ (६) ।
अनूदूत । ५५७ (=साथ जानेवाला) ।
अनुनय । ७९ (=छन्द) ।
अनुपश्यना । ५६९ (ध्यानसे देखना) ।
अनुपश्यी । ४९३ (=देखनेवाला) ।
अनुपादि । ५३६ (=दुःखकारणरहित) ।
अनुपूर्वनिरोध । ५०९ (९ प्रकार) ।
अनुपूर्व विहार । ५०९ (९ प्रकार) ।
अनुमति-कल्प । ५५६, ५६०, ५६५(वज्जि-पुत्तकोंका विनयविरुद्ध विधान) ।
अनुमतिपक्ष । २२५ (४—अनुयुक्त क्षत्रिय, अमात्यपरिषद्, नैचयिक गृहपति, ब्राह्मण महाशाल) ।
अनुयुक्त क्षत्रिय । २३५(उच्च पदाधिकारी—नैगम जानपद), २३७ (=मांडलिक या जागीरदार) ।
अनुयोग । ४५३ (=परीक्षा), ५०० (=उद्योग) ।
अनुलोम । १७, १६९ (=अविरोधी) ।
अनुव्यंजन । (देखो—व्यंजन । अनु-) ।
अनुशय । ५०५ (चित्तमल, ७ प्रकार) ।
अनुशासन । २४ (=उपदेश) ।
अनुशासनी । ५१० (=धर्म-उपदेश) ।
अनुश्रव । २२५, २६३ (=श्रुति), २२५ (सांदृष्टिकविपाकद धर्म), २४७ (=श्रुत) ।
अनुसञ्ज्ञान । ३०० (=निरीक्षण) ।
अनुस्मृतिस्थान । ५०३ (६ प्रकार) ।
अनोमा-प्रव्रज्या । १२ ।
अन्त । २३ (=अति), ४९० (३ प्रकार) ।

अंतगुण। १७६ (पतली आंत)।
अन्तरापरिनिर्वायी। ४९९, (अनागामी)।
अंतराष्टक। ३९० (माघके अंतके चार दिन और फागुनके आदिके चार दिन), ४३९।
अन्तर्वासक। ३२९ (=लुंगी)।
अंतेवासी। ७२ (=शिष्य)।
अंधवेणु-परंपरा। २०९, २२९ (= अंधोंकी लकडीका तांता)।
अपगर्भ। १३९, १४९ (अपगत-गर्भ)।
अपरांत। २८०।
अपरिहाणीयधर्म। ५२०-५२२।
अपाय। १७९ (दुर्गति, नर्क)।
अपायमुख। २७९ (६ प्रकार), २१७ (=विघ्न)।
अपाश्रयण। ४९३, (४ प्रकार)।
अपुण्य। ११४ (=पाप)।
अप्रमाण। ७७ (इयत्तारहित), १०२ (महान्)।
अप्रामाण्य। ४९३ (असीम, ४ प्रकार)।
अप्सरा। ३१४।
अभव्य-स्थान। ४९८ (९ प्रकार)।
अभिक्रांत। ३६८ (=सुन्दर), २८१ (= चमकीला)।
अभिजल्प [अभिजप्प]। १०१ (समाधिविघ्न)।
अभिजात। ३४६, ५०३ (६ प्रकार, जाति=जन्म=अभिजाति,)।
अभिज्ञ। षड्—। २३ (=संबोध), ५१४ (दिव्य-शक्ति)।
अभिज्ञात। २६९ (=प्रसिद्ध)।
अभिधर्म। ५१० (=धर्ममें)।
अभिधर्मज्ञ। ४९९ (मात्रिकाधर)।
अभिध्या। ६३ (=लोभ), १७२ (नीवरणोंमें)।
अभिध्यालु। २३६ (=लोभी)।
अभिनिवेश। ३७९ (=आग्रह)।
अभिनिर्वृत्ति। १२३ (=जन्म)।
अभिनिष्क्रमण। महा—८, ९, १० (गृहत्याग)।
अभिभावित। ८८ (दबा दिया)।
अभिभ्वायतन। २७०, ५०७ (८ प्रकार)।
अभियान। ५२० (=चढ़ाई)।
अभिरत। १४९ (=संतुष्ट)।
अभिविनय। २१० (=विनयमें)।
अभिषेक। २१९ (क्षत्रियोंहीका)।
अभिसंस्कार। ३७३ (=मंत्रविधि)।
अभिसंज्ञा। १९२ (=संज्ञा, चेतना)।
अभिसंज्ञानिरोध। १८९।
अभिसमय। धर्म—८९ (=धर्म-दीक्षा)।
अभिसंबोधि। ९३ (=बुद्धज्ञान=बोधि, =बुद्धत्व), १७।
अभिसंबोधि, परम—। ५४ (=बुद्धत्व)।
अभूत। १४८ (=झूठ)।
अभ्याख्यान। २४९, ५५७ (=निन्दा)।
अमथितकल्प। ५५६, ५६०, ५६९ (विनय-विरुद्ध-विधान)।
अमनुष्य। १३ (पिशाच आदि), ६८ (देव आदि), २३३ (देव, भूत आदि)।
अमरविक्षेपवाद। २६४।
अमात्य। ५४, २३९ (=अधिकारी), ५७३ (अफसर)।
अमात्य-पारिषद्य। २३९ (पदाधिकारी, नैगम जानपद)।
अमितभोग। (=महाधनी) १९३।
अमित्र। २७६ (=शत्रु ४)।
अमूढ़ विनय। ५०६ (=अधिकरण-शमथ)।
अम्म। १४ (दासी, लड़कीको संबोधन), ४८।
अम्मण। १० (=मन)।
अय्यका। ५१४ (नानी)।
अय्यधीता। ४१ (स्वामिपुत्री)।

अय्या । ४१, २९७ (आर्या, स्वामिनी), १०६ (भिक्षु), ४२१ (माता) ।
अरणविहारी । ४६९ (अरणसमाधिका अभ्यासी) ।
अरसरूप । १३८ (देखो) ।
अर्गल । ४४० (=जंजीर) ।
अर्चि । १९९ (=लौ), ३०७ (स्यारी)
अर्थ-उपपरीक्षा । २२७ (अर्थका परीक्षण) ।
अर्थचर्या । २९९ (=प्रयोजन पूरा कर देना) ।
अर्थवेद । २९३ (=परमार्थ ज्ञान) ।
अर्थसंवेदी । ५०१ (=मतलब समझने वाला) ।
अर्थाख्यायी । २७७ (मित्र-गुण) ।
अर्हत् । ३२ (=जीवन्मुक्त), ७३, २३८ (=मुक्त-पुरुष), २४७ (आस्रवक्षयसे), २६४ (पांचकामोंको भोगनेमें असमर्थ), ५२२ (पूज्य), ५४० (चतुर्थश्रमण) ।
अर्बुद । १४३ (=मल) ।
अलम् । २२९ (बस, ठीक नहीं) ।
अलमार्यज्ञानदर्शन । २२, १०० (उत्तर मनुष्यधर्म, दिव्यशक्ति) ।
अल्प-उत्सुकता । १९ (=उदासीनता) ।
अल्पशब्द । १६४ (=निःशब्द) ।
अल्पेच्छुक । २६० (=अनिच्छुक) ।
अवक्रांति । १२३ (=जन्म) ।
अवगाह । १०३ (जलाशय) ।
अवत्रपा । ४८९ (=भय) ।
अवत्रपी । २६० (=धर्मभीरु) ।
अवदात । ८६ (=सफेद), ४१२, ५३० ।
अवद्य । ३४८, (=दोष) ।
अवभास । १०१ (ध्यानमें दृष्टिगोचर प्रकाश) ।
अवरभागीय । [ओरंभागीयसंयोजन ५] । २४७ (के क्षयसे अनागामिता) ।
अवरोध । ५५३ (=रनिवास) ।
अववाद । ५८ (=उपदेश) ।
अववादक । ५१८ (=उपदेशक) ।
अववादप्रतीकार । [ओवादपटिकार २३९ ।
अवस्रव । ३४१ (=परिणाम) ।
अविचीर्ण । २६६ (=न किया) ।
अविद्या । १७ (प्रतीत्य-समुत्पादका एक अंग), १२२ (एक संयोजन) ।
अविभ । ४९९ (=शुद्धावास देव) ।
अवीचि । ८६ (नर्क) ।
अश्ममुष्टिक । २१६, (तापसभेद) ।
अशुभ-भावना । १८७ (सभी भोग बुरे हैं)।
अशुभ-समापत्ति । ३१७(अशुभ-भावना)।
अश्वतर । १८३ (=खच्चर) ।
अश्वमंडलिका । १४१ (घोड़ेवालोंका डेरा) ।
अश्वमेध । ३६९ (यज्ञ) ।
अष्टकुलिक । २५१ (=न्यायाधीश, सूत्र धारके ऊपर) ।
अष्टांगिकमार्ग । १२५ (=आठ अङ्गोंवाला मार्ग), २७०, ४८२ (बुद्धका साक्षात्कृतधर्म) ।
असंस्कार परिनिर्वायी । ४९९ (अनागामी) ।
असंख्य । ७७ (=अनगिनत), ५३१ (संज्ञा) ।
असंज्ञिसत्वायतन । १३९ (आरूप्य आयतन) ।
असंज्ञी । १९० (संज्ञारहित) ।
असिचर्म । २२९ (ढाल तलवार), ३६७ ।
असूया । ५० (=हसद) ।
अस्तंगत । ३८१ (=निर्वाणप्राप्त) ।
अस्थि-संज्ञा । १२० (सब जगत्को हड्डीमय भावना करना, देखो कायानुपश्यना)।

अस्वयंपाकी । २१६ (तापसभेद) ।
अहोवत । २४२ (शोक-प्रकाशक शब्द) ।
आकार-परिवितर्क । २२९ (सांदृष्टिक विपाकद्धर्म), ३४२ ।
आकारवती । २८२ ।
आकाशधातु । १७६, १७७, १८६ (= आकाश महाभूत, अध्यात्म और वाह्य)।
आकाशसमभावना । १८६ ।
आकाशानंत्यायतन । १७४, १९१ (एक आरूप्य समापत्ति) । १३४-३९ (विज्ञान-स्थिति=योनि), ५०८ । १७४, १९१ (समाधि), ४१४, ५०८ ।
आकिंचन्य । ३८० (=कुछ नहीं) ।
आकीर्ण । १०३ (भीड़में) ।
आक्रोश । ७१ (गाली आदि), १७७ ।
आगतागम । ५३४(= आगमज्ञ, निकायज्ञ), ५५९ ।
आगंतुक । ६१ (पाहुना, अतिथि), ३३३ (नवागत), ३६९ ।
आगम । (बुद्धके समयमें थे), ५३४ (सुत्त-पिटकके दीघ आदि निकायोंको आगमभी कहते हैं) ।
आगमज्ञ । ९७ (देखो आगतागम) ।
आघात । ५०८ (बदला लेनेकी इच्छा) ।
आघात-प्रतिविनय (८) । ५०८ (आघात हटानेके आठ उपाय) ।
आघातवस्तु । ५०८ (आघातके आठ-कारण) ।
आचार्य । ५२,५९७, ५७१ (की व्याख्या) ।
आचार्यक । २६१ (=धर्म),२८१(=मत), ३०८ (=पेशा) ।
आचार्यधन । ३८६ (गुरु-दक्षिणा) ।
आचार्य-मुष्टि । ५३२ (=रहस्य, एकांतमें या अंतसमय अधिकारीको बतलाने योग्य बात) ।
आचीर्ण । [आचिण्ण] । ४४९ (=कायदा) ।
आचीर्ण-कल्प । ५५६,५६०,५६९ (विनय-विरुद्ध विधान) ।
आवासकल्प । ५५६, ५६०, ५६९, (विनयविरुद्ध-विधान) ।
आजन्य । ३२८ (=उत्तम खेतका) ।
आजानीय । ३ (=उत्तम जातिका=आजन्य) । १६१ (=परिशुद्ध) ।
आजीव । ४८२ (=जीविका, खाना पीना)।
आज्ञा । ५३९ (=परमज्ञान), २५८ (= अञ्ञा) ।
आणापान-सति-भावना । १५८ (=प्राणायाम), १८७, ३१८ ।
आत्मदीप । ५१८ (=आत्म-शरण, स्वावलम्बी), ३९१, ५३८ ।
आत्मप्रतिलाभ । १९६ (=शरीरग्रहण), १९७ (=शरीर-परिग्रह) ।
आत्मभाव-प्रतिलाभ । ४९६ (शरीरग्रहण ४) ।
आत्मवाद । १३३ (आत्माके नित्यत्वका सिद्धान्त) ।
आत्मवाद-उपादान । १२९ (आत्माकी नित्यतापर आग्रह) ।
आत्मशरण । ५१८ (स्वावलम्बी), ५३२ आत्मदीप) ।
आत्मा । ३० (=आप), १५७ (अपना चित्त), १९३ (मनोमय, संज्ञा-मय) ।
आदाहन । ३११ (=चिता) ।
आदिनव । १३५ (=परिणाम), १४३ (=अर्बुद=कालिमा), १६० (बुराई), २२८ (दुष्परिणाम), २७५ (दोप) ।
आदिनव । दुःशीलके—। ४९८ (पांच) ।
आधानग्राही । ५०३ (=हठी) ।
आध्यात्मिक । १२२ (शरीरके भीतरी) ।

आनापान-स्मृति । ११९ (=प्राणायाम, कायानुपश्यना) ।
आनुपूर्वी-कथा । २९, १९० ।
आनुशयिक । ३९९ (=बराबर साथ रहने वाला) ।
आनुश्रविक । २६३ (श्रुतिवादी) ।
आनृशंस्य । ४९८ (=गुण) ।
आनेंज्य । ४६७ (निश्चलता) ।
आपण । १९६ (=दूकान) ।
आपत्ति । ९७ (=दोष) ।
आपत्ति । ९४९ (दोष-दंड), ४८४ (गुरुक-, लघुक—) ।
आपत्ति । अनवशेष—। १०७ ।
आपत्ति । गुरु—। १०७ ।
आपत्ति । दुःस्थौल्य—। १०७ ।
आपत्ति । लघु—। १०७ ।
आपत्ति । सावशेष—। १०७ ।
आपत्ति-स्कंध । ४८९, (७—पाराजिक, संघादिशेष, स्थूल-अत्यय, प्रतिदेशनीय, दुष्कृत, दुर्भाषित) ।
आप-धातु । १७७ (=जलमहाभूत), १७६, १७७, १८६ (अध्यात्म आप-धातु) ।
आपन्न । ९८ (=आपत्ति-सहित) ।
आप-समभावना । १८६ ।
आपादिका । ७६ (=अभिभाविका) ।
आभास्वर । ११४ (देवता, प्रीतिभक्ष) ।
आमगंध । १४९ (=दुर्गंध, द्रोह) ।
आमंत्रण । ७२ (=निमंत्रण) ।
आमिष । १०८ (भोजन, पान आदि), १२१ (भोगपदार्थ), १९९ (विषय), ४६९ (भोग) ।
आमिष । लोक—१९९ ।
आम्रपान । १६७ (विकालविहित पेय) ।
आयतन । १७ (छः) १२ (चक्षु, श्रोत्र, घ्राण, जिह्वा, काय, मन), २६४ (=ज्ञान) । २६९ (=जगह), १२२ (अध्यात्म, बाह्य), ४८९ (बारह) ।
आयतन । अध्यात्म—५०१ (छ) ।
आयतन । बाह्य—५०१ (छ) ।
आयुष्मान् । ६० (प्रायः समान और छोटेको संबोधन करनेके लिये), २३१ (=आप)
आयुसंस्कार । ५१३ (जीवन) ।
आरक्षा । ८९ (=पहरा) ।
आरचारी । १७२ (=दूर रहनेवाला) ।
आरण्यक । १४७ (वनमें रहने वाला, एक धुतंग) ।
आरद्धवीरिय । २९२ (उद्योगी, देखो आरब्ध-वीर्य) ।
आरब्धचित्त । ९४० (उद्योगशील चित्त-वाला) ।
आरब्धवस्तु । (=आलस्यराहित्य) ९०६।
आराधक । २९२ (=साधक, मुमुक्षुके पांच गण) ।
आराम । ७०, २११ (=बगीचा), ८२ निवासस्थान), १४८ (आश्रम), ३२० (बाग) ।
आरामग्रहणकी अनुज्ञा । ३७ ।
आरामिक । २६७ (आरामका नौकर), २६७, ३२१ (आराम-सेवक) ।
आरूप्य । ४९३ (चार) ।
आर्य । १८१ (=अदास), २९३ (मुक्त), ५२९ (=उत्तम) ।
आर्य-अष्टांगिकमार्ग । २३ (सम्यक् दृष्टि, ०संकल्प, ०वचन, ०कर्मान्त, ०जीविका, ०व्यायाम, ०समाधि) ।
अष्टांगिकमार्ग । १२९ २७ (विस्तार), ५३३ (बुद्धद्वारा साक्षात्कृतधर्म) ।
आर्य-आयतन । ५२८ (=आर्योंका निवास) ।

आर्यक। २७९ (=मालिक)।
आर्यधन। ५०४ (सात)।
आर्यपुत्र। १० (=स्वामिपुत्र),४३(पति)।
आर्यवंश। ४९३ (चार)।
आर्यवास। ५११ (दस)।
आर्यविनय। १५७ (बुद्धधर्म), २७४ (=आर्यधर्म), २९१, ४६८ (सत्पुरुषों की रीति)।
आर्यव्यवहार। अनु-(४)। ४९७।
आर्यशीलस्कंध। १७३ (=निर्दोषशील-राशि)।
आर्य-श्रावक। ३४(स्रोतआपन्न, सकृदागामी, अनागामी, अर्हत्)।
आर्य-सत्य। २३ (=उत्तम-सत्य—दुःख, दुःख-समुदय, दुःखनिरोध, दुःखनिरोध-गामिनी प्रतिपद्), २७-१२३, १७६, ५२९।
आलय। १७९ (लीन होना, रुचि)।
आलारिक। ४६२ (=बावर्ची)।
आलिंद। २११ (=वरांडा)।
आली। ८० (मेंड)।
आलोक। २३ (=प्रज्ञा)।
आलोप। १७३ (ग्राम आदिका विनाश), ४६९ (=छापा)।
आवर्तनी माया। ४५२(मन घुमा देनेवाला-जादू)।
आवसथ। १९८, ३६९ (अतिथिशाला), ४७९ (सराय), ५२८ (डेरा)।
आवसथागार। ५२७ (=अतिथिशाला)।
आवापक। १६८ (=हजामतका सामान)।
आवासिक। २५५ (स्थानीय)।
आवाह। ६८ (=विवाह)।
आवुस। २१ (=आयुष्मान्), २२ (बड़े को नहीं), १०४, २५५, ४१३, ५४१ (अपनेसे छोटेहीको)।
आश्रव [अस्सव]। २३९ (=अनुचर)।
आश्वसन्त [अस्ससन्त] १४९ (आश्वा-सनप्रद)।
आसन-विज्ञापक। ५६४ (=आसन बि-छानेवाला)।
आसेचनक। ३१८ (=सुंदर)।
आस्रव। २१ (=क्लेश, मल), १०४(दोष), ६४ (चित्तमल), ४९०।
आस्रवक्षयज्ञान। (तृ. विद्या), १७५(राग आदि मलोंके नाश होनेका ज्ञान), ४१९, ४६८।
आस्रव-निरोध। १७५(चित्तमल-विनाश)।
आस्रव-निरोध-गामिनी प्रतिपद्। १७५ (=चित्तमलोंके नाशकी ओर लेजानेवाला मार्ग)।
आस्रवसमुदय। १७५ (राग आदिका कारण, या उत्पत्ति)।
आहार। ४९५ (चार)।
आहुणेय्य [आह्वानीय]। २५३ (=निमं-त्रणके योग्य)।
आह्वानार्ह। ७४ (निमंत्रणके योग्य)।
इंघ। ३१० (अच्छा तो)।
इतिवृत्तक [इतिवुत्तक]। १४२ (बुद्ध-भाषित)।
इतिह इतिह। ३८१ (=ऐसा ऐसा)।
इन्द्रकील। ५५ (किलेके द्वारके बाहर गड़ा खम्भा)।
इंद्रिय। १०४ (पांच); २५८, २६९ (अर्हत् की पांच-श्रद्धा, वीर्य, स्मृति, समाधि, प्रज्ञा), २८९; ४८२, ५३३ (पांच बुद्ध-साक्षात्कृत धर्म), ५००, ४९१ (तीन)।
इन्द्रियभावना। २९१-९२।
इन्द्रियसंवर। १७३।
इन्द्रियसंवर। आर्य—। १७३।

इभ्य [इब्भ] । २११ (=नीच), २२७ ।
इभ्यवाद । २१२ (=नीच कहना) ।
इषुकार । ३४९ (=लोहार) ।
इष्ट । ३९ (यज्ञ, प्रिय) ।
ईति । ११० (=अकाल, महामारी) ।
ईर्यापथ । ११९ (कायानुपश्यना विस्तार), ५७० ।
ईर्ष्या । १२२ (संयोजन) ।
ईश्वर । ३४३ ।
उक्कोटन । ४६९ (=रिश्वत) ।
उग्र । १७६ (श्रेष्ठ), २१८ (ऊंचे अमात्य) ।
उच्चशयन । १७३ (महाशयन) ।
उच्चार । ११९ (=पाखाना) ।
उच्छेदवाद । १३२ (शरीरके साथ आत्मा का विनाश मानना), १४१ ।
उंछाचारी । २१६ (तापसभेद) ।
उत्कोटन । ४८३ (अमान्य, विरोध), ४६९ (रिश्वत), ५६२ (फैसलेको असान्य करना) ।
उत्क्षेपण । ९७ (संघका दंड) ।
उत्क्षेपणीय कर्म । ५५८ (=उत्क्षेपण दंड, जिसमें कुछ समयके लिये भिक्षुको अलग कर दिया जाता है) ।
उत्तर-मनुष्य-धर्म । २२, १००, ५५० (=दिव्य शक्ति), ८३ (मनुष्यकी शक्तिसे परेकी बात), ३१९ (=दिव्य-शक्ति) ३२१ (४ ध्यान, ३ विमोक्ष, ३ समाधि, ३ समापत्ति, ज्ञान-दर्शन (३ विद्यायें, ७ मार्गभावना ४ फलसाक्षात्कार, ३ क्लेश-प्रहाण, ३ विनीवरणता, ४ शून्यागारमें अभिरति) ।
उत्तरारणी । १८२, ४१९ (रगड़ कर आग निकालनेको लकड़ी) ।
उत्तरासंग । ३६ (उपरना), १७१ (=चादर) ।
उत्तरितर । २४० (उत्तम) ।
उत्तान । १२८ (=साफ, सहल), ६७ (स्पष्ट) ।
उत्थान । २२९ (=उद्योग), २२६ (तोलन, उठना, काममें मुस्तैदी), २२७(=उद्योग), २७८ (=तत्परता) ।
उत्थानसंज्ञा । ५३६ (=उत्थानका ख्याल)।
उत्पल हस्त । ३०९ (चम्मच) ।
उत्पलिनी । २० (नीलकमल-समुदाय) ।
उत्पीड़ा । [उप्पील, उव्बिल्ल] । १०१ (विह्वलता, समाधिविघ्न) ।
उत्संग [उच्छंग] । १६० (फाँड), ४९१ (ओइँछा) ।
उत्सव । ९ (=मेला) ।
उदक-तारा । ४१७ ।
उदकसाटी । ३३३ (ऋतुमतीका कपड़ा) ।
उदकावरोहक । २८७ (जलशय्या लेने वाला तापस) ।
उदग्र । ६९ (=फूला न समाता) ।
उदय । ४९३ (=उत्पत्ति) ।
उदय-व्यय । ३६३ (उत्पत्ति-विनाश, हानि-लाभ) ।
उदान । १४२ (बुद्धभाषित), ३११ (आनंदोल्लासमें निकली वाक्यावली) ।
उदपान । ४१७ (कुआं) ।
उदार । १६७ (=सुन्दर), १७०, २६४, ५२६ (बड़ा) ।
उद्ग्रहण । ८० (समझना, पढ़ना) ७८० ।
उद्देश । १६१ (=नाम), ३१८ (पाठ, धारण, आकार) ।
उद्देश्य । १७५ (=आकार) ।
उद्वाहिका । ५६३ (कमीटी)।
उपकरण । २३४ (=साधन) ।
उपकारी । २३० (=प्राकार, शहरपनाह; भीगेलिपे) ।

उपक्रोश । २८९ (=भला बुरा कहना) ।

उपक्लेश । २६४ (=चित्तमल), २८४; ५२६ (मल, ५ चित्तनीवरण) ।

उपचारक । ४२९ (=रक्षक) ।

उपधि । ३९ (राग आदि), ३७९ (तृष्णा आदि) ।

उपनहन । ९८ (= बांधना) ।

उपनाह । २८७ (=पाखंड) ।

उपनीत । १८३ (=उपनयनद्वारा गुरुके पास प्राप्त, क्षयको प्राप्त) ।

उपपत्ति । ५८७ (=उत्पत्ति) ।

उपरत । १७२ (त्यक्त) ।

उपराज । २५२ (गणोंमें राजाके नीचे एक पद), ५२१ (सेनापतिके ऊपरका पद)।

उपलाप । ५२२ (=रिश्वत) ।

उपलाभ । २२ (=साक्षात्कार) ।

उपवादक । १७९, २७३ (=निंदक) ।

उपविचार । उपेक्षा—। ५०२ (छ) ।

उपविचार । सौमनस्य-। (६) ५०१ ।

उपविचार । दौर्मनस्य—। ५०२ (छ) ।

उपशम । २३, २८८, ४१४ (=शांति) ।

उपशमन । १०९ (=शमन, फैसला) ।

उपसंपदेपक्षी ।५३(भिक्षु-दीक्षा चाहने वाला)

उपसंपदा । २४, १४७, ५६२ (=भिक्षु-दीक्षा), ५३ (ज्ञप्ति चतुर्थसे, तीन शरण गमनसे नहीं) ।

उपसंपन्न । ७४ (=भिक्षु-दीक्षा-प्राप्त), ३५४ (भिक्षु) ।

उपसंपादित करना । ५३ (संघकी परीक्षा के अनंतर संघके द्वारा करणीय-अकरणीय सूचना-पूर्वक भिक्षु बनाना) ।

उपसेचन । २१९ (=तेंवन) ।

उपस्थाक [उपट्ठाक] । १०३, २४५, २९४ (=हजूरी), ३३९ (=परिचारक), ५३२ (=सेवक) ।

उपस्थान । २७८, ४२८ (=हाजिरी) ।

उपस्थानशाला । (=बैठकखाना, दर्बारघर) ७१ (सभागृह), ५२२ ।

उपहत्य-परिनिर्वायी । ४९९ (अना-गामी) ।

उपादान । १७, १२९ (प्रतीत्य-समुत्पादका अंग) ; ९१ (सामग्री) ; १२९ (काम , दृष्टि-, शीलव्रत-, आत्मवाद-), १९९ (ग्रहण, स्वीकार) ।

उपादानस्कंध । १०५, १२२, १७६-७९ (पांच—रूप, वेदना, संज्ञा, संस्कार, विज्ञान), १२४ (दुःख); ४९६, ४९७ ।

उपादि । ५४६ (=दुःखकारण) ।

उपाधि । २०८(=मल),६५१(रागआदि)।

उपाध्याय । ८२ (के कर्तव्य); ८७१ (की व्याख्या) ।

उपायास । १२४ (हैरानी) ।

उपासक । १९ (गृहस्थचेला, दो वचनसे), २३ (तीन वचनसे) ।

उपासना । ४७७ (=सत्संग) ।

उपासिका । २७ (गृहस्थ-शिष्या, तीनवचन से प्रथम) ।

उपेक्षक । १७४ (तृतीयध्यानको प्राप्त योगी)।

उपेक्षा । १२३ (बोध्यंग) ।

उपेक्षा-भावना । ११३, १८७ (शत्रुकी श-त्रुताकीभी उपेक्षा करना), ३४८ ।

उपोसथ । ४३३ (कृष्ण-चतुर्दशी और पूर्णिमा का व्रत), ५७२ ।

उपोसथिक । ८९ (व्रत रखनेवाला) ।

उत्पाटन । ८५ (उपाड़ना, उखाड़ना) ।

उब्भट्ठक । ८७ (सदा खड़ा रहनेवाला, ता-पस, ढढ़ेसरी) ।

उब्भतक । ४८७ (ऊंचा) ।

उभतोभागविमुक्त । १२६ , २५७ (अर्हत्-भेद) ।

उम्मार । (ड्योढ़ी) ।
उलुम्प । ५२९(=बेड़ा) ।
उल्का । १९९, २२० (=मशाल, लुकारी) ।
ऊर्ध्वस्रोत । ४९९ (अकनिष्टगामी अनागामी) ।
ऋजुप्रतिपन्न । (=सीधेमार्ग पर आरूढ) २९३ ।
ऋद्धि । २६ (योगबल), ४८ (दिव्य-शक्ति)।
ऋद्धिपाद । १०४, २६९ (४-छन्द-समाधि से, वीर्यसमाधिसे, चित्तसमाधिसे, विमर्द समाधिसे), ४८२, ४९२; ५३३ (बुद्ध-साक्षात्कृत धर्म) ।
ऋद्धिप्रातिहार्य। ३१, ८३, ४२८(=दिव्य-चमत्कार, दिव्य-शक्ति) ।
ऋद्धिबल । ४६७ (योगबल) ।
ऋषभ [उसभ] । १२ (=४ धनुष= १६ हाथ) ।
एककाय-नानासंज्ञा । १३४ (आभास्वर देव, जिनका शरीर एक होता है, किन्तु नाम अनेक, योनि)।
एककाय-एकसंज्ञा । १३४ (शुभकीर्ण देवता, जिनका शरीर और नाम एक होता है, योनि) ।
एकागारिक । २३० (=चोरी) ।
एकान्त । ४६, १७२, २३१ (=केवल, अमिश्रित, बिल्कुल, नितांत) ।
एकान्तसुख । २८२ (=सुख-मय) ।
एकान्तसुखी । १९५ (=केवल सुखी) ।
एकायन । ११८ (एकान्ततः प्राप्य, निश्चय) ।
एकांश। ४५७(सर्वथा, सर्वांशतः, निरपवाद)।
एड-मूक । [एडकमूक] ५०९ (भेड़सा गूंगा, मूर्ख)। १८८(=वज्रमूख भेड़सा गूंगा)।
एरकवर्तिका । २३० (एक प्रकारका शरीर-दण्ड) ।
एषणा । ४९० (=राग) ।
एकांसेन । ८१ (एकांशेन, सोलहो आना)।
एणेयक । २३० (एक प्रकारका शरीर-दंड) ।
ओघ । (३८० भवसागर, संसार-प्रवाह), ४९६ (चार) ।
ओचरक । १७७ (=डाकू) ।
ओज । १४ (=रस), ३१७ (भोजनसार)।
ओवट्टिक । ९३ (कटिका आभूषण) ।
ओवरक । ५१३ (=कोठा) ।
ओषधितारा । २८२, ५०७ (शुक्र) ।
औदारिक । १९२ (=स्थूल), १९६ (=मोटा) ।
औद्धत्य-कौकृत्य । ६३ (=उच्छृङ्खलता), १२१ (उद्वेग, खेद, ४ नीवरणमें), १७४।
औपपातिक । २६१, ५०९, (अयोनिज देव आदि ।)
कंखा-धम्म । ५३९ (=संशय) ।
कटिसूत्र । ९३ (आभूषण) ।
कटुविय । १४९ (जूठा, अभिध्या) ।
कंठसूत्र । ९३ (आभूषण) ।
कथंकथा । ३८० (=वादविवाद) ।
कथा । १८९ (राज-, चोर-, माहात्म्य-, सेना-, भय-, युद्ध-, अन्न-, पान-, वस्त्र-, शयन-, गंध-, माला-, ज्ञाति-, यान (युद्ध-यात्रा)-, ग्राम-, निगम-, नगर-, जनपद-, स्त्री-, शूर-, विशिखा-) ।
कथा । तिरच्छाण—।(देखो कथा) २६०।
कथावस्तु । ४२४, ४२७, ४४७ (=बात), ४९२ (तीन प्रकार) ।
कन्दमूल फलाहारी । २१७ (तापस) ।
कपिसीस । ५३८ (=खूंटी) ।
कप्पिय । १३९ (=विहित) ।
कप्पिय । अ—। १६९ (=निषिद्ध, हराम) ।

कबरी छाया । ४७६ (जिसमें पत्तोंसे छनकर धूप भी आती हो) ।
कम्मकरण । २३० (=सजा, राजदंड,—के भेद) ।
कम्मन्ताधिट्टायक । ३२९(=कारपर्दाज)।
करक । ३२६ (=नारियल) ।
करका । २८४ (मिट्टीका एक बड़ा बर्तन) ।
करंड । ५४७ (=पिटारी) ।
करीप । १७६ (उदरका मल) ।
करुणाभावना । ११३, १८६ (सब प्राणीपर दया करना), ३४८ ।
करेणुक । १७२ (ऊंची हथिनी) ।
कर्म । ९७ (निर्णय), ९८ (न्याय), ४४६ कायिक वाचिक मानसिकमें मानसिककी सबलता),४९६(चार),५६२(=न्याय) ।
कर्मकर । २५१ (=मजदूर) ।
कर्मपथ । १० (कुशल—)२८९ (शुभाशुभ कर्मके रास्ते १०) ।
कर्मप्रत्यवेक्षा । ६६ ।
कर्मस्थान । ५६९ (=योगक्रिया, योग-युक्ति) ।
कर्मान्त । २५३, ४६६ (=खेती), २७९ (=कामकाज) ; ३१३ (=काम) ।
कर्मार । ४८७, ५३९ (=सोनार) ।
कलभ । १०३ (=तरुण गज) ।
कलाप । ४७३ (=पुञ्ज) ।
कल्प । ५६८ (=विधान) ।
कल्पक । ४६२, (=हजाम) ।
कल्प । विवर्त—। ३७३ (=सृष्टि) ।
कल्प । संवर्त—। २७१ (प्रलय) ।
कल्पिककुटी । ७१ (भंडार), ७१ ।
कल्पित । ५५७ (=विहित, हलाल) ।
कल्प्य । ३३९ (=योग्य), ५५१ (=विहित),५५१ (=विहित) ।
कल्याण । २७९ (=भलाई) ।
कल्याण धर्मा । ७८ (=पुण्यात्मा) ।
कल्याणमित्र । २५७ (=सुमित्र) ।
कल्याणवर्त्म । ४०६ (बुद्धधर्म) ।
कवरमणि । ५२७ (=मसारगल्ल) ।
कवलिकार । १९६ (=ग्राम ग्रास करके) ।
कवलिंकार आहार । १९२ (=कवल करके खाने वाला) ।
कसिण [कृत्स्न] । ८७ (एक भावना) ।
कसिण । आपो—८७ (आप-कृत्स्न) ।
कसिण । तेजो—[तेजः कृत्स्न] । ८७ (एक प्रकारका योगाभ्यास, जिसमें आंखको तेज-खंडपर लगाकर धीरे धीरे सारे भूमंडलका तेजोमय देखनेकी भावना का जाती है) ।
कहापण । ३११ (५ मापक=१ पाद, ४ पाद=कहापण, रुद्रदामकका कहापण, नीलकहापण) ।
काकपेया । २०६ (करारपर बैठे कौवेके पीने योग्य) ।
कांक्षा । १०६ (=संशय), ४९०(संदेह ३) ।
काचमय । ८३ ।
काज । १६७ (बहंगी) ।
कादली मृगचर्म । ३९० (एक मुलायम रोम वाला चमड़ा) ।
कांत । ७६ (=कमनीय, सुन्दर), १७७ (=इष्ट) ।
कांतार । १९४, २०७ (वीरान जंगल), ४६६ (बयाबान) ।
काम । ५९ (आवश्यकता), २२८, ३६० (=भोग) ।
काम-उपादान । १२९ ।
कामगुण ।२०६, २२९, ४९७, ५९८ (५ इष्ट-रूप, ०शब्द, ०गंध, ०रस, ०स्पर्श) । ३६४ (भोग) ।

कामच्छन्द । १२१ (कामुकता, नीवरण) ।
काम-दुष्परिणाम । २२९ (भोगोंकी बुराइयां) ।
कामेष्टियज्ञ । ३९ (किसी कामनासे किया जानेवाला यज्ञ) ।
कामोपभोग । ११६ (=कामभोग) ।
काय । १३०, ३९८ (=समुदाय) ।
कायक्लेश । २३ (=आत्मपीडा) ।
कायगत-स्मृति । ४७(शरीर-संबंधी अनुकूल स्मृति) ।
कायबंधन । ५६१ (=कमरबंद) ।
कायविज्ञान । ३४ (धातु, डंडक आदिका ज्ञान ।
कायसाक्षी । २९७ (=शैक्ष्य) ।
काया । ३४ (=त्वक्-धातु) ।
कायानुपश्यना । ११८-२० (१४ प्रकार) ।
कार्षापण ४९ [कहापण] । (क्रयशक्ति) ८९, ३८८ ।
कार्षापणक । २३० (एक शारीरिक दंड, जो शायद पैसा तपाकर दागनेका था) ।
कार्षापण । काल—२५१ (तांबेका पैसा)।
कालकर्णी । ३२९ (=कुलक्षणा), ३३८ (कलमुखी) ।
कालवादी । १७३ (समय देखकर बोलने वाला) ।
कालारिका । १७२ (हथिनीकी जाति) ।
कालिक । २९३ (कालांतरका) ।
कापायकंठ । ७७ (=कापाय मात्रधारी) ।
कापायवस्त्र । २८ ।
किंचन । ४९७ (=प्रतिबंध ३) ।
किलंज । ४४७ (=टोकरा) ।
किशोर । १८३ (=बछड़ा) ।
कुटुम्बिक । ३२९ (=पंच) ।
कुद्दाल-पिटक । (=कुदाल-टोकरी) ।
कुमार । ४६ (=बच्चा) ।
कुम्भदासी । ३२९ (=पनभरनी दासी) ।
कुल, उच्च-।१८२ (क्षत्रिय, ब्राह्मण, राजन्य, वैश्य, शूद्र) ।
कुलनाश-कारण । १११ (आठ) ।
कुल । नीच—१८२ (चंडाल, निषाद, वेणव, रथकार, पुक्कस) ।
कुलपुत्र । २२, ९० (=खान्दानी), २२४ (कुलीन) ।
कुलिक । अग्र—३५२ (कुलिक, नगरका एक अवैतनिक अफसर होता था, उसके ऊपर अग्रकुलिक) ।
कुल्माष [कुम्मास] । ३१३, ३९४, ४१८ (=दाल) ।
कुल्ल । ५२९ (नदी पार करनेका एक साधन)।
कुल्लकविहार । ५६२ (मैत्रीविहार) ।
कुशल । ४७ (पवित्र, अच्छा), ६७, १७४ (=उत्तम), २३१; २८१ (पंडित), ४८९ (चतुर) ।
कुशल । अ—६३, २३१ (=बुरा) ।
कुशलकर्मपथ । १०, ५११ (दस) ।
कुशलकर्मपथ । अ—५११ (दस) ।
कुशलधर्म । २२८ (अच्छी बात), २८६ (पुण्य) ।
कुशलमूल । ४८१ (अलोभ, अद्वेष, अमोह) ।
कुशलमूल । अ—४८९ (राग, द्वेष, मोह) ।
कुशल-संयुक्त । १७७ (=निर्मल) ।
कुसीत । ५०९ (=आलस्य) ।
कुसीत-वस्तु । ५०९ (आठ) ।
कूट । ८६ (बर्तन), १९६ (चोटी, गिरि-शिखर), ४६४ ।
कूट । कंस—४६४ (=खोटी धातु) ।
कूट । तुला—(=खोटी तौल) ४६४ ।
कूट । प्रमाण—४६५ (खोटी नाप) ।
कूटागार । २६८, ३९० (=कोठा) ।

कृतवेदी। ९३ (=कृतज्ञ)।
कृत्स्नायतन। २७१, ५१०(दम, दृष्टियोग)।
कृष्ण। २१३ (=पिशाच)।
कृष्णाभिजातिक। १६९ (=दुर्गुणोंसे भरा)।
कैटुभ। ३७६ (=कल्प—श्रौतसूत्र, धर्मसूत्र गृह्यसूत्र)।
कोटि-संथार। ७१ (किनारेसे किनारा मिलाना)।
कोप्य। १७ (=अधार्मिक)।
कोप्य। अ—१८ (धार्मिक)।
कोल। २५१ (बेरका वृक्ष)।
कौशल्य। ४११ (निपुणता ३)।
कौकृत्यक। २९१ (=संकोचशील)।
ककचोपम। १७७ (आराके समान)।
क्रियावादी। २४९ (शुभाशुभ कर्मोंके फल को माननेवाला, कर्मवादी)।
क्लेश। ६४ (=मल), ३२१ (राग, द्वेष, मोह)।
क्लेश। उप—। १७४, २६४ (=मल), (दे० उपक्लेश)।
क्लेश-प्रहाण। ३२१ (राग-प्रहाण, द्वेष०, मोह०)।
क्लेशहानिके उपाय। २७४।
क्लामक। १७६ (फेंफडेके पासका एक मांस-पिंड)।
क्षत्ता। २३२ (महामात्य, प्राइवेट-सेक्रेटरी)।
क्षय-धर्मता। १७७ (=अनित्यता)।
क्षांति। १०८, (औचित्य), १९३ (चाह), ३६४ (क्षमा)।
क्षिप्राभिज्ञ। ४७० (=प्रखर-बुद्धि)।
क्षीणास्रव। ९९, २६४, ५०४, ५६७, (अर्हत्, मुक्त)।
क्षुद्र-अनुक्षुद्र। ५४१ (छोटे छोटे भिक्षु-नियम)
क्षुरप्र। २१४ (=बाण)।
खमनीय। ९९ (=ठीक=अनुकूल),३१९, ३९९ (अच्छा)।
खरिया। ३९७ (झोरी)।
खारापतच्छिक। २३० (एक शारीरिक-दंड)।
खारी। ३३ (=खरिया, झोली)।
खारी विविध। २१ (=झोरीमंत्रा बाण-प्रत्यर्थीके सामान)।
खेलपिंड। २९२ (=थूक)।
गण। ४१४, ५७२ (=जमात), ५२०, ४७९ (प्रजातंत्र)।
गणक। ३०९ (क्लर्क), ४६२।
गणी। २६६ (=गणाचार्य)।
गति। ४९७ (पांच)।
गंध। ३४ (धातु), ४९६ (चार)।
गंधकुटी। ८६, ३३६ (बुद्धके निवासकी कोठरी)।
गंधर्व। १२८, १८३, १८४ (अन्तराभव सत्त्व)।
गर्भ। ३४०, ५६२ (=कोठरी)।
गर्भ-अवक्रांति। ४९६ (गर्भमें आना ४)।
गव्यूति। ३, २१०, ५३९ (=$\frac{1}{8}$ योजन)।
गाथा। ५९, १४२ (बुद्ध-भाषित)।
गुण। ८३(=करामात), ४९८(शीलमें ५)।
गुरुधर्म। ७९ (भिक्षुणियोंके आठ)।
गृहकार। १६ (=मार)।
गृहपति। ७३, १७१, ४७८ (वैश्य), १९६ (गृहस्थ)।
गेय। १४२ (व्याकरण, बुद्धभाषित)।
गोघातकसूना। १९८ (गाय मारनेका पीढ़ा)।
गोघातकका छुरा। ३२०।
गोचरग्राम। ४१९ (=भिक्षाटन-योग्य पार्श्ववर्ती ग्राम।

गोणकत्थत । ३९० (पोस्तीन) ।
गोत्रभू । ७७ (नामधारी) ।
गोत्रवाद । २१६ (दे० जातिवाद) ।
गोपानसी । २९३ (=टोड़ा), ४१७ (टोड़ा, कड़ी) ।
गो-माहात्म्य । ३६९ ।
गो-रस । १९४, ३६९ (दूध, दही, छाछ, मक्खन, घी) ।
गो-विकर्तन । ४१६ (=गाय काटनेका छुरा) ।
गोहिंसा । ३६९ ।
गौरव । ५०१ (छ) ।
गौरव । अ—४१९ (छ) ।
ग्रहणी । ३९७ (पाचनशक्ति), ४२० (प्रकृति) ।
ग्राम-ग्रामिक । ४१० (ग्रामका अफसर) ।
ग्रामणी । ११२ (ग्राम-अफसर) ।
ग्रामान्तर-कल्प । ५९६, ५६० ५६४ (विनय-विरुद्ध विधान) ।
ग्राम्य । २३ (=हीन) ।
ग्लान-प्रत्यय । ७१ (रोगि-पथ्य) ।
घोष । ६८ (=शब्द) ।
घ्राण । ३४, (धातु) ।
घ्राण-विज्ञान । ३४ (धातु) ।
ककुद्-भांड । राज—४७६ (छत्र, व्यजन, उष्णीष, खड्ग, पादुका) ।
चक्ररत्न । ११ (चक्रवर्तीका दिव्य आयुध)
चक्रवर्ती । ४३ (राजा) ।
चक्रवाल । ८४ (=ब्रह्मांडका खोल) ।
चक्षु । ३४ (धातु, इन्द्रिय), ३४ (=आंख, एक धातु, एक इंद्रिय) ।
चक्षुर्विज्ञान । ३४ (१ धातु), १२९ (=चक्षु और रूपके मिलनेसे जो रूप-संबंधी ज्ञान होता है) ।
चक्षु-संस्पर्श । ३४ (चक्षु और रूपका मिलना)
चंक्रमण । ३२ (=टहलना), ६९ (टहलनेकी जगह), ८६ (टहलनेका चबूतरा) ।
चंक्रमण-वेदिका । ९६ (टहलनेका चबूतरा)।
चंक्रमण-शाला । ७१ (टहलनेका बरांडा) ।
चंड । ६१ (=क्रोधी) ।
चंडाल-पुत्रक । ५१७ (नगर-प्रवेश) ।
चरण । २९ (=विचरण), २१६; ३९० (=आचरण) ।
चर्म-खंड । ५७४ (=चमड़ेकी आसनी) ।
चातुर्द्वीपिक-वर्षा । ३३२ (चारो द्वीपोंमें लगातार बरसनेवाला वर्षा) ।
चातुर्महापथ । १९६ (=चौराहा) ।
चातुर्याम-संवर । (देखो, संवर,चातुर्याम-)।
चातुर्वर्णी शुद्धि । १८० (विद्या और आचरणके अनुसार वर्ण-व्यवस्था) ।
चारिका । २२ (=यात्रा), ७१ (रमत), २१० (त्वरित-, अत्वरित-), २९२(चीवर बन जानेपर तीनमास बाद) ।
चिकित्सा । शल्य—३०२ ।
चिता । ५४३ (चिनना-लीपना) ।
चित्तविनिबंध । ५०० (चित्तको मुक्त न होने देने वाले) ।
चित्तविवर्त्त । ४६९ ।
चित्तानुपश्यना । १२१ (स्मृति-प्रस्थान)।
चित्रकार । १९ (=पुस्तकार) ।
चिंतामणि । ९२ (जादूकी विद्या) ।
चोरक-वासिका । २३० (एक प्रकारका शरीर-दंड) ।
चीवर । ४४, ७१, २६७ (भिक्षुके वस्त्र), ३०७ (छ प्रकारके चीवर जायज़) ।
चीवर । गृहपति—३०६ (गृहस्थोंका दिया चीवर) ।
चीवर । त्रि—१४३ (अन्तरवासक=लुङ्गी, उत्तरासंग=इकहरी चादर, संघाटी=दुहरी चादर), ३०७ ।

चीवर-प्रकार । ३२९ ।
चीवरसंख्यामर्यादा । ३१२ ।
चुंगी । ४३९ ।
चुल्ल । ८८ (=छोटा) ।
चूल । ५८९ (=छोटा) ।
चेतसिक । १२४ (=मानसिक) ।
चेतःपरिजान । ५२६ (=परचित्तज्ञान) ।
चेतोखिल । ५९९ (=चित्तके कीले ५) ।
चैत्य । ५२१ (=चौरा, देवस्थान), ५४३ ।
चैलपंक्ति । ४१४ (=पांवड़ा) ।
चोचपान । १६७ (विकालमें विहित केले का शर्बत) ।
चोदना-वस्तु । ४११ (आक्षेपका विषय ३) ।
चोर । ३६७ (=डाकू), ५१८ (=गुन्डा), ५२१ (=अपराधी) ।
चोर । महा—। ३२० (पांच) ।
चोरी । ३११ (व्याख्या) ।
च्यवन । १२३ (च्युत होना, मरण) ।
च्युत । २७३ (=मृत) ।
च्युति-उत्पादज्ञान । १७५, ४११ (=प्राणियोंके जन्म-मरणका ज्ञान, द्वितीय विद्या) ।
च्युति-उपपाद-ज्ञान । ४११, ५२८ (=च्युत्युत्पादज्ञान) ।
छ आयतन । (देखो आयतन) ।
छन्द । १२६ (=सम्मति=Vote) (निश्चय), १७९, ३४४, ३८१ (राग, रुचि), २२६ ।
छन्दजात । ४९ (=आनंदित) ।
छन्दराग । १२९-३० (=प्रयत्नकी इच्छा)।
छन्द-शलाका । ४३३ (संमति=Voteकी लकड़ी, जो पुर्जीकी जगह होती थी) ।
छवि । ५४९ (चमड़ेकी ऊपरी झिल्ली) ।
छारिका । ५४५ (=राख) ।
छिन्नक । ३०७ (=खंड खंड कर जोड़ा) ।
जंघाविहार । १९६ (=चहल-कदमी) ।
जटासामग्री । ३३ ।
जटिल । ३०, १६३, २८७ (=जटाधारी, अग्निपूजक ब्राह्मण-संप्रदाय, वान-प्रस्थी) ४३० (अग्निपूजा, जलस्नान आदिसे पाप-शुद्धि मानने वाले) ।
जटिलक । २८७ (जटाधारी, अग्निपरिचारक, तापस) ।
जम्बूपान । १६७ (विकालमें पेय जामुन का रस) ।
जनपद । २१४ (=देश) ।
जनपद-कल्याणी । १९६, २०५ (देशकी सुन्दरतम स्त्री), २८१ (सुन्दरियोंकी रानी) ।
जनपद-चारिका । १५३ (=देशाटन) ।
जंताघर । ५१ (=स्नानागार) ।
जरा । १७ (=बुढ़ापा) ।
जरा-मरण । १२९ ।
जलोगीपान-कल्प । ५०६, ५६०, ५६९ (अविहित-पान) ।
जातक । १४२ (बुद्ध-भाषित) ।
जातरूप-रजत । १५० (-निषेध), १७३ (सोना-चांदी) ।
जातरूप-रजत-कल्प । ५०६, ५६०, ५६९ (विनय-विरुद्ध-विधान) ।
जाति । १७ (=जन्म), १२८ ।
जातिवाद । २१६ (गोत्रवाद, जन्मसे ऊँच नीच जाति मानना) ।
जानपद । ९७ (देहाती), २३९ (ग्रामीण) ।
जिह्वा । ३४ (धातु=इन्द्रिय) ।
जिह्वाविज्ञान । ३४ (धातु, और रसके योगसे उत्पन्न होनेवाला ज्ञान) ।
जिन । ३६३ (=बुद्ध) ।

जीवन-संस्कार । ९३२ (=प्राण-शक्ति) ।
जगुप्सु । १३८, १४९ (घृणा करने वाला) ।
ज्ञप्ति । ७२, १०९, ९४८, ९६३, (निवेदन, संघके सन्मुख प्रस्ताव पेश करनेसे पूर्व दी जानेवाली सूचना) ।
ज्ञप्ति-चतुर्थ । -३ (ज्ञप्तिको लेकर प्रस्ताव की चार दुहरावट) ।
ज्ञातक । २९२ (=जातिबिरादरी वाले) ।
ज्ञाति । १८९ (कुल) ।
ज्ञान । २६८ (=दर्शन), ४९४ (चार) ।
ज्ञान-दर्शन । २६८ (ज्ञानका मनसे प्रत्यक्ष करना), ३२१ (३ विद्यायें) ।
ज्येष्ठ । १९२ (=प्रधान) ।
ज्येष्ठक । ५७० (=मुखिया) ।
ज्योतिर्मालिका । २३० (दागनेका दंड) ।
भ्रू ऽ बोलना । ६६ (निंदा) ।
तडाक । ४२,४३ (=चहबचा) ।
तत्पापीयसिका । ४८९ ५०९ (अधिकरण-शमथ) ।
तथ । । अ-१३२ (=अयथार्थ) ।
तथागत । १९, ३९, ४८ (बुद्ध) १२४ (मरनेके बाद) ।
तथागतका बाद । १३२ ।
तथ्य । १९४ (=भूत=यथार्थ) ।
तंद्री । ६४ (आलस्य) ।
तंतुवाय [तुन्नवाय] । ७१ (जुलाहा) ।
तर्कावचर । अ—(तर्क से अप्राप्य) २२६ (तर्कसे अगोचर) ।
तापस । २१६-१७ (आठ—सपुत्रभार्य, उं-छाचारी, अनग्निपक्किक, अस्वयंपाक, अश्म मुष्टिक, दंतवल्कलिक, प्रवृत्तफल-भोजी, पांडु-पलाशिक) ।
ताम्रलोह । ७३ (तांबा), ५४७ ।
ताल । ठूंठा-६४, ३९० ।
तिणवत्थारक । ४८९, ५७९ (घासले ढांक देना जैसा झगड़ेका शमन) ।
तिरच्छाण-कथा । २८० (व्यर्थकी कथा), (दे० कथा) ।
तिर्यक्-कथा । १८९ (तिरच्छाणकथा) ।
तिर्यग्योनि । ७४, ४९७ (पशु पक्षी) ।
तीर्थ । ४६ (=संप्रदाय); १८९, २६६ (पंथ); ३९०, ५२८ (घाट) ।
तीर्थंकर । ११, २६६ (पंथ-स्थापक), ३३३ (=पंथ चलानेवाला, संप्रदायप्रवर्तक) ।
तीर्थायतन । २४९ (=पंथ) ।
तीव्र-छंद । ५०४ (=बहुत अनुरागवाला) ।
तुच्छ । ८७ (खाली), २२९ (रिक्त), २६१ (झूठ) ।
तुषित । ५०७ (देवलोक) ।
तृष्णा । १७, १२९ (प्रतीत्य-समुत्पादका अंग), १२५ (=विषय चिंतनके बाद उसकी प्राप्तिका लोभ), १२९ (रूप-तृष्णा, शब्द०, गंध०, रस०, स्प्रष्टव्य०, धर्म०); ४९० (तीन) ।
तृष्णाकाय (४) । ४९९ (छ) ।
तृष्णोत्पाद । ४९९ (चार) ।
तेज-धातु । १९९, १७६, १७७, १८६ (अध्यात्म-, बाह्य-), १७८ (तेज महा-भूत), ४७१ ।
तेजन । ३४९ (=बाणका फल) ।
तेज-सम-भावना । १८६ (ध्यान) ।
तैर्थिक (पंथाई) । ५४० (-की प्रव्रज्या ४ मासकी परीक्षाके बाद) ।
त्याग । २९२ (दान) ।
त्रयस्त्रिंश । ५०७ (देवलोक) ।
त्रैविद्य । ७३, २४९ (तीनों विद्याओंका ज्ञाता), २४२ ।
त्रैविद्य-ब्राह्मण । २०४ (त्रिवेदज्ञ ब्रा०) ।
थेर । ४७ (बूढ़ा) ।

थेरवाद । (दे० स्थविरवाद) ।
दक्खिण-जाति । ४४ (पुरुष) ।
दक्खिणा । ७७ (=दान) ।
दक्खिणा-विशुद्धि । ४९६ (=दान-शुद्धि ४) ।
दक्खिणेय्य । २९३, ५०९ (दान-पात्र) ।
दक्खिणेय्य-पुद्गल । ५०९ (आठ) ।
दंड । ७४ (परिवास, मूलप्रतिकर्षणार्ह मानत्वार्ह, मानत्त्व-चारिक, आह्वानार्ह) । ४४९ (=कर्म, कायिक, वाचिक, मानसिक) ।
दंडदीपिका । ३२८, ५१५ (=मशाल) ।
दंतप । ३५ (=नाग, गज) ।
दन्तवल्कलिक । २१६ (दांतसे छाल छीलकर खानेवाला तापस) ।
दम्यसारथी । ३५, १५१ (=चाबुक-सवार) ।
दर्विग्राहक । १८४ (=रसोईदार) ।
दर्शन । २६ (=साक्षात्कार), २७ (ज्ञान), ३२१ (तीन विद्यायें) ।
दव । ३८७ (=क्रीड़ा, मद), ४८५ (सहसा) ।
दशबल । ४८, १५२ (=बुद्ध); ५४ (बुद्धके-) ।
दशवर्ग । ३९४ (दश भिक्षुओंका समूह) ।
दशवस्तु । ५६२ (वज्जिपुत्तक भिक्षुओंके विनय-विरुद्ध दस विधान) ।
दस्यु । २३९ (=दुष्ट) ।
दस्यु । कु-३२० (=छोटा डाकू) ।
दहर । ९१ (अल्प-वयस्क, छोटा), ५३० (तरुण) ।
दहरक । २९१ (=तरुण) ।
दाठा । ५४६ (=दाढ़) ।
दान । ३४९ (भिक्षा, भोजन), ७० (सदाव्रत) ।
दान-उपपत्ति । ५०७ (आठ) ।
दानपति । २३५ (=दायक) ।
दानवस्तु । ५०६ (आठ) ।
दायज्ज । ५७, २७८ (=वरासत) ।
दायाद । ४७ (=वारिस) ।
दाव-पालक । ९९ (=वनपाल, माली) ।
दास । ४२, ४३; १८१ (=गुलाम) ।
दारु-गृह । ३०९ (काठगोदाम) ।
दास-दासी । ३०० (इनाममें) ।
दिव्यचक्षु-ज्ञान । १६, १७, ४६१; २७३ (विस्तारसे) ।
दिव्यश्रोत्र-ज्ञान । ४६७ ।
दिशा-नमस्कार । २७४ ।
दिशाप्रमुख । २९८ (दिगंत-प्रसिद्ध) ।
दिसापामोक्ख । ३०१ (दिगंत-विख्यात) ।
दीर्घरात्र । २२८ (बहुत समय)
दुःख । २३ (आर्यसत्य २), १२४ (=उपादान-स्कंध — रूप, वेदना, संज्ञा, संस्कार, विज्ञान), १२३, १७६,
दुःखता । ४९० (तीन) ।
दुःख-निरोध । २५ (आर्यसत्य ३), १२३ (विस्तारसे) ।
दुःखनिरोध-गामिनी-प्रतिपद् । २३ (आर्यसत्य ४), १२० (विस्तारसे) ।
दुःख-समुदय । २३ (आर्यसत्य), १२४ विस्तारसे) ।
दुःख-स्कंध । २२९ (=दुःखोंका पुँज ।
दुःप्रतिनिस्सर्गी । ५०३ (=हठी) ।
दुर्भरता । ८१ (=कठिनाई) ।
दुर्भिक्ष । ११० (जहां भिक्षा पाना कठिन हो) ।
दुश्चरित । १३८ (काय, वचन, मन), (काय०—हिंसा, चोरी, व्यभिचार ; मन०—लोभ, द्रोह, मिथ्या-दृष्टि; वचन० —झूठ, चुगली, कटुवचन, प्रलाप) १७५ (दुराचार), २३० (पाप), ४८९ ।

दुःशील । ७८, ४९८ (दुराचारी) ।
दुष्कर-क्रिया । २३० (=तपस्या) ।
दुष्कृत [दुक्कट] । ७४, ८३, ९३, १०८, ५६९ (छोटा अपराध) ।
दुष्प्रतिमंत्र्य । १८० (=वाद करनेमें दुष्कर) ।
दुस्स । ७६ (धुस्सा), ५४२ (थान) ।
दुस्सकोट्ठागार । ३२८ (=कपड़ेका गोदाम) ।
दुस्सवणिज्ज । ५५३ (कपड़ेका व्यापार) ।
दुःस्थौल्य [दुट्ठुल्लं] । १०१ (समाधि-विघ्न), १०७ (दुराचार) ।
दृढीकर्म । ३२९ (=रफ़ू) ।
दृष्ट-धर्म । २९ (=प्राप्तधर्म,, ९८ (इसी जन्ममें, तत्काल) ।
दृष्टि । १०५, १२२ (=धारणा, संयोजन), ४८६ (सिद्धान्त) ।
दृष्टि । सम्यक्—(देखो सम्यक्-दृष्टि) ।
दृष्टि-उपादान । १२९ (मतवादका आग्रह) ।
दृष्टिगत । १७० (=धारणामें स्थित तत्त्व) ।
दृष्टि-निध्यानक्षान्ति । ३४२ (कुदृष्टि-सहन) ।
दृष्टि-निध्यानाक्ष [दिट्ठिनिज्झानक्ख] । २२५ (सांदृष्टिक विपाकःधर्म) ।
दृष्टि-परामर्श [दिट्ठि-परामास] । ४८२ (कुदृष्टिभ्रम) ।
दृष्टि-प्रतिवेध । ५०४ (=सन्मार्ग-दर्शन, ।
दृष्टिप्राप्त । २५७ (अर्हत्) ।
दृष्टि-विशुद्धि । ४८९ (सत्यके अनुसार ज्ञान) ।
देव । ५०७ (चातुर्महाराजिक, त्रयस्त्रिंश, याम, निर्माणरति, परनिर्मित-वशवर्ती, ब्रह्मकायिक) ।
देव-ऋषि । ३८३ (बुद्ध) ।
देवता । २५३ (८ प्रकार) ।
देव-निकाय । ५०९ (=देव-समुदाय) ।
देवपुत्र । २ (देवता) ।
देवलोक । ३९ ।
देवस्थान । १४ ।
देशना । २० (=उपदेश), ५५१ (=क्षमा-प्रार्थना) ।
दोहद । ४७५ (गर्भिणाकी किसी चीजकी इच्छा) ।
दौर्मनस्य । ३४ (=दुर्मनता), १२४ ।
द्यूत । २७५ (जुयेके दोष ६) ।
द्व्यंगुलकल्प । ५५६, ५५९, ५६४ (विनय-विरुद्ध-विधान) ।
द्वारकोष्ठक । ७८ (कोठावाला बड़ा द्वार), ४१२ (नौबत-खाना) ।
द्वारशाला । ४५२ (=दालान) ।
द्रोणी । ५३७ (=दोन) ।
धम्मक्कास । २६६ (=धिक्कार) ।
धर्म । ३४ (धातु); १२६ (विचार); ९३, ५४८ (सूत्र); १०५ (४-स्मृतिप्रस्थान, ४ सम्यक्प्रधान, ४ ऋद्धिपाद, ५ इंद्रिय, ६ बल, ७ बोध्यंग, ८ आर्य-अष्टांगिक-मार्ग), ६७, १०८, २२६ (बात), १२; ५१८ (=स्वभाव); १२९ (मनक वि-पय); ४८९, २३९ (परमतत्त्व) ।
धर्म । एकांशिक—१९९ ।
धर्म । पाप-२१ (बुराई) ।
धर्म । व्यवदानीय-११८ (शमथ, विपश्य-ना) ।
धर्म-कथिक । ३ (उपदेशक), ७३ (धर्म-व्याख्याता), ४६९, ५७३ ।
धर्मचैत्य । ४८० ।
धर्मता । २ (=विशेषता) ।
धर्मदान । १४४ (=धर्मोपदेश) ।
धर्मधर । १३४ (सूत्रपिटकपाठी) ।
धर्मधातु । ४९८ (=मनका विषय) ।

धर्मधारणा । २२७ ।
धर्मपर्याय । ३८ (=उपदेश) ।
धर्मविचय । १२२, १२३ (धर्म-अन्वेषण, बोध्यंग) ।
धर्मविनय । २७ (=धार्मिकसंप्रदाय), ७१।
धर्मवादिता । १०७ (१८) ।
धर्मवादिता । अ—१०७ (१८) ।
धर्मवेद । २९३ (=धर्मज्ञान) ।
धर्मसमादान । ४९३ (=धर्मस्वीकार ४) ।
धर्म-सेनापति । २१० (=सारिपुत्र) ।
धर्मस्कंध । ४९९ (४) ।
धर्मस्वामी । ९८ (=बुद्ध) ।
धर्मानुपश्यना । १२१ (५ नीवरणधर्म, ५ उपादानधर्म, १० संयोजनधर्म, ७ बोध्यंगधर्म, ४ आर्यसत्यधर्म) ।
धर्मानुपश्यी । १२७ ।
धर्मानुसारी । २९७ (शैक्ष्य) ।
धर्मानुस्मृति । १९१, २९३ ।
धर्मान्तेवासी । १७१ (निःशुल्कछात्र), २९८ (काम करके पढ़ने वाला) ।
धर्मान्वय । ५२६ (=धर्म-समानता) ।
धर्मासन । ३ (व्यासगद्दी) ।
धातु । ३१, १७६, ४९९ (महाभूत), ५०३ (छ धातु), ४८९ (१८ धातु), ४९० (चित्त ३, लोक ३), ४९० (=तर्क-वितर्क, कुशल-अकुशल) ।
धातु । निस्सरणीय—५०३ (छ) ।
धातुगर्भ । ५२७ (धातुका चहबच्चा) ।
धातुपरिस्रावण । ५१७ ।
धातुमनसिकार । १२० (कायानुपश्यना) ।
धुत-अंग । १४७ (=अवधूतोंके नियम, आरण्यक, पिंडपातिक, पांसुकूलिक, सपदान-चारी) ।
धुतवादी । ४६९ (धुत-अंग-धारी) ।
ध्यान । १३९, १७४, २७१, ३२१, ४९२ (चार, विस्तारसे), ५०९ (विस्तार, चतुर्थ-ध्यानमें श्वासावरोध); ५४१-४२ (प्रथम, द्वितीय, तृतीय, चतुर्थ, आकाशानंत्यायतन, विज्ञान०, आकिंचन्य०, नैवसंज्ञानासंज्ञा०, संज्ञावेदयितनिरोध) ।
ध्यान-सुत्त । १५ ।
ध्रुवपरिभोग । ७५ (सदाके उपयोगका) ।
नक्षत्र । ५७९ (=उत्सव) ।
नगरक । ५३९ (=नगला, छोटा कसबा) ।
नगर-रक्षा । ५२३ (प्राकार और परिखासे-)।
नगरुपकारिका । २१९ (=नगर-रक्षिका, शहर-पनाह) ।
नटी । ७ (नर्तकी) ।
नन्दिराग । १२४ (सुख-संबन्धी इच्छा) ।
नय । २४७ (=न्याय) ।
नल । ४७९ (=नर्कट) ।
नलकार । (=नर्कटका काम करने वाला) ।
नवकर्म । ७२ (गृह-निर्माण) ।
नवकर्मिक । ७२ (=विहार बनवानेका तत्त्वावधायक) ।
नहापक । ४६२ (नहलाने वाला) ।
नहापित । १६८ (=हज्जाम) ।
नहारु । १७६ (स्नायु) ।
नाग । १०३ (बुद्ध), ११६ (पाप-रहित) ।
नागवनिक । १७० (=हाथीके जंगलका आदमी) ।
नागावलोकन । ५३३ (=हाथीकी तरह सारे शरीरको घुमाकर देखना) ।
नाटक । ७ (नृत्य-गान) ।
नाथकरणधर्म । ५१० (दस) ।
नानाकाय-एकसंज्ञा । १३४ (विज्ञानस्थिति, योनि) ।
नानाकाय-नानासंज्ञा । १३४ (विज्ञान-स्थिति, विस्तार) ।

नानात्व-प्रज्ञा [नानत्त-पञ्ञा] । १११ (समाधिविघ्न) ।
नामकाय । १३० (=नाम-समुदाय) ।
नाम-रूप । १७, १३०, ३७७ (प्रतीत्य-समुत्पादका एक अंग) ।
नाली । ४२ (मगधकी), ४३(प्रायः सेरभर)।
नास्तिकवादी । २६१ (विस्तार) ।
निकति । ४६५ (=कृतघ्नता)।
निकेत । ११७ (=घर) ।
निक्षितधुर । ५१० (भगोड़ा) ।
निगंठ । ८६ (=निर्ग्रंथ, ग्रंथि-रहित, ग्रंथि=पाप); १५०, ३२९ (जैनसाधु); २३१ (-स्वभाव) ।
निगम । ५९ (=कस्बा) ।
निघंटु । २१० (=कोश) ।
निदान । १०५, १३० (=समुदय, हेतु, प्रत्यय); ५४९ (कारण) ।
निधान । ५४६ (=चहबच्चा) ।
निधानवती । १७३ (सार्थक) ।
निध्यान । २२६ (=ध्यान), २५७ (निदिध्यासन) ।
निःप्रीतिक । १०२ (=प्रीति-रहित) ।
निपुण । २२६ (=पंडित) ।
निमित्त । १०२ विशेषता), १५७, १७६ (लिंग, आकृति) ।
नियति । २६२ (=भवितव्यता) ।
नियुत । ३५ (=लाख) ।
निरर्गल । ३३५ (सर्वमेध-यज्ञ) ।
निरुक्ति । १३१ (=भाषा) ।
निरुद्ध । १९० (=नष्ट) ।
निरोध । (आर्यसत्य) २५ (=दुःख-नाश), २३ ।
निरोध-धर्म । २४ (=नाशस्वभाववाला)। २५ (नाश होने वाला) ।
निर्ग्रन्थ । ४४४ (=जैन साधु) ।
निर्देश । ५०४ (विस्तार) ।
निर्देशवस्तु । ५०४ (सात) ।
निर्भोज । १३८ (विस्तार) ।
निर्माणरति । ५०७ (देव) ।
निर्याता । २६५ (=मार्गदर्शक) ।
निर्वाण । ९, ३६ (उपधि-रहित पद), ३८१ (अस्तंगमन) ।
निर्वृत । ३७१ (मुक्त) ।
निर्वेद । ३४ (=वैराग्यकी पूर्वावस्था), १७६, १९४, २८९ (=उदासीनता) ।
निर्वेद-प्राप्त । १७८ (उदास) ।
निर्वेधभागीय । ५०३ (संज्ञा ६) ।
निर्वेधिक । ४९९, ५१० (अन्तस्तलतक पहुँचानेवाली) ।
निवासन । १९५ (पोशाक) ।
निवृत । २०७ (=आवृत) ।
निशांति । ५०४ (=विपश्यना) ।
निःश्रित । ४९४ (=आश्रित) ।
निषाद । ३८७ (जाति) ।
निषीदन । ५६१ (बिछौना) ।
निष्क । ४१ (=अशर्फी) ।
निष्कामना । ३८२ ।
निष्क्रमण । ५२३ (=निकलना) ।
निष्ठा । २२५ (श्रद्धा), २५१ (धारणा) ।
निष्पाक । ५०४ (=परिपाक) ।
निस्सरण । १३६ (=छंद-राग छोड़ना) ।
निस्सरण-पञ्ञा । २०६ (बंधनसे निकलनेकी प्रज्ञा) ।
निःसरणीय धातु । ५०० (पांच), ५०३ (छ) ।
निहीन । २१५ (=नीच) ।
नीवरण । १२१, २०७ (५-कामच्छन्द, व्यापाद, स्त्यानमृद्ध, औद्धत्य-कौकृत्य, विचिकित्सा), १७४ (५-अभिध्या, व्यापाद, स्त्यानमृद्ध, औद्धत्य-कौकृत्य,

विचिकित्सा), १९८ (=ढक्कन); २८४, ४६६, ४९८, ९२६ ।
नीलमणि । २९१ ।
नेत्ती [नेत्री] । ४८२ (रस्सी, गांठ) ।
नेगम । ७०, २९७ (श्रेष्ठीसे ऊपरका पद), २३९ (शहरी) ।
नेचयिक-गृहपति । २३९ (नैगम-जानपद-अधिकारी), २३७ (=धनी वैश्य) ।
नैर्याणिक । ९०२ (=वैसा करनेवालेको दुःख-क्षयकी ओर लेजानेवाला), ९२९ (पार कराने वाला) ।
नैवसंज्ञा-नासंज्ञायतन । १३९, ९०७ ।
न्यग्रोध । ९७० (बर्गद ।
न्याय । ११८ (=सत्य), २६१ (निर्वाण), ३४६ (धर्म) ।
न्याय-धर्म । ९४० (=आर्यधर्म=बौद्ध-
पट्ट । ४६ (महार्घ वस्त्र) ।
पट्ट-पिलोतिका । ४९,४७ (=रेशमी वस्त्र)।
पच्छि । २९१ (=टोकरा) ।
पण । २९८ (=बाजी) ।
पतिपत्नी-गुण । १३७ ।
पतोद । २४९ (कोड़ा) ।
पत्तकल्ल । १०९ (=उचित) ।
पत्ति । ३९९ (=पैदल) ।
पद । २६१ (=चिन्ह) ।
पदक । २४३ (=कवि) ।
धिकारी । राज्य—४१० ।
पूर्णी । २० (रक्त-कमल-समुदाय) ।
पूर्वाग्र-अंग । ४०९, ४१० (पांच) ।
पूर्वान्त । १७८ (=महामार्ग) ।
पब्बाजन [प्रव्राजन] । ३११ (देश-निकाला) ।
पब्भार । ९३३ (=पहाड़, प्राग्भार) ।
पमुट । २६३ (=गांठ, मोटा) ।
परचित्तज्ञान । २७३, ४६७ ।
परनिर्मित वशवर्ती । ९०७ (देव) ।
परम-वर्ण । २८१ (परिव्राजक-सिद्धान्त)।
परामृष्ट । ९०२ (=निन्दित) ।
परि-अवदात । १७४ (शुद्ध), ४१७ (सफेद, गोरा) ।
परि-उपासना । २९० (=सत्संग) ।
परिखा । ९२३ (=खांई) ।
परिग्रह । १२९, १३० (=जमा करना), २०७ (स्त्री) ।
परिव्र । २११ (=काष्टप्राकार) ।
परिघ परिवर्तिक । २३० (एक शारीरिक सज़ा) ।
परिचर्या । २७८ (=सत्संग) ।
परिजन । ४३, १९३ (नोकर-चाकर) ।
परिजुञ्ञ । ३५७ (=हानि ४) ।
परिज्ञा । २९० (=त्याग ३—काम-, रूप-, वेदना-) ।
परित्त । १०२ (=अल्प), १३१ (क्षुद्र, अणु) ।
परिदाह । १९८, ९०० (=जलन) ।
परिदेव । १२४ (रोनाधोना) ।
परिनिर्वृत । ३९१ (=मुक्त), ९१७ निर्वाण-प्राप्त, मृत) ।
परिपंथ । २३० (=रहज़नी) ।
परिब्राजक । २ (=साधु), ३८ ।
परिव्राजक-सिद्धांत । २८१ (परमवर्ण) ।
परिभव । ९१ (तिरस्कार) ।
परिभावित । १३९ (सेवित, सेया) ।
परिभिन्न । १७९ (=विकृत) ।
परिवार । ४ (जमात, परिजन), ९० (अनुचर-गण), ३७३ (अनुयायी) ।
परिवास । ७४ (किसी अपराधके कारण संघद्वारा कुछ दिनके लिये पृथक्करण) । ९४० (परीक्षार्थवास) ।

परिवेण । ७१ (आंगन-सहित घर) ३१७, ३३९ (चौक) ।
परिषद् । ९४ (४—भिक्षु, भिक्षुनी, उपासक, उपासिका), ९०७ (आठ) ।
परिष्कार । १२, ३२० (=सामान), ९२ (भिक्षुओंके), ३६९ (उपभोग-वस्तु) ।
परिस्रावण । ९६१ (=जलछका) ।
परुष । १७२ (=कटु) ।
पर्णाकार । ९२२ (=भेंट) ।
पर्यन्त-सहित । १७३ (सिद्धान्तसहित) ।
पर्यवगाढ़ । २४ (=विदित) ।
पर्याय । ३६ (=प्रकार), ३१८ (प्रकारांतर, उपदेश) ।
पर्यायभक्तिक । २८७ (एकदिन निराहार एकदिन आहार करने वाला तापस) ।
पर्याप्त । ९०१ (=शास्त्र) ।
पर्युत्थित-चित्त । ९९२ (भ्रांतचित्त) ।
पर्युपासन । ३६, २२६ (=सेवा) ।
पर्येषण । ७९ (आठ गुरुधर्म) ।
दुर्येषणा । १२९ (तृष्णासे) ।
पलालपीठक । २३० (एक सज़ा) ।
पलास [प्रदाश] । २८७ (=निष्ठुरता) ।
पलासी । ९०२ (=पर्यासी या प्रदाशी) ।
पल्वल । ९२९ (=छोटा जलाशय) ।
पश्यी । १०९ (दर्शी, आपत्ति देखनेवाला) ।
पसिब्बक । २९१ (=बोरा) ।
पस्साव । ११९ (पेशाब) ।
पाक (–यज्ञ) । २१९ ।
पाटिहारिय [प्रातिहार्य] । ८३ (चमत्कार) ।
पाटिहीरक । अ–२०९ (-अप्रामाणिक) ।
पांडु । ८९ (लाल) ।
पांडुकंबल । ८९,२८१ (=लाल दोशाला) ।
पांडुपलाशिक । २१६ (पीले हो गिरजाने वाले पत्तोंको खानेवाला तापस) ।
पात्र । २७ (=भिक्षापात्र) ।
पात्र । मिट्टीका—४३ ।
पादकठलिका । २२ (पैर रगड़नेकी लकड़ी)
पादचार । ८७ (=पग) ।
पादपीठ । २२ (=पैरका पीढ़ा) ।
पादोदक । २२ (=पैर धोनेका जल) ।
पान । १६७(आठ विहित—आम्रपान, जम्बू०, चोच०, मोच०, मधु०, मुद्दिक०, सालू०, फारुसक०) ।
पाप । २९४, २७९ (बुराई) ।
पापधर्म । ७७ (=पापी) ।
पापके-मार्ग । २७९ (चार) ।
पाप-मित्रता-दोष । २७६ (६) ।
पापीयस । १९२ (=बहुत बुरा) ।
पापेच्छु । ३२१, ४३४ (=बदनीयत) ।
पारमिता । १६ (दस) ।
पारमिता । उप—। १६ ।
पाराजिक । ३०८ (द्वितीय), ३१२—१६ (प्रथम), ३११ (-व्याख्या), ३१७—१९ (तृतीय) ३१९—२१ (चतुर्थ) ।
पारिषद्य । २१४ (दर्बारी), २३९ (सभासद्) ।
पाली । ८६ (मूलत्रिपिटक), ३०७ (मेंड), ९८० (पंक्ति, भगवान्‌के मुखकी पंक्ति) ।
पाषण्ड । ९६९ (=मत) ।
पांसुकूल । २३ (=पुराने चीथड़े), ४९ (गुदड़ी), ३८९ (फेंके चीथड़े) ।
पांसुकूलिक । ४९, ८७ (गुदड़ी), १४७ (फेंके चीथड़ोंको सीकर ... वाला), ३०६ (लत्ताधारी) ।
पांसुपिशाचक । २८१ (चुड़ैल) ।
पिंगल-किपिल्लक । ८९ (=मांटा) ।
पिटक । २२४ (=वचन-समूह) ।
पिटक-संप्रदाय । २६३ (=ग्रंथ-प्रमाण) ।

पिंड। ७३ (भोजन, परोसा), ८२, ९९ (=भिक्षा)।
पिंडपात। ४८ (भिक्षा), ७१ (भिक्षान्न), १९६ (भोजन), २६७।
पिंडपातिक। १४७ (सिर्फ मधूकरी मांगकर खाने वाला, निमंत्रण नहीं), २६८ (मधूकरी वाला)।
पिलोतिका। ४६ (=नया शाटक भी किनारेसे फटनेही पिलोतिका कहा जाता है)।
पिशाच। २१३ (=कृष्ण)।
पिशुन-वचन। १७२ (=चुगली)।
पुट। ९२८ (=मालकी गांठ)।
पुट-भेदन। ९२८ (जहां मालकी गांठ तोड़ी जाये, नगर)।
पुंडरीकिनी। २० (श्वेतकमल-समुदाय)।
पुण्य क्रिया-वस्तु। ४११ (पुण्यकर्म ३)।
पुद्गल। ७६ (व्यक्ति, प्राणी), २९४, ९१४ (व्यक्ति), २९६ (मनुष्य), २९७ (सात), ४११ (तीन), ४१७ (चार)।
पुनर्भव। १०३ (आवागमन)।
पुराणद्वितीयिका। ३१९ (भार्या)।
पुरुषमेध। ३६९ (यज्ञ)।
पुलक। १४१ (=चावल, पुलाव)।
पुस्तकार। १९ (=चित्रकार)।
पूग-गामणिक। ४१० (एक समुदायका अफसर, ग्राम-ग्रामणिकके नीचे)।
पूर्व-जन्म-ज्ञान। १६, २७३।
पूर्वनिवास। १६१ (=पूर्वजन्म)।
पूर्वनिवास-ज्ञान। ४३८।
पूर्वनिवास-स्मृति। २८१।
पूर्वनिवासानुस्मृति-ज्ञान। १७४, ४१८ (प्रथम विद्या)।
पूर्वान्त। २८०।
पृथग्जन। २३ (=भूले मनुष्य), ४९ (जिसको तत्त्वसाक्षात्कार नहीं हुआ), ३३७, ४९९ (अज्ञ संसारी जीव)।
पृथिवीकाय। २६१ (पृथिवी)।
पृथिवीधातु। १८८ (अध्यात्म बाह्य पृथिवी)।
पृथिवीसमभावना। १८६।
पेत्तणक। ४१० (=नगराधिकारी, मेयर)।
पेशकार। ४६२ (रंगरेज)।
पेशल। ४८ (अच्छा)।
पोरिसा। १७८ (=पुरुषप्रमाण)।
पौद्गलिक। १६९ (व्यक्तिगत)।
पौरी। १७२ (नागरिक, सभ्य)।
प्रकाशनीयकर्म। ४२९ (दोष खोल देना, एक भिक्षुदंड)।
प्रग्रह। ४८९ (चित्त-निग्रह)।
प्रज्ञप्त। ८३ (=निर्धारित), ९२१ (विहित), ९३१ (किया)।
प्रज्ञप्त। अ-९२१ (-गैरकानूनी, अविहित)।
प्रज्ञप्ति। १९९ (=निरुक्ति, व्यवहार), ९४९ (विधान)।
प्रज्ञप्ति। अनु—९४९ (=संशोधन।
प्रज्ञप्तिक। स—२८६ (=सिद्धांतप्रतिपादक)।
प्रज्ञा। २३ (=विद्या); १३४, २२४ (ज्ञान); ४०१ (तीन)।
प्रज्ञा-इंद्रिय। २९८ (अर्हत्की)।
प्रज्ञाविमुक्त। १३९ (जानकर मुक्त), २९७ (अर्हत्)।
प्रज्ञापन। १३१ (ज्ञान, जताना), २६१ (उपदेश)।
प्रणिधि। ९०७ (=अभिलाषा)।
प्रणीत। २८१ (उत्तम)।
प्रतिक्रांत। ३८ (सुन्दर)।
प्रतिक्षेप। ३३६ (=इन्कार)।

प्रतिग्रहण । १७३ (लेना) ।
प्रतिघ । १२२ (=प्रतिहिंसा, संयोजन), ४९३, ५०७ ।
प्रतिज्ञा । ५४० (=दावा) ।
प्रतिज्ञातकरण । ४८५ (अपराधस्वीकार, Confession), ५०५ (अधिकरण-शमथ) ।
प्रतिदेशना । ९७ (.=क्षमापन) ४८५ (दुष्कर्म-निवेदन) ।
प्रतिनिस्सर्ग । १२५ (=त्याग, मुक्ति), २८६ (वर्जन) ।
प्रतिपद् । २३ (आर्य-सत्य ४), ४९५ (मार्ग) ।
प्रतपन्न । वि—२९८ (=अमार्गारूढ) ।
प्रतिपन्न । सु—१९५ (ठीकसे पहुँचा), १७० (सुन्दर प्रकारसे रास्तेपर लगा) ।
प्रतिवेध । १२८ (=जानना) ।
प्रतिभान । ३७१ (=ज्ञान) ।
प्रतिमा । ४१ (मूर्ति) ।
प्रतिश्रय । ४९९ (आश्रय) ।
प्रतिसंख्यान । ४८९ (=अकंपन-ज्ञान) ।
प्रतिसंवित् । ४५, ४८ ।
प्रतिसंवेदन । ४१८ (=अनुभव) ।
प्रतिसम्मोदन । ६८ (प्रणामापार्ता), ३१९ (कुशलप्रश्न) ।
प्रतिसंल्लयन । ५०४ (=एकान्तवास) ।
प्रतिसंस्तार । ४९९ (स्वागत) ।
प्रतिसारणीय कर्म । ५५६ (संघ-दंड) ।
प्रतिस्मृत । ४९३ (याद रखनेवाला) ।
प्रथमध्यान । ६ (जामुनके नीचे) (दे० ध्यान) ।
प्रथमबोधि । ३८८ ।
प्रदक्षिण-ग्राही । ५१० (=समर्थ) ।
प्रदहन । २२६ (=पराक्रम) ।
प्रतिहरण । १९५ (=प्रमाण) ।
प्रतीत्य-समुत्पन्न । १०५ (=संस्कृत, निर्मित), १३३ (=कारणसे उत्पन्न, अनित्य= संस्कृत = कृत = क्षयधर्मा = व्ययधर्मा = विरागधर्मा = निरोधधर्मा), १७९ (=कारणकरके उत्पन्न), २९२ (कृत्रिम) ।
प्रतीत्य-समुत्पाद । १९ (दुर्दर्शनीय), १७९ (की महिमा) ।
प्रतीत्य-समुत्पाद-विस्तार । १२८-१३४ ।
प्रतीत्य समुत्पाद-ज्ञान । १६, १७, १९ (अनुलोम, प्रतिलोम) ।
प्रत्यन्त । ५७६, ५७७ (=सीमान्त) ।
प्रत्यय । १११ (कार्य), १९२ (कारण), ३३९ (ग्राह्यवस्तु), ५७ (भिक्षुओंको अपेक्षित चार वस्तु) ।
प्रत्यवेक्षा । ६६ (=देखभाल), ६७ (परीक्षा), १०८ (मिलान, खोज) ।
प्रत्याख्यान । २४३ (=अपवाद) ।
प्रत्यात्म । १८५ (प्रतिशरीर, इसी शरीरमें) ।
प्रत्युत्थान । २२, ६१ (=सत्कारार्थ खड़ा होना) ।
प्रत्युद्गमन । १६७ (=अगवानी) ।
प्रत्युपस्थान । ७६ (=सेवा), २७८ (प्रत्युपासना, सेवा) ।
प्रत्यूष । ६९ (=भिनसार) ।
प्रत्येक-बुद्ध । (देखो बुद्ध) ।
प्रधान । २२७ (=प्रयत्न), २८६ (निर्वाण-संबन्धी प्रयत्न), २९५ (= अभ्यास, योग-प्रयत्न), ३४२ (उपक्रम), ४२० (=निर्वाण-साधना), ४८९ (=निरन्तर अभ्यास), ४९४ (चार), ४९९ (योगाभ्यास), ४१५ (निर्वाण प्राप्त करने वाली योग-युक्ति); ५३८ (=निर्वाण-साधन) ।

प्रश्रान्तात्म । २९८ (समाहित-चित्त) ।
प्रश्रानीयांग । ४२० (पंच), ४९१ (प्रधान के अङ्ग ५) ।
प्रव्रजित । ८ (संन्यासी) ।
प्रव्रज्या । २७ (=संन्यास) । २४ (=अ-गेर-संन्यास), ८७ (त्रिशरण-गमन से), १४७ (=श्रामेणभाव) ।
प्रभास्वर । ८६ (सूर्य-प्रकाशके रङ्गका) ।
प्रमत्त । २७४ (आलसी=भूल करनेवाला) ।
प्रमाद । २५७ (आलस्य, भूल) ।
प्रमाद । अ—५७० (आलस्यका अभाव) ।
प्रमाद-स्थान । ७६ (प्रमाद करने की जगह) ।
प्रमुख । ८६ (=चबूतरा); ५४३ (मुखि-या) ।
प्रयतपाणि । २६३ (खुलाहाथ दानी) ।
प्रवचन । १६७ (=वाचन), २२४ (अ-ध्ययन, वेद) ।
प्रवाद । २६८ (=खंडन) ।
प्रवारणा । ५५ (आश्विन पूर्णिमा, पारणा) ।
प्रवृत्तफलभोजी । २१६ (तापस व्रत) ।
प्रवेदित । ७८ (=दिखलाया) ।
प्रवेणी । ४७३ (=वंशानुगत) ।
प्रवेणी-पुस्तक । ५३१ (=कानूनकी कि-ताब) ।
प्रश्न । महा-२८९ (१—१०) ।
प्रश्नव्याकरण ४ । ४९५ (प्रश्नोत्तर) ।
प्रश्रब्ध । १९० (अचंचल); १७७, ४६७ (=स्थिर) ।
प्रश्रब्धि । १२३ (शांति, बोध्यंग) ।
प्रसन्न । १६३, ५२०, ५३९, ५६९(=श्रद्धा-वान्); १६४ (निर्मल), १७७ (स्व-च्छ) ।
प्रसाद । ७६ (=श्रद्धा) ।
प्रसाधन । ३३८ (=जेवर) ।
प्रहाण । ११७ (परित्याग) । २३१, ३८३ (विनाश), ४९४ (अस्वीकार) ।
प्रहातव्य । २४ (=त्याज्य) ।
प्रहीण । २४ (=छूट गया) ।
प्राकृत-इंद्रिय । १४९ (=साधारण काम-भोगी जनों जैसा) ।
प्राग्भार । ४११ (सामने झुका, पब्भार= पहाड़) ।
प्राणायाम । ४१६ (देखो आणापानसति) ।
प्रातिपुद्गलिक । ७७ (=व्यक्तिगत, सम-ष्टिगत नहीं) ।
प्रातिभोग । ३२८ (=ज़ामिन) ।
प्रातिमोक्ष [पातिमोक्ख] । १४२, ४८२ (भिक्षुनियम) ।
प्रातिमोक्ष-उद्देश । २६८ (=अपराध-स्वीकार) ।
प्रातिमोक्षसंवर । २९६ ।
प्रातिहार्य । ६ (=चमत्कार), २६८ (कारण), ४९२ (तीन); ४३४ (तीन—ऋद्धि०, आदेशना०, अनुशा-सनीय०) ।
प्रातिहार्य । अनुशासनीय—४३४ ।
प्रातिहार्य । आदेशना—४३४ (व्याख्या-नका चमत्कार) ।
प्रातिहार्य । देवावरोहण यमक—८९ ।
प्रातिहार्य । यमक—८८ (देखो यमक-प्रातिहार्य) ।
प्रामुख्य । ३० (=मुख्य) ।
प्रायश्चित्त । ३९६ ।
प्रयाश्चित्तिक [पाचित्तिय] । ५६४, ५६५ (संघ-दंड) ।
प्रावरण । १५६ (चादर) ।
प्राशुविहार । ४२३ (सुख-पूर्वक विहरना) ।
प्रियभाणी । २७७ (सदा प्रिय वचनही बोलने वाला) ।

प्रियसमुदाहार । ५१० (दूसरेके उपदेशको श्रद्धा-पूर्वक सुननेवाला, स्वयंभी उपदेश करनेमें उतनाही) ।
प्रीति । ६७ (प्रमोद), १२२ (हर्ष, बोध्यंग), ३७४ (खुशी) ।
प्रेत्यविषय । ४९७ (भूत, प्रेत) ।
प्रेक्ष्य । ४६९ (=नाटक) ।
प्रेष्य । २३७ (=नौकर) ।
प्लीहा । १२०, १७६ (=तिल्ली) ।
फल । ६५ (सोतापत्ति, सकिदागामिता, अनागामिता, अरहत्त) ।
फलमूलाहारी । २१७ (तापसव्रत) ।
फल-साक्षात्कार । ३२१ (स्रोतआपत्तिफल-साक्षात्कार, सकृदागामि०, अनागामि०, अर्हत्व०) ।
फाणित । २३९ (=गुड़) ।
फारुसक । १६७ (फालसा) ।
फारुसक-पान । १६७ (फालसेका रस) ।
फासु । १०३ (अनुकूलता) ।
फुफ्फुस । १७६ (फेंफड़ा) ।
बडिशमांसिका । २३० (एक शारीरिक-दंड) ।
बंधु । २११ (=ब्रह्मा) ।
बंधुक-रोग । ४७८ (बंधु बिछोहसे उत्पन्न शोकही रोग) ।
बब्बज । ३२० (रस्सी बटनेका तृण) ।
बल । ४८२, ५३३ (बुद्धसाक्षात्कृत धर्म ५), १०४ (छ), ४९५ (चार), ५०४ (सात) ।
बलकाय । १६६ (सेना), ३२७ (लोग-बाग, लाव-लश्कर) ।
बलभेरी । ५२३ (सैनिक नगारा) ।
बलि । २३४, ५२१ (=कर) ।
बल्वज । २५५ (देखो बब्बज) ।
बहुकार । २२७ (=उपकारी) ।
बाल । ९८ (अज्ञ), ३६०, ४४० (मूर्ख) ।
बालवेध । ७ (धनुष-लाघव) ।
बाल-व्यजनी । ९० (मोरछल) ।
बालसंघाट-यंत्र । ५४७ ।
बाहिरास । १४९ (बहिर्मुख-चित्त) ।
बाहुलिक । २२, ४१८ (बहुत जमा करने वाला) ।
बाहुल्यपरायण । (देखो बाहुलिक) ।
बाहुसच्च । १४३ ।
बिंब । (=आकार) ।
बिलंग-थालिक । २३० (एक शारीरिक-दंड) ।
बुक्क । १७६ (कलेजेके पासका एक मांस-पिंड)।
बुद्ध । १, २१४, २३९ (परमतत्त्वज्ञ), ३३८ (रोगिसुश्रूषामें) ।
बुद्ध-अंकुर । ४ ।
बुद्ध । निर्मित—८६ (योगबलसे उत्पादित बुद्ध-रूप) ।
बुद्ध । प्रत्येक—१ ।
बुद्ध-विषयकस्मृति । ६८ ।
बुद्धानुबुद्ध । १४८ (श्रावक) ।
बुद्धानुस्मृति । ३५, ६८, १९१, १७२, २५३ ।
बोधि-अङ्ग । १०४ (सात) ।
बोधि । प्रथम—७५, ३३६ (बुद्धत्वसे प्रथम २० वर्ष) ।
बोधि-सत्त्व । २ ।
बोध्यङ्ग । १२२, १२३, २६९ (सात—स्मृति, धर्मविचय, वीर्य, प्रीति, प्रश्रब्धि, समाधि, उपेक्षा), २८२, ५३३ (बुद्ध-साक्षात्कृत धर्म); ५०४ (सात), ५२४ (७ अपरिहाणीय धर्म) ।
बौद्ध-धर्म । ५४० (=न्याय-धर्म= आर्यधर्म) ।
ब्रह्म । ३९० (श्रेष्ठ), ४५४ (निर्वाण) ।

ब्रह्मचय । १४१ (संप्रदाय) ।
ब्रह्मचर्य । आदि-११४ (शुद्ध ब्रह्मचर्य) ।
ब्रह्मचर्यचरण । ३२, ३९ ।
ब्रह्मचारी । स-६७, २५० (गुरुभाई) ।
ब्रह्मदंड । २१९ । ५५२ (के देनेका प्रकार), ५५४ ।
ब्रह्मबंधु । ४८ (=उत्तम), ३६६ (ब्राह्मण जातिका) ।
ब्रह्मलोक । ३९ ।
ब्रह्मविहार । ३८६ (चार भावनायें) ।
ब्रह्माके पैरकी संतान । २११ (नीच, ब्रह्मा=पशु) ।
ब्राह्मण । (=संत) ३८६, (पांच प्रकारके— ब्रह्मसम, देवसम, मर्याद, संभिन्न-मर्याद, ब्रह्मचांडाल) । १८१, ५१३ (के सेवक दूसरे वर्ण) २१९ (में असवर्ण विवाह)
ब्राह्मण-ऋषि । १८३, १८५ (ब्रह्मर्षि) ।
ब्राह्मणका धर्म । २४२ (पांच—सुजात, मंत्रधर, वर्ण, शील, दक्षिणार्ह) ।
ब्राह्मणधर्म । पुराण-३८९ (पांच) ।
भगिनीसंवास । २१३ ।
भणे । ४४ ('हे' 'रे' की जगह संबोधन)।
भंडन । ९८, ४८८ (कलह)।
भत्तवनेन । २३९ (=भत्ता वेतन) ।
भदन्त । ५९ ।
भद्र । ५३० (=सुंदर) ।
भन्ते । ४ (=स्वामी, पूज्य) ।
भव । १७ (प्रतीत्य) २३ (जन्म); ४३, १२९ (लोक), १२४ (आवागमन), १२९ (काम-, रूप-, अरूप-), ३९७ (=संसार) ४८९ (आवागमन, नित्यता); ४९० ।
भवतो । ११९ (=आप, स्त्रीके लिये ।
भवनेत्री । ५२९ (=तृष्णा) ।
भवाभव । १८९ (होना न होना) ।
भवराग । १२२ (आवागमन-प्रेम, संयोजन) ।
भव्यचित्त । ८ (=मृदुचित्त) ।
भस्स । ५२४ (=बकवाद) ।
भस्सकारक । १०६ (कलह-कारक) ।
भात । ५३० (=भोजन) ।
भावना । ११३, १८६, १८७ (मैत्री करुणा, मुदिता, उपेक्षा), १८९ (ध्यान); १८६, १८७ (अशुभ-,अनित्य-, आणापान-सति—) । २९६ (रागादि-प्रहाणार्थ), ४११ (तीन) ।
भावनाराम । ४९४ ।
भिन्न । १७२ (फूटमें पड़े) ।
भुजिस्स । २०३, ५०२ (उचित) ।
भूत । १२८ (जात), ३६२ (यथार्थ), ५३८ (जात, संस्कृत). (प्राणी) ।
भूतगाम । १७३ (=भूत-समुदाय) ।
भूतवादी । १७३ (=यथार्थ बोलनेवाला) ।
भूमिकर । १६९ ।
भेद । ४२९ (=नानात्व), ५२२ (फूट) ।
भैषज्य । ७१ (औषध) ।
भो । ३६७ (=जी !), ४१२ (=हो !) ।
भोगका उदाहरण । ३०० ।
भोज-राजा । १६४ (मांडलिक राजा) ।
भ्रमकार । ११९ (खरादी) ।
मंगलकर्म । ५७ ।
मद्गुर । १९६ (मंगुर मछली) ।
मणिक । १६२ (मटका) ।
मज्जा । १७६ (अस्थि—) ।
मत्सर । २८७ (=कृपणता) ।
मंच । ३२० (=चारपाई) ।
मंचशिविका । ४६१ (=डोली) ।
मध्यदेश । [मज्झिम-जनपद] ५०९।
मद । ४११ (तीन) ।
मधुपान । १६७ (शहदका रस) ।

मधुपिंड । १८ (लड्डू) ।
मध्यम-प्रतिपद् । २३ (मध्यममार्ग) ।
मन ।. ३४ (धातु) ।
मनाप । १७७ (इष्ट, प्रिय) । ६०, १७७ (प्रिय, अप्रतिकूल, इष्ट) ।
मनसिकार । १७९ (विषयज्ञान) ।
मनसिकार । अ—१०१ (मनमें दृढ न करना, समाधिविघ्न) ।
मनोमय कायनिर्माण । ४६९ ।
मनोविज्ञान । ३४ (धातु) ।
मंत्र । २१९, ३७९ (=वेद) ।
मंथ । १८ (=मट्ठा) ।
मन्दारव । ५४३ (एक दिव्यपुष्प) ।
मर्ष । २८७ (=आमर्ष, अमरख) ।
मल्ल । ९२ पहलवान ।
मसककुटी [मकसकुटी] । ९३ (मसहरी) ।
मसारगल्ल । ५४७ (कबरमणि) ।
मह । ५४६ (=पूजा) ।
महद्गत । १२१ (महापरिमाण) ।
महर्द्धिक । ४४४ (दिव्यशक्तिधारी) ।
महल्लक । १३७ (=वृद्ध), ५७४ ।
महानुभाव । ३३३ (=महानृद्धिमान्) ।
महापुण्य । १९२ ।
महापुरुषलक्षण । ४४ (सात, बत्तीस) । १६३ (सामुद्रिकशास्त्र) ।
महापुरुषविहार । ५६३ (शून्यताविहार) ।
महाप्रदेश । ५३४ (बुद्ध-वचनकी कसोटी ४) ।
महाभूत । १७६ (धातु) ।
महामात्य । ५२० (=महामंत्री) ।
महामुनि । ५५ (बुद्ध) ।
महाराज । ८५ (चार) ।
महाराजिक । चातुर—१८७ (देव) ।
महालता-प्रसाधन । ३२८ (एक प्रकारका ज़ेवर) ।
महावीर । ५५ (बुद्ध) ।
महाशयन । १७३ (उच्चशयन) ।
महाशब्द । २८४ (=कोलाहल) ।
महाशाल । २३५ (प्रतिष्ठित धनी), ३६४ (महावैभवसंपन्न), ५३८ (महाधनी) ।
महाश्रावक । (देखो श्रावक । महा—) ।
महिका । ५५७ (=कुहरा) ।
महेसक्ख । २५१ (=महासामर्थ्यवान्), ५२८ (महाशक्तिशाली) ।
महा-ओघ । ३७१ (=बाढ़) ।
माणवक । १८० (विद्यार्थी), २२१ (ब्राह्मण तरुण), ५६८ (ब्राह्मण-पुत्र) ।
मांजिष्ठ । ८६ (मजीठके रंगका, लाल) ।
मांजेष्ठिक । ८० (ऊखका लाल रोग) ।
माता-पिताका सन्मान । २७८ ।
मातृग्राम । ३२६ (=स्त्री), ७८ (स्त्रियां)।
मात्रशः । २५७ (कुछ मात्रामें) ।
मात्रिकाधर । ५३४, ५५९ (अभिधर्मज्ञ)।
मात्सर्य । १२२ (संयोजन), १३० (उत्पत्ति-क्रम), ४१८ (=हसद, पांच) ।
मान । १३२ (अभिमान, संयोजन)।
मानत्वचारिक । ७४ ।
मानत्वार्ह । ७४ ।
माया । २८७ (=वंचना) ।
मायावी । ४७४ (छली) ।
मार । १६९ (राग आदि शत्रु) ।
मार-लोक । ३९ ।
मार्ग । २९ (दुःखनाशका उपाय), २४७ (अष्टांगिक-) ।
मार्ग-भावना । (४ स्मृतिप्रस्थान, ४ सम्यक्प्रधान, ४ ऋद्धिपाद, ५ इंद्रिय, ५ बल, ७ बोध्यंग, आर्य-अष्टांगिक मार्ग) ।
मार्ग-सुख । १९ ।
मार्ष [मारिस] । ११, १८ (देवता अपने समानवालेको मार्ष कहते हैं) ।

मासक । ३११ (=मासा, ५ मापक = १ पाद, ४ पाद = १ पुरातन नील कहापण)।
मांसभोजन । ४२३ ।
मिथ्यात्व । ५०५ (सूत्र, ८) ।
मुंडक । २११ (शिर-मुंडा), ३८९ (सुदके लिये) ।
मुंडक श्रमण । २२७ (इभ्य, शूद्र) ।
मुदिताभावना । ११३, १८६ (सुखीको देख प्रसन्न होना), ३४८ ।
मुद्दिक । १६७ (मृद्विका, अंगूर) ।
मुद्रिक । ४६२ (हाथमे गिनने वाला) ।
मूर्छा । ३७७ (=अविद्या))
मूर्छापात । ३७४ ।
मूर्छापातिनी । ३७७ (=विद्या) ।
मूर्धाभिषिक्त । ४१० (अभिषेक-प्राप्त) ।
मूलदायक । ५६२ (=प्रतिवादी) ।
मुलप्रतिकर्षणार्ह । ७४ (विनयकर्म) ।
मृद्ध [सिद्ध] । ४०९ (=आलय) ।
मेरय । ७६, ५५७ (कच्ची शराब) ।
मैत्रचित्त । १८२ ।
मैत्रीभावना । ११३, १८६ (सबको मित्र समझना), ३४८ ।
मैत्रीविहार । ५६२ (=कुशल विहार) ।
मोघ । ११८ (मिथ्या) ।
मोघपुरुष । ३२ (मूर्ख), १६९, २५८ (नालायक) ।
मोचपान । १६७ (केलेका शर्बत) ।
मोमुह । २६४ (=अतिमूढ) ।
मोह । ३४ (अग्नि) ।
म्लेच्छ। ५०९ (=अपंडित) ।
यकृत । १७६ (कलेजेके पास एक मांस-पिंड) ।
यक्ष । १२८ ।
यजन । १६६ (पूजा) ।
यज्ञ । ३६ (अश्वमेध, पुरुषमेध, वाजपेय, निर्गल), २३२-३४ (सोलह परिष्कार त्रिविध-यज्ञ-संपदा) ।
यज्ञ-पशु । २४१ (गो-आदि) ।
यज्ञवाट । २३७ (=यज्ञस्थान) ।
यथाकाम । ९९ (मौजसे) ।
यथापर्याप्त । ५०१ (=धर्मशास्त्रके अनुसार) ।
यद्भूयसिक । ४८३, ५०० (अधिकरण-शमथ) ।
यम । २०६ (देवता) ।
यमक । ५३७ (=जोड़े) ।
यमकप्रातिहार्य । ८६ (दे० प्राति०) ।
यवागू । ३३४ (=पतली खिचड़ीके दस-गुण) ।
यवागूखाद्य । ३८९ ।
यष्टिमधु । १४ (जेठीमधु) ।
यागू । ८८ (खिचड़ी) ।
याचितकूपम । १६० ।
याजक । ३६६ (=पुरोहित) ।
यापनीय । ९९ (=अच्छी गुजर), ३१९ (=शरीर-यात्रा-योग्य), ३९६ (शरीर की अनुकूलता) ।
याम । १६, ५३६ (=रात्रिका तृतीयांश); ५०७ (देवता) ।
युवराज । ५७१ ।
यूप । २३७ (महास्तम्भ, जिस पर यजमान-राजा अमात्य आदिका नाम लिखा रहता था) ।
योग । ४९६ (चार) ।
योग-क्षेम । २५७ (=निर्वाण) ।
योजन । ३, २१० (=४ गव्यूति) ।
योनि । ४९६ (चार) ।
योनिसो । २४१ (=ठीकसे) ।
रण । ४७ (=मल) ।
रण । स—४४ (मल-युक्त) ।

रक्तग्र । ४६९, ५२४ (=धर्मानुरागी) ।
रक्तग्र-महत्त्व । [रतञ्ञु-महत्त] ४६९ ।
रजोजल्लिक । (कीचड़ लपेट कर रहना, तप)
रति । अ—६४ (=असंतोष) ।
रभस । २१२ (=बकवादी) ।
रव । ५८९ (=प्रमाद) ।
रस । ३४ (=धातु) ।
रहस्य । ३७ (=एकान्त) ।
राग । ३४ (अग्नि) ।
राजकुल । २९१ (राजा) ।
राजन्य । २१८ (अभिषेकरहित कुमार), (राज-सन्तान) ।
राजपुरुष । ५४ (राजाका नौकर) ।
राजपुरुषता । ३८६ (=सर्कारी नौकरी) ।
राजपोरिस । (राजाकी नौकरी) ।
राजबल । ३२७ (राजाके नौकर चाकर) ।
राजा । ५२१ (=राष्ट्रपति, उपराजके ऊपर) ।
रजान्तःपुर । ५९७ (=राजदर्बार) ।
राज्य-आय । ५२१ (शुल्क, बलि, दंड) ।
राशि । ४९० (तीन) ।
राष्ट्रपिंड । ४७, ३२०, ३२१ (राष्ट्रका अन्न) ।
राष्ट्रिक [रट्ठिक] । ४१० (=गवर्नर, प्रदेशाधिकारी) ।
राहु । ८ (=बंधन) ।
राहुमुख । २३० (=एक सज़ा) ।
रित्तास । (=शून्य हृदय) ।
रुचि । १६४ (=कांति), २२९ (सांदृष्टिक-विपाकद-धर्म) ।
रुद्र । २३१ (=भयंकर) ।
रूप । १४ (धातु), १७९ (मूर्ति, शरीर) ।
रूप । अ—(=रूप-रहित-निराकार) ।
रूप-उपादान-स्कंध । १७६ ।
रूप-संग्रह । ४९० (तीन) ।
रूपी । १९६ (रूपवान्, साकार) ।
लक्षण । ९ (निमित्त) ।
लक्षण । महापुरुष—२१९ (बत्तीस) ।
लघूत्थान । ४१२ (शरीरकी कार्य-क्षमता), ५२० (फुर्ती) ।
लक्ष्मी । १७२ ।
लंचा । ३८८ (घूस, रिश्वत) ।
लट्ठि [यष्टि] । ३९ (यष्टी, लाठी) ।
लसिका । १२० (=केहुनी आदिके जोड़ोंमें स्थित तरल पदार्थ) । १७७(=कर्णमल) ।
लाभी । ७२ (पानेवाला) ।
लोक-आख्यायिका । १८९ ।
लोकज्येष्ठ । ८७ (बुद्ध) ।
लोह । (देखो ताम्रलोह) ।
लोहभाणक । २९९ (वर्तन) ।
लोहवारक । २९९ (वर्तन) ।
लोहित । ८६, ५२० (लाल) ।
लोहितपाणि । ३७१ (खूनसे रंगे हाथ वाला) ।
लोहितांक । ५४७ (पद्मराग-मणि) ।
वचोपरम । २७६ (=केवल बात बनाने-वाला) ।
वणिक्पथ । ५२८ (=व्यापार-मार्ग) ।
वणिब्बक । २३६ (बन्दीजन) ।
वनप्रान्त । १७३ ।
वंदनीय । ७९ ।
वंदनीय । अ—७४ ।
वपितशिर । १८० (मुंडितशिर) ।
वर । ५८ ।
वर्ण । २१२ (चार—ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र), २४२ (=रूप, ब्राह्मणकर धर्मों में),२८२(तारीफ); ४४२ (प्रशंसा) ।
वर्षावास । ७९ (बुद्धके ४६) ।
वशवर्ती । २०७, २०९, (=जितेंद्रिय), (मार) ।

वसा । १६७ (चर्बी) ।
वस्तिगुह्य । १३४ (पुरुषकी जनन-इन्द्रिय, =लिङ्ग) ।
वस्तु । १०७, ५६९ (=घात); १०९ (मामला); ५४१ (कथा, विषय) ।
वाजपेय । ३६० (यज्ञ) ।
वाद । (मत, सिद्धान्त)। ४६३ (अक्रिय-, अमरविक्षेप-, अहेतु-), १०६, ४६३ (उच्छेद-); १०९ (शाश्वत-), ४६३ (चातुर्यामसंवर-) ।
वामकी । १७१ (बँवनी हथिनी) ।
वामजाति । ४४ (स्त्री) ।
वायुधातु । १७८ (वायु महाभूत): १७६, १७७, १८६, (अध्यात्म, बाह्य) ।
वायुसमभावना । १८६ ।
वार्षिक । ८० (=जूही फूल) ।
वासी । २९९ (=वँसुला) ।
वास्तु । ५२८ (घर, निवास) ।
विकाल । १६७ (=मध्याह्नोत्तर) ।
विकाल-भोजन-विरत । १७३, २९९ (मध्याह्नोत्तर भोजन न करनेवाला) ।
विकाल-भोजन-विरति । २९९ (के गुण)।
विक्षिप्तक । १२० (कायानुपश्यना, फेंके मुर्देपर भावना करना) ।
विखादितक । १२० (कायानुपश्यना, खाये मुर्देपर भावना करना) ।
विगर्हणा । ११२ (निंदा) ।
विग्रह । २०३ (विवाद), ५९० (हत्या) ।
विघात । १९८ (=पीड़ा) ।
विचार । १७४ ।
विचिकित्सा । १०१ (समाधि-विघ्न), १२१ (=संशय, नीवरणमें), १२२ (संयोजनमें), १७४ (=संदेह, ५ नीवरणोंमें) ।
विछड्डितक । १२० (कायानुपश्यना, खाकर छोड़ दिये गये मुर्देपर भावना करना) ।
विजनवात । ७० (आदमियोंकी हवासे रहित) ।
विजित । ४२६ (=राज्य) ।
विज्ञान । १७ (प्रतीत्य०), १३१ (चित्त-धारा, जीव), २७२ (चेतना), ३८० (जीव) ।
विज्ञान-काय । ५०१ (छ चेतन-समुदाय) ।
विज्ञान-स्थिति । १३४—३९
(१. नानाकाय नानासंज्ञा,
२. ,, एकसंज्ञा,
३. एककाय नानासंज्ञा,
४. ,, एकसंज्ञा,
५. आकाशानन्त्यायतन,
६. विज्ञानानन्त्यायतन,
७. आकिंचन्यायतन), ४९९ (चार), ५०४ (=योनि, सात) ।
विज्ञानानन्त्यायतन । १३९ (विज्ञान-स्थिति), १७४, १९४ (समा[illegible] ५०८ ।
वितर्क । (विषय-तृष्णाके बाद उस संबन्धमें जो तर्क वितर्क होता है), १७४, २९९ (तीन—काम-, व्यापाद-, विहिंसा-) ।
वितर्क । अकुशल— । ४८९ ।
वितर्क । कुशल— । ४९० (तीन) ।
वितान । ५४३ (चँदवा) ।
विद्या । १३९-४० (तीन), २१६, २४९ ।
विद्याचरण । २१६ ।
विद्याचरण-संपदा । २१७ । २१६-१८ (के विघ्न) ।
विद्या । तिरश्चीन— ४६४-६५ ।
विध । ४९० (=प्रकार) ।
विनय । ५३४ (=भिक्षु-नियम, सूत्रमें), ५०४ (=त्याग) ।
विनय-कर्म । ५६६ (नियमोल्लंघन करनेपर भिक्षुके दंड, और प्रायश्चित्तका निश्चय करना) ।

विनयधर । ७३, ९७, ६३४, ५५९ (विनय-पिटक-पाठी) ।
विनयन । १३८ (हटाना) ।
विनायक । ३० (=नायक),४१८ (नेता)।
विनिपात । १७५ (नर्क, दुर्गति) ।
विनिपातिक । ५०४ (=पापयोनि) ।
विनिश्चय । १३०, ४७५ (न्याय, न्याय-विभाग), ५६३ (फैसला) ।
विनिश्चय-महामात्य । ५२१ (=न्यायाधीश), ५२३ ।
विनिश्चय-शाला । ४६० (कचहरी, अदालत)
विनीत । ४२५ (शिक्षित) ।
विनीलक । १२० (कायानुपश्यनामें; मरकर नीले पड़ गये, मुर्देपर भावना करना) ।
विनीवरण । (=ढांकना) ।
विनीवरणता । ३२१ (रागसे चित्तकी विनीवरणता, द्वेषसे०, मोहसे०) ।
[illegible]रिणामधर्मता । १७७ (=अनित्यता)।
[illegible]णामधर्मा । अ-१०५ (नित्य) ।
[illegible] । १४४ (=प्रज्ञा) ।
[illegible] (भोग) ।
[illegible] (वृद्धि) ।
वि[illegible] १२० (कायानुपश्यना, सड़े मुर्देपर भावना करना) ।
विप्पटिसार [विप्रतिसार] । ५३६ (=चिंता, खेद) ।
विप्रतिसार ।२३६ (चित्त-मलिनता) ।
विभज्यवादी । २८५ (-विभागकर प्रशंसनीय अंशका प्रशंसक, निंदनीय अंशका निंदक), ५७४ ।
विभव । २३, १२४ (=धन), ४८९ (उच्छेद) ।
विभाज्य । अ-२५४ (नहीं बांटने योग्य ५ वस्तुयें) ।
विभूति । २१९ (संशय) ।
विमर्शी । २६३ (तार्किक) ।
विमान । देव-५, ७ (त्रयस्त्रिंशलोकके उपरके देवताओंके चलते फिरते घर) ।
विमुक्ति । २४ (=मुक्ति), १७३ ।
विमुक्त्यायतन । ५०१ (पांच) ।
विमुक्तिपरिपाचनीयसंज्ञा । ५०१ (पांच)।
विमोक्ष । १३५, २७०, ३२१, ५७० ।
विरज । २५ (=विमल) ।
विरूढि । १३१ (=वृद्धि) ।
विरेचन । ३०५ (जुलाब, संघकर) ।
विवर्त । १७४ (सृष्टि) ।
विवर्त-कल्प । १७४ ।
विवाद-अधिकरण । ४८३ (विस्तार) ।
विवादमूल । ४८२, ५०२, (छ) ।
विवाह । १७२, १८३ (अनुलोम-प्रतिलोम); २१९ (असवर्ण-) ।
विवेकज । ४१८ (एकान्तसे उत्पन्न) ।
विवेक । प्र-१०३ (एकांतसुख), ४६३ (एकांत) ।
विशारद । ४९८ (अ-मूक) ।
विशारदता । १९० ।
विशिखा । १८९ (चौरस्ता) ।
विशिखाचर्या । २७५(चौरस्तेका घूमना) ।
विशुद्धापेक्षी । ३२१ (गृही, उपासक, आरामिक, या श्रामणेर होनेको इच्छावाला)।
विशुद्धि । ७७ (शुद्धि) ।
विसंयोग । ८१ (=वियोग, अलग होना), ४९६ (चार) ।
विहार । ७० (भिक्षुओंके रहनेका स्थान), ७१ (=भिक्षुविश्रामस्थान), २११ (कुटी, निवासघर); २५२, ४९२ (मैत्री, करुणा, मुदिता, उपेक्षा आदि भावनायें); ३२०(=मठ); ३३२, ४०९, ४४०, ५३८ (कोठरी) ।
विहिंसा । १८६ (हिंसा, परपीड़ा) ।

बीजगाम । १७३ (बीज-समुदाय), ४६० (पांच भेद) ।
बीणा । वेलुवपंडु--९० (वेणुकी लाल वीणा)।
वीत-छंद । ५०० (=विगतप्रेम) ।
वीर्य । १२२, १२३, १७७ (उद्योग, वो-ध्यंग), ५३२ (=मनोबल) ।
वीर्यइंद्रिय । २९८ (अर्हत्‌को) ।
वीर्यारम्भ । ८१ (=उद्योगिता) ।
वृक्षदेवता । १९ ।
वृक्षमूलिक । ८७ (सदा वृक्षके नीचे रहने-वाला श्रमण) ।
वृषल । १८४, ३५२ (शूद्र) ।
वेद । ४८, २३६ (तीन) ।
वेदना । १७, १२९ (प्रतीत्य०), ३४, २८९, ४७० (सुखा, दुःखा, न सुख-न दुःखा), १२९ =इन्द्रिय और विषयके एक साथ मिलनेके बाद चित्तमें जो दुःख, सुख आदि विकार उत्पन्न होता है), १२९ (चक्षु-संस्पर्श-उत्पन्न, श्रोत्र०, घ्राण०, जिह्वा०, काय०, मन०,), १७७, २९६, ४९० (अनुभव), २३० (झेलना), ५०६ (छ) ।
वेदनानुपश्यना । १२० (स्मृतिप्रस्थान) ।
वेदनीय । २२६ (=जानने योग्य) ।
वेदन्तगु । (ज्ञानके अन्तको पहुंचा) ।
वेदयित । १३३ (=अनुभव) ।
वेदेह । ४६० (वेद=ज्ञानसे प्रयत्न करने-वाला) ।
वेय्यावच्च । २९९ (=खातिर) ।
वेष्टन । २४९ (=साफा) ।
वैणव । ३८७ (जाति, बसोर) ।
वैदल्य [वेदल्ल] । १४२ (बुद्ध-भाषित) ।
वैदूर्यमणि । २७२,२८१ (=हीरा) ।
वैनयिक । १३८, १४९ (हटाने वाला) ।
वैपुल्य-महत्त्व । १४३ ।
वोस्सग्ग [व्यवसर्ग] । २७९ (=छुट्टी) ।
व्यक्त । ९७ (=पंडित) ।
व्यञ्जन । ३० (अर्थ), ३८ (स्पष्टीकरण), २१९, २६८ (तर्कारी), ३७६ (लक्षण) ।
व्यञ्जन । अनु—१७३ (=निमित्त) ।
व्यय । ११९, ४९३ (विनाश) ।
व्ययधर्मा । ५३३ (नाशमान) ।
व्यवकीर्ण । १३३, २८३ (मिश्रित) ।
व्यवदानीयधर्म । १९७ (शमथ, विप-श्यना) ।
व्यवसर्ग । ४९७ (=त्याग) ।
व्यवहार । ७१ (न्याय), १०७ (व्या-पार, वाणिज्य) ।
व्यवहार-अमात्य । ७१ (=न्यायाध्यक्ष) ।
व्यवहार-उच्छेद । १९७ (के उपाय आठ) ।
व्यवहारिक । ५२१ (विनिश्चय-महामात्य के ऊपर, महामात्य) ।
व्यसन । २०७ (=आफत), ४९८ (पांच) ।
व्याकरण । २४ (=व्याख्यान), १४२ (नव—सूत्र, गेय, व्याकरण, गाथा, उदान, इतिवृत्तक, जातक, अद्भुतधर्म, वैदल्य) । २४१, २८९ (=उत्तर, व्याख्यान) ।
व्याकृत । १९३ (कथित) ।
व्याकृत । अ—८८ (अकथित), १९३ (निष्प्रयोजन होनेसे अकथित), १९४ (-दृष्टि) ।
व्यापन्न-चित्त । २३६ (द्रोही) ।
व्यापाद । ६२, १८६ (=द्वेष); १२१, १७३ (द्रोह-निवारण) ।
व्रत । ९९ (=क्रिया); ११६ (से न शुद्धि), ५७० (सेवा) ।
शक्ति । ९८, ४८१ (एक हथियार) ।
शंख-लिखित । ३९२ (छिले शंखकी तरह निर्मल श्वेत) ।

शंखमुंडिका । २३० (एक सज़ा) ।
शबल । ४८६ (=कल्मष) ।
शब्द । ३४ (धातु) ।
शमथ । १४४, ४८९ (=समाधि) ।
शमथ-विपश्यना । १४४ (समाधि-प्रज्ञा)।
शयन । २६१ (घर) ।
शयनासन । ७१ (घर), ७९, ३३६ (=निवासस्थान), ५४८ (=वास-स्थान), २५४ (घर सामान), २६७ (घर विस्तरा), २८७ (निवास) ।
शरण । २९ (तीन-); २७७, ९८ ।
शरणगमन । त्रि—९३ (से उपसंपदा), ९७ (से श्रामणेर-प्रव्रज्या) ।
शरीर । ५४९ (=अस्थि) ।
शलाका । ४८३ (वोटकी शलाका जो Ballot की जगह व्यवहार होती थी), ४८४ (रंग-विरंगी), ५६९ (विनय-कर्म) (दे० छन्दशलाका) ।
शलाकाग्रहण । ४७० (वोट लेना), ४८४ (तीन प्रकारसे—गूढ़क, स-कर्णजल्पक, विवृतक) ।
शलाकाग्रहापक । ४८३ (शलाका बाँटने वाला) ।
शलकाग्राह । ४८४ (शलाका-ग्रहणका प्रकार) ।
शव-देव । १३७ ।
शस्त्ररुद्ध । ३०७ (चीवर) ।
शाक्यपुत्रीय । ५० (=शाक्यपुत्र बुद्धके अनुयायी) ।
शांतिवादी । ११७ ।
शावक । १०३ (छाप, छउआ) ।
शाश्वतदृष्टि। १०९(शाश्वतवाद, नित्यतावाद)
शाश्वतवाद । १३२ (आत्माको नित्य मानना) ।
शाश्वतवादी । ५७४ (=नित्यतावादी) ।
शाश्वतविहार । ५०३ (छ) ।
शासन । २४, ६९, ५७१, ५७३ (धर्म); ४२, ५४, ३२७, ३३२ (संदेश, पत्र, चिट्ठी); १७७ (उपदेश) ।
शासनकर । ५१९ (धर्मप्रचारक) ।
शासन । प्रति—३२७ (=उत्तर) ।
शासनमल । ५७२ (धर्ममें मिलावट) ।
शास्ता । २१ (=गुरु); ३९ (उपदेशक), ५४१ (बुद्धके अभावमें धर्मविनय ही शास्ता) ।
शिक्षा । २६७ (=नियम), ४११ (तीन), ५०२ (=भिक्षु-नियम) ।
शिक्षाकाम । ४७० (भिक्षु-नियमके पावन्द) ।
शिक्षापद । २३९ (यम-नियम९), ८३, ४१ (भिक्षु-नियम), २९६ (सदाचार-नियम), ३१६ (१० वातोंके लिये), ४९८ ।
शिरके सात-टुकड़े करना । २१३,२१४।
शिर गिरना । ४६ ।
शिल्प [सिप्प] । ४१९ (=कला), २२९ (व्यवसाय-भेद), ४७३ (विद्या, कला, हुनर)।
शिल्पस्थान । ४६२ (कलायें) ।
शील । १ (=सदाचार) ।
शीलवान् । ७८ (=सदाचारी) ।
शीलविपन्न । ४९८ (=दुराचारी) ।
शीलविशुद्धि । ४९८ (=कायिक वाचिक अदुराचार) ।
शीलव्रत-उपादान । १२९ ।
शीलव्रतपरामर्शी । १२२ (शील-व्रतका अभिमान, संयोजन) ।
शीलसंपदा । ४८९ (आचारकी संपूर्णता) ।
शीलसंपन्न । ९२ (सदाचारी) ।
शीलस्कन्ध । ४६४-६९ ।
शुल्क । ५२१ (चुङ्गी) ।

शूकरमार्दव [सूकरमद्दव] । ५३९ ।
शुद्धावास । ४९९ (देवलोक ५) ।
शून्य । ३८४ (लोकमें) ।
शून्यताविहार । ५६३ (=महापुरुष-विहार) ।
शून्यगार-अभिरति । ३२१ (प्रथम ध्यानसे, द्वि० तृ० चतुर्थ०) ।
शृंगाटक । ४५५ (=चौरस्ता, चौरस्ता) ।
शृंगिलवण-कल्प । ५५६, ५५९ ५६४ (विनय-विरुद्ध-विधान) ।
शेषरहित-ज्ञान । २७ ।
शैक्ष्य । २५७ (=नप्राप्तचित्त) । २९२ (जिसको अभी सीखना है, सेख), ५३८ (=सकरणीय) ।
शैक्ष्य । अ—५३८ (अर्हत) ।
शैक्ष्यधर्म । अ—५१२ ।
शोक । १२४ ।
शौंडिक । ४४७ (शराब बनाने वाला) ।
श्रद्धा । २२५ (सांदृष्टिक-विपाकद धर्म) ।
श्रद्धा-इंद्रिय । २५८ (अर्हतकी) ।
श्रद्धानुसारी । २५७ (शैक्ष्य) ।
श्रद्धाविमुक्त । २५७ (अर्हत्) ।
श्रमण । १२ (=संन्यासी, भिक्षु;, १७१ (प्रव्रजित), २८७ (के आचार संघाटी धारण, अचेलक, रजोजल्लिक, उदकावरोहक, वृक्षमूलिक, अभ्यवकाशिक, उब्भट्टक, पर्यायभक्तिक, मंत्राध्यायक, जटिलक) ।
श्रमण-धर्म । ९ ।
श्रमण-परिष्कार । १२ (पात्र, ३ चीवर, सुई, छुरा, कायबंधन, जलछक्का), ५६१ (पात्र, चीवर, निषीदन, सूचीघर, काय-बंधन, परिश्रावण, धर्मकरक) ।
श्रमणभाव । ६५ (=साधुपन) ।
श्रमण-सामीची प्रतिपद् । २८८ (सच्चा श्रमण बनानेवाला मार्ग) ।
श्राद्ध । १८३, २१५ ।
श्रामणेर-प्रव्रज्या । ५७ (तीन शरण-गमन से) ।
श्रामण्य । १११ (श्रमणभाव), २६१ (संन्यास), ३६० (भिक्षुपन) ।
श्रामण्यफल । ४१६ (चार) ।
श्रावक । १८ (शिष्य) ।
श्रावक । अग्र—। १, ५६, ४६९- ।
श्रावक । महा—। १ ।
श्रीगर्भ । ४१ (रंगमहल) ।
श्रुत । २२५ (धर्म-ग्रंथोंके लिखित न होनेसे लोग सुन कर ही धारण करतेथे, इस प्रकार उपलब्ध ज्ञानको श्रुत कहतेथे), २७८ (विद्या) ।
श्रुतधर्मा । १८ ।
श्रुतवान् । १०४ (पंडित) ।
श्रुति । ११६ (श्रवण) ।
श्रेणी । ३२८ (वणिक्-सभा) ।
श्रेयस् । १९२ (बहुत अच्छा) ।
श्रेष्ठी । २८ (सेठ), ७० (एक अवैतनिक-राजकीय पद) ।
श्रेष्ठी । अनु–२८ ।
श्रेष्ठीका पद । १५२ ।
श्रोत्र । ३४ (धातु) ।
श्रोत्रधातु । दिव्य—५५९ ।
श्रोत्रविज्ञान । ३४ (धातु) ।
श्रोत्रावधान । २२७ (=कान लगाना) ।
श्लेष्म । १७७ (=कफ) ।
श्लोक । ४२८ (=तारीफ) ।
श्वपान । १८२ (कुत्तेके पीनेका बर्तन) ।
सकृदागामी [सकिदागामी] । २४७ (३ संयोजनके क्षय और रागद्वेष मोहके निर्बल होनेपर), ९४ (द्वि० श्रमण) ।
संकल्प । ४९० (कुशल, अकुशल) ।
संक्लिष्ट । २०९ (=मलिन) ।

संक्लेश। १९७ (=क्लेश, मल), २०७, २६२, २६७, २६ (चित्तमल)।
संगणिक। ५२४ (=भीड़भाड़)।
संगति। ३४३ (=भावी), ३४४ (भवितव्यता)।
संगायन। (साथमें पाठ करना)।
संगीति। ५६७-५७५ (एक साथ स्वर-सहित पाठ करना)।
संग्रहवस्तु। २९९ (४—दान, वैय्यावच्च, अर्थचर्या, समानात्मता), ४९६।
संघ। २३९ (=परमतत्त्व-रक्षक समुदाय), २३९ (चातुर्दिश-), ५७१ (-व्याख्या)।
संघगत। ७७ (समष्टिगत)।
संघभेद। १०९ (=संघराजी, संघमें फूट), ४३३।
संघराजी। १०९ (संघभेद)।
संघाट। ४५२ (=जाल)।
संघाटी। ४५, ४७, ११९, २६७ (भिक्षुका ऊपरका दोहरा वस्त्र)।
संघानुस्मृति। २९३।
सच्चवज्ज। २६२ (सच्चापन)।
संचेतना। १२९ (विषय-ज्ञानके बाद विषयका चिंतन करना)।
संचेतनाकाय। ४९९ (छ)।
संज्ञा। १२९ (=इंद्रिय और विषयके एक साथ मिलनेपर अनुकूल प्रतिकूल वेदनाके बाद ही, 'यह अमुक विषय है'-ज्ञानको संज्ञा कहते हैं), ४९० (कुशल-, अकुशल-), ५०४ (=नाम), ५०८ (=ख्याल), ५२४ (७ अपरिहाणीय-धर्म)।
संज्ञाकाय। ६, ५०१ (छ)।
संज्ञावेदयित-निरोध। ५०८ (जहां होशका ख्याल ही लुप्त हो जाता है)।
सज्ञी। १९० (संज्ञावान्)।
सत्कार। ३२९ (=उत्सव)।
सत्पुरुष। १०५ (आर्य)।
सत्पुरुषधर्म। ५०४ (७)।
सत्यानुपत्ति। २२६ (=सत्य-प्राप्ति)।
सत्यानुबोध। २२६ (सत्यका बोध)।
सत्यानुरक्षा। २२५ (=सत्यकी रक्षा)।
सत्त्व। ११६, १९७ (जीव), ५०४ (प्राणी), १२३ (चित्तधारा)।
सत्त्वावास। २८९, ५०८, २८९ (जीवोंके लोक ९, ७)।
स-दर। ६४ (स-भय)।
सद्धर्म। ५०४ (सात), ५२४ (७ अपरिहाणीय-धर्म)।
सद्धर्म। अ-५०४ (सात)।
सद्धिविहारी। ५१ (=शिष्य)।
सनातनधर्म। ९९।
संथार। २५० (आसन)।
संदर्शन। २७ (समाज्ञापन)।
संदिट्ठ। ३०९ (=परिचित)।
संदृष्टिपरामर्शी। ५०३ (हठी)।
सन्निपात। ५२० (=इकट्ठा होना), ५४९ (बैठक)।
सन्निपात-भेरी। २१५ (बैठककी सूचनाका बिगुल)।
सन्निधि। ४६५ (जमा करना)।
सन्निधिकारक। ५६४ (संग्रहीत वस्तु)।
सपदानचारी। १४७ (=धुतंग, निरंतर चारिका चलते रहने वाला)। २६८ (निरंतर चलते रह भिक्षा मांगनेवाला)।
सपुत्रभार्य। २१६ (तापसभेद)।
सप्रीतिक। १०२ (=प्रीति-सहित)।
समुत्कर्षक। २५ (उठानेवाली)।
समुत्तेजन। २७ (=संप्रहर्षण)।
समुदय। २३ (आर्य-सत्य २)। २५ (दुःख-कारण), ३९ (हेतु, कारण), २९४ (उत्पत्ति)।

[illegible]र्म । २० (उत्पन्न होने वाला) ।
समग्र । १७२, ३४९ (एक राय) ।
समज्या [समज्जा] । ९३ (समाज, मेला, तमाशा) ।
२७८ (समाज, नाच, तमाशा) ।
समतित्तिका । २०६ (पूर्ण, भरी) ।
समनुपश्यना । १०९ (सूत्र, सिद्धांत) ।
समन्तचक्षु । ३८० (बुद्ध) ।
समन्वाहार । १७९ (मनसिकार, विषय-ज्ञान) ।
समय । ५७४ (=सिद्धान्त) ।
समर्पित । ६०७ (=संयुक्त) ।
समाचार । २२६, ४४२ (आचरण) ।
समाज्ञापन । २७ (संदर्शन) ।
समादपन । १७० (=समुत्तेजन) ।
समाधि । २६१ (छन्द, वीर्य, चित्त, विमर्ष), १२३ (एकाग्रता, बोध्यंग), ३२१,४९१ (शून्यता, अनिमित्त, अप्रणिहित) ।
समाधि । अवितर्क अविचार-१०३ ।
समाधि-इंद्रिय । २९८ (अर्हत्की) ।
समाधि । उभयांश-२४७ ।
समाधि । निःप्रीतिक-१०३ ।
समाधिपरिष्कार । ५०१ (सात) ।
समाधि-भावना—४९२ (चार) ।
समाधि-विघ्न । १०१ (ग्यारह) ।
समाधि । सप्रीतिक-१०३ ।
समाधि सम्यक्--(देखो सम्यक्समाधि) ।
समाधि । सवितर्क सविचार-१०३ ।
समाधि । सात-सहगत-१०३ ।
समानता । २९९ (=बराबरी) ।
समापत्ति । १३ (=समाधि), ३२१ (शून्यता, अनिमित्त, अप्रणिहित) ।
समापत्ति । आरूप्य-५४१ (पांच) ।
समारम्भ । १७३ (विनाश),२३८(क्रिया), ३६६ (हिंसा) ।
समाहित । १७७, १९० (=एकाग्र) ।
समीहित । २१८ (=चिंतित) ।
संपद् । ४०८ (पांच) ।
सम्पन्न । ८० (तय्यार) ।
संपराय । ३४३ (जन्मांतर) ।
संप्रजन्य । ११८ (अनुभव), ११९ (कायानुपश्यना), १७३ (जानकर करना) ।
संप्रज्ञातसमापत्ति । (=संपजानसमापत्ति) १९२ ।
संप्रसाद । १११ (प्रसन्नता) ।
संप्रहर्षण । २७ (=समुत्तेजन) ।
संबोध । २३ (=पूर्णज्ञान) ।
संबोधि । १४३ (बुद्धज्ञान) ।
संबोधिपरायण । १४३ (परमज्ञानकी प्राप्ति में निश्चल) ।
संबोधि । सम्यक्—९१ (परमज्ञान) ।
संबोध्यङ्ग । ४९४ ।
संमुख विनय । ५०९ (अधिकरण-शमथ) ।
सम्यक् । २३ (=ठीक) ।
सम्यक्-आजीव । २३ (ठीक जीविका), १२६ ।
सम्यक् आज्ञा-विमुक्त । २९७ (अच्छी तरह जानकर मुक्त) ।
सम्यक् कर्मान्त । २३ ।
सम्यक्त्व । ५०९ (सब ८) ।
सम्यक् दृष्टि । २३, १२६ ।
सम्यक्-प्रतिपन्न । २६६(=सत्यारूढ़) ।
सम्यक् प्रधान । १०४ (चार), ४८२, ५३३ (बुद्धसाक्षात्कृत धर्म), ४९२ ।
सम्यक्-वचन । २३, १२६ ।
सम्यक् व्यायाम । २३ (ठीक प्रयत्न, परिश्रम), १२६ ।
सम्यक्-संकल्प । २३, १२६ ।
सम्यक् समाधि । २३, १२६ ।

सम्यक् संबुद्ध । २१ (=बुद्ध) ।
सम्यक्-सम्बोधि । १६, २४ (अभि-संबोधि, परमज्ञान, मोक्षज्ञान), १३९ (=बुद्धत्व) ।
सम्यक् स्मृति । २३, १२६ ।
सरक । ४५९ (कटोरा) ।
सरीसृप । १८ (=रेंगनेवाला) ।
सर्पिष् । १९९ (घी) ।
सर्पिष्मण्ड । १९९ (घीका सार) ।
सर्वज्ञ । २३०, २४८ (बुद्धके विषयमें), २६३, २८०, ३४२, ४२४ (-खंडन) ।
सर्वमेध । ३६९ (निरर्गल यज्ञ) ।
सर्वार्थक । ३२८ (वैना) ।
सर्वार्थ-साधक । ५४ (अमात्य) ।
सलाकावुत्ता । ११० (फल-रहित, खूंटी मात्र रह गई खेती जहां हो) ।
स-संस्कार-परिनिर्वायी । ४९९ (अनागामी) ।
सस्य । ५५ (खेती, हरियाली) ।
सहव्यता । २०५ (=सलोकता) । ५०७ (स्थिति) ।
सहसाकार । ४६५ (=खून आदि कार्य) ।
संयोजन । १२२ (=बंधन १० प्रतिघ, मान, दृष्टि, विचिकित्सा, शीलव्रत-परामर्श, भवराग, ईर्षा, मात्सर्य, अविद्या) । १९८, २४७ (बन्धन), ४९० (तीन), ५०५ (सात) ।
संयोजन । ऊर्ध्व भागीय—४९८ ।
संयोजन । अवर-भागीय—५, ४९८ (पांच) ।
संवर । १७३ (रक्षा, आवरण) २९३; ४६८, ४९४ (संयम) ।
संवर-इन्द्रिय—१७३, ४६५ ।
संवर । चातुर्याम—४४८(जैनोंका) ४६३ ।
संवर्त । १७४ (=प्रलय) ।
संवर्त्तकल्प । १७४ (प्रलय) ।
संवास । १३७ (सहवास) ।
संवृत । २३० (पाप न करनेके कारण संवृत, गुप्त), ३४२ (रक्षित) ।
संवेग । १४५ (वैराग्य, उदासीनता) ।
संवेग-प्राप्त । १७७ (उदास) ।
संवेजनीय । ४८९ (=उद्वेग करनेवाला) ।
संसरण । ५२९ (आवागमन) ।
संस्कार । (प्रतीत्य०), १०५ (कृत्रिम), ४९० (तीन), ५३३ (कृत वस्तु) ।
संस्कृत [संखत] । १०५(अनित्य, निर्मित, प्रतीत्य-समुत्पन्न),२९२(कृत, कृत्रिम) । ५३८ (जात) ।
संस्थागार । १४८ (=प्रजातंत्र-सभागृह), ४८७, ५४२ (प्रजातंत्र-परिषद्-भवन)
संस्पर्श । ३४ (योग), १७७ (संबंध), ११५ (=विषय और इन्द्रियका टकराना, छूना) ।
साक्षात्करणीय । ४९६ (४ धर्म) ।
साक्षात्कृतधर्म । ५३३ ।
सांघिक । १६९ (संघका) ।
साटक । ३०० (धोती) ।
सात । १०२ (सुख) ।
सातरूप । १२४ (प्रियरूप) ।
साधु । ५७१ (अच्छा) ।
साधुविहारी । ९९ ।
सांदृष्टिक । १६५ (तत्कालफलप्र[illegible] २६८ (वर्तमानमें फलप्रद), ४६४ । [illegible]) ।
सांदृष्टिक-विपाक-प्रद । २२५ ([illegible] श्रद्धा, रुचि, अनुश्रव, आ[illegible] । दृष्टि-निध्यानाक्ष) ।
सापतेय्य । २३७ (=धन-धान्य[illegible]
सामग्री । १०९, ४८५ (एकता) ।
सामीचीकर्म । ७७, ४२४ (अञ्जलिकर्म= हाथ जोड़ना) ।

-ुप ॥ १७७ (चञ्चल) ।
सारणीय । ४८९, ४८६ (=प्रियकरण, गुरुकरण) । ५०२ (छ) ५२४ (सात अपरिहाणीय धर्म) ।
सार्थवाह । २० (काफिलेका सर्दार) ।
सालूक । १६७ (कोंईकी जड़) ।
सालूकपान । १६७ ।
सिद्धार्थक । ३६३ (पीली सरसो) ।
सिव्वनी । ३०२ (खोपड़ी) ।
सिंह-पंजर । ५७० (=खिड़की) ।
सिंहशय्या । ४८८ ।
-न । १९ ।
-ते । १७९ (स्वर्गलोक-प्राप्ति) ।
-रित । १४९ (काय०, वाक्०, मन-), -९ ।
-ा । २३६, २४४ (यज्ञ-दक्षिणा) ।
- । १६४ (सुन्दर जन्मवाला) ।
-सा । १९२ (=पुत्रवधू) ।
-दर्श । ४९९ (देवता) ।
सुदर्शी । ४९९ (देवता) ।
सुप्रतिकार । ७७ (प्रत्युपकार) ।
-भ । ५०७ (=शुभ्र) ।
-ना । ८१ [आसानी]
समा- ३९६ (उद्यानभूमि) ।
समाधि- । २७९ (पांच) ।
समाधि ५३६ (=शूकरमार्दव) ।
समाधि -११ (सुई रखनेका घर) ।
समाधि । १४२ (व्याकरण) । ५३४ समाधि-नियममें) ।
समानता -(पदाधिकारी, व्यवहारिक
समापत्ति ।
(शू- (=पाचक) ।
- । १९८ (=मांस काटनेका पीढ़ा) ।
-सूप । ६८ (=तेमन), २१९ (दाल) ।
सेतक । ५७४ [सफेद कपड़ा] ।
सेतट्टिका । ८० (सफेदा, वनस्पति-रोग)
सेतुघात । १४१ (=मर्यादा-खंडन) ।
सेनापति । २९२ (गणोंमें पद), ५२१ (सूत्रधारके ऊपर), ४१० ।
सोब्भ । २६० (श्वभ्र) ।
सौत्रांतिक । (सूत्रपाठी) ७३, ९७ (सूत्र-पिटकपाठी) ।
सौवचस्य । ५१० (=मधुरभाषिता) ।
स्कंध । २६८ (=समुदाय), ४९७ (पांच)।
स्कन्धावार [खंधावार] । ८८, ४७६ (छावनी) ।
स्तम्भितत्व [छम्भितत्त] । १०१ (समाधि-विघ्न) ।
स्त्यानमृद्ध [थीन-मिद्ध] । १०१(समाधि-विघ्न), १२१, १७४, ४६६ (मनका आलस्य, नीवरण) ।
स्त्रीधन । ३१४ ।
स्थपति । ४७९ (फीलवान्, इसीसे थवई =राज) ।
स्थविर । ४८, ४०९ (वृद्ध, ठेर इसीसे) ।
स्थविरवाद । ४१४ (वृद्धोंका सिद्धांत), ५७२ (=थेरवाद, सिंहल, वर्मा, स्याम का बौद्ध-धर्म) ।
स्थविरासन । ५७३ (सभापतिका आसन)।
स्थानार्ह । १०८ (धार्मिक, धर्मानुसार) ।
स्थाम । २६२ (दृढ़ता), ४९९ (दृढ़-पराक्रम) ।
स्थालिपाक । २१९ ।
स्थूण [थून] । २३२(खंभा, थूनी इसीसे) ।
स्थूल-अत्यय । २९४ (दुष्कर्म)
स्नायु [नहारु] । १७६ (नस) ।
स्पर्श (फस्स) । १७ (प्रतीत्य०), १०९ (योग), १९२ (प्राप्ति), २९६ (साक्षात), (देखो स्पर्श भी) ।
स्पर्शकाय । ५०१ (स्पर्श-समुदाय ६) ।

स्प्रष्टव्य । ३४ (धातु) ।
स्फीत । २९७ (समृद्धिशाली) ।
स्मृति । १२२, १२३ (संबोध्यंग) ।
स्मृति-इंद्रिय । २९८ (अर्हत्की) ।
स्मृतिपारिशुद्धि । १६० (स्मरणको शुद्ध करना), १७४ (तृतीय ध्यानमें) ।
स्मृतिप्रस्थान [सतिपट्ठान] । १०४ (चार), ११८-१२७ (कायानुपश्यना, वेदनानु०, चित्त०, धर्म०); २८९, ४८२, ५३३ ।
स्मृतिविनय । ४८४ (विनयकर्म), ५०५ (अधिकरण-शमथ) ।
स्मृतिसंप्रजन्य । १७३, ४६६ ।
स्रोत आपत्ति [सोतापत्ति] । ४०५, ४१४ (के ४ अङ्ग) ।
स्रोत-आपन्न [सोतापन्न] । ७३, २७४ (३ संयोजनोंके क्षयसे), ४१४ (के ४-अङ्ग), ५४० (प्रथम श्रमण) ।
स्वकसंज्ञी । १९१ (अपनेमें संज्ञा ग्रहण करने वाला) ।
स्वप्नोपम । १६० ।
स्वरभण्य । ९३ ।
स्वरभाणक । ५५१ (स्वरसहित सूत्रोंको पढ़नेवाला) ।
स्वस्ति [सोत्थि] । १८२, २१४ (=मंगल) ।
स्वाख्यात । २४, १६५, ४३४ (सुंदर प्रकारसे वर्णित) ।
स्वीकार । ५४२ (=सहन) ।
स्वीयनप्रायश्चित्त । ४८४ ।
हत्थत्थर । ३५७ (गलीचा, हाथीए बिछौना) ।
हत्थविलंघक । १०० (हस्त-संकेत) ।
हस्तप्रज्योतिका । २३० (हाथ जलाने सजा) ।
हस्तिग्रन्थशिल्प । ४२१ (हाथी पकड़ने विद्या) ।
हस्तिनखप्रासाद । ३३९ (=हाथीके या खम्भेकी आकृतिका प्रासाद) ।
हिरण्य । ७१, २९९, ३५५ (अशर्फी) ।
हिंडना [हिंडन] । २६० ।
हुत । ३९ (हवन) ।
हेतुरूप । ४२९ (=ठीक) ।
ह्रद [दह] । ३९० (सरोवर) ।
ह्रीमान् । २६० (लज्जाशील) ।